* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

अवतार-कथाङ्क

गीताप्रेस, गोरखपुर

दुर्गति-नाशिनि दुर्गा जय जय, काल-विनाशिनि काली जय जय।
उमा-रमा-ब्रह्माणी जय जय, राधा-सीता-रुक्मिणि जय जय॥
साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर।
हर हर शंकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
जय जय दुर्गा, जय मा तारा। जय गणेश जय शुभ-आगारा॥
जयति शिवाशिव जानकिराम। गौरीशंकर सीताराम॥
जय रघुनन्दन जय सियाराम। व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम॥
रघुपति राघव राजाराम। पतितपावन सीताराम॥

(संस्करण २,३०,०००)

शान्तिका शाश्वत मार्ग

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥
वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥
एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्॥
नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्॥

जिस प्रकार समस्त ब्रह्माण्डमें प्रविष्ट एक (ही) अग्नि नाना रूपोंमें उनके समान रूपवाला-सा हो रहा है, वैसे (ही) सब ायोंका अन्तरात्मा परब्रह्म एक होते हुए भी नाना रूपोंमें उन्हींके-जैसे रूपवाला (हो रहा है) और उनके बाहर भी है। जिस र समस्त ब्रह्माण्डमें प्रविष्ट एक (ही) वायु नाना रूपोंमें उनके समान रूपवाला-सा हो रहा है, वैसे (ही) सब प्राणियोंका रात्मा परब्रह्म एक होते हुए भी नाना रूपोंमें उन्हींके-जैसे रूपवाला (हो रहा है) और उनके बाहर भी है। जो सब प्राणियोंका र्यामी, अद्वितीय एवं सबको वशमें रखनेवाला (परमात्मा) (अपने) एक ही रूपको बहुत प्रकारसे बना लेता है, उस अपने र रहनेवाले (परमात्मा)-को जो ज्ञानी पुरुष निरन्तर देखते रहते हैं, उन्हींको सदा अटल रहनेवाला परमानन्दस्वरूप ाविक सुख (मिलता है), दूसरोंको नहीं। जो नित्योंका (भी) नित्य (है); चेतनोंका (भी) चेतन है (और) अकेला ही इन अनेक (जीवों)-के कर्मफलभोगोंका विधान करता है, उस अपने अन्दर रहनेवाले (पुरुषोत्तम)-को जो ज्ञानी निरन्तर देखते रहते हैं, उन्हींको सदा अटल रहनेवाली शान्ति (प्राप्त होती है); दूसरोंको नहीं। (कठोपनिषद्)

इस अङ्कका मूल्य १३० रु० (सजिल्द १५० रु०)

वार्षिक शुल्क*
भारतमें १३० रु०
सजिल्द १५० रु०
विदेशमें—सजिल्द
US$25 (Air Mail)
US$13 (Sea Mail)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

पञ्चवर्षीय शुल्क*
भारतमें ६५० रु०
सजिल्द ७५० रु०

* कृपया नियम अन्तिम पृष्ठपर देखें।

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : www.gitapress.org | e-mail : booksales@gitapress.org | ✆ (0551) 2334721
सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।

॥ श्रीहरि: ॥

'कल्याण' के सम्मान्य सदस्यों और प्रेमी पाठकोंसे नम्र निवेदन

१-'कल्याण' के ८१वें वर्ष—सन् २००७ का यह विशेषाङ्क 'अवतार-कथाङ्क' आपलोगोंकी सेवामें प्रस्तुत है। इसमें ४७२ पृष्ठोंमें पाठ्य-सामग्री और ८ पृष्ठोंमें विषय-सूची आदि हैं। कई बहुरंगे एवं रेखाचित्र भी दिये गये हैं। डाकसे सभी ग्राहकोंको विशेषाङ्क-प्रेषणमें लगभग एक माहका समय लग जाता है।

२-वार्षिक सदस्यता-शुल्क प्रेषित करनेपर भी किसी कारणवश यदि विशेषाङ्क वी०पी०पी० द्वारा आपके पास पहुँच गया हो तो उसे डाकघरसे प्राप्त कर लेना चाहिये एवं प्रेषित की गयी राशिका पूरा विवरण (मनीऑर्डर पावतीसहित) यहाँ भेज देना चाहिये। जिससे जाँचकर आपके सुविधानुसार राशिकी उचित व्यवस्था की जा सके। सम्भव हो तो वी०पी०पी० से किसी अन्य सज्जनको ग्राहक बनाकर उसकी सूचना यहाँ नये सदस्यके पूरे पतेसहित देनी चाहिये। ऐसा करके आप 'कल्याण' को आर्थिक हानिसे बचानेके साथ-साथ 'कल्याण' के पावन प्रचारमें सहयोगी भी हो सकेंगे।

३-इस अङ्कके लिफाफे (कवर)-पर आपकी सदस्य-संख्या एवं पता छपा है, उसे कृपया जाँच लें तथा अपनी सदस्य-संख्या सावधानीसे नोट कर लें। रजिस्ट्री अथवा वी०पी०पी० का नम्बर भी नोट कर लेना चाहिये। पत्र-व्यवहारमें सदस्य-संख्याका उल्लेख नितान्त आवश्यक है; क्योंकि इसके बिना आपके पत्रपर हम समयसे कार्यवाही नहीं कर पाते हैं। डाकद्वारा अङ्कोंके सुरक्षित वितरणमें सही पता एवं पिन-कोड आवश्यक है। अत: अपने लिफाफेपर छपा अपना पता जाँच लेना चाहिये।

४-*'कल्याण'* एवं *'गीताप्रेस-पुस्तक-विभाग'* की व्यवस्था अलग-अलग है। अत: पत्र तथा मनीऑर्डर आदि सम्बन्धित विभागको अलग-अलग भेजना चाहिये।

'कल्याण' के उपलब्ध पुराने विशेषाङ्क

वर्ष	विशेषाङ्क	मूल्य (रु०)	वर्ष	विशेषाङ्क	मूल्य (रु०)	वर्ष	विशेषाङ्क	मूल्य (रु०)
६	श्रीकृष्णाङ्क	१००	३४	सं० देवीभागवत (मोटा टाइप)	१३०	५६	वामनपुराण	७५
७	ईश्वराङ्क	९०	३५	सं० योगवासिष्ठ	९०	५९	श्रीमत्स्यमहापुराण	१५०
८	शिवाङ्क	१००	३६	सं० शिवपुराण (बड़ा टाइप)	११०	६६	सं० भविष्यपुराण	९०
९	शक्ति-अङ्क	१२०	३७	सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण	१२०	६९	गो-सेवा-अङ्क	७५
१०	योगाङ्क	९०	३९	श्रीभगवन्नाम-महिमा और प्रार्थना-अङ्क	९०	७१	कूर्मपुराण	८०
१५	साधनाङ्क	१२०	४४-४५	गर्गसंहिता [भगवान्		७२	भगवल्लीला-अङ्क	६५
१९	सं० पद्मपुराण	१४०		श्रीराधाकृष्णकी दिव्य		७३	वेदकथाङ्क	८०
२१	सं० मार्कण्डेयपुराण	५५		लीलाओंका वर्णन]	८०	७४	सं० गरुडपुराण	९०
२१	सं० ब्रह्मपुराण	७०	४४-४५	अग्निपुराण (मूल संस्कृतका		७५	आरोग्य-अङ्क (संवर्धित सं०)	१२०
२२	नारी-अङ्क	१००		हिन्दी अनुवाद)	१२०	७६	नीतिसार-अङ्क	८०
२६	भक्त-चरिताङ्क	१२०	४५	नरसिंहपुराणम्-सानुवाद	६०	७७	भगवत्प्रेम-अङ्क	
२७	बालक-अङ्क	११०	४८	श्रीगणेश-अङ्क	७५		(११ मासिक अङ्क उपहारस्वरूप)	१००
२८	सं० नारदपुराण	१००	४९	श्रीहनुमान-अङ्क	७५	७८	व्रतपर्वोत्सव-अङ्क	१००
२९	संतवाणी-अङ्क	११०	५१	सं० श्रीवराहपुराण	६०	७९	देवीपुराण [महाभागवत]	
३०	सत्कथा-अङ्क	१००	५३	सूर्याङ्क	६०		शक्तिपीठाङ्क	८०

सभी अङ्कोंपर डाक-व्यय अतिरिक्त देय होगा। गीताप्रेस-पुस्तक-विक्री-विभागसे प्राप्य हैं।

व्यवस्थापक—'कल्याण'-कार्यालय, पत्रालय—गीताप्रेस—२७३००५, जनपद—गोरखपुर, (उ०प्र०)

अ० क० अं० 1 A

॥ श्रीहरिः ॥

'अवतार-कथाङ्क' की विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या

भगवान्‌के विविध अवतार और उनकी कथाएँ

विषय	पृष्ठ-संख्या

विषय	पृष्ठ-संख्या

अवतारतत्त्व-मीमांसा

अवतारविभूति-दर्शन और उनके आख्यान

चित्र-सूची

(रंगीन-चित्र)

विषय	पृष्ठ-संख्या

विषय	पृष्ठ-संख्या

भगवान् गणपतिका ऐश्वर्य

भगवती गङ्गाका अवतरण

आदिशक्ति भगवती दुर्गाका नौ रूपोंमें प्राकट्य

शेषशायी भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्माजीका प्रादुर्भाव

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

कल्याण
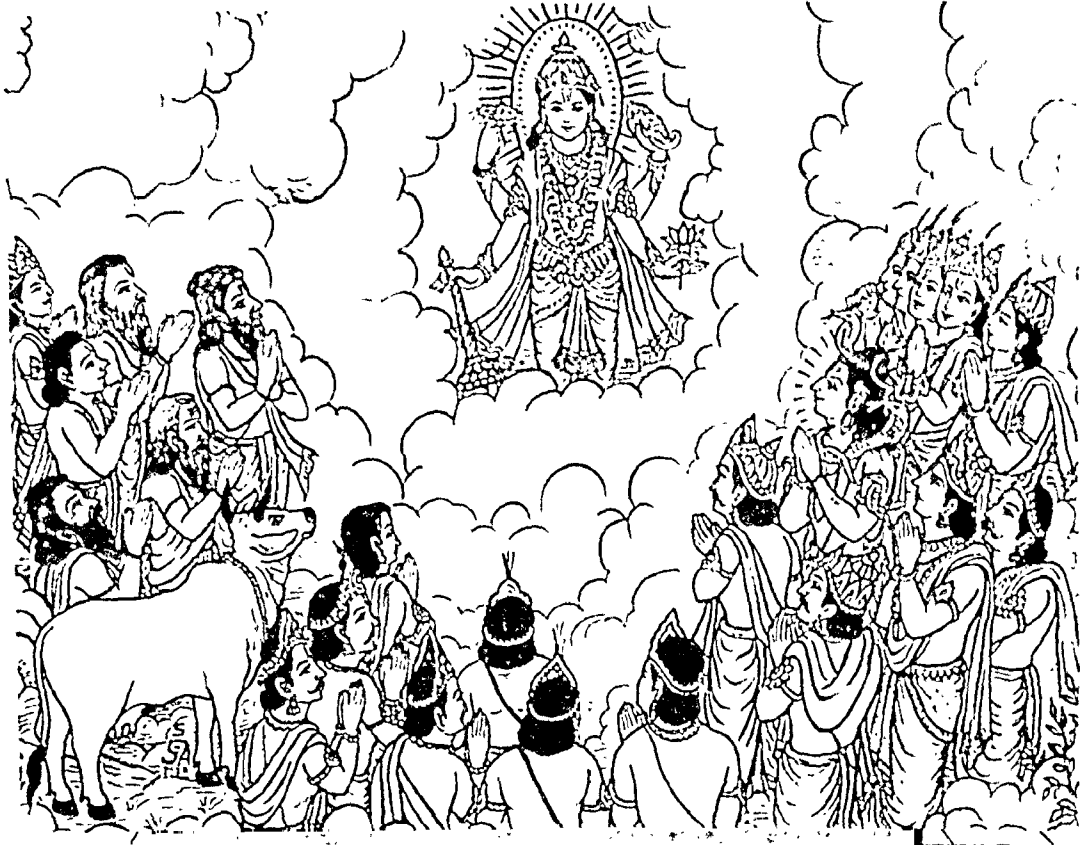
विश्वस्य जन्मस्थितिसंयमार्थे कृतावतारस्य पदाम्बुजं ते।
व्रजेम सर्वे शरणं यदीश स्मृतं प्रयच्छत्यभयं स्वपुंसाम्॥

वर्ष ८१

गोरखपुर, सौर माघ, वि० सं० २०६३, श्रीकृष्ण-सं० ५२३२, जनवरी २००७ ई०

पूर्ण संख्या ९६२

नाभिकमलसे प्रादुर्भूत ब्रह्माजीद्वारा भगवान्‌की स्तुति

रूपं यदेतदवबोधरसोदयेन शश्वन्निवृत्ततमसः सदनुग्रहाय।
आदौ गृहीतमवतारशतैकबीजं यन्नाभिपद्मभवनादहमाविरासम्॥
त्वं भावयोगपरिभावितहृत्सरोज आस्से श्रुतेक्षितपथो ननु नाथ पुंसाम्।
यद्यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय॥
तिर्यङ्‌मनुष्यविबुधादिषु जीवयोनिष्वात्मेच्छयाऽऽत्मकृतसेतुपरीप्सया यः।
रेमे निरस्तरतिरप्यवरुद्धदेहस्तस्मै नमो भगवते पुरुषोत्तमाय॥

[ब्रह्माजी बोले—] देव! आपकी चित् शक्तिके प्रकाशित रहनेके कारण अज्ञान आपसे सदा ही दूर रहता है। आपका यह रूप, जिसके नाभि-कमलसे मैं प्रकट हुआ हूँ, सैकड़ों अवतारोंका मूल कारण है। इसे आपने सत्पुरुषोंपर कृपा करनेके लिये ही पहले-पहल प्रकट किया है। नाथ! आपका मार्ग केवल गुण-श्रवणसे ही जाना जाता है। आप निश्चय ही मनुष्योंके भक्तियोगके द्वारा परिशुद्ध हुए हृदयकमलमें निवास करते हैं। पुण्यश्लोक प्रभो! आपके भक्तजन जिस-जिस भावनासे आपका चिन्तन करते हैं, उन साधु पुरुषोंपर अनुग्रह करनेके लिये आप वही-वही रूप धारण कर लेते हैं। आप पूर्णकाम हैं, आपको किसी विषयसुखकी इच्छा नहीं है, तो भी आपने अपनी बनायी हुई धर्ममर्यादाकी रक्षाके लिये पशु-पक्षी, मनुष्य और देवता आदि जीवयोनियोंमें अपनी ही इच्छासे शरीर धारण कर अनेकों लीलाएँ की हैं। ऐसे आप पुरुषोत्तमभगवान्‌को मेरा नमस्कार है। [श्रीमद्भागवत]

श्रुतिका माङ्गलिक स्तवन

नमस्ते गणपतये। त्वमेव प्रत्यक्षं तत्त्वमसि। त्वमेव केवलं कर्तासि। त्वमेव केवलं धर्तासि। त्वमेव केवलं हर्तासि। त्वमेव सर्वं खल्विदं ब्रह्मासि। त्वं साक्षादात्मासि नित्यम्॥

गणपतिको नमस्कार है, तुम्हीं प्रत्यक्ष तत्त्व हो, तुम्हीं केवल कर्ता, तुम्हीं केवल धारणकर्ता और तुम्हीं केवल संहारकर्ता हो, तुम्हीं केवल समस्त विश्वरूप ब्रह्म हो और तुम्हीं साक्षात् नित्य आत्मा हो। (श्रीगणपत्यथर्वशीर्ष)

नमो व्रातपतये नमो गणपतये नमः प्रमथपतये नमस्तेऽस्तु लम्बोदरायैकदन्ताय विघ्ननाशिने शिवसुताय श्रीवरदमूर्तये नमः॥

व्रातपतिको नमस्कार, गणपतिको नमस्कार, प्रमथपतिको नमस्कार, लम्बोदर, एकदन्त, विघ्ननाशक, शिवतनय श्रीवरदमूर्तिको नमस्कार है। (श्रीगणपत्यथर्वशीर्ष)

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद् भद्रं तन्न आ सुव॥

समस्त संसारको उत्पन्न करनेवाले—सृष्टि-पालन-संहार करनेवाले किंवा विश्वमें सर्वाधिक देदीप्यमान एवं जगत्को शुभकर्मोंमें प्रवृत्त करनेवाले हे परब्रह्मस्वरूप सविता देव! आप हमारे सम्पूर्ण—आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक—दुरितों (बुराइयों—पापों)-को हमसे दूर—बहुत दूर ले जायँ, दूर करें; किंतु जो भद्र (भला) है, कल्याण है, श्रेय है, मङ्गल है, उसे हमारे लिये—विश्वके हम सभी प्राणियोंके लिये—चारों ओरसे (भलीभाँति) ले आयें, दें। (ऋग्वेद ५।८२।५)

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्। समूढमस्य पाꣳसुरे स्वाहा॥

सर्वव्यापी परमात्मा विष्णुने इस जगत्को धारण किया है और वे ही पहले भूमि, दूसरे अन्तरिक्ष और तीसरे द्युलोकमें तीन पदोंको स्थापित करते हैं अर्थात् सर्वत्र व्याप्त हैं। इन विष्णुदेवमें ही समस्त विश्व व्याप्त है। हम उनके निमित्त हवि प्रदान करते हैं। (यजुर्वेद ५।१५)

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च॥

कल्याण एवं सुखके मूल स्रोत भगवान् शिवको नमस्कार है। कल्याणके विस्तार करनेवाले तथा सुखके विस्तार करनेवाले भगवान् शिवको नमस्कार है। मङ्गलस्वरूप और मङ्गलमयताकी सीमा भगवान् शिवको नमस्कार है। (यजुर्वेद १६।४१)

हृत्पुण्डरीकमध्यस्थां प्रातःसूर्यसमप्रभाम्। पाशाङ्कुशधरां सौम्यां वरदाभयहस्तकाम्।
त्रिनेत्रां रक्तवसनां भक्तकामदुघां भजे॥

नमामि त्वां महादेवीं महाभयविनाशिनीम्। महादुर्गप्रशमनीं महाकारुण्यरूपिणीम्॥

हृत्कमलके मध्य रहनेवाली, प्रातःकालीन सूर्यके समान प्रभावाली, पाश और अंकुश धारण करनेवाली, मनोहर रूपधारिणी, वर और अभयमुद्रा धारण किये हुए हाथोंवाली, तीन नेत्रोंसे युक्त, रक्तवस्त्र परिधान करनेवाली और कामधेनुके समान भक्तोंके मनोरथ पूर्ण करनेवाली देवीको मैं भजता हूँ। महाभयका नाश करनेवाली, महासंकटको शान्त करनेवाली और महान् करुणाकी साक्षात् मूर्ति तुम महादेवीको मैं नमस्कार करता हूँ। (श्रीदेव्यथर्वशीर्ष)

'नमस्ते कमलाकान्त नमस्ते सुखदायिने'

नमो नमस्तेऽखिलकारणाय नमो नमस्तेऽखिलपालकाय।
नमो नमस्तेऽमरनायकाय नमो नमो दैत्यविमर्दनाय॥
नमो नमो भक्तजनप्रियाय नमो नमः पापविदारणाय।
नमो नमो दुर्जननाशकाय नमोऽस्तु तस्मै जगदीश्वराय॥
नमो नमः कारणवामनाय नारायणायामितविक्रमाय।
श्रीशार्ङ्गचक्रासिगदाधराय नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय॥
नमः पयोराशिनिवासकाय नमोऽस्तु लक्ष्मीपतयेऽव्ययाय।
नमोऽस्तु सूर्याद्यमितप्रभाय नमो नमः पुण्यगतागताय॥
नमो नमोऽर्केन्दुविलोचनाय नमोऽस्तु ते यज्ञफलप्रदाय।
नमोऽस्तु यज्ञाङ्गविराजिताय नमोऽस्तु ते सज्जनवल्लभाय॥
नमो नमः कारणकारणाय नमोऽस्तु शब्दादिविवर्जिताय।
नमोऽस्तु तेऽभीष्टसुखप्रदाय नमो नमो भक्तमनोरमाय॥
नमो नमस्तेऽद्भुतकारणाय नमोऽस्तु ते मन्दरधारकाय।
नमोऽस्तु ते यज्ञवराहनाम्ने नमो हिरण्याक्षविदारकाय॥
नमोऽस्तु ते वामनरूपभाजे नमोऽस्तु ते क्षत्रकुलान्तकाय।
नमोऽस्तु ते रावणमर्दनाय नमोऽस्तु ते नन्दसुताग्रजाय॥
नमस्ते कमलाकान्त नमस्ते सुखदायिने।
श्रितार्तिनाशिने तुभ्यं भूयो भूयो नमो नमः॥

'सबके कारणरूप आप भगवान्‌को नमस्कार है, नमस्कार है। सबका पालन करनेवाले आपको नमस्कार है, नमस्कार है। समस्त देवताओंके स्वामी आपको नमस्कार है, नमस्कार है। दैत्योंका संहार करनेवाले आपको नमस्कार है, नमस्कार है। जो भक्तजनोंके प्रियतम, पापोंके नाशक तथा दुष्टोंके संहारक हैं, उन जगदीश्वरको बार-बार नमस्कार है। जिन्होंने किसी विशेष हेतुसे वामनरूप धारण किया, जो नारस्वरूप जलमें निवास करनेके कारण 'नारायण' कहलाते हैं, जिनके विक्रमकी कोई सीमा नहीं है तथा जो शार्ङ्गधनुष, चक्र, खड्ग और गदा धारण करते हैं, उन भगवान् पुरुषोत्तमको बार-बार नमस्कार है। क्षीरसिन्धुमें निवास करनेवाले भगवान्‌को नमस्कार है। अविनाशी लक्ष्मीपतिको नमस्कार है। जिनके अनन्त तेजकी सूर्य आदिसे भी तुलना नहीं हो सकती, उन भगवान्‌को नमस्कार है तथा जो पुण्यकर्मपरायण पुरुषोंको स्वतः प्राप्त होते हैं, उन कृपालु श्रीहरिको बार-बार नमस्कार है। सूर्य और चन्द्रमा जिनके नेत्र हैं, जो सम्पूर्ण यज्ञोंका फल देनेवाले हैं, यज्ञाङ्गोंसे जिनकी शोभा होती है तथा जो साधु पुरुषोंके परम प्रिय हैं, उन भगवान् श्रीनिवासको बार-बार नमस्कार है। जो कारणके भी कारण, शब्दादि विषयोंसे रहित, अभीष्ट सुख देनेवाले तथा भक्तोंके हृदयमें रमण करनेवाले हैं, उन भक्तवत्सल भगवान्‌को नमस्कार है। अद्भुत कारणरूप आपको नमस्कार है, नमस्कार है। मन्दराचल पर्वत धारण करनेवाले कच्छपरूपधारी आपको नमस्कार है। यज्ञवराहरूपमें प्रकट होनेवाले आपको नमस्कार है। हिरण्याक्षको विदीर्ण करनेवाले आपको नमस्कार है। वामनरूपधारी आपको नमस्कार है। क्षत्रियकुलका अन्त करनेवाले परशुरामरूपमें आपको नमस्कार है। रावणका मर्दन करनेवाले श्रीरामरूपधारी आपको नमस्कार है तथा नन्दनन्दन श्रीकृष्णके बड़े भाई बलरामरूपमें आपको नमस्कार है। कमलाकान्त! आपको नमस्कार है। सबको सुख देनेवाले आपको नमस्कार है। भगवन्! आप शरणागतोंकी पीड़ाका नाश करनेवाले हैं। आपको बारंबार नमस्कार है।' (स्कन्दपुराण)

भगवत्स्तुति

नतोऽस्म्यहं त्वाखिलहेतुहेतुं नारायणं पूरुषमाद्यमव्ययम्।
यन्नाभिजातादरविन्दकोशाद् ब्रह्माऽऽविरासीद् यत एष लोकः॥
भूस्तोयमग्निः पवनः खमादिर्महानजादिर्मन इन्द्रियाणि।
सर्वेन्द्रियार्था विबुधाश्च सर्वे ये हेतवस्ते जगतोऽङ्गभूताः॥
यानि यानीह रूपाणि क्रीडनार्थं बिभर्षि हि। तैरामृष्टशुचो लोका मुदा गायन्ति ते यशः॥
नमः कारणमत्स्याय प्रलयाब्धिचराय च। हयशीर्ष्णे नमस्तुभ्यं मधुकैटभमृत्यवे॥
अकूपाराय बृहते नमो मन्दरधारिणे। क्षित्युद्धारविहाराय नमः सूकरमूर्तये॥
नमस्तेऽद्भुतसिंहाय साधुलोकभयापह। वामनाय नमस्तुभ्यं क्रान्तत्रिभुवनाय च॥
नमो भृगूणां पतये दृप्तक्षत्रवनच्छिदे। नमस्ते रघुवर्याय रावणान्तकराय च॥
नमस्ते वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च। प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः॥
नमो बुद्धाय शुद्धाय दैत्यदानवमोहिने। म्लेच्छप्रायक्षत्रहन्त्रे नमस्ते कल्किरूपिणे॥
नमस्ते वासुदेवाय सर्वभूतक्षयाय च। हृषीकेश नमस्तुभ्यं प्रपन्नं पाहि मां प्रभो॥

[श्रीअक्रूरजी बोले—] प्रभो! आप प्रकृति आदि समस्त कारणोंके परम कारण हैं। आप ही अविनाशी पुरुषोत्तम नारायण हैं तथा आपके ही नाभिकमलसे उन ब्रह्माजीका आविर्भाव हुआ है, जिन्होंने इस चराचर जगत्की सृष्टि की है। मैं आपके चरणोंमें नमस्कार करता हूँ। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहङ्कार, महत्तत्त्व, प्रकृति, पुरुष, मन, इन्द्रिय, सम्पूर्ण इन्द्रियोंके विषय और उनके अधिष्ठातृदेवता—यही सब चराचर जगत् तथा उसके व्यवहारके कारण हैं और ये सब-के-सब आपके ही अङ्गस्वरूप हैं। प्रभो! आप क्रीडा करनेके लिये पृथ्वीपर जो-जो रूप धारण करते हैं, वे सब अवतार लोगोंके शोक-मोहको धो-बहा देते हैं और फिर सब लोग बड़े आनन्दसे आपके निर्मल यशका गान करते हैं। प्रभो! आपने वेदों, ऋषियों, ओषधियों और सत्यव्रत आदिकी रक्षा-दीक्षाके लिये मत्स्यरूप धारण किया था और प्रलयके समुद्रमें स्वच्छन्द विहार किया था। आपके मत्स्यरूपको मैं नमस्कार करता हूँ। आपने ही मधु और कैटभ नामके असुरोंका संहार करनेके लिये हयग्रीव अवतार ग्रहण किया था। मैं आपके उस रूपको भी नमस्कार करता हूँ। आपने ही वह विशाल कच्छपरूप ग्रहण करके मन्दराचलको धारण किया था, आपको मैं नमस्कार करता हूँ। आपने ही पृथ्वीके उद्धारकी लीला करनेके लिये वराहरूप स्वीकार किया था, आपको मेरा बार-बार नमस्कार। प्रह्लाद-जैसे साधुजनोंका भय मिटानेवाले प्रभो! आपके उस अलौकिक नृसिंहरूपको मैं नमस्कार करता हूँ। आपने वामनरूप ग्रहण करके अपने पगोंसे तीनों लोक नाप लिये थे, आपको मैं नमस्कार करता हूँ। धर्मका उल्लङ्घन करनेवाले घमंडी क्षत्रियोंके वनका छेदन कर देनेके लिये आपने भृगुपति परशुरामरूप ग्रहण किया था। मैं आपके उस रूपको नमस्कार करता हूँ। रावणका नाश करनेके लिये आपने रघुवंशमें भगवान् रामके रूपसे अवतार ग्रहण किया था। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। वैष्णवजनों तथा यदुवंशियोंका पालन-पोषण करनेके लिये आपने ही अपनेको वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इस चतुर्व्यूहके रूपमें प्रकट किया है। मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ। दैत्य और दानवोंको मोहित करनेके लिये आप शुद्ध अहिंसा-मार्गके प्रवर्तक बुद्धका रूप ग्रहण करेंगे। मैं आपको नमस्कार करता हूँ और पृथ्वीके क्षत्रिय जब म्लेच्छप्राय हो जायँगे, तब उनका नाश करनेके लिये आप ही कल्किके रूपमें अवतीर्ण होंगे। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। प्रभो! आप ही वासुदेव, आप ही समस्त जीवोंके आश्रय (सङ्कर्षण) हैं; तथा आप ही बुद्धि और मनके अधिष्ठातृ-देवता हृषीकेश (प्रद्युम्न और अनिरुद्ध) हैं। मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ। प्रभो! आप मुझ शरणागतकी रक्षा कीजिये। (श्रीमद्भागवत)

अवतारहेतु आर्त-निवेदन

जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रनतपाल भगवंता । गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधुसुता प्रिय कंता ॥
पालन सुर धरनी अद्भुत करनी मरम न जानइ कोई । जो सहज कृपाला दीनदयाला करउ अनुग्रह सोई ॥
जय जय अबिनासी सब घट बासी ब्यापक परमानंदा । अबिगत गोतीतं चरित पुनीतं मायारहित मुकुंदा ॥
जेहि लागि बिरागी अति अनुरागी बिगत मोह मुनिबृंदा । निसि बासर ध्यावहिं गुन गन गावहिं जयति सच्चिदानंदा ॥
जेहिं सृष्टि उपाई त्रिबिध बनाई संग सहाय न दूजा। सो करउ अघारी चिंत हमारी जानिअ भगति न पूजा ॥
जो भव भय भंजन मुनि मन रंजन गंजन बिपति बरूथा। मन बच क्रम बानी छाड़ि सयानी सरन सकल सुरजूथा ॥
सारद श्रुति सेषा रिषय असेषा जा कहुँ कोउ नहिं जाना। जेहि दीन पिआरे बेद पुकारे द्रवउ सो श्रीभगवाना ॥
भव बारिधि मंदर सब बिधि सुंदर गुनमंदिर सुखपुंजा। मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पद कंजा ॥

जानि सभय सुर भूमि सुनि बचन समेत सनेह।
गगनगिरा गंभीर भइ हरनि सोक संदेह॥
जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा॥
अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेहउँ दिनकर बंस उदारा॥

[**ब्रह्माजी बोले—**] हे देवताओंके स्वामी, सेवकोंको सुख देनेवाले, शरणागतकी रक्षा करनेवाले भगवान्! आपकी जय हो! जय हो!! हे गो-ब्राह्मणोंका हित करनेवाले, असुरोंका विनाश करनेवाले, समुद्रकी कन्या (श्रीलक्ष्मीजी)-के प्रिय स्वामी! आपकी जय हो। हे देवता और पृथ्वीका पालन करनेवाले! आपकी लीला अद्भुत है, उसका भेद कोई नहीं जानता। ऐसे जो स्वभावसे ही कृपालु और दीनदयालु हैं, वे ही हमपर कृपा करें। हे अविनाशी, सबके हृदयमें निवास करनेवाले (अन्तर्यामी), सर्वव्यापक, परम आनन्दस्वरूप, अज्ञेय, इन्द्रियोंसे परे, पवित्रचरित्र, मायासे रहित मुकुन्द (मोक्षदाता)! आपकी जय हो! जय हो!! [इस लोक और परलोकके सब भोगोंसे] विरक्त तथा मोहसे सर्वथा छूटे हुए (ज्ञानी) मुनिवृन्द भी अत्यन्त अनुरागी (प्रेमी) बनकर जिनका रात-दिन ध्यान करते हैं और जिनके गुणोंके समूहका गान करते हैं, उन सच्चिदानन्दकी जय हो। जिन्होंने बिना किसी दूसरे संगी अथवा सहायकके अकेले ही [या स्वयं अपनेको त्रिगुणरूप—ब्रह्मा, विष्णु, शिवरूप—बनाकर अथवा बिना किसी उपादान-कारणके अर्थात् स्वयं ही सृष्टिका अभिन्ननिमित्तोपादान कारण बनकर] तीन प्रकारकी सृष्टि उत्पन्न की, वे पापोंका नाश करनेवाले भगवान् हमारी सुधि लें। हम न भक्ति जानते हैं, न पूजा। जो संसारके (जन्म-मृत्युके) भयका नाश करनेवाले, मुनियोंके मनको आनन्द देनेवाले और विपत्तियोंके समूहको नष्ट करनेवाले हैं, हम सब देवताओंके समूह मन, वचन और कर्मसे चतुराई करनेकी बान छोड़कर उन (भगवान्)-की शरण [आये] हैं। सरस्वती, वेद, शेषजी और सम्पूर्ण ऋषि कोई भी जिनको नहीं जानते, जिन्हें दीन प्रिय हैं, ऐसा वेद पुकारकर कहते हैं, वे ही श्रीभगवान् हमपर दया करें। हे संसाररूपी समुद्रके [मथनेके] लिये मन्दराचलरूप, सब प्रकारसे सुन्दर, गुणोंके धाम और सुखोंकी राशि नाथ! आपके चरणकमलोंमें मुनि, सिद्ध और सारे देवता भयसे अत्यन्त व्याकुल होकर नमस्कार करते हैं।

देवता और पृथ्वीको भयभीत जानकर और उनके स्नेहयुक्त वचन सुनकर शोक और सन्देहको हरनेवाली गम्भीर आकाशवाणी हुई—हे मुनि, सिद्ध और देवताओंके स्वामियो! डरो मत। तुम्हारे लिये मैं मनुष्यका रूप धारण करूँगा और उदार (पवित्र) सूर्यवंशमें अंशोंसहित मनुष्यका अवतार लूँगा। [श्रीरामचरितमानस]

परमात्मप्रभुके अवतारकी कथा

परमात्मप्रभु नित्य हैं, शाश्वत हैं। इस दृश्य जगत्में अपने इच्छानुसार प्रकट होते हैं और फिर स्वधाम पधार जाते हैं। उनके वे धाम मायातीत और चिन्मय हैं। उनमें प्रभु विभिन्न रूपोंमें उन-उन रूपोंके अनुरूप पार्षदों, परिकरोंके साथ विराजते और नाना क्रीडा करते हैं। उन अनन्तके अनन्त धाम हैं। शास्त्रोंमें प्रमुख धामोंका वर्णन है। वे अनेक होकर भी एक हैं, अभिन्न हैं।

प्रभुका स्वरूप सत्-चित्-आनन्दरूप है। 'सत्' का तात्पर्य—जिसका अभाव कभी नहीं है—'**नाभावो विद्यते सतः**'। सत्का अभाव नहीं होता, वह त्रिकालाबाधित है अर्थात् वह निरन्तर रहता है, अतः भगवान् सद्रूप हैं। 'चित्' का अर्थ है प्रकाश (ज्ञान) अर्थात् जो अनन्त प्रकाशसे प्रकाशित हैं—ज्ञानस्वरूप हैं तथा जो आनन्दके सागर हैं अर्थात् वे पूर्णानन्द हैं। उनके आनन्दका एक कण पूरे संसारको आह्लादित करता है। इस प्रकार वे सच्चिदानन्दस्वरूप हैं। इसी स्वरूपमें वे निराकार और साकार दोनों हैं।

कुछ लोग यह शंका करते हैं कि जो परम तत्त्व निरंजन है, निर्विकार है, निर्गुण और निराकार है; वह सगुण-साकार कैसे हो सकता है और क्यों होगा? इसका उत्तर यह है कि भगवान् सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी और सर्वसमर्थ हैं। इस संसारका सृजन वे ही करते हैं। यह जगत् उन्हींका लीला-विलास है। जो संसारकी सृष्टि कर सकता है, क्या वह स्वयं शरीर धारण नहीं कर सकता? अतः निर्गुण, निराकारका सगुण-साकार होना कोई अस्वाभाविक नहीं है। इसीलिये हमारे शास्त्र और ऋषि-महर्षि कहते हैं कि निर्विकार, निराकार, निरंजन, शुद्ध चैतन्य ब्रह्म जगत्के कल्याण और हित-साधनके लिये स्वेच्छासे सगुण-साकार रूपमें इस धरापर अवतीर्ण होता है।

वैसे तो सम्पूर्ण सृष्टि ही परमात्मप्रभुका रूप है अर्थात् स्वयं परमात्मा ही संसारके रूपमें व्यक्त हैं। परब्रह्म परमात्मा पूर्ण चैतन्यस्वरूप हैं, जो सोलह कलाओंसे परिपूर्ण हैं। सृष्टिमें प्रकृतिके गुणोंका वैषम्य होनेके कारण जड़ और चेतन—दोनोंकी तारतम्यता दिखायी पड़ती है। संसारके प्राणियोंमें जो चेतना है, वह भगवान्की कलाओंसे व्यक्त होती है, जैसे राम और कृष्ण पूर्ण कलाओंसे युक्त होनेके कारण प्रभुके पूर्णावतार हैं। सृष्टिके सभी प्राणी ईश्वरके अंश हैं—*'ईस्वर अंस जीव अबिनासी।'* परंतु ईश्वरकी कलाके कम-ज्यादा होनेके कारण इन जीवोंकी शक्ति और प्रभावमें अन्तर होता है।

जगत्में उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज, पिण्डज और जरायुज—ये पाँच प्रकारके जीव हैं, जिनकी चेतनताका तारतम्य परमात्मप्रभुकी कलाओंसे व्यक्त होता है। तृणसे तरुपर्यन्त उद्भिज्ज (जमीनसे उत्पन्न होनेवाली वृक्षादि वनस्पति) पदार्थोंमें भी आहार-ग्रहण, निद्रा तथा स्नेह-द्वेषके प्रभावको ग्रहण करनेकी क्षमता होती है। यहाँ केवल अन्नमय कोशका विकास है। वे उद्भिज्ज एक कलासे युक्त हैं। स्वेदज (पसीनेसे उत्पन्न जूँ-लीख आदि) जीव, जिनमें प्राणमय कोशका भी विकास है अर्थात् ये सक्रिय जीव हैं, जो दो कलासे युक्त हैं। इसी प्रकार अण्डज (अण्डेसे उत्पन्न होनेवाले पक्षी-सर्प आदि) प्राणी तीन कलासे युक्त हैं, जिनमें मनोमय कोशका भी विकास है। ये अण्डज प्राणी संकल्प-विकल्प भी करते हैं। पिण्डजोंमें विज्ञानमय कोश भी प्रकट होता है। ये प्राणी बुद्धिका उपयोग करते देखे जाते हैं, अतः इनमें चार कलाका विकास कहा जाता है।

जरायुज प्राणी केवल मनुष्य है, जिसमें आनन्दमय कोश भी विकसित है। केवल मनुष्य ही अपना आनन्द हास्यादिके द्वारा व्यक्त कर सकता है और बिना दैहिक चेष्टाके आनन्दका अनुभव कर सकता है। अन्य प्राणियोंमें यह क्षमता नहीं होती है, वे या तो शान्त रहेंगे या दैहिक चेष्टासे अपना आनन्द व्यक्त करेंगे।

मानवयोनि कर्मयोनि है, इसी योनिमें जीव अपने शुभ-अशुभ कर्मोंके अनुसार पाप-पुण्यका भागी बनता है। उसे अपने कर्तृत्वका अभिमान रहता है। अन्य जितनी भी योनियाँ हैं, वे सब भोगयोनियाँ हैं। इन योनियोंमें जीव केवल भोग भोगता है। बुद्धि, भावना और प्रतिभाका तारतम्य मनुष्यमें ही रहता है, इसलिये मानवमें पाँचसे आठ कलातक चेतनकी अभिव्यक्ति हो सकती है।

सामान्य मनुष्योंमें जो निम्न कोटिके हैं तथा वन्य मानवोंमें चेतना पाँच कलासे विकसित रहती है। सामान्यतः सुसंस्कृत मानव-समाजमें चेतना छः कलाओंसे युक्त होती है। सर्वसामान्यकी अपेक्षा समाजमें जो विशिष्ट पुरुष हैं तथा विशेष प्रतिभासे सम्पन्न हैं, ऐसे मनुष्य प्रभुकी सात कलासे युक्त होते हैं। लोकोत्तर महापुरुष जो यदा-कदा धरापर दीखते हैं, वे आठ कलासे युक्त होते हैं। पार्थिव देह आठ कलासे अधिकका प्राकट्य सह नहीं सकती। वैसे आठ कलाके प्राकट्यसे ही पार्थिव देहमें दिव्यता आ जाती है।

कारक पुरुषोंमें नौ कलाका विकास होता है। आकस्मिक अवसरोंपर जो अवतार होते हैं, वे दस या ग्यारह कलाओंमें

युक्त होते हैं। ऐसे अवतार सहसा प्रकट हो जाते हैं और जिस कार्यके लिये प्रकट हुए, उसको सम्पन्न करके तिरोहित हो जाते हैं। मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह आदि तथा भक्तोंको दर्शन देनेके लिये जो अवतार होते हैं, वे इसी प्रकारके अवतार होते हैं।

नौ कलाका विकास दिव्य देहमें ही हो पाता है और दस या ग्यारह कला जहाँ प्रकट हो, वहाँ तो पञ्चभूतका लेश भी नहीं रह पाता। वहाँ स्थूल-सूक्ष्म देहका भेद नहीं होता। वह चिन्मय-वपु होता है। अत: उसका आकार चाहे जब जैसा बदल सकता है। जैसे भगवान् वामन विराट् हो गये। इन दिव्य देहोंमें वस्त्राभरण-आयुध आदि भी दिव्य होते हैं। ग्यारह कलासे ऊपर होनेपर प्रभु पूर्णावतारके रूपमें प्रकट होते हैं। श्रीराम और श्रीकृष्ण परिपूर्णावतार हैं। इन्होंने मानवरूपमें प्रकट होकर इस धराको अपनी पूर्ण लीलासे आप्लावित किया।

अवतारोंकी कई कोटि है, जैसे अंशांशावतार, अंशावतार, आवेशावतार, कलावतार, नित्यावतार, युगावतार आदि।

मरीचि आदि ऋषि अंशांशावतार हैं; ब्रह्मा, नारदादि अंशावतार हैं; परशुराम, पृथु आदि आवेशावतार तथा कपिल, वामन और वराहप्रभृति कलावतार हैं। इनमें कुछ नित्यावतार हैं, प्रत्येक युगमें और कल्पमें वे होते ही हैं, जैसे ब्रह्माजी सृष्टि जब होगी, तब प्रारम्भमें प्रकट होंगे और सृष्टिपर्यन्त रहेंगे। कुछ युगावतार हैं, जो निश्चित युगोंमें होते ही हैं।

वास्तवमें सृष्टिके सम्पूर्ण जीव परमात्माके ही अंशरूपमें अवतरित हैं। प्रभुकी कलाके आधारपर इनकी शक्ति, प्रभाव और क्षमतामें अन्तर होता है। अल्पकलासे युक्त जीव सामान्य होते हैं, स्वयं प्रभुका अवतरण विशेष कलाओंसे युक्त होता है।

अब एक प्रश्न उठता है कि भगवान्के अवतारका प्रधान प्रयोजन क्या है? भगवान् स्वयं कहते हैं—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

अर्थात् साधुपुरुषोंका उद्धार करनेके लिये, पापकर्म करनेवालोंका विनाश करनेके लिये और धर्मकी अच्छी तरहसे स्थापना करनेके लिये मैं युग-युगमें प्रकट हुआ करता हूँ।

परंतु यह बात ऐसी है जैसे मच्छरको मारनेके लिये तोप लगायी जाय। भला जो भगवान् सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् हैं, जिनके संकल्पमात्रसे सारी सृष्टिका सृजन होता है, उन्हें क्या इस तुच्छकार्यके लिये अवतार लेनेकी आवश्यकता है? अत: इसका तो कोई ऐसा कारण होना चाहिये, जहाँ भगवान्की सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्ता कुंठित हो जाती हो और जिसके लिये उन्हें दिव्य मंगल विग्रह धारण करना अनिवार्य हो जाता हो।

हमें इसका उत्तर महारानी कुन्तीके इन दिव्य शब्दोंसे मिलता है—

तथा परमहंसानां मुनीनाममलात्मनाम्।
भक्तियोगविधानार्थं कथं पश्येम हि स्त्रिय:॥

(श्रीमद्भा० १।८।२०)

कुन्ती कहती हैं—भगवन्! जो अमलात्मा परमहंस मुनि हैं, उनके हृदयमें भक्तियोगका विधान करनेके लिये आपका अवतार होता है, हम स्त्रियाँ इस रहस्यको कैसे समझ सकती हैं?

यहाँ भगवान्के अवतारका प्रयोजन अमलात्मा मुनियोंके लिये भक्तियोग प्रदान करना बतलाया गया है। वास्तवमें भजनीयके बिना भक्ति नहीं हो सकती। प्रेमलक्षणा भक्तिका आलम्बन कोई अत्यन्त चित्ताकर्षक और परम अभिलषित तत्त्व ही हो सकता है। जो महामुनीश्वर अमलात्मा प्राकृत प्रपञ्चोंसे दूर रहकर परम तत्त्वमें परिनिष्ठित हैं, उनके मनका आकर्षण भगवान्के सिवा और कौन हो सकता है? अत: इस बातकी आवश्यकता होती है कि उनके परम आराध्य भगवान् ही अचिन्त्य एवं अनन्त सौन्दर्य-माधुर्यमयी मंगलमूर्तिमें अवतीर्ण होकर उन्हें भजनीय रूपमें अपना स्वरूप समर्पण कर भक्तियोग प्रदान करें; क्योंकि जो कार्य पूर्ण परब्रह्म परमात्माके अवतीर्ण हुए बिना सम्पन्न न हो सकता हो, जिसके सम्पादनमें उनकी सर्वशक्तिमत्ता और सर्वज्ञता कुंठित हो जाय, उसीके लिये उनका अवतीर्ण होना सार्थक है।

ब्रह्मदर्शी तत्त्वज्ञगण जिस निर्विशेष शुद्ध ब्रह्मका साक्षात्कार करते हैं, उसकी अपेक्षा भगवान्का सगुण दिव्य मंगलमय विग्रह अधिक आकर्षक क्यों है—इस विषयमें भावुकोंका ऐसा कथन है कि जिस प्रकार पत्थरमें समानता होनेपर भी पाषाण आदिकी अपेक्षा हीरा अधिक मूल्यवान् होता है तथा कपासकी अपेक्षा उससे बना हुआ वस्त्र बहुमूल्य होता है, उसी प्रकार शुद्ध परब्रह्मकी अपेक्षा उसीसे विकसित भगवान्की दिव्य मंगलमयी मूर्ति कहीं अधिक माधुर्यसम्पन्न होती है। इक्षुदण्ड (ईख) स्वभावसे ही मधुर है, किंतु यदि उसमें कोई फल लग जाय तो उसकी मिठासका क्या कहना! मलयागिरि चन्दनके वृक्षमें यदि कोई पुष्प आ जाय तो वह कितना सुगन्धित होगा! इसी प्रकार भगवान्की सगुण-साकार मर्तिके

सम्बन्धमें समझना चाहिये।

यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि भगवान्‌के निर्गुण, निर्विशेष स्वरूपमें वह परमानन्द है ही नहीं जो उनके सगुण रूपमें है, कारण—इक्षुदण्डकी मधुरिमा, पाषाण आदिका मूल्य, चन्दन आदिकी सुगन्धि—ये सब सातिशय हैं, इनमें कम-अधिक हो सकता है, परंतु भगवान्‌में जो सौन्दर्य, माधुर्य एवं आनन्दादि हैं—वे निरतिशय हैं अर्थात् अनन्तानन्त हैं।

इन सबसे यही निश्चय होता है कि भगवान्‌के अवतारका प्रधान प्रयोजन अमलात्मा परमहंसोंके लिये भक्तियोगको प्रदान करना है। इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिये वे अपनी लीलाशक्तिसे दिव्य मंगलमय सगुण-साकारस्वरूप धारण करते हैं। यह लीलाशक्ति भगवान्‌की परम अन्तरंगा है।

इसके साथ ही भगवान्‌की इस उक्ति—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

—के अनुसार भगवान्‌के अवतारका प्रयोजन सर्वसाधारणके कल्याणोपयुक्त धर्मकी स्थापना ही बताया गया है। यद्यपि उनके प्रादुर्भावका प्रधान प्रयोजन अमलात्माओंके भक्तियोगका विधान करना ही है तथापि अवान्तर प्रयोजन सन्मार्गपर चलनेवाले साधुओंकी रक्षा, दुष्कृतियोंका विनाश और वैदिक-स्मार्तादि कर्मोंकी स्थापना भी है ही।

विभिन्न युगोंमें भगवान्‌के सगुण-साकार रूपमें विभिन्न अवतारोंका दिव्य दर्शन हमें प्राप्त होता है। भगवान् नारायण (विष्णु), श्रीगङ्गाधर (शिव), महाशक्ति (भगवती दुर्गा), गणनाथ (गणेश) और भुवनभास्कर (सूर्यदेव)—ये पञ्चदेव एक ही तत्त्वके पाँच स्वरूप हैं, वैसे दिव्य धामोंमें इनके पृथक्-पृथक् नित्य धाम हैं, किंतु साकार विग्रह पृथक्-पृथक् होते हुए भी ये एक ही परम तत्त्वके अनेक रूप हैं। अतः इनमें न सामर्थ्यका कोई अन्तर है और न अनुग्रहका। एक अनन्त सच्चिदानन्द चाहे जिस रूपमें हों, उनमें कोई अंतर सम्भव नहीं है। अवतार इन पाँच देवोंमेंसे ही किसीका होता है अथवा इनके माध्यमसे ही होता है।

सृष्टिके पालनका दायित्व भगवान् विष्णुका—ब्रह्माण्डाधीश क्षीराब्धिशायीका है, अतः अधिकांश अवतार इनके ही अंश माने जाते हैं। इसलिये भगवान् विष्णुके चौबीस अवतारोंकी कथा पुराणोंमें प्राप्त है। भगवान्‌के दस अवतार प्रमुख हैं, जिनकी कथाएँ विशेष रूपसे प्राप्त होती हैं। इसी प्रकार भगवान् सदाशिव विश्वनाथके विभिन्न अवतारोंका वर्णन, पराम्बा भगवती त्रिपुरसुन्दरीके अवतारोंका विवेचन, गजानन भगवान् गणेश और भुवनभास्कर भगवान् सूर्यनारायणके अवतारोंका वर्णन भी मिलता है।

श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्‌ने कहा है—

जो-जो ऐश्वर्ययुक्त, शोभायुक्त और बलयुक्त प्राणी तथा पदार्थ हैं—उस-उसको तुम मेरे ही तेज (योग) अर्थात् सामर्थ्यके अंशसे उत्पन्न हुआ समझो।*

उपर्युक्त भगवद्वचनोंसे यह सिद्ध है कि भगवान् जब जैसी आवश्यकता होती है—कभी स्वयं पूर्णरूपसे, कभी अंशरूपसे और कभी अपने तेज, शक्ति, बुद्धि, बल आदिको किसी विशेष पुरुषमें प्रतिष्ठितकर उसे लोककल्याणके लिये जगत्‌में उपस्थित करा देते हैं, यह भी ठाकुरजीकी लीला ही है। कब, किसे, कहाँ निमित्त बनाकर जगत्‌का कार्य करवाना है, यह वे ही जान सकते हैं। भगवत्प्राप्तिका माध्यम होनेसे भगवद्विभूतिसे प्रतिष्ठित संत-महापुरुष भी लोकहितका कार्य करते हैं और भगवान्‌के निर्दिष्ट मार्गका अनुसरण करते हैं। ऐसा समझना चाहिये कि विभूतिरूपसे ये भी भगवद्रूप ही हैं।

संत-महात्मा, योगी, भक्त, आचार्य, सद्गुरु आदिमें परमात्माकी ही मर्यादा स्थित रहती है, ऐसे ही जगत्‌के भौतिक प्रतीत होनेवाले कुछ पदार्थोंमें भी विशिष्ट देवत्व स्थित रहता है। विभूतिके रूपमें भगवान्‌की विशिष्ट अवतरण-लीलाओंका निदर्शन भी समय-समयपर प्राप्त होता रहता है। पुराणादि ग्रन्थोंमें सर्वसमर्थ, कल्याणविग्रह प्रभुके मुख्य अवतारोंका सविशेष वर्णन है, पर उनमें भी क्रमभेद है।

जिस प्रकार किसी एक अक्षय जलाशयसे असंख्य छोटे-छोटे जलप्रवाह निकलकर चारों ओर धावित होते हैं, उसी प्रकार सत्त्वनिधि परमेश्वरसे विविध अवतारोंकी उत्पत्ति होती है—

अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः।
यथाविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः॥

(श्रीमद्भा० १।३।२६)

दयाधामके इन अद्भुत एवं मंगलमय अवतारोंका चरित साधक एवं भक्तजनोंके लिये स्वाभाविक रूपसे कल्याणकारी है।

—राधेश्याम खेमका

---

* यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा। तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्॥ (गीता १०।४१)
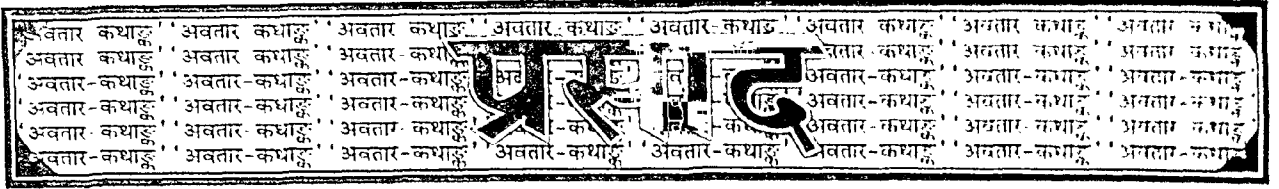
'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे'

[भगवान् ब्रह्माजीका अवतरण]

अचिन्त्य परमेश्वरकी अतर्क्य लीलासे त्रिगुणात्मक प्रकृतिमें जब सृष्टि-प्रवाह होता है, उस समय रजोगुणसे प्रेरित वे ही परब्रह्म सगुण होकर सर्वप्रथम प्रजापति हिरण्यगर्भके रूपमें प्रकट होते हैं और वे ही अखिल प्राणि-समुदायके स्वामी हैं—

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।

(यजुर्वेद २३।१)

वेदोंमें सृष्टिकर्ताके लिये विश्वकर्मन्, ब्रह्मणस्पति, हिरण्यगर्भ, ब्रह्मा तथा प्रजापति आदि नाम आये हैं। प्रत्येक कल्पकी सृष्टि-प्रक्रियामें सर्वप्रथम आविर्भाव ब्रह्माजीका ही होता है। औपनिषदश्रुतिमें बताया गया है कि हिरण्यगर्भ ब्रह्माजीका प्राकट्य सर्वप्रथम हुआ और वे ही इस विश्वके रचयिता तथा इसकी रक्षा करनेवाले हैं—

ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता।

(मुण्डक० १।१।१)

ब्रह्माजीका अवतरण किससे, कैसे और कब हुआ—इस सम्बन्धमें पुराणोंमें एक रोचक कथा प्राप्त होती है, जिसमें बताया गया है कि महाप्रलयके बाद कालात्मिका शक्तिको अपने शरीरमें निविष्ट कर भगवान् नारायण दीर्घकालतक योगनिद्रामें निमग्न रहे। महाप्रलयकी अवधि समाप्त होनेपर उनके नेत्र उन्मीलित हुए और सभी गुणोंका आश्रय लेकर वे प्रबुद्ध हुए। उसी समय उनकी नाभिसे एक दिव्य कमल प्रकट हुआ, जिसकी कर्णिकाओंके ऊपर स्वयम्भू ब्रह्मा, जो सम्पूर्ण ज्ञानमय और वेदरूप कहे गये हैं, प्रकट होकर दिखायी पड़े। उन्होंने शून्यमें अपने चारों ओर नेत्रोंको घुमा-घुमाकर देखना प्रारम्भ किया। इसी उत्सुकतामें देखनेकी चेष्टा करनेसे चारों दिशाओंमें उनके चार मुख प्रकट हो गये—

परिक्रमन् व्योम्नि विवृत्तनेत्र-
श्चत्वारि लेभेऽनुदिशं मुखानि॥

(श्रीमद्भा० ३।८।१६)

किंतु उन्हें कुछ भी दिखलायी नहीं पड़ा और उन्हें यह चिन्ता हुई कि इस नाभिकमलमें बैठा हुआ मैं कौन हूँ और कहाँसे आया हूँ तथा यह कमल भी कहाँसे निकला है। बहुत चिन्तन करनेपर और दीर्घकालतक तप करनेके बाद उन्होंने उन परम पुरुषके दर्शन किये, जिन्हें पहले कभी नहीं देखा था और जो मृणालगौर शेषशय्यापर सो रहे थे तथा जिनके शरीरसे महानीलमणिको लज्जित करनेवाली तीव्र प्रकाशमयी छटा दसों दिशाओंको प्रकाशित कर रही थी। ब्रह्माजीको इससे बहुत प्रसन्नता हुई और उन्होंने उन भगवान् विष्णुको सम्पूर्ण विश्वका तथा अपना भी मूल समझकर उनकी दिव्य स्तुति की। भगवान्ने अपनी प्रसन्नता व्यक्तकर उनसे कहा कि अब आपको चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है, आप तपःशक्तिसे सम्पन्न हो गये हैं और आपको मेरा अनुग्रह भी प्राप्त है। अब आप सृष्टि करनेका प्रयत्न कीजिये। आपको अबाधित सफलता प्राप्त होगी।

भगवान् विष्णुकी प्रेरणासे सरस्वती देवीने ब्रह्माजीके हृदयमें प्रविष्ट होकर उनके चारों मुखोंसे उपवेद और अङ्गोंसहित चारों वेदोंका उन्हें ज्ञान कराया। पुनः उन्होंने सृष्टि-विस्तारके लिये सनकादि चार मानस-पुत्रोंके बाद मरीचि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अंगिरा, भृगु, वसिष्ठ तथा दक्ष आदि मानस-पुत्रोंको उत्पन्न किया और आगे स्वायम्भुवादि मनु आदिसे सभी प्रकारकी सृष्टि होती गयी।

इस कथानकसे स्पष्ट है कि सृष्टिके प्रारम्भमें भगवान् नारायणके नाभिकमलसे सर्वप्रथम ब्रह्माजीका प्राकट्य हुआ।

इसीसे ये पद्मयोनि भी कहलाते हैं। नारायणकी इच्छाशक्तिकी प्रेरणासे स्वयं उत्पन्न होनेके कारण ये 'स्वयम्भू' भी कहलाते हैं।

मानवसृष्टिके मूलहेतु स्वायम्भुव मनु भी उन्हींके पुत्र थे और उन्हींके दक्षिण भागसे उत्पन्न हुए थे। स्वयम्भू (ब्रह्मा)-के पुत्र होनेसे ये स्वायम्भुव मनु कहलाते हैं। ब्रह्माजीके ही वामभागसे महारानी शतरूपाकी उत्पत्ति हुई। स्वायम्भुव मनु तथा महारानी शतरूपासे ही मैथुनी-सृष्टिका प्रारम्भ हुआ। सभी देवता ब्रह्माजीके पौत्र माने गये हैं, अतः वे पितामह नामसे प्रसिद्ध हैं। ब्रह्माजी यूँ तो देवता, दानव तथा सभी जीवोंके पितामह हैं, किंतु सृष्टि-रचनाके कारण वे धर्म एवं सदाचारके ही पक्षपाती हैं, अतः जब कभी पृथ्वीपर अधर्म बढ़ता है, अनीति बढ़ती है तथा पृथ्वीमाता दुराचारियोंके भारसे पीड़ित होती हैं तब कोई उपाय न देखकर गोरूप धारण कर वे देवताओंसहित ब्रह्माजीके पास ही जाती हैं। इसी प्रकार जब कभी देवासुर-संग्रामोंमें देवगण पराजित होकर अपना अधिकार खो बैठते हैं तो वे भी प्रायः ब्रह्माजीके पास ही जाते हैं और ब्रह्माजी भगवान् विष्णुकी सहायता लेकर उन्हें अवतार ग्रहण करनेको प्रेरित करते हैं। अतः विष्णुके प्रायः सभी अवतारोंमें ये ही निमित्त बनते हैं। दुर्गा आदिके अवतारोंमें भी ये ही प्रार्थना करके उन्हें विभिन्न रूपोंमें अवतरित होनेकी प्रेरणा देते हैं और पुनः धर्मकी स्थापना करनेके पश्चात् देवताओंको यथायोग्य भागका अधिकारी बनाते हैं।

इस प्रकार ब्रह्माजीका समस्त जगत् तथा देवोंपर महान् अनुग्रह है। अपने अवतरणके मुख्य कार्य सृष्टि-विस्तारको भलीभाँति सम्पन्न कर वे अपने कार्यों तथा विविध अवतारोंमें प्रेरक बनकर जीव-निकायका महान् कल्याण करते हैं। ब्रह्माजीके अवतरणका दूसरा मुख्य उद्देश्य था शास्त्रकी उद्भावना तथा उसका संरक्षण। पुराणोंमें यह वर्णन आता है कि जब विष्णुजीके नाभिकमलसे ब्रह्माजी प्रकट हुए तो भगवान् विष्णुकी प्रेरणासे ही देवी सरस्वतीने प्रकट होकर उनके चारों मुखोंसे वेदोंका उच्चारण कर समस्त ज्ञानराशिका विस्तार किया—

प्रचोदिता येन पुरा सरस्वती
वितन्वताजस्य सतीं स्मृतिं हृदि।
स्वलक्षणा प्रादुरभूत् किलास्यतः
स मे ऋषीणामृषभः प्रसीदताम्॥

(श्रीमद्भा० २।४।२२)

ब्रह्माजीके चारों मुखोंसे चार वेद, उपवेद (आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, स्थापत्यवेद), न्यायशास्त्र, होता, उद्गाता, अध्वर्यु और ब्रह्मा आदि ऋत्विज् प्रकट हुए। इनके पूर्व मुखसे ऋग्वेद, दक्षिण मुखसे यजुर्वेद, पश्चिम मुखसे सामवेद तथा उत्तर मुखसे अथर्ववेदका आविर्भाव हुआ। इतिहास-पुराणरूप पञ्चम वेद भी उनके मुखसे आविर्भूत हुआ। साथ ही षोडशी, उक्थ्य, अग्निष्टोम, आप्तोर्याम, वाजपेय आदि यज्ञ तथा विद्या, दान, तप और सत्य—ये धर्मके चार पाद भी प्रकट हुए।

यज्ञकार्यमें सर्वाधिक प्रयुक्त होनेवाली पवित्र समिधा और पलाश-वृक्ष ब्रह्माजीका ही स्वरूप माना जाता है। अथर्ववेद तो ब्रह्माजीके नामसे ही 'ब्रह्मवेद' कहलाता है। पाँचों वेदोंके ज्ञाता और यज्ञके मुख्य निरीक्षक ऋत्विज्को 'ब्रह्मा'के नामसे ही कहा जाता है, जो प्रायः यज्ञकुण्डकी दक्षिण दिशामें स्थित होकर यज्ञ-रक्षा और निरीक्षणका कार्य करते हैं।

भगवान् ब्रह्मा वेदज्ञानराशिमय, शान्त, प्रसन्न और सृष्टिके रचयिता हैं। सृष्टिका निर्माण कर ये धर्म, सदाचार, ज्ञान, तप, वैराग्य तथा भगवद्भक्तिकी प्रेरणा देते हुए सदा सौम्य स्वरूपमें स्थित रहते हैं। साररूपमें ये कल्याणके मूल कारण हैं और समस्त पुरुषार्थोंके सम्पादनपूर्वक अपनी सभी प्रजा-संततियोंका सब प्रकारसे अभ्युदय करते हैं। सावित्री और सरस्वती देवीके अधिष्ठाता होनेसे सद्बुद्धिके प्रेरक भी ये ही हैं।

मत्स्यपुराण (अ० २६०)-में बताया गया है कि ब्रह्माजी चतुर्मुख, चतुर्भुज एवं हंसपर आरूढ़ रहते हैं, यथारुचि वे कमलपर भी आसीन रहते हैं। उनके वामभागमें देवी सावित्री तथा दक्षिण भागमें देवी सरस्वती विराजमान रहती हैं। ब्रह्मलोकमें ब्रह्मसभामें भगवान् ब्रह्माजी विराजमान रहते हैं, इनकी सभाको 'सुसुखा' कहा गया है। इसे ब्रह्माजीने स्वयं अपने सङ्कल्पसे उत्पन्न किया था। यह सभीके लिये सुखद है। यहाँ सूर्य, चन्द्रमा या अग्निके

प्रकाशकी आवश्यकता नहीं है। यह अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित है। सभी वेद, शास्त्र, ऋषि, मुनि तथा देवता यहाँ मूर्तरूप होकर नित्य उनकी उपासना करते रहते हैं। समस्त कालचक्र भी मूर्तिमान् होकर यहाँ उपस्थित रहता है।

ब्रह्माजीका दिन ही दैनन्दिन सृष्टि-चक्रका समय होता है। उनका दिन ही कल्प कहलाता है (एक कल्पमें चौदह मन्वन्तरका समय होता है), इतनी ही बड़ी उनकी रात्रि होती है। ब्रह्माके दिनके उदयके साथ ही त्रैलोक्यकी सृष्टि होती है और उनकी रात्रि ही प्रलयरूप है। ब्रह्माजीकी परमायु ब्राह्मवर्षके मानसे एक सौ वर्ष है, इसे 'पर' कहते हैं। पुराणों तथा धर्मशास्त्रोंके अनुसार इस समय ब्रह्माजी अपनी आयुका आधा भाग अर्थात् एक परार्ध—५० ब्राह्म दिव्य वर्ष बिताकर दूसरे परार्धमें चल रहे हैं अर्थात् यह उनके ५१वें वर्षका प्रथम दिन या कल्प है। उनके दिव्य सौ वर्षोंकी आयुमें अनेक बार सृष्टि और प्रलयका क्रम चलता रहता है। इस प्रकार ब्रह्माजी सृष्टि-सृष्ट्यन्तरमें चराचर जगत्के साक्षी बनकर स्वयं भी अवतरित होते हैं और अवतारोंके प्रेरक भी बनते हैं। उनकी करुणा सबपर है। अपनी प्रजाको उद्देश्यकर उन्होंने अनेक उपदेश उन्हें प्रदान किये हैं और सदा धर्माचरण करनेका ही परामर्श दिया है।

ब्रह्माजीने हंसरूपमें प्रकट होकर साध्यगणोंको जो

उपदेश दिया; वह बड़े ही महत्त्वका है, बड़ा ही कल्याणकारी है। हंसरूपी ब्रह्माजी कहते हैं कि वेदाध्ययनका सार है सत्यभाषण, सत्यभाषणका सार है इन्द्रियसंयम और इन्द्रियसंयमका फल है मोक्ष—यही सम्पूर्ण शास्त्रोंका उपदेश है—

वेदस्योपनिषत् सत्यं सत्यस्योपनिषद् दमः।
दमस्योपनिषन्मोक्ष एतत् सर्वानुशासनम्॥

(महा० शान्ति० २९९। १३)

संगके अमोघ प्रभावको बताते हुए ब्रह्माजी कहते हैं कि जैसे वस्त्र जिस रंगमें रंगा जाय, वैसा ही हो जाता है, उसी प्रकार यदि कोई सज्जन, असज्जन, तपस्वी अथवा चोरका साथ करता है तो वह भी उन्हीं-जैसा हो जाता है अर्थात् उसपर उन्हींका रंग चढ़ जाता है—

यदि सन्तं सेवति यद्यसन्तं
तपस्विनं यदि वा स्तेनमेव।
वासो यथा रंगवशं प्रयाति
तथा स तेषां वशमभ्युपैति॥

(महा०शान्ति० २९९। ३३)

इसलिये कल्याणकामी जनोंको चाहिये कि वे सज्जनोंका ही साथ करें।

सर्वदेवमयी गौ सुरभी भी ब्रह्माजीके वरसे ही महनीय पदको प्राप्त कर सकी हैं। महाभारतमें इस बातको देवराज इन्द्रसे बताते हुए ब्रह्माजीने कहा कि हे शचीपते!

जब मैंने सुरभी देवीसे कहा—मैं तुम्हारी तपस्यासे प्रसन्न हूँ,

वर माँगो; तब सुरभीने कहा—लोकपितामह! आपकी प्रसन्नता ही मेरे लिये सबसे बड़ा वर है—

'एष एव वरो मेऽद्य यत्प्रीतोऽसि ममानघ॥'

(महा०अनु० ८३। ३४)

सुरभीकी बात सुनकर उसकी निष्काम तपस्यासे अभिभूत हो ब्रह्माजीने उसे अमरत्वका वर दिया और उससे कहा—तुम मेरी कृपासे तीनों लोकोंके ऊपर निवास करोगी

और तुम्हारा वह धाम 'गोलोक' नामसे विख्यात होगा। महाभागे! तुम्हारी सभी शुभ संतानें मानवलोकमें कल्याणकारी कर्म करते हुए निवास करेंगी। ब्रह्माजीके वरसे ही लोकमें भी गौएँ पूज्य हुईं।

भगवान् ब्रह्माजी तपस्याके मूर्तरूप हैं। प्रलयकालके जलार्णवमें जब सर्वत्र अन्धकार-ही-अन्धकार व्याप्त था, इन्हें अव्यक्त देववाणीद्वारा 'तप करो-तप करो' का आदेश प्राप्त हुआ। उसी दैवीवाक्का अनुसरण कर ब्रह्माजी दीर्घकालतक तपस्यामें प्रवृत्त हो गये, तब प्रसन्न हो नारायणने इन्हें दर्शन दिये और इन्हें जो उपदेश दिया वह चतुःश्लोकी भागवतके रूपमें प्रसिद्ध हो गया। यह नारायणका इनपर विशेष अनुग्रह था। वे चार श्लोक इस प्रकार हैं—

यावानहं यथाभावो यद्रूपगुणकर्मकः।
तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात्॥
अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत् परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्॥
ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः॥
यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम्॥

(श्रीमद्भा० २।९।३१—३४)

मेरा जितना विस्तार है, मेरा जो लक्षण है, मेरे जितने और जैसे रूप, गुण और लीलाएँ हैं—मेरी कृपासे तुम उनका तत्त्व ठीक-ठीक वैसा ही अनुभव करो।

सृष्टिके पूर्व केवल मैं ही था। मेरे अतिरिक्त न स्थूल था न सूक्ष्म और न तो दोनोंका कारण अज्ञान। जहाँ यह सृष्टि नहीं है, वहाँ मैं-ही-मैं हूँ और इस सृष्टिके रूपमें जो कुछ प्रतीत हो रहा है, वह भी मैं ही हूँ और जो कुछ बच रहेगा, वह भी मैं ही हूँ।

वास्तवमें न होनेपर भी जो कुछ अनिर्वचनीय वस्तु मेरे अतिरिक्त मुझ परमात्मामें दो चन्द्रमाओंकी तरह मिथ्या ही प्रतीत हो रही है, अथवा विद्यमान होनेपर भी आकाश-मण्डलके नक्षत्रोंमें राहुकी भाँति जो मेरी प्रतीति नहीं होती, इसे मेरी माया समझनी चाहिये।

जैसे प्राणियोंके पञ्चभूतरचित छोटे-बड़े शरीरोंमें आकाशादि पञ्चमहाभूत उन शरीरोंके कार्यरूपसे निर्मित होनेके कारण प्रवेश करते भी हैं और पहलेसे ही उन स्थानों और रूपोंमें कारणरूपसे विद्यमान रहनेके कारण प्रवेश नहीं भी करते, वैसे ही उन प्राणियोंके शरीरकी दृष्टिसे मैं उनमें आत्माके रूपसे प्रवेश किये हुए हूँ और आत्मदृष्टिसे अपने अतिरिक्त और कोई वस्तु न होनेके कारण उनमें प्रविष्ट नहीं भी हूँ।

यह उपदेश कर नारायणने अपना रूप छिपा लिया तब सर्वभूतस्वरूप ब्रह्माजीने अञ्जलि बाँधकर उन्हें प्रणाम किया और पहले कल्पमें जैसी सृष्टि थी, उसी रूपमें इस विश्वकी रचना की—

'सर्वभूतमयो विश्वं ससर्जेदं स पूर्ववत्॥'

(श्रीमद्भा० २।९।३८)

भगवान् ब्रह्माकी पूजा-उपासना

अमूर्त उपासनामें ब्रह्माजीकी सर्वत्र पूजा होती है और सभी प्रकारके सर्वतोभद्र, लिङ्गतोभद्र तथा वास्तु

आदि चक्रोंमें उनकी पूजा मुख्य स्थानमें होती है, किंतु मन्दिरोंके रूपमें इनकी पूजा मुख्यतया पुष्कर-क्षेत्र तथा ब्रह्मावर्त-क्षेत्र (बिठूर)-में देखी जाती है, वैसे इनके भित्तिचित्र और प्रतिमाचित्र तो सर्वत्र मिलते हैं। मध्वसम्प्रदाय, जिसके भेदाभेद, स्वतन्त्रास्वतन्त्र तथा द्वैतवाद आदि अनेक नाम हैं, के आदिप्रवर्तक आचार्य भगवान् ब्रह्मा ही माने गये हैं, इसलिये उडुपी आदि मुख्य मध्वपीठोंमें भी इनकी बड़े आदरसे पूजा-आराधनाकी परम्परा है।

प्रतिमाके रूपमें ब्रह्माजीकी व्यापक पूजा ग्राम-ग्राम और नगर-नगरमें शिव, विष्णु, दुर्गा, राम, कृष्ण, हनुमान् आदिके समान नहीं देखी जाती। यद्यपि इसके कारण और आख्यान भी अनेक प्राप्त होते हैं तथापि मुख्य कथा पद्मपुराणके सृष्टिखण्डमें आती है। उसीमें यह भी बात आती है कि पुष्करके महायज्ञमें जब सभी देवता उपस्थित हो गये और सभीकी पूजा आदिके पश्चात् हवनकी तैयारी होने लगी, सभी देवपत्नियाँ भी उपस्थित हो चुकी थीं, किंतु ब्रह्माजीकी पत्नी सरस्वतीजी देवियोंके बुलाये जानेपर भी विलम्ब करती गयीं, तब अपत्नीक यज्ञका विधान न होनेसे यज्ञारम्भमें अति विलम्ब देखकर इन्द्रादि देवताओंने कुछ समयके लिये सावित्री नामकी कन्याको, जो सभी सुलक्षणोंसे सम्पन्न थी, ब्रह्माजीके वामभागमें बैठा दिया। थोड़ी देरके पश्चात् सरस्वतीजी जब पहुँचीं तो यह सब देखकर क्रुद्ध हो गयीं और उन्होंने देवताओंको बिना विचार किये काम करनेके कारण संतानरहित होनेका शाप दे दिया और ब्रह्माजीको भी पुष्कर आदि कुछ क्षेत्रोंको छोड़कर अन्यत्र मन्दिर आदिमें प्रतिमा-रूपमें पूजित न होनेका शाप दे दिया। अत: उनकी प्रस्तर आदिकी प्रतिमाएँ प्राय: अन्यत्र नहीं देखी जाती हैं, किंतु मन्त्र, ध्यान और यज्ञादिमें उनका सादर आवाहन-पूजनके पश्चात् उन्हें आहुतियाँ प्रदान की जाती हैं, स्तुति-पूजा भी होती है और सर्वतोभद्रादि चक्रोंमें सर्वाधिक प्रतिष्ठित-रूपसे वे उपास्य माने गये हैं। सर्वतोभद्रचक्रके मध्यमें अष्टदल कमलकी कर्णिकामें इनका आवाहन-पूजन किया जाता है—**'मध्ये कर्णिकायां ब्रह्माणम्'**। **'ब्रह्म जज्ञानम्०'** यह उनका मुख्य मन्त्र है। **'ॐ ब्रह्मणे नमः'** इस नाम-मन्त्रसे भी पूजन होता है। वरुणकलशमें भी 'कुशब्रह्मा' की स्थापना होती है। देवता तथा असुरोंकी तपस्यामें प्राय: सबसे अधिक आराधना ब्रह्माजीकी ही होती है। विप्रचित्ति, तारक, हिरण्यकशिपु, रावण, गजासुर तथा त्रिपुर आदि असुरोंको इन्होंने वरदान देकर प्राय: अवध्य कर डाला था और देवता, ऋषि, मुनि, गन्धर्व, किन्नर तथा विद्याधरगण तो इनकी आराधनामें निरत रहते ही हैं।

~~~○~~~

सप्तर्षियोंका अवतरण

'नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः॥'

(मुण्डकोपनिषद् २।३।११)

परम ऋषियोंको नमस्कार है, परम ऋषियोंको नमस्कार है।

सप्तर्षियोंका प्रादुर्भाव श्रीब्रह्माजीके मानससङ्कल्पसे हुआ है। सृष्टिके विस्तारके लिये ब्रह्माजीने अपने ही समान दस मानस-पुत्रोंको उत्पन्न किया। उनके नाम हैं—मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ, दक्ष तथा नारद—

मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः।
भृगुर्वसिष्ठो दक्षश्च दशमस्तत्र नारदः॥*

(श्रीमद्भा० ३।१२।२२)

ये ऋषि गुणोंमें श्रीब्रह्माजीके समान ही हैं, अत: पुराणोंमें ये नौ ब्रह्मा भी कहे गये हैं—**'नव ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः॥'** (विष्णुपु० १।७।६) यही आदि ऋषि-सर्ग है। ये ही ऋषि भिन्न-भिन्न मन्वन्तरोंमें सप्तर्षियोंके

* विष्णुपुराण (१।७।५)-में श्रीनारदजीका नाम पृथक्से लिया गया है और नौकी गणना हुई है—
भृगुं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुमङ्गिरसं तथा। मरीचिं दक्षमत्रिं च वसिष्ठं चैव मानसान्॥
~~~

रूपमें अवतरित होते रहते हैं।

श्रीमद्भागवतमें श्रीसूतजी शौनकादि ऋषियोंसे कहते हैं कि ऋषि, मनु, देवता, प्रजापति, मनुपुत्र और जितने भी शक्तिशाली हैं, वे सब-के-सब भगवान् श्रीहरिके ही अंशावतार अथवा कलावतार हैं—

ऋषयो मनवो देवा मनुपुत्रा महौजसः।
कलाः सर्वे हरेरेव सप्रजापतयस्तथा॥
(श्रीमद्भा० १।३।२७)

इस प्रकार ब्रह्माजीके मानस पुत्र सप्तर्षिगण भी भगवान्‌के ही अवतार हैं। सप्तर्षियोंका परिगणन भगवद्विभूतियोंमें हुआ है।* इन ऋषियोंका प्रादुर्भाव ब्रह्माजीके मानसिक सङ्कल्पसे उनके अनेक अङ्गोंसे हुआ है, अतः यह ऋषिसृष्टि मानससृष्टि या आंगिक सृष्टि अथवा साङ्कल्पिक सृष्टि भी कहलाती है।

इनमें नारदजी प्रजापति ब्रह्माकी गोदसे, दक्ष अँगूठेसे, वसिष्ठ प्राणसे, भृगु त्वचासे, क्रतु हाथसे, पुलह नाभिसे, पुलस्त्य कानोंसे, अङ्गिरा मुखसे, अत्रि नेत्रोंसे और मरीचि मनसे उत्पन्न हुए—

उत्सङ्गान्नारदो जज्ञे दक्षोऽङ्गुष्ठात्स्वयम्भुवः।
प्राणाद्वसिष्ठः सञ्जातो भृगुस्त्वचि करात्क्रतुः॥
पुलहो नाभितो जज्ञे पुलस्त्यः कर्णयोर्ऋषिः।
अङ्गिरा मुखतोऽक्ष्णोऽत्रिर्मरीचिर्मनसोऽभवत्॥
(श्रीमद्भा० ३।१२।२३-२४)

ब्रह्माजीसे प्रादुर्भूत ऋषियोंकी इस सृष्टिको पुराणोंमें ऋषिसर्ग कहा गया है। प्रकारान्तरसे ये ऋषि ब्रह्माजीके ही आत्मरूप—अंशरूप हैं और उन्हींके अवतार हैं। सृष्टिके विस्तार तथा उसके रक्षणमें इन ऋषियोंका महत्त्वपूर्ण योगदान है। प्रत्येक मन्वन्तरमें नामभेदसे ये ही ऋषि सप्तर्षि होकर महाप्रलयमें चराचरके सूक्ष्मतम स्वरूप और वनस्पतियों तथा औषधियोंको बीजरूपमें धारणकर विद्यमान रहते हैं, प्रलयमें भी ये बने रहते हैं और पुनः नयी सृष्टिमें उसका विस्तार करते हैं। इस प्रकारसे सप्तर्षिगण जीवोंपर महान् कृपा करते हैं। कदाचित् ये स्थूल सृष्टिके सत्त्वांश और चैतन्यांशको धारणकर प्रलयकालमें सुरक्षित न रखते तो नवीन सृष्टि पुनः होना कठिन होती। ये ऋषि भगवान्‌के अनन्य भक्त हैं और उन्हींके कृपाप्रसादसे समर्थ होकर जीवोंका कल्याण करते रहते हैं। ये एक रूपसे नक्षत्रलोकमें सप्तर्षिमण्डलमें स्थित रहते हैं और दूसरे रूपमें तीनों लोकोंमें विशेष रूपसे भूलोकमें स्थित रहकर लोगोंको धर्माचरण तथा सदाचारकी शिक्षा देते हैं तथा ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, तप, भगवत्प्रेम, सत्य, परोपकार, क्षमा, अहिंसा आदि सात्त्विक भावोंकी प्रतिष्ठा करते हैं।

प्रति चार युग (सत्य, त्रेता, द्वापर तथा कलि) बीतनेपर वेदविप्लव होता है। इसीलिये सप्तर्षिगण भूतलपर अवतीर्ण होकर वेदका उद्धार करते हैं। सप्तर्षिमण्डल आकाशमें सुप्रसिद्ध ज्योतिर्मण्डलोंमें है। इसके अधिष्ठाता ऋषिगण लोकमें ज्ञान-परम्पराको सुरक्षित रखते हैं। अधिकारी जिज्ञासुको प्रत्यक्ष या परोक्ष, जैसा वह अधिकारी हो, तत्त्वज्ञानकी ओर उन्मुख करके मुक्तिपथमें लगाते हैं। ये सभी ऋषि कल्पान्तचिरजीवी, त्रिकालदर्शी, मुक्तात्मा और दिव्य देहधारी होते हैं। ये स्थितप्रज्ञ तथा अतीन्द्रियद्रष्टा हैं। पुराणोंमें इन्हें ब्रह्मवादी और गृहमेधी कहा गया है (वायुपुराण)। गृहस्थ होते हुए भी ये मुनिवृत्तिसे रहते हैं। ये सत्य, धर्म, ज्ञान, शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, सदाचार एवं अपरिग्रहके मूर्तिमान् स्वरूप और ब्रह्मतेजसे सम्पन्न होते हैं। यज्ञोंद्वारा देवताओंका आप्यायन और नित्य स्वाध्याय इनकी मुख्य चर्या रहती है।

मन्वन्तर और सप्तर्षि

अलग-अलग मन्वन्तरोंमें सप्तर्षि बदल जाते हैं। मनुकाल ही मन्वन्तर कहलाता है। ब्रह्माजीके एक दिन (कल्प)-में चौदह मनु होते हैं। चौदहों मनु तथा मनुपुत्र एक-एक कर समस्त पृथ्वीके राजा होकर धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करते हैं। मनुओंके नामानुसार ही चौदह मन्वन्तरोंके चौदह भिन्न-भिन्न नाम पड़े हैं। इन चौदह मनुओंमें प्रथम मनुका नाम है स्वायम्भुव मनु।

भगवान् विष्णुके नाभिपद्मसे चतुर्मुख ब्रह्माजीने आविर्भूत होकर मैथुनी सृष्टिके सङ्कल्पको लेकर अपने ही शरीरसे स्वायम्भुव मनु तथा महारानी शतरूपाको प्रकट किया। ये आदि मनु ही प्रथम मनु हैं, जिनके नामसे स्वायम्भुव

* यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा। तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्॥ (गीता १०।४१)

मन्वन्तर पड़ा। द्वितीय मनुका नाम स्वारोचिष है। इसी प्रकार क्रमशः औत्तम, तामस, रैवत तथा चाक्षुष—ये छः मनु हुए। वर्तमानमें सातवाँ वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है। इस मन्वन्तरके बाद सात मनु और होंगे, जिनके नाम हैं—सूर्यसावर्णि, दक्षसावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, धर्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, रौच्य तथा भौत्य (मार्कण्डेयपुराण)। कल्पभेदसे मन्वन्तरोंके नामोंमें भी अन्तर मिलता है।

प्रत्येक मन्वन्तरमें सप्तर्षि भिन्न-भिन्न नामरूपोंसे अवतरित होते हैं। पुराणोंमें इस बातका विस्तारसे वर्णन है। यहाँ विष्णुपुराणके अनुसार चौदह मन्वन्तरोंके सप्तर्षियोंका पृथक्-पृथक् नाम दिया जा रहा है—

प्रथम स्वायम्भुव मन्वन्तरमें—मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ।

द्वितीय स्वारोचिष मन्वन्तरमें—ऊर्ज्ज, स्तम्भ, वात, प्राण, पृषभ, निरय और परीवान्।

तृतीय उत्तम मन्वन्तरमें—महर्षि वसिष्ठके सातों पुत्र।

चतुर्थ तामस मन्वन्तरमें—ज्योतिर्धामा, पृथु, काव्य, चैत्र, अग्नि, वनक और पीवर।

पञ्चम रैवत मन्वन्तरमें—हिरण्यरोमा, वेदश्री, ऊर्ध्वबाहु, वेदबाहु, सुधामा, पर्जन्य और महामुनि।

षष्ठ चाक्षुष मन्वन्तरमें—सुमेधा, विरजा, हविष्मान्, उत्तम, मधु, अतिनामा और सहिष्णु।

वर्तमान सप्तम वैवस्वत मन्वन्तरमें—काश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और भरद्वाज।

अष्टम सावर्णिक मन्वन्तरमें—गालव, दीप्तिमान्, राम, अश्वत्थामा, कृप, ऋष्यशृङ्ग और व्यास।

नवम दक्षसावर्णि मन्वन्तरमें—मेधातिथि, वसु, सत्य, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, सवन और भव्य।

दशम ब्रह्मसावर्णि मन्वन्तरमें—तपोमूर्ति, हविष्मान्, सुकृत, सत्य, नाभाग, अप्रतिमौजा और सत्यकेतु।

एकादश धर्मसावर्णि मन्वन्तरमें—वपुष्मान्, घृणि, आरुणि, निःस्वर, हविष्मान्, अनघ और अग्नितेजा।

द्वादश रुद्रसावर्णि मन्वन्तरमें—तपोद्युति, तपस्वी, सुतपा, तपोमूर्ति, तपोधन, तपोरति और तपोधृति।

त्रयोदश देवसावर्णि मन्वन्तरमें—धृतिमान्, अव्यय, तत्त्वदर्शी, निरुत्सुक, निर्मोह, सुतपा और निष्प्रकम्प।

चतुर्दश इन्द्रसावर्णि मन्वन्तरमें—अग्निध्र, अग्निबाहु, शुचि, युक्त, मागध, शुक्र और जित।

इस प्रकार चौदह मन्वन्तरोंमें सप्तर्षियोंका परिगणन पृथक्-पृथक् नाम-रूपोंमें हुआ है। इन ऋषियोंकी अपार महिमा है, ये सभी तपोधन हैं।

ऋषियोंने वेदमन्त्रोंका दर्शन किया है, इसीलिये '**ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः**' कहा गया है। ऋषि कौन हैं? इसकी व्याख्यामें बताया गया है कि ऋषि वेदमन्त्रोंके द्रष्टा और स्मर्ता हैं। इसीलिये वेदोंको अपौरुषेय कहा गया है।

'**ऋषिर्दर्शनात् स्तोमान् ददर्श**' (निरुक्त नैगमकाण्ड २।११) आदि कहा गया है। यह भी वैदिक सिद्धान्त है कि वेदका अध्ययन ऋषि, छन्द, देवता और विनियोगके अधिष्ठानके साथ करना चाहिये। आचार्य शौनक कहते हैं—

'**एतान्यविदित्वा योऽधीतेऽनुब्रूते जपति जुहोति यजते याजयते तस्य ब्रह्म निर्वीर्यं यातयामं भवति**…।'

(अनुक्रमणी १।१)

अर्थात् जो मनुष्य ऋषि, छन्द, देवता और विनियोगको जाने बिना वेदका अध्ययन, अध्यापन, जप, हवन, यजन, याजन आदि करते हैं; उनका वेदाध्ययन निष्फल तथा दोषयुक्त होता है।

इस प्रकार ऋषियोंके स्मरणकी विशेष महिमा है। प्रातःकाल जगनेके अनन्तर ऋषियोंके नाम-स्मरणपूर्वक उनसे मङ्गलकी कामना की जाती है—

भृगुर्वसिष्ठः क्रतुरङ्गिराश्च
मनुः पुलस्त्यः पुलहश्च गौतमः।
रैभ्यो मरीचिश्च्यवनश्च दक्षः
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥

(वामनपुराण)

वेदोंमें तो सप्तर्षियोंकी महिमाका बार-बार प्रख्यापन हुआ है। वहाँ सात संख्याका परिगणन ऋषियोंके एक विशेष

वर्गके लिये हुआ है। ब्रह्मर्षि, देवर्षि, महर्षि, परमर्षि, काण्डर्षि, श्रुतर्षि तथा राजर्षि—इन सात रूपोंमें भी ऋषियोंका विभाजन है। जैसे ४९ मरुद् देवताओंका सात-सातका वर्ग है, वैसे ही ऋषियोंमें भी सात ऋषियोंके वर्ग हैं, जो सप्तर्षि कहलाते हैं। सातकी संख्याकी विशेष महिमा है। इस ब्रह्माण्डमें सात लोक ऊपर और सात लोक नीचे हैं, सात ही सागर हैं, वेदके गायत्री, उष्णिक् आदि सात छन्द ही मुख्य हैं, भगवान् सूर्य सप्ताश्ववाहन कहे जाते हैं। यजुर्वेदके एक मन्त्रमें सातकी संख्याका विशेष परिज्ञान कराया गया है—

सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वाः सप्त ऋषयः सप्त धाम प्रियाणि। सप्त होत्राः सप्तधा त्वा यजन्ति सप्त योनीरा पृणस्व घृतेन स्वाहा॥ (यजु० १७।७९)

उपनिषद्के एक मन्त्रमें भी सातकी संख्याका अवबोधन कराया गया है—

सप्त प्राणाः प्रभवन्ति तस्मात्
सप्तार्चिषः समिधः सप्त होमाः।
सप्त इमे लोका येषु चरन्ति प्राणा
गुहाशया निहिताः सप्त सप्त॥

(मुण्डकोपनिषद् २।१।८)

यज्ञमें छन्दोमय सात परिधियाँ तथा सात-सातकी संख्यामें समिधाएँ बतायी गयी हैं। '**सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः**' (यजु० ३१।१५)। सप्तशती तथा सप्ताह आदिमें भी सप्त पद निहित है।

प्रातःस्मरणके एक माङ्गलिक श्लोकमें सप्तर्षियों तथा सात-सातकी संख्यावाले पदार्थोंसे प्रभातको सुप्रभात बनानेकी प्रार्थना की गयी है—

सप्त स्वराः सप्त रसातलानि
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥
सप्तार्णवाः सप्त कुलाचलाश्च
सप्तर्षयो द्वीपवनानि सप्त।
भूरादिकृत्वा भुवनानि सप्त
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥

(वामनपुराण)

अर्थात् षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत तथा निषाद—ये सप्त स्वर; अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल तथा पाताल—ये सात अधोलोक सभी मेरे प्रातःकालको मङ्गलमय करें। सातों समुद्र, सातों कुलपर्वत, सप्तर्षिगण, सातों वन तथा सातों द्वीप; भूर्लोक, भुवर्लोक आदि सातों लोक— सभी मेरे प्रातःकालको मङ्गलमय करें।

इसी आशयसे ऋषियोंकी सातकी संख्याको लेकर एक विशेष वर्ग है, जो सप्तर्षि कहलाता है।

सप्तर्षियोंकी आराधना—वेदके अनेक मन्त्रोंमे सप्तर्षियोंकी प्रार्थना की गयी है। तर्पणमें नित्य ऋषितर्पण होता है तथा श्रावणीके दिन ऋषियोंका तर्पण तथा विशेष पूजन होता है। वेदमें प्राप्त सप्तर्षियोंकी प्रार्थनाके मुख्य मन्त्रका भाव यह है कि सप्तर्षिगण सूक्ष्मरूपसे इस देहमें भी विद्यमान रहकर देवरूप होकर इसका संचालन करते हैं। ये सात ऋषि प्राण, त्वचा, चक्षु, श्रवण, रसना, घ्राण तथा मन-रूपसे देहमें स्थित रहते हैं और सुषुप्तिकालमें देहमें व्याप्त रहते हुए भी हृदयाकाशस्थित विज्ञानात्मक ब्रह्ममें प्रविष्ट हो जाते हैं—

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्। सप्तापः स्वपतो लोकमीयुस्तत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ॥

(यजु० ३४।५५)

इसके साथ ही यजुर्वेद (१३।५४—५८)-में सप्तर्षियोंके पूजनके मन्त्र आये हैं। भाद्रपद शुक्ल पञ्चमी ऋषिपञ्चमीके नामसे विख्यात है, इस दिन इनकी विशेष पूजा-आराधना की जाती है तथा सातों ऋषियोंकी पृथक्-पृथक् यथाशक्ति स्वर्णादिकी प्रतिमा बनाकर प्रतिष्ठाकर उनकी पूजा की जाती है।

'**अरुन्धतीसहितसप्तर्षिभ्यो नमः**' इस नाममन्त्रसे भी एक साथ पूजन किया जा सकता है। इनके ध्यानमें बताया गया है कि ये ऋषिश्रेष्ठ ब्रह्मतेज और करोड़ों सूर्योंकी आभासे सम्पन्न हैं—

कश्यपोऽत्रिर्भरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ गौतमः।
जमदग्निर्वसिष्ठश्च अरुन्धत्या सहाष्टकाः॥
मूर्तिं ब्रह्मण्यदेवर्षेर्ब्रह्मण्यं तेज उत्तमम्।
सूर्यकोटिप्रतीकाशमृषिवृन्दं विचिन्तयेत्॥

(वर्षकृत्यदीपक)

कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि

तथा वसिष्ठ—ये वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तरके सप्तर्षि हैं। महर्षि वसिष्ठजीके साथ उनकी धर्मप्राणा देवी अरुन्धती भी साथमें ही सप्तर्षिमण्डलमें स्थित रहती हैं। महाभागा अरुन्धतीके पातिव्रत्यकी अपार महिमा है, इसी बलपर ये सदा वसिष्ठजीके साथ रहती हैं। सप्तर्षियोंके साथ देवी अरुन्धतीजीका भी पूजन होता है। अखण्ड सौभाग्य तथा श्रेष्ठ दाम्पत्यके लिये इनकी आराधना होती है।

आकाशमें सप्तर्षिमण्डल कहाँ स्थित है—इस विषयमें श्रीमद्भागवत (५।२२।१७)-में बताया गया है कि नवग्रहोंके लोकोंसे ऊपर ग्यारह लाख योजनकी दूरीपर कश्यप आदि सप्तर्षि दिखायी देते हैं। ये सब लोकोंकी मङ्गलकामना करते हुए भगवान् विष्णुके परम पद ध्रुवलोककी प्रदक्षिणा किया करते हैं—'**तत उत्तरस्मादृषय एकादशलक्षयोजनान्तर उपलभ्यन्ते य एव लोकानां शमनुभावयन्तो भगवतो विष्णोर्यत्परमं पदं प्रदक्षिणं प्रक्रमन्ति॥**'

आकाशमें सप्तर्षिमण्डलके उत्तरमें ध्रुवलोक स्थित है। इस प्रकार सप्तर्षिमण्डलमें स्थित रहकर ये सप्तर्षिगण जीवोंके शुभाशुभ कर्मोंके साक्षी बनते हैं और भगवान्की अवतरणलीलामें सहयोगी बनते हैं। भगवान् श्रीराम आदिकी लीलामें महर्षि वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम तथा अत्रि आदि ऋषि सहयोगी रहे हैं। ऐसे ही अन्य अवतारोंमें भी ऋषिगण भगवान्की भक्ति करते हैं और उन्हींके कृपाप्रसादसे जगत्के कल्याणकार्यमें सतत चेष्टारत रहते हैं। भगवान्के लीलासंवरणके अनन्तर भी ये उनके द्वारा प्रतिपादित धर्मकी मर्यादाको सुरक्षित रखनेके लिये कल्पपर्यन्त बने रहते हैं और पुन: अवतरित होते हैं।

~~ ० ~~

भगवती संध्याका माता अरुन्धतीके रूपमें अवतरण

संध्या ब्रह्माजीकी मानस पुत्री थी। वह तपस्या करनेके लिये चन्द्रभाग पर्वतके बृहल्लोहित नामक सरोवरके पास घूम रही थी और इस बातके लिये बड़ी उत्सुक थी कि कोई संत सद्गुरु प्राप्त हो एवं मुझे तपस्याका मार्ग बतावे। भगवान्के प्यारे भक्त सर्वदा लोगोंके हितसाधनमें तत्पर रहते हुए इस बातकी प्रतीक्षा किया करते हैं कि कोई सच्चा जिज्ञासु मिले और उसे कल्याणकी ओर अग्रसर करें। संध्याकी जिज्ञासा देखकर महर्षि वसिष्ठ वहीं प्रकट हुए और संध्यासे पूछा—'कल्याणी! तुम इस घोर जङ्गलमें कैसे विचर रही हो, तुम किसकी कन्या हो और क्या करना चाहती हो? यदि कोई गोपनीय बात न हो तो यह भी बताओ कि तुम्हारा यह सुन्दर मुखमण्डल उदास क्यों हो रहा है?' संध्या उनके चरणोंमें नमस्कार करके उन मूर्तिमान् ब्रह्मचर्य महर्षि वसिष्ठसे बड़ी नम्रताके साथ कहने लगी—'भगवन्! मैं तपस्या करनेके लिये इस सूने जङ्गलमें आयी हूँ। अबतक मैं बहुत उद्विग्न हो रही थी कि कैसे तपस्या करूँ, मुझे तपस्याका मार्ग मालूम नहीं है, परंतु अब आपको देखकर मुझे बड़ी शान्ति मिली है और मेरी अभिलाषा पूर्ण हो जायगी।' सर्वज्ञ वसिष्ठने उसकी बात सुनकर उसके मनके सारे भाव जान लिये और कुछ नहीं पूछा। फिर जैसे एक कारुणिक गुरु अपने शिष्यको उपदेश करता है, वैसे ही बड़े स्नेहसे बोले—'कल्याणी! तुम एकमात्र परम ज्योतिस्वरूप, धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षके दाता भगवान् विष्णुकी आराधना करके ही अपना अभीष्ट प्राप्त कर सकती हो। सूर्यमण्डलमें शंख-चक्र-गदाधारी चतुर्भुज वनमाली भगवान् विष्णुका ध्यान करके '**ॐ नमो वासुदेवाय ॐ**' इस मन्त्रका जप करो और मौन रहकर तपस्या करो। स्नान, पूजा और सब कुछ मौन होकर ही करो। पहले छ: दिनतक कुछ भी भोजन मत करना, केवल तीसरे दिन रात्रिमें एवं छठे दिन रात्रिमें कुछ पत्ते खाकर जल पी लेना। उसके पश्चात् तीन दिनतक निर्जल उपवास करना और फिर रात्रिमें भी पानी मत पीना। इस तरह तपस्या समाप्त होनेपर हर तीसरे दिन रात्रिमें कुछ भोजन कर सकती हो। वृक्षोंका वल्कल पहनना और जमीनपर सोना। इस प्रकार तपस्या करती हुई भगवान्का चिन्तन करो। भगवान् तुमपर प्रसन्न होंगे और शीघ्र ही तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करेंगे।' इस प्रकार उपदेश करके महर्षि

वसिष्ठ अन्तर्धान हो गये और वह भी तपस्याकी पद्धति जानकर बड़े आनन्दके साथ भगवान्की पूजा करने लगी। इस प्रकार बराबर चार युगतक उसकी तपस्या चलती रही। उसके व्रतको देखकर सभी आश्चर्यचकित और विस्मित थे।

अब भगवान् विष्णु भी उसकी भावनाके अनुसार

रूप धारण करके उसके समक्ष प्रकट हुए। गरुडपर सवार अपने प्रभुकी मनोहर छविको देखकर वह सम्भ्रमके साथ उठ खड़ी हुई और 'क्या कहूँ? क्या करूँ?' इस चिन्तामें पड़ गयी। उसकी स्तुति करनेकी इच्छा जानकर भगवान्ने उसे दिव्य ज्ञान, दिव्य दृष्टि एवं दिव्य वाणी प्रदान की। अब वह भगवान्की स्तुति करने लगी। बड़े प्रेमसे ज्ञानपूर्ण स्तुति करते-करते वह भगवान्के चरणोंपर गिर पड़ी। उसके तप:कृश शरीरको देखकर भगवान्को बड़ी दया आयी और उन्होंने अमृतवर्षिणी दृष्टिसे उसे हृष्ट-पुष्ट कर दिया तथा वर माँगनेको कहा। संध्याने कहा 'भगवन्! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो कृपा करके पहला वर तो यह दें कि संसारमें पैदा होते ही किसी प्राणीके मनमें कामके विकारका उदय न हो और दूसरा वर यह दीजिये कि मेरा पातिव्रत्य अखण्ड रहे तथा तीसरा यह कि मेरे भगवत्स्वरूप पतिके अतिरिक्त और कहीं भी मेरी सकाम दृष्टि न हो। जो पुरुष मुझे सकाम दृष्टिसे देखे, वह पुरुषत्वहीन अर्थात् नपुंसक हो जाय।' भगवान्ने कहा—चार अवस्थाएँ होती हैं—बाल्य, कौमार, यौवन और बुढ़ापा। इनमें तीसरी अवस्था अथवा दूसरी अवस्थाके अन्तमें लोगोंमें काम उत्पन्न होगा। तुम्हारी तपस्याके प्रभावसे आज मैंने यह मर्यादा बना दी कि पैदा होते ही कोई प्राणी कामयुक्त नहीं होगा। त्रिलोकीमें तुम्हारे सतीत्वकी ख्याति होगी और तुम्हारे पतिके अतिरिक्त जो भी तुम्हें सकाम दृष्टिसे देखेगा वह तुरंत नपुंसक हो जायगा। तुम्हारे पति बड़े भाग्यवान्, तपस्वी, सुन्दर और तुम्हारे साथ ही सात कल्पतक जीवित रहनेवाले होंगे। तुमने मुझसे जो वर माँगे थे, वे दे दिये। अब जो तुम्हारे मनमें बात है वह बताता हूँ। तुमने पहले आगमें जलकर शरीर त्याग करनेकी प्रतिज्ञा की थी सो यहीं चन्द्रभागा नदीके किनारे महर्षि मेधातिथि बारह वर्षका यज्ञ कर रहे हैं, उसीमें जाकर शीघ्र ही अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो, वहाँ ऐसे वेशसे जाओ कि मुनिलोग तुम्हें देख न सकें। मेरी कृपासे तुम अग्निदेवकी पुत्री हो जाओगी। जिसे तुम पति बनाना चाहती हो, मनसे उसका चिन्तन करते-करते अपना शरीर त्याग करो।' यह कहकर भगवान्ने अपने करकमलोंसे संध्याके शरीरका स्पर्श किया और तुरंत ही उसका शरीर पुरोडाश (यज्ञका हविष्य) बन गया। उन महामुनिके सकल विश्वहितकारी यज्ञमें अग्नि मांसभोजी न हो जाय, इसलिये प्रभुने ऐसा किया। इसके बाद सन्ध्या भी अदृश्य होकर उस यज्ञमण्डपमें गयी। भगवान्की कृपासे उस समय उसने अपने मनमें मूर्तिमान् ब्रह्मचर्य और तपश्चर्याके उपदेशक वसिष्ठको पतिके रूपमें वरण किया और उन्हींका चिन्तन करते-करते अपने पुरोडाशमय शरीरको पुरोडाशके रूपमें अग्निदेवको समर्पित कर दिया। अग्निदेवने भगवान्की आज्ञासे उसके शरीरको जलाकर सूर्यमण्डलमें प्रविष्ट कर दिया। सूर्यने उसके शरीरके दो भाग करके अपने रथपर देवता और पितरोंकी प्रसन्नताके लिये स्थापित

कर लिया। उसके शरीरका ऊपरी भाग जो दिनका प्रारम्भ यानी प्रात:काल है, उसका नाम 'प्रात:संध्या' और शेषभाग दिनका अन्त 'सायंसंध्या' हुआ। भगवान्‌ने उसके प्राणको दिव्य शरीर और अन्त:करणको शरीरी बनाकर मेधातिथिके यज्ञीय अग्निमें स्थापित कर दिया। इसके पश्चात् मेधातिथिने यज्ञके अन्तमें उस स्वर्णके

समान सुन्दरी संध्याको पुत्रीके रूपमें प्राप्त किया। उस समय यज्ञीय अर्घ्यजलमें स्नान कराकर वात्सल्य स्नेहसे परिपूर्ण और आनन्दित होकर उसे गोदमें उठा लिया और उसका नाम अरुन्धती रखा। किसी भी कारणसे वह धर्मका रोध नहीं करती थी, इसीसे उसका 'अरुन्धती' नाम सार्थक हुआ। यज्ञ समाप्त होनेके बाद कृतकृत्य होकर मेधातिथि अपने शिष्योंके साथ अपने आश्रमपर रहते हुए आनन्दित होकर अपनी कन्या अरुन्धतीका लालन-पालन करने लगे।

अब कुमारी अरुन्धती मेधातिथिके चन्द्रभागानदीके तटपर स्थित तापसारण्य नामक आश्रममें शुक्लपक्षकी चन्द्रकलाकी भाँति दिनोंदिन बढ़ने लगी। पाँचवें वर्षमें पदार्पण करनेपर ही उसके सद्‌गुणोंसे सम्पूर्ण तापसारण्य पवित्र हो गया। आज भी लोग उस अरुन्धतीके क्रीड़ाक्षेत्र तापसारण्य और चन्द्रभागाके जलमें जा आकर स्नान करते हैं और विष्णुपदलाभ करते हैं, उनकी सांसारिक अभिलाषाएँ भी पूर्ण होती हैं।

एक दिन जब अरुन्धती चन्द्रभागाके जलमें स्नान करके अपने पिता मेधातिथिके पास ही खेल रही थी, स्वयं ब्रह्माजी पधारे और उसके पितासे कहा, 'अब अरुन्धतीको शिक्षा देनेका समय आ गया है, इसलिये इसे अब सती-साध्वी स्त्रियोंके पास रखकर शिक्षा दिलानी चाहिये; क्योंकि कन्याकी शिक्षा पुरुषोंद्वारा नहीं होनी चाहिये। स्त्री ही स्त्रियोंको शिक्षा दे सकती है; किंतु तुम्हारे पास तो कोई स्त्री नहीं है, अतएव तुम अपनी कन्याको बहुला और सावित्रीके पास रख दो। तुम्हारी कन्या उनके पास रहकर शीघ्र ही महागुणवती हो जायगी।' मेधातिथिने उनकी आज्ञा शिरोधार्य की और उनके जानेपर वे अरुन्धतीको लेकर सूर्यलोकमें गये। वहाँ उन्होंने सूर्यमण्डलमें स्थित पद्मासनासीन सावित्री देवीका दर्शन किया। उस समय बहुला मानस-पर्वतपर जा रही थीं, इसलिये सावित्री देवी भी सूर्यमण्डलसे निकलकर वहींके लिये चल पड़ीं। बात यह थी कि प्रतिदिन वहाँ सावित्री, गायत्री, बहुला, सरस्वती एवं द्रुपदा एकत्रित होकर धर्मचर्चा करती थीं और लोक-कल्याणकी कामना किया करती थीं। महर्षि मेधातिथिने उन माताओंको पृथक्-पृथक् प्रणाम किया और सबको सम्बोधन करके कहा कि 'यह मेरी यशस्विनी कन्या है। यही इसके उपदेशका समय है। इसीसे मैं इसे लेकर यहाँ आया हूँ। ब्रह्माने ऐसी ही आज्ञा की है। अब यह आपके पास ही रहेगी। माता सावित्री और बहुला आप दोनों इसे ऐसी शिक्षा दें कि यह सच्चरित्र हो।' उन दोनोंने कहा—'महर्षे! भगवान् विष्णुकी कृपासे तुम्हारी कन्या पहलेसे ही सच्चरित्र हो चुकी है; किंतु ब्रह्माकी आज्ञाके कारण हम इसे अपने पास रख लेती हैं। यह शिक्षा प्राप्त करे। यह पूर्वजन्ममें ब्रह्माकी कन्या थी। तुम्हारे तपोबलसे और भगवान्‌की कृपासे यह तुम्हारी पुत्री हुई है। यह सती न केवल तुम्हारा या तुम्हारे कुलका बल्कि सारे संसारका कल्याण करेगी।'

मेधातिथि वहाँसे विदा हुए और अरुन्धती उनकी सेवा करने लगी। उन जगन्माताओंकी सेवामें रहकर अरुन्धतीका समय बड़े आनन्दसे बीतने लगा। अरुन्धती कभी सावित्रीके साथ सूर्यके घर जाती तो कभी बहुलाके साथ इन्द्रके घर जाती। इस प्रकार सात वर्ष और बीत गये और स्त्रीधर्मकी शिक्षा प्राप्त करके वह अपनी शिक्षिका सावित्री और बहुलासे भी श्रेष्ठ हो गयी। एक दिन मानसपर्वतपर विचरण करते-करते अरुन्धतीने मूर्तिमान् ब्रह्मचर्य महर्षि वसिष्ठको देखा। इन्हें देखते ही उसका मन क्षुब्ध हो गया और वह कामके विकारसे काँप उठी। किसी प्रकार धैर्य धारण करके पश्चात्ताप करती हुई वह बहुला और सावित्रीके निकट उपस्थित हुई। अरुन्धतीको उदास देखकर सावित्रीने ध्यानयोगसे सारी बात जान ली और उसके मस्तकपर हाथ रखकर वात्सल्यपूर्ण शब्दोंमें पूछा। उनका प्रश्न सुनकर अरुन्धती संकोचके मारे जमीनमें गड़ गयी, उससे बोला नहीं गया। अन्ततः सावित्रीने स्वयं सारी बात कहकर समझाया कि 'वे परम तेजस्वी ऋषि कोई दूसरे नहीं हैं, वे तुम्हारे भावी पति हैं और यह पहलेसे ही निश्चित हो चुका है। उनके दर्शनके कारण क्षोभ होनेसे तुम्हारा सतीत्व नष्ट नहीं हुआ। तुमने उन्हें पतिके रूपमें पूर्वजन्ममें ही वरण कर लिया है और वे भी तुमसे प्रेम करते हैं, तुम्हें हृदयसे चाहते हैं।'

इसके बाद सावित्रीने अरुन्धतीको उसके पूर्वजन्मकी कथा कह सुनायी, जिससे अरुन्धतीको बड़ा सन्तोष मिला और उसे पूर्वजन्मकी बातें याद आ गयीं। इसके बाद सावित्री ब्रह्माके पास गयीं और उनसे सब बातें कहकर अरुन्धतीके विवाहके लिये यही उपयुक्त समय बतलाया। ब्रह्मा भी निश्चय करके मानसपर्वतपर आ गये और शंकर तथा विष्णुको भी वहीं प्रार्थना करके बुलाया। मेधातिथिको बुलानेके लिये नारदको भेजा और नारदजी जाकर उनको बुला लाये। ब्रह्मा आदिके कहनेपर मेधातिथिने उनके साथ ही अपनी कन्याको लेकर मानसपर्वतके लिये प्रस्थान किया और जाकर देखा कि महर्षि वसिष्ठ मानसपर्वतकी कन्दरामें समाधि लगाये बैठे हैं और उनके मुखमण्डलसे सूर्यकी भाँति प्रकाशकी किरणें निकल रही हैं। उनकी समाधि टूटनेपर अपनी कन्याको आगे करके मेधातिथिने निवेदन किया— 'भगवन्! यह मेरी ब्रह्मचारिणी पुत्री है, आप इसे ब्राह्म विधिसे स्वीकार करें। आप जहाँ-जहाँ, चाहे जिस रूपमें रहेंगे, यह आपकी सेवा करेगी और छायाकी भाँति पीछे-पीछे चलेगी।' मेधातिथिकी प्रार्थना सुनकर तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवताओंको आये हुए देखकर और तपस्याके बलसे भावी बातको जानकर महर्षि वसिष्ठने स्वीकार कर लिया। अरुन्धतीकी आँखें उनके चरणोंमें लग गयीं। अब ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र एवं इन्द्रादि देवताओंने विवाहोत्सव सम्पन्न किया। उनके वल्कल आदिके वस्त्र, मृगचर्म और जटाको खोलकर बड़े सुन्दर-सुन्दर बहुमूल्य वस्त्राभूषण पहनाये। विधिपूर्वक स्वर्णकलशके जलसे अभिषेक-स्नान कराया, वैदिक मन्त्रोंका पाठ हुआ। ब्रह्माने सूर्यके समान प्रकाशमान्, त्रिलोकीमें बिना रुकावटके उड़नेवाला बड़ा सुन्दर विमान दिया। विष्णुने सबसे ऊँचा स्थान दिया और रुद्रने सात कल्पतककी आयु दी। अदितिने ब्रह्माके बनाये हुए अपने दोनों कानोंके कुण्डल उतारकर दे दिये। सावित्रीने पातिव्रत्य, बहुलाने बहुपुत्रत्व, देवेन्द्रने बहुत-से रत्न और कुबेरने समता दी। इसी प्रकार सभी ऋषि-मुनियोंने अपनी ओरसे उपहार दिये।

विवाहके अवसरपर ब्रह्मा, विष्णु आदिके द्वारा स्नान कराते समय जो जलधाराएँ गिरी थीं, वे ही गोमती, सरयू, शिप्रा, महानदी आदि सात नदियोंके रूपमें हो गयीं, जिनके दर्शन, स्पर्श, स्नान और पानसे सारे संसारका कल्याण होता है। विवाहके पश्चात् वसिष्ठजी महाराज अपनी धर्मपत्नीके साथ विमानपर सवार होकर देवताओंके बतलाये हुए स्थानपर चले गये। वे जब-जहाँ-जिस रूपमें रहकर तपस्या करते हुए संसारके कल्याणमें संलग्न रहते हैं, तब-वहाँ-उन्हींके अनुरूप वेशमें रहकर अरुन्धती उनकी सेवा किया करती हैं। आज भी सप्तर्षिमण्डलमें स्थित वसिष्ठके पास ही वे दीखती हैं।

विष्णुके अंशावतार श्रीभरतजी

भरत सरिस को राम सनेही। जगु जप राम रामु जप जेही॥

श्रीभरतजी श्रीरामके ही स्वरूप हैं। वे व्यूहावतार माने जाते हैं और उनका वर्ण ऐसा है कि—

भरतु रामही की अनुहारी। सहसा लखि न सकहिं नर नारी॥

विश्वका भरण-पोषण करनेवाले होनेसे ही उनका नाम 'भरत' पड़ा। धर्मके आधारपर ही सृष्टि है। धर्म ही धराको धारण करता है। धर्म है, इसलिये संसार चल रहा है। संसारकी तो बात जाने दीजिये, यदि एक गाँवमेंसे पूरा-पूरा धर्म चला जाय, वहाँ कोई धर्मात्मा किसी रूपमें न रहे तो उस गाँवका तत्काल नाश हो जायगा। भरतजीने धर्मके उसी धुरे—आदर्शको धारण किया।

जौं न होत जग जनम भरत को। सकल धरम धुर धरनि धरत को॥

जन्मसे ही भरतलाल श्रीरामके प्रेमकी मूर्ति थे। वे सदा श्रीरामके सुख और उनकी प्रसन्नतामें ही प्रसन्न रहते थे। मैं-पनका भान उनमें कभी आया ही नहीं। उन्होंने स्वयं कहा है—

महूँ सनेह सकोच बस सनमुख कही न बैन।
दरसन तृपित न आजु लगि पेम पिआसे नैन॥

बड़ा ही संकोची स्वभाव था भरतलालका। अपने बड़े भाईके सामने वे संकोचकी ही मूर्ति बने रहते थे। ऐसे संकोची, ऐसे अनुरागी, ऐसे भ्रातृभक्त भावमयको जब पता लगा कि माता कैकेयीने उन्हें राज्य देनेके लिये श्रीरामको वनवास दिया है, तब उनकी व्यथाका पार नहीं रहा। कैकेयीको उन्होंने बड़े कठोर वचन कहे, परंतु ऐसी अवस्थामें भी वे दयानिधि किसीका कष्ट नहीं सह पाते थे। जिस मन्थराने यह सब उत्पात किया था, उसीको जब शत्रुघ्नलाल दण्ड देने लगे, तब भरतजीने छुड़ा दिया! धैर्यके साथ पिताका और्ध्वदैहिक कृत्य करके भरतजी श्रीरामको वनसे लौटानेके लिये चले। उन्होंने राज्यकी रक्षाका प्रबन्ध कर दिया था। अयोध्याका जो साम्राज्य देवताओंको भी लुभाता था, उस राज्यको, उस सम्पत्तिको भरतने तृणसे भी तुच्छ मानकर छोड़ दिया! वे बार-बार यह सोचते थे—'श्रीराम, माता जानकी और लक्ष्मण अपने सुकुमार चरणोंसे वनके कठोर मार्गमें भटकते होंगे।' यही व्यथा उन्हें व्याकुल किये थी। वे भरद्वाजसे कहते हैं—

राम लखन सिय बिनु पग पनहीं। करि मुनि बेष फिरहिं बन बनहीं॥
अजिन बसन फल असन महि सयन डासि कुस पात।
बसि तरु तर नित सहत हिम आतप बरषा बात॥
एहि दुख दाहँ दहइ दिन छाती। भूख न बासर नीद न राती॥

वे स्वयं मार्गमें उपवास करते, कंद-मूल खाते और भूमिपर शयन करते थे। साथमें रथ, अश्व, गज चल रहे थे; किंतु भरतलाल पैदल चलते थे। उनके लाल-लाल कोमल चरणोंमें फफोले पड़ गये थे; किंतु उन्होंने सवारी अस्वीकार कर दी। उन्होंने सेवकोंसे कह दिया—

रामु पयादेहि पायँ सिधाए। हम कहँ रथ गज बाजि बनाए॥
सिर भर जाउँ उचित अस मोरा। सब तें सेवक धरमु कठोरा॥

भरतका प्रेम, भरतका भाव, भरतकी विह्वलताका वर्णन तो श्रीरामचरितमानसके अयोध्याकाण्डमें ही देखने योग्य है। ऐसा अलौकिक अनुराग कि जिसे देखकर पत्थरतक पिघलने लगे! कोई 'श्रीराम' कह दे, कहीं श्रीरामके स्मृति-चिह्न मिलें, किसीसे सुन पड़े श्रीरामका समाचार, वहीं, उसीसे भरत विह्वल होकर लिपट पड़ते हैं! सबसे उन्हें अविचल रामचरणानुराग ही माँगना है। चित्रकूट पहुँचकर वे अपने प्रभुके जब चरणचिह्न देखते हैं, तो—

हरषहिं निरखि राम पद अंका। मानहुँ पारसु पायउ रंका॥
रज सिर धरि हियँ नयनन्हि लावहिं। रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं॥

महर्षि भरद्वाजने ठीक ही कहा था—

तुम्ह तौ भरत मोर मत एहू।

चित्रकूटमें श्रीरामजी मिलते हैं। अयोध्याके समाजके पीछे ही महाराज जनक भी वहाँ पहुँच जाते हैं। महर्षि वसिष्ठ तथा विश्वामित्रजी और महाराज जनकतक कुछ कह नहीं पाते। सब लोग परिस्थितिकी विषमता देखकर थकित हो जाते हैं। सारी मन्त्रणाएँ होती हैं और अनिर्णीत रह जाती हैं। केवल जनकजी ठीक स्थिति जानते हैं। वे भरतको पहचानते हैं। एकान्तमें रानी सुनयनासे उन्होंने कहा—

परमारथ स्वारथ सुख सारे। भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे॥
साधन सिद्धि राम पग नेहू। मोहि लखि परत भरत मत एहू॥

भोरेहुँ भरत न पेलिहहिं मनसहुँ राम रजाइ।

श्रीराम क्या आज्ञा दें? वे भक्तवत्सल हैं। भरतपर उनका असीम स्नेह है। वे भरतके लिये सब कुछ त्याग सकते हैं। उन्होंने स्पष्ट कह दिया—

मनु प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करौं सोइ आजु।

परंतु धन्य हैं भरतलाल! धन्य है उनका अनुराग! आराध्यको जो प्रिय हो, जिसमें श्रीरामकी प्रसन्नता हो, जो करनेसे श्रीरघुनाथको संकोच न हो, वही उन्हें प्रिय है। उन्हें चाहे जितना कष्ट सहना पड़े; किंतु श्रीरामको तनिक भी संकोच नहीं होना चाहिये। उनका अविचल निश्चय है—

जो सेवकु साहिबहि सँकोची। निज हित चहइ तासु मति पोची॥

अतएव श्रीरामकी प्रसन्नताके लिये उनकी चरणपादुका लेकर भरत अयोध्या लौट आये। राजसिंहासनपर पादुकाएँ पधरायी गयीं। राम वनमें रहें और भरत राजसदनके सुख भोगें—यह सम्भव नहीं था। अयोध्यासे बाहर नन्दिग्राममें भूमिमें गड्ढा खोदकर कुशका आसन बिछाया उन्होंने। चौदह वर्षतक वे महातापस बिना लेटे; बैठे रहे। गोमूत्रयावक-व्रत ले रखा था उन्होंने। गायको जौ खिला देनेपर वह जौ गोबरमें निकलता है, उसीको गोमूत्रमें पकाकर वे ग्रहण करते थे। चौदह वर्ष उनकी अवस्था कैसी रही, यह गोस्वामी तुलसीदासजी बतलाते हैं—

पुलक गात हियँ सिय रघुबीरू। जीह नामु जप लोचन नीरू॥

भरतजीने इसी प्रकार अवधिके वे वर्ष बिताये। उनका दृढ़ निश्चय था—

बीतें अवधि रहहिं जौं प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना॥

श्रीराम भी इसे भलीभाँति जानते थे। उन्होंने भी विभीषणसे कहा—

बीतें अवधि जाउँ जौं जिअत न पावउँ बीर।

इसीलिये श्रीरघुनाथजीने हनुमान्‌जीको पहले ही भरतके पास भेज दिया था। जब पुष्पकसे श्रीराघवेन्द्र आये, उन्होंने तपस्यासे कृश हुए, जटा बढ़ाये अपने भाईको देखा। उन्होंने देखा कि भरतजी उनकी चरणपादुकाएँ मस्तकपर रखे चले आ रहे हैं। प्रेमविह्वल रामने भाईको हृदयसे लिपटा लिया।

तत्त्वत: भरत और श्रीराम नित्य अभिन्न हैं। अयोध्यामें या नित्यसाकेतमें भरतलाल सदा श्रीरामकी सेवामें संलग्न, उनके समीप ही रहते हैं।

~~ ○ ~~

शेषावतार श्रीलक्ष्मणजी

बंदउँ लछिमन पद जलजाता। सीतल सुभग भगत सुख दाता॥
रघुपति कीरति बिमल पताका। दंड समान भयउ जस जाका॥

श्रीरामके चतुर्व्यूह स्वरूपमेंसे ही एक रूप लक्ष्मणजी हैं। वाल्मीकिजीने उन्हें ***'सहससीसु अहीसु महिधरु'*** कहकर भगवान् शेषका अवतार बताया है। श्रीरामकी सेवा करना ही उनके जीवनका एकमात्र व्रत है। जब वे बहुत छोटे थे, पलनेमें रहते थे, तभीसे श्रीराघवके अनुयायी थे।

बारेहि ते निज हित पति जानी। लछिमन राम चरन रति मानी॥

जब विश्वामित्रजीकी यज्ञ-रक्षा करने ये रामजीके साथ गये, तब बड़े भाईकी सम्पूर्ण सेवा स्वयं ही करते थे। रात्रिमें जब दोनों भाई मुनि विश्वामित्रके चरण दबाकर उनकी आज्ञासे विश्राम करने आते, तब लक्ष्मणजी बड़े भाईके चरण दबाने लगते और बार-बार बहुत कहनेपर, तब कहीं सोनेके लिये जाते। प्रात:काल भी वे श्रीरामसे पहले ही जग जाते थे।

लक्ष्मणजी बड़े ही स्नेहमय तथा कोमल स्वभावके थे। उनके इस स्वभावका अनेक बार लोगोंको पता लगा; किंतु कोई श्रीरामका किसी भी प्रकार अपमान या अनिष्ट करता जान पड़े, यह इन्हें सहन नहीं होता था। फिर ये अत्यन्त उग्र हो उठते थे और तब किसीको कुछ भी नहीं

गिनते थे। जब जनकपुरमें राजाओंके द्वारा धनुष न उठनेपर जनकजीने कहा—'मैंने समझ लिया कि अब पृथ्वीमें कोई वीर नहीं रहा, तब कुमार लक्ष्मणको लगा कि इससे तो श्रीरामके बलका भी तिरस्कार होता है। वे यह सोचते ही उग्र हो उठे। उन्होंने जनकजीको चुनौती देकर अपना शौर्य प्रकट किया। इसी प्रकार जब परशुरामजी बिगड़ते-डाँटते आये, तब भी लक्ष्मणजीसे उनका दर्प सहा नहीं गया। ये श्रीरामको अपना स्वामी मानते थे। सेवकके रहते स्वामीका तिरस्कार हो, ऐसे सेवकको धिक्कार है। परशुरामजीको इन्होंने उत्तर ही नहीं दिया, उनकी युद्धकी चुनौती तकका उपहास कर दिया! ऐसे परम भक्त लक्ष्मणने जब सुना कि पिताने माता कैकेयीके कहनेसे रामको वनवास देना निश्चित किया है, तब कैकेयी और राजापर इन्हें बड़ा क्रोध आया। परंतु श्रीरामकी इच्छाके विरुद्ध कुछ भी करना इन्हें अभीष्ट नहीं था। 'यदि रामजी वनको जाते हैं तो लक्ष्मण कहाँ अयोध्यामें रहनेवाले हैं!' यह बात सभी जानते थे। जब प्रभुने राजधर्म, पिता-माताकी सेवाका कर्तव्य समझाकर इन्हें रहनेको कहा, तब इनका मुख सूख गया। व्याकुल होकर बड़े भाईके चरण पकड़ लिये इन्होंने और रोते-रोते प्रार्थना करने लगे—

गुर पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू॥
जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई॥
मोरे सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर अंतरजामी॥
धरम नीति उपदेसिअ ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही॥
मन क्रम बचन चरन रत होई। कृपासिंधु परिहरिअ कि सोई॥

अयोध्याका राजसदन, माता-पिताका प्यार और राज्यके सुखभोग छोड़कर घोर वनमें भटकना स्वीकार किया लक्ष्मणने। श्रीरामने उन्हें साथ चलनेकी आज्ञा दी तो उन्हें यह 'वरदान' प्रतीत हुआ। वल्कल वस्त्र धारण करके अयोध्यासे इन्होंने श्रीरामका अनुगमन किया। माता सुमित्राने अपने इस पुत्रको आदेश दिया था—

रागु रोषु इरिषा मदु मोहू। जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई॥

जिसने अपना चित्त श्रीरामके चरणोंमें लगा दिया है, उसमें राग-द्वेष, रोष, ईर्ष्या, मद-मोह आदि विकार आ ही कैसे सकते हैं। लक्ष्मणजीने तो वनमें सेवाव्रत लेकर भूख प्यास, निद्रा-थकावट आदि सबपर विजय प्राप्त कर ली। वे सदा सावधान रहते थे। मार्गमें चलते समय भी—

सीय राम पद अंक बराएँ। लखन चलहिं मगु दाहिन लाएँ॥

कहीं प्रभुके चरण-चिह्नोंपर अपने पैर न पड़ जायँ, इसके लिये वे सतत सावधान रहते थे। जल, फल, कंद, पुष्प, समिधा आदि लाना, अनुकूल स्थानपर कुटिया बनाना, रात्रिमें जागते हुए पहरा देना प्रभृति सब छोटी-बड़ी

सेवाएँ लक्ष्मणजी बड़े उत्साहसे वनमें करते रहे। जैसे अज्ञानी पुरुष बड़े यत्नसे अपने शरीरकी सेवामें लगा रहता है, वैसे ही लक्ष्मणजी यत्नपूर्वक श्रीरामकी सेवामें लगे रहते थे। शृङ्गवेरपुरमें जब श्रीरामको पृथ्वीपर सोते देख निषादराज दुखी हो गये, तब लक्ष्मणजीने उन्हें तत्त्वज्ञान तथा रामजीके स्वरूपका उपदेश किया। वनवासके समय भगवान् स्वयं लक्ष्मणजीको अनेक बार ज्ञान, वैराग्य, भक्ति आदिके उपदेश करते रहे।

श्रीलक्ष्मणजीका संयम, ब्रह्मचर्य-व्रत आश्चर्यजनक है। अपने चौदह वर्षके अखण्ड ब्रह्मचर्यके बलपर ही ये मेघनादको युद्धमें जीत सके थे। जब सुग्रीवने ऋष्यमूक पहुँचनेपर सीताजीके द्वारा गिराये आभूषण दिये, तब

श्रीरघुनाथजी उन्हें लक्ष्मणको दिखाकर पूछने लगे—'देखो, ये जानकीके ही आभूषण हैं न?' उस समय लक्ष्मणजीने उत्तर दिया—

नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले॥
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्।

(वा०रा० ४।६।२२-२३)

'प्रभो! मैं केयूरों तथा कुण्डलोंको नहीं पहचानता। मैं तो केवल नूपुरोंको नित्य चरणवन्दनके समय देखते रहनेसे पहचानता हूँ।' इस निष्ठा और संयमकी कोई क्या महिमा वर्णन करेगा! लगभग चौदह वर्ष बराबर साथ रहे, अनेक बार श्रीरामके वनमें जानेपर अकेले रक्षक बने रहे, सब प्रकारकी छोटी-बड़ी सेवा करते रहे; किंतु कभी जानकीजीके चरणोंसे ऊपर दृष्टि गयी ही नहीं! धन्य मर्यादा! मारीचके छलसे जब श्रीरामजी उसके पीछे धनुषपर बाण चढ़ाकर दौड़ गये और उस राक्षसकी कपटभरी पुकार सुनकर सीताजीने भगवान्‌की लीला सम्पन्न करनेके लिये लक्ष्मणजीकी नीयतपर ही संदेह-नाट्य किया, तब भगवान्‌की आज्ञा न होनेपर भी एकाकिनी श्रीजानकीजीको छोड़कर श्रीरामके पास चले गये। जहाँ किसी प्रकारकी आशङ्का हो, वहाँ किसी भी सत्पुरुषको रहना नहीं चाहिये।

जब श्रीराम समुद्रके पास मार्ग देनेकी प्रार्थना करनेके विचारसे कुश बिछाकर बैठे, तब यह बात लक्ष्मणजीको नहीं रुची। ये पुरुषार्थ-प्रिय हैं। इन्होंने कहा 'दैवके भरोसे तो कादरलोग बैठे रहते हैं।' असलमें तो इन्हें यह सह्य नहीं था कि उनके सर्वसमर्थ स्वामी समुद्रसे प्रार्थना करें।

श्रीरामकी आज्ञासे लक्ष्मण कठोर-से-कठोर कार्य भी करनेको उद्यत रहते थे। सीताजीको वनमें छोड़ आनेका काम भरत और शत्रुघ्नजीने स्पष्ट अस्वीकार कर दिया। लक्ष्मणजीके लिये यह हृदयपर पत्थर रखकर करनेका काम था; किंतु वे श्रीरामकी आज्ञा किसी प्रकार टाल नहीं सकते थे। यह कार्य भी उन्होंने स्वीकार किया। उनका आत्मत्याग महान् है। श्रीराम एकान्तमें कालके साथ बात कर रहे थे। उन्होंने यह निश्चय किया था कि इस समय यदि कोई यहाँ आ जायगा तो उसे प्राणदण्ड दिया जायगा। लक्ष्मणजीको द्वारपर नियुक्त किया गया था। उसी समय वहाँ दुर्वासाजी आये और तुरंत श्रीरामसे मिलनेका आग्रह करने लगे। विलम्ब होनेपर शाप देकर पूरे राजकुलको नष्ट कर देनेकी धमकी दी उन्होंने! लक्ष्मणजीने भगवान्‌को जाकर संवाद सुनाया। श्रीरामने दुर्वासाजीका सत्कार किया। ऋषिके चले जानेपर श्रीरघुनाथजी बहुत दुःखी हुए। प्रतिज्ञाके अनुसार लक्ष्मणजीको उस समय भीतर जानेके लिये प्राणदण्ड होना चाहिये था। स्वामीको दुःख न हो, उनकी प्रतिज्ञा रक्षित रहे, इसलिये उन्होंने स्वयं माँगकर निर्वासन स्वीकार कर लिया; क्योंकि प्रियजनका निर्वासन प्राणदण्डके ही समान है। इस प्रकार आजन्म श्रीरामकी सेवा करके, श्रीरामके लिये उनका वियोग भी लक्ष्मणजीने स्वीकार किया।

ब्रह्माजीके अंशावतार ऋक्षराज जाम्बवान्

स्वारथ साँच जीव कहुँ एहा। मन क्रम बचन राम पद नेहा॥

भगवान् ब्रह्माने देखा कि सृष्टिकार्यमें लगे रहते पूरा समय भगवान्‌की सेवामें नहीं दिया जा सकता। अतः वे अपने एक रूपसे ऋक्षराज जाम्बवान् होकर पृथ्वीपर आ गये। भगवान्‌की सेवा, भगवान्‌के नित्यमङ्गलमय रूपका ध्यान, भगवान्‌की लीलाओंका चिन्तन—यही जाम्बवान्‌जीकी दिनचर्या थी। सत्ययुगमें जब भगवान् वामनने विराट्‌रूप धारण करके बलिको बाँध लिया, उस समय उस विराट्‌रूप प्रभुको देखकर ऋक्षराज जाम्बवन्तजीको बड़ा ही आनन्द हुआ। वे भेरी लेकर विराट् भगवान्‌का जयघोष करते हुए दिशाओंमें सर्वत्र महोत्सवकी घोषणा कर आये और दो घड़ीमें ही दौड़ते हुए उन्होंने सात प्रदक्षिणाएँ विराट् भगवान्‌की कर लीं।

त्रेतामें जाम्बवन्तजी सुग्रीवके मन्त्री हो गये। आयु, बुद्धि, बल एवं नीतिमें सबसे श्रेष्ठ होनेके कारण वे ही सबको उचित सम्मति देते थे। वानर जब सीतान्वेषणको निकले और समुद्रके तटपर हताश होकर बैठ गये, तब जाम्बवन्तजीने ही हनुमान्‌जीको उनके बलका स्मरण

दिलाकर लङ्का जानेके लिये प्रेरित किया। भगवान् श्रीरामके युद्धकालमें तो जैसे ये प्रधान सचिव ही थे। सभी कार्योंमें भगवान् इनकी सम्मति लेते और उसका आदर करते थे। लङ्का-युद्धमें मेघनादने अपनी मायासे सभीको व्याकुल कर दिया था, पर जाम्बवन्तजीको वह माया स्पर्शतक नहीं कर सकी। मेघनाद और रावण भी इनके मुष्टि-प्रहारसे मूर्च्छित हो जाते थे। जब भगवान् अयोध्या लौट आये और राज्याभिषेकके अनन्तर सबको विदा करने लगे, तब जाम्बवन्तजीने अयोध्यासे जाना तभी स्वीकार किया जब प्रभुने उन्हें द्वापरमें फिर दर्शन देनेका वचन दिया।

जाम्बवन्तजीकी इच्छा थी कि कोई मुझे द्वन्द्वयुद्धमें संतुष्ट करे। लङ्काके युद्धमें रावण भी उनके सम्मुख टिक नहीं सका था। भगवान् तो भक्तवाञ्छाकल्पतरु हैं। अपने भक्तकी इच्छा पूर्ण करना ही उनका व्रत है। द्वापरमें श्रीकृष्णचन्द्रका अवतार हुआ। द्वारका आनेपर यादवश्रेष्ठ सत्राजित्ने सूर्यकी आराधना करके स्यमन्तक मणि प्राप्त की। एक दिन श्रीकृष्णचन्द्रने सत्राजित्से कहा कि 'वह मणि महाराज उग्रसेनको दे दो।' किंतु लोभवश सत्राजित्ने यह बात स्वीकार नहीं की। संयोगवश उस मणिको गलेमें बाँधकर सत्राजित्का भाई प्रसेनजित् आखेटके लिये वनमें गया और वहाँ उसे सिंहने मार डाला। सिंह मणि लेकर गुफामें गया तो जाम्बवन्तजीने सिंहको मारकर मणि ले ली और गुफाके भीतर अपने बच्चेको खेलनेके लिये दे दी।

द्वारकामें जब प्रसेन नहीं लौटा, तब सत्राजित्को शङ्का हुई कि 'श्रीकृष्णचन्द्रने मेरे भाईको मारकर मणि छीन ली है।' धीरे-धीरे यह बात फैलने लगी। इस अपयशको दूर करनेके लिये श्रीकृष्णचन्द्र मणिका पता लगाने निकले। वे मरे घोड़ेको, फिर मृत सिंहको देखते हुए जाम्बवन्तकी गुफामें पहुँचे। एक अपरिचित पुरुषको देख बच्चेकी धाय चिल्ला उठी। जाम्बवन्त इस चिल्लाहटको सुन, क्रोधमें भरे दौड़े। केशवके साथ उनका द्वन्द्वयुद्ध होने लगा। सत्ताईस दिन-रात बिना विश्राम किये दोनों एक-दूसरेपर वज्रके समान आघात करते रहे। अन्तमें

जाम्बवान्का शरीर मधुसूदनके प्रहारोंसे शिथिल होने लगा। जाम्बवन्तजीने सोचा—'मुझे पराजित कर सके, ऐसा कोई देवता या राक्षस तो हो नहीं सकता। अवश्य ये मेरे स्वामी श्रीराम ही हैं।' वे यह सोचकर रुक गये। भगवान्ने उसी समय उन्हें अपने धनुषधारी रामरूपका दर्शन दिया। जाम्बवन्तजी प्रभुके चरणोंपर गिर पड़े। श्रीकृष्णचन्द्रने अपना हाथ उनके शरीरपर फेरकर समस्त पीड़ा, श्रान्ति तथा क्लेशको दूर कर दिया। ऋक्षराजने अपनी कन्या जाम्बवतीको श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंमें समर्पित

किया और वह मणि भी दे दी। इस प्रकार उन्होंने अपने जीवनको भगवान्के चरणोंमें अर्पित कर दिया।

धरादेवीका माता यशोदाके रूपमें अवतरण

नेमं विरिञ्चो न भवो न श्रीरप्यङ्गसंश्रया।
प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत्प्राप विमुक्तिदात्॥

(श्रीमद्भा० १०।९।२०)

'मुक्तिदाता भगवान्‌से जो कृपाप्रसाद नन्दरानी यशोदा मैयाको मिला, वैसा न ब्रह्माजीको, न शंकरको, न अर्धांगिनी लक्ष्मीजीको भी कभी प्राप्त हुआ।'

अष्ट वसुओंमें श्रेष्ठ द्रोणने पद्मयोनि ब्रह्मासे यह प्रार्थना की—'देव! जब मैं पृथ्वीपर जन्म धारण करूँ, तब विश्वेश्वर स्वयं भगवान् श्रीहरि श्रीकृष्णचन्द्रमें मेरी परमा भक्ति हो।' इस प्रार्थनाके समय द्रोणपत्नी धरा भी वहीं खड़ी थीं। धराने मुखसे कुछ नहीं कहा; पर उनके अणु-अणुमें भी यही अभिलाषा थी, मन-ही-मन धरा भी पद्मयोनिसे यही माँग रही थीं। पद्मयोनिने कहा—'तथास्तु—ऐसा ही होगा।' इसी वरके प्रतापसे धराने व्रजमण्डलके एक सुमुख नामक गोप* एवं उनकी पत्नी पाटलाकी कन्याके रूपमें भारतवर्षमें जन्म धारण किया—उस समय जब कि स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके अवतरणका समय हो चला था, श्वेतवाराहकल्पकी अट्ठाईसवीं चतुर्युगीके द्वापरका अन्त हो रहा था। पाटलाने अपनी कन्याका नाम यशोदा रखा। यशोदाका विवाह व्रजराज नन्दसे हुआ। ये नन्द पूर्वजन्ममें वही द्रोण नामक वसु थे, जिन्हें ब्रह्माने वर दिया था।

भगवान्‌की नित्यलीलामें भी एक यशोदा हैं। वे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी नित्यमाता हैं। वात्सल्यरसकी घनीभूत मूर्ति ये यशोदारानी भगवान्‌को सदा वात्सल्यरसका आस्वादन कराया करती हैं। जब भगवान्‌के अवतरणका समय हुआ तब इन चिदानन्दमयी, वात्सल्यरसमयी यशोदाका भी इन यशोदा (पूर्वजन्मकी धरा)-में ही आवेश हो गया। पाटलापुत्री यशोदा नित्ययशोदासे मिलकर एकमेक हो गयीं तथा इन्हीं यशोदाके पुत्रके रूपमें आनन्दकन्द परब्रह्म पुरुषोत्तम स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अवतीर्ण हुए।

जब भगवान् अवतीर्ण हुए थे, उस समय यशोदाकी आयु ढल चुकी थी। इससे पूर्व अपने पति नन्दके साथ यशोदाने न जाने कितनी चेष्टा की थी कि पुत्र हो; पर पुत्र हुआ नहीं। अतः जब पुत्र हुआ, तब फिर आनन्दका कहना ही क्या है—

सूखत धानन कौं ज्यौं पान्यो, यौं पायौ या पनमें।

—यशोदाको पुत्र हुआ है, इस आनन्दमें सारा व्रजपुर निमग्न हो गया।

× × ×

छठे दिन यशोदाने अपने पुत्रकी छठी पूजी। इसके दूसरे दिनसे ही मानो यशोदा-वात्सल्य-सिन्धुका मन्थन आरम्भ हो गया, मानो स्वयं जगदीश्वर अपनी जननीका हृदय मथते हुए राशि-राशि भावरत्न निकाल-निकालकर बिखेरने लगे, बतलाने लगे, घोषणा करने लगे—'जगत्‌की देवियो! देखो, यदि तुममेंसे कोई मुझ परब्रह्म पुरुषोत्तमको अपना पुत्र बनाना चाहो तो मैं पुत्र भी बन सकता हूँ; पर पुत्र बनाकर मुझे कैसा प्यार किया जाता है, वात्सल्यभावसे मेरा भजन कैसे होता है—इसकी तुम्हें शिक्षा लेनी पड़ेगी। इसीलिये इन सर्वथा अनमोल रत्नोंको निकालकर मैं जगत्‌में छोड़ दे रहा हूँ, ये ही तुम्हारे आदर्श होंगे; इन्हें पिरोकर अपने हृदयका हार बना लेना। हृदय आलोकित हो जायगा; उस आलोकमें आगे बढ़कर पुत्ररूपसे मुझे पा लोगी, अनन्तकालके लिये सुखी हो जाओगी।' अस्तु,

कंसप्रेरित पूतना यशोदानन्दनको मारने आयी। उसने अपना विषपूरित स्तन यशोदानन्दनके श्रीमुखमें दे दिया। किंतु यशोदानन्दन विषमय दूधके साथ ही पूतनाके प्राणोंको भी पी गये। शरीर छोड़ते समय श्रीकृष्णचन्द्रको लेकर ही पूतना मधुपुरीकी ओर दौड़ी। आह! उस क्षण यशोदाके प्राण भी मानो पूतनाके पीछे-पीछे दौड़ चले। यशोदाके प्राण तभी लौटे, तभी उनमें जीवनका सञ्चार हुआ, जब पुत्रको लाकर गोपसुन्दरियोंने उनके वक्षःस्थलपर रखा। यशोदाने स्नेहवश उस समय परमात्मा श्रीकृष्णपर

* सुमुखका एक नाम महोत्साह भी था।

गोपुच्छ फिराकर उनकी मङ्गल कामना की।

× × ×
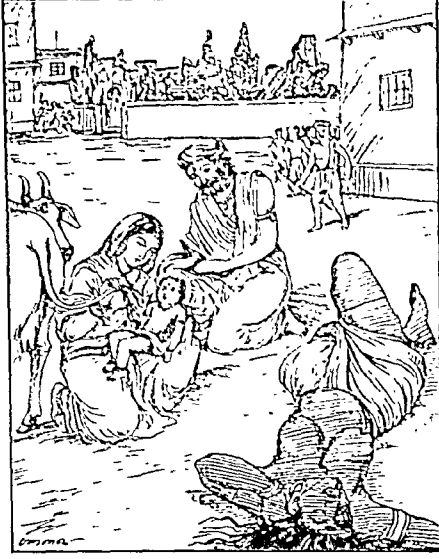
क्रमशः यशोदानन्दन बढ़ रहे थे एवं उसी क्रमसे मैयाका आनन्द भी प्रतिक्षण बढ़ रहा था। यशोदा मैया पुत्रको देख-देखकर फूली नहीं समाती थीं—

जसुमति फूली फूली डोलति।
अति आनंद रहत सगरे दिन हसि हसि सब सों बोलति॥
मंगल गाय उठति अति रस सो अपने मनको भायौ।
विकसित कहति देख व्रजसुंदरि कैसो लगत सुहायौ॥

कभी पालनेपर पुत्रको सुलाकर वे आनन्दमें निमग्न होती रहतीं—

पलना स्याम झुलावति जननी।
अति अनुराग परस्पर गावति, प्रफुलित मगन होति नँद घरनी॥
उमँगि उमंगि प्रभु भुजा पसारत, हरषि जसोमति अंकम भरनी।
सूरदास प्रभु मुदित जसोदा, पूरन भई पुरातन करनी॥

इस प्रकार जननीका प्यार पाकर श्रीकृष्णचन्द्र तो आज इक्यासी दिनके हो गये; पर जननीको ऐसा लगता था मानो कुछ देर पहले ही मैंने अपने पुत्रका वह सलोना मुख देखा है। आज वे अपने पुत्रको एक विशाल शकटके नीचे पलनेपर सुला आयी थीं। इसी समय कंसप्रेरित उत्कच नामक दैत्य आया और उस गाड़ीमें प्रविष्ट हो गया; शकटको यशोदानन्दनपर गिराकर वह उनको पीस डालना चाहता था। पर इससे पूर्व ही यशोदानन्दनने अपने पैरसे शकटको उलट दिया और शकटासुरके संसरणका अन्त कर दिया! इधर जब जननीने शकट-पतनका भयंकर शब्द सुना, तब ये सोच बैठीं कि मेरा लाल तो अब जीवित रहा नहीं। बस, ढाढ़ मारकर एक बार चीत्कार कर उठीं और फिर सर्वथा प्राणशून्य-सी होकर गिर पड़ीं। बड़ी कठिनतासे गोपसुन्दरियाँ उनकी मूर्च्छा तोड़नेमें सफल हुईं। उन्होंने आँखें खोलकर अपने पुत्रको देखा, देखकर रोती हुई ही अपनेको धिक्कारने लगीं—

'हाय रे हाय! मेरा यह नीलमणि नवनीतसे भी अधिक सुकोमल है, केवल तीन महीनेका है और इसके निकट शकट हठात् भूमिपर गिरकर टूट गया। यह बात सुनकर भी मेरे प्राण न निकले, मैं उन्हीं प्राणोंको लेकर अभीतक जीवित हूँ, तो यही सत्य है कि मैं वज्रसे भी अधिक कठोर हूँ। मैं कहलानेमात्रको माता हूँ; मेरे ऐसे मातृत्वको, मातृवत्सलताको धिक्कार है।'

× × ×

यशोदारानी कभी तो प्रार्थना करतीं—हे विधाता! मेरा वह दिन कब आयेगा, जब मैं अपने लालको बकैयाँ चलते देखूँगी, दूधकी दँतुलियाँ देखकर मेरे नेत्र शीतल होंगे, इसकी तोतली बोली सुनकर कानोंमें अमृत बहेगा—

नंद घरनि आनँदभरी, सुत स्याम खिलावै।
कबहिं घुटुरुवनि चलहिंगे, कहि बिधिहि मनावै॥
कबहिं दँतुलि द्वै दूध की देखौं इन नैननि?
कबहिं कमल मुख बोलिहैं, सुनिहौं उन बैननि॥
चूमति कर पग अधर भ्रू, लटकति लट चूमति।
कहा बरनि सूरज करै, कहँ पावै सो मति॥

कभी श्रीकृष्णचन्द्रसे ही निहोरा करने जातीं—

नान्हरिया गोपाल लाल, तू बेगि बड़ौ किन होहि।
इहिं मुख मधुर बचन हँसि कैधौं जननि कहै कब मोहि॥

जननीका मनोरथ पूर्ण करते हुए क्रमशः श्रीकृष्णचन्द्र बोलने भी लगे, बकैयाँ भी चलने लगे और फिर खड़े होकर चलने भी लगे। इतनेमें वर्ष पूरा हो गया, यशोदारानीने अपने पुत्रकी प्रथम वर्षगाँठ मनायी। इसी समय कंसने तृणावर्त दैत्यको भेजा। वह आया और यशोदाके नीलमणिको उड़ाकर आकाशमें चला गया। यशोदा मृतवत्सा गौकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ीं। इस बार जननीके जीवनकी आशा किसीको न थी। पर जब श्रीकृष्णचन्द्र तृणावर्तको चूर्ण-

विचूर्ण कर लौटे, गोपियाँ उन्हें दैत्यके छिन्न-भिन्न शरीरपरसे उठा लायीं, तब तत्क्षण यशोदाके प्राण भी लौट आये—

शिशुमुपसद्य यशोदा दनुजहतं द्राक् चिचेत लीनापि।
वर्षाजलमुपलभ्य प्राणिति जातिर्यथेन्द्रगोपाणाम्॥

'दैत्यके द्वारा अपहृत शिशुको पाकर महाप्रयाण (मृत्यु)-में लीन होनेपर भी यशोदा उसी क्षण वैसे ही चैतन्य हो गयीं, जैसे वर्षाका जल पाकर इन्द्रगोप (बीरबहूटी) कीटकी जाति जीवित हो जाती है।'

× × ×

यशोदा एवं श्रीकृष्णचन्द्रमें होड़ लगी रहती थी। यशोदाका वात्सल्य उमड़ता, उसे देखकर उससे सौगुने परिमाणमें श्रीकृष्णचन्द्रका लीलामाधुर्य प्रकाशित होता; फिर इस लीलामाधुरीको देखकर सहस्रगुनी मात्रामें यशोदाका भावसिन्धु तरङ्गित हो उठता, इन भावलहरियोंसे धुलकर पुन: श्रीकृष्णचन्द्रकी लीलाकिरणें निखर उठतीं, क्षणभर पूर्व जो थीं उससे लक्षगुणित परिमाणमें चमक उठतीं— इस क्रमसे बढ़कर यशोदाका वात्सल्य अनन्त, असीम, अपार बन गया था। उसमें डूबी हुई यशोदा और सब कुछ भूल गयी थीं, केवल नीलमणि ही उनके नेत्रोंमें नाचते रहते थे। कब दिन हुआ, कब रात्रि आयी—यशोदाको यह भी किसीके बतानेपर ही भान होता था। उनको क्षणभरके लिये भावसमाधिसे जगानेके लिये ही मानो यशोदानन्दनने मृत्तिका-भक्षणकी लीला की। 'श्रीकृष्णने मिट्टी खायी है',

यह सुनकर यशोदा उनका मुख खुलवाकर मिट्टी ढूँढ़ने लगीं और उनके मुखमें सारा विश्व अवस्थित देखा, देखकर एक बार तो वे काँप उठीं; किंतु इतनेमें ही श्रीकृष्णचन्द्रकी वैष्णवी मायाका विस्तार हुआ। यशोदा-वात्सल्यसागरमें एक लहर उठी, वह यशोदाके इस विश्वदर्शनके स्मृतितकको बहा ले गयी, नीलमणिको गोदमें लेकर यशोदा प्यारसे उन्हें स्तनपान कराने लगीं—

अंक में लगाइ नंद नंद को अनंद माइ।
ग्यान गूढ भूलि गौ, भये सुपुत्र प्रेम आइ॥
देखि बाल लाल कौं फँसी सु मोह फाँस आइ।
सीस सूँघि चूमि चारु दूध द हिये अघाइ॥

× × ×

यशोदा भूली रहती थीं, पर दिन तो पूरे होते ही थे। यशोदाके अनजानमें ही उनके पुत्रकी दूसरी वर्षगाँठ भी आ पहुँची। फिर देखते-देखते ही उनके नीलमणि दो वर्ष दो महीनेके हो गये। पर अब नीलमणि ऐसे, इतने चञ्चल हो गये थे कि यशोदाको एक क्षण भी चैन नहीं। गोपियोंके घर जाकर तो न जाने कितने दहीके भाँड फोड़ आया करते थे; एक दिन मैयाका वह दहीभाँड भी फोड़ दिया, जो उनके कुलमें वर्षोंसे सुरक्षित चला आ रहा था। जननीने डरानेके उद्देश्यसे श्रीकृष्णचन्द्रको ऊखलमें बाँधा। सारा विश्व अनन्त कालतक यशोदाकी इस चेष्टापर बलिहार जायगा—

जिन बाँधे सुर-असुर, नाग-नर, प्रबल करमकी डोरी।
सोइ अबिछिन्न ब्रह्म जसुमति हठि बाँध्यो सकत न छोरी॥

इस बन्धनको निमित्त बनाकर यशोदाके नीलमणिने दो अर्जुनवृक्षोंको जड़से उखाड़ दिया। फिर तो व्रजवासी यशोदानन्दनकी रक्षाके लिये अतिशय व्याकुल हो गये। पूतनासे, शकटसे, तृणावर्तसे—इतनी बार तो नारायणने नीलमणिको बचा लिया; अब आगे यहाँ इस गोकुलमें तो एक क्षण भी नहीं रहना चाहिये। गोपोंने परामर्श करके निश्चय कर लिया—बस, इसी क्षण वृन्दावन चले जाना है। यही हुआ, यशोदा अपने नीलमणिको लेकर वृन्दावन चली आयीं।

× × ×

वृन्दावन आनेके पश्चात् श्रीकृष्णचन्द्रकी अनेक भुवनमोहिनी लीलाओंका प्रकाश हुआ। उन्हें गोपबालकोंके मुखसे सुन-सुनकर तथा कुलको अपनी आँखों देखकर

यशोदा कभी तो आनन्दमें निमग्न हो जातीं और कभी पुत्रकी रक्षाके लिये उनके प्राण व्याकुल हो उठते।

श्रीकृष्णचन्द्रका तीसरा वर्ष अभी पूरा नहीं हुआ था, फिर भी वे बछड़ा चराने वनमें जाने लगे। वनमें वत्सासुर-बकासुर आदिको मारा। जब इन घटनाओंका विवरण जननी सुनती थीं, तब पुत्रके अनिष्टकी आशंकासे उनके प्राण छटपटाने लगते। पाँचवें वर्षकी शुक्लाष्टमीसे श्रीकृष्णचन्द्रका गोचारण आरम्भ हुआ तथा इसी वर्ष ग्रीष्मके समय उनकी कालियदमन-लीला हुई। कालियके बन्धनमें पुत्रको बँधा देखकर यशोदाकी जो दशा हुई थी, उसे चित्रित करनेकी क्षमता किसीमें नहीं। छठे वर्षमें जैसी-जैसी विविध मनोहारिणी गोष्ठक्रीडा श्रीकृष्णचन्द्रने की, उसे सुन-सुन यशोदाको कितना सुख हुआ था, इसे भी वर्णन करनेकी शक्ति किसीमें नहीं। सातवें वर्ष धेनुक-उद्धारकी लीला हुई, आठवें वर्ष गोवर्धनधारणकी लीला हुई, नवें वर्षमें सुदर्शनका उद्धार हुआ, दसवें वर्ष अनेक आनन्दमयी बालक्रीडाएँ हुईं, ग्यारहवें वर्ष अरिष्ट-उद्धार हुआ, बारहवें वर्षके फाल्गुनमासकी द्वादशीको केशी दैत्यका उद्धार हुआ। इन-इन अवसरोंपर यशोदाके हृदयमें हर्ष अथवा दुःखकी जो धाराएँ फूट निकलती थीं, उनमें यशोदा स्वयं तो डूब ही जातीं, सारे व्रजको भी निमग्न कर देती थीं।

इस प्रकार ग्यारह वर्ष, छः महीने यशोदारानीके भवनको श्रीकृष्णचन्द्र आलोकित करते रहे, किंतु अब यह आलोक मधुपुरी जानेवाला था। श्रीकृष्णचन्द्रको मधुपुरी ले जानेके लिये अक्रूर आ ही गये। वही फाल्गुन द्वादशीकी सन्ध्या थी, अक्रूरने आकर यशोदाके हृदयपर मानो अतिक्रूर वज्र गिरा दिया। सारी रात व्रजेश्वर व्रजरानी यशोदाको समझाते रहे; पर यशोदा किसी प्रकार भी सहमत नहीं हो रही थीं, किसी हालतमें पुत्रको कंसकी रंगशाला देख आनेकी अनुमति नहीं देती थीं। आखिर योगमायाने मायाका विस्तार किया, यशोदा भ्रान्त हो गयीं। अनुमति तो उन्होंने फिर भी नहीं दी; पर अबतक जो विरोध कर रही थीं, वह न करके आँसू ढालने लगीं। विदा होते समय यशोदारानीकी जो करुण दशा थी, उसे देखकर कौन नहीं रो पड़ा। आह!

यात्रामङ्गलसम्पदं न कुरुते व्यग्रा तदात्वोचितां
वात्सल्यौपयिकं च नोपनयते पाथेयमुद्भ्रान्तधीः।
धूलीजालमसौ विलोचनजलैर्जम्बालयन्ती परं
गोविन्दं परिरभ्य नन्दगृहिणी नीरन्ध्रमाक्रन्दति॥

व्यग्र हुई यशोदा यात्राके समय करने योग्य मङ्गलकार्य भी नहीं कर रही हैं। इतनी भ्रान्तचित्त हो गयी हैं कि अपने वात्सल्यके उपयुक्त पुत्रको कोई पाथेय (राहखर्च)-तक नहीं दे रही हैं, देना भूल गयी हैं। श्रीकृष्णचन्द्रको हृदयसे लगाकर निरन्तर रो रही हैं, उनके अजस्र अश्रुप्रवाहसे भूमि पङ्किल हो रही है।

रथ श्रीकृष्णचन्द्रको लेकर चल पड़ा। रथचक्रों (पहियों)-के चिह्न भूमिपर अङ्कित होने लगे, मानो धरारूपिणी यशोदाके छिदे हुए हृदयको पृथ्वीदेवी व्यक्त कर रही थीं।

× × ×

श्रीकृष्णचन्द्रके विरहमें जननी यशोदाकी क्या दशा हुई, इसे यथार्थमें वर्णन करनेकी सामर्थ्य सरस्वतीमें भी नहीं। यशोदा मैया वास्तवमें विक्षिप्त-सी हो गयीं। जहाँ श्रीकृष्णचन्द्र रथपर बैठे थे, वहाँ प्रतिदिन चली आतीं। उन्हें दीखता—अभी-अभी मेरे नीलमणिको अक्रूर लिये जा रहे हैं। वे चीत्कार कर उठतीं—'अरे! क्या व्रजमें कोई नहीं, जो मेरे जाते हुए नीलमणिको रोक ले, पकड़ ले। वह देखो, रथ बढ़ा जा रहा है, मेरे प्राण लिये जा रहा है, मैं दौड़ नहीं पा रही हूँ; कोई दौड़कर मेरे नीलमणिको पकड़ लो भैया!'

कभी जड़-चेतन, पशु-पक्षी, मनुष्य—जो कोई भी दृष्टिके सामने आ जाता, उसीसे वसुदेवपत्नी देवकीको अनेक संदेश भेजतीं—

सँदेसो देवकी सों कहियो
हौं तो धाय तुम्हारे सुत की, मया करत नित रहियो॥
जदपि टेव तुम जानत उनकी, तऊ मोहि कहि आवे।
प्रातहि उठत तुम्हारे सुत कौं माखन रोटी भावै॥
तेल उबटनौ अरु तातौ जल देखत ही भजि जावै।
जोइ जोइ माँगत, सोइ सोइ देती, क्रम क्रम करि करि न्हावै॥
सूर पथिक सुनि मोहि रैन दिन बढ़्यौ रहत उर सोच।
मेरौ अलक लड़ैतौ मोहन ह्वैहै करत सकोच॥

किसी पथिकने यशोदाका यह संदेश श्रीकृष्णचन्द्रसे जाकर

कह भी दिया। सान्त्वना देनेके लिये श्रीकृष्णचन्द्रने उद्धवको भेजा। उद्धव आये, पर जननीके आँसू पोंछ नहीं सके।

× × ×

यशोदारानीका हृदय तो तब शीतल हुआ जब वे कुरुक्षेत्रमें श्रीकृष्णचन्द्रसे मिलीं। राम-श्यामको हृदयसे लगाकर, गोदमें बैठाकर उन्होंने नव-जीवन पाया।

कुरुक्षेत्रसे जब यशोदारानी लौटीं, तब उनकी जानमें उनके नीलमणि उनके साथ ही वृन्दावन लौट आये। यशोदाका उजड़ा हुआ संसार फिरसे बस गया।

× × ×

श्रीकृष्णचन्द्र अपनी लीला समेटनेवाले थे। इसीलिये अपनी जननी यशोदाको भी पहलेसे भेज दिया। जब भानुनन्दिनी, गोलोकविहारिणी श्रीराधाकिशोरीको वे विदा करने लगे, तब गोलोकके उसी दिव्यातिदिव्य विमानपर जननीको भी बिठाया तथा राधाकिशोरीके साथ ही यशोदा अन्तर्धान हो गयीं, गोलोकमें पधार गयीं।

~~o~~

भगवान् वेदव्यास-प्रतिपादित अवतार-लीलाएँ

'व्यासो नारायणः साक्षात्' (शङ्करदिग्विजय)—इस वचनके अनुसार वेदव्यासजी साक्षात् नारायणस्वरूप हैं और नारायणके अंशावतार भी हैं। श्रीमद्भागवतमें बतलाया गया है कि समयके फेरसे लोगोंकी समझ कम हो जाती है, आयु भी कम होने लगती है। उस समय जब भगवान् देखते हैं कि अब ये लोग मेरे तत्त्वको बतलानेवाली वेदवाणीको समझनेमें असमर्थ होते जा रहे हैं, तब प्रत्येक कल्पमें सत्यवतीके गर्भसे व्यासके रूपमें प्रकट होकर वे वेदरूपी वृक्षका विभिन्न शाखाओंके रूपमें विभाजन कर देते हैं—

कालेन मीलितधियामवमृश्य नृणां
स्तोकायुषां स्वनिगमो बत दूरपारः।
आविर्हितस्त्वनुयुगं स हि सत्यवत्यां
वेदद्रुमं विटपशो विभजिष्यति स्म॥*

(श्रीमद्भा० २।७।३६)

इस प्रकार श्रीनारायण हरि ही व्यासजीके रूपमें अवतीर्ण होकर शास्त्र-रक्षाका महान् कार्य करते हैं। व्यासजी सम्पूर्ण संसारके गुरु हैं, प्राणियोंको परमार्थका मार्ग दिखानेके लिये ही उनका अवतार है। गुरुरूपमें उनकी विशेष आराधना आषाढ़-पूर्णिमाको होती है, जिसे गुरुपूर्णिमा भी कहते हैं। अवतरित होकर व्यासजीने न केवल वेदसंहिताका ऋक्-यजुः-भेदसे विभाजन किया, अपितु अष्टादश महापुराणों तथा उपपुराणोंकी भी रचना की। **'यन्न भारते तन्न भारते'** के रूपमें प्रसिद्ध लक्षश्लोकात्मक 'महाभारत' ग्रन्थ हमें वेदव्यासजीकी कृपासे ही प्राप्त है। बादरायण-शास्त्रके नामसे जाना जानेवाला ब्रह्मसूत्र (वेदान्तदर्शन) भगवान् वेदव्यासकी दिव्य प्रतिभासे ही प्रातिभज्ञानके रूपमें हमें प्राप्त है। सारा ज्ञान-विज्ञान वेदोंमें सूत्ररूपमें तथा पुराणेतिहास-ग्रन्थोंमें उपबृंहणके रूपमें निरूपित है, जिसके द्रष्टा-स्रष्टा वेदव्यासजी हैं, इसीलिये

---

* यही बात निम्न श्लोकोंमें भी बतायी गयी है—

(क) ततः सप्तदशे जातः सत्यवत्यां पराशरात्। चक्रे वेदतरोः शाखा दृष्ट्वा पुंसोऽल्पमेधसः॥ (श्रीमद्भा० १।३।२१)

(ख) द्वापरे द्वापरे विष्णुर्व्यासरूपी महामुने। वेदमेकं सुबहुधा कुरुते जगतो हितः॥ (विष्णुपु० ३।३।५)

हे महामुने! प्रत्येक द्वापरयुगमें भगवान् विष्णु व्यासरूपसे अवतीर्ण होते हैं और संसारके कल्याणके लिये एक वेदके अनेक भेद कर देते हैं।

वे 'वाङ्मयावतार' भी कहलाते हैं। सब कुछ ज्ञान-विज्ञान हमें वेदव्यासजीकी कृपासे प्राप्त हुआ है, इसीलिये वे 'कृपावतार' भी कहे जाते हैं। समस्त जगत्पर उनका महान् अनुग्रह है। उनकी एक स्तुतिमें उन्हें नमन करते हुए कहा गया है कि महर्षि पराशरके पुत्र, परमपुरुष, सम्पूर्ण वैदिक शाखाओंकी उत्पत्तिके स्थान, सम्पूर्ण विद्याओंके आधार, निर्मल मनवाले, वेद-वेदान्तोंके द्वारा परिज्ञेय, सदा शान्त, रागशून्य, विशाल-विशुद्धबुद्धि तथा निर्मल यशवाले महात्मा वेदव्यासजीको मैं नमस्कार करता हूँ—

पाराशर्यं परमपुरुषं विश्ववेदैकयोनिं
विद्याधारं विमलमनसं वेदवेदान्तवेद्यम्।
शश्वच्छान्तं शमितविषयं शुद्धबुद्धिं विशालं
वेदव्यासं विमलयशसं सर्वदाहं नमामि॥

(पद्म०उ०खं० २१९।४२)

वेदव्यासजीने अवतरित होकर वाङ्मयके रूपमें जो हमें विद्याका दान दिया सो तो है ही, उसके साथ ही उन्होंने कृपासिन्धु भगवान्के सभी अवतारोंकी लीला-कथाका जो प्रतिपादन किया है, वह एक अद्भुत बात है। वेदव्यासजीने ही हमें बताया कि भगवान्का अवतार होता है और इस आर्यधरापर अवतरित होकर भगवान् माङ्गलिक लीलाएँ करके लोकको आह्लादित करते हैं तथा जीवोंका कल्याण करते हैं। जितने विस्तारसे पुराणोंमें भगवान्के अवतारोंका लीलाचरित्र वर्णित है, वह हमें वेदव्यासजीकी कृपासे ही प्राप्त है, वह चाहे श्रीमद्भागवतपुराण हो, विष्णुपुराण हो, शिवपुराण हो, गणेशपुराण हो या देवीभागवतपुराण हो। सभी पुराणोंमें अवतारोंका निरूपण हुआ है। कई पुराण तो अवतारोंके नामपर ही व्यासजीद्वारा रचित हैं, जैसे—मत्स्यपुराण, कूर्मपुराण, वाराहपुराण, वामनपुराण तथा नारदपुराण। श्रीमद्भागवतपुराणका सम्पूर्ण दशम स्कन्ध तथा एकादश स्कन्ध भगवान् श्रीकृष्णके अवतरणसे लेकर उनके परमधामगमनतकके वर्णनसे गुम्फित है। श्रीमद्भागवतके प्रारम्भमें ही भगवान्की लीलाकथा तथा भक्तिके माहात्म्यको बताते हुए व्यासजी कहते हैं कि भगवान् श्रीकृष्णमें भक्ति होते ही—अनन्य प्रेमसे उनमें चित्त जोड़ते ही निष्काम ज्ञान और वैराग्यका आविर्भाव हो जाता है। धर्मका ठीक-ठीक अनुष्ठान करनेपर भी यदि मनुष्यके हृदयमें भगवान्की लीला-कथाओंके प्रति अनुरागका उदय न हो तो वह निरा श्रम-ही-श्रम है—

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः।
जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं च यदहैतुकम्॥
धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः।
नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्॥

(श्रीमद्भा० १।२।७-८)

वेदव्यासजीने यह बताया है कि भगवान् ही सम्पूर्ण लोकोंकी रचना करते हैं और देवता, पशु-पक्षी, मनुष्य आदि योनियोंमें लीलावतार ग्रहण करके सत्त्वगुणके द्वारा जीवोंका पालन-पोषण करते हैं—

भावयत्येष सत्त्वेन लोकान् वै लोकभावनः।
लीलावतारानुरतो देवतिर्यङ्नरादिषु॥

(श्रीमद्भा० १।२।३४)

पुनः व्यासजीने भगवान्के अवतारोंका वर्णन करते हुए बताया है कि सृष्टिके आदिमें भगवान्ने पुरुषावतार धारण किया—'**जगृहे पौरुषं रूपम्।**' भगवान् नारायणका यही पुरुषरूप अनेक अवतारोंका अक्षय-कोष है, इसीसे सारे अवतार प्रकट होते हैं—'**एतन्नानावताराणां निधानं बीजमव्ययम्**' (श्रीमद्भा० १।३।५)। तदनन्तर व्यासजीने सनकादि, वाराह, नर-नारायण, कपिल, दत्तात्रेय, यज्ञ, ऋषभदेव, पृथु, मत्स्य, कूर्म, धन्वन्तरि, मोहिनी, नरसिंह, वामन, परशुराम, व्यास, श्रीराम, बलराम, कृष्ण, बुद्ध तथा कल्कि आदि अवतारोंका परिगणन करके फिर सभी अवतारोंकी मङ्गलमयी कथाएँ प्रतिपादित की हैं।

भगवान्के अवतारोंकी इयत्ता न होनेकी बात कहते हुए व्यासजी बताते हैं कि जैसे अगाध सरोवरसे हजारों छोटे-छोटे नाले निकलते हैं, वैसे ही सत्त्वनिधि भगवान् श्रीहरिके असंख्य अवतार हुआ करते हैं। ऋषि, मनु, देवता, प्रजापति, मनुपुत्र और जितने भी महान् शक्तिशाली पुरुष हैं, सब-के-सब भगवान्के ही अंश हैं। ये सब अवतार तो भगवान्के अंशावतार अथवा कलावतार हैं, परंतु श्रीकृष्ण तो स्वयं भगवान् (अवतारी) हैं—

'**एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।**'

(श्रीमद्भा० १।३।२८)

व्यासजी बताते हैं कि जो लोग भगवान्के लीलावतारकी

कथाओंका श्रद्धाके साथ नित्य श्रवण और कथन करते हैं, उनके हृदयमें थोड़े ही समयमें भगवान् प्रकट हो जाते हैं—

शृण्वतः श्रद्धया नित्यं गृणतश्च स्वचेष्टितम्।
कालेन नातिदीर्घेण भगवान् विशते हृदि॥

(श्रीमद्भा० २।८।४)

आगे फिर व्यासजीने भगवान्के विविध अवतारोंका विस्तारसे वर्णन किया है। भागवतके तृतीय स्कन्धमें वाराहावतार तथा कपिलावतारका वर्णन है। चतुर्थ स्कन्धमें ध्रुवके लिये भगवान्का 'श्रीहरि' नाम-रूपसे अवतार-धारण तथा पृथु-अवतारका वर्णन है, फिर पञ्चम स्कन्धमें ऋषभदेवजीका चरित्र है, सप्तम स्कन्धमें प्रह्लादचरित्र तथा भगवान् नृसिंहके प्रादुर्भावकी कथा है, अष्टम स्कन्धमें गजेन्द्रोद्धारक श्रीहरिकी कथा है, यहीं मोहिनी-अवतार तथा वामन-अवतारकी मंगलमयी कथा वर्णित है। नवम स्कन्धमें भगवान् श्रीरामके आविर्भाव तथा लीलाओंका वर्णन है। वहाँ व्यासजीने एक श्लोकमें उनसे सम्पूर्ण विश्वकी रक्षाकी प्रार्थना की है—

गुर्वर्थे त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवनं पद्मपद्भ्यां प्रियायाः
पाणिस्पर्शाक्षमाभ्यां मृजितपथरुजो यो हरीन्द्रानुजाभ्याम्।
वैरूप्याच्छूर्पणख्याः प्रियविरहरुषाऽऽरोपितभ्रूविजृम्भ-
त्रस्ताब्धिर्बद्धसेतुः खलदवदहनः कोसलेन्द्रोऽवतान्नः॥

(श्रीमद्भा० ९।१०।४)

व्यासजी कहते हैं—भगवान् श्रीरामने अपने पिता राजा दशरथके सत्यकी रक्षाके लिये राजपाट छोड़ दिया और वे वन-वनमें फिरते रहे। उनके चरणकमल इतने सुकुमार थे कि परम सुकुमारी श्रीजानकीजीके करकमलोंका स्पर्श भी उनसे सहन नहीं होता था। वे ही चरण जब वनमें चलते-चलते थक जाते, तब हनुमान् और लक्ष्मण उन्हें दबा-दबाकर उनकी थकावट मिटाते। शूर्पणखाके नाक-कान काटकर विरूप कर देनेके कारण उन्हें अपनी प्रियतमा श्रीजानकीजीका वियोग भी सहना पड़ा। इस वियोगके कारण क्रोधवश उनकी भौंहें तन गयीं, जिन्हें देखकर समुद्रतक भयभीत हो गया। इसके बाद उन्होंने समुद्रपर पुल बाँधा और लंकामें जाकर दुष्ट राक्षसोंके जंगलको दावाग्निके समान दग्ध कर दिया। वे कोसलनरेश हमारी रक्षा करें।

इसी क्रममें आगे विस्तारसे रामावतारका मङ्गलमय चरित्र वर्णित है। इसी नवम स्कन्धमें आगे भगवान् परशुरामजीके अवतारधारण तथा उनके पराक्रमका विस्तारसे प्रतिपादन किया गया है। दशम स्कन्धमें कृष्णावतारका तथा उसकी समस्त लीलाकथाओंका वर्णन है। आगे पुनः व्यासजीने एकादश स्कन्धके चौथे अध्यायमें संक्षेपमें अनेक अवतारोंका वर्णन किया है। भगवान्के लीलावतारोंके वर्णनमें वेदव्यासजी कहते हैं कि इस भागवतपुराणमें तो प्रत्येक कथा-प्रसंगमें पद-पदपर सर्वस्वरूप भगवान्का ही वर्णन हुआ है—

इह तु पुनर्भगवानशेषमूर्तिः
परिपठितोऽनुपदं कथाप्रसङ्गैः॥

(श्रीमद्भा० १२।१२।६५)

यह तो हुई भगवान् विष्णुके पूर्णावतार तथा अंशावतारोंकी बात। ऐसे ही व्यासजीने भगवान् श्रीसाम्बसदाशिवका लीलाचरित्र बतानेके लिये शिवपुराणकी रचना कर डाली। उन्होंने शिवपुराणमें भगवान् शिवके नन्दीश्वर, भैरव, यक्ष, दुर्वासा, हनुमान्, पिप्पलाद, द्विजेश्वर, यतिनाथ, हंस तथा अर्धनारीश्वर आदि अवतारोंका वर्णन सुन्दर लीला-प्रसंगोंमें किया है। भगवान् सदाशिवके सद्योजात, वामदेव, तत्पुरुष, अघोर तथा ईशान आदि विशिष्ट अवतारों, एकादश रुद्रोंके रूपमें भगवान् शिवके अवतरण, द्वादश ज्योतिर्लिंगों तथा अन्य लिंगोंके रूपमें स्वरूपधारणका विस्तारसे वर्णन किया गया है। ऐसे ही उनकी क्षिति, जल, तेज, वायु आदि मूर्तियोंका भी प्रतिपादन हुआ है।

देवीभागवतमें व्यासजीने भगवान्की लीलाशक्ति श्रीमहाकाली तथा दुर्गा आदिके अवतारोंका वर्णन किया है। मार्कण्डेयपुराण जो भगवती दुर्गाके विविध चरित्रोंमें ही पर्यवसित है, के अन्तर्गत श्रीदुर्गासप्तशती निर्दिष्ट है, जिसमें भगवतीके महाकाली, महालक्ष्मी तथा महासरस्वती आदि विविध स्वरूपों, जयन्ती आदि नौ दुर्गाओंका वर्णन है। ऐसे ही भगवती गायत्री, गौरी आदि मातृकाओं और दस महाविद्याओंके लीलाचरितोंका भी व्यासजीने विस्तारसे वर्णन किया है।

व्यासजीने आदिपूज्य भगवान् गणेशकी अवतार-लीलाओंका वर्णन करनेके लिये तो गणेशपुराण तथा मुद्गलपुराण नामसे दो पुराणोंकी स्वतन्त्र रचना की है।

इनमें महोत्कट, मयूरेश्वर, गजानन, वक्रतुण्ड, एकदन्त, महोदर, लम्बोदर, विकट, विघ्नराज तथा धूम्रवर्ण आदि नामोंसे भगवान् गणेशके अवतारोंका वर्णन है। ऐसे ही अष्टविनायकों आदिकी भी कथाएँ उन्होंने हमें बतायी हैं।

प्रत्यक्ष अवतार भगवान् सूर्यकी महिमा तो प्रायः सभी पुराणोंमें व्यासजीने बतायी है, उनमें भी भविष्यपुराण तथा सौरपुराण और भागवत आदिमें द्वादश आदित्योंकी सुन्दर कथाएँ आयी हैं।

भगवान् अपने अवतरणके साथ ही अपनी क्रियाशक्ति अथवा लीलाशक्ति, पार्षदों तथा परिकरोंके साथ ही जगत्‌में आकर लीला करते हैं और भक्तोंको आनन्दित करते हैं। यह बात भी श्रीव्यासजीने ही हमें बतायी है। व्यासजीने एक स्थलपर तो यहाँतक कहा है कि भगवान् अपने लीलाचरित्रोंके माध्यमसे लोगोंको शिक्षा देनेके लिये, अपने भक्तोंकी बात रखनेके लिये तथा उनके विश्वासकी रक्षा करनेके लिये ही अवतरित होते हैं—

'मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणम्।'

(श्रीमद्भा० ५।१९।५)

तथा

'सत्यं विधातुं निजभृत्यभाषितम्।'

(श्रीमद्भा० ७।८।१८)

ऐसे ही महाभारत आदि ग्रन्थोंमें भी व्यासजीने भगवान्‌की अवतार-कथाओंका वर्णन किया है। अपने वेदान्त-दर्शनमें उन्होंने अवतारवादकी सिद्धि तथा भगवान्‌के द्वारा अवतार धारणकर लीला करनेकी बात सिद्ध की है जो **'ईक्षतेर्नाशब्दम्'** (१।१।५), **'विरोधः कर्मणीति चेन्नानेकप्रतिपत्तेर्दर्शनात्'** (१।३।२७) तथा **'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्'** (२।१।३३) आदि सूत्रोंद्वारा इंगित है।

इस प्रकार भगवान् वेदव्यासजीके कृपाप्रसादसे ही लोकमें भगवान्‌की लीलाकथाओंका ज्ञान हुआ। वेदादि ग्रन्थोंमें तो सूत्ररूपमें अवतारोंका निरूपण है, उसका वेदव्यासजीने इतिहास (महाभारत) तथा पुराणोंकी रचना करके कथाओंके माध्यमसे उपबृंहण (विस्तार) किया— **'इतिहासपुराणाभ्यां वेदार्थं समुपबृंहयेत्।'** व्यासजीकी इस रूपमें जगत्‌पर कितनी कृपा है, यह विचार करनेकी बात है। इतना ही नहीं, वे प्रत्येक कल्पके द्वापरयुगमें विभिन्न नाम-रूपोंमें अवतरित होकर अपने वाङ्मयद्वारा लोगोंको भगवान्‌की लीलाकथाओंका ज्ञान कराते हैं। लोग उनके मुखकमलसे निःसृत वाङ्मयरूपी सुधाधाराका पान करते हैं—

'यस्यास्यकमलगलितं वाङ्मयममृतं जगत् पिबति।'

(वायुपुराण १।१।२)

कदाचित् भगवान् व्यासजी ऐसी कृपा न करते तो लोक भगवत्कथाज्ञानसे शून्य ही रहता। ऐसे कृपावतार तथा विशुद्ध विशाल बुद्धि-वैभवसे सम्पन्न वेदव्यासजीको नमस्कार है—**'नमोऽस्तु ते व्यास विशालबुद्धे'** (ब्रह्म० २४५।११)।

~~~ o ~~~

देवताओंके अंशसे पाण्डवोंका अवतरण

यदुवंशमें शूरसेन नामक एक श्रेष्ठ राजा हुए, जो वसुदेवजीके पिता थे। शूरसेनको एक कन्याकी प्राप्ति हुई, जिसका नाम पृथा रखा गया। शूरसेनके फुफेरे भाई कुन्तिभोज सन्तानहीन थे। शूरसेनने कुन्तिभोजसे पहले ही प्रतिज्ञा कर रखी थी कि मैं तुम्हें अपनी पहली सन्तान भेंट कर दूँगा। प्रतिज्ञाके अनुसार शूरसेनने अपनी पहली सन्तान जो एक कन्या थी, कुन्तिभोजको दे दी। कुन्तिभोजकी धर्मकन्या होनेसे पृथाका नाम कुन्ती हो गया। कुन्तीको घरपर देवताओंके पूजन तथा अतिथियोंके सत्कारका कार्य सौंपा गया। एक समय वहाँ महर्षि दुर्वासाजी आये। महान् क्रोधी दुर्वासाजीको कुन्तीने अपने सेवाभावसे संतुष्ट कर दिया। आशीर्वादस्वरूप महर्षि दुर्वासाने उन्हें एक वशीकरण मन्त्र दिया एवं उसके प्रयोगकी विधि भी बता दी और कहा—'शुभे! तुम इस मन्त्रद्वारा जिस-जिस देवताका आवाहन करोगी, उसी-उसीके अनुग्रहसे तुम्हें पुत्र प्राप्त होगा'—

यं यं देवं त्वमेतेन मन्त्रेणावाहयिष्यसि।
तस्य तस्य प्रसादेन पुत्रस्तव भविष्यति॥

(महा० आदि० ११०।७)

यूँ ही समय बीतता गया। कुन्ती विवाहयोग्य हो
~~~

गयी। राजा कुन्तिभोजने स्वयंवरका आयोजन किया और स्वयंवरमें कुन्तीने भरतवंशशिरोमणि नृपश्रेष्ठ पाण्डुका वरण किया। कुन्ती महाराज पाण्डुके साथ हस्तिनापुर आ गयी। महाराज पाण्डुका दूसरा विवाह मद्रदेशके अधिपति शल्यकी बहन माद्रीके साथ हुआ। एक समयकी बात है, राजा पाण्डु विशाल वनमें विचरण कर रहे थे, वहाँ एक मृग-मृगीके युगलको उन्होंने बींध डाला, वास्तवमें वे ऋषिदम्पति थे। फलस्वरूप उन्हें ऋषिद्वारा शाप प्राप्त हुआ कि वे भी कदाचित् स्त्रीप्रसंगमें प्रवृत्त होंगे तो उन्हें मृत्युका वरण करना पड़ेगा। ऋषिका यह दारुण शाप सुनकर राजा अत्यन्त दु:खी तथा भयभीत हो गये और फिर वानप्रस्थधर्मका आश्रय लेकर शतशृंग पर्वतपर दोनों रानियोंके साथ वे तपस्यामें प्रवृत्त हो गये, किंतु संतानहीनताका कष्ट उन्हें सताता रहा। एक दिन उन्होंने कुन्तीके सामने अपनी चिन्ता प्रकट की और पुत्रप्राप्तिके लिये कोई अन्य प्रयत्न करनेकी आज्ञा दी। तब कुन्तीने हाथ जोड़कर बाल्यावस्थामें महर्षि दुर्वासासे प्राप्त वरदानकी बात उन्हें बतलायी और कहा—'आप आज्ञा दें, मैं किस देवताका आवाहन करूँ।' कुन्तीकी बात सुनकर पाण्डुको बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने कहा—'प्रिये! मैं धन्य हूँ, तुमने मुझपर महान्

अनुग्रह किया। तुम्हीं मेरे कुलको धारण करनेवाली हो। उन महर्षिको नमस्कार है, जिन्होंने तुम्हें वैसा वर दिया। धर्मज्ञे! अधर्मसे प्रजाका पालन नहीं हो सकता। इसलिये वरारोहे! तुम आज ही विधिपूर्वक प्रयत्न करो। शुभे! सबसे पहले धर्मका आवाहन करो; क्योंकि वे ही सम्पूर्ण लोकोंमें धर्मात्मा हैं। धर्मके द्वारा दिया हुआ जो पुत्र होगा, उसका मन अधर्ममें नहीं लगेगा'—

धर्ममावाहय शुभे स हि लोकेषु पुण्यभाक्॥
धर्मेण चापि दत्तस्य नाधर्मे रंस्यते मनः॥

(महा० आदि० १२१।१७, १९)

पतिकी आज्ञा प्राप्तकर कुन्तीने उनकी परिक्रमा की और अच्युतस्वरूप भगवान् धर्मका आवाहन किया। ऋषियोंका वरदान अमोघ होता है। कुन्तीके आवाहन करते ही साक्षात् धर्मदेवता सूर्यके समान तेजस्वी विमानमें बैठकर उस स्थानपर पहुँचे, जहाँ देवी कुन्ती जप कर रही थीं। देवी कुन्तीका आशय समझकर धर्मदेवताने उन्हें पुत्रप्राप्तिका योग प्राप्त कराया और यथासमय कुन्तीने साक्षात् धर्मावतार एक पुत्रको जन्म दिया। वे ही धर्मराज युधिष्ठिरके नामसे विख्यात हुए। पुत्रके जन्म लेते ही अद्भुत आकाशवाणी हुई, जो इस प्रकार है—

एष धर्मभृतां श्रेष्ठो भविष्यति नरोत्तमः।
विक्रान्तः सत्यवाक् त्वेव राजा पृथ्व्यां भविष्यति॥
युधिष्ठिर इति ख्यातः पाण्डोः प्रथमजः सुतः।
भविता प्रथितो राजा त्रिषु लोकेषु विश्रुतः॥
यशसा तेजसा चैव वृत्तेन च समन्वितः।

(महा० आदि० १२२।८—१०)

अर्थात् यह श्रेष्ठ पुरुष धर्मात्माओंमें अग्रगण्य होगा और इस पृथ्वीपर पराक्रमी एवं सत्यवादी राजा होगा। पाण्डुका यह प्रथम पुत्र 'युधिष्ठिर' नामसे विख्यात हो तीनों लोकोंमें प्रसिद्धि एवं ख्याति प्राप्त करेगा; यह यशस्वी, तेजस्वी तथा सदाचारी होगा।

धर्मके अंशावतार धर्मराज युधिष्ठिरको पुत्ररूपमें प्राप्तकर पाण्डुको महान् प्रसन्नता हुई। वे पुनः कुन्तीसे बोले—प्रिये! क्षत्रियको बलसे ही बड़ा कहा गया है, अतः एक ऐसे पुत्रका वरण करो, जो बलमें सबसे श्रेष्ठ हो। चूँकि वायुदेवता बल-पराक्रममें सबसे बढ़-चढ़कर हैं, अतः तुम इस बार वायुदेवका आवाहन करो। पतिकी आज्ञासे कुन्तीने वायुदेवका ध्यान कर उनका आवाहन किया। उसी समय

मृगपर आरूढ हो वायुदेव वहाँ उपस्थित हुए और देवी कुन्तीका आशय समझकर उसे पुत्रप्राप्तिका वर दिया। फलस्वरूप महाबाहु भीमका प्राकट्य हुआ।

भीमसेनको पुत्ररूपमें प्राप्तकर दैववश पाण्डुके मनमें एक ऐसे पुत्रकी अभिलाषा जगी, जो सब प्रकारसे श्रेष्ठ तथा सभी सुलक्षणोंसे सम्पन्न हो। तब उन्होंने विचार किया कि देवताओंमें इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं, अत: पुत्रप्राप्तिके लिये मुझे भी उनकी आराधना करनी चाहिये। यह निश्चय कर वे एक पैरपर खड़े होकर उग्र तपमें प्रवृत्त हो गये। उनके तपसे प्रसन्न हो इन्द्र उपस्थित हुए और कहा—'राजन्! मैं तुम्हें ऐसा पुत्र दूँगा, जो तीनों लोकोंमें विख्यात होगा'—

'पुत्रं तव प्रदास्यामि त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्॥'

(महा० आदि० १२२। २८)

तदुपरान्त पाण्डुने देवी कुन्तीसे कहा—'कल्याणि! देवताओंके स्वामी इन्द्र हमपर प्रसन्न हैं और तुम्हारे सङ्कल्पके अनुसार तुम्हें पुत्र देना चाहते हैं, अत: ऐश्वर्यशाली पुत्रकी प्राप्तिके लिये तुम देवराज इन्द्रका आवाहन करो।' तदनन्तर देवी कुन्तीने देवराज इन्द्रका स्मरण कर उनका आवाहन किया। वज्रधर देवराज इन्द्र उपस्थित हो गये और

उन्होंने कुन्तीके माध्यमसे अर्जुनको जन्म दिया। फाल्गुन मास और फाल्गुनी नक्षत्रमें जन्म लेनेके कारण उनका नाम फाल्गुन हुआ। उसी समय इस प्रकार आकाशवाणी हुई—

कार्तवीर्यसमः कुन्ति शिवतुल्यपराक्रमः।
एष शक्र इवाजय्यो यशस्ते प्रथयिष्यति॥
अदित्या विष्णुना प्रीतिर्यथाभूदभिवर्धिता।
तथा विष्णुसमः प्रीतिं वर्धयिष्यति तेऽर्जुनः॥

(महा० आदि० १२२। ३८-३९)

'कुन्तिभोजकुमारी! यह बालक कार्तवीर्यार्जुनके समान तेजस्वी, भगवान् शिवके समान पराक्रमी और देवराज इन्द्रके समान अजेय होकर तुम्हारे यशका विस्तार करेगा। जैसे भगवान् विष्णुने वामनरूपमें प्रकट होकर देवमाता अदितिके हर्षको बढ़ाया था, उसी प्रकार यह अर्जुन तुम्हारी प्रसन्नताको बढ़ायेगा।'

इसी आकाशवाणीके साथ आकाशसे पुष्पवृष्टि होने लगी और देव-दुन्दुभियोंका तुमुलनाद बड़े जोरसे गूँज उठा। देवता वहाँ उपस्थित होकर अर्जुनकी प्रशंसा करने लगे।

इधर, देवी माद्रीके मनमें भी संतान-सुखकी लालसा जगी। उन्होंने महाराज पाण्डुसे प्रार्थना की कि आप कुन्तीसे पुत्रविषयक मेरी अभिलाषा बतानेकी कृपा करें। तब पाण्डुने एकान्तमें कुन्तीसे माद्रीके मनकी बात कही। पाण्डुके ऐसा कहनेपर कुन्तीने माद्रीसे कहा—

तुम एक बार किसी देवताका चिन्तन करो, उससे तुम्हें योग्य संतानकी प्राप्ति होगी, इसमें संशय नहीं है—

एवमुक्त्वाब्रवीन्माद्रीं सकृच्चिन्तय दैवतम्।
तस्मात् ते भवितापत्यमनुरूपमसंशयम्॥

(महा० आदि० १२३। १५)

तब माद्रीने बहुत सोच-विचारकर दोनों अश्विनीकुमारोंका स्मरण किया और उन दोनोंने उपस्थित होकर दो युगल पुत्र माद्रीको प्राप्त कराये। उनमेंसे एकका नाम था नकुल और दूसरेका सहदेव। उसी समय आकाशवाणी हुई—

सत्त्वरूपगुणोपेतौ भवतोऽत्यश्विनाविति।
भासतस्तेजसात्यर्थं रूपद्रविणसम्पदा॥

(महा० आदि० १२३। १८)

अर्थात् ये दोनों बालक अश्विनीकुमारोंसे भी बढ़कर बुद्धि, रूप और गुणोंसे सम्पन्न होंगे। अपने तेज तथा बढ़ी-चढ़ी रूप-सम्पत्तिके द्वारा ये दोनों सदा प्रकाशित रहेंगे।

इस प्रकार पाँचों पाण्डव देवताओंके अंशावतारके रूपमें प्रकट हुए और उन्होंने धर्मकी रक्षाके लिये महान् प्रयत्न किया। ये पाँचों भगवान्‌के अनन्य भक्त थे। इनकी महिमामें कहा गया है कि महाराज धर्मराज युधिष्ठिरका नाममात्र लेनेसे धर्मकी वृद्धि होती है। वायुदेवके अवतार वृकोदर भीमका कीर्तन करनेसे पाप नष्ट हो जाता है, देवराज इन्द्रके अवतार धनंजय अर्जुनका नाम लेनेसे शत्रुका विनाश हो जाता है और अश्विनीकुमारोंके अवतार देवी माद्रीके पुत्रों नकुल-सहदेवका नाम लेनेसे कोई रोग नहीं होते—

धर्मो विवर्धति युधिष्ठिरकीर्तनेन
पापं प्रणश्यति वृकोदरकीर्तनेन।
शत्रुर्विनश्यति धनञ्जयकीर्तनेन
माद्रीसुतौ कथयतां न भवन्ति रोगाः॥

अर्जुनको तो साक्षात् नरका अवतार कहा गया है। साक्षात् हरि ही जब भक्तोंपर कृपा करनेके लिये नाना अवतार धारण करते हैं तो वे ही नर-नारायण—इन दो रूपोंमें अवतार धारण कर बदरिकाश्रममें लोकमंगलके लिये तप करते हैं और वे ही पुनः श्रीकृष्णचन्द्र और अर्जुनके रूपमें द्वापरके अन्तमें पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए। इसी तथ्यको महाभारतमें बताते हुए कहा गया है कि एक ही सत् तत्त्व नर-नारायणके रूपमें द्विधा व्यक्त है, नारायणको कृष्ण तथा फाल्गुन (अर्जुन)-को नर कहा गया है—

एष नारायणः कृष्णः फाल्गुनश्च नरः स्मृतः।
नारायणो नरश्चैव सत्त्वमेकं द्विधा कृतम्॥

(महा० उद्यो० ४९।२०)

देवांशसे प्रकट हुए पाण्डवोंके दिव्य चरित्रमें ध्यान देने योग्य बात यह है कि उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णका आश्रय ग्रहण किया था। धर्मराज श्रीकृष्णचन्द्रको ही अपना सर्वस्व मानते थे। वे श्रीकृष्णकी इच्छाके अनुसार ही चलते थे। भगवान्‌में भक्ति होना, भगवान्‌के प्रति सम्पूर्ण रूपसे आत्मसमर्पण कर देना ही धर्मका लक्ष्य है। यही बात, यही आत्मनिवेदन पाण्डवोंमें था और इसीसे श्यामसुन्दर सदा उन्हींके पक्षमें रहते थे। पाण्डवोंकी विजय इसी धर्म तथा भक्तिके कारण हुई।

भगवान् अवतार क्यों लेते हैं?

[परम ब्रह्मनिष्ठ संत श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजके उपदेश]

एक बार श्रीमन्महाप्रभु श्रीगौरांगदेवजी महाराज बैठे हुए थे। उनके किसी शिष्यने पूछा कि महाराज परमात्मा निराकारसे साकार कैसे हो गये? यह सुनकर श्रीमहाप्रभुजी रोने लगे और कहा कि इस धर्मप्राण भारतभूमिपर ऐसा कौन है जो ऐसा बेतुका प्रश्न करता है? अरे! जब परमात्मामें सारी शक्तियाँ हैं, तब क्या वे निराकारसे साकार नहीं हो सकते? यदि भक्त विपत्तिमें है, संकटमें है तो क्या भगवान् साकार होकर उसकी रक्षा—सहायताको नहीं आ सकते? भगवान् या तो धर्मकी पुनः स्थापनाके लिये या धर्मपर आघात करनेवालोंके मूलोच्छेदके लिये अवतार लेते हैं अथवा भक्तकी भक्तिसे अभिभूत होकर दर्शन देकर उसका कल्याण करनेके लिये अवतरित होते हैं।

× × ×

एक वयोवृद्ध ब्रह्मनिष्ठ महात्मा भगवान्‌की परम कृपा की अनुभूति कर कहा करते थे कि जिस ईश्वरसे हम बातचीत नहीं कर सकते, जिस ईश्वरसे हम सुख-दुःख भी नहीं कह सकते, जिस ईश्वरसे हम मिल-जुल नहीं सकते, हमें ऐसे निराकार ईश्वरसे क्या करना है? हम तो ईश्वरके साथ कृष्णके बालसखा बनकर खेलेंगे।

× × ×

भगवान् भक्तोंके प्रेमके वशीभूत होकर निराकारसे साकार हो जाते हैं। वे साकार होते हुए भी निराकार होते हैं। दो प्रकारके अवतार हमारे यहाँ होते हैं—१-निमित्त और २-नैमित्तिक। श्रीराम और श्रीकृष्ण साक्षात् अवतार थे।

ब्रह्मा, वसिष्ठ, महर्षि वाल्मीकि आदि जिसे ध्यानमें

वामन-लीलाका रहस्य

(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

भगवान्‌की अनेक मङ्गलमयी लीलाएँ हैं। अनेक ढंगके भगवान्‌के भक्त हुए और भगवान्‌का अनेक रूपोंमें आविर्भाव हुआ।

कहते हैं, वलि पूर्वजन्मका कोई जुआरी था। एक दिन उसे जुएमें कहीं कुछ पैसे मिले। उन पैसोंकी उसने एक बड़ी सुन्दर माला खरीदी, भगवान्‌के लिये नहीं, अपनी किसी प्रियतमा वेश्याके लिये। माला हाथमें लिये वह कामान्ध जल्दी-जल्दी अपनी प्रियतमाका रूप-चिन्तन करते हुए जा रहा था कि किसी पाषाणसे ठोकर खाकर गिर पड़ा और मूर्च्छित हो गया। कुछ देरमें होश आया तो उसने अनुभव किया कि 'अब मैं मर जाऊँगा।' फिर सोचा—'ठीक है, मर तो जाऊँगा, लेकिन मेरी इस मालाका क्या होगा? मेरी यह सुन्दर माला मेरी प्रियतमातक तो पहुँची नहीं। हाँ ठीक है, मैंने कभी किसी महात्मासे सुना था कि कोई भी वस्तु 'शिवार्पण' कर देनेसे बहुत लाभ होता है। 'शिवार्पण' कर देनेसे कुछ होता होगा तो हो जायगा और यदि न होगा तो भी मर तो रहा ही हूँ, माला बेकार तो जा ही रही है।' इस दृष्टिसे जुआरीने माला शिवजीको अर्पण कर दी।

जुआरी माला 'शिवार्पण' करके मर गया। यमराजके दूत पकड़कर ले गये। यमराजके सामने खड़ा किया। उन्होंने चित्रगुप्तसे कहा—'देखो, इसका बहीखाता।'

चित्रगुप्तने कहा—'यह तो जन्म-जन्मान्तर, युग-युगान्तर, कल्प-कल्पान्तरका पापी है।'

यमराजने कहा—'इसके पुण्य भी तो देखो।'

चित्रगुप्तने देखकर कहा—'पुण्य तो कोई है नहीं।'

यमराजने कहा—'फिर देखो!'

चित्रगुप्तने पुनः ध्यानपूर्वक देखा और कहा—'बस, अभी-अभी थोड़ी देर पहले जुएमें पैसा पाकर इसने माला खरीदी थी वेश्याके लिये। ठोकर खाकर रास्तेमें गिर पड़ा। इसने देखा कि माला अब निरर्थक हो रही है तो

'शिवार्पण' कर दिया। यह कोई भगवान्‌को माला अर्पण करनेवाला तो था नहीं, पर देखा जब मर ही रहे हैं तो 'शिवार्पण' कर दें, इसी भावनासे इसने माला 'शिवार्पण' कर दी। बस, यही एक इसका पुण्य है।'

यमराजने कहा—'भाई, इसका है तो कुछ पुण्य', फिर उन्होंने जुआरीसे पूछा—'भाई, तुम पहले पुण्यका फल भोगोगे या पापका?'

जुआरीने कहा—'सुन रहा हूँ—पाप तो जन्म-जन्मान्तर, युग-युगान्तर, कल्प-कल्पान्तरके हैं, उनको भोगने लगूँगा तो उनके अन्तका कुछ पता नहीं कि कब अन्त हो। इसलिये पहले पुण्यका फल भोगना चाहूँगा।'

यमराजने कहा—'तुम दो घड़ीके लिये इन्द्रलोकके मालिक बने।' जुआरी दो घड़ीके लिये इन्द्रलोकका मालिक बना। इन्द्रासनपर विराजमान हुआ। अप्सराएँ गुणगान करने आयीं, गन्धर्व गुणगान करने लगे। उन गन्धर्वोंमें नारद भी थे। नारदको हँसी आ गयी।

जुआरीने कहा—'इन्द्रके दरबारमें बे-अदबी, हँसते हो?'

नारदजीने कहा—'नहीं, नहीं, कुछ नहीं।'

जुआरीने कहा—'बताओ, क्यों हँसते हो?'

नारदजीने कहा—'हमको एक श्लोक याद आता है, इसको पूर्वमीमांसक भी मानते हैं और नैयायिक भी मानते हैं—

संदिग्धे परलोकेऽपि कर्तव्यः पुण्यसंचयः।
नास्ति चेन्नास्ति नो हानिरस्ति चेन्नास्तिको हतः॥

अर्थात् परलोकमें संशय हो तो भी पुण्यका संचय करते चलो। अगर परलोक नहीं है तो आस्तिकको कोई नुकसान नहीं है; कहीं परलोक सत्य हुआ तो नास्तिक मारा जायगा।

जुआरी, तू जीवनपर्यन्त जुआ खेलता रहा। जुआमें कोई निश्चित आमदनी तो होती नहीं—'लग गया तो तीर, नहीं तो तुक्का।' तूने यही सोचा कि 'शिवार्पण' करनेसे कुछ होता होगा तो हो जायगा, न होगा तो मर तो रहे ही हैं, माला तो बेकार जा ही रही है, शिवको अर्पण कर दें।' इस दृष्टिसे तूने शिवार्पण किया और उसका परिणाम यह हुआ कि दो घड़ीके लिये तुम इन्द्रलोकके स्वामी बन गये। इसलिये मुझे हँसी आ रही है। जुआरी सिंहासनसे उतरा और नारदजीसे कहा—'गुरुदेव! अब हम सारे इन्द्रासनपर तुलसी रख देते हैं।' इतना कहनेके बाद उसने किसी ब्राह्मणको बुलाया और चिन्तामणिका दान कर दिया, किसी ब्राह्मणको नन्दनवन, किसीको ऐरावत और किसीको अमृतके कुण्ड-

के-कुण्ड दान कर दिये। इस प्रकार उस जुआरीने सम्पूर्ण इन्द्रलोकका ही दान कर दिया। इतनेमें दो घड़ी बीत गयी।

इन्द्र आये और बोले—'हमारा ऐरावत हाथी कहाँ है?'

उत्तर मिला—'जुआरी दान कर गया।'

इन्द्र बोले—'कामधेनु आदि कहा हैं?'

'सब कुछ जुआरीने दान दे डाला', उत्तर मिला। बड़े बिगड़े इन्द्र। यमराजके पास आये। यमराज भी जुआरीको डाँटने लगे।

जुआरीने कहा—'भैया, हमें जो करना था हमने कर लिया, अब आपको जो करना हो कर लो।'

यमराजकी जब आँखें खुलीं, तब उन्होंने कहा कि अब यह नरक नहीं जायगा, अब तो यह इन्द्र ही होगा। जब नाजायज उद्देश्यसे खरीदी हुई नाजायज पैसेकी मालाको संशय रहनेपर भी 'शिवार्पण' कर दिया, उसके फलस्वरूप दो घड़ीके लिये इन्द्र बना, फिर इस समय तो इसने विधिवत् इन्द्रलोकका ही दान कर दिया है। इसलिये

'असंतुष्टा द्विजा नष्टाः संतुष्टाश्च महीभुजः।'

शुक्राचार्य महाराज सब सुन रहे थे। सोच रहे थे यह क्या तमाशा है? तबतक यज्ञके पूर्वद्वारपर ऋग्वेदी ब्राह्मण बोल पड़ा—

'इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्। समूढमस्य पांसुरे॥' (ऋग्वेद १।२२।१७)

शुक्राचार्यजीका माथा ठनका। वे सोचने लगे—'कहते हैं कि ज्ञान अपने-आपको बार-बार दोहराया करता है। कहीं ऐसा तो नहीं कि तीन पग माँगनेवाला यह वामन वटुक विष्णु ही हो?' उन्होंने कहा—'बेटा बलि! तीन पग न देना, और जो चाहे देना। तीन पग देना खतरेसे खाली नहीं। ये विष्णु हैं, त्रैलोक्याधिपति हैं, हो सकता है तीन पग माँगकर तेरा चराचर विश्व—सर्वस्व हरण कर लें।'

शुक्राचार्यजी महाराज ज्ञान-विज्ञानके निधान हैं। सर्वदर्शी हैं, ब्रह्मविद्वरिष्ठ हैं। संजीवनी-विद्याके महान् आचार्य हैं। वे जो कुछ भी कह रहे थे, ठीक ही कह रहे थे।

आचार्य शुक्राचार्य पुनः बलिको सम्बोधित करते हुए बोले—'स्वयं भगवान् ही अपनी योगमायासे ब्रह्मचारी बनकर बैठे हुए हैं। ये तुम्हारा राज्य, ऐश्वर्य, लक्ष्मी, तेज और विश्वविख्यात कीर्ति—सब कुछ छीनकर इन्द्रको दे देंगे। ये विश्वरूप हैं। तीन पगमें तो सारे लोकोंको नाप लेंगे। मूर्ख! तुम अपना सर्वस्व ही विष्णुको दे डालोगे तो तुम्हारा जीवन-निर्वाह कैसे होगा? ये विश्वव्यापक भगवान् एक पगमें पृथ्वी और दूसरे पगमें स्वर्गको माप लेंगे। इनके विशाल शरीरसे आकाश भर जायगा। तब इनका तीसरा पग कहाँ जायगा? तुम उसे पूरा न कर सकोगे। ऐसी दशामें मैं समझता हूँ कि प्रतिज्ञा करके पूरा न कर पानेके कारण तुम्हें नरकमें ही जाना पड़ेगा; क्योंकि तुम अपनी की हुई प्रतिज्ञाको पूर्ण करनेमें सर्वथा असमर्थ हो जाओगे।' (श्रीमद्भा० ८।१९।३२—३५)

राजा बलिने कहा—'गुरुदेव, ठीक है। पर आपका शिष्य होकर झूठ बोलूँ, अस्वीकार कर दूँ? यदि ये ब्राह्मणदेव साक्षात् विष्णु हैं, तब तो हमें जीतकर भी सब कुछ ले लेंगे। इन्होंने हिरण्याक्षको मारा कि नहीं? यह तो हमारा सौभाग्य है, जो स्वयं माँगने आये हैं। इनका हाथ नीचे होगा और मेरा हाथ ऊपर होगा।'

इस प्रकार राजा बलिने दृढ़तापूर्वक सत्यका पालन करना ही उचित समझा। श्रीशुक्राचार्यके बहुत समझानेपर भी सत्यका त्याग नहीं किया। शुक्राचार्य महाराज नाराज हो गये, शाप दे दिया, परंतु बलिने दान कर दिया। फिर क्या बात थी। भगवान्ने दो पगमें सब कुछ ले लिया, तृतीय पगका दान बाकी रहा।

भगवान् बोले—'तुमने तीन पग भूमि दान करनेकी प्रतिज्ञा की थी न? परंतु मैंने दो पगमें ही तेरा सब कुछ ले लिया, अभी एक पग तो बाकी ही रहा।'

भगवान्के पार्षदोंने राजा बलिको बाँध दिया। राजा
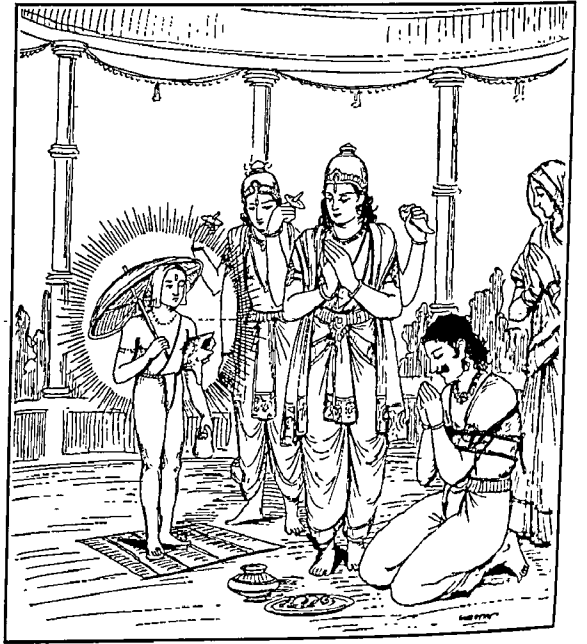
बलिके भक्तसेवक युद्ध करनेको उद्यत हुए। विष्णुके महान् पार्षदोंने सबको खदेड़कर भगा दिया। बलिने उन्हें समझाया—'भाई! इस समय युद्धका समय नहीं है। काल भगवान् हमारे प्रतिकूल हैं। इस समय युद्ध मत करो। जो लोग कभी सामने खड़े नहीं होते थे, वे ही आज सामने हैं, जोरोंसे निनाद कर रहे हैं। कोई बात नहीं।'

यह सब प्रपञ्च चलता रहा। ब्रह्माजी आये, बोलना चाहते थे। इतनेमें विन्ध्यावली, जो बलिकी पत्नी थी, वह बोल पड़ी—'भगवन्! आपने अनन्त ब्रह्माण्डात्मक आधि-भौतिक और आध्यात्मिक प्रपञ्च अपनी क्रीडाके लिये

चली जाय? यही सोचकर बावनों दरवाजोंपर शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये हुए सर्वान्तरात्मा, ब्रह्माण्डनायक भगवान् पहरेदारके रूपमें विराजमान हो गये।

भगवान्‌की इस कृपालुताके कारण ही भक्तराज प्रह्लादने कहा—महाराज! लोग कहते हैं कि आप देवताओंके पक्षपाती हैं, परंतु हमको तो लगता है कि आप हम असुरोंके पक्षपाती हैं। इन्द्र, कुबेरादि किसी देवताके पहरेदार—द्वारपाल तो आप कभी नहीं बने! परंतु हम असुरोंके आप द्वारपाल बन रहे हैं। इसलिये सदा-सर्वदा आप हमारे ही पास रहें।

लीलाका रहस्य—असली बात क्या थी। उस जुआरीने माला भगवान्‌को अर्पण कर दी थी। पत्र-पुष्प-फल-जल जो कुछ भी भगवान्‌के लिये अर्पित कर दिया जाय, वह अनन्तगुणित होकर प्रतिफलित होता है। साथ-ही-साथ यह बड़ी ऊँची बात है कि जो अनात्मविद् है, वह अनात्माके प्रलोभनमें फँसकर आत्माको नरकमें भेजनेमें जरा भी हिचकता नहीं, अर्थात् अनात्मविद् धन-वैभवके लिये आत्माको नरकमें भी भेज सकता है। इसके विपरीत जो आत्मविद् हैं, वे जानते हैं कि आत्माके लिये अनात्मा है, अनात्माके लिये आत्मा नहीं है। इसलिये किसी भी शर्तपर वे आत्माको नरकमें भेजना नहीं चाहते। अर्थात् किसी भी विषय-विलासमें फँसकर, किसी भी ऐश्वर्य-वैभवके प्रलोभनमें आकर आत्माको नरकमें भेजनेका उद्योग नहीं करते। आत्मविद् था राजा बलि। उसने झूठ बोलकर अपने-आपको पतित नहीं बनाया, बल्कि धनको और स्वयंको भी भगवान्‌के प्रति समर्पित कर दिया। हर हालतमें आत्माके अभ्युदय और मोक्षको चाहनेवाले राजा बलि उत्कृष्ट कोटिके भक्त हुए।

(प्रेषक—(प्रो०) श्रीबिहारीलालजी टांटिया)

अवतारतत्त्व-साधना

(श्रीमज्जगद्‌गुरु श्रीरामानुज-सम्प्रदायाचार्य आचार्यपीठाधिपति श्रीराघवाचार्य स्वामीजी महाराज)

कर्मठको कर्मयोग, ज्ञानीको ज्ञानयोग तथा भक्तको भक्तियोगका उपदेश देनेके साथ ही गीताचार्य श्रीकृष्णने अवतारतत्त्व-साधनाका भी उपदेश दिया है। साधनाकी यह पद्धति अर्जुनने जाननी नहीं चाही थी; किंतु करुणा-वरुणालयने दयाकी राह इसका उपदेश दे डाला। पार्थने सीधी तरहसे यह पूछा था कि—'श्रीकृष्ण! आप तो वसुदेवके पुत्र हैं। आप बताते हैं कि आपने पहले विवस्वान्‌को उपदेश दिया था। भला आप तब कहाँ थे?' इस प्रश्नके उत्तरमें दयामयने अपने स्वरूपका परिचय दे ही डाला। वे अपने-आपको छिपा न सके। अपना स्वभाव भी उनको बताना ही पड़ा। यह प्रकरण आता है गीताके चतुर्थ अध्यायके आरम्भमें। केवल पाँच श्लोक हैं इस प्रकरणमें। श्लोक ५ से ९ तक। प्रकरण अधूरा नहीं, पूर्ण है। भगवान्‌ने अपना हृदय खोलकर अपने प्रिय सखा और भक्तके सामने रख दिया। इतना ही नहीं, उन्होंने संसारके लिये परम पुरुषार्थका अत्यन्त सुलभ द्वार भी खोल दिया।

बात कोई नयी नहीं है। पुरानी और बहुत पुरानी है। अनन्त अपौरुषेय वेदने '**अजायमानो बहुधा वि जायते**' कहकर इस साधनाका उपदेश दिया था; किंतु इस उपदेशने एक ऐसी उलझन उपस्थित कर दी थी जिसको सुलझानेमें ही बहुत-से लोग उलझ गये। श्रुतिका सीधा-सा अर्थ है—'अजन्मा बहुत प्रकारसे जन्म लेता है।' अजन्मा जन्म ग्रहण करे, सामान्य बुद्धिसे यह बात समझमें नहीं आ सकती। आनी भी नहीं चाहिये परंतु बात है सोलहों आने सत्य। यह श्रुतिवाक्य है। साधारण पौरुषेय वाक्य नहीं, जिसमें भ्रम-प्रमाद आदि दोष सम्भव हों। श्रुतिवाक्यमें जो कुछ कहा गया है वह किसी सामान्य व्यक्तिके सम्बन्धमें नहीं, साक्षात् परब्रह्म परमात्माके सम्बन्धमें। श्रुतिवाक्यकी यह घोषणा है कि वह सर्वेश्वर अजन्मा रहते हुए भी अनेकों वार जन्म ग्रहण करते हैं। भगवान् श्रीकृष्णने यही बात अपने शब्दोंमें दुहरा दी। भगवान्‌के ये शब्द स्पष्ट हैं; इनमें उलझन नहीं है। उन्होंने कहा—

'बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि…।'

अर्थात् 'मेरे बहुत-से जन्म हो चुके हैं।' और कोई होता तो श्रीकृष्णसे पूछता कि आपने कौन-कौनसे जन्म ग्रहण किये। शायद अर्जुन भी पूछ लेता, किंतु भगवान्‌ने

इसके लिये अवसर ही कहाँ दिया? वे तो कहते चले जा रहे थे—

> अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
> प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

'अज, अव्यय, समस्त भूतोंका ईश्वर अर्थात् सर्वेश्वर होते हुए भी मैं प्रकट होता हूँ।' वही उलझन पुनः आ पड़ी और विशेषता भी लिये हुए। श्रुतिवाक्यमें तो केवल अजन्माके जन्मग्रहण करनेकी बात थी। यहाँपर अजन्माको अव्यय और सर्वेश्वर कह दिया गया; परंतु इसे उलझन कैसे कहा जाय। भगवान् श्रीकृष्ण सामने जो खड़े हुए थे। यदि वे सामने न होते और यह न कहते होते कि मैं अज, अव्यय, सर्वेश्वर होते हुए भी प्रकट होता हूँ तो संदेहके लिये स्थान था; किंतु जब अजन्मा, अव्यय, सर्वेश्वर सामने उपस्थित हो तो फिर अजन्माके प्रकट होनेमें संदेहके लिये अवकाश ही कहाँ रहा। चाहे अजन्माका जन्म सम्भव न हो; किंतु अज, अव्यय, सर्वेश्वरका श्रीकृष्णके रूपमें प्रकट होना सत्य है। अर्जुन इसे सत्य समझता था। गीता आज भी पुकार-पुकारकर इस सत्यकी घोषणा कर रही है।

उपनिषदोंमें बताया गया है कि परमात्मा प्रवचनोंसे नहीं मिलते हैं, न बहुत बुद्धि दौड़ानेसे मिलते हैं और न बहुत सुननेसे ही मिलते हैं। जिस योग्य अधिकारीका दया करके प्रभु वरण कर लेते हैं, उसीको अपना रूप दिखला देते हैं। इस प्रकार जो स्वयं देख लेता है, उसे संदेह कैसे हो सकता है। अर्जुनके मनमें भी संदेहकी सम्भावना नहीं की जा सकती; किंतु यह जाननेकी इच्छा अवश्य रही होगी कि यह असम्भव सम्भव होता किस प्रकार है? भगवान्के उपर्युक्त शब्दोंमें इसका समाधान मौजूद था। श्लोकके उत्तरार्धमें भगवान्ने कहा कि 'मैं अपने स्वभावका अधिष्ठानकर अपने सङ्कल्पसे प्रकट होता हूँ। तात्पर्य यह निकलता है कि इस प्रकार प्रकट होना भगवान्का स्वभाव है और यह उनका अपना सङ्कल्प है जिसके कारण वे प्रकट होते हैं। जो व्यक्ति अपनी बुद्धिके भरोसे भगवान्को नहीं जान पाता, वह बुद्धिकी कसौटीपर भगवान्के सङ्कल्पको परखना चाहे तो यह कदापि उचित नहीं कहा जा सकता। सर्वशक्तिमान् प्रभुके सङ्कल्पकी थाह नहीं मिल सकती।

भगवान् प्रकट होते हैं! अर्जुनके सामने भगवान् प्रकटरूपमें थे। उसने समझ लिया कि भगवान् प्रकट होते हैं और वे मेरे सामने उपस्थित हैं। परंतु यह आवश्यक प्रश्न था कि इस प्रकार वे कब किस समय प्रकट होते हैं। इस प्रश्नका उत्तर भगवान्ने यों दिया—

> यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
> अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

अर्थात् 'जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मका अभ्युत्थान होता है तब-तब मैं प्रकट होता हूँ।' इसका अर्थ यह निकला कि भगवान्के प्रकट होनेका कोई निश्चित समय नहीं है। जब-जब धर्मके आदर्शसे समाज विचलित होकर अधर्मकी ओर बढ़ने लगता है, भगवान् प्रकट होते हैं। प्रश्न होता है कि उनके प्राकट्यका प्रयोजन क्या है? भगवान्ने इस प्रश्नका भी उत्तर दे दिया—

> परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
> धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

अर्थात् 'साधुओंके परित्राण, दुष्टोंके उद्धार और धर्मकी संस्थापनाके लिये मैं युग-युगमें प्रकट होता हूँ।'

भगवान् प्रकट होते हैं साधुओंके परित्राणके लिये। साधु कौन? जो धर्मनिष्ठ हों वे साधु। जब धर्मकी संस्थापनाके लिये भगवान् प्रकट होते हैं तो साधुपुरुष धर्मका अनुष्ठान किये बिना साधुपुरुषोंकी कोटिमें गिने जा सकेंगे, ऐसा सम्भव नहीं। धर्मनिष्ठ साधुपुरुषोंके परित्राणके लिये भगवान् प्रकट होते हैं। अनिष्टकी निवृत्ति और इष्टकी प्राप्तिका नाम ही 'परित्राण' है। धर्मनिष्ठ साधुपुरुष भगवत्प्राप्तिको अपना इष्ट और भगवान्की अप्राप्तिको अपना अनिष्ट समझता है। ऐसे भक्त भगवान्के दर्शनके लिये व्यग्र हो उठते हैं। क्षण-क्षणका वियोग भी उनके लिये असह्य हो जाता है। ऐसे भक्तोंको दर्शन देनेके लिये भगवान् प्रकट होते हैं। इस प्रकार अपना साक्षात्कार कराना ही वास्तविक परित्राण है। वैसे सामान्यतया परित्राणका अर्थ होता है रक्षा। भगवान् साधुपुरुषोंकी रक्षाके लिये प्रकट होते हैं। इस कार्यकी पूर्तिके लिये दुष्टोंका विनाश भी आवश्यक हो जाता है। भगवान् इसके लिये भी प्रकट होते हैं; किंतु यह कार्य

तो भगवान् अपनी इच्छामात्रसे कर सकते हैं। इसके लिये प्रकट होनेकी क्या आवश्यकता? विचार करनेपर इस आवश्यकतामें भी भगवान्‌की दयाकी झाँकी मिलती है। भगवान् सबके मित्र हैं। वे शत्रुओंके प्रति भी वात्सल्यका व्यवहार करते हैं। इस प्रकार उनके द्वारा किये जानेवाले विनाशमें वास्तविक उद्धार विद्यमान रहता है। उनके हाथोंसे मारे गये लोग भी विष्णुपुर पहुँचते हैं। तात्पर्य यह निकला कि भगवान् दुष्टोंका उद्धार कर उनकी वास्तविक रक्षा करते हैं।

उपर्युक्त दो प्रयोजनोंके अतिरिक्त भगवान्‌के प्रकट होनेका तीसरा प्रयोजन है—'धर्मकी संस्थापना।' धर्म है समस्त पदार्थोंका धारक, पोषक एवं संरक्षक और भगवान् हैं धर्मके संस्थापक। कहना न होगा कि यह धर्मका संस्थापनकार्य ही तो है जिसके लिये भगवान्‌को साधु पुरुषोंका परित्राण और दुष्टपुरुषोंका उद्धार करना पड़ता है। तथापि यह न भूल जाना चाहिये कि जब दर्शन देकर भगवान् साधुपुरुषोंका परित्राण करते हैं और दर्शन देकर दुष्टोंका उद्धार करते हैं, तब दर्शन देकर ही वे धर्मकी संस्थापना भी कर देते हैं। परम धर्म है भगवान्‌की आराधना। इसके लिये भगवान्‌का दर्शन अपेक्षित होता है। दर्शन देकर आराधनकार्यकी इस आवश्यकताकी पूर्ति भगवान् करते हैं।

इस प्रकार भगवान्‌ने अपना स्वरूप, अपना स्वभाव, अपने प्रकट होनेका संकल्प, समय और प्रयोजन बता दिया। उनके स्वरूपमें कर्मका बन्धन या प्रकृतिका संसर्ग सम्भव ही नहीं हो सकता। उनके स्वभावमें सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्ता प्रतिष्ठित है। फिर भला उनके संकल्पमें सत्यता क्यों न हो। सत्यसंकल्प प्रभुके प्राकट्यका समय और प्रयोजन भी ऐसा है जिसमें और जिसके लिये उनका अवतार अनिवार्य हो जाता है। भगवान्‌ने यह भी कह दिया—

'जन्म कर्म च मे दिव्यम्'

अर्थात् 'मेरे जन्म और कर्म दिव्य हैं।' सांसारिक पुरुषोंके जन्म और कर्ममें तथा भगवान्‌के जन्म और कर्ममें अन्तर है। सांसारिक पुरुषोंके जन्म और कर्म सांसारिक होते हैं। उनमें शरीरकी दृष्टिसे अवगति और आत्माकी दृष्टिसे प्रगतिका भाव रहता है। भगवान्‌के जन्म और कर्ममें दिव्यता रहती है। इसी दिव्यतामें अवतारतत्त्व निहित है।

इस अवतारतत्त्वकी साधनाके लिये आवश्यक है इसका ठीक-ठीक ज्ञान। जो इस प्रकार भगवान्‌के अवतारतत्त्वको समझ लेता है, उसके लिये साधनाकी लम्बी चढ़ाई नहीं चढ़नी पड़ती। प्रकरणका उपसंहार करते हुए भगवान्‌ने कह दिया—

''''''एवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

अर्थात् 'इस प्रकार जो पुरुष तत्त्वसे जान लेता है वह इस शरीरको त्यागकर फिर जन्मको प्राप्त नहीं होता। वह मुझे ही प्राप्त होता है।' आशय यह कि उसे इसी जन्मके पश्चात् परम निःश्रेयसकी प्राप्ति हो जाती है।

इस प्रकार प्रकृतप्रकरणका अनुशीलन करनेपर यही सिद्ध होता है कि अवतारतत्त्वका चिन्तन भगवत्प्राप्तिका विशिष्ट साधन है। गीताचार्य श्रीकृष्णभगवान्‌ने कर्मयोगके प्रसङ्गमें **'मत्परः'** (२।६१), **'मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्य'** (३।३०), **'ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति'** (५।२९), ज्ञानयोगके प्रकरणमें **'सर्वभूतस्थितं यो मां भजति'** (६।३१), **'मद्गतेनान्तरात्मना'** (६।४७) तथा भक्तियोगके प्रकरणमें **'मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते'** (१२।२) इत्यादि वचनोंद्वारा अपने-आपका समावेश कर इसी अवतारतत्त्वकी ओर संकेत किया है। उत्तम पुरुष (मैं)-के रूपमें भगवत्तत्त्वका सम्बोधन इसी तत्त्वके प्रकाशनके लिये ही है। और अन्तमें जब भगवान्‌ने शरणागतियोग उपस्थित किया है तो वहाँ भी **'मामेकं शरणं व्रज'** कहकर इसी अवताररूपमें शरणागति करनेका आदेश दिया है। ऐसी स्थितिमें अवतारतत्त्वकी साधनाकी महनीयताको समझकर इससे लाभ उठाया जा सकता है। इस साधनामें धर्मनिष्ठा अपेक्षित होनेके कारण न अभ्युदयमें बाधा पड़ती है और न भगवत्प्राप्तिमें कठिनता आती है। भगवान्‌की दयापर आश्रित रहनेके कारण यह साधना सारी बाधाओंका निवारण कर साधकको श्रेयतक पहुँचा देती है।

भगवदवतार और उसका प्रयोजन

(ब्रह्मलीन पुरीपीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य स्वामी श्रीनिरंजनदेवतीर्थजी महाराज)

सगुण-साकार माननेपर ही भगवान् सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान्—'भगवान् सर्वज्ञ हैं अर्थात् सब कुछ जानते हैं। सर्वशक्तिमान् हैं अर्थात् सब प्रकारकी शक्तिसे सम्पन्न हैं।' भगवान्की सत्ता माननेवाले जितने भी वादी हैं, सभी ऐसा मानते हैं। ऐसी कोई वस्तु नहीं, जिसका ज्ञान भगवान्को न हो और ऐसी कोई शक्ति नहीं, जो भगवान्में न हो। ऐसा क्यों? इसलिये कि अल्पज्ञ, अल्पशक्तिमान् तो जीव भी है, पर वह सर्वस्रष्टा, सर्वपालक और सर्वसंहर्ता नहीं। भगवान्को हम निर्गुण-निराकार ही मानें, सगुण-साकार न मानें तब तो भगवान् न सर्वज्ञ कहला सकते हैं और न सर्वशक्तिमान् ही। ऐसा स्वीकार करनेपर तो भगवान्की भगवत्ताका ही लोप हो जाय? क्योंकि ऐसा माननेपर यह सिद्ध होगा कि भगवान् निराकारसे साकार बनना नहीं जानते, निराकारसे साकार नहीं बन सकते। निर्गुणसे सगुण नहीं बन सकते। जब इस तरह निराकार और निर्गुणसे सगुण बनना भगवान् नहीं जानते, तब सर्वज्ञ कैसे? फिर सर्वशक्तिमान् कैसे? ऐसा माननेपर भगवान्में ज्ञान और शक्तिकी कमी सिद्ध होगी। सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्ताके असिद्ध होते ही भगवान्की भगवत्ता ही असिद्ध हो जायगी। भगवत्ताके बिना भगवान् ही असिद्ध हो जायँगे। ऐसी स्थितिमें 'भगवान् जहाँ निर्गुण-निराकार, परात्पर-परब्रह्म, प्रभु, भूतनाथ, विश्वनाथ, दुःखप्रमोष शंकरके रूपमें अवतरित होते हैं, वहीं चतुर्भुज श्रीविष्णुके रूपमें प्रकट होते हैं, वहीं मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, बुद्ध और कल्किके रूपमें अवतरित होते हैं। निर्गुण-निराकार परात्पर परब्रह्म प्रभु ही मर्यादापुरुषोत्तम दशरथनन्दन कौशल्यानन्दन राघवेन्द्र श्रीरामचन्द्र और यदुनन्दन व्रजेन्द्रनन्दन परमानन्दकन्द मदनमोहन लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्णचन्द्रके रूपमें अवतरित होते हैं।'

भगवान् निर्गुण-निराकार होते हुए भी सगुण-साकार वैसे ही हो जाते हैं, जैसे 'माचिस'-लाइटरमें रहनेवाली निर्गुण-निराकार अग्नि सगुण-साकार बनकर दीख जाती है। निर्गुण-निराकार आग दाहक-प्रकाशक हो सगुण-साकार आग बनकर आती है। निर्गुण-निराकार आकाश सर्वत्र है पर उसमें आप जल नहीं भर सकते, सो नहीं सकते, उड़ान नहीं भर सकते, किंतु जब वही घटके योगसे सगुण निराकार घटाकाश बन जाता है, तब आप उसमें जल भर सकते हैं। जब वही मठके योगसे सगुण निराकार मठाकाश बन जाता है, तब आप उसमें सो सकते हैं और हेलिकाप्टर, वायुयान तथा राकेटके योगसे जब वह सगुण-साकार हो जाता है, तब आप उसमें उड़ान भर सकते हैं।

जिस प्रकार निर्गुण-निराकार बिजली उपाधियोगसे सगुण-निराकार और सगुण-साकार हो जाती है, उसी प्रकार निर्गुण-निराकार भगवान् उपाधियोगसे सगुण-निराकार और सगुण-साकार हो जाते हैं। श्रुतियाँ भगवान्को निर्गुण, निष्क्रिय, सूक्ष्म कहती हैं। हमारे शैवाचार्य-वैष्णवाचार्य आदि ऐसा मानते हैं कि भगवान् प्राकृत गुणगणहीन होनेके कारण और अचिन्त्य अनन्त दिव्य कल्याण गुणनिलय होनेके कारण सगुण हैं। भगवान् निर्गुण हैं। स्वामी दयानन्द ऐसा मानते हैं कि हीन या बुरे गुणोंसे रहित होनेके कारण भगवान् निर्गुण हैं, लेकिन बुरे या हीन भावोंको गुण क्यों कहें, वे तो दोष ही हैं। ऐसी स्थितिमें भगवान् निर्गुण कहाँ हुए? यहाँ भी यही समझना चाहिये कि जैसे भगवान्में सगुण होनेका ज्ञान और सामर्थ्य नहीं, तो भगवान् सर्वज्ञ-सर्वशक्तिमान् नहीं, सर्वज्ञ-सर्वशक्तिमान् नहीं, तो भगवान् 'भगवान्' ही नहीं, वैसे ही यदि भगवान्में दिव्य या उत्तमोत्तम गुण हैं ही तो भगवान् निर्गुण नहीं। जैसे एक भी घट (घड़ा) रहे तो पृथ्वी निर्घट (घटरहित) नहीं, वैसे ही एक भी गुण भगवान्में रहे तो भगवान् निर्गुण नहीं। 'अमुक-अमुक गुण भगवान्में नहीं हैं, इसलिये भगवान् निर्गुण बन जायँगे, यह बात दार्शनिक-दृष्टिसे सङ्गत नहीं। साथ ही गुणके बिना भगवान् निर्गुण भी कैसे सिद्ध होंगे? गुण जिससे निकल गये या जो गुणोंसे निकल गया, वह निर्गुण है—ऐसा माननेपर भगवान् सगुण सिद्ध होते हैं। कोई मकानमें था तब उससे निकल गया, यदि मकानमें था ही नहीं, तब निकला कैसे? भगवान्में गुण था तब निकला

था, था ही नहीं तो निकला कैसे? ऐसी स्थितिमें भगवान्‌को सगुण मानना आवश्यक है।'

व्यावहारिक सत्ता गुणोंकी मान लेनेपर और वास्तविक सत्ता भगवान्‌की मान लेनेपर दोनों मतोंका समन्वय हो जाता है। गुणगणोंके परम आश्रय तथा अधिष्ठान होनेके कारण सगुण होते हुए भी भगवान् वस्तुतः निर्गुण हैं।

गुणगण शेष हैं और भगवान् शेषी। शेषके बिना भी शेषी रह सकता है, पर शेषीके बिना शेष नहीं। भगवान् स्वयं कहते हैं—मैं समस्त गुणोंसे रहित हूँ और किसीकी अपेक्षा नहीं रखता। फिर भी साम्य, असङ्गता आदि सभी गुण मेरा ही सेवन करते हैं; क्योंकि मैं सबका हितैषी, सुहृद्, प्रियतम और आत्मा हूँ—

मां भजन्ति गुणाः सर्वे निर्गुणं निरपेक्षकम्।
सुहृदं प्रियमात्मानं साम्यासङ्गादयोऽगुणाः॥

(श्रीमद्भा० ११।१३।४०)

यही स्थिति आकारकी भी है। आकार जिससे निकल गया या जो आकारसे निकल गया, वह निराकार—ऐसा माननेपर आकारका अस्तित्व सिद्ध होता है और उस आकारके योगसे भगवान् साकार सिद्ध होते हैं। साथ ही जबतक एक भी आकार है, तबतक भगवान् निराकार कैसे? ऐसी स्थितिमें लीलापूर्वक भगवान् दिव्यातिदिव्य गुणगणोंको स्वीकार करते हैं, स्वतः निर्गुण हैं, ऐसा माननेपर दोनों मतोंका समन्वय हो जाता है।

अवतार-रहस्य

कितनी सरस बात है कि निर्गुण ब्रह्मको गुण भजते हैं। दिव्यातिदिव्य गुणगणोंने तपस्या की, मुकुट-कुण्डल-किरीट आदि आभूषणोंने तपस्या की। जन्म-जन्मान्तर, युग-युगान्तर, कल्प-कल्पान्तरतक तप करनेपर प्रभु प्रसन्न हो गये। बोले—वरदान माँगो।

गुणोंने, आभूषणोंने कहा—'प्रभो! हमको आप अङ्गीकार कर लें, हमें धारण कर लें। यदि आप हमें स्वीकार नहीं करेंगे तो हम 'गुण' कहनेलायक ही कहाँ रह जायँगे? हम तो 'दोष' ही बने रहेंगे।' यदि आप हमें स्वीकार नहीं करेंगे तो हम आभूषण कहने लायक कहाँ रहेंगे? भूषण नहीं दूषण ही बने रहेंगे। भगवान्‌ने गुणगणोंको, आभूषणोंको स्वीकार किया।

सच्चिदानन्द परात्पर-परब्रह्म-श्रीकृष्णचन्द्र-परमानन्द-कन्दके रूपमें प्रकट हुए। वे दिव्य शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धके रूपमें प्रकट होकर भक्तोंकी इन्द्रियोंको आह्लादित कर रहे हैं। इन्द्रियाँ भगवान्‌का अनुभव कर रही हैं—

'मयैव वृन्दावनगोचरेण।'

(श्रीमद्भा० ११।१२।११)

'वृन्दावने गाः इन्द्रियाणि चारयति।' प्रभु इतने सुन्दर हैं, इतने सुन्दर हैं कि भूषण (गहने) उनकी सुन्दरताको ढकते हैं। अन्यत्र तो भूषण अङ्गको अलङ्कृत—सुशोभित करते हैं, पर यहाँ तो भगवान्‌के मङ्गलमय अङ्ग ही अलङ्कारोंको अलङ्कृत—सुशोभित करते हैं। भगवान् श्रीराघवेन्द्र रामभद्र और श्यामसुन्दर परमानन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रके सच्चिदानन्दमय श्रीविग्रह ही उन्हें भूषित करते हैं—

'परं पदं भूषणभूषणाङ्गम्॥'

(श्रीमद्भा० ३।२।१२)

'भूषणानां भूषणानि अङ्गानि यस्य सः।'

श्रीमद्भागवतमें कहा गया है कि सम्पूर्ण लोकोंके वन्दनीय भगवान्‌के गलेका चिन्तन करें, जो मानो कौस्तुभमणिको भी सुशोभित करनेके लिये ही उसे धारण करता है—

'कण्ठं च कौस्तुभमणेरधिभूषणार्थम्'

(३।२८।२६)

इस तरह भगवान्‌को किसीकी अपेक्षा नहीं, किंतु भगवान् गुण-भूषणादिकी तपस्यापर रीझकर उन्हें स्वीकार कर उन्हें धन्य-धन्य करते हैं। हमलोग गहने, कपड़े क्यों पहने हैं? हमारा शरीर सुन्दर लगे, हमारे शरीरमें सुन्दरता आ जाय, हमारा शरीर अलङ्कृत—विभूषित हो जाय। लेकिन अनन्तकोटि कन्दर्प—कामदेवको लजानेवाली सुन्दरता भगवान्‌के शरीरमें पहलेसे है। ऐसी स्थितिमें भूषणोंको भी भूषित करनेवाले भगवान्‌का आश्रय लेकर गुण भी गुण बन जाते हैं।

इन सब दृष्टियोंसे न तो ऐसा ही आग्रह करना चाहिये कि भगवान् दीखते नहीं तो उन्हें माने ही क्यों? आपको

भूख लगती है, 'भूखके मारे आज मेरे पेटमें चूहे कूदते हैं', ऐसा आप ही कहते हैं, पर क्या उस निराकार भूखको, आखोंसे देखकर आप मानते हैं? आपको प्यास लगती है, 'प्यासके मारे जान निकली जा रही है' ऐसा आप कहते हैं, पर क्या प्यासको आँखोंसे देखकर आप मानते हैं? साथ ही, क्या निर्गुण-निराकार अन्नसे आप भूख मिटाते हैं या निर्गुण-निराकार जलसे आप प्यास बुझाते हैं?

इस तरह भगवान् जहाँ निर्गुण-निराकार हैं, वहीं सगुण-निराकार और सगुण-साकार भी। संसारमें पृथ्वी, जल तथा तेज—ये सब वस्तुएँ निर्गुण-निराकार, सगुण-निराकार और सगुण-साकार—तीनों प्रकारकी हैं। ऐसे ही भगवान् भी निर्गुण-निराकार, सगुण-निराकार और सगुण-साकार—तीनों प्रकारके हैं।

अवतार-प्रयोजन

अब प्रश्न उठता है कि जीव जब जन्म लेता है, तब वह सगुण-साकार माना जाता है। यदि भगवान् भी स्वयंको सगुण-साकार करनेके लिये जन्म लें तो जीवमें और भगवान्में अन्तर ही क्या रह जायगा? इसका उत्तर स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण गीता (४।५-६)-में अर्जुनको देते हैं—

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप॥
अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

हे परन्तप अर्जुन! मेरे अनेक जन्म हुए और तेरे भी अनेक जन्म हुए। तुझमें और मुझमें यही अन्तर है कि तू जीव है—नर है और मैं नारायण हूँ, इसलिये मैं अपने सम्पूर्ण जन्मोंको जानता हूँ। तू अपने जन्मोंको नहीं जानता, तू अल्पज्ञ है और मैं सर्वज्ञ हूँ। यदि कहो कि महाराज! कैसे मान लें कि आपके भी बहुत जन्म हुए? मेरे जन्म हो सकते हैं; क्योंकि मैं जीव हूँ, लेकिन आप तो अनादि-अनन्त, साक्षात् परब्रह्म, परमात्मा हैं, आपका जन्म कैसा? तो सुनो—मैं अज हूँ, मेरा जन्म वास्तवमें नहीं होता। मैं अव्यय हूँ, न तो मेरा कभी नाश ही होता है अर्थात् न तो मैं पैदा ही होता हूँ और न मरता ही हूँ। जीवोंका जन्म और मरण भी वस्तुतः औपाधिक है, वास्तविक नहीं। मेरी जो सत्त्व-रज-तमोगुणात्मिका प्रकृति भास्वती माया है, उसको अपने वशमें करके उसीको अधिष्ठान—आश्रय (निमित्त) बनाकर मैं अपनी मायासे अवतरित होता हूँ। प्रकृतिपरवश होकर जीवोंकी तरह किसी अन्यकी मायासे नियन्त्रित होकर पैदा नहीं होता।

श्रीभगवान्का जैसा रूप है, वैसा रूप संसारमें किसीका नहीं। जनकनन्दिनी भगवती जानकी रामचन्द्र राघवेन्द्र भगवान् और लखन (लक्ष्मण) लालके साथ जा रही थीं। चित्रकूटके आस-पासकी ग्राम-वधूटियाँ इकट्ठी हो गयीं। उन्होंने प्रश्न किया—

राजकुअँर दोउ सहज सलोने। इन्ह तें लही दुति मरकत सोने॥
स्यामल गौर किसोर बर सुंदर सुषमा ऐन।
सरद सर्बरीनाथ मुखु सरद सरोरुह नैन॥
कोटि मनोज लजावनिहारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे॥
(रा०च०मा० २।११६।८; २।११६; २।११७।१)

करोड़ों कामदेवोंके रूपको भी लजानेवाला भगवान्का रूप है। ऐसा रूप कहाँसे आया? आपका, हमारा, समस्त संसारका ऐसा रूप क्यों नहीं? इसलिये नहीं है कि आपका, हमारा जो रूप है वह सामान्य पञ्चभूतोंसे पञ्चतन्मात्राओंसे पैदा होता है, लेकिन भगवान्के शरीरका जो रूप है, वह पञ्चभूतों या पञ्चतन्मात्राओंसे पैदा नहीं होता। भगवान् अपने शरीरको धारण करनेके लिये विशुद्ध-सत्त्वात्मिका-लीलाशक्तिसे दिव्यातिदिव्य तन्मात्राओंको उत्पन्न करते हैं। उन्हींसे भगवान् अपने दिव्यातिदिव्य श्रीविग्रहको व्यक्त करते हैं। उसमें इतना आकर्षण होता है कि ज्ञानीका मन भी उसकी ओर खिंच जाता है, संसारके सब रूपोंकी ओरसे वह अलग हो जाता है—बच जाता है।

अब चाहे उर्वशी, तिलोत्तमा, रम्भा और मेनका ही दिव्यातिदिव्य वस्त्राभूषणों और अलङ्कारोंसे सुसज्जित—अलङ्कृत होकर कितने ही सुगन्धित द्रव्योंको अपने शरीरमें अनुलिप्त कर सामने क्यों न आयें, लेकिन ज्ञानी उनकी ओर पीठ दे देगा, तनिक भी आकृष्ट नहीं होगा। भगवान्का सौन्दर्य-माधुर्य जैसा है, वैसा सौन्दर्य-माधुर्य अन्यत्र कहीं देखनेको मिलता भी नहीं। तभी तो जनक-

जैसे ज्ञानी, जिनका मन असम्प्रज्ञात समाधिमें, निर्गुण ब्रह्ममें चौबीस घंटे लगा रहता है, कौशल्यानन्दन दशरथ-नन्दन श्रीराम-लक्ष्मणको देखते ही सहज विरागरूप उनका मन भी अति अनुरागी बन जाता है, बरबस समाधिसुखका परित्याग कर उनकी रूप-माधुरीमें निमग्न हो जाता है। वे कहते हैं कि ब्रह्मके सिवाय मेरे मनमें संसारका कोई पदार्थ प्रवेश नहीं कर सकता, लेकिन क्या करूँ? इनके रूपका अवलोकन कर निर्गुण ब्रह्मका बरबस त्याग कर इनका मधुर-मनोहर कोटि-मनोज-लजावनिहारी मूर्तिमें मन जाकर रम गया। उन्हें देखते ही मनमें इनके प्रति सामान्य राग नहीं, अति अनुराग उत्पन्न हो गया—

सहज बिरागरूप मनु मोरा। थकित होत जिमि चंद चकोरा॥
ताते प्रभु पूछउँ सतिभाऊ। कहहु नाथ जनि करहु दुराऊ॥
इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा॥

(रा०च०मा० १।२१६।३—५)

श्रीरामजीका रूप सभीको आकृष्ट करता है—

रामचंद्र मुख चंद्र छबि लोचन चारु चकोर।
करत पान सादर सकल प्रेमु प्रमोदु न थोर॥

(रा०च०मा० १।३२१)

नियम यह है कि स्त्रियाँ स्त्रियोंके रूपपर मोहित नहीं होतीं—

मोह न नारि नारि कें रूपा। पन्नगारि यह रीति अनूपा॥

(रा०च०मा० ७।११६।२)

पर भगवती सीताके रूपको देखकर नर-नारी—सभी मुग्ध होते हैं—

रंगभूमि जब सिय पगु धारी। देखि रूप मोहे नर नारी॥
राम रूपु अरु सिय छबि देखें। नर नारिन्ह परिहरीं निमेषें॥

(रा०च०मा० १।२४८।४, २४९।१)

क्यों न हों?

जौं छबि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छपु सोई॥
सोभा रजु मंदरु सिंगारू। मथै पानि पंकज निज मारू॥
एहि बिधि उपजै लच्छि जब सुंदरता सुख मूल।
तदपि सकोच समेत कबि कहहिं सीय समतूल॥

(रा०च०मा० १।२४७।७-८; १।२४७)

'यदि छविरूप अमृतका समुद्र हो, परम रूपमय कच्छप हो, शोभारूप रस्सी हो, शृङ्गाररस मन्दराचल हो और उस छविके समुद्रको स्वयं कामदेव ही अपने कर-कमलोंसे मथे। इस प्रकारका सौन्दर्य होनेसे जब सुन्दरता और सुखकी मूल लक्ष्मी उत्पन्न हो तो भी कवि लोग उसे बहुत ही संकोचके साथ सीताजीके समान कहेंगे।'

जब द्रौपदीने राजा विराटकी पत्नी सुदेष्णाके पूछनेपर मैं सैरन्ध्री (दासी)-का काम करना चाहती हूँ और इसलिये यहाँ आयी हूँ—ऐसा कहा, तब राजरानी सुदेष्णाने उससे कहा—

नैवंरूपा भवन्त्येव यथा वदसि भामिनि।
प्रेषयन्तीव वै दासीर्दासांश्च विविधान् बहून्॥
स्त्रियो राजकुले याश्च याश्चेमा मम वेश्मनि।
प्रसक्तास्त्वां निरीक्षन्ते पुमांसं कं न मोहयेः॥
वृक्षांश्चावस्थितान् पश्य य इमे मम वेश्मनि।
तेऽपि त्वां संनमन्तीव पुमांसं कं न मोहयेः॥

(महा०, विराटपर्व, ९।९, २३-२४)

भामिनि! तुम जैसा कह रही हो, उसपर विश्वास नहीं होता; क्योंकि तुम्हारी-जैसी रूपवती स्त्रियाँ सैरन्ध्री (दासी) नहीं हुआ करतीं। तुम तो बहुत-सी दासियों और नाना प्रकारके बहुतेरे दासोंको आज्ञा देनेवाली रानी-जैसी जान पड़ती हो। इस राजकुलमें जितनी स्त्रियाँ हैं तथा मेरे

महलमें भी जो ये सुन्दरियाँ हैं, वे सब एकटक तुम्हारी ओर निहार रही हैं, फिर पुरुष कौन ऐसा होगा, जिसे तुम मोहित न कर सको? देखो, मेरे भवनमें ये जो वृक्ष खड़े हैं, वे भी तुम्हें देखनेके लिये मानो झुके-से पड़ते हैं, फिर पुरुष कौन ऐसा होगा, जिसे तुम मोहित न कर लो?

द्रौपदीने कहा—'आप चिन्ता न करें।' किसी महान् शक्तिशाली गन्धर्वराजके पाँच (जय, जयन्त, विजय, जयत्सेन और जयद्बल) शक्तिशाली तरुण पुत्र मेरे पति हैं। अपने जनोंको कह देना मैं किसी पुरुषसे सम्भाषण नहीं करूँगी। मेरे ऊपर जिस दिन किसीने बुरी नजर डाली कि उसी रात वह नष्ट हो जायगा। मेरे पाँचों पति सदा मेरी रक्षा करते हैं। मैं किसीकी जूठन नहीं खाऊँगी और न किसीका पाँव ही दबाऊँगी।

इसी तरह महाभारतमें भीमके सौन्दर्यका भी वर्णन आता है। एक वनमें हिडिम्ब नामक राक्षस बड़ा ही क्रूर और मनुष्योंको कच्चा चबा जानेवाला था। जब उसने दूरसे कुन्तीसहित पाण्डवोंको सोते देखा तो अपनी बहन हिडिम्बाको उन्हें मारकर ले आनेकी आज्ञा दी। वहाँ पहुँचकर उसने कुन्ती और चार पाण्डवोंको सोते और भीमसेनको जागते देखा। भीमसेनके अप्रतिम रूपको देखकर वह मुग्ध हो गयी। उसने मन-ही-मन उन्हें अपना पति मान लिया और वह अत्यन्त सुन्दरी मानवी बनकर अपने क्रूर स्वभावको छोड़कर भीमसेनके पास पहुँची—

राक्षसी कामयामास रूपेणाप्रतिमं भुवि॥
अयं श्यामो महाबाहुः सिंहस्कन्धो महाद्युतिः।
कम्बुग्रीवः पुष्कराक्षो भर्ता युक्तो भवेन्मम॥

(महा०, आदि० १५१। १७-१८)

वह राक्षसी (मुग्ध हो) उन्हें चाहने लगी। इस पृथ्वीपर वे अनुपम रूपवान् थे। (उसने मन-ही-मन सोचा—) 'इन श्यामसुन्दर तरुण वीरकी भुजाएँ बड़ी-बड़ी हैं, कन्धे सिंहके-से हैं, ये महान् तेजस्वी हैं, इनकी ग्रीवा शङ्खके समान सुन्दर और नेत्र कमलदलके सदृश विशाल हैं। ये मेरे लिये उपयुक्त पति हो सकते हैं।'

जो राक्षसी मनुष्योंको कच्चा चबा जाय, वह मनौती मनाने लग गयी और धर्मराज युधिष्ठिरसे कहने लगी—यदि तुम्हारे भाईके साथ ब्याह न हुआ तो मैं मर जाऊँगी।

संसारमें किसी स्त्री-पुरुषका ऐसा रूप है ही नहीं, जैसा रूप भगवान्का है। जब ज्ञानी भगवान्के रूपमें आसक्त होगा, तब उसका मन किसी भी रूपको देखने जायगा तो उसके सामने भगवान्का रूप आ जायगा, इसलिये वह कहीं फँसेगा ही नहीं।

काम-क्रोध-मोह जीवके शत्रु हैं, लेकिन ये सब मित्र बन सकते हैं। संसारके विषयोंसे हटा करके भगवान्के प्रति कामादि विकारोंको अर्पित करें तो चौबीसों घंटे भगवान्का ही चिन्तन होगा। कल्याण हो जायगा। वैसे तो काम-क्रोधादि जीवके भयङ्कर शत्रु हैं, पर इनके विषय यदि भगवान् बन जायँ तो उद्धार हो जाय। ऐसा क्यों? विषयकी महिमाके कारण या प्रमेयबलकी मुख्यताके कारण—

'भगवति प्रमेयव्रतमेव मुख्यं न प्रमाणबलम्।'

(सुबोधिनी १०।८४।२)

गोप्यः कामाद् भयात्कंसो द्वेषाच्चैद्यादयो नृपाः।
सम्बन्धाद् वृष्णयः स्नेहाद्यूयं भक्त्या वयं विभो॥

(श्रीमद्भा० ७।१।३०)

[नारदजीने युधिष्ठिरसे कहा—] महाराज! गोपियोंने भगवान्से मिलनके तीव्र काम अर्थात् प्रेमसे, कंसने भयसे, शिशुपाल-दन्तवक्त्र आदि राजाओंने द्वेषसे, यदुवंशियोंने परिवारके सम्बन्धसे, तुमलोगोंने स्नेहसे और हमलोगोंने भक्तिसे अपने मनको भगवान्में लगाया है।

अरे संसारी पुरुषो! जन्म-मरणके बन्धनसे छूटना चाहते हो तो भगवान्के दिव्यातिदिव्य जन्म और कर्मका चिन्तन करो; इससे जन्म-कर्मके बन्धनसे छूट जाओगे। क्यों? इसलिये कि भगवान्के जन्म और कर्म अनादि और अनन्त हैं, इस वास्ते उनका चिन्तन करते-करते तुम भी अनादि और अनन्त, साक्षात् भगवत्स्वरूप बन जाओगे।

हमारे आपके जन्म-कर्म बन्धनके कारण हैं, भगवान्के जन्म-कर्म बन्धनके कारण नहीं। तभी तो कहा—काम, क्रोध, भय, स्नेह, ऐक्य, सख्य—किसी भी भावसे सही, भगवान्में मनको लगाकर प्राणी संसारसे छूटकर भगवत्स्वरूप हो जाता है। निर्गुण, निराकार, अव्यय, अप्रमेय भगवान् प्राणियोंके कल्याणके लिये ही श्रीकृष्ण आदि रूपमें अवतरित होते हैं। उनके मङ्गलमय श्रीअङ्गकी सुन्दरता, सरसता, मधुरता हठात् प्राणियोंके मनको खींच लेती है।

पाषाण तथा वज्रके तुल्य कठोर हृदयको भी पिघलाकर नवनीतके समान कोमल एवं सरस बना देती है।

सौन्दर्य-माधुर्य, सौरस्य-सौगन्ध-सुधाजलनिधि श्रीअङ्गमें इन्द्रियों और मनकी ऐसी स्वाभाविक आसक्ति हो जाती है कि वे लौटना तो भूल ही जाते हैं। जो मन विषयोंसे एक क्षणके लिये भी अलग नहीं हो सकता, वही भगवान्‌में आसक्त होकर विषयोंको भूल जाता है। ऐसे परम-मधुर मनोहर भगवान्‌में प्रीतिका होना स्वाभाविक ही है। कुन्ती देवी कहती हैं—हे प्रभो! आप अमलात्मा, परमहंस मुनीन्द्रोंको भक्तियोग देकर उन्हें श्रीपरमहंस बनानेके लिये अवतरित होते हैं, फिर हम अल्पबुद्धि स्त्रियाँ आपको कैसे पहचान सकती हैं—

तथा परमहंसानां मुनीनाममलात्मनाम्।
भक्तियोगविधानार्थं कथं पश्येम हि स्त्रियः॥

(श्रीमद्भा० १।८।२०)

परमहंस शुकदेवजी राजा परीक्षित्‌से कहते हैं—'राजन्! भगवान् निर्गुण, अप्रमेय होते हुए भी अचिन्त्य, अनन्त दिव्यातिदिव्य गुणोंके एकमात्र आश्रय हैं। उनका अवतार प्राणियोंके परम कल्याणके लिये होता है'—

नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप।
अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः॥

(श्रीमद्भा० १०।२९।१४)

भगवान्‌के अवतारका यही मुख्य प्रयोजन है, रावणादिका वध मुख्य प्रयोजन नहीं है। सारे संसारको सङ्कल्पमात्रसे पैदा करने और संहार करनेवाले भगवान् हिरण्यकशिपु, रावणादिको बिना अवतार लिये भी सङ्कल्पमात्रसे ही मार सकते हैं।

भगवान्‌के ऐसे स्वरूपमें मन लग जाय तो समस्त बन्धनोंसे छूटकर शाश्वत शान्ति, शाश्वत सुख प्राप्त कर लें। जब भगवान् निर्गुण-निराकार ही रहेंगे तो उनके चरणारविन्दकी शरणागति भी कैसे होगी? जब भगवान् सगुण-साकार होंगे तभी तो उनके चरणारविन्दोंका दर्शन सुलभ होगा और शरणागति सुलभ होगी।

श्रीराम जय राम जय जय राम।
श्रीराम जय राम जय जय राम॥

[प्रेषक—पं० श्रीकृष्णानन्दजी उपाध्याय 'किशनमहाराज']

भगवान्‌का अवतार

[ब्रह्मलीन योगिराज श्रीदेवराहा बाबाजी महाराजके अमृतोपदेश]

एक बारकी बात है, भक्तिरसमय श्रीवृन्दावनधाममें यमुनानदीके तटपर मञ्चासीन ब्रह्मलीन श्रीदेवराहा बाबाका अमृतोपदेश चल रहा था। उस समय उन्होंने बताया—

भगवान्‌की कृपा कब-किस व्यक्तिपर-किस रूपमें होती है, यह बताना कठिन अवश्य है। परम कृपालु एवं दयालु भगवान् करुणाकी वृष्टि करनेके लिये ही अवतार ग्रहण करते हैं। अवतारका अर्थ अव्यक्त रूपसे व्यक्तरूपमें प्रकट होना है। पूज्य श्रीबाबाने अव्यक्त तथा व्यक्तको स्पष्ट करते हुए बताया कि साँभर झीलके पानीमें नमक वर्तमान रहता है, लेकिन उसे तुम देख नहीं पाते हो। उसीको छानकर जब नमक तैयार किया जाता है तो वह आकार ग्रहण कर व्यक्त बन जाता है। फिर उसी घनीभूत नमकको जलमें मिला देते हो तो वह अव्यक्त बन जाता है। इस प्रकार अव्यक्त तथा व्यक्तमें तत्त्वतः कुछ भी भेद नहीं है। अवतारका मर्म तो अवतारी ही समझ सकता है। इसीलिये गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने स्पष्ट ही कहा है—

हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थं कहि जाइ न सोई॥

(रा०च०मा० १।१२१।२)

भगवान्‌का अवतार क्यों होता है, यह जाननेकी वस्तु नहीं है। अवतार भक्तोंकी उपासनाका आधार है। भक्तोंको उपासनाकी सुविधा प्रदान करनेके लिये भगवान् कृपापूर्वक अवतार लेते हैं। समस्त प्राणियोंकी आत्मा और भगवान्‌के अवतारमें कोई भी भेद नहीं है। अतः निर्गुण और सगुण भक्तिमें भेद नहीं मानना चाहिये। इसी दृष्टिसे श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥

(श्रीमद्भा० ११।२।४५)

अर्थात् आत्मरूप भगवान् समस्त प्राणियोंमें आत्मारूपसे रहते हैं—ऐसी दिव्य दृष्टि जिन्हें प्राप्त हो जाती है, वे भगवान्‌के सर्वश्रेष्ठ भक्त माने जाते हैं।

भगवान् लोकलीलाकी तरह अवतारमें दिव्य लीला करते हैं, लेकिन इस रहस्यको कोई शीघ्र नहीं समझ पाता है। श्रीतुलसीदासजीने स्पष्ट ही कहा है—

निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोइ।
सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होइ॥

(रा०च०मा० ७।७३ (ख))

भगवान् सर्वदा सब रूपोंमें रहते हैं और अवतारके रूपमें भी जब वे आते हैं, तो उन्हें कोई नहीं पहचानता है; यह मनुष्यकी मूढ़ता ही है। भगवान्‌ने इसी बातको गीता (७।२५)-में भी कहा है—

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम्॥

पूज्य बाबाने बताया कि आत्मभाव ही भगवान्‌का भाव है और देहभाव संसारका भाव है। आत्मभाववाले देव-मानव हैं और शरीरके अभिमानी प्राणी असुर-मानव हैं। देव-मानवको भक्त तथा महात्मा भी कहा जाता है। भगवान्‌ने गीता (९।१३)-में स्पष्ट ही कहा है—

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्॥

जो संसारमें लगे रहते हैं और भगवान्‌का भजन नहीं करते हैं, वे ही मनुष्य असुर-मानव कहे जाते हैं। भगवान्‌ने कहा है—

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः॥

(गीता ७।१५)

भगवत्प्रेममें भगवान्‌की भावना प्रधान है। भगवान्‌के भजनरूपी संस्कारसे भक्तिकी प्राप्ति होती है। भजनद्वारा आत्मज्ञान तथा वैराग्यके दिव्य गुण स्वतः ही प्राप्त हो जाते हैं। इसीलिये श्रीमद्भागवतमें ज्ञान-वैराग्ययुक्त भक्तिकी महिमा प्रधान रूपसे निरूपित है।

मोह, भ्रम और संशयके कारण ही मनुष्यको अपने अन्तःकरणमें परमात्माका अनुभव नहीं होता है। मृगके पास ही कस्तूरी होती है, लेकिन अज्ञानताके कारण ही वह जीवनभर भटकता है। ठीक इसी प्रकार मनुष्य अज्ञानताके कारण स्वान्तःस्थ ईश्वरका दर्शन नहीं कर पाता।

पूज्य श्रीबाबाने मानवदेहकी सार्थकता बताते हुए कहा—'देखो! बुद्धिमान् व्यक्ति एकाग्रचित्त होकर इस शरीरमें ही ईश्वरका साक्षात् अनुभव कर सकते हैं। ऐसा परम मङ्गलमय मानव शरीर पाकर भी यदि मनुष्य इसका दुरुपयोग विषयोंमें करता है, तो उसका दुर्भाग्य ही है।' गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने भी कहा है—

काँच किरिच बदलें ते लेहीं। कर ते डारि परस मनि देहीं॥

(रा०च०मा० ७।१२१।१२)

इस शरीरको करुणामय प्रभुके चरणोंमें लगाकर प्रभुका दर्शन कर लो। यही जीवनकी सार्थकता है।

भगवान्‌के अवतारवादकी चर्चा करते हुए पूज्य श्रीबाबाने बताया—

जिस प्रकार श्रीराम और श्रीकृष्ण भगवान्‌के अवतार हैं, उसी प्रकार उनके सारे नाम अवतार ही हैं। भक्तिजगत्‌में नामावतारकी विशेष उपयोगिता है। भगवन्नाम-कीर्तनकी अद्भुत महिमा सर्वत्र दीखती है। पूज्य श्रीबाबाने उदाहरण देते हुए कहा—

नामसङ्कीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम्॥

(श्रीमद्भा० १२।१३।२३)

अर्थात् जिन भगवान्‌के नामोंका सङ्कीर्तन सारे पापोंको सर्वथा नष्ट कर देता है और जिन भगवान्‌के चरणोंमें आत्मसमर्पण तथा उनके चरणोंमें प्रणति सर्वदाके लिये सब प्रकारके दुःखोंको शान्त कर देती है, उन परमात्मस्वरूप श्रीहरिको मैं नमस्कार करता हूँ।

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न वै।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

(पद्मपुराण, उत्तरखण्ड ९४।२३)

भगवान् नारदजीसे कहते हैं—हे नारद! मैं न तो वैकुण्ठमें निवास करता हूँ और न योगियोंके हृदयमें; मैं तो वहीं रहता हूँ, जहाँ मेरे भक्त मेरा नामसङ्कीर्तन करते हैं।

अतः हम सभीको भगवन्नाममें अटूट श्रद्धा और विश्वास रखते हुए निरन्तर नाम-स्मरण करना चाहिये।

[प्रेषक—श्रीरामानन्दप्रसादजी]

भगवान् कपिलदेवका अवतार

(गोलोकवासी संत पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्तब्रह्मचारीजी महाराज)

देवहूत्यपि संदेशं गौरवेण प्रजापतेः।
सम्यक् श्रद्धाय पुरुषं कूटस्थमभजद् गुरुम्॥
तस्यां बहुतिथे काले भगवान् मधुसूदनः।
कार्दमं वीर्यमापन्नो जज्ञेऽग्निरिव दारुणि॥

(श्रीमद्भा० ३।२४।५-६)

[मैत्रेयजी कहते हैं—] हे विदुरजी! देवहूतिने बड़े गौरव और श्रद्धासहित प्रजापति कर्दम भगवान्‌की आज्ञाको स्वीकार किया। वह कूटस्थ जगद्गुरु भगवान् परम पुरुषकी आराधना करने लगी। इसके अनन्तर बहुत काल बीत जानेपर मधुसूदन भगवान् कर्दम मुनिके वीर्यका आश्रय लेकर मुनिपत्नीके गर्भसे उसी प्रकार प्रकट हुए, जिस प्रकार ईंधनका आश्रय लेकर अग्नि प्रकट होती है।

छप्पय

आई वर की यादि कमण्डलु पुनि धरि दीन्हों।
मुनि दयार्द्र ह्वै गये दूरि दयिता दुख कीन्हों॥
बोले—
भामिनि दुःख शोक चिन्ता तजि डारो।
गर्भ माहिं तव प्रकट होहिँ हरि शुभ व्रत धारो॥
हर्षित ह्वै तप व्रत करहिं, हरि प्रसन्न अतिशय भये।
उपजे अरणीतें अनल, त्यों प्रभु परगट ह्वै गये॥

रज-वीर्यसे शरीर बनता है। संस्कारोंसे अन्तःकरण बनता है। गर्भाधानके समय माता-पिताके जैसे संस्कार होंगे, संतानमें भी बीजरूपसे वैसे ही संस्कार होंगे। वे ही संस्कार जातकर्म, नामकरण आदि संस्कारोंके द्वारा परिपुष्ट और दृढ़ बनाये जाते हैं। इसलिये वर्णाश्रमधर्ममें संस्कार तथा रज-वीर्यकी शुद्धिपर अत्यधिक बल दिया गया है। ऐसी कन्याके साथ विवाह करो, जिसका शुद्ध कुल हो, उस कुलमें दुराचार न हो, अपना भी कुल शुद्ध हो। शुद्ध संस्कारोंके द्वारा वेद-मन्त्रोंसे गर्भाधान करो, अमुक-अमुक तिथियोंमें अमुक कालमें मत करो—इन विधि-निषेधोंका एकमात्र उद्देश्य है भावी संतानके संस्कार शुद्ध बनाना। जो पापकी संतानें हैं, जिनका गर्भाधान अवैध रीतिसे हुआ है, वे प्रायः पापप्रवृत्तिवाली ही होंगी; क्योंकि माता-पिता दोनोंके संस्कार पापपूर्ण थे। ऐसे बालकोंकी परमार्थ कार्योंमें रुचि न होगी, विषय-सुखोंको ही सर्वस्व समझकर धर्मसे, अधर्मसे उन्हें पानेके लिये वे जीवनपर्यन्त प्रयत्नशील होंगे। इसीलिये तो कलियुगमें वेद, सच्छास्त्र, परमार्थपथ प्रायः लुप्त हो जाते हैं; क्योंकि सबकी प्रवृत्ति अधर्ममें हो जानेसे रज-वीर्यकी शुद्धिपर ध्यान नहीं दिया जाता, गम्यागम्यका विचार नहीं किया जाता, संस्कारोंमें पवित्रता नहीं रहती और विषयभोगोंका प्राबल्य होनेसे स्वेच्छाचार बढ़ जाता है। यह सब ध्यान देनेकी बात है।

भगवान् जिस दम्पतिको निमित्त बनाकर अवतीर्ण होना चाहते हैं, वे साधारण दम्पति तो होते नहीं। जन्म-जन्मान्तरोंके असंख्यों पुण्योंसे, शुभ कर्मोंसे, विविध धर्मोंके आचरणोंसे ऐसा सौभाग्य उन्हें प्राप्त होता है। यद्यपि श्रीहरि कर्मोंके अधीन नहीं हैं, न तो कर्मभोगोंको भोगनेके लिये अवतीर्ण होते हैं और न उन्हें कोई पुण्यकर्म प्राप्त ही करा सकता है। उनकी प्राप्तिका एकमात्र कारण तो उनकी कृपा ही है। किसपर वे कृपा कर दें, कहाँ अवतीर्ण हों, किसे दर्शन दें—इन बातोंको उनके अतिरिक्त कोई जान ही नहीं सकता। फिर भी सिंहिनीका दूध सुवर्णके ही पात्रमें टिकता है। भगवान् भी तपःपूत, धर्माचरणमें निरत, परम पुण्यात्मा, महान् संस्कारी, श्रेष्ठ सदाचारयुक्त दम्पतिके यहाँ ही अवतरित होते हैं, जो उनकी कृपाके भाजन बन चुके हैं। जिस पति-पत्नीको वे अपने जन्मका निमित्त बनाते हैं, उनकी वैसे तो आरम्भसे ही धर्ममें प्रवृत्ति होती है, किंतु अवतरणके समय तो उनका मन सदा श्रीहरिके चरणोंमें ही लगा रहता है।

मुनि मैत्रेय कहते हैं—विदुरजी! जब भगवती देवहूतिने अपने पतिसे यह बात सुनी कि उसके यहाँ साक्षात् श्रीहरि अवतीर्ण होंगे, तो वे बड़े ही संयम, नियमसे रहने लगीं। जन्म-कर्मसे रहित, निरंजन, निर्विकार, जगद्गुरु, परात्पर पुरुषोत्तम मुझे दर्शन देंगे, मेरे गर्भसे पुत्ररूपमें उत्पन्न होंगे— यह स्मरण आते ही उनके रोम-रोम खिल गये और वे सोते-जागते, उठते-बैठते, खाते-पीते उन्हीं अचिन्त्य-शक्तिसम्पन्न सर्वेश्वरका ध्यान करने लगीं। इस प्रकार श्रद्धा-संयमसे रहते हुए निरन्तर पुराण-पुरुषका ध्यान करते

हुए उन्हें बहुत समय व्यतीत हो गया।

अब भगवान्के प्राकट्यका काल उपस्थित हुआ। प्रथम भगवान्ने संकल्परूपसे प्रजापति कर्दमके वीर्यमें प्रवेश किया। फिर जिस प्रकार अधरारणि-उत्तरारणिके संघर्षसे अग्निदेव उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार भगवती देवहूतिके गर्भसे साक्षात् श्रीहरि कपिलरूपसे अवतीर्ण हुए। भगवान्के जन्मके समय सर्वत्र आनन्द छा गया, चराचर जीव सुखी हो गये, विशेषकर मुमुक्षु और ज्ञानियोंको परम आनन्द हुआ; क्योंकि यह 'ज्ञानावतार' ही था। लुप्त हुए सांख्य-ज्ञानके प्रचारके निमित्त ही भगवान्ने यह कपिल रूप धारण किया था। उस समय देवताओंने उनके ऊपर पुष्पवृष्टि की, आकाशमें गन्धर्व गाने लगे, देवता दुन्दुभी बजाने लगे, अप्सराएँ नृत्य करने लगीं, मेघ अपनी गड़गड़ाहटसे प्रसन्नता प्रकट करने लगे, मुमुक्षुओंके मनमें स्वाभाविक प्रसन्नता छा गयी, प्रसन्नताके कारण समुद्रोंका जल उमड़ने लगा, अग्निहोत्रकी अग्नियाँ स्वतः ही प्रज्वलित हो उठीं, दसों दिशाओंमें आनन्द छा गया और प्राणिमात्रका हृदय आनन्दसे भर गया।

पुत्रसे बढ़कर पौत्रकी उत्पत्तिपर प्रसन्नता होती है। ब्रह्माजीने जब देखा कि कर्दमजीके साधारण पुत्र ही नहीं हुआ है, स्वयं साक्षात् श्रीमन्नारायण ही पुत्ररूपमें उनकी पुत्रवधू (देवहूति—मनु-शतरूपाकी कन्या)-के गर्भसे अवतीर्ण हुए हैं तो वे बहुत शीघ्रतापूर्वक ब्रह्मलोकसे कर्दम मुनिके आश्रमकी ओर चले। वे अपने चारों सिरोंपर चमचमाते हुए चार दिव्य मुकुट धारण किये हुए थे। हाथमें कमण्डलु और पुस्तक लिये हुए वे हंसको शीघ्रतासे चलनेका निर्देश कर रहे थे। उन्हें इस प्रकार व्यग्रतासे जाते देखकर उनके जो मरीचि आदि नौ मानसपुत्र थे, वे बड़ी उत्सुकतासे बोले—प्रभो! आप इतनी शीघ्रतासे कहाँ जा रहे हैं?

भगवान् ब्रह्मा विस्मयका भाव प्रकट करते हुए बोले—अरे! तुमलोगोंको कुछ पता ही नहीं। मेरी छायासे उत्पन्न मेरे समान पुत्र प्रजापति कर्दमके यहाँ स्वयं साक्षात् श्रीहरि 'कपिल' नामसे प्रकट हुए हैं। वे सबकी मनोवाञ्छाको पूर्ण करनेवाले हैं। उनके सम्मुख बिना छल-कपट या निर्मल और निष्कपट होकर जो जिस भावनासे जायगा, उसकी वह भावना तत्क्षण पूरी होगी।

भगवान्की प्रेरणासे इन सब मुनियोंका मन प्रवृत्तिधर्म स्वीकार करनेमें, विवाह करनेमें लगा था। घट-घटकी जाननेवाले भगवान् ब्रह्माजी उनकी भावनाको समझ करके शीघ्रतासे बोले—हाँ, हाँ, तुमलोग भी मेरे साथ चलो, मङ्गलमूर्ति मधुसूदन तुमलोगोंकी मनोकामना पूर्ण करेंगे। इतना सुनते ही वे नौ महर्षि भी ब्रह्माजीके साथ चल दिये।

भगवती सरस्वतीसे घिरे हुए बिन्दुसरोवरके समीप महामुनि कर्दमका दिव्य आश्रम था। भगवान्के प्रेमाश्रुओंसे निर्मित वह तीर्थ प्राणियोंके समस्त अशुभोंका नाश करनेवाला था। महामुनि कर्दम भगवान्के जन्मोत्सवकी तैयारियाँ कर रहे थे कि इतनेमें ही उन्हें आकाशसे उतरते हुए महर्षियोंके सहित ब्रह्माजी दिखायी दिये। यह देखकर वे बड़ी ही प्रसन्नताके साथ उठकर खड़े हो गये। उन्होंने लोकपितामह चतुराननके चरणोंमें विनयपूर्वक साष्टाङ्ग प्रणाम किया। तदनन्तर अन्य ऋषि-महर्षियोंका भी यथायोग्य स्वागत-सत्कार किया। कर्दमजीकी की हुई पूजाको मुनियोंसहित यथावत् स्वीकार करके हँसते हुए ब्रह्माजी बोले—वत्स कर्दम! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुमने ही यथार्थमें मेरी सच्ची सेवा की। इस बाह्य पूजनकी अपेक्षा मैं आज्ञापालनरूपी आन्तरिक पूजनको सर्वश्रेष्ठ समझता हूँ।

वत्स! माता-पिता, गुरु जो भी आज्ञा दें, उसे श्रद्धासहित स्वीकार कर उसका पालन करना ही सबसे श्रेष्ठ सेवा है। तुमने मेरी आज्ञाका निष्कपटभावसे पालन किया है। मुझे सृष्टिरचनामें सहयोग प्रदान किया है, यह तुम्हारी सर्वोत्तम सेवा है।

ब्रह्माजी यह कह ही रहे थे कि महामुनि कर्दमकी नवों पुत्रियोंने आकर लोकपितामहको प्रणाम किया। अत्यन्त स्नेहके साथ उनके सिरपर प्यारसे हाथ फेरते हुए ब्रह्माजी बोले—ये तुम्हारी कन्याएँ बड़ी सुशीला हैं, बहुत सरल स्वभावकी हैं। इनके विवाहके विषयमें तुम चिन्तित न होओ। तुमने इतने दिन भगवान्की आराधना की है। उनका साक्षात्कार किया है, उनसे दुर्लभ वर भी प्राप्त किया है, फिर भी तुम चिन्ता करते हो। जो देव विश्वम्भर हैं, जिन्हें चींटीसे लेकर मेरे कार्यतककी चिन्ता है, जो सबका समयपर योगक्षेम चलाते हैं, वे क्या तुम्हारे कार्योंको भूल जायँगे? भगवान् अपने भक्तोंका कार्य स्वयं करते हैं। बेटा! अब तुम इन मरीचि आदि मुनिवरोंको इनके स्वभाव एवं रुचिके अनुसार अपनी कन्याएँ समर्पित करो और संसारमें अपना यश फैलाओ।

छप्पय

प्रकटे प्रभु परमेश! पितामहँ सुनि तहँ आये।
अत्रि-अङ्गिरा-पुलह-आदि नव ऋषि सँग आये॥
कर्दम निरखे पिता यथाविधि स्वागत कीन्हों।
ऋषि सँग पूजा करी सबनिकूँ आसन दीन्हों॥
करहु ब्याह तनयानिके, बिधि बोले इन ऋषिनतें।
कपिल रूप धरि पुत्र बनि, हरि आये निज बरनितें॥

ऐसा कहकर ब्रह्माजी महामुनि कर्दमजीके साथ देवहूतिके भवनमें गये और बोले—अरी बेटी! जो मेरे तथा सम्पूर्ण जगत्‌के पिता हैं, वे ही जब आकर तेरे पुत्र बन गये, तब तू जगन्माता बन गयी। देखो, ये किसीके पुत्र नहीं हैं, साक्षात् वैकुण्ठाधिपति श्रीहरि हैं। तू देखती नहीं; इनके केश कैसे नील वर्णके हैं! कमलके समान खिले हुए सुन्दर विशाल नेत्र, वज्र-अंकुश-ध्वजादि चिह्नोंसे चिह्नित छोटे-छोटे नवीन पीपलके पत्तेके समान कोमल चरण — ये सब भगवान्‌के चिह्न हैं। ये शास्त्र-ज्ञान और अनुभव-ज्ञानके द्वारा सभीके संशयोंका मूलोच्छेद करेंगे।

बेटी! सर्वप्रथम ये तुझे ही उपदेश देकर संसार-सागरसे पार करेंगे, ये सिद्धगणोंके अधीश्वर और सांख्याचार्योंके स्वामी होंगे। तेरी कीर्तिको ये अमर बनायेंगे। तुम दोनोंने तपस्या और वैराग्यके द्वारा इन्हें प्रकट किया है, अत: ये त्यागी-विरागीके रूपमें विचरेंगे।

इनके अनन्त नाम हैं। असंख्य नामोंसे ये पुकारे जाते हैं, फिर भी संसारमें ये 'कपिल'—इस नामसे प्रसिद्ध होंगे और तेरे यशको संसारमें विख्यात करेंगे।

मैत्रेय मुनि कहते हैं—विदुरजी! इस प्रकार लोकपितामह भगवान् ब्रह्मा, दोनों पति-पत्नियोंको समझाकर भलीभाँति आश्वासन देकर अपने हंसपर आरूढ़ हो ब्रह्मलोकको चले गये। ब्रह्माजीके चले जानेपर कर्दमजीने उनके आज्ञानुसार मरीचि आदि प्रजापतियोंके साथ अपनी कन्याओंका विधिपूर्वक विवाह कर दिया। उन्होंने अपनी कला नामकी कन्या मरीचिको, अनसूया अत्रिको, श्रद्धा अङ्गिराको और हविर्भू पुलस्त्यको समर्पित की। पुलहको उनके अनुरूप गति नामकी कन्या दी। क्रतुके साथ परम साध्वी क्रियाका विवाह किया, भृगुजीको ख्याति और वसिष्ठजीको अरुन्धती समर्पित की तथा अथर्वा ऋषिको शान्ति नामक कन्या दी। विवाह हो जानेपर वे सब ऋषि कर्दमजीकी आज्ञा ले, अति आनन्दपूर्वक अपने-अपने आश्रमोंको चले गये।

इधर महामुनि कर्दमने भगवान् कपिलकी स्तुति की और उनसे संन्यासधर्मकी आज्ञा प्राप्तकर वे वनकी ओर चले गये और प्रभुके शरणागत हो गये। इस प्रकार भगवद्भक्तिसे सम्पन्न हो श्रीकर्दमजीने भगवान्‌का परमपद प्राप्त कर लिया। माताका प्रिय करनेके लिये भगवान् कपिलने विस्तारसे सांख्ययोगका तत्त्वोपदेश किया और भक्तिमार्गकी महिमा बतलायी तथा उपदेशके साररूपमें बतलाया कि संसारमें मनुष्यके लिये सबसे बड़ी कल्याणप्राप्ति यही है कि उसका चित्त तीव्र भक्तियोगके द्वारा मुझमें लगकर स्थिर हो जाय—

एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसां निःश्रेयसोदयः।
तीव्रेण भक्तियोगेन मनो मय्यर्पितं स्थिरम्॥

(श्रीमद्भा० ३।२५।४४)

भगवान्‌में मन कैसे लगे—ऐसा माता देवहूतिके प्रश्न करनेपर भगवान् कपिलजीने बहुत ही सुन्दर बात बतायी, जो

बड़े ही महत्त्व और कामकी चीज है। भगवान् बोले—निष्कामभावसे श्रद्धापूर्वक अपने नित्य-नैमित्तिक कर्तव्योंका पालन करने, हिंसारहित उत्तम क्रियायोगका नित्य अनुष्ठान करने, मेरी प्रतिमाका दर्शन, स्पर्श, पूजन, स्तुति और वन्दना करने, प्राणियोंमें मेरी भावना करने, धैर्य और वैराग्यके अवलम्बन, महापुरुषोंका मान, दीनोंपर दया और समान स्थितिवालोंके प्रति मित्रताका व्यवहार करने, यम-नियमोंका पालन, अध्यात्मशास्त्रोंका श्रवण और मेरे नामोंका उच्च स्वरसे कीर्तन करनेसे तथा मनकी सरलता, सत्पुरुषोंके सङ्ग और अहङ्कारके त्यागसे मेरे धर्मों (भागवतधर्मों)-का अनुष्ठान

करनेवाले भक्त पुरुषका चित्त अत्यन्त शुद्ध होकर मेरे गुणोंके श्रवणमात्रसे अनायास ही मुझमें लग जाता है—

निषेवितेनानिमित्तेन स्वधर्मेण महीयसा।
क्रियायोगेन शस्तेन नातिहिंस्रेण नित्यशः॥
मद्धिष्ण्यदर्शनस्पर्शपूजास्तुत्यभिवन्दनैः।
भूतेषु मद्भावनया सत्त्वेनासङ्गमेन च॥
महतां बहुमानेन दीनानामनुकम्पया।
मैत्र्या चैवात्मतुल्येषु यमेन नियमेन च॥
आध्यात्मिकानुश्रवणान्नामसङ्कीर्तनाच्च मे।
आर्जवेनार्यसङ्गेन निरहंक्रियया तथा॥
मद्धर्मणो गुणैरेतैः परिसंशुद्ध आशयः।
पुरुषस्याञ्जसाभ्येति श्रुतमात्रगुणं हि माम्॥

(श्रीमद्भा० ३।२९।१५—१९)

[प्रेषक—श्रीश्यामलालजी पाण्डेय]

अवतारकी सार्थकता और उसका रहस्य

[श्रीमाँ एवं श्रीअरविन्दके विचार]

'अवतार' शब्दका अर्थ है उतरना। यह भगवान्‌का उस रेखाके नीचे उतर आना है, जो भगवान्‌को मानव-जगत् या मानव-अवस्थासे पृथक् करती है। (**श्रीअरविन्द**)

किसी निश्चित उद्देश्यके लिये पार्थिव शरीरमें अभिव्यक्त परम पुरुष अवतार है। परात्पर 'सत्य' का पृथ्वीपर साकारमूर्ति-होना अवतार है।

जब 'परात्पर भगवान्' किसी विशेष कारणसे पृथ्वीपर अभिव्यक्त होनेका निर्णय करते हैं और एक पार्थिव शरीर ग्रहण करते हैं तो यह कहा जाता है कि वह अवतार है। वे आवश्यकताओं और परिस्थितियोंके अनुसार क्रमशः अनेक शरीर धारण कर सकते हैं, पर सर्वदा ही वहाँ वह चीज रहती है जिसे 'केन्द्रीय सत्ता' कह सकते हैं जो कि पार्थिव शरीर ग्रहण करती है। बस, उसे ही अवतार कहा जाता है। (**श्रीमाँ**)

अवतार वह है, जो मनुष्य जातिके लिये किसी उच्चतर चेतनातक पहुँचनेका मार्ग खोल देता है। अवतारमें एक विशेष अभिव्यक्ति होती है। यह दिव्य जन्म ऊपरसे होता है, सनातन विश्वव्यापक विश्वेश्वर व्यष्टिगत मानवताके एक आकारमें उतर आते हैं—'**आत्मानं सृजामि**' और वे केवल परदेके अंदर ही अपने स्वरूपसे सचेतन नहीं रहते, बल्कि बाह्य प्रकृतिमें भी उन्हें अपने स्वरूपका ज्ञान रहता है। (**श्रीअरविन्द**)

सामान्य मानव-जन्ममें मानव रूप धारण करनेवाले जगदात्मा जगदीश्वरका प्रकृतिभाव ही मुख्य होता है; अवतारके मनुष्य-जन्ममें उनका ईश्वरभाव प्रकट होता है। एकमें ईश्वर मानव-प्रकृतिको अपनी आंशिक सत्तापर अधिकार और शासन करने देते हैं और दूसरेमें वे अपनी अंशसत्ता और उसकी प्रकृतिको अपने अधिकारमें लेकर उसपर शासन करते हैं। उन्हें मानवरूप और मानवचेतना धारण करनी पड़ती है ताकि वे उनके साथ सम्पर्क स्थापित कर सकें। उन्होंने उनकी चेतना अपना तो ली है, लेकिन उनका सम्बन्ध अपनी वास्तविक परम चेतनाके साथ बना रहता है। लेकिन अगर वे मानवचेतनाको न अपनाते, अगर वे उनके दुःखमें दुःखी न होते तो वे उनकी सहायता न कर पाते। उनका दुःख अज्ञानका दुःख नहीं है, तादात्म्यका दुःख है। यह इसलिये है कि उन्होंने वे ही स्पन्दन स्वीकार किये हैं ताकि वे उनके सम्पर्कमें आ सकें और उन्हें अपनी वर्तमान स्थितिसे बाहर निकाल सकें; पूर्ण चेतना, पूर्ण आनन्द, पूर्ण शक्तिका त्याग करके बाह्य जगत्‌के अज्ञानको स्वीकार करना ताकि उसे अज्ञानमेंसे निकाल सकें। (**श्रीअरविन्द**)

गीता हमें बतलाती है कि साधारण मनुष्य जिस प्रकार विकासको प्राप्त होता हुआ या ऊपर उठता हुआ भागवत-जन्मको प्राप्त होता है, उसका नाम अवतार नहीं है, बल्कि भगवान् जब मानवताके अंदर प्रत्यक्ष रूपमें उतर आते हैं और मनुष्यके ढाँचेको पहन लेते हैं तब वह अवतार कहलाता है। (**श्रीअरविन्द**)

अवतारका उद्देश्य—'अवतार' का मुख्य उद्देश्य मनुष्यके आगे यह ठोस रूपसे प्रमाणित करना है कि भगवान् धरतीपर प्रकट हो सकते हैं। (**श्रीमाँ**)

अवतार उस समय आवश्यक होता है जब कोई विशेष कार्य करना होता है और विकास-क्रममें सङ्कटकाल उपस्थित होता है। अवतार एक विशिष्ट अभिव्यक्ति है, जबकि बाकी समय भगवान् साधारण मनुष्यकी सीमाओंके अधीन विभूतिके रूपमें कार्य करते हैं। (**श्रीअरविन्द**)

गीतामें भगवान्ने अवतारके स्वरूप और हेतुका संक्षेपमें वर्णन करते हुए कहा है—'हे अर्जुन मेरे और तेरे बहुत-से जन्म बीत चुके हैं, मैं उन सबको जानता हूँ, पर तू नहीं जानता। हे परंतप, मैं अपनी सत्तासे यद्यपि अज और अविनाशी हूँ, सब भूतोंका स्वामी हूँ, तो भी अपनी प्रकृतिको अपने अधीन रखकर आत्ममायासे जन्म लिया करता हूँ।' यहाँपर भगवान् अपने शब्दोंसे यह स्पष्ट कर देते हैं कि वे ग्रहणशील मानव प्राणीमें उतर आनेकी बात नहीं कर रहे हैं बल्कि भगवान्के ही बहुत-से जन्म ग्रहण करनेकी बात कह रहे हैं; क्योंकि यहाँ वे ठीक सृष्टिकर्ताकी भाषामें बोल रहे हैं। यहाँ ईश्वर और मानव-जीव या पिता या पुत्रकी, दिव्य मनुष्यकी कोई बात नहीं है, बल्कि केवल भगवान् और उनकी प्रकृतिकी बात है। भगवान् अपनी ही प्रकृतिके द्वारा मानव-आकार और प्रकारमें उतरकर जन्म लेते हैं और यद्यपि वे स्वेच्छासे मनुष्यके आकार, प्रकार और साँचेके अंदर रहकर कार्य करना स्वीकार करते हैं, तो भी उसके अंदर भागवत-चेतना और भागवत-शक्तिको ले आते हैं और शरीरके अंदर प्रकृतिके कर्मोंका नियमन वे उसकी अन्तःस्थित और ऊर्ध्वस्थित आत्मा रूपसे करते हैं—'**प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय।**' ऊपरसे वे सदा ही शासन करते हैं, क्योंकि इसी तरह वे समस्त प्रकृतिका शासन चलाते हैं और मनुष्य-प्रकृति भी इसके अन्तर्गत है, अंदरसे भी वे स्वयं छिपे रहकर समस्त प्रकृतिका शासन करते हैं। अन्तर यह है कि अवतारमें वे अभिव्यक्त रहते हैं, प्रकृतिके ईश्वर-रूपमें भगवान्की सत्ताका—अन्तर्यामीका सचेतन ज्ञान रहता है। यहाँ प्रकृतिका संचालन ऊपरसे उनकी गुप्त इच्छाके द्वारा (स्वर्गस्थ पिताकी प्रेरणाके द्वारा) नहीं होता, बल्कि भगवान् अपने प्रत्यक्ष प्रकट-सङ्कल्पसे ही प्रकृतिका संचालन करते हैं।

यह सिद्धान्त बड़ा विलक्षण है, मनुष्यकी बुद्धिके लिये इसे ग्रहण कर लेना दुष्कर है, इसका कारण भी स्पष्ट है—अवतार स्पष्ट रूपसे मनुष्य-जैसे ही होते हैं। अगर भगवान् मूलतः सर्वशक्तिमान् न होते तो वे कहीं भी सर्वशक्तिमान् न हो पाते—चाहे अतिमानसिक लोकमें हों अथवा अन्य किसी भी लोकमें। चूँकि वे अपने कार्यको अवस्थाओंके द्वारा सीमित करना या निर्धारित करना पसंद करते हैं इसलिये उनकी सर्वशक्तिमत्ता कम नहीं हो जाती। स्वयं उनका आत्मसीमन भी सर्वशक्तिमत्ताका ही एक कार्य है। यह ठीक ही है कि भगवान्के तरीके या उद्देश्यके विषयमें निर्णय करना सीमित मानव-बुद्धिके लिये असम्भव है।

भगवान् एक दूसरी ही चेतनाके अनुसार कार्य करते हैं, वह चेतना है ऊपरके सत्यकी और नीचेकी लीलाकी। वे लीलाकी आवश्यकताके अनुसार कार्य करते हैं, उन्हें क्या करना चाहिये या क्या नहीं—इस विषयमें मनुष्यके विचारोंके अनुसार वे कार्य नहीं करते। यह पहली बात है, जिसे मनुष्यको समझ लेना चाहिये अन्यथा वह भगवान्की अभिव्यक्तिके विषयमें कुछ भी नहीं समझ सकता।

दिव्य जन्मके दो पहलू होते हैं—एक है अवतरण अर्थात् मानव-जातिमें भगवान्का जन्म-ग्रहण। मानव-आकृति और प्रकृतिमें भगवान्का प्राकट्य—यही सनातन अवतार है। दूसरा है आरोहण अर्थात् भगवान्के भावमें मनुष्यका जन्मग्रहण। भागवत-प्रकृति और भागवत-चैतन्यमें उसका उत्थान—'**मद्भावमागताः**'। यह जीवका नव जन्म आत्मामें द्वितीय जन्म है। भगवान्का अवतार लेना और धर्मका संस्थापन करना इसी नव जन्मके लिये होता है।

अवतारतत्त्वसम्बन्धी गीताका जो सिद्धान्त है, उसके सम्पूर्ण अर्थको समझनेके लिये अवतारके इस द्विविध पहलूको जान लेना आवश्यक है। इसके बिना अवतारकी भावना मात्र भावना ही रह जायगी। अवतारका आगमन मानव-प्रकृतिमें भागवत-प्रकृतिको प्रकट करनेके लिये होता है। अवतारका दूसरा और वास्तविक उद्देश्य ही गीताके समग्र-प्रतिपादनका विषय है।

मानव-प्राणीके रूपमें भगवान्के प्राकट्यकी सम्भावनाको दृष्टान्तरूपसे सामने रखनेके लिये अवतार होता है, ताकि मनुष्य देखे कि यह क्या है और उसमें इस बातका साहस

हो कि वह अपने जीवनको उसके जैसा बना सके। यह इसलिये भी होता है कि पार्थिव प्रकृतिकी नसोंमें इस प्राकट्यका प्रभाव बहता रहे। यह जन्म मनुष्यको दिव्य मानवताका एक ऐसा आध्यात्मिक साँचा प्रदान करनेके लिये होता है जिसमें मनुष्यकी जिज्ञासु अन्तरात्मा अपने-आपको ढाल सके। यह जन्म एक धर्म देनेके लिये—कोई सम्प्रदाय या मतविशेष मात्र नहीं, बल्कि आन्तरिक और बाह्य जीवन-यापनकी प्रणाली—आत्म-संस्कारक मार्ग, नियम और विधान देनेके लिये होता है, जिसके द्वारा मनुष्य दिव्यताकी ओर बढ़ सके। चूँकि मनुष्यका इस प्रकार आगे बढ़ना, इस प्रकार आरोहण करना मात्र पृथक् और वैयक्तिक व्यापार नहीं है, बल्कि भगवान्‌के समस्त जगत्-कर्मकी तरह एक सामूहिक व्यापार है, मानवमात्रके लिये किया गया कर्म है। इसलिये अवतारका आना मानव-यात्राकी सहायताके लिये, महान् संकटकालके समय मानव-जातिको एक साथ रखनेके लिये, अधोगामी शक्तियाँ जब बहुत अधिक बढ़ जायँ तो उन्हें चूर्ण-विचूर्ण करनेके लिये, मनुष्यके अंदर जो भगवन्मुखी महान् धर्म है, उसकी स्थापना या रक्षा करनेके लिये, भगवान्‌के साम्राज्यकी (फिर चाहे वह कितना ही दूर क्यों न हो) प्रतिष्ठाके लिये, प्रकाश और पूर्णताके साधकोंको विजय दिलानेके लिये और जो अशुभ और अन्धकारको जारी रखनेके लिये युद्ध करते हैं उनके विनाशके लिये होता है। अवतारके ये हेतु सर्वमान्य हैं और उनके इन कर्मोंको देखकर ही जनसमुदाय उन्हें विशिष्ट पुरुष जानता है और पूजनेको तैयार होता है।

इसलिये गीताकी भाषासे यह स्पष्ट होता है कि दिव्य जन्ममें भगवान् अपनी अनन्त चेतनाके साथ मानव-जातिमें जन्म लेते हैं और यह मूलतः सामान्य जन्मका उलटा प्रकार है—यद्यपि जन्मके साधन वे ही हैं जो सामान्य जन्मके होते हैं—क्योंकि यह अज्ञानमें जन्म लेना नहीं, बल्कि यह ज्ञानका जन्म है, कोई भौतिक घटना नहीं बल्कि यह आत्माका जन्म है। यह आत्माका स्वतः स्थित पुरुषरूपसे जन्मके अंदर आना है, अपने भूतभावको सचेतन रूपसे नियन्त्रित करना है, अज्ञानके बादलमें अपने-आपको खो देना नहीं, यह पुरुषका प्रकृतिके प्रभु-रूपसे शरीरमें जन्म लेना है। यहाँ प्रभु अपनी प्रकृतिके ऊपर खड़े स्वेच्छासे स्वच्छन्दतापूर्वक उसके अंदर कार्य करते हैं, उसके अधीन होकर, बेबस भवचक्ररूपी यन्त्रमें फँसे भटकते नहीं रहते, क्योंकि उनका कर्म ज्ञानकृत होता है, सामान्य प्राणियोंका-सा अज्ञानकृत नहीं।

इसलिये अवतारका अर्थ है—भागवतपुरुष 'श्रीकृष्ण' का पुरुषके दिव्य भावको मानवताके अंदर प्रत्यक्ष रूपसे प्रकट करना। यह ऊपरसे उसी तत्त्वका नीचे आकर आविर्भूत होना है, जिसे हमें नीचेसे ऊपर चढ़ा ले जाना है, यह मानव सत्ताके उस दिव्य जन्ममें भगवान्‌का अवतरण है, जिसमें हम मर्त्य प्राणियोंको आरोहण करना है; यह मानव प्राणीके सम्मुख, मनुष्यके ही आकार और प्रकारके अंदर तथा मानव-जीवनके सिद्ध आदर्श नमूनेके अंदर, भगवान्‌का एक आकर्षक दिव्य उदाहरण है। **(श्रीअरविन्द)**

भागवत-अवतारोंका रहस्य—यदि तुम काफी ऊँचे उठ सको तो तुम समस्त वस्तुओंके हृदयमें पहुँच जाते हो और जो कुछ इस हृदयमें अभिव्यक्त होता है, वह सब वस्तुओंमें भी व्यक्त हो सकता है। यही वह महान् रहस्य है—व्यक्तिके रूपमें भगवान्‌के अवतरणका रहस्य है। क्योंकि साधारणतया जो कुछ सत्ताके केन्द्रमें अभिव्यक्त होता है, वह बाह्य रूपमें तभी अभिव्यक्त हो पाता है जब व्यक्तिमें सङ्कल्प-शक्ति जाग उठती है और केन्द्रको प्रत्युत्तर देती है। उधर, यदि केन्द्रीय सङ्कल्प एक व्यक्तिमें सतत और स्थायी रूपसे प्रकट होता है तो वह व्यक्ति इस सङ्कल्प और दूसरे व्यक्तियोंके बीच मध्यस्थका काम कर सकता है और उनके लिये भी स्वयं ही सङ्कल्प कर सकता है। यह व्यक्ति जो कुछ अनुभव करता है और अपनी चेतनामें परम सङ्कल्पको समर्पित करता है, वह सब इस प्रकार प्रत्युत्तरित होता है मानो कि वह प्रत्येक व्यक्तिसे आया हो और यदि वैयक्तिक तत्त्वोंका किसी-न-किसी कारणसे उस प्रतिनिधि सत्ताके साथ थोड़ा बहुत चेतन या ऐच्छिक सम्पर्क हो तो उनका यह सम्पर्क प्रतिनिधि सत्ताकी सार्थकता और प्रभावशीलताको बढ़ा देगा। इस प्रकार जड़-पदार्थमें परम क्रिया अधिक मूर्त और स्थायी रूपमें कार्य कर सकती है।

यही चेतनाके इन अवरोहणों (जिन्हें हम केन्द्रीकृत चेतना भी कह सकते हैं)-का सच्चा हेतु है; क्योंकि ये पृथ्वीपर सदा किसी निश्चित उद्देश्य और एक विशेष सिद्धि तथा एक ऐसे कार्यके लिये आते हैं, जो कि अवतारोंके आनेसे पूर्व ही नियत और सुनिश्चित किया जा चुका होता है। ऐसे अवरोहण ही पृथ्वीपर परम अवतारोंके महान् पड़ाव होते हैं। **(श्रीमाँ)**

[श्रीअरविन्द दिव्य जीवन शिक्षा-केन्द्र]

शङ्करावतार भगवान् श्रीशङ्कराचार्य

(महामहोपाध्याय पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज)

आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने श्रीमद्भगवद्गीतामें अर्जुनको उपदेश देनेके बहाने अपने श्रीमुखसे यह प्रतिपादन किया है कि जब-जब देशमें धर्मका ह्रास और अधर्मकी अभिवृद्धि होती है एवं जब-जब किसी भी कारणसे धर्मराज्यमें उच्छृङ्खलता तथा वैषम्य आदिका आविर्भाव होता है तब-तब मैं अपनी मायाका अवलम्बन कर धर्मसंस्थापनके लिये जगत्में आविर्भूत होता हूँ।[1] जन्ममृत्युरहित प्राकृतसम्बन्धविवर्जित सर्वभूतोंके अन्तर्यामी परमात्मा केवल जगत्के कल्याणके लिये देश तथा कालके उपयोगी शरीरको धारण करते हैं; क्योंकि स्थूल जगत्में स्थूलभावसे कार्य करनेके लिये स्थूल रूपका परिग्रह आवश्यक होता है। अनन्त शक्तियोंके परमाश्रयस्वरूप परमेश्वर प्रयोजनके अनुसार तत्-तत् शक्तियोंको अभिव्यक्त करनेके लिये स्वेच्छासे तद्योग्य शरीरका ग्रहण किया करते हैं।

जिस समय भगवान् श्रीशङ्कराचार्य आविर्भूत हुए थे, उस समय देशमें सद्धर्मका अनुष्ठान प्रायः लुप्त हो गया था। केवल इतना ही नहीं, उसका स्वरूपज्ञान भी उच्चकोटिके इने-गिने महापुरुषोंमें ही सीमित रह गया था। परमात्माकी ज्ञानशक्तिने ही उस अज्ञानप्रधान समयमें श्रीशङ्कराचार्यके रूपमें प्रकट होकर देशव्यापक अज्ञानान्धकारको दूर कर देशके एक कोनेसे दूसरे कोनेतक वैदिक धर्म-कर्मका एकछत्र साम्राज्य स्थापित कर दिया था। **'शङ्करः शङ्करः साक्षात्'** इत्यादि वचनोंके अनुसार शङ्कराचार्य लोकगुरु भगवान् शङ्करके अवतार थे, यह सर्वत्र प्रसिद्ध ही है।[2]

कुछ लोगोंको यह संदेह हो सकता है कि भगवान् शङ्कराचार्यने आविर्भूत होकर ऐसा कौन-सा अभिनव सिद्धान्त प्रकट किया या धर्मका प्रचार किया, जिससे यह प्रतीत हो सके कि उन्होंने जगत्का अवतारोचित अभूतपूर्व तथा लोकोत्तर कल्याण किया था? वस्तुतः अद्वैतवाद अनादिकालसे ही तत्-तत् अधिकारियोंके अन्दर प्रसिद्ध था, फिर उन्होंने प्रस्थानत्रयपर भाष्यका निर्माण कर अथवा अपने और किसी व्यापारसे कौन-सा विशेष कार्य सिद्ध किया?

इस शङ्काका समाधान यह है कि यद्यपि अधिकारके भेदके अनुसार अद्वैत, द्वैत आदि मत अनादिकालसे ही प्रसिद्ध हैं तथापि विशुद्ध ब्रह्माद्वैतवाद अवैदिक दार्शनिक सम्प्रदायके आविर्भावसे एक प्रकारसे लुप्त-सा हो गया था। योगाचार तथा माध्यमिक सम्प्रदायमें एवं किसी-

---

१. यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥ (४।७)

२. (क) कलौ रुद्रो महादेवो लोकानामीश्वरः परः।
करिष्यत्यवताराणि शङ्करो नीललोहितः। श्रौतस्मार्तप्रतिष्ठार्थं भक्तानां हितकाम्यया॥
उपदेक्ष्यति तज्ज्ञानं शिष्याणां ब्रह्मसंज्ञितम्। सर्ववेदान्तसारं हि धर्मान् वेदनिदर्शितान्॥
ये तं विप्रा निषेवन्ते येन केनोपचारतः। विजित्य कलिजान् दोषान् यान्ति ते परमं पदम्॥ (कूर्मपुराण १।२८।३२—३५)

(ख) चतुर्भिः सह शिष्यैस्तु शङ्करोऽवतरिष्यति। (शिवपुराण)

(ग) दुष्टाचारविनाशाय प्रादुर्भूतो महीतले। स एव शङ्कराचार्यः साक्षात् कैवल्यनायकः॥

किसी तान्त्रिक सम्प्रदायमें अद्वैतवादके नामसे जिस सिद्धान्तका प्रचार हुआ था, वह विशुद्ध औपनिषद ब्रह्मवादसे अत्यन्त भिन्न है। वैदिक धर्मके प्रचार तथा प्रभावके मन्द हो जानेसे समाज प्राय: श्रुतिसम्मत विशुद्ध ब्रह्मवादको भूलकर अवैदिक सम्प्रदायोंद्वारा प्रचारित अद्वैतवादको ग्रहण करने लगा था। हीनयान तथा महायानके अन्तर्भूत अष्टादश सम्प्रदाय; शैव, पाशुपत, कापालिक, कालामुख आदि माहेश्वरसम्प्रदाय; पाञ्चरात्र, भागवत आदि वैष्णवसम्प्रदाय तथा गाणपत्य, सौर आदि विभिन्न धर्मसम्प्रदाय भारतवर्षके विभिन्न देशोंमें फैल गये थे। स्थानविशेषमें आर्हत सम्प्रदायका प्रभाव भी कम न था। देशके खण्ड-खण्डमें विभक्त होनेके कारण तथा मनुष्योंकी रुचि और प्रवृत्तिमें विकार आ जानेके कारण श्रौतधर्मनिष्ठ एवं श्रौतधर्मसंरक्षक सार्वभौम चक्रवर्ती राजा भी कोई नहीं रह गया था, जिसके प्रभाव तथा आदर्शसे जनसमुदाय शुद्ध धर्मके अनुष्ठानमें प्रवृत्त हो सकता।

ऐसी परिस्थितिमें भगवान् श्रीशङ्कराचार्यने अपने ग्रन्थोंमें वेदानुमत निर्विशेष अद्वैत वस्तुका शास्त्र तथा युक्तिके बलसे दृढ़तापूर्वक प्रतिपादन कर केवल विविध द्वैतवादोंका ही नहीं, अपितु भ्रान्त अद्वैतवादका भी खण्डन ही किया है। शुद्ध वैदिक ज्ञानमार्गका अन्वेषण करनेवाले विरक्त, जिज्ञासु मुमुक्षु पुरुषोंके लिये यही सर्वप्रधान उपकार माना जा सकता है; क्योंकि भगवान् शङ्कर-जैसे लोकोत्तर धीशक्तिसम्पन्न पुरुषको छोड़कर दूसरे किसीके लिये तत्कालीन दार्शनिकोंके युक्तिजालका खण्डन करना सरल नहीं था। केवल इतना ही नहीं, अद्वैतसिद्धान्तका अपरोक्षतया स्वानुभव करके जगत्में उसके प्रचारके लिये तत्-तत् देश और कालके अनुसार मठादिस्थापनद्वारा ज्ञानोपदेशका स्थायी प्रबन्ध करना भी साधारण मनुष्यका कार्य नहीं था।

पारमार्थिक, व्यावहारिक तथा प्रातिभासिक भेदसे सत्ताभेदकी कल्पना करके भगवान् श्रीशङ्कराचार्यने एक विशाल समन्वयका मार्ग खोल दिया था। वह अपने-अपने अधिकारके अनुसार वेदमार्गरत निष्ठावान् साधकके लिये परम हितकारी ही हुआ; क्योंकि व्यवहारभूमिमें अनुभवके अनुसार द्वैतवादको अङ्गीकार करते हुए और तदनुरूप आचार, अनुष्ठान आदिका उपदेश देते हुए भगवान्ने दिखाया है कि वस्तुत: वेदान्तोपदिष्ट अद्वैतभावसे शास्त्रानुमत द्वैतभावका विरोध नहीं है; क्योंकि शुद्ध ब्रह्मज्ञानके उदयसे संस्कार या वासनाकी निवृत्ति, विविध प्रकारके कर्मोंकी निवृत्ति तथा चित्तका उपशम हो जानेपर अखिल द्वैतभावोंका एक परमाद्वैतभावमें ही पर्यवसान हो जाता है, परंतु जबतक इस प्रकार परा ब्रह्मविद्याका उदय न हो तब तक द्वैतभावको मिथ्या कहकर द्वैतभावमूलक शास्त्रविहित उपासना आदिका त्याग करना उनके सिद्धान्तके विरुद्ध है; क्योंकि जो अनधिकारी है अर्थात् जिसको आत्मानात्म-विवेक नहीं हुआ है, जिसके चित्तमें पूर्णरूपसे वैराग्यका उदय नहीं हुआ है, जो साधनसम्पन्न नहीं है और जिसमें मुक्तिकी इच्छातक उदित नहीं हुई है, उसके लिये वेदान्तज्ञानका अधिकारतक नहीं है। कर्मसे शुद्धचित्त होकर उपासनामें तत्पर होनेसे धीरे-धीरे ज्ञानकी इच्छा तथा उसका अधिकार उत्पन्न हो जाता है। अतएव व्यवहारभूमिमें अपने-अपने प्राक्तन संस्कारोंके अनुसार जो जिस प्रकार द्वैत अधिकारमें रहता है, उसके लिये वही ठीक है। भगवान् श्रीशङ्कराचार्यजीका कहना यही है कि वह शास्त्रसम्मत होना चाहिये, क्योंकि उच्छास्त्रित (शास्त्रविपरीत) पौरुषसे उन्नतिकी आशा नहीं है।

वर्णाश्रमधर्मका लोप होनेसे समाजमें धर्मविपर्यय अवश्यम्भावी है। भगवान् श्रीशङ्कराचार्यका सिद्धान्त है कि वर्णाश्रमधर्मका संरक्षण करना ही परमेश्वरका नररूपमें अवतीर्ण होनेका मुख्य प्रयोजन है। भगवान् श्रीशङ्कराचार्यके जीवनचरित, शिष्योंके प्रति उनके उपदेश तथा ग्रन्थ आदिके पर्यालोचनसे प्रतीत होता है कि उन्होंने स्वयं भी वर्णाश्रमधर्मका उपकार करनेके लिये ही समग्र जीवन एवं आत्मशक्तिका प्रयोग किया था, यह उनके अवतारत्वका ही द्योतक है। ये शङ्कररूपी शङ्करावतार वैदिकधर्मसंस्थापक, परमज्ञानमूर्ति, प्रज्ञा तथा करुणाके विग्रहस्वरूप महापुरुष वैदिकधर्मावलम्बी मनुष्यमात्रके लिये सर्वदा प्रणम्य हैं।

अवतारतत्त्व

[श्रीश्री माँ आनन्दमयीके विचार]

भारतकी महान् आध्यात्मिक विभूतियोंमें श्रीश्री माँ आनन्दमयीका नाम अन्यतम है। माँ आनन्दमयीकी एकनिष्ठ सेविका एवं उनकी प्रतिदिनकी दिनचर्याको अपनी दैनन्दिनीमें आबद्ध कर 'श्रीश्री माँ आनन्दमयी' नामक पुस्तककी लेखिका ब्रह्मचारिणी गुरुप्रिया देवीने श्रीश्री माँके मुखारविन्दसे निःसृत अवतारतत्त्वसे सम्बन्धित वचनोंको निम्न प्रकारसे लिपिबद्ध किया है—

माँने कहा—'एक दृष्टिसे देखा जाय तो सभी लोग अवतार हैं। यदि यह बात छोड़ भी दें तो किस स्थानसे अवतरण होगा? इसके उत्तरमें कहा जाता है—निर्गुण और सगुणका प्रकाश अर्थात् सगुण और निर्गुणका एक साथ प्रकाश ही अवतार है। जैसे—पेड़का अङ्कुर, उस अङ्कुरसे पेड़ पौधा होता है, परंतु अङ्कुरकी अवस्थामें वृक्षका रंग और प्रकृति नहीं मालूम होती, माटीके साथ मिलकर रहनेसे ही बीजसे अङ्कुर उत्पन्न होता है और क्रमशः उसीसे पेड़-पौधे, फल-फूल निकलते हैं—ऐसे ही सगुण और निर्गुण दोनों भावोंके एक साथ प्रकाशसे ही अवतार होता है। इसलिये अवतारमें दोनों भावोंकी लीला दिखायी पड़ती है और भी देखो—समुद्रके ऊपरका अंश कितना तरङ्गमय है, परंतु भीतरके अंशमें कोई तरङ्ग नहीं है, वहाँ जल स्थिर, धीर एवं शान्त है। उसी प्रकार अवतारमें चल और अचल, दोनों भावोंकी लीला होती है।'

[प्रेषिका—ब्रह्मचारिणी गुणीता 'विद्यावारिधि' वेदान्ताचार्य]

~~~ o ~~~

अवतार-ग्रहणकी प्रक्रिया

[ईश्वरका जन्म कैसे?]

(ब्रह्मलीन स्वामी श्रीअखण्डानन्दसरस्वतीजी महाराज)

जन्म तो जैसे जीवका होता है, वैसे ही ईश्वरका होता है। पर, जीवके जन्ममें अविद्या, काम और कर्म हेतु होते हैं और ईश्वरके जन्ममें अविद्या, काम और कर्म हेतु नहीं होते। तुम साक्षी, द्रष्टा, निराकारी होकर देहधारी बने हुए हो—अगर यह बात तुम्हारी समझमें आती हो तो ईश्वरका जन्म लेना क्यों समझमें नहीं आता? और, यदि तुम्हें जीवका स्वरूप ही समझमें नहीं आता और जीवका जन्म समझमें नहीं आता तो ईश्वरका जन्म समझमें आना शक्य नहीं है। जीवका स्वरूप बहुत विलक्षण है। जैसे ईश्वरके लिये गीतामें '**अजोऽपि सन्नव्ययात्मा**' है; ऐसा ही जीवके लिये भी है—

न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

(२।२०)

वैष्णवाचार्योंके मतमें भी यह वर्णन आत्मा (जीवात्मा)-का ही है। 'आत्मा' का न जन्म है, न मरण है; फिर भी अपनेको जन्मने-मरनेवाला मानता है। क्यों मानता है? अविद्यासे। जीवात्मा अजन्मा है। यह जीवात्मा अव्यय भी है। 'अव्यय' शब्द तो गीतामें ऐसा बढ़िया है कि यह परमपदको भी 'अव्यय' कहता है, यह आत्माको भी 'अव्यय' कहता है और यह जगत्को भी 'अव्यय' कहता है। आप लोग गीताका कभी ग़ौर-से स्वाध्याय करें।

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम्।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम्॥

(२।२१)

'आत्मा' अव्यय है। इसको न जानना ही सारे अनर्थका मूल है। जान लिया तो? फिर वह भला किसको मारता है और किसके मारनेका विषय होता है। न यह किसीको मारता है और न ही इसको कोई मार सकता है। अपना आत्मा तो अव्यय है। यह बात तुम जानते हो तब भी तुम शरीरधारी हो कि नहीं हो? 'हैं।' अरे, तुम अव्यय होनेपर भी शरीरधारी हो! विचित्र है! '**न हन्यते हन्यमाने शरीरे**'—यह परमात्माका वर्णन नहीं है, यह आत्माका ही वर्णन है। शरीरके रहते हुए यह बात कही जा रही है। शरीरके मरनेपर परमात्माकी तो मृत्यु प्राप्त ही नहीं थी जो उसका निषेध किया जाता, जीवात्माकी
~~~

मृत्युकी शंका थी, सो उसीका निषेध किया गया कि शरीरके मरनेपर उसकी मृत्यु नहीं होती। '**न जायते म्रियते**'—यह 'आत्मा' जन्म लेनेपर भी अजन्मा है—इसके शरीरधारी होनेपर भी इसके अज स्वरूपपर कोई अन्तर नहीं पड़ा है—केवल अविद्या है।

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति स हन्यते॥

(२।१९)

अच्छा, परमात्माको देखो! '**गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्**' (१५।५) 'ब्रह्म' जो है वह अव्यय-पद है। ईश्वर भी 'अव्यय' है—'**बिभर्त्यव्यय ईश्वरः**' (१५।१७) क्षर-अक्षरसे अतीत अव्यय है ईश्वर। अब देखो, यह प्रपञ्च भी अव्यय है—

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्॥

(१५।१)

तो परमात्मा भी अव्यय, ईश्वर भी अव्यय, परमपद भी अव्यय, आत्मा भी अव्यय, प्रपञ्च भी अव्यय। और, इसमें इतना बखेड़ा दिख रहा है—'**किं न पश्यसि संसारं तत्रैवाज्ञानकल्पितम्।**' प्रपञ्चका जन्म-मरण भी बिना हुए ही दिख रहा है—यह गीताका सिद्धान्त है।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥

(२।१६)

जो असत् है, उसका भाव माने जन्म और तदुपलक्षित अभाव माने मृत्यु—ये दोनों नहीं होते। और जो सद्-वस्तु है—उसका अभाव माने मृत्यु और तदुपलक्षित जन्म नहीं होते। न वन्ध्या-पुत्रका जन्म-मरण है और न ब्रह्मका जन्म-मरण है। तब यह जन्म-मरण है क्या? यह अनिर्वचनीय रूपसे दिखायी पड़ रहा है और तत्त्वदृष्टिसे नहीं है। जबतक तत्त्वज्ञान नहीं है तबतक सच्चा मालूम पड़ रहा है। यही प्रपञ्चकी स्थिति है।

तो, जैसे प्रपञ्चका जन्म-मरण न होनेपर भी सन्मात्र-वस्तुमें जन्म-मरण दिखायी पड़ रहा है, जैसे जीवात्माका जन्म-मरण न होनेपर भी अविद्याके वशवर्ती होकर यह मालूम पड़ता है कि हमारा जन्म-मरण है; जैसे परमपदमें जन्म-मरण न होनेपर भी मूढ़लोग जन्म-मरणकी कल्पना करते हैं—ठीक इसी प्रकार यह जो परमात्मा है—इसमें न जन्म है, न मरण परंतु बिना अविद्याके, बिना कामनाके, बिना कर्म-फलके '**लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्**' यह महाराज, कभी प्रकट हो जाता है, कभी छिप जाता है। यदि हमारा पिता होकर पुत्रकी रक्षाके लिये न आये, यदि हमारा सखा होकर हमारी विपत्तिमें काम न दे, यदि हमारा पति होकर हमारी रक्षाके लिये न आये, यदि हमारा स्वामी होकर सेवककी रक्षाके लिये न आये—तो ऐसे ईश्वरकी जरूरत ही क्या है? वह क्या ईश्वर है जो अन्यायके दमनके लिये स्वयं न कूद पड़े? वह क्या ईश्वर है जो किसीको संकटमें देखकर, करुणाके अधीन होकर स्वयं रक्षाके लिये न आ जाय? तो, उसके दयालुत्वकी दृष्टिसे, उसके न्यायकारित्वकी दृष्टिसे, स्वामित्वकी दृष्टिसे, पितृत्वकी दृष्टिसे, पतित्वकी दृष्टिसे ईश्वरका जन्म होता है परंतु उसकी असंगता, पूर्णतामें कभी किसी प्रकार बाधा पड़ ही नहीं सकती।

जिनके अपने मनमें वासनाएँ बैठी हैं—वे सोचते हैं कि जैसे हम वासनाके अधीन होकर कर्म करते हैं, वैसे ही ईश्वर भी वासनाके वश होकर कर्म करता होगा। आपको, कहो तो फ़कीरोंकी एक बात सुनाते हैं—जो ईश्वरको भी वासनावान् समझते हैं—वह निगुरा है। भला, निगुरा होनेसे और ईश्वरकी वासनासे क्या सम्बन्ध है? इसका सम्बन्ध यह है कि इसका यदि कोई गुरु होता तो कम-से-कम वह यह मानता कि हम तो वासनाके अधीन होकर काम करते हैं और हमारे गुरु बिना वासनाके ही काम करते हैं। माने, मुक्त-पुरुषके व्यवहारको वह समझ सकता! जो बद्ध-पुरुष और मुक्त-पुरुषके व्यवहारको समझ सकता है, वह जीवके कर्म और ईश्वरके कर्ममें क्या भेद हो सकता है—यह भी समझ सकता है। उनका अभिप्राय यही है कि अगर तुम मुक्त-पुरुष और बद्ध-पुरुषके कर्ममें क्या भेद है—उसको समझ सकते तो ऐसा न सोचते। श्रीमद्भागवत और श्रीमद्भगवद्गीतामें इसका भेद बताया हुआ है।

सूर्यको चलना पड़ता है, वह वासनाके वश होकर नहीं चलता। सूर्य तो भगवदवतार है। व्यष्टि-समूहको जो नेत्रसे देखनेके लिये प्रकाशकी आवश्यकता है—उसकी पूर्तिके लिये उनके प्रारब्धसे सूर्य-गोलकका निर्माण हुआ। जैसे, व्यष्टिके प्रारब्धसे हमारे नेत्र-गोलकका निर्माण होता है, वैसे ही समष्टि-प्रारब्धसे सूर्य-गोलकका निर्माण होता है और ईश्वर भी

समष्टिकी उपाधिसे प्रकाश देता है, वासनाके वशवर्ती होकर नहीं। जैसे परमात्मा सूर्यबिम्ब, चन्द्रबिम्बको प्रकाशित करता है, ऐसे जीवन्मुक्त महापुरुष अखण्ड एकरस परमात्मासे एक होकर भी व्यष्टि-प्रारब्धजन्य शरीरको प्रकाशित करता रहता है, किंतु उसमें 'मैं' और 'मेरा'—उसकी दृष्टिमें नहीं होता।

अतः ईश्वर अपने अजत्वको छोड़े बिना ही, अपने अव्ययत्व—अविनाशित्वको छोड़े बिना ही और जन्म तथा मरणके बीचमें जितने भाव-विकार हैं—'**जायते, अस्ति, वर्द्धते, विपरिणमते, अपक्षीयते, विनश्यति**'—इन सबका स्पर्श किये बिना ही ईश्वर भूतोंका ईश्वर होता है। आप लोग तो महाराज! जीव, ईश्वर, जगत्‌का विचार किये बिना ही बड़ी जल्दीसे सातवें आसमानपर पहुँच जाते हो न! कूटस्थ आत्मा बनकर बैठ गये तो जगत्‌का व्यवहार कैसे चलता है—इसको सिद्ध करनेकी जिम्मेवारी आपकी तो नहीं होती है न! यह वाङ्मयतागोचर ब्रह्ममें, प्रत्यक्-चैतन्याभिन्न अद्वय ब्रह्ममें यह प्रपञ्च-व्यवहार कैसे चल रहा है—इसकी अनिर्वचनीयताको समझे बिना एक पक्ष अपने मनमें सोच लिया और बोले कि यह नहीं हो सकता—वह नहीं हो सकता! अरे, यह भी हो सकता है और वह भी हो सकता है! इस अनिर्वचनीय प्रपञ्चमें ऐसा क्यों नहीं हो सकता?

'**भूतानामीश्वरोऽपि सन्**'—जीवका जन्म भूतोंके अधीन होता है; वह मिट्टी, पानी, अग्नि, वायु और आकाशके अधीन है। परंतु ईश्वर भूतोंको अपने अधीन करके जन्म लेता है। एक ब्रह्माण्डके स्वामीको ईश्वर नहीं बोलते—ब्रह्माण्ड तो बच्चा है। ये जो पञ्चभूत हैं—पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—इनमें तो कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड, नक्षत्र-तारे पैदा होते और मरते रहते हैं। पञ्चभूत बड़ी भारी चीज है और ब्रह्माण्ड तो बिलकुल छोटे-छोटे हैं। उन पञ्चभूतों और उनके भी आदिकारण मायाके स्वामीका नाम 'ईश्वर' है। '***रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड***'—जिसके रोम-रोममें ब्रह्माण्ड होता है, वह ईश्वर है। अवतार लेकर भी पञ्चभूतोंका ईश्वर ही रहता है। अवतार लेकर भी अविनाशी ही रहता है। अवतार लेकर भी अजन्मा ही रहता है।

अब प्रश्न यह हुआ कि एक, अनन्त, अद्वितीय प्रत्यक् चैतन्याभिन्न परमात्म-तत्त्वसे पञ्चभूतकी सिद्धि कहाँसे होगी? तो देखो, '**प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया**'—**आत्ममायया स्वां प्रकृतिम् अधिष्ठाय सम्भवामि आत्ममायया सम्भवामि**। भगवान्‌की एक आत्ममाया है माने अपनी माया है, स्वरूपभूता माया है। वह परब्रह्म परमात्मासे स्वदृष्टिसे जुदा नहीं है, अज्ञान-दृष्टिसे ही जुदा है। माने जहाँतक परब्रह्म परमात्मा अज्ञात है, वहाँतक अज्ञातताकी उपाधिसे ही वह माया पृथक् है। परमात्माके स्वरूपमें माया कोई दूसरी वस्तु नहीं है—अर्थात् कोई दूसरा खेल खेला नहीं गया है; जैसे कि एक जादूगर, स्वयं अद्वैत रहता हुआ ही अपनेको अनेक रूपमें दिखा सकता है। चित्तसे यह सृष्टि नहीं बनी—जैसा कि बौद्धलोग कहते हैं। प्रकृतिसे यह सृष्टि नहीं बनी—जैसा कि सांख्यलोग कहते हैं। परमाणुओंसे यह सृष्टि नहीं बनी—जैसा कि न्यायवैशेषिकलोग कहते हैं। पुद्गलसे यह सृष्टि नहीं बनी—जैसा कि जैनलोग कहते हैं। तब फिर यह कैसे बनी?

वेदान्तियोंका कहना है कि ईश्वरकी मायासे बनी—माने बनी नहीं, जादूगरकी माया प्रतीत भर होती है। इसमें समझना यह है कि मायाका स्वभाव है—आश्रयको व्यामोहित न करना—जैसे जादूके खेलमें देखनेवाला तो उसको देखकर मोहित हो जाता है, परंतु दिखानेवाला मोहित नहीं होता। उसी प्रकार मायाका यह स्वभाव ही है कि वह जिसकी होती है और जिसमें होती है, उसको मोहित नहीं करती, लेकिन जो उसको देखता है, वह मोहित हो जाता है। इसी प्रकार अविद्याका स्वभाव यह है कि वह जिसमें रहती है, उसको भूलमें डालती है अर्थात् अविद्या अपने आश्रयको मोहित करती है। इसीलिये जीव अविद्याके वशवर्ती होकर जन्म लेता है—यह 'मैं', यह 'मेरा', यह प्रिय, यह अप्रिय—इस वासनाके वशवर्ती होकर कर्मके अधीन हो जाता है और कर्मका फल सुख-दुःख उसको भोगना पड़ता है। परंतु ईश्वर अविद्याके अधीन होकर जन्म नहीं लेता, अपनी मायापर नियन्त्रण रखते हुए ही जन्म लेता है। इस सम्पूर्ण दृश्यादृश्य प्रपञ्चके कारणके रूपमें अज्ञान दशामें कल्पित जो माया है, वह अपने अधिष्ठान ब्रह्मको मोहित किये बिना ही इस प्रपञ्चको उसीमें दिखाती है।

यह जो परमेश्वर है—इसका अवतार कैसा? बोले—**आत्ममायया स्वां प्रकृतिम् अधिष्ठाय सम्भवामि।**

स्वदृष्टिसे स्वरूपभूता, परंतु परदृष्टिसे आश्रयको व्यामुग्ध न करनेवाली, परंतु उससे भिन्न सत्तावाली नहीं—फिर भी नाना रूपोंको दिखानेवाली—जैसे कोई जादूका खेल दिखा

रहा हो—ऐसी इस मायासे यह अवतार सम्भव होता है।

देखो, तात्पर्यकी दृष्टिसे तो सब दर्शन एक ही बात बोलते हैं, परंतु प्रक्रिया सबकी अलग-अलग होती है, तो प्रक्रियाकी दृष्टिसे जो त्रिगुणमयी प्रकृति है वह अद्वैत वेदान्तियोंको मान्य नहीं है। अद्वैत-वेदान्तमें तो जो सन्मूला, चिन्मूला, आनन्दमूला प्रकृति है—वह मान्य है। प्रकृति भी उनके यहाँ सच्चिदानन्दमयी है। इसका अर्थ है, सद्रूप रहते हुए—अविनाशी रहते हुए, चिद्रूप रहते हुए—अखण्डज्ञानस्वरूप रहते हुए और परमानन्दस्वरूप रहते हुए ही नाना प्रकारसे ईश्वरका अवतार होता है। सद्भावसे कुरुक्षेत्र आदि के युद्ध करते-करवाते हुए, चिद्भावसे अर्जुन और उद्धवको ज्ञानोपदेश करते हुए और आनन्द-भावसे रासलीला आदि करते हुए वह ईश्वर; ईश्वर ही रहता है। यह सब '**स्वामधिष्ठाय**' में छिपा है। इसमें यह नहीं कि सद्भाव भगवान्‌को मोह ले और वे कर्ममें इतने मुग्ध हो गये कि अब हम तुमको मारेंगे ही। जीवन्मुक्त लोग भी मुग्ध नहीं होते हैं। यह नहीं कि चिद्भाव-ज्ञानके एक पक्षमें आग्रह हो गया कि जो हम कहते हैं; सो ही ठीक है। सत्-पक्षमें आकृतियाँ बनती हैं, चित्-पक्षमें प्रतीतियाँ बनती हैं और आनन्द-पक्षमें रसोल्लास होता है और जो रसोल्लास है—सो ही प्रतीति है और सो ही आकृति है। इसका अर्थ है कि परब्रह्म परमात्मामें यह जितनी आकृति, विकृति, संस्कृति दिख रही हैं—ये सब-की-सब चिन्मयी और आनन्दमयी हैं। इसी प्रकृतिको लेकर भगवान्‌का अवतार होता है। आकार दीखते हुए भी वह सत्ता ही है। पृथक् प्रतीत होते हुए भी वह चिन्मात्र ही है। वह सुखाकार-दु:खाकार वृत्तिवाला दीखते रहनेपर भी परमानन्द ही है। ऐसी अपनी सन्मयी, चिन्मयी, आनन्दमयी दिव्य-प्रकृतिको लेकर यह परमेश्वरका अवतार होता है। यदि यह न होता तो नास्तिक लोगोंकी बाँछें खिल जातीं, महाराज! यह तो कभी ग्रन्थ-भेद करके ईश्वर कल्याण करता है और कभी संत-भेद करके ईश्वर कल्याण करता है, कभी स्वयं आकर ईश्वर कल्याण करता है और ऐसा मायाका चोंगा ओढ़कर आता है कि अभक्त लोग तो पहचान ही न पावें और जो उसके प्रेमी हैं, जिज्ञासु हैं—वे उसको पहचान लें। अब पूछो कि क्यों? तो देखो, जीवके साथ ही 'क्यों' का प्रश्न जुड़ता है; क्योंकि किसी कारणसे, किसी प्रयोजनसे ही जीव कर्म करता है। परंतु, ईश्वरके प्रति कारणता और प्रयोजनवत्ता जीवकी दृष्टिसे होती है ईश्वरकी स्वदृष्टिसे नहीं; क्योंकि वह पूर्ण है अथवा कहो कि उसका ऐसा स्वभाव ही है।

~~~ o ~~~

अवतारवादका दिव्य-रहस्य

(ब्रह्मलीन स्वामी श्रीशिवानन्दसरस्वतीजी महाराज)

अवतरणका नियम

ईश्वरके अवतार लेनेका नियम सर्वत्र तथा सब युगोंमें एक ही रहा है। भगवान्‌का अवतरण मानवके आरोहणके लिये होता है। घोर आपत्तिसे जगत्‌की रक्षा, दुष्टोंका संहार तथा धर्मकी पुन: स्थापना ही प्रत्येक अवतारका प्रयोजन होता है।

भगवान्‌का मानवरूपमें इस धरापर अवतीर्ण होना ही अवतार कहलाता है।

जीवन्मुक्त तथा अवतारमें अन्तर

सामान्यत: एक जीवन्मुक्त रात्रिमें चमकते हुए नक्षत्रकी भाँति है। उसका प्रकाश सीमित होता है। तप और साधनाद्वारा वह भवसागरसे पार हो जाता है, किंतु दूसरोंका उद्धार नहीं कर सकता। ज्ञानी पुरुष एक निर्झरकी भाँति होता है, जो केवल थोड़ेसे मनुष्योंको शान्ति तथा तृप्ति प्रदान कर सकता है, परंतु अवतारी पुरुष सर्वसमर्थ होता है, वह मानसरोवरकी भाँति महान् होता है, सहस्रों पुरुषों तथा नारियोंकी अज्ञानताको दूर कर उन्हें शाश्वत शान्ति, आनन्द तथा ज्योति प्रदान करता है।

अवतार तथा परम-तत्त्व एक ही हैं। वह जीवात्माओंकी भाँति अंशमात्र नहीं है। अवतारी आत्माएँ उसी परम-सत्ता—परमात्माकी किरणें हैं। लोक-कल्याण एवं लोक-संग्रहके सम्पन्न होनेके प्रयोजनको सिद्ध कर वे अन्तर्धान हो जाते हैं।

अवतारोंके प्रकार

अवतार कई प्रकारके होते हैं। पूर्णावतार समस्त कलाओंसे युक्त होता है। कई अंशावतार और कुछ लीलावतार होते हैं।

भगवान् कृष्ण षोडश-कलासे सम्पन्न पूर्णावतार थे। श्रीशङ्कराचार्यजी अंशावतार थे। मत्स्य, कूर्म, नृसिंह, वामन, वाराह तथा कई अन्य लीलावतार थे।

भगवान् राम और भगवान् श्रीकृष्ण विष्णुके अवतार
~~~

थे। दक्षिणामूर्ति भगवान् शिवके अवतार थे। दत्तात्रेय त्रिमूर्ति—ब्रह्मा, विष्णु, शिवके अवतार थे। ब्रह्मा रचयिता, विष्णु पालनकर्ता और शिव संहारकर्ता हैं। हिन्दूधर्ममें बहुदेववाद नहीं; किंतु ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा देवी एक ही शक्तिके भिन्न-भिन्न रूप हैं।

भगवान्‌के अवतारोंमें कलाओंकी भिन्नता

प्राचीन ऋषियोंने जगत्‌की रचनामें षोडश कलाओंकी स्थिति बतलाते हुए कहा है कि वनस्पतियोंमें जहाँ एक कला विद्यमान है, वहीं पशुओंमें दो कलाएँ रहती हैं। मनुष्योंमें पाँचसे आठतक कलाएँ होती हैं। ज्यों-ज्यों अपूर्ण दशासे उत्तरोत्तर विकास प्राप्त होता है, त्यों-त्यों भगवान्‌के अवतारोंमें नौसे सोलह कलाओंतक वृद्धि होती रहती है। पूर्णावतारमें सोलह कलाएँ होती हैं। भगवान् श्रीकृष्ण षोडश कलासे सम्पन्न पूर्णावतार थे। भगवान् राममें चौदह कलाएँ थीं। थियोसॉफी मतवाले जब अपने आध्यात्मिक गुरुओंके आध्यात्मिक विकासका वर्णन करते हैं, तब सात और बारह कलाओंकी बात करते हैं।

अवतारका दिव्य रूप

कई लोग कहते हैं, 'हम श्रीकृष्णको भगवान् कैसे कह सकते हैं? उनका जन्म भी हुआ, मृत्यु भी हुई, वे तो मनुष्यमात्र थे'—ऐसा कथन उपयुक्त नहीं है। ऐसा तो अज्ञानी बालक ही कह सकता है। भगवान् स्वयं श्रीकृष्णके रूपमें प्रकट हुए थे। उन्होंने मानवताके कल्याण तथा पारस्परिक आधीनता लानेके लिये कुछ कालपर्यन्त लोक-संग्रहका कार्य किया और फिर वे अन्तर्धान हो गये। वे श्रीहरि ही हैं, इसमें कोई संदेह नहीं।

भगवान् श्रीराम परम तत्त्व हैं। अन्तर्यामी और प्राणिमात्रके संरक्षक हैं। वे सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् तथा सर्वव्यापक हैं। न उनका जन्म होता है और न मृत्यु ही होती है। वे लोक-कल्याणार्थ प्रकट हुए और अन्तर्धान हो गये।

भगवान् राम तथा श्रीकृष्णके शरीर पाञ्चभौतिक नहीं थे। उनके शरीर दिव्य एवं चिन्मय थे, भले ही वे अस्थि-चर्ममय देहके दीखते थे। मनुष्योंकी भाँति न तो उनका जन्म हुआ न मृत्यु। वे तो योगियोंकी भाँति प्रकट होकर दृष्टिसे ओझल हो गये। उनका शरीरान्त नहीं हुआ।

जैसे एक दर्जी, जो दूसरोंके लिये कोट सिलता है, अपने लिये भी एक कोट सी सकता है, वैसे ही ईश्वर, जो विश्वभरकी रचना करता है, अपने लिये भी शरीर धारण कर लेता है, इसमें कुछ कठिनाई नहीं। वे सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ हैं ही। मायापर पूरा अधिकार होनेके कारण वे अपने दिव्यत्वका ज्ञान रखते हैं—भले ही मानव-शरीरमें हों।

कई बार राजा बन्दीगृह जाकर बन्दियोंकी कोठरियोंमें घुस-घुसकर देखता है कि वहाँ उनकी क्या दशा है? यह सब बन्दियोंके हितके लिये किया जाता है। राजा पूर्णतया स्वतन्त्र ही रहता है। स्वेच्छानुसार ही राजा बन्दीगृहमें प्रवेश करता है, ठीक इसी प्रकार भगवान् परम स्वतन्त्र होते हुए भी स्वेच्छासे मानव-शरीर धारण करते हैं। मनुष्यके उत्थानके लिये अवतार लेते हैं, तब भी माया उनके अधीन रहती है। जगत्‌के जीव आत्मसाक्षात्कारके बिना मायाके अधीन हैं।

अवतारोंसे सम्पर्क

कई मनुष्य अधिकारी हुए बिना ही अवतारोंके दर्शन करना चाहते हैं। वे नहीं जानते कि अवतार सम्मुख प्रकट भी हो जाय, तो उनको पहचाननेके लिये उनके पास नेत्र ही नहीं हैं। आप तो उन्हें साधारण मनुष्य ही समझेंगे। भगवान् कृष्णके भी ईश्वरीय स्वरूपको भला कितने लोग जान पाये थे? क्या जरासन्ध, शिशुपाल, दुर्योधन उनको पहचान पाये? श्रीकृष्णको भगवान्‌का अवतार माननेवाले भीष्म पितामह-जैसे कुछ ही लोग थे। तभी तो भगवान् कहते हैं—'मूढ़ जन तो मेरे मानवी शरीरका निरादर करते हैं; क्योंकि वे मेरे परम तत्त्व और सर्वशक्तिमान् स्वरूपसे अनभिज्ञ रहते हैं।'

एक संत ही दूसरे संत महानुभावको समझ सकता है। रत्नोंका व्यापारी ही रत्नोंकी पहचान कर सकता है। भला, एक रोगी वैद्यके गुणोंको कैसे जान सकता है?

आध्यात्मिक पथके नये साधकोंको साधनाका अभ्यास शनैः-शनैः करना चाहिये। उपगुरुओंसे ली गयी शिक्षाका उन्हें सावधानीसे पालन करना चाहिये। ब्रह्मनिष्ठ गुरुके सान्निध्यके लिये उसे अपने आपको अधिकारी बनाना होगा, तभी ध्यानकी प्रक्रियाका उपयुक्त अभ्यास हो पायेगा,

जिससे भगवत्साक्षात्कार सुलभ हो जायगा।

यदि आप साधनचतुष्टयसे सम्पन्न हैं, भगवान् बुद्ध तथा राजा भर्तृहरिकी तरह उत्कट वैराग्य रखते हैं, उज्जैनके अवन्ति ब्राह्मणकी तरह आपमें क्षमा और सहिष्णुता है, त्रोटक या पद्मपादसरीखी गुरु-भक्ति तथा गुरुनिष्ठा आपमें है, तो आप इसी क्षण अवतारोंसे सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं।

क्या आपमें रोगियोंकी निष्काम सेवामें जुटनेकी भावना है? क्या आपमें युद्धक्षेत्रके योद्धाकी भाँति आज्ञाकारिता है तथा रन्तिदेवकी तरह उदारता है, क्या आप भक्तिमती मीराकी भाँति निरन्तर भगवान् श्रीकृष्णकी विरहाग्निमें तड़पते हैं? बालक ध्रुव सरीखी तपस्या कर सकते हैं? क्या आप शम्स तबरेज या मंसूरकी भाँति अपनी निष्ठापर दृढ़ रह सकते हैं?

यदि आपका उत्तर 'हाँ' में है तो आप इसी क्षण आत्मसाक्षात्कार कर सकेंगे। आप अवतारों और ब्रह्मनिष्ठ योगियोंके सान्निध्यका आनन्द ले सकेंगे।

अवतारोंकी उपासनाद्वारा भगवत्-प्राप्ति

आप भगवान् राम और भगवान् श्रीकृष्ण-जैसे अवतारोंकी पूजा, अर्चनाद्वारा भगवत्साक्षात्कार कर सकते हैं। ऐसे कई उदाहरण हैं जैसे—तुकाराम, समर्थ गुरु रामदास, भक्तकवि सूरदास, भक्तिमती मीराबाई, राम-भक्त तुलसीदासजी, जिन्होंने अपने-अपने इष्टको इन्हीं चक्षुओंसे निहारा तथा उनके मनोहारी स्वरूपके दर्शनोंका आनन्द प्राप्त किया। इनकी भक्ति-रचनाएँ, इनकी आध्यात्मिक उपलब्धियोंका प्रमाण हैं।

आप नित्य-निरन्तर भगवान् राम तथा भगवान् श्रीकृष्णको अपने हृदयसिंहासनपर विराजमान कर अनन्य भावसे पूजा-अर्चना कीजिये, हृदयसे उनकी स्तुति कीजिये, उनका स्मरण कीजिये, शीघ्र ही वे आपके सम्मुख अपने दिव्य स्वरूपमें प्रकट हो जायँगे और आपको उनकी दिव्यानुभूति होगी। आपको अमरत्व तथा शाश्वत आनन्दकी प्राप्ति होगी।

ईश्वर अपने अनन्य भक्तोंको कई रूपमें दर्शन देते हैं। वे भक्तोंके इष्टानुसार ही उनके सामने प्रकट होते हैं। यदि आप चतुर्भुज विष्णुभगवान्‌के उपासक हैं तो वे श्रीहरिके स्वरूपमें ही दर्शन देंगे। यदि भगवान् शिव आपके इष्ट हैं तो वे शिवके स्वरूपमें आपके सम्मुख उपस्थित होंगे। यदि आप माँ दुर्गा अथवा माँ कालीके दर्शन करना चाहते हैं तो वे आपको भगवतीके रूपमें दर्शन देंगे। यदि आप भगवान् श्रीकृष्ण अथवा भगवान् दत्तात्रेयके उपासक हैं तो वे इन्हीं रूपोंमें दर्शन देंगे।

सभी ईश्वरके रूप हैं। नाम एवं रूपमें भिन्नता भले ही हो, पूजा उसी एक ईश्वरकी ही होती है। भक्त अपने अन्तःस्थित उसी एक अन्तर्यामीकी पूजा करता है। एक रूपको, दूसरोंसे श्रेष्ठ मानना अज्ञानता है। सभी रूप उसी एक परम तत्त्व ब्रह्मके ही हैं। सभी उसी एक ईश्वरकी पूजा करते हैं। उपासकोंमें भिन्नता होनेके कारण इष्टदेवमें भिन्नता रहती है, न कि उपास्यमें।

वस्तुतः राम और कृष्ण तो आपके हृदयमें ही बसे हैं। वे सदा-सर्वदा वहीं विराजमान हैं। वे ही आपके अन्तर्वासी हैं। वे आपके अभिन्न अङ्ग हैं। उनके जैसा आपका कोई सच्चा मित्र नहीं है। उन्हींके शरणापन्न होइये। उनका साक्षात्कार कीजिये और मुक्ति प्राप्त कीजिये।

[प्रेषक—श्रीशिवकुमारजी गोयल]

'घनश्याम सुधा बरसे बरसे'

(स्वामी श्रीनर्मदानन्दजी सरस्वती 'हरिदास')

घनश्याम सुधा बरसे बरसे।
प्रकट भयो बृज विपिन गगनमें, अनुपम छवि दरसे दरसे॥
वंशी रववर स्वर वितान सों, प्रेमिन मन परसे परसे।
भए सुखी जे विरह ग्रीष्मसे, प्रथम तपित तरसे तरसे॥
नभ निहारि प्रमुदित सुरबाला, सुमन बरसि करसे करसे।
नाचत रसिक मोर मतवारे, प्रेम पुलकि हरषे हरषे॥
कृष्ण दरसको व्याकुल गोपी, निकली निज घरसे घरसे।
'हरीदास' यह मिलन यामिनी, सुख-समीर सरसे सरसे॥

अवतारका सिद्धान्त

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

अवतारका अर्थ है अव्यक्तरूपसे व्यक्तरूपमें प्रादुर्भाव होना। यह बहुत ही अलौकिक एवं रहस्यकी बात है। इसलिये जो पुरुष भगवान्‌के अवतरित होनेके दिव्य रहस्यको जानते हैं, वे भगवान्‌को प्राप्त हो जाते हैं (गीता ४।९)।

परम दयालु पूर्ण ब्रह्म परमात्मा सबपर अहैतुकी दया करके संसारके परम हितके लिये ही यहाँ अवतार लेते हैं। यानी जन्म धारण करते हैं। भगवान् इतने महान् हैं कि उनकी महिमाका वर्णन करनेमें ब्रह्मादि देवता भी अपनेको असमर्थ समझते हैं। श्रीमद्भागवतमें श्रीब्रह्माजीने स्वयं कहा है—

सुरेष्वृषिष्वीश तथैव नृष्वपि
तिर्यक्षु यादस्स्वपि तेऽजनस्य।
जन्मासतां दुर्मदनिग्रहाय
प्रभो विधातः सदनुग्रहाय च॥
को वेत्ति भूमन् भगवन् परात्मन्
योगेश्वरोतीर्भवतस्त्रिलोक्याम् ।
क्व वा कथं वा कति वा कदेति
विस्तारयन् क्रीडसि योगमायाम्॥

(श्रीमद्भा० १०।१४।२०-२१)

'हे जगन्नियन्ता प्रभो! हे विधातः! आप अजन्मा हैं, तथापि देवता, ऋषि, मनुष्य, तिर्यक् और जलचरादि योनियोंमें आपके जो अवतार होते हैं, वे असत्पुरुषोंके मदका मथन और सत्पुरुषोंपर कृपा करनेके लिये ही होते हैं।

हे भगवन्! आप सर्वव्यापक परमात्मा और योगेश्वर हैं; जिस समय आप अपनी योगमायाका विस्तार कर क्रीड़ा करते हैं, उस समय त्रिलोकीमें ऐसा कौन है जो यह जान सके कि आपकी लीला कहाँ, किस प्रकार, कितनी और कब होती है?'

वे ही भगवान् हम लोगोंके साथ क्रीड़ा करनेके लिये हमारे-जैसे बनकर हमारे इस भूमण्डलमें उतर आते हैं, इससे बढ़कर जीवोंपर भगवान्‌की और क्या कृपा होगी। वे तो कृपाके आकर हैं। कृपा करना उनका स्वभाव ही है। कृपा किये बिना उनसे रहा नहीं जाता। इसीलिये जब-जब भक्तोंपर विपत्ति आती है, पृथ्वी पापोंके भारसे दब जाती है, साधुपुरुष बुरी तरह सताये जाने लगते हैं और अत्याचारियोंके अत्याचार असह्य हो जाते हैं, तब-तब पृथ्वीका भार हरनेके लिये, भक्तोंको उबारनेके लिये, साधुओंकी रक्षा और दुष्टोंके अत्याचारोंका दमन करके संसारमें पुनः धर्मकी स्थापना करनेके लिये भगवान् समय-समयपर इस पृथ्वीमण्डलपर अवतीर्ण हुआ करते हैं। भगवान् स्वयं गीताजीमें कहते हैं—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

(गीता ४।६—८)

'मैं अजन्मा और अविनाशीस्वरूप होते हुए भी तथा समस्त प्राणियोंका ईश्वर होते हुए भी अपनी प्रकृतिको

अधीन करके अपनी योगमायासे प्रकट होता हूँ। हे भारत! जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब-तब ही मैं अपने रूपको रचता हूँ अर्थात् साकाररूपसे लोगोंके सम्मुख प्रकट होता हूँ। साधुपुरुषोंका उद्धार करनेके लिये, पाप-कर्म करनेवालोंका विनाश करनेके लिये और धर्मकी अच्छी तरहसे स्थापना करनेके लिये मैं युग-युगमें प्रकट हुआ करता हूँ।'

यहाँ यह प्रश्न होता है कि 'भगवान् तो सर्वशक्तिमान् हैं, वे सब कुछ करनेमें समर्थ हैं, वे बिना अवतार लिये ही अपनी शक्तिसे—अपने सङ्कल्पसे ही सब कुछ कर सकते हैं; फिर अवतार लेनेकी उन्हें क्या आवश्यकता है?' बात बिल्कुल ठीक है, भगवान् बिना अवतार लिये ही सब कुछ कर सकते थे और कर सकते हैं और करते भी हैं; परंतु लोगोंपर विशेष दया करके अपने दर्शन, स्पर्श और भाषणादिके द्वारा सुगमतासे उन्हें उद्धारका सुअवसर देनेके लिये एवं अपने प्रेमी भक्तोंको अपनी दिव्य लीलाओंका आस्वादन करानेके लिये वे इस पृथ्वीपर साकाररूपसे प्रकट होते हैं। उन अवतारोंमें धारण किये हुए रूपका तथा उनके गुण, प्रभाव, नाम, माहात्म्य और दिव्य कर्मोंका श्रवण, कीर्तन और स्मरण करके लोग सहज ही संसार-समुद्रसे पार हो जाते हैं। यह काम बिना अवतारके नहीं हो सकता। इसीलिये भगवान् अवतार लेते हैं।

दूसरा प्रश्न यह होता है कि 'जो भगवान् निराकाररूपसे सर्वत्र व्याप्त हैं; वे अल्पकी भाँति किसी एक देशमें कैसे प्रकट हो सकते हैं और यदि होते हैं तो उतने कालके लिये अन्यत्र उनका अभाव हो जाता होगा अथवा उनकी शक्ति बहुत सीमित हो जाती होगी?' इस बातको समझनेके लिये हमें व्यापक अग्नि और प्रकट अग्निका दृष्टान्त लेना चाहिये। अग्नि निराकार रूपसे सर्वत्र व्याप्त है, इसीलिये उसे चकमक पत्थर तथा दियासलाई आदिसे चाहे जहाँ प्रकट किया जा सकता है। जिस कालमें उसे एक जगह प्रकट किया जाता है उस कालमें अन्यत्र उसका अभाव नहीं हो जाता, बल्कि एक ही कालमें वह कई जगह प्रकट होती देखी जाती है और जहाँ भी प्रकट होती है, उसमें पूरी शक्ति रहती है। इसी प्रकार भगवान् भी निराकार रूपसे सर्वत्र व्याप्त रहते हुए ही किसी देशविशेषमें अपनी पूरी भगवत्ताके साथ प्रकट हो जाते हैं और उस समय उनका अन्यत्र अभाव नहीं हो जाता, बल्कि एक ही समयमें उनके कई स्थलोंपर प्रकट होनेकी बात भी शास्त्रोंमें कई जगह आती है। श्रीमद्भागवतमें वर्णन आता है कि एक बार भगवान् श्रीकृष्ण द्वारकासे मिथिलापुरी गये। वहाँके राजा बहुलाश्व भगवान्के अनन्य भक्त थे। वहींपर श्रुतदेव नामके एक ब्राह्मण भक्त भी रहते थे। दोनोंने एक ही साथ भगवान्से अपने-अपने घर पधारनेकी प्रार्थना की। दोनों ही भगवान्की भक्तिमें एक-से-एक बढ़कर थे। भगवान् दोनोंमेंसे किसीका भी जी नहीं तोड़ना चाहते थे। अत: उन्होंने दोनोंका ही मन रखनेके लिये एक-दूसरेको न जनाते हुए एक ही समय दो रूप धारण करके एक साथ दोनोंके घर जाकर उन्हें कृतार्थ किया।*

एक और भी प्रसङ्ग श्रीमद्भागवतमें आता है। एक बारकी बात है—देवर्षि नारदजी यह देखनेके लिये कि भगवान् गृहस्थाश्रममें किस प्रकार रहते हैं, द्वारकामें पहुँचे। वे अलग-अलग सब रानियोंके महलोंमें गये और सभी जगह उन्होंने श्रीकृष्णको गृहस्थधर्मका यथायोग्य पालन करते हुए पाया। वे प्रात:काल उठनेके समयसे लेकर रात्रिको सोनेके समयतकका समस्त दैनिक कृत्य अनेक रूपोंमें सब जगह विधिवत् करते थे। सभामें जानेके समय वे घरोंसे निकलते हुए अलग-अलग रूपोंमें दिखायी देते थे और फिर एकरूप होकर सभामें प्रवेश करते थे। नारदजी यह सब देखकर दंग रह गये और भगवान्को प्रणाम करके उनकी स्तुति करते हुए (ब्रह्मलोकको) चले गये। (भागवत १०।६९।१३—४३)

ब्रह्माजीके मोहके प्रसङ्गमें भी भगवान्के बछड़ों और गोपबालकोंका रूप धारण करने और सालभरतक इस प्रकार अनेकरूप होकर रहनेकी बात श्रीमद्भागवतमें आयी है। (भागवत १०।१३)

भगवान् श्रीरामके सम्बन्धमें भी यह वर्णन आता है कि जब भगवान् लङ्का-विजय कर चौदह वर्षकी अवधि

---

* भगवांस्तदभिप्रेत्य द्वयो: प्रियचिकीर्षया। उभयोराविशद्गेहमुभाभ्यां तदलक्षित:॥ (श्रीमद्भा० १०।८६।२६)

समाप्त होनेपर अयोध्या लौटे, उस समय उन्होंने पुरवासियोंको मिलनेके लिये अत्यन्त आतुर देखकर असंख्य रूप धारण कर लिये और पलभरमें वे एकसाथ सबसे मिल लिये। (रामचरितमानस, उत्तर० ६।४-५, ७)।*

भगवान्‌के लिये यह कोई बड़ी बात भी नहीं कही जा सकती। जिन्होंने इस सारे विश्वको अपने सङ्कल्पके आधारपर टिका रखा है और जो एक होते हुए भी लीलासे अनेक बने हुए हैं, वे यदि इस प्रकार एक ही समयमें एकसे अधिक रूप धारण कर लें, तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। यह कार्य तो एक योगी भी कर सकता है। फिर भगवान् तो योगेश्वरोंके भी ईश्वर तथा मायाके अधिपति ठहरे, उनके लिये ऐसा करना कौन कठिन काम है!

अब प्रश्न यह होता है कि 'क्या भगवान्‌का अवतार हम लोगोंके जन्मकी भाँति कर्मोंसे प्रेरित होता है? क्या उनका शरीर भी हमलोगोंकी भाँति पञ्चभूतोंसे बना हुआ मायिक होता है?' इसका उत्तर यह है कि भगवान्‌के अवतारमें इनमेंसे एक भी बात नहीं होती। भगवान्‌का अवतार न तो कर्मसे प्रेरित होकर होता है, न उनका शरीर पाञ्चभौतिक अथवा मायिक होता है। उनका जन्म और उनके कर्म दोनों ही दिव्य—अलौकिक होते हैं। उनका अवतार कर्मसे प्रेरित तो इसलिये नहीं होता कि वे काल और कर्मसे सर्वथा परे हैं। कर्मकी स्थिति तो मायाके अंदर है और वे मायासे सर्वथा अतीत हैं। अत: कर्म उनका स्पर्श भी नहीं कर सकते। वे स्वयं गीतामें कहते हैं—

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते॥

(४।१४)

'कर्मोंके फलमें मेरी स्पृहा नहीं है, इसलिये मुझे कर्म लिप्त नहीं करते—इस प्रकार जो मुझे तत्त्वसे जान लेता है, वह भी कर्मोंसे नहीं बँधता।' जब उन्हें तत्त्वसे जाननेवाला भी कर्मोंसे नहीं बँधता, तब उनके कर्मोंके वश होकर जन्म लेनेकी तो बात भी नहीं उठ सकती। वे तो अपनी इच्छासे भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये शरीर धारण करते हैं। यह बात जेलके दृष्टान्तसे भलीभाँति समझमें आ सकती है। जेलके अंदर कैदी भी रहते हैं, जेलके कर्मचारी भी रहते हैं और जेलके अफसर—जेलर भी रहते हैं तथा कभी-कभी जेलके मालिक स्वयं राजा भी जेलके अहातेके अंदर जेलका निरीक्षण करने एवं कैदियोंपर अनुग्रह करनेके लिये तथा उन्हें जेलसे मुक्त करनेके लिये चले जाया करते हैं। परंतु उनके जानेमें और कैदियोंके जानेमें बड़ा अन्तर है। कैदी वहाँ राजाज्ञाके अनुसार सजा भुगतनेके लिये जाता है। नियत अवधितक उसे बाध्य होकर वहाँ रहना पड़ता है, अपनी इच्छासे वह वहाँ नहीं रहता। परंतु राजा वहाँ अपनी स्वतन्त्र इच्छासे जाता है, सजा भोगनेके लिये नहीं और जबतक उसकी इच्छा होती है, तबतक वहाँ रहता है। इसी प्रकार भगवान् भी प्रकृतिको वशमें करके अपनी स्वतन्त्र इच्छासे जन्म लेते हैं और लीला-कार्य समाप्त हो जानेपर पुन: बेरोक-टोक अपने धामको वापस चले आते हैं।

भगवान्‌का अवतारविग्रह भी हमलोगोंके शरीरकी भाँति पञ्चभूतोंसे बना हुआ मायिक नहीं होता, अपितु चिन्मय—सच्चिदानन्दमय होता है; इसलिये वह अनामय और दिव्य है। इस विषयमें दूसरी बात ध्यान देनेयोग्य यह है कि भगवान्‌का जन्म साधारण मनुष्योंकी भाँति नहीं होता। भगवान् श्रीकृष्ण जब कारागारमें वसुदेव-देवकीके सामने प्रकट हुए, उस समयका श्रीमद्भागवतका प्रसङ्ग देखने और विचारनेसे मनुष्य समझ सकता है कि उनका जन्म साधारण मनुष्योंकी भाँति नहीं हुआ। अव्यक्त सच्चिदानन्दघन परमात्मा अपनी लीलासे ही शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मसहित विष्णुके रूपमें वहाँ प्रकट हुए। उनका प्रकट होना और पुन: अन्तर्धान होना उनकी स्वतन्त्र लीला है, वह हमलोगोंके उत्पत्ति-विनाशकी तरह नहीं है। भगवान्‌की तो बात ही निराली है, एक योगी भी अपने योगबलसे अन्तर्धान हो जाता है और पुन: उसी रूपमें प्रकट हो जाता है; परंतु उसकी अन्तर्धानकी अवस्थामें कोई उसे मरा नहीं समझता। जब महर्षि पतञ्जलि आदि योगके ज्ञाता एक योगीकी ऐसी शक्ति बतलाते हैं, तब परमात्मा

* प्रेमातुर सब लोग निहारी। कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी॥
अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथाजोग मिले सबहि कृपाला॥
छन महिं सबहि मिले भगवाना। उमा मरम यह काहुँ न जाना॥

ईश्वरके लिये अन्तर्धान हो जाना और पुनः प्रकट होना कौन बड़ी बात है! अवश्य ही भगवान् श्रीकृष्णका अवतरण साधारण लोगोंकी दृष्टिमें जन्म लेनेके सदृश ही था; परंतु वास्तवमें वह जन्म नहीं था, वह तो उनका प्रकट होना ही था। इसीलिये तो उन्होंने माता देवकीकी प्रार्थनापर अपने चतुर्भुजरूपको अदृश्य करके द्विभुज बालकका रूप धारण कर लिया।[1]

गीताके ग्यारहवें अध्यायमें भी वर्णन आता है कि भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनके प्रार्थना करनेपर पहले उसे अपना विश्वरूप दिखलाया, फिर उसीकी प्रार्थनापर चतुर्भुजरूप धारण किया और अन्तमें वे पुनः द्विभुज मनुष्यरूप हो गये।

भगवान् श्रीरामके भी इसी प्रकार चतुर्भुजरूपमें ही माता कौसल्याके सामने प्रकट होने और फिर उनकी प्रार्थनापर द्विभुज बालकके रूपमें बदल जानेकी बात मानसमें आती है। इससे प्रकट होता है कि भगवान् अपने भक्तोंकी इच्छाके अनुसार उन्हें दर्शन देकर अन्तर्धान हो जाते हैं।

मनुष्योंके शरीरके विनाशकी तरह भगवान्के दिव्य वपुका विनाश भी नहीं समझना चाहिये। जिस शरीरका विनाश होता है, वह तो यहीं पड़ा रहता है; किंतु देवकीके सामने चतुर्भुजरूपके और अर्जुनके सामने विश्वरूप और चतुर्भुजरूपके अदृश्य हो जानेपर उन वपुओंकी वहाँ उपलब्धि नहीं होती। इतना ही नहीं, भगवान् श्रीकृष्णने जिस देहसे यहाँ लोकहितके लिये विविध लीलाएँ की थीं, वह देह भी अन्तमें नहीं मिला। वे उसी लीलामय दिव्य वपुसे परमधामको पधार गये। इसके बाद भी जब-जब भक्तोंने इच्छा की, तब-तब ही उसी श्यामसुन्दर-विग्रहसे पुनः प्रकट होकर उन्हें दर्शन देकर कृतार्थ किया और करते हैं। यदि उनके देहका विनाश हो गया होता, तो (परमधाम पधारनेके अनन्तर) इस प्रकार पुनः प्रकट होना कैसे सम्भव होता?

इससे यह बात सिद्ध हुई कि भगवान्का परमधाम-प्रयाण अन्तर्धान होना है, न कि मनुष्य-देहोंकी भाँति विनाश होना। श्रीमद्भागवतमें लिखा है—

लोकाभिरामां स्वतनुं धारणाध्यानमङ्गलम्।
योगधारणयाऽऽग्नेय्यादग्ध्वा धामाविशत्स्वकम्॥

(११।३१।६)

'धारणा और ध्यानके लिये अति मङ्गलरूप अपनी लोकाभिरामा मोहिनी मूर्तिको योग-धारणाजनित अग्निके द्वारा भस्म किये बिना ही भगवान्ने अपने धाममें प्रवेश किया।'

श्रीरामके सम्बन्धमें भी वाल्मीकीय रामायणमें वर्णन आता है कि भगवान्के परमधाम-गमनके समय सब लोकोंके पितामह ब्रह्माजी भगवान्को लेनेके लिये देवताओंके साथ सरयूके तटपर आये और भगवान्से अपने वैष्णव देहमें प्रवेश करनेकी प्रार्थना की और भगवान्ने उनकी प्रार्थनाको स्वीकार कर तीनों भाइयोंसहित अपने इसी शरीरसे विष्णुशरीरमें प्रवेश किया।[2]

भगवान्का शरीर मायिक नहीं होता—इसका एक प्रमाण यह भी है कि मायाके बन्धनसे सर्वथा मुक्त आत्माराम मुनिगण भी उनके त्रिभुवनमोहन रूपको देखकर मुग्ध हो जाते हैं, शरीरकी सुध-बुध भूल जाते हैं। यदि वह शरीर मायासे रचित त्रिगुणमय होता तो गुणोंसे सर्वथा ऊपर उठे हुए आत्माराम, आप्तकाम मुनियोंकी ऐसी दशा कैसे हो सकती थी।

जिस समय शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मपितामह मृत्युके समयकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, उस समय भगवान् श्रीकृष्णको अपने सम्मुख आया हुआ जान वे सबसे पहले उनके त्रिभुवनकमनीय रूपका ही ध्यान करते हैं और उसीमें प्रीति होनेकी प्रार्थना करते हैं।[3] यदि वह रूप

---

१. इत्युक्त्वाऽऽसीद्धरिस्तूष्णीं भगवानात्ममायया। पित्रोः सम्पश्यतोः सद्यो बभूव प्राकृतः शिशुः॥ (श्रीमद्भा० १०।३।४६)
यह कहकर भगवान् चुप हो गये और माता-पिताके देखते-देखते अपनी मायासे तुरन्त ही एक साधारण बालक बन गये।

२. अथ तस्मिन्मुहूर्ते तु ब्रह्मा लोकपितामहः। सर्वैः परिवृतो देवैर्ऋषिभिश्च महात्मभिः॥
ततः पितामहो वाणीं त्वन्तरिक्षादभाषत। आगच्छ विष्णो भद्रं ते दिष्ट्या प्राप्तोऽसि राघव॥
भ्रातृभिः सह देवाभैः प्रविशस्व स्विकां तनुम्। यामिच्छसि महाबाहो तां तनुं प्रविश स्विकाम्॥
पितामहवचः श्रुत्वा विनिश्चित्य महामतिः। विवेश वैष्णवं तेजः सशरीरः सहानुजः॥ (उत्तरकाण्ड ११०।३, ८, ९, १२)

३. त्रिभुवनकमनं तमालवर्णं रविकरगौरवराम्बरं दधाने। वपुरलककुलावृताननाब्जं विजयसखे रतिरस्तु मेऽनवद्या॥ (श्रीमद्भा० १।९।३३)
जो त्रिभुवनसुन्दर और तमालवृक्षके सदृश श्यामवर्ण है, सूर्यरश्मियोंके समान पीताम्बर धारण किये हुए हैं तथा जिसका मुखकमल अलकावलीसे आवृत है—ऐसे सुन्दर रूपको धारण करनेवाले अर्जुनसखा श्रीकृष्णमें मेरी निष्काम प्रीति हो।

मायिक होता तो भीष्म-जैसे ज्ञानी महात्मा, जिन्होंने सब ओरसे अपनी चित्तवृत्तियोंको हटा लिया था और जिनका सारा जीवन परमवैराग्यमय था, मृत्युके समय उसमें अपने मनको क्यों लगाते?

श्रीराम-लक्ष्मण जब महर्षि विश्वामित्रके साथ धनुषयज्ञ देखने जनकपुर जाते हैं तो उस अनुपम जोड़ीको देखकर जनक-जैसे महान् ज्ञानीकी जो दशा होती है, उसका चित्र गोस्वामी तुलसीदासजीने अपनी लेखनीद्वारा बड़ी मार्मिकतासे चित्रित किया है। उस प्रसङ्गको उन्हींके शब्दोंमें हम नीचे उद्धृत करते हैं—

मूरति मधुर मनोहर देखी। भयउ बिदेहु बिदेहु बिसेषी॥
प्रेम मगन मनु जानि नृपु करि बिबेकु धरि धीर।
बोलेउ मुनि पद नाइ सिरु गदगद गिरा गभीर॥
सहज बिरागरूप मनु मोरा। थकित होत जिमि चंद चकोरा॥
इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा॥
पुनि पुनि प्रभुहि चितव नरनाहू। पुलक गात उर अधिक उछाहू॥

(रा०च०मा०, १।२१५।८; २१५; २१६।३,५; २१७।५)

'रामजीकी मधुर मनोहर मूर्तिको देखकर विदेह (जनक) विशेषरूपसे विदेह (देहकी सुध-बुधसे रहित) हो गये। मनको प्रेममें मग्न जान राजाने विवेकके द्वारा धीरज धारण किया और मुनिके चरणोंमें सिर नवाकर गद्गद (प्रेमभरी) गम्भीर वाणीसे कहा—हे नाथ! 'मेरा मन, जो स्वभावसे ही वैराग्यरूप बना हुआ है, इन बालकोंको देखकर इस तरह मुग्ध हो रहा है जैसे चन्द्रमाको देखकर चकोर। इनको देखते ही अत्यन्त प्रेमके वश होकर मेरे मनने जबर्दस्ती ब्रह्मानन्दको त्याग दिया है।' राजा बार-बार प्रभुको देखते हैं, दृष्टि वहाँसे हटना ही नहीं चाहती। प्रेमसे शरीर पुलकित हो रहा है और हृदयमें बड़ा उत्साह है।

ऊपरके विवेचनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि अवतार-शरीर मायिक नहीं होता, अवतारोंके जन्म-कर्म अलौकिक होते हैं **'जन्म कर्म च मे दिव्यम्'** (गीता ४।९) और वे भक्तोंके प्रेमवश उनपर कृपा करनेके लिये स्वेच्छासे प्रकट होते हैं, कर्मोंके वश होकर नहीं। अब हमें यह देखना है कि अवतारोंकी सत्ता किन-किन शास्त्रोंसे प्रमाणित होती है। श्रीमद्भागवत, गीता, वाल्मीकिरामायण तथा तुलसीकृत रामायणके प्रमाण तो ऊपर उद्धृत किये ही हैं; अब हम उपनिषद् तथा महाभारत आदि ग्रन्थोंके आधारपर भी भगवान्‌का प्रादुर्भाव होना प्रमाणित करते हैं।

केनोपनिषद्‌में एक बड़ी सुन्दर कथा आती है। एक बारकी बात है, परब्रह्म परमात्माने देवताओंको असुरोंके साथ संग्राममें जिता दिया। देवताओंको इस विजयपर बड़ा भारी गर्व हो गया। उन्होंने सोचा कि यह विजय हमने अपने पुरुषार्थसे प्राप्त की है। यही हालत सब जीवोंकी है। वास्तवमें करते-कराते सब कुछ भगवान् हैं, परंतु जीव अभिमानवश अपनेको कर्ता मान लेता है और फँस जाता है। भगवान् तो सर्वज्ञ ठहरे और ठहरे दर्पहारी। वे देवताओंके अभिप्रायको जान गये और उनके अभिमानको दूर करनेके लिये एक अद्भुत यक्षके रूपमें उनके सामने प्रकट हुए। देवता लोग मायासे मोहित हुए समझ नहीं सके

कि यह यक्ष कौन है। भगवान् यदि अपनेको छिपाना चाहें तो किसकी शक्ति है जो उन्हें पहचान सके। वे स्वयं ही जब कृपा करके जिसको अपनी पहचान कराते हैं वही उन्हें पहचान पाता है, दूसरा नहीं—*'सोइ जानइ जेहि देहु जनाई।'* उन महामायावीने अपनेको ऐसे कौशलसे इस मायारूपी पर्देके भीतर छिपा रखा है कि उन्हें सहसा कोई पहचान नहीं सकता। भगवान्‌ने स्वयं गीतामें कहा है—

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।

(७।२५)

'अपनी योगमायासे छिपा हुआ मैं सबके लिये प्रत्यक्ष नहीं होता हूँ।' इन्द्रने यक्षका पता लगानेके लिये क्रमशः अग्नि, वायुको उनके पास भेजा। यह बतलानेके लिये कि सारे देवता उन्हींकी शक्तिसे काम करते हैं, देवताओंके पास जो कुछ भी शक्ति है, वह उन्हींकी दी हुई है और उनकी शक्तिके बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता, ब्रह्मने एक तिनका अग्निदेवताके सामने रखा और कहा कि 'इसको जलाओ तो।' अग्निदेवता, जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको जला डालनेका अभिमान रखते थे—अपनी पूरी शक्ति लगाकर भी उस छोटेसे तिनकेको नहीं जला

सके और लज्जित होकर वापिस चले आये। इसके बाद वायुदेवताकी बारी आयी। उन्हें अभिमान था कि मैं पृथ्वीभरके पदार्थोंको उड़ा ले जा सकता हूँ, परंतु वे भी एक तिनकेको नहीं हटा सके; हटा सकते भी कैसे? उनकी सारी शक्ति तो ब्रह्मने छीन ली थी, जो उस शक्तिका उद्गम स्थान है। फिर उनके अंदर रह ही क्या गया था, जिसके बलपर वे कोई कार्य करते। भगवान्‌के भक्तोंके सामने भी अग्नि आदि देवताओंकी शक्ति कुण्ठित हो जाती है। एक बार भक्त प्रह्लादके सामने भी अग्निका कोई बस नहीं चला था, वह उस भक्तके प्रभावसे जलकी तरह शीतल हो गया—'**पावकोऽपि सलिला-यतेऽधुना।**' भक्त सुधन्वाके लिये उबलता हुआ तेल ठंढा हो गया था। अस्तु,

अबकी बार देवराज इन्द्र स्वयं यक्षके पास पहुँचे। उन्हें देखते ही यक्ष अन्तर्धान हो गये। इतनेहीमें हैमवती उमादेवी (पार्वती) वहाँ प्रकट हुईं और उन्होंने इन्द्रको बतलाया कि जो यक्ष अभी-अभी तुम्हारे नेत्रोंसे ओझल हो गया, वह ब्रह्म ही था। अब तो इन्द्रकी आँखें खुलीं और वे समझ गये कि हमलोगोंका अभिमान चूर्ण करनेके लिये ही ब्रह्मने यह लीला की थी। (केनोप०खं० ३)

इस प्रकार ब्रह्मके साकार रूपमें प्रकट होनेकी बात उपनिषदोंमें आती है; केवल पुराणादि ग्रन्थोंमें ही भगवान्‌के साकार विग्रहकी बात आयी हो, इतनी ही बात नहीं है। गीताके अतिरिक्त महाभारतमें और भी अवतारवादके पोषक कई प्रसंग हैं। स्थानसङ्कोचके कारण उनमेंसे एकाध ही प्रसंगका उल्लेख हम यहाँ करते हैं। महाभारत-युद्धकी समाप्तिके बाद जब भगवान् श्रीकृष्ण द्वारकाको लौट रहे थे, रास्तेमें उनकी महातेजस्वी उत्तङ्क मुनिसे भेंट हुई। बातों-ही-बातोंमें जब मुनिको मालूम हुआ कि श्रीकृष्ण कौरवों और पाण्डवोंके बीच सन्धि नहीं करा सके और दोनोंमें घमासान युद्ध हुआ, जिसमें सारे कौरव मारे गये, तो उन्हें श्रीकृष्णपर बड़ा क्रोध आया। उन्होंने कहा कि 'हे कृष्ण! कौरव तुम्हारे सम्बन्धी थे, तुम चाहते तो युद्धको रोक सकते थे और इस प्रकार उनकी रक्षा कर सकते थे, परंतु शक्ति रहते भी तुमने उनकी रक्षा नहीं की, इसलिये मैं तुम्हें शाप दूँगा।' मुनिके इन क्रोधभरे वचनोंको सुनकर श्रीकृष्ण मन-ही-मन हँसे और बोले कि 'कोई भी पुरुष तप करके मेरा पराभव नहीं कर सकता। मैं नहीं चाहता कि तुम्हारे तपका व्यर्थ ही नाश हो। अतः तुम पहले जान लो कि मैं कौन हूँ, पीछे शाप देनेकी बात सोचना।' यों कहकर भगवान्‌ने मुनिके सामने अपनी महिमाका वर्णन करना प्रारम्भ किया। वे कहने लगे— 'हे मुनिश्रेष्ठ! सत्त्व, रज, तम—ये तीनों गुण मेरे आश्रय रहते हैं तथा रुद्र और वसुओंको भी तुम मुझसे ही उत्पन्न हुआ जानो। सारे भूत मुझमें हैं और मैं सब भूतोंके अंदर स्थित हूँ, इसे तुम निश्चय समझो। दैत्य, सर्प, गन्धर्व, राक्षस, नाग और अप्सराओंको भी मुझीसे उत्पन्न हुआ जानो। लोग जिसे सत्-असत्, व्यक्त-अव्यक्त तथा क्षर-अक्षर नामसे पुकारते हैं, वह सब मेरा ही

रूप है। चारों आश्रमोंके जो धर्म कहे गये हैं तथा वैदिक कर्म भी मेरा ही रूप है, ओङ्कारसे आरम्भ होनेवाले वेद, हवनकी सामग्री, हवन करनेवाले होता

तथा अध्वर्यु—ये सब मुझे ही जानो। उद्गाता सामगानके द्वारा मेरा ही स्तवन करते हैं, प्रायश्चित्तोंमें शान्तिपाठ और मङ्गलपाठ करनेवाले भी मेरी ही स्तुति करते हैं। धर्मकी रक्षाके लिये और धर्मकी स्थापनाके लिये मैं बहुत-सी योनियोंमें अवतार ग्रहण करता हूँ। मैं ही विष्णु हूँ, मैं ही ब्रह्मा हूँ, मैं ही उत्पत्ति और प्रलयरूप हूँ। सम्पूर्ण भूतोंको रचनेवाला और संहार करनेवाला मैं ही हूँ। जब-जब युग पलटता है, तब-तब मैं प्रजाजनोंके हितकी कामनासे भिन्न-भिन्न योनियोंमें जन्म धारण कर धर्मकी मर्यादा स्थापित करता हूँ। जब मैं देवयोनि ग्रहण करता हूँ, तब देवताओंका-सा बर्ताव करता हूँ, जब मैं गन्धर्व-योनिमें लीला करता हूँ, तब गन्धर्वोंका-सा व्यवहार करता हूँ; जब मैं नाग-योनिमें होता हूँ तो नागोंकी भाँति आचरण करता हूँ और जब मैं यक्ष आदि योनिमें स्थित होता हूँ, तब मैं उन-उन योनियोंका-सा बर्ताव करता हूँ। इस समय मैं मनुष्य-योनिमें हूँ और मनुष्योंका-सा आचरण करता हूँ। इसीलिये मैंने कौरवोंके पास जाकर उनसे सन्धिके लिये बड़ी अनुनय-विनय की; परंतु मोहसे अन्धे हुए उन्होंने मेरी एक भी बात नहीं मानी। मैंने भय दिखाकर भी उन्हें मार्गपर लानेकी चेष्टा की; परंतु अधर्मसे अभिभूत हुए और कालचक्रमें फँसे हुए वे माने नहीं और अन्तमें युद्ध करके मारे गये।' भगवान्‌के इन वचनोंको सुनकर मुनिकी आँखें खुल गयीं। फिर मुनिकी प्रार्थनापर भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें अपना विराट् रूप दिखलाया—वैसा ही जैसा अर्जुनको दिखलाया था। (महाभारत, आश्वमेधिक पर्व अ० ५३—५५)

ऊपरके प्रसङ्गसे अवतारवादकी भलीभाँति पुष्टि होती है। केवल मनुष्य-योनिमें ही नहीं, अन्यान्य योनियोंमें भी भगवान् अवतार लेते हैं—यह बात भी इससे प्रमाणित हो जाती है; क्योंकि सभी योनियाँ उन्हींकी तो हैं। सभी रूपोंमें वे ही लीला कर रहे हैं। भगवान्‌के मत्स्य, कूर्म, वाराह, नरसिंह, वामनादि अवतार इसी प्रकारके अवतार थे, जिनका पुराणोंमें विस्तृत वर्णन पाया जाता है। जिनकी चर्चा करनेसे लेखका आकार बहुत बढ़ जायगा। इसीलिये यहाँ केवल भगवान् राम और भगवान् कृष्ण इन दो प्रधान अवतारोंकी बात ही मुख्यतासे कही गयी है।

इनके अतिरिक्त भगवान्‌का एक अवतार और होता है, इसे अर्चावतार कहते हैं। पूजाके लिये भगवान्‌की धातु, पाषाण एवं मृत्तिका आदिसे जो प्रतिमाएँ बनायी जाती हैं, वे भगवान्‌का अर्चा-विग्रह कहलाती हैं। कभी-कभी उपासकके प्रेमबल और दृढ़ निष्ठासे ये मूर्तियाँ चेतन हो जाती हैं, चलने-फिरने लग जाती हैं, हँसने-बोलने लग जाती हैं। इन अर्चा-विग्रहोंमें भगवान्‌की शक्तिके उतर आनेको अर्चावतार कहते हैं। ऐसे अनेक भक्तोंके चरित्रोंका उल्लेख मिलता है, जिनकी इष्ट मूर्तियाँ उनके साथ चेतनवत् व्यवहार करती थीं। इनमेंसे किसी भी अवतारका आश्रय लेकर भगवान्‌की भक्ति करनेसे उनकी कृपासे उनके चरणोंमें सहजहीमें दृढ़ अनुराग होकर मनुष्य सदाके लिये कृतकृत्य हो जाता है। यही मनुष्य-जीवनका परम ध्येय है।

अवतारके सिद्धान्तको भिन्न-भिन्न द्वैतसम्प्रदायोंके आचार्योंने तो माना ही है, उनमेंसे कई तो भगवान्

श्रीरामके और कई भगवान् श्रीकृष्णके अवतार-विग्रहोंको ही अपना उपास्य एवं सर्वोपरि अवतारी मानते हैं। अद्वैत-सम्प्रदायाचार्य स्वामी श्रीशंकराचार्यजीने भी अपने श्रीमद्भगवद्गीता-भाष्यके उपोद्घातमें भगवान् श्रीकृष्णको आदिपुरुष भगवान् नारायणका अवतार माना है, वे कहते हैं—

दीर्घेण कालेन अनुष्ठातॄणां कामोद्भवाद् हीयमान-विवेकविज्ञानहेतुकेन अधर्मेण अभिभूयमाने धर्मे प्रवर्धमाने च अधर्मे, जगतः स्थितिं परिपिपालयिषुः स आदिकर्ता नारायणाख्यो विष्णुः भौमस्य ब्रह्मणो ब्राह्मणत्वस्य रक्षणार्थं देवक्यां वसुदेवाद् अंशेन कृष्णः किल सम्बभूव।

ब्राह्मणत्वस्य हि रक्षणेन रक्षितः स्याद् वैदिको धर्मस्तदधीनत्वाद् वर्णाश्रमभेदानाम्।

स च भगवान् ज्ञानैश्वर्यशक्तिबलवीर्यतेजोभिस्सदा सम्पन्नस्त्रिगुणात्मिकां वैष्णवीं स्वां मायां मूलप्रकृतिं वशीकृत्य अजः अव्ययो भूतानामीश्वरो नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावोऽपि सन् स्वमायया देहवान् इव जात इव च लोकानुग्रहं कुर्वन्निव लक्ष्यते।

'बहुत कालसे धर्मानुष्ठान करनेवालोंके अन्तःकरणमें कामनाओंका विकास होनेसे विवेक-विज्ञानका ह्रास हो जाना ही जिसकी उत्पत्तिका कारण है, ऐसे अधर्मसे जब धर्म दबता जाने लगा और अधर्मकी वृद्धि होने लगी तब जगत्की स्थिति सुरक्षित रखनेकी इच्छावाले वे आदिकर्ता नारायण नामक श्रीविष्णुभगवान् भूलोकके ब्रह्मकी अर्थात् ब्राह्मणत्वकी रक्षा करनेके लिये श्रीवसुदेवजीसे श्रीदेवकीजीके गर्भमें अपने अंशसे श्रीकृष्णरूपमें प्रकट हुए।

ब्राह्मणत्वकी रक्षासे ही वैदिक धर्म सुरक्षित होगा; क्योंकि वर्णाश्रमोंके भेद उसीके अधीन हैं।

ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य और तेज आदि गुणोंसे सदा सम्पन्न वे भगवान् यद्यपि अज, अविनाशी सम्पूर्ण भूतोंके ईश्वर और नित्यशुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वभाव हैं; तो भी अपनी त्रिगुणात्मिका मूल प्रकृति वैष्णवी मायाको वशमें करके अपनी लीलासे शरीरधारीकी तरह उत्पन्न हुए-से और लोगोंपर अनुग्रह करते हुए-से दीखते हैं।'

इस प्रकार अनेक युक्तियोंसे स्वामी श्रीशंकराचार्यजीने श्रीकृष्णकी भगवत्ता और वेदान्तप्रतिपाद्य ब्रह्मके साथ एकता दिखायी है। अब हम उन्हीं परम दयालु परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णको बारम्बार प्रणाम करते हुए अन्तिम बात कहकर अपने लेखको समाप्त करते हैं।

जो लोग अपने पुरुषार्थसे भगवान्को पानेमें अपनेको सर्वथा असमर्थ अनुभव करते हैं, जो निरन्तर केवल उन्हींकी कृपाकी बाट जोहते रहते हैं तथा मातृपरायण शिशुकी भाँति उन्हींपर सर्वथा निर्भर हो जाते हैं, उनसे मिलनेके लिये भगवान् स्वयं आतुर हो उठते हैं और उसी प्रकार दौड़ पड़ते हैं, जैसे नयी ब्यायी हुई गौ अपने बछड़ेसे मिलनेके लिये दौड़ पड़ती है। अतएव हमलोगोंको भी परम दयालु भगवान्की शरण होकर उनके दयापात्र बननेके लिये श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उनका नित्य निरन्तर भजन-ध्यान तत्परताके साथ करनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

'लें अवतार हरी'

जब जब धर्म की हानि जगत में, लें अवतार हरी।

भगत-हित लें अवतार हरी। जगत-हित लें अवतार हरी॥
मत्स्य-रूप ले बेद उधारे। कूर्म-रूप मन्दराचल धारे॥
धरि बराह-वपु, भू-उद्धारक। दीनदयाल हरी॥
नृसिंह-रूप प्रह्लाद दुलारे। वामन बन पहुँचे बलि द्वारे॥
परशुराम बनि छत्र संहारे। अधरम नाश करी॥
पुरुषोत्तम बन रावण मारे। लीलाधर बनि कँस पछारे॥
बुद्ध अहिंसा के प्रतिपादक। कल्कि विध्वंस करी॥
हम बैठे हैं आस लगाये। दया तुम्हारी फिर हो जाये॥
धर्म की जय हो, हे प्रतिपालक। 'रमण' बने बिगरी॥

—'रमण' भजनानन्दी

वेदमें अवतारवाद

(महामहोपाध्याय पं० श्रीगिरिधरजी शर्मा चतुर्वेदी)

वेदमें अवतारवाद है या नहीं। इसके लिये अवतारवादके प्रतिपादक कुछ मन्त्र यहाँ लिखे जाते हैं—

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजाय मानो बहुधा वि जायते।
तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा॥

इसका अर्थ है कि प्रजाओंका पति भगवान् गर्भके भीतर भी विचरता है। वह तो स्वयं जन्मरहित है, किंतु अनेक प्रकारसे जन्म ग्रहण करता रहता है। विद्वान् पुरुष ही उसके उद्भव-स्थानको देखते एवं समझते हैं। जिस समय वह आविर्भूत होता है तब सम्पूर्ण भुवन उसीके आधारपर अवस्थित रहते हैं अर्थात् वह सर्वश्रेष्ठ नेता बनकर लोकोंको चलाता रहता है। इस मन्त्रके प्रकृत अर्थमें अवतारवाद अत्यन्त स्फुट है। अब यद्यपि कोई विद्वान् इसका अन्य अर्थ करें तो प्रश्न यही होगा कि उनका किया हुआ अर्थ ही क्यों प्रमाण माना जाय? मन्त्रके अक्षरोंसे स्पष्ट निकलता हुआ हमारा अर्थ ही क्यों न प्रमाण माना जाय? वस्तुतः बात यह है कि वेद सर्वविज्ञाननिधि है। वह थोड़े अक्षरोंमें संकेतसे कई अर्थोंको प्रकाशित कर देता है और उसके संकेतित सभी अर्थ शिष्ट-सम्प्रदायमें प्रमाणभूत माने जाते हैं। इसलिये बिना किसी खींच-तान और लाग-लपेटके जब इस मन्त्रसे अवतारवाद बिलकुल स्पष्ट हो जाता है, तब इस अर्थको अप्रमाणित करनेका कोई कारण नहीं प्रतीत होता। यदि कोई वैज्ञानिक अर्थ भी इस मन्त्रसे प्रकाशित होता है तो वह भी मान लिया जाय। किंतु अवतारवादका अर्थ न माननेका कोई कारण नहीं। अन्य भी मन्त्र (अथर्व० १०। ८। २७) देखिये—

'त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।'

यहाँ परमात्माकी स्तुति है कि आप स्त्रीरूप भी हैं, पुरुषरूप भी हैं। कुमार और कुमारीरूप भी आप होते हैं।

अब विचारनेकी बात है कि परमात्मा अपने व्यापक स्वरूपमें तो स्त्री, पुरुष, कुमार, कुमारी कुछ भी नहीं है। ये रूप जो मन्त्रमें वर्णित किये गये हैं, अवतारोंके ही रूप हो सकते हैं। पुरुषरूपमें राम, कृष्ण आदि अवतार प्रसिद्ध ही हैं। स्त्रीरूप महिषमर्दिनी आदि अवतारोंका विस्तृत वर्णन श्रीदुर्गासप्तशतीमें प्रसिद्ध है। वहाँके अवतार सब स्त्रीरूप ही हैं। व्यापक, निराकार परमात्मा पुरुषरूपमें अथवा स्त्रीरूपमें इच्छानुसार कहीं भी प्रकट हो सकता है। कुमारीरूप अवतार भी वहाँ वर्णित है और कुमाररूपमें वामनावतार प्रसिद्ध ही है, जिसकी विस्तारसे कथा शतपथब्राह्मणमें प्राप्त होती है। शिष्ट-सम्प्रदायमें मन्त्र और ब्राह्मण दोनों ही वेद माने जाते हैं, इसलिये शतपथमें प्रसिद्ध कथाको भी वेदका ही भाग कहना शिष्ट-सम्प्रदायद्वारा अनुमोदित है और कथाका संकेत मन्त्रमें भी मिलता है—**'इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्। समूढमस्य पाꣳसुरे स्वाहा॥'** (यजु० ५। १५)

अर्थात् इन दृश्यमान लोकोंको विष्णुने विक्रमण किया—इनपर अपने चरण रखे अर्थात् अपने चरणोंसे सब लोकोंको नाप डाला। सब लोग इनकी पाद-धूलिमें अन्तर्गत हो गये। यह स्पष्ट वामन अवतारकी कथा है। यहाँ भी अर्थका विभाग उपस्थित होनेपर यही उत्तर होगा कि मन्त्रके अक्षरोंसे स्पष्ट प्रतीत होता हुआ हमारा अर्थ क्यों न माना जाय। जो कथा ब्राह्मण और पुराणोंमें प्रसिद्ध है, उसके अनुकूल मन्त्रका अर्थ न मानकर मनमाना अर्थ करना एक बलात् कार्य होगा। जो सम्प्रदाय ब्राह्मणभागको वेद नहीं मानते, वे भी यह तो मानते ही हैं कि मन्त्रोंके अर्थ ही भगवान्ने ऋषियोंकी बुद्धिमें प्रकाशित किये। वे ही अर्थ ऋषियोंने लिखे। वे ही ब्राह्मण हैं और पुराण आदि भी वेदार्थोंके विस्तार ही हैं, यह उनमें ही वर्णन किया गया है। इसी प्रकार मत्स्यावतारकी कथा और वराह अवतारकी कथा भी शतपथ आदि ब्राह्मणोंमें स्पष्ट मिलती है।

महाभारतके टीकाकार श्रीनीलकण्ठने 'मन्त्र-भागवत' और 'मन्त्र-रामायण' नामके दो छोटे निबन्ध भी लिखे हैं। उनमें राम और कृष्णकी प्रत्येक लीलाओंके प्रतिपादक मन्त्र उद्धृत किये हैं, उन मन्त्रोंसे राम और कृष्णके प्रत्येक चरित प्रकाशित होते हैं। वेदके रहस्यको प्रकाशित करनेमें ही जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत किया, उन वेदके असाधारण विद्वान् विद्यावाचस्पति श्रीमधुसूदनजी ओझाने भी गीता-विज्ञान-भाष्यके आचार्यकाण्डमें उन मन्त्रोंको दुहराया है। इसलिये ये मन्त्र उन लीलाओंपर नहीं घटते, ऐसा कहनेका साहस कोई नहीं कर सकता। इससे वेदोंमें अवतारवाद होना अति स्पष्ट हो जाता है।

स्वयं भगवान्‌का दिव्य जन्म

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

मुदिरमदमुदारं मर्दयन्नङ्गकान्त्या
वसनरुचिनिरस्ताम्भोजकिञ्जल्कशोभः ।
तरुणिमतरणीक्षाविक्लवद्बाल्यचन्द्रो
व्रजनवयुवराजः काङ्क्षितं मे कृषीष्ट॥
नवजलधरवर्णं चम्पकोद्भासिकर्णं
विकसितनलिनास्यं विस्फुरन्मन्दहास्यम्।
कनकरुचिदुकूलं चारुबर्हावचूलं
कमपि निखिलसारं नौमि गोपीकुमारम्॥

अजन्माका जन्म

जन्माष्टमीके दिन इसी भारतमें, मथुराके कंस-कारागारमें सर्वलोकमहेश्वर, सकल-ईश्वरेश्वर, सर्वशक्तिमान्, नित्य निर्गुण-सगुण, सकल अवतारमूल, सर्वमय-सर्वातीत अखिलरसामृतसिन्धु स्वयं भगवान् श्रीकृष्णका दिव्य जन्म हुआ था। नित्य अजन्माका यह जन्म बड़ा ही विलक्षण है। इस दिव्य जन्मको जाननेवाले पुरुष जन्मबन्धनसे मुक्त हो जाते हैं। जिस मङ्गलमय क्षणमें इन परमानन्दघनका प्राकट्य हुआ, उस समय मध्यरात्रि थी, चारों ओर अन्धकारका साम्राज्य था; परंतु अकस्मात् सारी प्रकृति उल्लाससे भरकर उत्सवमयी बन गयी। महाभाग्यवान् श्रीवसुदेवजीको अनन्त सूर्य-चन्द्रके सदृश प्रचण्ड शीतल प्रकाश दिखलायी पड़ा और उसी प्रकाशमें दिखलायी दिया एक अद्भुत बालक। श्यामसुन्दर, चतुर्भुज, शङ्ख-गदा-चक्र और पद्मसे सुशोभित, कमलके समान सुकोमल और विशाल नेत्र, वक्षःस्थलपर श्रीवत्स तथा भृगुलताके चिह्न, गलेमें कौस्तुभमणि, मस्तकपर महान् वैदूर्य-रत्न-खचित चमकता हुआ किरीट, कानोंमें झलमलाते हुए कुण्डल, जिनकी प्रभा अरुणाभ कपोलोंपर पड़ रही है। सुन्दर काले घुँघराले केश, भुजाओंमें बाजूबंद और हाथोंमें कङ्कण, कटिदेशमें देदीप्यमान करधनी, सब प्रकारसे सुशोभित अङ्ग-अङ्गसे सौन्दर्यकी रसधारा बह रही है। कैसा अद्भुत बालक! मानव-बालक माताके उदरसे निकलते हैं, तब उनकी आँखें मुँदी होती हैं। दाई पोंछ-पोंछकर उन्हें खोलती है, पर इनके तो आकर्ण विशाल, निर्मल, पद्मसदृश सुन्दर नेत्र हैं। सम्भव है, कहीं अधिक भुजावाला बालक भी जन्म जाय; परंतु इनके तो चारों हाथ दिव्य आयुधोंसे सुशोभित हैं। साधारणतया अलंकारोंसे बालकोंकी शोभा बढ़ा करती है; किंतु यहाँ तो ऐसा शोभामय बालक है कि इसके दिव्य देहसे संलग्न होकर अलंकारोंको ही शोभा प्राप्त हो रही है। ऐसा अपूर्व बालक कभी किसीने कहीं नहीं देखा-सुना। यही दिव्य जन्म है। वास्तवमें भगवान् सदा ही जन्म और मरणसे रहित हैं। जन्म और मृत्यु प्राकृत देहमें ही होते हैं। भगवान्‌का मङ्गलविग्रह अप्राकृत ही नहीं, परम दिव्य है। न वह कर्मजनित है न पाञ्चभौतिक। वह नित्य सच्चिदानन्दमय 'भगवद्देह' शाश्वत, हानोपादानरहित और स्वरूपमय है। उसके आविर्भावका नाम 'जन्म' है और उसके इस लोकसे अदृश्य हो जानेका नाम 'देहत्याग' है।

प्राकृतदेह और भगवद्देह

देह प्रधानतया दो प्रकारके होते हैं—प्राकृत और अप्राकृत। प्रकृतिराज्यके समस्त देह प्राकृत हैं और प्रकृतिसे परे दिव्यचिन्मयराज्यके अप्राकृत। प्राकृत देहका निर्माण स्थूल, सूक्ष्म और कारण—इन तीन भेदोंसे होता है। जबतक कारण देह रहता है, तबतक प्राकृत देहसे मुक्ति नहीं मिलती। इस त्रिविधदेहसमन्वित प्राकृत देहसे छूटकर—प्रकृतिसे विमुक्त होकर केवल आत्मरूपमें ही स्थित होने या भगवान्‌के चिन्मय पार्षदादि दिव्य स्वरूपकी प्राप्ति होनेका नाम ही 'मुक्ति' है। मैथुनी-अमैथुनी, योनिज-अयोनिज—सभी प्राकृत शरीर वस्तुतः योनि और बिन्दुके संयोगसे ही बनते हैं। इनमें कई स्तर हैं। अधोगामी बिन्दुसे उत्पन्न शरीर अधम है और ऊर्ध्वगामीसे निर्मित उत्तम। कामप्रेरित मैथुनसे उत्पन्न शरीर सबसे निकृष्ट है, किसी प्रसङ्गविशेषपर ऊर्ध्वरेता पुरुषके संकल्पसे बिन्दुके अधोगामी होनेपर उससे उत्पन्न होनेवाला शरीर उससे उत्तम द्वितीय श्रेणीका है; ऊर्ध्वरेता पुरुषके संकल्पमात्रसे केवल नारी-शरीरके मस्तक, कण्ठ, कर्ण, हृदय या नाभि आदिके स्पर्शमात्रसे उत्पन्न शरीर द्वितीयकी अपेक्षा भी उत्तम तृतीय श्रेणीका है। इसमें भी नीचेके अङ्गोंकी अपेक्षा ऊपरके

अङ्गोंके स्पर्शसे उत्पन्न शरीर अपेक्षाकृत उत्तम है। बिना स्पर्शके केवल दृष्टिद्वारा उत्पन्न उससे भी उत्तम चतुर्थ श्रेणीका है और बिना देखे ही संकल्पमात्रसे उत्पन्न शरीर उससे भी श्रेष्ठ पञ्चम श्रेणीका है। इनमें प्रथम और द्वितीय श्रेणीके शरीर मैथुनी हैं और शेष तीनों अमैथुनी हैं। अतएव पहले दोनोंकी अपेक्षा ये तीनों श्रेष्ठ तथा शुद्ध हैं। इनमें पञ्चम शरीर सर्वोत्तम है। स्त्रीपिण्ड या पुरुषपिण्डके बिना भी शरीर उत्पन्न होते हैं; परंतु उनमें भी सूक्ष्म योनि और बिन्दुका सम्बन्ध तो रहता ही है। प्रेतादि लोकोंमें वायुप्रधान और देवलोकादिमें तेजःप्रधान तत्तत्-लोकानुरूप देह भी प्राकृतिक—भौतिक ही हैं। योगियोंके सिद्धिजनित 'निर्माण-शरीर' बहुत शुद्ध हैं; परंतु वे भी प्रकृतिसे अतीत नहीं हैं। अप्राकृत पार्षदादिके अथवा भगवान्‌के मङ्गलमय लीलासङ्गियोंके भावदेह अप्राकृत हैं और वे प्राकृत शरीरसे अत्यन्त विलक्षण हैं, पर वे भी भगवद्देहसे निम्नश्रेणीके ही हैं। भगवद्देह तो भगवत्स्वरूप तथा सर्वथा अनिर्वचनीय है।

भगवान् नित्य सच्चिदानन्दमय हैं, इसलिये भगवान्‌के सभी अवतार नित्य सच्चिदानन्दघन ही होते हैं, पर लीला-विकासके तारतम्यसे अवतारोंमें भेद होता है। प्रधानतया अवतारोंके चार प्रकार माने गये हैं—पुरुषावतार, गुणावतार, लीलावतार और मन्वन्तरावतार।

पुरुषावतार

भगवान्‌ने आदिमें लोकसृष्टिकी इच्छासे महत्तत्त्वादि-सम्भूत षोडशकलात्मक पुरुषावतार धारण किया था। भगवान्‌का चतुर्व्यूह है—श्रीवासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध। 'भगवान्' शब्द श्रीवासुदेवके लिये प्रयुक्त होता है। इन्हींको 'आदिदेव नारायण' भी कहा जाता है। पुरुषावतारके तीन भेद हैं। इनमें आद्यपुरुषावतार उपर्युक्त षोडशकलात्मक पुरुष हैं, ये ही 'श्रीसंकर्षण' हैं। इन्हींको 'कारणार्णवशायी' या 'महाविष्णु' कहते हैं। पुरुषसूक्तमें वर्णित 'सहस्रशीर्ष पुरुष' ये ही हैं। ये अशरीरी प्रथम पुरुष कारण-सृष्टि अर्थात् तत्त्वसमूहके आत्मा हैं।

आद्यपुरुषावतार भगवान् ब्रह्माण्डमें अन्तर्यामीरूपसे प्रविष्ट होते हैं, वे द्वितीय पुरुषावतार 'श्रीप्रद्युम्न' हैं। ये ही 'गर्भोदकशायी' रूप हैं। इन्हीं पद्मनाभ भगवान्‌के नाभिकमलसे हिरण्यगर्भका प्रादुर्भाव होता है—

यस्याम्भसि शयानस्य योगनिद्रां वितन्वतः।
नाभिह्रदाम्बुजादासीद् ब्रह्मा विश्वसृजां पतिः॥

(श्रीमद्भा० १।३।२)

तृतीय पुरुषावतार 'श्रीअनिरुद्ध' हैं, जो प्रादेशमात्र विग्रहसे समस्त जीवोंमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित हैं, प्रत्येक जीवमें अधिष्ठित हैं। ये क्षीराब्धिशायी सबके पालनकर्ता हैं।

केचित् स्वदेहान्तर्हृदयावकाशे
प्रादेशमात्रं पुरुषं वसन्तम्।
चतुर्भुजं कञ्जरथाङ्गशङ्ख-
गदाधरं धारणया स्मरन्ति॥

(श्रीमद्भा० २।२।८)

गुणावतार—(सत्त्व, रज और तमकी लीलाके लिये ही प्रकट) श्रीविष्णु, श्रीब्रह्मा और श्रीरुद्र हैं। इनका आविर्भाव गर्भोदकशायी द्वितीय पुरुषावतार 'श्रीप्रद्युम्न' से होता है।

द्वितीय पुरुषावतार लीलाके लिये स्वयं ही इस विश्वकी स्थिति, पालन तथा संहारके निमित्त तीनों गुणोंको धारण करते हैं; परंतु उनके अधिष्ठाता होकर वे 'विष्णु, ब्रह्मा और रुद्र' नाम ग्रहण करते हैं। वस्तुतः ये कभी गुणोंके वशमें नहीं होते और नित्य स्वरूपस्थित होते हुए ही त्रिविध गुणमयी लीला करते हैं।

लीलावतार

भगवान् जो अपनी मङ्गलमयी इच्छासे विविध दिव्य मङ्गल-विग्रहोंद्वारा बिना किसी प्रयासके अनेक विविध विचित्रताओंसे पूर्ण नित्य-नवीन रसमयी क्रीड़ा करते हैं, उस क्रीड़ाका नाम ही लीला है। ऐसी लीलाके लिये भगवान् जो मङ्गलविग्रह प्रकट करते हैं, उन्हें 'लीलावतार' कहा जाता है। चतुस्सन (सनकादि चारों मुनि), नारद, वराह, मत्स्य, यज्ञ, नर-नारायण, कपिल, दत्तात्रेय, हयग्रीव, हंस, ध्रुवप्रिय विष्णु, ऋषभदेव, पृथु, श्रीनृसिंह, कूर्म, धन्वन्तरि, मोहिनी, वामन, परशुराम, श्रीराम, व्यासदेव, श्रीबलराम, बुद्ध और कल्कि लीलावतार हैं। इन्हें 'कल्पावतार' भी कहते हैं।

मन्वन्तरावतार

स्वायम्भुव आदि चौदह मन्वन्तरावतार माने गये हैं। प्रत्येक मन्वन्तरके कालतक प्रत्येक अवतारका लीलाकार्य

होनेसे उन्हें 'मन्वन्तरावतार' कहा गया है।

शक्ति-अभिव्यक्तिके भेदसे नामभेद

भगवान्‌के सभी अवतार परिपूर्णतम हैं, किसीमें स्वरूपतः तथा तत्त्वतः न्यूनाधिकता नहीं है; तथापि शक्तिकी अभिव्यक्तिकी न्यूनाधिकताको लेकर उनके चार प्रकार माने गये हैं—'आवेश', 'प्राभव', 'वैभव' और 'परावस्थ'।

उपर्युक्त अवतारोंमें चतुस्सन, नारद, पृथु और परशुराम **आवेशावतार** हैं। कल्किको भी आवेशावतार कहा गया है।

'**प्राभव**' अवतारोंके दो भेद हैं, जिनमें एक प्रकारके अवतार तो थोड़े ही समयतक प्रकट रहते हैं—जैसे मोहिनी अवतार और हंसावतार आदि, जो अपना-अपना लीलाकार्य सम्पन्न करके तुरंत अन्तर्धान हो गये। दूसरे प्रकारके प्राभव अवतारोंमें शास्त्रनिर्माता मुनियोंके सदृश चेष्टा होती है। जैसे महाभारत-पुराणादिके प्रणेता भगवान् वेदव्यास, सांख्यप्रणेता भगवान् कपिल एवं दत्तात्रेय, धन्वन्तरि और ऋषभदेव—ये सब प्राभव-अवतार हैं; इनमें आवेशावतारोंसे शक्ति-अभिव्यक्तिकी अधिकता तथा प्राभवावतारोंकी अपेक्षा न्यूनता होती है।

वैभवावतार ये हैं—कूर्म, मत्स्य, नर-नारायण, वराह, हयग्रीव, पद्मगर्भ, बलभद्र और चतुर्दश मन्वन्तरावतार। इनमें कुछकी गणना अन्य अवतार-प्रकारोंमें भी की जाती हैं।

परावस्थावतार प्रधानतया तीन हैं—नृसिंह, श्रीराम और श्रीकृष्ण ये षडैश्वर्यपरिपूर्ण हैं।

नृसिंहरामकृष्णेषु षाड्गुण्यं परिपूरितम्।
परावस्थास्तु ते साम्यं दीपादुत्पन्नदीपवत्॥

इनमें श्रीनृसिंहावतारका कार्य एक प्रह्लादरक्षण एवं हिरण्यकशिपु-वध ही है तथा इनका प्राकट्य भी अल्पकालस्थायी है। अतएव मुख्यतया श्रीराम और श्रीकृष्ण ही परावस्थावतार हैं।

इनमें भगवान् श्रीकृष्णको '**एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्**' कहा है। अर्थात् उपर्युक्त सनकादि-लीलावतार भगवान्‌के अंश-कला—विभूतिरूप हैं। श्रीकृष्ण साक्षात् स्वयं भगवान् हैं। भगवान् श्रीकृष्णको विष्णुपुराणमें 'सित-कृष्ण-केश' कहकर पुरुषावतारके केशरूप अंशावतार बताया गया है। महाभारतमें कई जगह इन्हें नरके साथी नारायण ऋषिका अवतार कहा गया है, कहीं वामनावतार कहा है और कहीं भगवान् विष्णुका अवतार बतलाया है। वस्तुतः ये सभी वर्णन ठीक हैं। विभिन्न कल्पोंमें भगवान् श्रीकृष्णके ऐसे अवतार भी होते हैं; परंतु इस सारस्वत कल्पमें स्वयं भगवान् अपने समस्त अंशकला-वैभवोंके साथ परिपूर्णरूपसे प्रकट हुए हैं। अतएव इनमें सभीका समावेश है। ब्रह्माजीने स्वयं इस पूर्णताको अपने दिव्य नेत्रोंसे देखा था। सृष्टिमें प्राकृत-अप्राकृत जो कुछ भी तत्त्व हैं, श्रीकृष्ण सभीके मूल तथा आत्मा हैं। वे समस्त जीवोंके, समस्त देवताओंके, समस्त ईश्वरोंके, समस्त अवतारोंके एकमात्र कारण, आश्रय और स्वरूप हैं। सित-कृष्ण-केशावतार, नारायणावतार, पुरुषावतार—सभी इनके अन्तर्गत हैं। वे क्या नहीं हैं? वे सबके सब कुछ हैं, वे ही सब कुछ हैं। समस्त पुरुष, अंश-कला, विभूति, लीला-शक्ति आदि अवतार उन्हींमें अधिष्ठित हैं। इसीसे वे स्वयं भगवान् हैं—'**कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।**'

लोचन मीन, लसैं पग कूरम, कोल धराधर की छबि छाजैं।
ये बलि मोहन साँवरे राम हैं दुर्जन राजन को हनि काजैं॥
हैं बल मैं बल, ध्यान मैं बुद्ध, लखें कल्की बिपदा सब भाजैं।
मध्य नृसिंह हैं, कान्ह जू मैं सिगरे अवतारन के गुन राजैं॥

किन्हीं महानुभावोंने तीन तत्त्व माने हैं—'विष्णु' 'महाविष्णु' और 'महेश्वर'। भगवान् श्रीकृष्णमें इन तीनोंका समावेश है। ब्रह्मवैवर्तपुराण (श्रीकृष्णखण्ड)-में आया है कि पृथ्वी भाराक्रान्त होकर ब्रह्माजीके शरणमें जाती है। ब्रह्माजी देवताओंको साथ लेकर महेश्वर श्रीकृष्णके गोलोकधाममें पहुँचते हैं। नारायण ऋषि भी उनके साथ रहते हैं। ब्रह्मा तथा देवताओंकी प्रार्थनापर भगवान् श्रीकृष्ण अवतार ग्रहण करना स्वीकार करते हैं, तब अवतारका आयोजन होने लगता है। अकस्मात् एक मणि-रत्न-खचित अपूर्व सुन्दर रथ दिखायी पड़ता है। उस रथपर शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म धारण किये हुए महाविष्णु विराजित हैं। वे नारायण रथसे उतरकर महेश्वर श्रीकृष्णके शरीरमें विलीन हो जाते हैं—'**गत्वा नारायणो देवो विलीनः कृष्णविग्रहे।**'

परंतु महाविष्णुके विलीन होनेपर भी श्रीकृष्णावतारका स्वरूप पूर्णतया नहीं बना, तब एक दूसरे स्वर्णरथपर आरूढ़ पृथ्वीपति श्रीविष्णु वहाँ दिखायी दिये और वे भी श्रीराधिकेश्वर श्रीकृष्णके शरीरमें विलीन हो गये—'**स चापि लीनस्तत्रैव राधिकेश्वरविग्रहे।**'

अब अवतारके लिये पार्थिव मानुषी तत्त्वकी आवश्यकता हुई। नारायण ऋषि वहाँ थे ही, वे भी उन्हींमें विलीन हो गये और यों महाविष्णु-विष्णु-नारायणरूप स्वयं महेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने अवतार लिया तथा नारायणके साथी नरऋषि अर्जुनरूपसे अवतारलीलामें सहायतार्थ अवतरित हुए।

श्रीमद्भागवतके अनुसार असुररूप दुष्ट राजाओंके भारसे आक्रान्त दुःखित पृथ्वी गोरूप धारण करके करुण-क्रन्दन करती हुई ब्रह्माजीके पास जाती है और ब्रह्माजी भगवान् शंकर तथा अन्यान्य देवताओंको साथ लेकर क्षीरसागरपर पहुँचते हैं और क्षीराब्धिशायी पुरुषरूप भगवान्का स्तवन करते हैं। ये क्षीरोदशायी पुरुष ही व्यष्टि पृथ्वीके राजा हैं, अतएव पृथ्वी अपना दुःख इन्हींको सुनाया करती है। ब्रह्मादि देवताओंके स्तवन करनेपर ब्रह्माजी ध्यानमग्न हो जाते हैं और उन समाधिस्थ ब्रह्माजीको क्षीराब्धिशायी भगवान्की आकाशवाणी सुनायी देती है। तदनन्तर वे देवताओंसे कहते हैं—

गां पौरुषीं मे शृणुतामराः पुन-
र्विधीयतामाशु तथैव मा चिरम्॥
पुरैव पुंसावधृतो धराज्वरो
भवद्भिरंशैर्यदुषूपजन्यताम् ।
स यावदुर्व्या भरमीश्वरेश्वरः
स्वकालशक्त्या क्षपयंश्चरेद् भुवि॥
वसुदेवगृहे साक्षाद् भगवान् पुरुषः परः।
जनिष्यते तत्प्रियार्थं सम्भवन्तु सुरस्त्रियः॥

(श्रीमद्भा० १०।१।२१—२३)

'देवताओ! मैंने भगवान्की आकाशवाणी सुनी है, उसे तुमलोग मुझसे सुनो और फिर बिना विलम्ब इसीके अनुसार करो। हमलोगोंकी प्रार्थनाके पूर्व ही भगवान् पृथ्वीके संतापको जान चुके हैं। वे ईश्वरोंके भी ईश्वर अपनी कालशक्तिके द्वारा धराका भार हरण करनेके लिये जबतक पृथ्वीपर लीला करें, तबतक तुमलोग भी यदुकुलमें जन्म लेकर उनकी लीलामें योग दो। वे परम पुरुष भगवान् स्वयं वसुदेवजीके घरमें प्रकट होंगे। उनकी तथा उनकी प्रियतमा (श्रीराधाजी)-की सेवाके लिये देवाङ्गनाएँ भी वहाँ जन्म धारण करें।'

क्षीरोदशायी भगवान्के इस कथनका भी यही अभिप्राय है कि 'साक्षात् परम पुरुष स्वयं भगवान् प्रकट होंगे, वे क्षीराब्धिशायी नहीं।' अतएव स्वयं पुरुषोत्तमभगवान् ही, जिनके अंशावतार नारायण हैं, वसुदेवजीके घर प्रकट हुए थे। देवकीजीकी स्तुतिसे भी यही सिद्ध है—

यस्यांशांशांशभागेन विश्वोत्पत्तिलयोदयाः।
भवन्ति किल विश्वात्मंस्तं त्वाद्याहं गतिं गता॥

(श्रीमद्भा० १०।८५।३१)

'हे आद्य! जिस आपके अंश (पुरुषावतार)-का अंश (प्रकृति) है, उसके भी अंश (सत्त्वादि गुण)-के भाग (लेशमात्र)-से इस विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय हुआ करते हैं, विश्वात्मन्! आज मैं उन्हीं आपके शरण हो रही हूँ।'

भगवान् एक ही हैं

कुछ महानुभाव ऐसा मानते हैं कि लीलामें अवतीर्ण भगवान् श्रीकृष्णका त्रिविध प्रकाश है। कुरुक्षेत्रमें श्रीकृष्ण पूर्ण सत् और ज्ञानशक्तिप्रधान हैं, द्वारका और मथुरामें पूर्णतर चित् और क्रियाशक्तिप्रधान हैं एवं श्रीवृन्दावनमें श्रीकृष्ण पूर्णतम आनन्द और इच्छाशक्तिप्रधान हैं। कुछ लोग महाभारत और श्रीमद्भागवतके श्रीकृष्णको अलग-अलग दो मानते हैं। यह सब उनकी अपनी भावना है। ***'जिन्ह कें रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी॥'*** वस्तुतः परिपूर्णतम भगवान् एक ही हैं, उनका अनन्त लीला-विलास है और लीलानुसार उनके स्वरूप-वैचित्र्यपरक हैं, वस्तुतत्त्व एक ही है।

जिस किसी भी भावसे कोई उन्हें देखे—अपनी-अपनी दृष्टिके अनुसार उनके दर्शन करे, सब करते एक ही भगवान्के हैं। उनमें छोटा-बड़ा न मानकर अत्यन्त प्रेम-भक्तिके साथ अपने इष्ट स्वरूपकी सेवामें ही लगे रहना चाहिये।

भगवान् कृष्णके जन्मकी कथा

(गोलोकवासी परमभागवत संत श्रीरामचन्द्रडोंगरेजी महाराज)

शुकदेवजीने राधाकृष्णसे प्रार्थना की कि हृदयमें विराजमान होकर वे ही कथा करें।

ज्ञानी पुरुष मृत्युको टालनेका नहीं, सुधारनेका प्रयत्न करते हैं। मृत्युको सुधारते हैं कृष्णकथा, कृष्णनाम, कृष्णभक्ति। जिसकी मृत्यु सुधरती है, उसे दुबारा जन्म लेना नहीं पड़ता।

वैर और वासना जीवनको बिगाड़ते हैं। उनके दूर होनेपर ही जीवन और मृत्यु उजागर होते हैं। वैर और वासनाको मृत्युके पहले ही हटा दो; अन्यथा मृत्यु बिगड़ जायगी। तुम वैरीको वन्दन करो फिर भी वह वैर बनाये रहे तो उसके पापका साझीदार तुम्हें बनना नहीं पड़ेगा।

श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धमें निरोधलीला है। ईश्वरमें मनको लय करना ही निरोध है। श्रीकृष्णको अपने हृदयमें रखोगे या श्रीकृष्णके हृदयमें बसोगे तो मनका निरोध होगा। मनका निरोध ही मुक्ति है।

धरतीपर दैत्योंका उपद्रव बढ़ गया, लोग दुःखी हो गये, पाप बढ़ गया। धरतीसे यह सब सहा न गया तो उसने ब्रह्माजीकी शरण ली। ब्रह्मा आदि देव ब्रह्मलोकमें नारायणके पास आये और पुरुषसूक्तसे प्रार्थना करने लगे—नाथ! अब तो कृपा कीजिये। आप अवतार लीजिये। भगवान्ने ब्रह्माजीसे कहा—कुछ ही समयमें मैं वसुदेव-देवकीके घर प्रकट होऊँगा, मेरी सेवाके लिये तुम सब देव भी अवतार लेना। ब्रह्माने आकाशवाणी सुनी और सभी देवोंको आश्वस्त किया।

इधर मथुरामें विवाह करनेके लिये वसुदेव आये। वसुदेव-देवकीका विवाह हुआ। स्वयं कंसने ही वर-वधूका रथ चलाया।

कंसने वसुदेवको बहुत सताया तो भगवान्का प्राकट्य शीघ्र हो गया। भक्तोंके दुःख भगवान्से सहे नहीं जाते। पापीका दुःख भगवान् साक्षीके रूपमें देख लेते हैं और सह लेते हैं, किंतु पुण्यशालीका दुःख उनसे सहा नहीं जाता।

आकाशवाणी सुनायी दी—'हे कंस, देवकीकी आठवीं संतान तेरी हत्या करेगी।'

कंसने आकाशवाणी सुनी तो वह तलवार लेकर देवकीकी हत्या करनेके लिये तैयार हो गया। तब वसुदेव

उसे समझाने लगे—जो आया है, वह जायगा। जिसका जन्म हुआ है, उसकी मृत्यु भी होगी। इसीलिये तो महात्माजन मृत्युको टालनेका नहीं, सुधारनेका प्रयत्न करते हैं। मृत्युका निवारण अशक्य है। **'शीर्यते इति शरीरम्।'** शरीरका नाश तो होगा ही। वैर न करो। वैर या सुखकी वासना मृत्युको भ्रष्ट करती है। वैर-वासनाका त्याग करके प्रभुस्मरण करता हुआ जो मरता है, उसीकी मृत्यु उजागर होती है। देवकीकी हत्या करनेसे तो तुम अमर हो नहीं सकते और देवकी तो तुम्हारी मृत्युका कारण है नहीं।

कंस—हाँ, यह तो है।

वसुदेव—तो मैं देवकीकी सभी संतान तुम्हारे हवाले करता रहूँगा।

कंसने भी सोचा कि यह भी ठीक है। स्त्रीहत्याके पापसे तो बच जाऊँगा। उसने कहा—अच्छा, मैं देवकीकी हत्या नहीं करूँगा।

वसुदेव शुद्ध सत्त्व गुणका स्वरूप हैं। विशुद्ध चित्त ही वसुदेव है, देवकी निष्काम बुद्धि है। इन दोनोंके

मिलन होनेपर भगवान्‌का जन्म होता है।

वसुदेव-देवकी घर आये। प्रथम बालकका जन्म हुआ। वसुदेवने कंसको दे दिया। कंसका हृदय पिघला। इस बालकको मारनेसे मुझे कोई लाभ नहीं होगा। आठवाँ बालक मुझे मारेगा। यह तो पहला है। मैं इसे मारूँगा नहीं। सातों बालकोंको अपने पास ही रखना। मेरा काल होनेवाला आठवाँ बालक ही मुझे देना। वसुदेवजी बालकको लेकर वापस लौटे।

नारदजीने सोचा कि यदि यह कंस अच्छाई करने लगेगा तो पाप कैसे कर पायेगा और यह पाप नहीं करेगा तो भगवान् अवतार नहीं लेंगे। कंसका पाप नहीं बढ़ेगा तो वह शीघ्र मरेगा भी नहीं। पाप न करनेवालेको भगवान् जल्दी मारते नहीं हैं।

ईश्वर तो किसीको भी नहीं मारते। मनुष्यको उसका पाप ही मारता है। हमेशा दो वस्तुओंसे डरते रहो—पापसे और ईश्वरसे।

नारदजी कंसके पास आये और कहा, कंस! तू तो बहुत भोला है। देव तुम्हें मारनेकी सोच रहे हैं। वसुदेवके बालकोंको छोड़कर तुमने अच्छा नहीं किया। कोई भी बालक आठवाँ हो सकता है। यदि आठवें बालकको पहला माना जाय तो वह पहला बालक आठवाँ माना जायगा।

कंस—तो क्या मैं सभी बालकोंकी हत्या करता रहूँ?

नारदजीने सोचा कि यदि मैं सम्मति दूँगा तो मुझे भी बालहत्याका पाप लग ही जायगा।

दूसरोंको पापकी प्रेरणा देनेवाला भी पापी है।

नारदजी—राजन्, मैं तो तुम्हें सावधान करनेके लिये आया हूँ। तुम्हें जो ठीक लगे वह करते रहना।

इसके बाद वे 'नारायण-नारायण' बोलते हुए चले गये।

नारदजीने कंसके पापको बढ़ानेहेतु ही उसे उल्टा-सीधा पढ़ा दिया।

कंसने वसुदेव-देवकीको कारागारमें बन्द कर दिया। बिना अपराध ही बन्धनमें बँध गये, फिर भी उन्होंने मान लिया कि शायद ईश्वरको यही पसंद है। यह तो भगवान्‌की कृपा ही है कि उनका नामस्मरण करने लिये एकान्तवास मिला है। अतिशय दुःखको भी प्रभु कृपा ही समझनी चाहिये।

कंस अभिमान है। वह जीवमात्रको बन्द कि रहता है। सभी जीव इस संसाररूपी कारागृहमें बन्द है हम सब बन्दी हैं। जीव जबतक कामके आधीन है तबतक वह स्वतन्त्र नहीं है। सभी बन्दी ही हैं।

वसुदेव-देवकी कारावासमें भी जाग्रत् थे, जब कि हम तो सोये ही रहते हैं। हमारा जीव कारागृहके एकान्तमें जाग्रत् होनेकी अपेक्षा सोया ही रहता है संसारमें जो जाग्रत् रहता है, वही भगवान्‌को पा सकता है—

'जो जागत है सो पावत है। जो सोवत है वो खोवत है॥'

जो भगवान्‌के लिये जागता है, उसे ही भगवान् मिलते हैं। कबीरजीने कहा है—

सुखिया सब संसार है, खावे अरु सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागे अरु रोवै॥

कबीर उनके लिये जागे और रोये, सो उन्हें भगवान् मिले। मीराँबाई भी उनके लिये जागीं और रोयीं, सो उन्हें भी भगवान् मिले।

कंसने देवकीकी छः संतानोंकी हत्या कर दी।

मायाका आश्रय लिये बिना भगवान् अवतार नहीं ले सकते। शुद्ध ब्रह्मका अवतार हो नहीं सकता। यदि ईश्वर शुद्ध स्वरूपसे आये तो जो भी उनका दर्शन पा सके उसका उद्धार हो जाय। दुर्योधनने द्वारकाधीशके दर्शन तो किये थे, किंतु मायासे आवृत प्रभुके दर्शन किये थे। जो निरावृत ब्रह्मका साक्षात्कार पाता है उसे मुक्ति मिलती है। मायावृत ब्रह्मके दर्शककी मुक्ति नहीं होती। सम्भव है, भगवान्‌के अवतारके समय हम कीड़े-मकोड़े होंगे। हमने भगवान्‌के दर्शन तो किये होंगे; फिर भी आजतक हमारा उद्धार नहीं हो पाया है।

योगमायाका आगमन हुआ। उन्होंने सातवें गर्भकी स्थापना रोहिणीके उदरमें की। रोहिणी सगर्भा हुई और दाऊजी महाराज प्रकट हुए भाद्रपद शुक्ल एकादशीके दिन। 'बलदेव' शब्दब्रह्मका स्वरूप है। पहले शब्दब्रह्म आता है और बादमें परब्रह्म। बलरामका आगमन होनेपर

ही परब्रह्म गोकुलमें आते हैं।

दाऊजीने आँखें खोलीं ही नहीं। जबतक मेरा कन्हैया नहीं आयेगा, मैं आँखें नहीं खोलूँगा। यशोदाजी पूर्णमासीसे बलरामकी नजर उतारनेकी विनती करती हैं। पूर्णमासी कहती है कि यह तो किसीका ध्यान कर रहा है। इस बालकके कारण तेरे घर बालकृष्ण पधारेंगे।

यशोदाने सभीको प्रसन्न किया।

यश सभीको दोगे और अपयश अपने पास रखोगे तो कृष्ण प्रसन्न होंगे। जीव तो ऐसा दुष्ट है कि यश अपने पास रखता है और अपयश दूसरोंके सिर मढ़ देता है।

यशोदा—'**यशः ददाति इति यशोदा।**' जो दूसरोंको यश देती है, वह यशोदा है।

नन्द—जो सभीको आनन्द देता है, वही नन्द है।

विचार, वाणी, वर्तन, सदाचारसे जो अन्यको आनन्द देता है, उसीके घर भगवान् पधारते हैं। जो सभीको आनन्द देता है, उसीको परमानन्द मिलता है।

नन्दबाबाने सभीको आनन्द दिया सो उनके घर परमानन्द-प्रभु आ रहे थे।

सभी गोपाल महर्षि शाण्डिल्यके पास आये। महाराज, कुछ ऐसा कीजिये कि नन्दजीके घर पुत्रका जन्म हो। शाण्डिल्यजीके कहनेपर सभी एकादशीका व्रत करने लगे।

एकादशी महाव्रत है। एकादशीके दिन पान-सुपारी खाना या सोना भी निषिद्ध है। थोड़ा-सा फलाहार ही किया जा सकता है। कई लोग साबूदाना और सूरण भर पेट खाते हैं। सूरण-आलू आदि खानेपर अन्नदोष तो नहीं होता है, किंतु एकादशीव्रतका पुण्य भी नहीं मिलता है। अगले दिन क्या खायेंगे—ऐसा सोच-विचार एकादशीके दिन करनेसे व्रतभंग होगा। एकादशीके दिन तो भगवत्-स्मरण ही करना चाहिये।

सभी ग्वालोंकी एक ही इच्छा थी कि परमात्मा प्रसन्न हो जायँ और नन्दबाबाके घर पुत्र-जन्म हो। भाद्रपद शुक्ल एकादशीसे सभी गोकुलवासी निर्जला एकादशी आदि व्रत करने लगे, सो भगवान् गोकुलमें पधारे। बालकोंने भी व्रत किया था, सो वे कहते हैं कि हमारे व्रतके कारण ही कन्हैया आये। कन्हैया तो सबका है। नन्द-महोत्सवमें सारा गाँव आनन्दसे नाच रहा था। सभीको लगता है कि कन्हैया उसीका है। सारे गाँवने जो व्रत किया था।

शुकदेवजी वर्णन कर रहे हैं।

इधर देवकीने आठवाँ गर्भ धारण किया तो उधर कंसने सेवकोंको सावधान कर दिया। मेरा काल आ रहा है।

सेवकोंने कहा—हम तो सदा जागते ही रहते हैं। हम चौकन्ने ही रहते हैं। बालकका जन्म होते ही आपको समाचार दे देंगे।

देवगण देवकी-गर्भवासी भगवान् नारायणकी प्रार्थना करते हैं। आप तो सत्यस्वरूप त्रिकालाबाधित हैं। अपना वचन सत्य करनेके हेतु आप पधार रहे हैं। अनेक विद्वानोंकी अधोगति हमने देखी है, किंतु जो व्यक्ति आपकी लीलाओंका स्मरण और आपके नामका जप करता है, उसकी कभी अधोगति नहीं होती। नाथ! आप कृपा करें।

देवोंने देवकीको भी आश्वासन दिया। नौ मास परिपूर्ण होनेको आये। मन, बुद्धि, पञ्चप्राण आदिकी शुद्धि हुई है। इन सबकी शुद्धि होनेपर परमात्माके दर्शनकी आतुरता बढ़ती जाती है। ईश्वरके दर्शनके बिना चैन नहीं आता। अत: जब जीव तड़पता है और अतिशय आतुर हो जाता है तभी भगवान् अवतार धारण करते हैं।

जब परम शोभायमान और सर्वगुणसम्पन्न घड़ी आयी, चन्द्र रोहिणी नक्षत्रमें आया, दिशाएँ स्वच्छ हुईं, आकाश निर्मल हुआ, नदीका नीर निर्मल हुआ, वन-उपवनमें पक्षी और भँवरे गुनगुनाने लगे; शीतल, सुगन्धित, पवित्र हवा बहने लगी, महात्माओंके मन प्रसन्न हुए, स्वर्गमें दुन्दुभि बजने लगी, मुनि और देवगण आनन्दसे पुष्पवृष्टि करने लगे और परम पवित्र समय आ पहुँचा। भाद्रपद मासके कृष्णपक्षकी अष्टमीकी मध्यरात्रिका समय सम्पन्न हुआ और कमलनयन चतुर्भुज नारायण भगवान् बालकका रूप लेकर वसुदेव-देवकीके समक्ष प्रकट हुए।

भगवान् अपने श्रीहस्तोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए हैं। चारों ओर प्रकाश बिखर गया। उनका चतुर्भुजस्वरूप यह बताता है कि उनके चरणोंको

शरण लेनेवालोंके चारों पुरुषार्थ वे सिद्ध करेंगे।

जो भक्त अनन्यतासे मेरी आराधना करता है उसके धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थ मैं सिद्ध करता हूँ और उसकी हर प्रकारसे मैं रक्षा करता हूँ।

सम्पत्ति और संततिका सर्वनाश हो गया था फिर भी वसुदेव-देवकी दीनतापूर्वक ईश्वरकी आराधना करते हैं। प्रभुने कहा, मेरे चतुर्भुजस्वरूपका दर्शन कर लीजिये और ग्यारह वर्षतक मेरा ध्यान करते रहिये। मैं अवश्य आपके पास आऊँगा।

भगवान्‌का चतुर्भुजस्वरूप अदृश्य हो गया और दो छोटे-छोटे हाथोंवाले बाल कन्हैया प्रकट हुए।

बाल कन्हैयालालकी जय।

प्रभु प्रत्यक्ष प्रकट हो जायँ फिर भी ध्यानकी तो आवश्यकता बनी ही रहती है।

ज्ञानदीप प्रकट होनेके बाद भी, एकाध इन्द्रिय-द्वार खुला रह जानेपर विषयरूपी पवन प्रविष्ट होकर ज्ञानदीपको बुझा देता है। इस ज्ञानमार्गमें कई बाधाएँ आती रहती हैं।

भक्तिमार्ग बड़ा सरल है। प्रत्येक इन्द्रियोंको भक्तिरसमें भिगो दो फिर विषयरूपी पवन सता नहीं पायेगा।

जब ग्यारह इन्द्रियाँ ध्यानमें एकाग्र हो जाती हैं तब प्रभुका साक्षात्कार होता है। इसी कारणसे तो गीताजीमें भी ग्यारहवें अध्यायमें अर्जुनको विश्वरूपके दर्शन होते हैं।

प्रभुने कहा, मुझे गोकुलमें नन्दबाबाके घर छोड़ आइये। वसुदेवने उन्हें टोकरीमें लिटाया, किंतु बाहर कैसे निकला जाय? कारागृहके द्वार बन्द हैं और बन्धन भी टूटते नहीं हैं, किंतु ज्योंही टोकरी सरपर उठायी सारे बन्धन टूट गये।

मस्तकमें बुद्धि है। जब बुद्धि ईश्वरका अनुभव करती है तब संसारके सारे बन्धन टूट जाते हैं। जो भगवान्‌को अपने मस्तकपर विराजमान करता है उसके लिये कारागारके तो क्या मोक्षके द्वार भी खुल जाते हैं। हाथ-पाँवकी बेड़ियाँ टूट जाती हैं, नदीकी बाढ़ भी थम जाती है। जिसके सिरपर भगवान् हैं, उसे मार्गमें विघ्न बाधित नहीं कर सकते।

मात्र घरमें आनेसे नहीं, मनमें भगवान्‌के आनेपर ही बन्धन टूट जाते हैं।

जो व्यक्ति वसुदेवकी भाँति श्रीकृष्णको अपने मस्तकपर विराजमान करता है, उसके सभी बन्धन टूट जाते हैं। कारागृहके—सांसारिक मोहके बन्धन टूट जाते हैं, द्वार खुल जाते हैं। अन्यथा यह सारा संसार मोहरूप कारागृहमें ही सोया हुआ है।

वसुदेवजी कारागृहमेंसे बाहर आये। दाऊजी दौड़ते हुए आये। शेषनागके रूपमें बालकृष्णपर छत्र धारण किया। यमुनाजीको अत्यन्त आनन्द हुआ। दर्शनसे तृप्त

नहीं हो पा रही थी। मुझे प्राणनाथसे मिलना है। यमुनामें जल बढ़ गया। प्रभुने लीला की, टोकरीमेंसे अपने पाँव बाहरकी ओर बढ़ा दिये। यमुनाजीने चरण-स्पर्श किया और कमल भेंट किया। प्रथम दर्शन और मिलनका आनन्द यमुनाजीको दिया। धीरे-धीरे पानी कम हो गया।

वसुदेव गोकुलमें आ पहुँचे। योगमायाके आवरणवश सारा गाँव गहरी नींदमें डूबा हुआ था। वसुदेवने श्रीकृष्णको यशोदाकी गोदमें रख दिया और बालिकास्वरूप योगमायाको उठा लिया। वसुदेवने सोचा कि अब भी उनका प्रारब्ध कर्म बाकी रह गया है तभी तो भगवान्‌को छोड़कर मायाको गले लगानेका अवसर आया है।

वसुदेव योगमायाको टोकरीमें बिठाकर वापस कारागृह आ पहुँचे।

ब्रह्मसम्बन्ध होनेपर सभी बन्धन टूट गये थे। अब माया आयी तो बन्धन भी आ गये। वसुदेव गोकुलमें मायाको अपने सिरपर बिठाकर लाये, सो फिर बन्धन

आ पहुँचा और कारागृहके द्वार बन्द हो गये। माया बन्धनकर्ता है। भगवान्‌की आज्ञाके कारण ही तो वसुदेवने बन्धनको स्वीकार किया है।

अब कारागृहमें देवकीकी गोदमें सोई हुई योगमाया रोने लगी। सेवकोंने शीघ्र ही कंसको संतानके जन्मका समाचार दिया। कंस दौड़ता हुआ आया। कहाँ है मेरा काल? मुझे सौंप दो उसे।

कंस योगमायाके पाँव पकड़कर उन्हें पत्थरपर पीटने लगा, किंतु माया कभी किसीके हाथमें आयी भी है? आदिमायाने तो कंसके ही सिरपर एक लात जड़ दी और उसके हाथोंसे छूटकर आकाशगामी हो गयी। आकाशमें उन्होंने अष्टभुजा जगदम्बा भद्रकालीका रूप धारण किया। उन्होंने कंससे पुकारकर कहा—अरे पापी, तेरा काल तो अवतरित हो गया है और सुरक्षित है।

कंसने पश्चात्ताप करते हुए वसुदेव-देवकीसे अपने अपराधकी क्षमा माँगी।

इधर जन्माष्टमीके दिन नन्दजीने बारह बजेतक जागरण किया। शाण्डिल्यके कहनेपर सभी सो गये थे और गहरी नींदमें डूब गये थे। बालकृष्ण जब नन्दजीके घरमें आये तब नन्दबाबा सोये हुए थे। नन्दबाबाने स्वप्नमें देखा कि कई बड़े-बड़े ऋषि-मुनि उनके आँगनमें पधारे हुए हैं, यशोदाजीने शृङ्गार किया है और गोदमें एक सुन्दर बालक खेल रहा है। उस बालकको मैं निहार रहा हूँ। शिवजी भी उस बालकका दर्शन करने हेतु आये हुए हैं।

नन्दबाबा प्रात:कालमें जाग्रत् होनेपर मनमें कई संकल्प-विकल्प करते हुए गोशालामें आये। वे स्वयं गोसेवा करते थे। गायोंकी जो प्रेमसे सेवा करता है, उसका वंश-नाश नहीं होता।

नन्दबाबाने प्रार्थना की—हे नारायण! दया करो। मेरे घर गायोंके सेवक गोपालकृष्णका जन्म हो।

उसी समय बालकृष्णने लीला की। पीला चोला पहने हुए, कपालपर कस्तूरीके तिलकवाले बालकृष्ण घुटनोंके बल बढ़ते हुए गोशालामें आये। इस बालकको नन्दजीने देखा तो उनके मनमें हुआ, अरे, यह तो वही बालक है, जिसे मैंने स्वप्नमें आज ही देखा है। बालकृष्णने नन्दबाबासे कहा—बाबा, मैं आपकी गायोंकी सेवा करनेके लिये आया हूँ।

गोशालामें आये हुए कन्हैयाको नन्दजी प्रेमसे निहारते हुए स्तब्धसे हो गये। उन्हें देहभानतक नहीं रहा। वे बालकृष्णके दर्शनसे समाधिस्थसे हो गये। उन्हें कुछ ज्ञात ही नहीं हो रहा था कि वे जाग रहे हैं या सो रहे हैं।

सुनन्दाको यशोदाकी गोदमें बालकृष्णकी झाँकी हुई तो वह दौड़ती हुई गोशालामें भाईको खबर करने आयी। भैया, भैया, लालो भयो है।

आनन्द ही आनन्द हो गया। श्रीकृष्ण हृदयमें आ गये।

नन्दजीने यमुनाजीमें स्नान किया। जन्मोत्सवके उपलक्ष्यमें स्नान किया जाता था। उनको सुवर्णके आसनपर बिठलाया गया। शाण्डिल्यमुनिने उनको दान करनेको कहा। नन्दजीने कहा, जो चाहो सो ले जा सकते हो। नन्दबाबाने बड़ी उदारतासे दान दिया। दानसे धनकी शुद्धि होती है।

गायोंका दान दिया गया।

कई वर्षोंतक तपश्चर्या करनेपर भी महान् ऋषि-मुनियोंका काम नष्ट न हुआ, अभिमान नि:शेष न हुआ तो वे सब गोकुलमें गायका अवतार लेकर आये। उन्होंने सोचा था कि ब्रह्मसम्बन्ध होनेपर वे निष्काम होंगे।

नन्दबाबाने दो लाख गायोंका दान दिया।

एक ब्राह्मणको दस हजार गायें दानस्वरूप मिलीं। वह घर ले आया। छोटा-सा था घर। उसने घरके कोने-कोनेमें गायें बाँध दी फिर भी बहुत-सी बाकी रह गयीं। इस ब्राह्मणकी पत्नी बड़ी कर्कशा थी। वह अपने पतिसे कहने लगी—कोई चाहे इतनी गाय दें, किंतु तुम सबको ले क्यों आये? इतनी सारी गायें देनेवाला कौन निकल पड़ा?

ब्राह्मण—अरे, तू जानती ही नहीं है क्या? नन्दबाबाके घर पुत्ररत्न जन्मा है। उन्होंने आज हजारों गायोंका दान दिया है।

नन्दबाबाके घर पुत्रजन्मकी बात सुनकर ब्राह्मणी आनन्दित हो गयी। पति-पत्नी आनन्दसे मानो, नाचने लगे।

नंद घर आनंद भयो। जय कन्हैयालालकी ॥

गाँवके एक-एक व्यक्तिको लगता है कि कन्हैया उसीका है। गाँवकी सभी गोपियोंमें कन्हैयाके जन्मकी बात फैल गयी तो वे सब भी उसके दर्शनके लिये दौड़ चलीं। मानो नवधा भक्ति दौड़ती हुई ईश्वरसे मिलनेके लिये जा रही हो।

गोपियोंका एक-एक अंग कृष्णमिलन और कृष्णस्पर्शके लिये आन्दोलित हो रहा था। उनकी आँखें कहने लगीं—हम जैसा भाग्यवान् कोई नहीं है, हमें ही कृष्णदर्शनका आनन्द मिलेगा; तो हाथोंने कहा—हम ही भाग्यशाली हैं, हम तो प्रभुको भेंट देंगे; तो गोपियोंके कान कहने लगे—हमारे ही कारण तुम सब भाग्यशाली हुए हो; क्योंकि कृष्णप्राकट्यके समाचार हमने सबसे पहले जाने हैं, हम तो कन्हैयाका बाँसुरीवादन भी सुनेंगे,; तो हृदयने कहा—जबतक मैं पिघलता नहीं हूँ, आनन्द आता ही नहीं है; पाँव बोल पड़े—हजारों जन्मोंसे हम यौवनसुख और धनसम्पत्तिके पीछे भागते आये हैं और आज प्रभुदर्शनके लिये दौड़ पड़े हैं, अब जन्म-मृत्युके दुःखसे छुटकारा होगा। सभीको आनन्दानुभव हो रहा था।

गोपियोंकी वेणीसे फूल नीचे झर रहे हैं और कह रहे हैं—तुम कृष्णदर्शनके लिये आतुरतासे दौड़ रही हो। तुम भाग्यशाली हो। तुम्हारे सिरपर रहनेके लिये हम योग्य नहीं हैं। हम तो तुम्हारे चरणोंमें गिरकर तुम्हारी चरणरजके स्पर्शसे पावन हो जायँगे।

यशोदाकी गोदमें खेलते हुए सर्वाङ्गसुन्दर बालकृष्णको गोपियाँ दहीका अभिषेक करने लगीं। निर्धन गोपियाँ दूध और दही लेकर आयी हैं। कृष्णलालके दर्शन होनेपर आनन्दावेशसे वे सानभान भूल गयीं और स्वयंको ही दूध-दहीसे नहलाने लगीं। सभी गोपियोंका मन कन्हैयाने आकर्षित कर लिया। हृदयमें आनन्दका पारावार उमड़ रहा है। गोपियाँ जितना लेकर आयी हैं, उसका दस गुना बढ़ाकर वापस लौटाना है। किसीको चाँदीकी थाली दी गयी तो किसीको चन्द्रहार। यशोदाजीने सोच लिया था कि घरका सर्वस्व क्यों न लुट जाय, किंतु सभीका आशीर्वाद और शुभेच्छा पाना है। गोपियाँ जो कुछ माँगें, दिया जाय।

आनन्दमें पागल गोपियाँ कन्हैयाकी जयकार कर रही हैं। एकने तो कहा, यदि देना है मुझे तो कन्हैया ही दीजिये। यशोदाने उसे अपने पास बिठाकर उसकी गोदमें लालाको बिठाया। आनन्द, आनन्द, आनन्द। हजारों जन्मोंसे बिछड़ा हुआ जीव आज प्रभुसे मिल पाया। ईश्वरसे मिलन होनेपर जीव आनन्दसे झूम उठता है।

~~ ० ~~

भगवान् विष्णुका पुराणोंके रूपमें अवतरण

ब्राह्मं मूर्धा हरेरेव हृदयं पद्मसंज्ञकम्॥
वैष्णवं दक्षिणो बाहुः शैवं वामो महेशितुः। ऊरू भागवतं प्रोक्तं नाभिः स्यान्नारदीयकम्॥
मार्कण्डेयं च दक्षाङ्घ्रिर्वामो ह्याग्नेयमुच्यते। भविष्यं दक्षिणो जानुर्विष्णोरेव महात्मनः॥
ब्रह्मवैवर्तसंज्ञं तु वामजानुरुदाहृतः। लैङ्गं तु गुल्फकं दक्षं वाराहं वामगुल्फकम्॥
स्कान्दं पुराणं लोमानि त्वगस्य वामनं स्मृतम्। कौर्मं पृष्ठं समाख्यातं मात्स्यं मेदः प्रकीर्त्यते॥
मज्जा तु गारुडं प्रोक्तं ब्रह्माण्डमस्थि गीयते। एवमेवाभवद्विष्णुः पुराणावयवो हरिः॥

(पद्मपु०, स्व० ख० ६२। २—७)

'ब्रह्मपुराण भगवान् विष्णुका सिर, पद्मपुराण हृदय, विष्णुपुराण दक्षिणबाहु, शिवपुराण, वामबाहु, भागवत जङ्घायुगल, नारदपुराण नाभि, मार्कण्डेयपुराण दक्षिण चरण और अग्निपुराण वाम चरण हैं। भविष्य उनका दक्षिण जानु, ब्रह्मवैवर्त वाम जानु, लिङ्गपुराण दक्षिण गुल्फ (टँखना), वराहपुराण वाम गुल्फ, स्कन्दपुराण रोम, वामनपुराण त्वचा, कूर्मपुराण पीठ, मत्स्यपुराण मेद, गरुडपुराण मज्जा और ब्रह्माण्डपुराण अस्थि हैं। इस प्रकार भगवान् विष्णु पुराण-विग्रहके रूपमें प्रकट हुए हैं।'

~~ ० ~~

गीतामें अवतारवाद

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

सर्वागमेषु ये प्रोक्ता अवतारा जगत्प्रभोः।
तद्रहस्यं हि गीतायां कृष्णेन कथितं स्वयम्॥

जो अपनी स्थितिसे नीचे उतरता है, उसको 'अवतार' कहते हैं। जैसे, कोई शिक्षक बालकको पढ़ाता है तो वह उसकी स्थितिमें आकर पढ़ाता है अर्थात् वह स्वयं 'क, ख, ग' आदि अक्षरोंका उच्चारण करता है और उस बालकसे उनका उच्चारण करवाता है तथा उसका हाथ पकड़कर उससे उन अक्षरोंको लिखवाता है। यह बालकके सामने शिक्षकका अवतार है। गुरु भी अपने शिष्यकी स्थितिमें आकर अर्थात् शिष्य जैसे समझ सके, वैसी ही स्थितिमें आकर उसकी बुद्धिके अनुसार उसको समझाते हैं। ऐसे ही मनुष्योंको व्यवहार और परमार्थकी शिक्षा देनेके लिये भगवान् मनुष्योंकी स्थितिमें आते हैं, अवतार लेते हैं।

भगवान् मनुष्योंकी तरह जन्म नहीं लेते। जन्म न लेनेपर भी वे जन्मकी लीला करते हैं अर्थात् मनुष्योंकी तरह माँके गर्भमें आते हैं; परंतु मनुष्यकी तरह गर्भाधान नहीं होता। जब भगवान् श्रीकृष्ण माँ देवकीजीके गर्भमें आते हैं, तब वे पहले वसुदेवजीके मनमें आते हैं तथा नेत्रोंके द्वारा देवकीजीमें प्रवेश करते हैं और देवकीजी मनसे ही भगवान्‌को धारण करती हैं।* गीतामें भगवान् कहते हैं कि मैं अज (अजन्मा) रहते हुए ही जन्म लेता हूँ अर्थात् मेरा अजपना ज्यों-का-त्यों ही रहता है। मैं अव्ययात्मा (स्वरूपसे नित्य) रहते हुए ही अन्तर्धान हो जाता हूँ अर्थात् मेरे अव्ययपनेमें कुछ भी कमी नहीं आती। मैं सम्पूर्ण प्राणियोंका, सम्पूर्ण लोकोंका ईश्वर (मालिक) रहते हुए ही माता-पिताकी आज्ञाका पालन करता हूँ अर्थात् मेरे ईश्वरपनेमें, मेरे ऐश्वर्यमें कुछ भी कमी नहीं आती। मनुष्य तो अपनी प्रकृति-(स्वभाव-) के परवश होकर जन्म लेते हैं, पर मैं अपनी प्रकृतिको अपने वशमें करके स्वतन्त्रतापूर्वक स्वेच्छानुसार अवतार लेता हूँ (४।६)।

भगवान् अपने अवतार लेनेका समय बताते हुए कहते हैं कि जब-जब धर्मका ह्रास होता है और अधर्म बढ़ जाता है, तब-तब मैं अवतार लेता हूँ, प्रकट हो जाता हूँ (४।७)। अपने अवतारका प्रयोजन बताते हुए भगवान् कहते हैं कि भक्तजनोंकी, उनके भावोंकी रक्षा करनेके लिये, अन्याय-अत्याचार करनेवाले दुष्टोंका विनाश करनेके लिये और धर्मकी भलीभाँति स्थापना, पुनरुत्थान करनेके लिये मैं युग-युगमें अवतार लेता हूँ (४।८)। इस तरह अज, अविनाशी और ईश्वर रहते हुए अवतार लेनेवाले मुझ महेश्वरके परमभावको न जानते हुए जो लोग मेरेको मनुष्य मानकर मेरी अवहेलना, तिरस्कार करते हैं, वे मूढ़ (मूर्ख) हैं। मूढ़लोग आसुरी, राक्षसी और मोहिनी प्रकृतिका आश्रय लेकर जो कुछ आशा करते हैं, जो कुछ शुभकर्म करते हैं, जो कुछ विद्या प्राप्त करते हैं, वह सब व्यर्थ हो जाता है अर्थात् सत्-फल देनेवाला नहीं होता (९।११-१२)। जो मेरे सर्वश्रेष्ठ अविनाशी परमभावको न जानते हुए मुझ अव्यक्त परमात्माको जन्मने-मरनेवाला मानते हैं, वे मनुष्य बुद्धिहीन हैं। ऐसे मनुष्योंके सामने मैं अपने असली रूपसे प्रकट नहीं होता (७।२४-२५)।

जैसे खेलमें कोई स्वाँग बनाता है तो वह हरेकको अपना वास्तविक परिचय नहीं देता। अगर वह अपना वास्तविक परिचय दे दे तो खेल बिगड़ जायगा। ऐसे ही जब भगवान् अवतार लेते हैं, तब वे सबके सामने अपने-आपको प्रकट नहीं करते, सबको अपना वास्तविक परिचय नहीं देते—'**नाहं प्रकाशः सर्वस्य**' (७।२५)। यदि वे अपना वास्तविक परिचय दे दें तो फिर वे लीला नहीं कर सकते। जैसे खेल खेलनेवालेका स्वाँग देखकर उसका आत्मीय मित्र डर जाता है तो वह स्वाँगधारी अपने मित्रको संकेतरूपसे अपना असली परिचय देता है कि 'अरे! तू डर मत, मैं वही हूँ'। ऐसे ही भगवान्‌के अवतारी शरीरोंको

* ततो जगन्मङ्गलमच्युतांशं समाहितं शूरसुतेन देवी। दधार सर्वात्मकमात्मभूतं काष्ठा यथाऽऽनन्दकरं मनस्तः॥ (श्रीमद्भा० १०।२।१८)
'......यथा दीक्षाकाले गुरुः शिष्याय ध्यानमुपदिशति शिष्यश्च ध्यानोक्तां मूर्ति हृदि निवेशयति तथा वसुदेवो देवकीदृष्टौ स्वदृष्टिं निदधौ। दृष्टिद्वारा च हरिः संक्रामन् देवकीगर्भे आविर्बभूव। एतेन रेतोरूपेणाधानं निरस्तम्॥' (अन्वितार्थप्रकाशिका)

देखकर कोई भक्त डर जाता है तो भगवान् उसको अपना असली परिचय देते हैं कि 'भैया! तू डर मत, मैं तो वही हूँ।'

दो मित्र थे। एकने बाजारमें अपनी दूकान फैला रखी थी, जिससे लोग माल देखें और खरीदें। दूसरा राजकीय सिपाहीका स्वाँग धारण करके उसके पास गया और उसको खूब धमकाने लगा कि 'अरे! तूने यहाँ रास्तेमें दूकान क्यों लगा रखी है? जल्दी उठा, नहीं तो अभी राजमें तेरी खबर करता हूँ।' उसकी बातोंसे वह दूकानदार मित्र बहुत डर गया और अपनी दूकान समेटने लगा। उसको भयभीत देखकर सिपाही बना हुआ मित्र बोला—'अरे! तू डर मत, मैं तो वही तेरा मित्र हूँ।' ऐसे ही अर्जुनके सामने भगवान् विश्वरूपसे प्रकट हो गये तो अर्जुन डर गये। तब भगवान्ने अपना असली परिचय देकर अर्जुनको सान्त्वना दी।

यहाँ एक शंका होती है कि वर्तमानमें धर्मका ह्रास हो रहा है और अधर्म बढ़ रहा है तथा श्रेष्ठ पुरुष दुःख पा रहे हैं, फिर भी भगवान् अवतार क्यों नहीं ले रहे हैं? इसका समाधान यह है कि अभी भगवान्के अवतारका समय नहीं आया है। कारण कि शास्त्रोंमें कलियुगमें जैसा बर्ताव होना लिखा है, उससे भी ज्यादा बर्ताव गिर जाता है, तब भगवान् अवतार लेते हैं। अभी ऐसा नहीं हुआ है। त्रेतायुगमें तो राक्षसोंने ऋषि-मुनियोंको खा-खाकर हड्डियोंका ढेर कर दिया था, तब भगवान्ने अवतार लिया था। अभी कलियुगको देखते हुए वैसा अन्याय-अत्याचार नहीं हो रहा है। धर्मका थोड़ा ह्रास होनेपर भगवान् कारकपुरुषोंको भेजकर उसको ठीक कर देते हैं अथवा जगह-जगह संत-महात्मा प्रकट होकर अपने आचरणों एवं वचनोंके द्वारा मनुष्योंको सन्मार्गपर लाते हैं।

एक दृष्टिसे भगवान्का अवतार नित्य है। इस संसाररूपसे भगवान्का ही अवतार है। साधकोंके लिये साध्य और साधनरूपसे भगवान्का अवतार है। भक्तोंके लिये भक्तिरूपसे, ज्ञानयोगियोंके लिये ज्ञेयरूपसे और कर्मयोगियोंके लिये कर्तव्यरूपसे भगवान्का अवतार है। भूखोंके लिये अन्नरूपसे, प्यासोंके लिये जलरूपसे, नंगोंके लिये वस्त्ररूपसे और रोगियोंके लिये ओषधिरूपसे भगवान्का अवतार है। भोगियोंके लिये भोगरूपसे और लोभियोंके लिये रुपये, वस्तु आदिके रूपसे भगवान्का अवतार है। गरमीमें छायारूपसे और सर्दीमें गरम कपड़ोंके रूपसे भगवान्का अवतार है। तात्पर्य है कि जड़-चेतन, स्थावर-जङ्गम आदिके रूपसे भगवान्का ही अवतार है; क्योंकि वास्तवमें भगवान्के सिवाय दूसरी कोई चीज है ही नहीं—**'वासुदेवः सर्वम्'** (७।१९); **'सदसच्चाहम्'** (९।१९)। परंतु जो संसाररूपसे प्रकट हुए प्रभुको भोग्य मान लेता है, अपनेको उसका मालिक मान लेता है, उसका पतन हो जाता है, वह जन्मता-मरता रहता है।

जो लोग यह मानते हैं कि भगवान् निराकार ही रहते हैं, साकार होते ही नहीं, उनकी यह धारणा बिलकुल गलत है; क्योंकि मात्र प्राणी अव्यक्त (निराकार) और व्यक्त (साकार) होते रहते हैं। तात्पर्य है कि सम्पूर्ण प्राणी पहले अव्यक्त थे, बीचमें व्यक्त हो जाते हैं और फिर वे अव्यक्त हो जाते हैं (२।२८)। पृथ्वीके भी दो रूप हैं—निराकार और साकार। पृथ्वी तन्मात्रारूपसे निराकार और स्थूलरूपसे साकार रहती है। जल भी परमाणुरूपसे निराकार और भाप, बादल, ओले आदिके रूपसे साकार रहता है। वायु निःस्पन्दरूपसे निराकार और स्पन्दनरूपसे साकार रहती है। अग्नि दियासलाई, काष्ठ, पत्थर आदिमें निराकाररूपसे रहती है और घर्षण आदि साधनोंसे साकार हो जाती है। इस तरह मात्र सृष्टि निराकार-साकार होती रहती है। सृष्टि प्रलय-महाप्रलयके समय निराकार और सर्ग-महासर्गके समय साकार रहती है। जब प्राणी भी निराकार-साकार हो सकते हैं; पृथ्वी, जल आदि महाभूत भी निराकार-साकार हो सकते हैं, सृष्टि भी निराकार-साकार हो सकती है, तो क्या भगवान् निराकार-साकार नहीं हो सकते? उनके निराकार-साकार होनेमें क्या बाधा है? इसलिये गीतामें भगवान्ने कहा है कि यह सब संसार मेरे अव्यक्त स्वरूपसे व्याप्त है—**'मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना'** (९।४)। यहाँ भगवान्ने अपनेको **'मया'** पदसे व्यक्त (साकार) और **'अव्यक्तमूर्तिना'** पदसे अव्यक्त (निराकार) बताया है। सातवें अध्यायके चौबीसवें श्लोकमें भगवान्ने बताया है कि जो मेरेको अव्यक्त (निराकार) ही मानते हैं, व्यक्त (साकार) नहीं, वे बुद्धिहीन हैं; और जो मेरेको व्यक्त (साकार) ही मानते हैं, अव्यक्त (निराकार) नहीं, वे भी

द्धिहीन हैं; क्योंकि वे दोनों ही मेरे परमभावको नहीं नते।

प्रश्न—अवतारी भगवान्‌का शरीर कैसा होता है?

उत्तर—हमलोगोंका जन्म कर्मजन्य होता है, पर गवान्‌का जन्म (अवतार) कर्मजन्य नहीं होता। अतः से हमलोगोंके शरीर माता-पिताके रज-वीर्यसे पैदा होते , वैसे भगवान्‌का शरीर पैदा नहीं होता। वे जन्मकी लीला । हमारी तरह ही करते हैं, पर वास्तवमें वे उत्पन्न नहीं ते, प्रत्युत प्रकट होते हैं—'**सम्भवाम्यात्ममायया**' (४।६)। मारी आयु तो कर्मोंके अनुसार सीमित होती है, पर गवान्‌की आयु सीमित नहीं होती। वे अपने इच्छानुसार जेतने दिन प्रकट रहना चाहें, उतने दिन रह सकते हैं। हम तोगोंको तो अज्ञताके कारण कर्मफलके रूपमें आयी हुई अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियोंका भोग करना पड़ता है, पर भगवान्‌को अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियोंका भोग नहीं करना पड़ता, वे सुखी-दुःखी नहीं होते।

हमलोगोंका शरीर पाञ्चभौतिक होता है, पर भगवान्‌का अवतारी शरीर पाञ्चभौतिक नहीं होता, प्रत्युत सच्चिदानन्दमय होता है—'**सच्चित्सुखैकवपुषः पुरुषोत्तमस्य**'; '**चिदानंदमय देह तुम्हारी**' (मानस २।१२७।३) 'सत्'से भगवान्‌का अवतारी शरीर बनता है, 'चित्' से उनके शरीरमें प्रकाश होता है और 'आनन्द' से उनके शरीरमें आकर्षण होता है। वह शरीर भगवान्‌को माननेवाले, न माननेवाले आदि सभीको स्वतः प्रिय लगता है। अतः भगवान्‌का शरीर हमलोगोंके शरीरकी तरह हड्डी, मांस, रुधिर आदिका नहीं होता। परंतु अवतारकी लीलाके समय वे अपने चिन्मय शरीरको पाञ्चभौतिक शरीरकी तरह दिखा देते हैं। भक्तोंके भावोंके अनुसार भगवान्‌को भूख भी लगती है, प्यास भी लगती है, नींद भी आती है, सर्दी-गरमी भी लगती है और भय भी लगता है!

भी नित्य नहीं हैं, मरनेवाले हैं। जो आजान देवता हैं, वे महाप्रलयके समय भगवान्‌में लीन हो जाते हैं; और जो पुण्यकर्मोंके फलस्वरूप स्वर्गादि लोकोंमें जाकर देवता बनते हैं, वे पुण्यकर्मके क्षीण होनेपर पुनः मृत्युलोकमें आकर जन्म लेते हैं और मरते हैं। [भगवान्‌को पाप-पुण्य नहीं लगते। उनको किसीका शाप भी नहीं लगता, पर शापकी मर्यादा रखनेके लिये वे शापको स्वीकार कर लेते हैं।]

प्रश्न—योगीकी और भगवान्‌की सर्वज्ञतामें क्या अन्तर है? क्योंकि योगी भी सबकुछ जान लेता है और भगवान् भी।

उत्तर—जो साधन करके शक्ति प्राप्त करते हैं, उनकी सामर्थ्य, सर्वज्ञता सीमित होती है। वे किसी दूरके विषयको, किसीके मनकी बातको जानना चाहें तो जान सकते हैं, पर उसको जाननेके लिये उनको अपनी मनोवृत्ति लगानी पड़ती है। भगवान्‌की सामर्थ्य, सर्वज्ञता असीम है। भगवान्‌को किसी भूत-वर्तमान-भविष्यके विषयको जाननेके लिये अपनी मनोवृत्ति नहीं लगानी पड़ती, प्रत्युत वे उसको स्वतः स्वाभाविक रूपसे जानते हैं। उनकी सर्वज्ञता स्वतः स्वाभाविक है।

प्रश्न—योगी भी चाहे जितने दिनतक अपने शरीरको रख सकता है और भगवान् भी; अतः दोनोंमें अन्तर क्या हुआ?

उत्तर—योगी प्राणायामके द्वारा अपने शरीरको बहुत दिनोंतक रख सकता है, पर ऐसा करनेमें प्राणायामकी पराधीनता रहती है। भगवान्‌को मनुष्यरूपसे प्रकट रहनेके लिये किसीके भी पराधीन नहीं होना पड़ता। वे सदा-सर्वदा स्वाधीन रहते हैं। तात्पर्य है कि योगीकी शक्ति साधनजन्य होती है; अतः वह सीमित होती है और भगवान्‌की शक्ति स्वतःसिद्ध होती है; अतः वह असीम

कारण कि वह भगवान्‌की तरह स्वतन्त्रतापूर्वक सृष्टि-रचना आदि कार्य नहीं कर सकता। विशेष तपोबलसे वह विश्वामित्रकी तरह कुछ हदतक सृष्टि-रचना भी कर सकता है, पर उसकी वह शक्ति सीमित ही होती है और उसमें तपोबलकी पराधीनता रहती है।

भगवत्ता दो तरहकी होती है—साधन-साध्य और स्वत:सिद्ध। योग आदि साधनोंसे जो भगवत्ता (अलौकिक ऐश्वर्य आदि) आती है, वह सीमित होती है, असीम नहीं; क्योंकि वह पहले नहीं थी, प्रत्युत साधन करनेसे बादमें आयी है। परंतु भगवान्‌की भगवत्ता असीम, अनन्त होती है; क्योंकि वह किसी कारणसे भगवान्‌में नहीं आती, प्रत्युत स्वत:सिद्ध होती है।

प्रश्न—वेदव्यासजी आदि कारकपुरुषोंको भी भगवान् कहते हैं और अवतारी ईश्वरको भी भगवान् कहते हैं; अत: दोनोंमें क्या अन्तर है?

उत्तर—वेदव्यासजी आदि कारकपुरुष भगवान्‌के कलावतार, अंशावतार कहलाते हैं। वे भगवान्‌की इच्छासे ही यहाँ अवतार लेते हैं। अवतार लेकर वे धर्मकी स्थापना और साधु पुरुषोंकी रक्षा तो करते हैं, पर दुष्टोंका वि नहीं करते। कारण कि दुष्टोंके विनाशका काम भगवा ही है, कारकपुरुषोंका नहीं।

आजकल अपनेमें कुछ विशेषता देखकर त अपनेको भगवान् सिद्ध करने लगते हैं और नामके स 'भगवान्' शब्द लगाने लगते हैं—यह कोरा पाखण्ड ही अपनेको भगवान् कहकर वे अपनेको पुजवाना चाहते अपना स्वार्थ सिद्ध करनेके लिये लोगोंको ठगना चाहते मनुष्योंको ऐसे नकली भगवानोंके चक्करमें पड़कर अप पतन नहीं करना चाहिये, प्रत्युत ऐसे भगवानोंसे सदा ही रहना चाहिये।

किसी सम्प्रदायको माननेवाले मनुष्य अपनी श्रद्धा भक्तिसे सम्प्रदायके मूलपुरुष (आचार्य)-को भी अवता भगवान् कह देते हैं; पर वास्तवमें वे भगवान् नहीं होते वे आचार्य मनुष्योंको भगवान्‌की तरफ लगाते हैं, उन्मार्ग बचाकर सन्मार्गमें लगाते हैं, इसलिये वे उस सम्प्रदायके लिये भगवान्‌से भी अधिक पूजनीय हो सकते हैं,* प भगवान् नहीं हो सकते।

~~~ ० ~~~

दशावतार-स्तवन

(श्रीभारतेन्दुजी हरिश्चन्द्र)

जयति वेणुधर चक्रधर शंखधर, पद्मधर गदाधर श्रृंगधर वेत्रधारी।
मुकुटधर-क्रीटधर पीतपट-कटिनधर, कंठ-कौस्तुभ-धरन दुःखहारी॥
मत्सको रूप धरि वेद प्रगटित करन, कच्छको रूप जल मथनकारी।
दलन हिरनाच्छ बाराहको रूप धरि, दंतके अग्र धर पृथ्वि भारी॥
रूप नरसिंह धर भक्त रच्छाकरन, हिरनकस्यप-उदर नख बिदारी।
रूप बावन धरन छलन बलिराजको, परसुधर रूप छत्री सँहारी॥
रामको रूप धर नास रावन करन, धनुषधर तीरधर जित सुरारी।
मुसलधर हलधरन नीलपट सुभगधर, उलटि करषन करन जमुन-बारी॥
बुद्धको रूपधर बेद निंदा करन, रूप धर कल्कि कलजुग-सँघारी।
जयति दस रूपधर कृष्ण कमलानाथ, अतिहि अज्ञात लीला बिहारी॥
गोपधर गोपिधर जयति गिरराजधर, राधिका बाहु पर बाहु धारी।
भक्तधर संतधर सोइ 'हरिचंद' धर बल्लभाधीस द्विज वेपकारी॥

~~~ ० ~~~

* मोरें मन प्रभु अस बिस्वासा। राम ते अधिक राम कर दासा॥
राम सिंधु घन सज्जन धीरा। चंदन तरु हरि संत समीरा॥ (रा०च०मा० ७। १२०। ८-९)

धर्मसंस्थापनके लिये अवतार

(अनन्तश्रीविभूषित दक्षिणाम्नायस्थ शृङ्गेरी-शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य स्वामी श्रीभारतीतीर्थजी महाराज)

यह सर्वविदित है कि समस्त प्राणी सुखापेक्षी हैं। केवल मानव ही सुखके लिये प्रयत्नशील है, सो बात नहीं। देवता, दानव आदि भी निज सुखके लिये सदा ही प्रयास करते आ रहे हैं। दु:खकी निवृत्तिके बिना सुखकी उपलब्धि नहीं। सुखसे शान्ति है। सुख और शान्तिका गठबन्धन है। शान्तिकी कामना वैदिक परम्पराकी विशेषता है।

सृष्टिकर्ता परमेश्वरने जगत्की सुचारु स्थितिके लिये धर्मकी व्यवस्था की है। उस धर्मका ज्ञान वेदोंसे ही मिलता है। वेद परमेश्वरके नि:श्वासरूप हैं। कहा गया है—'**नि:श्वसितमस्य वेदा:**'। अतएव भगवत्पाद शङ्कराचार्यजीने कहा है कि सदा वेदका अभ्यास करना चाहिये और उसमें कहे गये कर्मोंका अनुष्ठान करना चाहिये—'**वेदो नित्यमधीयतां तदुदितं कर्म स्वनुष्ठीयताम्**।'

जीवनमें कर्मकी प्रधानता है। कर्मके बिना जीवन कैसे? कौन-सा कर्म आचरणयोग्य है और कौन-सा कर्म त्याज्य है—इसका ज्ञान हमें होना चाहिये। इन सबका आधार श्रुति और स्मृति हैं। पुराणोंमें भी इनका विवरण प्राप्त होता है। विहित कर्मोंके आचरणसे जहाँ पुण्यकी प्राप्तिकी बात कही गयी है, वहाँ निषिद्ध कर्मोंके आचरणसे दुरितकी प्राप्ति भी बतायी गयी है। निषिद्ध कर्मोंका फल जन्मान्तरमें भी भोगना पड़ता है। वह नारकीय यातनाका कारण बनता है। युगारम्भमें लोगोंकी प्रवृत्ति विहित कर्माचरणकी ओर थी अर्थात् धर्मपर उनका मन स्थिर था, परंतु कालान्तरमें कर्मानुष्ठान करनेवालोंके मनमें जब शैथिल्य आया और कर्माचरणमें न्यूनता, लोप आदिका प्रवेश हो गया, धर्म अस्थिर हो गया, तब धर्मकी स्थिरताके लिये दैवी शक्तिकी आवश्यकता थी। उस समय भगवान्का अवतार हुआ। भगवत्पाद शङ्कराचार्यजीने गीताभाष्यकी अवतरणिकामें इसको स्पष्ट किया है—

'**दीर्घेण कालेन अनुष्ठातॄणां कामोद्भवाद् हीयमानविवेक-विज्ञानहेतुकेन अधर्मेण अभिभूयमाने धर्मे प्रवर्धमाने च अधर्मे जगत: स्थितिं परिपिपालयिषु: स आदिकर्ता नारायणाख्यो विष्णु: भौमस्य ब्रह्मणो ब्राह्मणत्वस्य रक्षणार्थं देवक्यां वसुदेवाद् अंशेन कृष्ण: किल संबभूव**।'

हे भारत! जब-जब धर्मकी ग्लानि होती है, तब-तब भगवान्का अवतार होता है। यह अवतारका मुख्य कारण बताया गया है। स्वयं भगवान् कहते हैं—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

यह सृष्टि भगवान्की लीला है तो अवतार भी लीला है और भगवान् लीलापुरुषोत्तम हैं। राम, कृष्ण, शिव, हनुमान्, दुर्गा आदिके रूपमें भगवान्ने नाना प्रकारकी लीलाएँ की हैं। देवीपुराणमें बताया गया है कि भगवतीने ही कृष्णके रूपमें अवतार लेकर अनेक लीलाएँ कीं।

शक्तिके पारम्यकी स्वीकृति कोई नयी बात नहीं है। बिना शक्तिके शिव भी कुछ नहीं कर सकते, उनमें स्पन्दन भी नहीं हो सकता। अतएव त्रिमूर्ति शक्तिकी आराधना कर अपने कार्यमें सफल होते हैं। इतना ही क्यों? हरि-हर अपने-अपने नाना अवतारोंमें भी शक्तिकी उपासना कर कृतकृत्य हुए। इसलिये 'सौन्दर्यलहरी' (१)-में कहा गया है—

शिव: शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्त: प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशल: स्पन्दितुमपि।
अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरिञ्चादिभिरपि
प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृतपुण्य: प्रभवति॥

और बड़ी विशेषता यह है कि हरिने मोहिनी नामक अवतारमें हरको भी मोहित किया, उनका मन संक्षोभित किया। वस्तुत: यह शक्तिका ही कौतुक है। 'सौन्दर्यलहरी' (५)-में कहा गया है—

'हरिस्त्वामाराध्य प्रणतजनसौभाग्यजननीं
पुरा नारी भूत्वा पुररिपुमपि क्षोभमनयत्।'

शक्ति बहुरूपा है। त्रिगुणात्मिका शक्तिकी उपासना अनेक रूपोंमें होती है। दुष्टोंके संहारके लिये उसने ऐसे

रूपोंको धारण किया। भ्रमरके रूपमें दुष्ट राक्षसका संहार करनेवाली वही शक्ति है। उसीने भण्ड, महिषासुर, शुम्भ-निशुम्भादि राक्षसोंका संहार किया, देवताओंकी मनोकामना पूर्ण की। देवासुर-संग्राममें विजयी देवता जब समझने लगे कि स्वीय बलसे वे विजयी हुए और गर्व करने लगे तो सर्वव्यापिनी शक्तिने उनके गर्वका हरण कर उनका कल्याण किया—ऐसी शक्तिको नमस्कार है—

चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद् व्याप्य स्थिता जगत्।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥

समाजमें जब आसुरी वृत्ति बढ़ जाती है, लोगोंको नाना प्रकारके कष्ट-संकट झेलने पड़ते हैं और तपस्वी मुनियोंको भी दु:ख भोगना पड़ता है तब भगवान् रामके रूपमें, कृष्णके रूपमें अवतार ग्रहण कर दुष्ट शक्तिका नाश कर शिष्ट या सज्जन लोगोंकी रक्षा करते हैं—ऐसी हमारी परम्परागत धारणा है। रामायणके रचयिता महर्षि वाल्मीकिने और श्रीमद्भागवतके प्रणेता महर्षि व्यासने भगवान्‌के अवतारोंका जो वर्णन किया है, वह मात्र कथाके प्रवाहको लेकर चलनेवाला नहीं है। जैसे राजानक कुन्तकने कहा है—समर्थ कविकी वाणी केवल कथापर ही आश्रित न होकर उसे अत्यन्त सरस बनानेकी ओर अग्रसर रहती है—

निरन्तररसोद्‌गारगर्भसन्दर्भनिर्भराः।
गिरः कवीनां जीवन्ति न कथामात्रमाश्रितम्॥

महर्षि वाल्मीकिने और महर्षि व्यासने भगवान्‌के अवतारोंकी कथाओंको सरस बनानेके साथ धर्मविषयक प्रसंगोंकी अवतारणा कर अपने ग्रन्थोंको चिरस्थायी काव्य बना दिया है।

संसारमें भले लोगोंकी भलाईकी प्रशंसा होती है और दुष्ट लोगोंकी दुष्टता गर्हित मानी जाती है। गर्हित जीवन लोक स्वीकार नहीं करता। यह सर्वविदित है कि रावण, दुर्योधन-जैसे व्यक्तियोंको आदर्श मानकर कोई भी अपने बच्चोंका नामकरण उन नामोंसे नहीं करता। हमें सद्‌ग्रन्थोंसे यह शिक्षा मिलती है कि जो समाजके हितचिन्तक हैं, जो समाजसे स्वीकृत हैं, ऐसे व्यक्तियोंका आदर्श हमें मान्य है—'**रामवद्वर्तितव्यं न तु रावणवत्**' राम-जैसा व्यक्ति हमारा आदर्श होना चाहिये, रावणादिके समान नहीं। महर्षि वाल्मीकिने 'रामायण' की रचनाके पहले देवर्षि नारदसे प्रश्न किया—

को न्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः॥

संसारमें सम्प्रति ऐसा कौन व्यक्ति है जो समस्त सद्‌गुणोंसे युक्त हो, पराक्रमशाली हो, धर्मके मर्मको जानकर तदनुसार व्यवहार करनेवाला हो, कृतज्ञ हो, सत्यका पालन करनेवाला हो और दृढ़तासे अपने संकल्पको पूर्ण करनेवाला हो।

एक साथ ये सभी विशेषताएँ एक व्यक्तिमें हों, यह प्रायः सम्भव नहीं है। इसलिये नारदजीने सोचकर बताया कि इक्ष्वाकुकुलमें 'राम' नामके एक ऐसे पुरुष हैं जो इन सकल गुणगणोंसे अलंकृत और लोगोंसे प्रशंसित हैं—

'इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः।'

रामकी कथा, रामका आदर्श स्थायी महत्त्वका है, युग-युगान्तरतक उनकी कीर्ति व्याप्त है।

जो व्यक्ति न्यायका पथगामी है, उसकी सहायता तिर्यक् जन्तु भी करते हैं। इसके विपरीत जो व्यक्ति अन्यायके मार्गका अनुगामी होता है, उसका परित्याग उसके सहोदर भी कर देते हैं—

यान्ति न्यायप्रवृत्तस्य तिर्यञ्चोऽपि सहायताम्।
अपन्थानन्तु गच्छन्तं सोदरोऽपि विमुञ्चति॥

न्याय और धर्मके अनुसार चलनेवालेकी सहायता मनुष्य ही नहीं पशु-पक्षी भी करते हैं। रामकी सहायताके लिये वानर अग्रसर हुए। सीताहरणके समय जटायुने रावणके साथ युद्ध किया, अपनी प्राण-हानिकी भी परवाह नहीं की। अधर्मके मार्गपर चलनेवाले रावणने धर्मकी बात समझानेवाले अपने भाई विभीषणको लात मारी, जिसके कारण विभीषण रावणका सांगत्य छोड़कर रामकी शरणमें आ गया, इससे रावणकी ही हानि हुई। इससे यह स्पष्ट है कि अधर्मका मार्ग निन्द्य है और उसका परिणाम सदा ही दु:खद होता है।

वाल्मीकिने रामको धर्मस्वरूप कहा है—'**रामो विग्रहवान् धर्मः।**' धर्मका दूसरा नाम ही राम है। कृष्ण भी धर्मके ही विलक्षण रूपमें चित्रित हैं। कृष्णके चरित्रको बड़ी सावधानीसे समझना चाहिये। वह मधुरातिमधुर है। मृतजीमें शौनकादि ऋषि-मुनि कहते हैं—'हम श्रीकृष्णकी कथा सुनते अघाते

नहीं हैं; क्योंकि रसज्ञोंको उस कथामें पग-पगपर रसास्वादनका आनन्द मिलता है'—

वयं तु न वितृप्याम उत्तमश्लोकविक्रमे।
यच्छृण्वतां रसज्ञानां स्वादु स्वादु पदे पदे॥

बालपनमें ही श्रीकृष्णने पूतना, शकटासुर आदि कई असुरोंका संहार कर लोगोंको आश्चर्यमें डाल दिया। एक बात ध्यान देनेयोग्य है कि श्रीकृष्णका चरित अनुकरणीय नहीं, उनका उपदेश सदा ही अनुकरणीय और पालनीय है। रामचरितसे कृष्णचरित भिन्न है। अतएव कहा गया है—**'रामवद्वर्तितव्यं न तु कृष्णवत्'** रामके समान हमें व्यवहार करना चाहिये कृष्णके समान नहीं। यही आदर्श है।

भगवान्‌के अवतारके प्रायः दो प्रकार हैं। एक वह है जो दुष्टोंके संहारके लिये होता है और दूसरा वह है जो लोगोंको सन्मार्गपर लानेके लिये होता है। दोनोंके मूलमें धर्मसंस्थापन ही है। मनुष्यकी रक्षाके लिये भगवान्‌ने जो अवतार ग्रहण किया, वह दूसरे रूपका उदाहरण है। राम, कृष्ण, परशुराम, नृसिंह-जैसे अवतारोंमें भगवान्‌ने अनेक दुष्टोंका संहार कर धर्मकी स्थापना की। दत्तात्रेयके अवतारमें गुरुके रूपमें उन्होंने अनुग्रह किया। उसी प्रकार भगवत्पाद शङ्कराचार्यके रूपमें अवतार ग्रहण कर उन्होंने लोगोंको आत्मोद्धारका मार्ग दिखाया। गुरुके रूपमें अवतार सचमुच विलक्षण है। सार्वकालिक, सार्वजनिक तत्त्वोंका उपदेश देकर समस्त मानवजातिके उद्धारके लिये उन्होंने जो उपदेश दिया, वह सार्वकालिक सत्य है। अज्ञानके कारण जब लोग गर्तमें गिर गये, भवरूप दावाग्निमें तप्त हो गये, तब वटमूल-स्थित परमेश्वरने शङ्कराचार्यके रूपमें अवतार ग्रहण कर सबका उद्धार किया—

अज्ञानान्तर्गहनपतितानात्मविद्योपदेशैः
त्रातुं लोकान्भवदवशिखातापपापच्यमानान्।
मुक्त्वा मौनं वटविटपिनो मूलतो निष्पतन्ती
शम्भोर्मूर्तिश्चरति भुवने शङ्कराचार्यरूपा॥

अवतारोंके दोनों रूप मनोहारी और कल्याणकारी हैं। जिनकी चित्तवृत्ति जिसमें रमती है, उसके अनुसार वे आदर्श और उपदेश ग्रहण कर जीवनको सार्थक बना सकते हैं और परम शान्ति प्राप्त कर सकते हैं।

॥ शुभम्॥

'सोइ जनमे दस बार'

ऐसी हरि करत दासपर प्रीति।
निज प्रभुता बिसारि जनके बस, होत सदा यह रीति॥
जिन बाँधे सुर-असुर, नाग-नर, प्रबल करमकी डोरी।
सोइ अबिछिन्न ब्रह्म जसुमति हठि बाँध्यो सकत न छोरी॥
जाकी मायाबस बिरंचि सिव, नाचत पार न पायो।
करतल ताल बजाय ग्वाल-जुवतिन्ह सोइ नाच नचायो॥
बिस्वंभर, श्रीपति, त्रिभुवनपति, बेद-बिदित यह लीख।
बलिसों कछु न चली प्रभुता बरु है द्विज माँगी भीख॥
जाको नाम लिये छूटत भव-जनम-मरन दुख-भार।
अंबरीष-हित लागि कृपानिधि सोइ जनमे दस बार॥
जोग-बिराग, ध्यान-जप-तप-करि, जेहि खोजत मुनि ग्यानी।
बानर-भालु चपल पसु पामर, नाथ तहाँ रति मानी॥
लोकपाल, जम, काल, पवन, रबि, ससि सब आग्याकारी।
तुलसिदास प्रभु उग्रसेनके द्वार बेंत कर धारी॥

(विनय-पत्रिका पद ९८)

योगिराज भगवान् श्रीकृष्ण

(अनन्तश्रीविभूषित श्रीद्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य स्वामी श्रीस्वरूपानन्दसरस्वतीजी महाराज)

'योग' शब्द 'युज्' धातुसे 'घञ्' प्रत्यय करनेपर निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ होता है—किसीका किसीके साथ ऐसा अनन्य जुड़ाव, जिससे पुन: पार्थक्यकी सम्भावना प्राय: नहीं रह जाती। पातञ्जलयोगसूत्र (१।१।१)-के अनुसार योगकी परिभाषा है—'**योगश्चित्तवृत्तिनिरोध:**' और इस संदर्भमें भगवद्गीताकार व्यासजी कहते हैं—'**योग: कर्मसु कौशलम्॥**' (गीता २।५०) अतएव योगी उसे कहते हैं, जो आध्यात्मिक साधनाके कारण भगवान्‌के साथ इस प्रकार जुड़ जाता है अथवा साधनामें ऐसा रम जाता है कि संसार या सांसारिक सम्बन्ध उसके लिये मात्र औपचारिक रह जाते हैं। अपनी अर्थवत्ताकी इस व्यापक भावभूमिके कारण योग अपने विविध आयामोंके साथ अलग-अलग प्रकारका देखा जाता है, जैसे—हठयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग एवं कर्मयोग आदि।

वस्तुतस्तु सूक्ष्मेक्षिकया मीमांसा करनेपर योगके पृथक्-पृथक् दृष्टिगोचर होनेवाले स्वरूप कर्मयोगके ही भेदोपभेद हैं; क्योंकि हठयोगका हठ, ज्ञानयोगका ज्ञान अथवा भक्तियोगकी भक्ति सभी कर्मसापेक्ष हैं और सभी सामान्यतया परस्पर अन्योन्याश्रित भी हैं। मात्र पात्र, परिस्थिति एवं रुचिके प्राधान्यवश इनके अलग-अलग नाम हैं; किंतु इतने बहुभेदसम्पन्न विषयकी समग्रसिद्धि किसी एक सामान्य व्यक्तिके लिये सम्भव नहीं और यदि सम्भव है, तो उसे व्यक्ति नहीं, पूर्णपुरुष लीलापुरुषोत्तम आनन्दकन्द सच्चिदानन्दघन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं—'**कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।**' भगवान्‌की हर लीला, उनका हर कर्म योग है; कारण यह कि तत्कृत सभी कर्म अनन्यभावसे भावित हैं। आपने अपने जन्म अर्थात् कंसके कारागारसे लेकर प्रभासके महाप्रयाणपर्यन्त जो कुछ भी किया, सब लोकहितहेतु किया। यही कारण है कि सभी योगी योगीमात्र हैं, किंतु भगवान् कृष्ण योगिराज हैं, योगियोंके योगी हैं।

अवतरणके समय पहरेदारोंका निद्रामग्न हो जाना, कारागारद्वारका खुलना, प्रभुके पदरजका स्पर्शलाभ करके यमुनाकी उत्ताल तरङ्गोंका शान्त होना, पूतना नाम्नी राक्षसीका वध, शकटासुर-तृणावर्त आदिका संहार, माखनलीला, गोचारण-गोपालन, कालीदहकी नागनथैया, गोवर्धन-धारण, रासलीला, गोपीप्रेम, गोपी-चीरहरण, कुवलयापीड-मुष्टिक-चाणूर एवं कंसका संहार, कुब्जापर कृपा, उद्धवका ज्ञानाभिमानमर्दन, कालयवन एवं जरासन्धके साथ युद्ध, रुक्मिणीहरण, युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें ब्राह्मण-सेवा-आतिथ्य, शिशुपालवध, दन्तवक्त्र आदिका उद्धार, भारतीय अस्मिताकी प्रतिनिधिभूता नारी द्रौपदीकी मर्यादा-रक्षाप्रभृति सत्कर्म तथा महाभारतयुद्धके पूर्व शान्ति-स्थापनके अगणित प्रयास उनके कर्मयोगित्वके ही प्रमाण तो हैं।

कर्मयोगी वनवारीने महाभारतके महासमरमें, जहाँ दोनों सेनाएँ आमने-सामने युद्धके लिये खड़ी थीं—श्रीमद्भगवद्गीताका सदुपदेशकर इस धराधामको सदा-सदाके लिये धन्य कर दिया। उन्होंने न्यायकी रक्षाको श्रेष्ठ माना। अत: उन योगिराजने कभी भी कोई पक्षपात नहीं किया; एतदर्थ अपने मामा कंस, भाई शिशुपाल, पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण, अङ्गराज कर्ण और यहाँतक कि द्रोणपुत्र अश्वत्थामाके वधरूप उसके सिरकी मणिका हरण करानेमें भी कोई संकोच नहीं किया। रणक्षेत्रके अन्तर्गत उनकी जिस शंखध्वनिने उस समय क्रूर, अन्यायी एवं असदाचारीजनोंके दिल दहला दिये, उसीने भुविभारभूत राक्षसोंसे धराके मुक्त हो जानेपर समग्र त्रैलोक्यके सदाचारियोंको दिलासा दी, शान्ति दी। महाभारत-युद्धकी जरूरतका अनुभवकर उसमें आपने जाने किस-किसकी प्रतिज्ञा पूर्ण की। एक ओर यदि पार्थने जयद्रथ-वध करके अपनी प्रतिज्ञा पूरी की—श्रीकृष्णद्वारा कथित राष्ट्रकवि मैथिलीशरणगुप्तके शब्दोंमें—

'हे पार्थ प्रण पूरा करो, देखो अभी दिन शेष है।'

(जयद्रथवध)

—तो दूसरी ओर पाञ्चालीकी चीरराशि गगन चूमने लगी और चीरसे ढँक गया वह दु:शासन तथा चूर-चूर हो गयी दुर्योधनकी वह अभिमानशिला, जिसके सहारे दुष्ट दु:शासन भरी सभामें भारतीयताको नग्न कर देना चाहता था, मर्यादाहीन कर देना चाहता था।

योगिराजकी ही वह महिमा है, जिसके कारण

द्रौपदीका स्वाभिमान अन्याय और अहङ्कारके जघनशोणितसे अपनी वेणीका शृङ्गार कर सका। भारतीय योगी और यहाँका योग मात्र शारीरिक स्वास्थ्य-रक्षाके उपकरण नहीं हैं, प्रत्युत वे सारे राष्ट्रके साथ-साथ समूचे विश्व, समग्र मानवता और यहाँ तक कि जडचेतनात्मक निखिल ब्रह्माण्डके सुस्वास्थ्य अर्थात् सर्वत्र शान्ति, सुख, संतोष, सत्य, औदार्य, प्रेम एवं सौहार्दकी स्थापना करते हैं। उनका लक्ष्य समूची सृष्टिमें सद्गुणोंका आधानकर मनसा-वाचा-कर्मणा सर्वतोभावेन सभीको संतुष्ट तथा सुखी रखना था। कहना न होगा कि असंख्यासंख्य योगियोंके योगिराज हैं—यशोदानन्दवर्धन अखिल ब्रह्माण्डनायक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र। वे ऐसे चमत्कारी हैं कि उनके पदरजका संस्पर्श पाकर रामावतारमें कभी शिला अहल्या बन जाती है, तो कभी मूक वाचाल, बधिर श्रवणसुखयुक्त और पंगु पर्वतारोही हो जाता है—

मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम्॥

सूरदासके शब्दोंमें—

चरन-कमल बंदौं हरि-राइ।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधे कौं सब कछु दरसाइ।
बहिरौ सुनै, गूँग पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराइ।
सूरदास स्वामी करुनामय, बार बार बंदौं तिहिं पाइ॥

(सूर-विनय-पत्रिका, पद १)

केशवका पूरा जीवन योगके लिये था अथवा योगके सिद्धान्त उन्हींके जीवनगत भावी आदर्शात्मक यथार्थको ध्यानमें रखकर बने थे, यह कह पाना, जान पाना दोनों कठिन है; क्योंकि *'कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन बिबेक।'* पूर्णत: वही जान सकता है, जो पावे।

परमार्थतस्तु भगवान् श्रीकृष्ण और योग दोनोंको अलग-अलग करके देखना अत्यौपचारिक है। लोकाभिराम नन्दके दुलारे एक ओर यदि करुणानिधि हैं तो दूसरी ओर रणरङ्गधीर भी हैं। योग अपने सभी भेदोपभेदोंके साथ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें समाहित, सन्निविष्ट है; क्योंकि सारे योग, वैराग्य आदि इन्हींसे तो समुद्भूत हैं और इन्हींमें विलीन भी हो जाते हैं—

'यस्माज्जातं जगच्छर्व तस्मिन्नेव प्रलीयते।'

इस योगरूप हरिको जो जान लेता है, वह तदनुरूप, तदाकार तथा तन्मय हो जाता है—

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई॥

(रा०च०मा० २।१२७।३)

कर्मयोगके उस आमुष्मिक स्वरूपको वही जान पाता है, जिसपर योगी द्वारकेशकी कृपा होती है; क्योंकि उस पथके ज्ञाता, गन्ता, प्रयोक्ता तथा दाता—सब वे ही हैं। इसलिये गीता (९।२२)-में वे कहते हैं—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

महाभारतके महारणका अतुलनीय सव्यसाची एक-एक बार अपने एक-एक हाथसे योगेश्वरकी कृपाके कारण पाँच-पाँच सौ बाणोंकी वर्षाकर वैरीदलके असंख्य शवोंका अम्बार लगा देता है; क्योंकि वह **'सर्वधर्मान् परित्यज्य''''** के न्यायका अनुपालन करता है, तभी तो सुदर्शन चक्र कभी-कभी मेघाच्छन्न अस्तोपम भास्करकी रश्मियोंको अभिव्यक्ति प्रदानकर जयद्रथका संहार कराता है, किंतु ऐसे धनुर्धरका गाण्डीव भी उस समय हतप्रभ हो गया, जब अर्जुनके वीरत्वाभिमानके मर्दनार्थ द्वारकाधीशने द्वारकासे गोपियोंको मथुरातक सकुशल पहुँचानेका दायित्व उन्हें सौंप दिया। द्वारकासे तेरह कि०मी० दूर पहुँचते-पहुँचते युद्धकलामें नितान्त अप्रशिक्षित जंगली आदिवासियोंद्वारा जब वे घेर लिये गये, तो उनका गाण्डीव उस समय बिना विद्युत्-धाराका जड़ तार बन गया। नि:सहाय पार्थ कुछ न कर सके और गोपियोंको उस तालाबमें प्रवेशकर प्राणोत्सर्ग करना पड़ा, आज जिसको 'गोपीतालाव' कहते हैं। इसी प्रकार भगवत्कृपाके बिना गाण्डीवधारी अर्जुन पहले भी ऐसी ही स्थितिको प्राप्त हो गये थे, जिसमें युद्धके भयसे उनका शरीर काँपता था। (गीता १।२९-३०)

ध्यातव्य है कि यहाँ योगनिष्ठ माधवकी उस द्वारकाका उल्लेख किया जा रहा है, जिसे उन्होंने 'रणछोड़' बन पश्चिमी सागरके तटपर विश्वकर्माको निर्देश देकर न केवल निर्मित कराया था, बल्कि मथुरावासियोंको लाकर वहाँ बसाया भी था। राजधर्मके निर्वाहके साथ-साथ योगीशने जब अपनी ही वंशपरम्पराके अवाञ्छित कर्मोंसे धराको बोझिल होते हुए देखा, तो प्रभासके अन्तर्गत उनमें परस्पर गृहयुद्ध कराकर

संसारमें शान्ति की स्थापना करायी और स्वयं व्याधके हाथों चित्स्वरूपमें विलीन होकर उसके जन्मान्तरीय बदलेके ऋणसे मुक्त हुए।

वस्तुतः 'युक्त' एवं 'युञ्जान'—उभयविध यौगिक व्यक्तित्वके धनी, भवभयहारी, विपिनविहारी कृष्णमुरारीका सारा योगजीवन समष्टिके संरक्षणार्थ समर्पित था। उदाहरणार्थ—आपका बालयोग गोवंशका रक्षक है, भारतीय कृषि-व्यवस्थाका संवाहक है और है प्रत्येक भारतीयके जीवनका सफल पोषक। वह निर्भीकता, न्यायशीलता, परिश्रम, प्रेम, मैत्री, तप, राष्ट्रभक्ति एवं योजनाशीलताकी अगाध निष्ठाका प्रेरक है। वह इन्द्रके अहंकारको मिटाकर एकब्रह्मोपासनाके सिद्धान्तका संस्थापक, व्रजनाम्नी जन्मभूमिका रक्षक, यमुनाजीका प्रदूषणापहारक तथा दुग्ध-दधि एवं मक्खनका विक्रयविरोधी योगी है। यहाँतक कि राधावल्लभको राष्ट्रमें दृष्टिहीन, ज्ञानशून्य तथा अविवेकी सम्राट्, शिशुहन्ता नागरिक, गुर्वाज्ञाके अतिक्रान्ता प्रशासक एवं नारीकी अवमानना करनेवाला युवराज बिलकुल स्वीकार नहीं है, चाहे वह अपना सम्बन्धी धृतराष्ट्र, आचार्यपुत्र अश्वत्थामा तथा राजपुत्र दुर्योधन या दु:शासन ही क्यों न हो। जिस साम्राज्यके महारथी निरस्त्र बालकपर समवेतरूपसे आक्रमण करते हों, युद्धनीतिका उल्लंघन करते हों, ऐसी व्यवस्थाका बने रहना उनकी दृष्टिमें समूलतः विनाशसे ज्यादा खतरनाक है; क्योंकि—

सर्वे यत्र विनेतारः सर्वे पण्डितमानिनः।
सर्वे च मानमिच्छन्ति तद्राष्ट्रमवसीदति॥

लोकहितहेतु उन योगेश्वरको यदि मत्स्य, कच्छप, नृसिंह एवं वराह भी बनना पड़ता है, तो भी उन्हें सह्य है। सचमुच यही उन योगीका योगित्व है। जीवनमें कभी किसी भी तरह यदि किसीने उन्हें स्मरण किया, तो वे अनासक्त होकर भी उसे कभी भूले नहीं। तभी तो सूरदासके शब्दोंमें उद्धवसे वे कहते हैं—

'ऊधो मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं।' (सूरसागर)

बचपनमें गुरु सान्दीपनिका आश्रम छोड़कर आनेके बीसों वर्ष बाद जब वे द्वारकामें विप्र सुदामासे मिलते हैं तो—

'पानी परात को हाथ छुवो नहिं, नैनन के जल सों पग धोए।'

(नरोत्तमदास)

-की स्थिति आ जाती है और छात्र-जीवनकी सारी स्मृतियाँ परत-दर-परत स्मृतिपटलपर आने लगती हैं।

इस प्रकार वर्तमान पद्धतिजन्य भारतीय इतिहासके मंचपर अशरण-शरण योगेश्वरका कोई वर्णन प्राप्त न होनेके बावजूद श्रीमद्भागवत एवं महाभारतके द्वारा देशके जनमानसमें इनका स्वरूप इतना गहरा हो चला है कि द्वारका, मथुरा ही नहीं; बल्कि समस्त दुनियामें इनकी बहु-आयामी मूर्तियाँ तथा विविध मन्दिर इनके योगका संदेश **'अहर्निशं सेवामहे'** के न्यायसे दे रहे हैं। इनका नाम हर भारतवासीका कण्ठहार है। प्रभुपादाचार्य, स्वामिनारायण, शाङ्करमत एवं पुष्टिमार्गप्रभृति विविध सम्प्रदायोंके आचार्यों, संतों, कथाकारों, महंतों, भक्तों, धर्मोपदेशकों एवं अनुयायियोंकी साधनाके परिणामस्वरूप रुक्मिणीवल्लभ योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका भजन-पूजन तथा कर्म-सिद्धान्तानुपालन आज संसारके अगणित देशोंमें हो रहा है और आगे होता भी रहेगा; क्योंकि सिद्धि वहीं होती है, जहाँ योगेश्वर भावशरीरसे उपस्थित रहते हैं—**'यत्र योगेश्वरो कृष्णः''''।'** (गीता १८।७८)

दशावतार-वन्दना

वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद् बिभ्रते दैत्यान् दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते म्लेच्छान् मूर्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः॥

श्रीकृष्ण! आपने मत्स्यरूप धारणकर प्रलयसमुद्रमें डूबे हुए वेदोंका उद्धार किया, समुद्र-मन्थनके समय महाकूर्म बनकर पृथ्वीमण्डलको पीठपर धारण किया, महावराहके रूपमें कारणार्णवमें डूबी हुई पृथ्वीका उद्धार किया, नृसिंहके रूपमें हिरण्यकशिपु आदि दैत्योंका विदारण किया, वामनरूपमें राजा वलिको छला, परशुरामके रूपमें क्षत्रियजातिका संहार किया, श्रीरामके रूपमें महाबली रावणपर विजय प्राप्त की, श्रीवलरामके रूपमें हलको शस्त्ररूपमें धारण किया, भगवान् बुद्धके रूपमें करुणाका विस्तार किया था तथा कल्किके रूपमें म्लेच्छोंको मूर्च्छित करेंगे। इस प्रकार दशावतारके रूपमें प्रकट आपकी मैं वन्दना करता हूँ। (भक्तकवि श्रीजयदेवजी)

अवतारहेतु तथा अवतारकलाविमर्श

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु शङ्कराचार्य पुरीपीठाधीश्वर स्वामी श्रीनिश्चलानन्दसरस्वतीजी महाराज)

१-अवतारहेतु—प्रणवगत अ, उ और म् की तथा प्रकृतिगत सत्त्व, रजस् और तमस्की एकरूपता है। वाचक प्रतिपाद्यरूप वाच्यका और गुण-निर्गुणका उपव्याख्यान होता है। उपव्याख्यानको उपाधि या अभिव्यञ्जक कहते हैं। श्रीहरिके विविध अवतारोंमें अनुगतहेतु शब्द है। श्रीहरि निज इच्छासे अवतार लें या नारदादिके शापके कारण अवतार लें या कश्यपादिको दिये गये वरदानके निमित्तसे अवतार लें, अवतारमें अनुगतहेतु शब्द ही होता है। यही कारण है कि सीता, गरुड़, ब्रह्मादि शब्दब्रह्मात्मक हैं—**'प्रणवगरुडमारुह्य महाविष्णोः'** (त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषद् ५।१)। शब्द और शब्दार्थका पर्यवसान ज्ञान है। शब्दज्ञानके तुल्य घटज्ञानके अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है। शब्द और अर्थ ज्ञानके प्रकारान्तर अभिव्यञ्जनमात्र हैं। आकाश वायु, तेज, जलादिसे संलग्न परिलक्षित होता है तथापि आकाश इनसे अलिप्त है। पद्मपत्र स्वाश्रित जलसे अलिप्त ही रहता है। तद्वत् शब्द अर्थमें संलग्न परिलक्षित होता है, परंतु अर्थ शब्दसे अलिप्त ही सिद्ध होता है। स्वप्रकाश शब्द ज्ञानात्मक है। ज्ञान ब्रह्मात्मतत्त्व है। अस्वप्रकाश शब्द अर्थाभिव्यञ्जक होता हुआ अर्थरूप है। मृद्घट—घटशब्दात्मक होता हुआ मृत्तिकामात्र है। मृत्तिका—पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाशक्रमसे अव्यक्तसंज्ञक शब्दरूप और ब्रह्मात्मस्वरूप है—**'वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्'''त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम्'** (छान्दोग्योपनिषद् ६।१।४, ६।४।२), **'सदेव सत्यम्'** (पैङ्गी उपनिषद्)। अतएव अव्यक्तसंज्ञक सीता, रुक्मिणी आदि लक्ष्मीरूपा मूलप्रकृति प्रणवात्मिका हैं। श्रीराम, कृष्ण अर्धतन्मात्रात्मक तुरीयकल्प हैं। बलरामसंज्ञक संकर्षण तथा लक्ष्मण प्रणवगत अकाराक्षरसम्भूत वैश्वानररूप हैं। प्रद्युम्न तथा शत्रुघ्न प्रणवगत उकाराक्षरसमुद्भूत हिरण्यगर्भात्मक हैं। अनिरुद्ध तथा भरत ओङ्कारगत मकारसमुद्भूत प्रबुद्ध प्राज्ञकल्प हैं।

एकमेवाद्वयं ब्रह्म मायया च चतुष्टयम्।
रोहिणीतनयो विश्व अकाराक्षरसम्भवः॥
तैजसात्मकः प्रद्युम्न उकाराक्षरसम्भवः।
प्राज्ञात्मकोऽनिरुद्धोऽसौ मकाराक्षरसम्भवः॥
अर्धमात्रात्मकः कृष्णो यस्मिन् विश्वं प्रतिष्ठितम्।
कृष्णात्मिका जगत्कर्त्री मूलप्रकृती रुक्मिणी॥

(गोपालोत्तरतापिन्युपनिषद् १०—१२),

अकाराक्षरसम्भूतः सौमित्रिर्विश्वभावनः।
उकाराक्षरसम्भूतः शत्रुघ्नस्तैजसात्मकः॥
प्राज्ञात्मकस्तु भरतो मकाराक्षरसम्भवः।
अर्धमात्रात्मको रामो ब्रह्मानन्दैकविग्रहः॥
श्रीरामसांनिध्यवशाज्जगदाधारकारिणी ।
उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणी सर्वदेहिनाम्॥
सा सीता भवति ज्ञेया मूलप्रकृतिसंज्ञिता।
प्रणवत्वात्प्रकृतिरिति वदन्ति ब्रह्मवादिनः॥

(रामोत्तरतापिन्युपनिषद् १।२।१—४)

यही कारण है कि शब्दब्रह्ममें निष्णात परब्रह्मको प्राप्त होता है—

द्वे ब्रह्मणी हि मन्तव्ये (द्वे विद्ये वेदितव्ये तु) शब्दब्रह्म परं च यत्। शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति।

(त्रिपुरातापिन्युपनिषद् ५।१७, ब्रह्मबिन्दूपनिषद् १७)

ध्यान रहे, रामावतारमें शेषावतार लक्ष्मणजी यद्यपि शत्रुघ्नजीसे बड़े थे तथापि दोनों युग्म होनेके कारण गर्भमें प्रथम प्रविष्टका लोकमें पश्चात् जन्मकी दृष्टिसे उन्हें दर्शन-परिप्रेक्ष्यमें अनुज मानकर ओङ्कारगत अकारसमुद्भूत विश्व या वैश्वानर माना गया है। कृष्णावतारमें शेषावतार श्रीबलराम अग्रज थे। देवकीजीके गर्भमें भी उनका प्रथम प्रवेश ही था। योगमायाके द्वारा उनका कर्षणकर रोहिणीके गर्भमें प्रवेश किया गया, अतः उनका नाम संकर्षण हुआ। वे प्रद्युम्नजी तथा प्रद्युम्नपुत्र अनिरुद्धजीसे तो श्रेष्ठ थे ही तथापि शेषावतार होनेके कारण उन्हें महाभारतादिमें अर्धतन्मात्रात्मक तुरीयकल्प, शेषी श्रीकृष्णको तथा शेषात्मक बलदेवजीको प्राज्ञकल्प, प्रद्युम्नजीको हिरण्यगर्भात्मक तैजसकल्प और अनिरुद्धजीको वैश्वानरात्मक विश्वकल्प दर्शाया गया है। प्रकृत संदर्भमें और महाभारतादिमें रामावतार तथा कृष्णावतारमें एकरूपता दर्शानेके लिये शेषावतार श्रीलक्ष्मण तथा बलरामजीको ओङ्कारगत अकारात्मक विश्वरूप कहा गया है। प्रकरणका तात्पर्य प्रणवकी अ, उ, म् और अमात्रसंज्ञक अर्धतन्मात्रा तथा पुरुषके पादस्वरूप वैश्वानर, तैजस, प्राज्ञेश्वर और तुरीयब्रह्ममें एकरूपता, परब्रह्माश्रित

शब्दब्रह्मकी जगत्कारण प्रकृतिरूपता और ब्रह्माधिष्ठित शब्दब्रह्मात्मक प्रणवकी विवर्तोपादानकारणता एवं चतुर्व्यूहकी लोकोत्तर उत्कृष्टताके ख्यापनमें है।

२-अवतारकला—भगवान्‌के कलावतार भी मन्त्राक्षररूप ही होते हैं। उदाहरणार्थ—'**ॐ नमो नारायणाय स्वाहा**' दशाक्षर *नारायणमन्त्रान्तर्गत* क्रमशः प्रणवादि दशाक्षरके मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, श्रीराम, श्रीकृष्ण, बुद्ध, कल्कि अथवा मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, श्रीराम, बलराम, कृष्ण और कल्कि अथवा हंस, कूर्म, मत्स्य, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, राम सात्त्वत (कृष्ण-बलराम) और कल्कि—दशावतार हैं।

नारायणादवतारा मन्त्ररूपा जायन्ते। ॐ नमो नारायणाय स्वाहा। एवं दशाक्षरो मन्त्रो भवति। तत्र प्रथमो मत्स्यावतारः। द्वितीयः कूर्मः। तृतीयो वराहः। चतुर्थो नरसिंहः। पञ्चमो वामनः। षष्ठो जामदग्निः। सप्तमो रामचन्द्रः। अष्टमः कृष्णः परमात्मा। नवमो बुद्धावतारः। दशमः कल्किर्जनार्दनः।

(नारायणपूर्वतापिनीयोपनिषद् ५)

शृणु नारद तत्त्वेन प्रादुर्भावान् महामुने।
मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नरसिंहश्च वामनः॥
रामो रामश्च रामश्च कृष्णः कल्की च ते दश।

(महा०, शान्ति० ३३९। ७६ के बाद दाक्षि०)

हंसः कूर्मश्च मत्स्यश्च प्रादुर्भावा द्विजोत्तम॥
वराहो नरसिंहश्च वामनो राम एव च।
रामो दाशरथिश्चैव सात्वतः कल्किरेव च॥

(महा०, शान्ति० ३३९। १०३-१०४)

जरा (ज्येष्ठा), पालिनिका, शान्ति, ईश्वरी, रति, कामिका, वरदा, ह्लादिनी, प्रीति और दीर्घा—ये श्रीहरिके दशकलात्मक अवतार हैं। 'टं'से 'नं'पर्यन्त—मन्त्रमाता मात्रिकासे सम्बद्ध ये कला हैं—

'जरा पालिनिका शान्तिरीश्वरी रतिकामिका।
वरदा ह्लादिनी प्रीतिर्दीर्घा दशकला हरेः॥'

उक्त रीतिसे प्रकृतिरूपा प्रणवात्मिका भगवान्‌की कला होती है। उदाहरणार्थ—'**ॐ नमो नारायणाय**' यह अष्टाक्षरमन्त्र है। केवल ओङ्कार भी अकार, उकार, मकार, नाद, बिन्दु, कला, अनुसन्धान और ध्यान—अष्टविध होता है। अकार सद्योजातस्वरूप होता है। उकार वामदेवस्वरूप होता है। मकार अघोरस्वरूप होता है। नाद तत्पुरुषस्वरूप होता है। बिन्दु ईशानस्वरूप होता है। कला व्यापकस्वरूप होता है। अनुसन्धान नित्यस्वरूप होता है। ध्यान ब्रह्मस्वरूप होता है। अष्टाक्षर पृथिवी, जल, तेज, वायु, व्योम, चन्द्रमा, सूर्य और पुरुषरूप यजमानसंज्ञक सर्वव्यापक अष्टाक्षर अष्टमूर्ति है—

ॐ नमो नारायणाय इत्यष्टाक्षरो मन्त्रः। अकारोकार-मकार—नादबिन्दुकलानुसन्धानध्यानाष्टविधा अष्टाक्षरं भवति। अकारः सद्योजातो भवति। उकारो वामदेवः। अघोरो मकारो भवति। तत्पुरुषो नादः। बिन्दुरीशानः। कला व्यापको भवति। अनुसन्धानो नित्यः। ध्यानस्वरूपं ब्रह्म। सर्वव्यापकोऽष्टाक्षरः॥

भूमिरापस्तथा तेजो वायुर्व्योम च चन्द्रमाः।
सूर्यः पुमांस्तथा चेति मूर्तयश्चाष्ट कीर्तिताः॥

(नारायणपूर्वोत्तरतापिनीयोपनिषद्)

गर्गसंहिताके अनुसार श्रीहरिके अंशांश, अंश, आवेश, कला, पूर्ण और परिपूर्णतम—ये छः प्रकारके अवतार माने गये हैं। महर्षि मरीचि आदि अंशांशावतार माने गये हैं। ब्रह्मादिदेवशिरोमणि अंशावतार माने गये हैं। श्रीकपिल, कूर्मादि कलावतार माने गये हैं। श्रीपरशुराम आदि आवेशावतार माने गये हैं। श्रीनृसिंह, राम, श्वेतद्वीपाधिपति हरि, वैकुण्ठ, यज्ञ, नरनारायण पूर्णावतार माने गये हैं। श्रीकृष्णचन्द्र परिपूर्णतम पुरुषोत्तमोत्तमावतार माने गये हैं—

अंशांशोंऽशस्तथावेशः कला पूर्णः प्रकथ्यते।
व्यासाद्यैश्च स्मृतः षष्ठः परिपूर्णतमः स्वयम्॥

(श्रीगर्गसंहिता १। १६)

ब्रह्म निर्गुण, निष्कल, निष्क्रिय, निर्विकल्प, निरञ्जन, निरवद्य, शान्त और सूक्ष्म है—

'निर्गुणं निष्क्रियं सूक्ष्मं निर्विकल्पं निरञ्जनम्॥'

(अध्यात्मोपनिषद् ६२)

'**निष्कलं निष्क्रियꣳ शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम्।**'

(*श्वेताश्वतरोपनिषद्* ६। १९)

तथापि त्रिगुणमयी मायाके योगसे उसे सकल भी कहा जाता है। ब्रह्मके अभिव्यञ्जक और अभिव्यक्त स्वरूपका नाम कला है। प्रश्नोपनिषद् (६। १—४)-के अनुसार पुरुष (ब्रह्मात्मतत्त्व) षोडशकलासम्पन्न है—'**षोडशकलं भारद्वाज पुरुषं वेत्थ। ""स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धां खं वायु-र्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियं मनोऽन्नमन्नाद्वीर्यं तपो मन्त्राः कर्म लोका लोकेषु च नाम च॥**'

प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी, इन्द्रिय,

मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म, लोक तथा नाम—ये षोडश कलाएँ हैं। प्राणरूप अव्याकृत, महदात्मिका श्रद्धा, सूक्ष्म तथा स्थूलभेदसे दश भूत, दश इन्द्रिय और अहम् सहित मन—ये सांख्यशैलीमें अचित् पदार्थके चौबीस प्रभेद हैं। मन्त्र तथा कर्मका अन्तर्भाव महत् (बुद्धि), अहम् तथा मनमें है। नामका अन्तर्भाव वाक् नामक कर्मेन्द्रियमें है। लोक, तप, वीर्य और अन्नका अन्तर्भाव पञ्चभूतात्मक शरीरमें है। इस प्रकार षोडश कलाका अर्थ प्रकृति तथा प्राकृत पदार्थ हैं, जो कि आत्माधिष्ठित होनेसे आत्मस्वरूप ही हैं। अभिप्राय यह है कि जो कुछ आत्माधिष्ठित है, वह कलापदवाच्य है।

इस संदर्भमें चन्द्रवंशसमुत्पन्न चन्द्रतुल्य श्रीकृष्णकी षोडशकलासम्पन्नता और सूर्यवंशसमुत्पन्न सूर्यतुल्य श्रीरामकी द्वादशकलासम्पन्नताका रहस्य भी समझना चाहिये। चन्द्रकी अमृता, मानदा, पूषा, तुष्टि, पुष्टि, रति, धृति, शशिनी, चन्द्रिका, कान्ति, ज्योत्स्ना, श्री, प्रीति, अङ्गदा, पूर्णा और पूर्णामृता—षोडश कलाएँ क्रमशः अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः—संज्ञक स्वरवर्णघटित हैं। सोमरसात्मक और प्रकाशात्मक होनेसे सत्त्वगुणात्मक हैं, अतएव ये कलाएँ सत्त्वपरिपाकरूपा हैं। अन्न, प्राण, मन, विज्ञान, आनन्द (स्थूल, सूक्ष्म, कारणरूप त्रिविध शरीर), अतिशायिनी (देहेन्द्रियादिगत लोकोत्तर चमत्कृति), विपरिणामिनी, संक्रामिणी (परकाया-प्रवेशादि), प्रभ्वी (कायव्यूहरचनादि), कुण्ठिनी (गरल, रिपु, सिन्धु, अग्नि, इन्द्रादिके प्रभावका स्तम्भन), विकासिनी (महिमादि सिद्धि), मर्यादिनी (निर्धूम अग्निको धूमयुक्त, अरजस्वलाको रजस्वला, इन्द्रको अजगर आदि करनेकी वाक्-सिद्धि), संह्लादिनी (स्थावर-जङ्गममें लोकोत्तर उत्कर्षकी क्षमता), आह्लादिनी (निर्विकार आनन्दोत्कर्ष), परिपूर्णा (शुद्ध सत्त्वोत्कर्ष) और स्वरूपावस्थिति (मुक्ति)-संज्ञक षोडश कलाएँ भी सत्त्वपरिपाकरूपा हैं। इसी प्रकार जैमिन्युपनिषद्के अनुसार भद्र (भजनीयता), समाप्ति (गुणोंकी पराकाष्ठा), आभूति (प्रपञ्चोत्पादन), सम्भूति (संरक्षा), भूत (संहार), सर्व (पूर्णता, उपादानता), रूप (इन्द्रियजन्य अनुभूतिका आधार, अलिप्त), अपरिमित (देश, काल, वस्तुसे अपरिच्छिन्न), श्री (आकर्षणकेन्द्र), यश (प्रशंसा), नाम (प्रतिष्ठा), अग्र (उद्‌बुद्ध), सजात (शक्तिसंस्थान), पय (जीवनाधार), महीय (महिमान्वित), रस (आनन्दोल्लास)-संज्ञक षोडश कलाएँ सत्त्वपरिपाकरूपा हैं।

'षोडशकलं वै ब्रह्म' (जैमिन्युपनिषद् ३।२८।८)

'स हैवं षोडशधा आत्मानं विकृत्य सार्धं समैत्।'

(जैमिन्युपनिषद् १।४८।७)

'स षोडशधा आत्मानं व्यकुरुत। भद्रं च, समाप्तिश्च, आभूतिश्च, सम्भूतिश्च, भूतञ्च, सर्वञ्च, रूपञ्च, अपरिमितश्च, श्रीश्च, यशश्च, नाम च, अग्रञ्च, सजातश्च, पयश्च महीया च, रसश्च' (जैमिन्युपनिषद् १।४६।२)।

तन्त्रोंमें सूर्यदेवकी कं भं तपिनी, खं बं तापिनी, गं फं धूम्रा, घं पं मरीची, ङं नं ज्वालिनी, चं धं रुचि, छं दं सुषुम्णा, जं थं भोगदा, झं तं विश्वा, ञं णं बोधिनी, टं ढं धारिणी और ठं डं वर्णबीजघटित कलाएँ सत्त्वात्मक तेजकी विलासभूता हैं। 'क' से 'ठ' और 'भ' से 'ड' अर्थात् 'क' से 'भ' पर्यन्त चौबीस वर्णोंका संनिवेश प्रकारान्तरसे सूर्यकी चौबीस कलाओंको द्योतित करते हैं।

'क' से 'ञ' पर्यन्त सृष्टि, ऋद्धि, स्मृति, मेधा, कान्ति, लक्ष्मी, द्युति, स्थिरा, स्थिति और सिद्धि—सत्त्वोत्कर्षसूचक दश ब्रह्मकला (ब्रह्माजीकी कला) हैं। शूरता, ईर्ष्या, इच्छा, उग्रता, चिन्ता, मत्सरता, निन्दा, तृष्णा, माया और शठता—रजोगुणके उत्कर्षसूचक दश ब्रह्मकला हैं। 'प' से 'श' पर्यन्त तीक्ष्णा, रौद्री, भया, निद्रा, तन्द्रा, क्षुधा, क्रोधिनी, क्रिया, उद्गारी और मृत्यु—तमोगुणकी प्रगल्भतासे दश रुद्रकला हैं। 'अ' से 'अः' पर्यन्त प्रकाशशीलता, प्रीति, क्षमा, धृति, अहिंसा, समता, सत्यशीलता, अनसूया, लज्जा, तितिक्षा, दया, तुष्टि, साधुवृत्तिता, शुचिता, दक्षता और अपरिक्षतधर्मता—उद्रिक्त सत्त्वके योगसे अभिव्यक्त षोडश सदाशिवकलाएँ हैं। सदाशिवकलामें ही गणपति तथा शक्तिकी कलाएँ संनिहित हैं। निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति, इन्धिका, दीपिका, रेचिका, मोचिका, परा, सूक्ष्मा, सूक्ष्मामृता, ज्ञाना, ज्ञानामृता, आप्यायिनी, व्यापिनी और व्योमरूपा सदाशिवकी षोडशकलाएँ प्रसिद्ध हैं।

विवक्षावशात् इस संदर्भमें पौर्वापर्यप्रसंख्यानरूप परस्परानुप्रवेशन्याय (कारणका कार्यमें या कार्यका कारणमें अन्तर्भावरूप अनुप्रवेश नियम)-का आलम्बन अपेक्षित है।

परस्परानुप्रवेशात् तत्त्वानां पुरुषर्षभ।
पौर्वापर्यप्रसंख्यानं यथा वक्तुर्विवक्षितम्॥

(श्रीमद्भा० ११।२२।७)

पुरुषशिरोमणे! तत्त्वोंका एक-दूसरेमें अनुप्रवेश है। अतएव वक्ता तत्त्वोंकी जितनी संख्या बताना चाहता है,

उसके अनुसार कारणको कार्यमें अथवा कार्यको कारणमें सम्मिलित कर अपनी इच्छित संख्या सिद्ध कर लेता है।

उक्त रीतिसे कलासंख्याकी दृष्टिसे देवोंमें उत्कर्षापकर्ष असम्भव है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश क्रमशः रजस्, सत्त्व तथा तमस्के नियामक और प्रकाशक होनेसे क्रमशः सत्, चित्, आनन्दस्वरूप निर्गुण हैं। अतएव त्रिदेवमें विभेद तथा उत्कर्षापकर्ष भी औपचारिक है, वास्तविक नहीं।

सत्त्व, रजस्, तमस्, महत्, अहम्, पञ्चभूत, मन और इन्द्रियरूप द्वादश तत्त्वोंसे सूर्यदेवकी बारह कलाएँ सिद्ध होती हैं। सत्त्व, रजस्, तमस्की साम्यावस्था त्रिगुणमयी प्रकृति है। पञ्चभूत सूक्ष्म और स्थूलभेदसे दस सिद्ध होते हैं। इन्द्रियोंके दस प्रभेद हैं। इस प्रकार प्रकृति, महत्, अहम्, दस भूत, मन और दस इन्द्रिय—सांख्योक्त चौबीस तत्त्व सूर्यदेवकी बारह कलामें संनिहित हैं। अ, इ, उ, ऋ, लृ—पञ्च मूल स्वर हैं। अनुस्वार (ं) और विसर्ग (:)-सहित सप्त स्वर हैं। कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग—पाँच व्यञ्जन वर्ग हैं। इस प्रकार स्वर और व्यञ्जनरूप बारह वर्णात्मक मूल कलाएँ हैं। बारह वर्णोंमें विभक्त वर्णाम्नाय वस्तुतः अ आदि सात स्वर और 'क' से 'म' पर्यन्त पचीस व्यञ्जनरूप बत्तीस भागोंमें विभक्त है।

उक्त सौरदर्शनके अनुसार त्रिगुण, महत्, अहम्, पञ्च तन्मात्रा, पञ्च महाभूत, मन, चित्त, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय और पञ्च कर्मेन्द्रिय, पञ्च प्राणरूप बत्तीस प्रभेद अचित् पदार्थोंके सिद्ध होते हैं। इन्हींको बत्तीस कला भी कहते हैं। सर्ग तथा विसर्ग अथवा अनुलोम और विलोम क्रमसे ये चौंसठ कलाएँ हैं।

उक्त अचित् प्रभेदके साथ ॐगत अ, उ, म् तथा अर्धतन्मात्रात्मक वैश्वानर, हिरण्यगर्भ, सर्वेश्वर एवं तुरीयब्रह्मरूप चित्सूर्यप्रभेदकी गणना करनेपर सौरागमके अनुसार छत्तीस तत्त्व सिद्ध होते हैं।

शैवागममें प्रकृति, त्रिगुण (सत्त्व, रजस्, तमस्) महत् (बुद्धि), अहम्, पञ्च तन्मात्रा, पञ्च महाभूत, मन, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय और पञ्च कर्मेन्द्रिय, राग, नियति, काल, विद्या, कला, माया, शुद्ध विद्या, ईश्वर तथा पुरुष—छत्तीस तत्त्व सिद्ध होते हैं। कलाओंका समग्र वर्णाम्नायकी दृष्टिसे स्कन्दपुराणके अनुसार अध्ययन तथा अनुशीलन करनेपर ॐ, चौदह स्वर, तैंतीस व्यञ्जन, अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय संज्ञक बावन मातृका वर्ण सिद्ध होते हैं। ॐ (प्रणव), 'अ' से 'औ' पर्यन्त चौदह स्वरवर्ण हैं। 'क' से 'ह' पर्यन्त तैंतीस वर्ण व्यञ्जन हैं। (ं) अनुस्वार है। (:) विसर्ग है। क, खसे पूर्व आधे विसर्गके समान ध्वनिको जिह्वामूलीय कहते हैं। प, फसे पूर्व आधे विसर्गके समान ध्वनिको उपध्मानीय कहते हैं—

ॐकारः प्रथमस्तस्य चतुर्दश स्वरास्तथा।
वर्णाश्चैव त्रयस्त्रिंशदनुस्वारस्तथैव च॥
विसर्जनीयश्च परो जिह्वामूलीय एव च।
उपध्मानीय एवापि द्विपञ्चाशदमी स्मृताः॥

(स्कन्दपु०मा०कुमार० ३। २३५-२३६)

पुराणोक्त मातृकासार इस प्रकार है—ॐकारगत अकार ब्रह्मा, उकार विष्णु, मकार महेश, अर्धमात्रा (ँ) सदाशिव हैं—

अकारः कथितो ब्रह्मा उकारो विष्णुरुच्यते।
मकारश्च स्मृतो रुद्रस्त्रयश्चैते गुणाः स्मृताः॥
अर्धमात्रा च या मूर्ध्नि परमः स सदाशिवः।

(स्कन्दपु०मा०कुमार० ३। २५१-२५२)

अकारसे लेकर औकारतक चौदह स्वर मनुस्वरूप हैं। ककारसे लेकर हकारतक तैंतीस देवता हैं। ककारसे ठकारतक बारह आदित्य, डकारसे बकारतक ग्यारह रुद्र हैं। भकारसे षकारतक आठ वसु हैं। 'स' और 'ह' अश्विनीकुमार हैं। इस प्रकार 'क' से 'ह' तक तैंतीस वर्ण हैं। अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय और उपध्मानीय—ये चार अक्षर जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज नामक चार प्रकारके जीव बताये गये हैं—

औकारान्ता अकाराद्या मनवस्ते चतुर्दश।
. . . . . ॥
ककाराद्या हकारान्तास्त्रयस्त्रिंशच्च देवताः॥
ककाराद्याष्ठकारान्ता आदित्या द्वादश स्मृताः।
डकाराद्या बकारान्ता रुद्राश्चैकादशैव ते।
भकाराद्याः षकारान्ता अष्टौ हि वसवो मताः।
सहौ चेत्यश्विनौ ख्यातौ त्रयस्त्रिंशदिति स्मृताः॥
अनुस्वारो विसर्गश्च जिह्वामूलीय एव च।
उपध्मानीय इत्येते जरायुजास्तथाऽण्डजाः।
स्वेदजाश्चोद्भिज्जाश्चापि पितर्जीवाः प्रकीर्तिताः॥

(स्कन्दपु० कुमार० ३। २५४—२६२)

स्वायम्भुव, स्वारोचिष, औत्तम, रैवत, तामस, चाक्षुष, वैवस्वत, सावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, दक्षसावर्णि, धर्मसावर्णि, रौच्य और भौत्य—ये चौदह मनु हैं। धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, पर्जन्य, अंशु, भग, त्वष्टा और विष्णु—ये बारह आदित्य हैं। कपाली, पिङ्गल, भीम, विरूपाक्ष, विलोहित, अजक, शासन, शास्ता, शम्भु, चण्ड और भव—ये ग्यारह रुद्र हैं। ध्रुव, घोर, सोम, आप, नल, अनिल, प्रत्यूष और प्रभास—ये आठ वसु हैं। नासत्य तथा दस्र—दो अश्विनीकुमार हैं। ध्यान रहे, मन्त्रमाता मात्रिकाके प्रभेदका प्रशस्तक्रम तन्त्रोंमें अक्षमालिकोपनिषद्के अनुसार ओङ्कारघटित इस प्रकार है—आदिक्षान्तमूर्तिः 'ॐ अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः, क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, श, ष, स, ह, ळ, क्ष ' '(डकारस्य ळकारो बह्वृचाध्येतृसम्प्रदायप्राप्तः।' तथा च पठ्यते—

अज्मध्यस्थडकारस्य ळकारं बह्वृचा जगुः।
अज्मध्यस्थढकारस्य ळहकारं वै यथाक्रमम्॥)

लघुषोढान्यासादिके अनुसार ५२ मातृकाओंको शक्ति-सहित गणेश, शिव, सूर्य, विष्णुरूप माना गया है। इनके अर्थानुसन्धानपूर्वक जपसे धर्म, काम, मोक्षकी सिद्धि सुनिश्चित है।

य, र, ल, व, श, ष, स, ह, ळ और क्ष-से सम्बद्ध धूम्रा, ऊष्मा, ज्वलिनी, ज्वालिनी, विस्फुलिङ्गिनी, सुश्रिया, सुरूपा, कपिला, हव्यवाहिनी और कव्यवाहिनी—दस वह्निकलाएँ हैं।

षं पीता, सं श्वेता, हं अरुणा, क्षं असिता—चार ईश्वरकला हैं। **'ये स्वरास्ते धवलाः। ये स्पर्शास्ते पीताः। ये परास्ते रक्ताः।'** (अक्षमालिकोपनिषद्)

षकार पीत वर्णका है। सकार श्वेत वर्णका है। हकार अरुण वर्णका है। क्षकार असित (कृष्ण) वर्णका है। स्वर श्वेत वर्णके हैं। स्पर्श पीत वर्णके हैं। अतिरिक्त (पर) यरादि रक्त वर्णके हैं।

प्रकारान्तरसे यह भी समझना चाहिये कि मातृकाओंके परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी-संज्ञक चार प्रभेद ईशकला हैं। सर्वतत्त्वात्मिका, सर्वविद्यात्मिका, सर्व-शक्त्यात्मिका तथा सर्वदेवात्मिका—ये चार ईशकलाएँ हैं—

'नमस्ते परारूपे नमस्ते पश्यन्तीरूपे नमस्ते मध्यमारूपे नमस्ते वैखरीरूपे सर्वतत्त्वात्मिके सर्वविद्यात्मिके सर्वशक्त्यात्मिके सर्वदेवात्मिके।' (अक्षमालिकोपनिषद्)

कृतयुग तथा ब्राह्मणका वर्ण श्वेत होता है। त्रेता तथा क्षत्रियका वर्ण लाल होता है। द्वापर तथा वैश्यका वर्ण पीला होता है। कलि और शूद्रका वर्ण काला होता है। अतएव कृतयुगमें श्रीहरिके अवतारका वर्ण श्वेत होता है। त्रेतामें श्रीहरिके अवतारका वर्ण लाल होता है। द्वापरमें श्रीहरिके अवतारका वर्ण पीला होता है। कलियुगमें श्रीहरिके अवतारका वर्ण काला होता है—

ब्राह्मणानां सितो वर्णः क्षत्रियाणां तु लोहितः।
वैश्यानां पीतको वर्णः शूद्राणामसितस्तथा॥

(महा०, शान्ति० १८८।५)

'कृते शुक्लः' (श्रीमद्भा० ११।५।२१), **'त्रेतायां रक्तवर्णः'** (श्रीमद्भा० ११।५।२४), **'द्वापरे भगवाञ्छ्यामः पीतवासा निजायुधः।'** (श्रीमद्भा० ११।५।२७), **'कलावपि यथा शृणु॥' 'कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णम्'** (श्रीमद्भा० ११।५।३१, ३२)।

'पायात्स नो वामनः'

स्वस्ति स्वागतमर्थ्यहं वद विभो किं दीयतां मेदिनी का मात्रा मम विक्रमत्रयपदं दत्तं जलं दीयताम्।
मा देहीत्युशनाब्रवीद्धरिरयं पात्रं किमस्मात्परं चेत्येवं बलिनार्चितो मखमुखे पायात्स नो वामनः॥

'आपका कल्याण हो।' 'आपका स्वागत है।' 'मैं याचक हूँ।' 'प्रभो! बोलिये। क्या दिया जाय।' 'मुझे भूमि (दानमें) दीजिये।' 'कितनी मात्रामें?' 'मेरे पगसे तीन पग।' 'दे दी।' 'सङ्कल्पका जल दीजिये।' 'मत दो; ये याचक भिक्षुक नहीं, साक्षात् विष्णु हैं'—ऐसा शुक्राचार्यने कहा। (तो बलिने कहा—) 'इनसे बढ़कर दान देनेका उत्तम पात्र कौन हो सकता है?' इस प्रकार परिचर्याके बाद राजा बलिके यज्ञारम्भमें पूजित वे वामनभगवान् हम सबकी सदा रक्षा करें। (सुभाषितरत्नभाण्डागार)

अवतार-स्वरूप और प्रयोजन

(अनन्तश्रीविभूषित ऊर्ध्वाम्नाय श्रीकाशीसुमेरुपीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीचिन्मयानन्दसरस्वतीजी महाराज)

१-अवतारस्वरूप— सामान्य रीतिसे अवतारका अर्थ जन्म होता है। '**अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत। अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना॥**' (गीता २। २८), '**परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः। यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति॥ अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्। यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥**' (गीता ८। २०-२१)-के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध होता है कि व्यक्त शरीर और संसारका मूल अव्यक्त है और अव्यक्तका परमाश्रयरूप मूल सनातन अव्यक्त अर्थात् अव्यक्ताक्षर है। वही स्वप्रकाश भगवत्तत्त्व है। वेदान्तप्रस्थानके अनुसार वह जगत्कारण है। जगत्की उत्पत्ति, स्थिति, संहार, जीवोंपर निग्रह और अनुग्रह—उसके पाँच कृत्य हैं। पृथ्वीके तुल्य वह उत्पत्ति नामक कृत्यका निर्वाहक है। जलके तुल्य वह स्थिति नामक कृत्यका निर्वाहक है। तेजके तुल्य वह संहार नामक कृत्यका निर्वाहक है। वायुके तुल्य वह निग्रह नामक कृत्यका निर्वाहक है। आकाशके तुल्य वह अनुग्रह नामक कृत्यका निर्वाहक है। कृत्यभेदसे उसके नाम, रूप, लीला और धाममें भी भेद है। उत्पत्ति नामक कृत्यके योगसे उसकी हिरण्यगर्भात्मक ब्रह्मा या सूर्य संज्ञा है। स्थिति नामक कृत्यके योगसे उसकी विष्णु संज्ञा है। संहार नामक कृत्यके योगसे उसकी शिव संज्ञा है। निग्रह नामक कृत्यके योगसे उसकी शक्ति संज्ञा है। अनुग्रह नामक कृत्यके योगसे उसकी गणपति संज्ञा है। इन पाँच रूपोंमें और इनके विविध अवतारोंके रूपमें एक परमेश्वरकी ही आराधना और उपासना विहित है। अतएव एकदेववाद ही सनातन सिद्धान्त है। कृतयुगमें इस तथ्यका सर्वतोभावेन निर्वाह होता था, जैसा कि महाभारतके अनुशीलनसे सिद्ध है—

एकदेवसदायुक्ता एकमन्त्रविधिक्रियाः।
पृथग्धर्मास्त्वेकवेदा धर्ममेकमनुव्रताः॥

(महाभारत, वनपर्व १४९। २०)

सत्ययुगमें सब एक परमात्मदेवको ही भजनीय समझकर उनमें ही चित्त लगाये रहते थे, एकमात्र उन्हींके प्रणवप्रधान मन्त्रका जप करते थे तथा विधिसम्मत क्रियाका उन्हींके लिये सम्पादनकर उन्हींके प्रति क्रियाकलापको समर्पित करते थे। धर्म और ब्रह्मकी सिद्धिमें एकमात्र वेदको प्रमाण मानते हुए ही अपने-अपने वर्ण और आश्रमके अनुरूप विविध धर्मोंका अनुष्ठान करते थे। ऐसा होनेपर भी सब वेदसम्मत सनातन धर्मका ही अनुगमन करनेवाले थे।

उत्पत्ति नामक कृत्यके निर्वाहक हिरण्यगर्भात्मक सूर्यके उपासक 'सौर' कहे जाते हैं। स्थिति नामक कृत्यके निर्वाहक विष्णुके उपासक 'वैष्णव' कहे जाते हैं। संहार नामक कृत्यके निर्वाहक शिवके उपासक 'शैव' कहे जाते हैं। निग्रह नामक कृत्यके निर्वाहक शक्तिके उपासक 'शाक्त' कहे जाते हैं। अनुग्रह नामक कृत्यके निर्वाहक गणपतिके उपासक 'गाणपत्य' कहे जाते हैं।

भगवान् श्रीविष्णुके कलावतार कृष्णद्वैपायन वेदव्यास महाभागने उक्त पञ्चदेवोंके नाम, रूप, लीला, धाम, वाहन, आयुध, परिकर, स्वभाव, विविध अवतार तथा उपासना-प्रकारका पुराणों, उपपुराणों तथा महाभारतादिके माध्यमसे विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। उनके शिष्य, प्रशिष्यादिकी समृद्ध परम्परासे आगमसिद्धान्तरूप रस-रहस्यपूर्ण अद्भुत वैभव हमें सुलभ है।

अवतारसिद्धान्त अत्यन्त गम्भीर और गोपनीय होनेके कारण रहस्यमय है। अतएव अनभिज्ञताके कारण विश्वस्तरपर इसके नामपर भ्रम और विवाद भी पर्याप्त हैं। पञ्चदेवोंमें उत्कर्षापकर्ष और साम्यका रहस्य इस प्रकार है—

वेदान्तप्रस्थानमें ब्रह्मको जगत्का निमित्त ही नहीं अपितु उपादानकारण भी माना गया है। '**तदैक्षत**' (छान्दोग्योपनिषद् ६। २। ३), '**स ईक्षाञ्चक्रे**' (प्रश्नोपनिषद् ६। ३), '**सोऽकामयत्**' (तैत्तिरीयोपनिषद् २। ६। ४) आदि श्रुतियोंके अनुसार सद्रूप परमात्मा कार्यप्रपञ्चका निमित्तकारण है। '**बहु स्यां प्रजायेय**' (तैत्तिरीयोपनिषद् २। ६। ४), '**कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति**' (मुण्डकोपनिषद् १। १। ३),

'तदात्मानः स्वयमकुरुत।' (तैत्तिरीयोपनिषद् २।७।१), **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'** (छान्दोग्योपनिषद् ३।१४।१) आदि श्रुतियोंके अनुसार बहुभवनसामर्थ्यसम्पन्न सद्रूप ब्रह्म कार्यप्रपञ्चका उपादानकारण है। अतएव वेदान्तदर्शनके अनुसार जगत्का अभिन्न निमित्तोपादानकारण है—**'प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्॥'** (ब्रह्मसूत्र १।४।२३)

पृथिव्यादि कार्यप्रपञ्च अनित्य, अचित् और दुःखरूप अर्थात् असच्चिदानन्दस्वरूप है। अतएव इसका परमाश्रय सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म ही हो सकता है। अन्यथा अनवस्थान्तदोष अनिवार्य है। निमित्तकारण कार्यका निर्माता होता है। अतएव उसका ज्ञानवान्, इच्छावान् और प्रयत्नवान् होना अनिवार्य है। पृथिव्यादि कार्यप्रपञ्चका निमित्तकारण सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् ही हो सकता है। सर्वोपादानकी सर्वव्यापकता भी अनिवार्य है। इस प्रकार सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक, सच्चिदानन्द ब्रह्म जगत्का अभिन्ननिमित्तोपादानकारण है। सर्वव्यापक सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्मकी निमित्त तथा उपादानकारणता त्रिगुणमयी मायाके द्वारसे चरितार्थ है। कार्यकी सुख, दुःख, मोहकता तथा प्रकाश, प्रवृत्ति, अवष्टम्भकतासे त्रिगुणमयी मायाशक्तिका अनुमान होता है।

सर्वव्यापक सर्वातीत सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म कार्यकारणतातीत परब्रह्म कहा जाता है। मायाशक्तिसमन्वित सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक सर्वेश्वर कारणब्रह्म कहा जाता है। पाञ्चभौतिक कार्यप्रपञ्चके रूपमें परिलक्षित और कार्यवर्गके नियामक ईश्वरको कार्यब्रह्म कहा जाता है। आरोहक्रमसे पृथ्वीकी अपेक्षा जल, जलकी अपेक्षा तेज, तेजकी अपेक्षा वायु, वायुकी अपेक्षा आकाशका निर्विवाद उत्कर्ष है। सांख्य, योग और वेदान्तप्रस्थानमें पृथ्वीका कारण जल, जलका कारण तेज, तेजका कारण वायु तथा वायुका कारण आकाश है। उपादेयरूप कार्यकी अपेक्षा उपादानकारणका उत्कर्ष स्वाभाविक है। कारण यह है कि कार्यकी अपेक्षा उपादानकारण निर्विशेष, सूक्ष्म, शुद्ध, विभु, आश्रय और प्रत्यक् होता है। अतएव पृथ्वीप्रधान या पार्थिव शरीररूप अधिभूत, नासिकारूप अध्यात्म और पृथ्वीरूप अधिदैवके नियामककी अपेक्षा जलप्रधान या जलेज (वारुण) शरीररूप अधिभूत, रसनारूप अध्यात्म और वरुणरूप अधिदैवके नियामकका महत्त्व अधिक है। उसकी अपेक्षा तेजःप्रधान या तैजसशरीररूप अधिभूत, नेत्ररूप अध्यात्म और सूर्यरूप अधिदैवके नियामकका महत्त्व अधिक है। उसकी अपेक्षा वायुप्रधान या वायविक (वायवीय) शरीररूप अधिभूत, त्वक्-रूप अध्यात्म और वायुरूप अधिदैवके नियामकका महत्त्व अधिक है। उसकी अपेक्षा आकाशप्रधान या आकाशीय शरीररूप अधिभूत, श्रोत्ररूप अध्यात्म और दिक्-रूप अधिदैवके नियामकका महत्त्व अधिक है अथवा अवरोहक्रमसे प्रथम भूत आकाशके अधिदैव दिशा, द्वितीय भूत वायुके अधिदैव विद्युत्, तृतीय भूत तेजके अधिदैव सूर्य, चतुर्थ भूत जलके अधिभूत सोम और पञ्चम भूत पृथिवीके अधिदैव वायुको मानना चाहिये—

आकाशं प्रथमं भूतं श्रोत्रमध्यात्ममुच्यते॥
अधिभूतं तथा शब्दो दिशस्तत्राधिदैवतम्।
द्वितीयं मारुतो भूतं त्वगध्यात्मं च विश्रुता॥
स्प्रष्टव्यमधिभूतं च विद्युत् तत्राधिदैवतम्।
तृतीयं ज्योतिरित्याहुश्चक्षुरध्यात्ममुच्यते॥
अधिभूतं ततो रूपं सूर्यस्तत्राधिदैवतम्।
चतुर्थमापो विज्ञेयं जिह्वा चाध्यात्ममुच्यते॥
अधिभूतं रसश्चात्र सोमस्तत्राधिदैवतम्।
पृथिवी पञ्चमं भूतं घ्राणश्चाध्यात्ममुच्यते॥
अधिभूतं तथा गन्धो वायुस्तत्राधिदैवतम्।
एषु पञ्चसु भूतेषु त्रिषु यश्च विधिः स्मृतः॥

(आश्वमेधिकपर्व ४२।१८—२३)

ऐसी स्थितिमें आकाशका अधिपति मानकर अपने इष्टदेवकी प्रधान आराधना और अनुगामी मानकर शेष चार भूतोंके अधिपतियोंकी आराधना अपेक्षित है। यह तथ्य इन्द्रयागमें इन्द्रकी, वरुणयागमें वरुणकी, रुद्रयागमें रुद्रकी, विष्णुयागमें विष्णुकी अथवा इन्द्रदेवके विवाहमें इन्द्रदेवकी, वरुणदेवके विवाहमें वरुणदेवकी, रुद्रदेवके विवाहमें रुद्रदेवकी और विष्णुदेवके विवाहमें विष्णुदेवकी प्रधानताके तुल्य चरितार्थ है।

आदित्यं गणनाथं च देवीं रुद्रं च केशवम्।
पञ्चदैवतमित्युक्तं सर्वकर्मसु पूजयेत्॥

विवक्षावशात् ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, शिव अथवा सदाशिवको पञ्चदेव माना जाता है—

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरः शिव एव च।
पञ्चधा पञ्च देवत्यः प्रणवः परिपठ्यते॥

(अथर्वशिखोपनिषद्)

ध्यान रहे—रुद्र, ईश्वर और शिवरूप एक देवके त्रिरूप हैं। इनमें रुद्रको शिव, ईश्वरको शक्ति तथा शिवको गणेश समझना चाहिये। कारण यह है कि शक्ति और गणेश शिवपरिवारके सदस्य हैं। सूर्य शिवके नेत्र हैं तथा विष्णु शिवके आत्मस्वरूप ही हैं। पञ्चदेवोपासक अपने-अपने उपास्यको अवरोहक्रमसे प्रथम भूत आकाशके अन्तर्यामी अधिदैवरूपसे स्वीकार कर उनकी महत्ता ख्यापित करते हुए आराधना करते हैं। उक्त रीतिसे पाँचों देव आकाशके नियामक और प्रकाशक अन्तर्यामी—अधिदैव माने जा सकते हैं, तथापि विवक्षावशात् प्रसिद्ध क्रमके अनुसार पृथ्वीके शिव, जलके गणेश, तेजके शक्ति, वायुके सूर्य और आकाशके विष्णु नियामक-प्रकाशक-प्रेरक अधिदैव हैं।

आकाशस्याधिपो विष्णुरग्नेश्चैव महेश्वरी।
वायोः सूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिपः॥

(कापिलतन्त्र)

विवक्षावशात् आकाशके शिव, वायुके शक्ति, अग्निके रवि, जलके हरि और पृथ्वीके गणेश प्रकाशक और नियामक अधिदैव हैं—

शिवः खमनिलश्शक्ती रविरग्निर्जलं हरिः।
महो गणेशः सम्प्रोक्तः विश्वमेतद्द्वयं नुमः॥

व्यष्टि, समष्टि, प्राण और वायुके योगसे ब्रह्माकी सूत्रात्मा तथा बुद्धि और महत्के योगसे हिरण्यगर्भ संज्ञा है। अतः वायुके नियामक सूर्यको हिरण्यगर्भात्मक ब्रह्मा समझना चाहिये।

विवक्षावशात् यह भी कहा जाता है कि पृथ्वीके ब्रह्मा, जलके विष्णु, तेजके रुद्र, वायुके ईश्वर तथा आकाशमण्डलके सदाशिव देवता हैं—

चतुरस्रं धरण्यादौ ब्रह्मा तत्राधिदेवता।
अर्धचन्द्राकृति जलं विष्णुस्तस्याधिदेवता॥
त्रिकोणमण्डलं वह्नी रुद्रस्तस्याधिदेवता।
वायोर्बिम्बं तु षट्कोणमीश्वरोऽस्याधिदेवता॥
आकाशमण्डलं वृत्तं देवतास्य सदाशिवः।

(योगशिखोपनिषद् १। १७६—१७८)

पञ्चब्रह्मोपनिषद् (२१—२३)-के अनुसार उत्पत्ति, स्थिति, संहार, निग्रह और अनुग्रह एवं पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाशसे सम्बद्ध क्रमशः सद्योजात, अघोर, वामदेव, तत्पुरुष और ईशानसंज्ञक पञ्चदेव हैं। शैवप्रस्थानकी इस गणनाको पूर्ववत् ब्रह्मा, विष्णु, शिव, शक्ति और गणपतिरूप समझना चाहिये—

पञ्चब्रह्मिदं विद्यात्सद्योजातादिपूर्वकम्।
दृश्यते श्रूयते यच्च पञ्चब्रह्मात्मकं स्वयम्॥
पञ्चधा वर्तमानं तं ब्रह्मकार्यमिति स्मृतम्।
ब्रह्मकार्यमिति श्रुत्वा ईशानं प्रतिपद्यते॥
पञ्चब्रह्मात्मकं सर्वं स्वात्मनि प्रविलाप्य च।
सोऽहमस्मीति जानीयाद्विद्वान्ब्रह्माऽमृतो भवेत्॥

'**ब्रह्मकार्यमिति श्रुत्वा**' (२२)-की उक्तिसे स्पष्ट ही कार्यब्रह्मका प्रतिपादन किया गया है।

वैष्णवप्रस्थानमें सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोधान (निग्रह) और अनुसम्मत (अनुग्रह)-कर्ता भगवान् नारायणको माना गया है। नारायणसंज्ञक विष्णुके क्रमशः आरोहक्रमसे अनिरुद्ध, प्रद्युम्न, संकर्षण, वासुदेव चतुर्व्यूह हैं। अभिप्राय यह है कि अनिरुद्ध, प्रद्युम्न, संकर्षण, वासुदेव तथा नारायण सृष्टि आदि पञ्चकृत्योंके निर्वाहक हैं—

सृष्टिः स्थितिश्च संहारतिरोधानानुसम्मतम्।
पञ्चकृत्यस्य कर्तारं नारायणमनामयम्॥

(नारायणपूर्वतापनीयोपनिषद्)

वासुदेवः सङ्कर्षणः प्रद्युम्नः पुरुषः स्वयम्।
अनिरुद्ध इति ब्रह्मन् मूर्तिव्यूहोऽभिधीयते॥

(श्रीमद्भा० १२। ११। २१)

शाक्तप्रस्थानमें पञ्चकृत्यरूपा परमेश्वरीके पाँच अवतार हैं। सृष्टिरूपा सरस्वती हैं। स्थितिरूपा महालक्ष्मी हैं। संहाररूपा रुद्राणी हैं। तिरोधानकरी पार्वती हैं। अनुग्रहरूपा उमा हैं—

'**सृष्टिरूपा सरस्वती भवति। स्थितिरूपा महालक्ष्मी-र्भवति। संहाररूपा रुद्राणी भवति। तिरोधानकरी पार्वती भवति। अनुग्रहरूपा उमा भवति।**'

(नारायणपूर्वतापनीयोपनिषद् २)

शाक्तप्रस्थानमें शक्तिस्वरूपा उमा स्वयं पञ्चदेवोंमें शेष चार देवोंके रूपमें व्यक्त हैं। पञ्चदेवोंमें आदित्य, गणनाथ, देवी, रुद्र और केशव हैं अथवा सूर्य, सोम, उमा, शिव और जगन्नाथ हैं। सौरप्रस्थानमें उत्पत्ति, स्थिति, संहति, निग्रह और अनुग्रहकर्ता क्रमशः आदित्य, भास्कर, भानु, रवि और दिवाकर हैं।

आदित्यं गणनाथं च देवीं रुद्रं च केशवम्।
पञ्चदैवतमित्युक्तं सर्वकर्मसु पूजयेत्॥

(शब्दकल्पद्रुम)

सूर्यः शिवो जगन्नाथः सोमः साक्षादुमा स्वयम्॥
आदित्यं भास्करं भानुं रविं देवं दिवाकरम्।
उमां प्रभां तथा प्रज्ञां सन्ध्यां सावित्रीमेव च॥

(लिङ्गपुराण १९। २४, २९)

गाणपत्यप्रस्थानमें अष्टधा प्रकृतिके अभिप्रायसे कार्यात्मिका पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, अहम् और महत्-संज्ञक प्रकृतिविकृतिके योगसे कार्यब्रह्मके सात प्रभेद हैं। विवक्षावशात् मूल प्रकृतिके योगसे कारणब्रह्मका नाम 'गणेश' है। गणेश महत्से पृथ्वीपर्यन्त सात गणोंके ईश अर्थात् नियामक हैं। वे प्रकृतिसङ्गविमुक्त होनेके कारण कार्यकारणातीत ज्ञानस्वरूप निर्वाणरूप हैं। गणेश अष्टधा प्रकृतिके नियामक होनेके कारण ज्ञानप्रद तथा निर्वाणप्रद हैं। पृथ्वीके योगसे गणेशकी एकदन्त संज्ञा है। 'एक' प्रधानवाचक और 'दन्त' सर्वाधिक बलसूचक है। पृथ्वी शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धरूप सर्वविशेषताओंसे सम्पन्न होनेके कारण प्रधान है—

भूमिरापस्तथा वायुरग्निराकाशमेव च।
गुणोत्तराणि सर्वाणि तेषां भूमिः प्रधानतः॥

(महा०भीष्मपर्व ५।४)

विशेषताकी पराकाष्ठा और चरमकार्य होनेसे पृथ्वी सर्वप्रधान बल है। उसके नियामक होनेसे गणेश एकदन्त हैं। जलके योगसे गणेश 'हेरम्ब' हैं। 'हे' का अर्थ अभावग्रस्त, दीन है। 'रम्ब' का अर्थ पालन-पोषण है। हेरम्बका अर्थ जीवनप्रद है। जल जीवन है। उसके योगसे गणेश हेरम्ब हैं। अन्धकारनिमित्तक कण्टकादि विघ्नोंका शमन अग्नि और तेजसे होता है। अतः अग्नि या तेजके योगसे गणेश 'विघ्ननायक' हैं। वायुको संवर्ग कहते हैं। वह विद्युत् आदिका शोषक है। अग्नि भी बाह्याभ्यन्तर वायुके योगसे अन्नादिका पाचक है। अतः वायु लम्बोदर है। उसके योगसे गणेशको 'लम्बोदर' कहते हैं। आकाश कर्णगोचर शब्दका आश्रय होनेसे 'शूर्पकर्ण' है। गणेश आकाशयोगसे 'शूर्पकर्ण' हैं। गगनका जनक होनेसे अहम् 'गजवक्त्र' है। उसके योगसे गणेश 'गजवक्त्र' हैं। स्वामिकार्तिकेयके अग्रज होनेसे वे गुहाग्रज हैं। दर्शनप्रस्थानमें अव्यक्त या मायाका नाम गुहा या गुहाग्र है। उससे समुत्पन्न महत् गुहाग्रज है। उसके योगसे गणेश 'गुहाग्रज' हैं—

गणेशमेकदन्तं च हेरम्बं विघ्ननायकम्।
लम्बोदरं शूर्पकर्णं गजवक्त्रं गुहाग्रजम्॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण ३। ४४। ८५)

इस प्रकार कार्यवर्गके नियामकका नाम कार्यब्रह्म है। मायारूपा कारणके नियामकका नाम कारणब्रह्म है। केवल सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्मका नाम कार्यकारणातीत परब्रह्म है। पञ्चदेव कार्यब्रह्म, कारणब्रह्म और कार्यकारणातीत परब्रह्मरूपसे एक ही हैं, केवल लीलाविग्रहकी दृष्टिसे इनमें नाम, रूप, लीला और धामगत विभेद है—

चिन्मयस्याद्वितीयस्य निष्कलस्याशरीरिणः।
उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना॥
रूपस्थानां देवतानां पुंस्त्र्यङ्गास्त्रादिकल्पना।
द्विचत्वारिषडष्टानां दश द्वादश षोडश॥
अष्टादशामी कथिता हस्ताः शङ्खादिभिर्युताः।
सहस्रान्तास्तथा तासां वर्णवाहनकल्पना॥
शक्तिसेनाकल्पना च ब्रह्मण्येवं हि पञ्चधा।
कल्पितस्य शरीरस्य तस्य सेनादिकल्पना॥

(रामपूर्वतापिन्युपनिषद् १। ७—१०)

'यद्यपि ब्रह्म चिन्मय, निष्कल, अशरीर है तथापि उपासकोंके कार्यकी सिद्धिके लिये ब्रह्मके विविध रूपोंकी ब्रह्मद्वारा कल्पना (लीलोपयुक्त भावना) की जाती है। साकारभावको प्राप्त उन देवताओंके स्त्री, पुरुष, अङ्ग और अस्त्रादिकी भी कल्पना की जाती है। विविध रूपोंमें अभिव्यक्त अवतारविग्रहके चार, छः, आठ, दस, बारह, सोलह, अट्ठारह हाथ होते हैं। ये शङ्ख आदिसे सुशोभित होते हैं। विश्वरूपदर्शनके समय प्रभु सहस्रों हाथोंसे युक्त होते हैं। अवतारभेदसे रङ्ग, वाहन, शक्ति और सेना आदिकी भी कल्पना की जाती है। उत्पत्ति, स्थिति, संहार, निग्रह और अनुग्रहरूप पञ्च कृत्योंके निर्वाहक प्रभु ब्रह्मा, विष्णु, शिव, शक्ति और गणपतिरूपसे स्वयंको उद्भासित करते हैं। तदनुरूप सेनादि भी प्रकल्पित करते हैं।'

सुमेरु पर्वतसे बत्तीस हजार योजन ऊपर स्थित क्षीरसिन्धुके उत्तरभागमें मुख्यरूपसे निवास करनेवाले श्रीहरिमें अव्यक्तात्मक (अव्यक्तभावापन्न) शेषसंज्ञक जीवतत्त्व—संकर्षण, महदात्मक प्रद्युम्न, सात्त्विक अहमात्मक अनिरुद्ध, राजस अहमात्मक ब्रह्मा, स्थूलसूक्ष्मभूतसहित तामस अहमात्मक दक्षिणपार्श्ववर्ती एकादश रुद्र, दशेन्द्रियसहित मनोबुद्धिरूप वामपार्श्ववर्ती द्वादश आदित्य, प्राणात्मक प्रवह, अपानात्मक आवह, उदानात्मक उद्वह, समानात्मक सम्वह, व्यानात्मक विवह, परिवह तथा परावहके सहित वायुरूप

अग्रभागवर्ती अष्ट वसु; नासाभ्यन्तरचारी पृष्ठभागवर्ती नासत्य तथा दस्रसंज्ञक अश्विनीकुमार एवं त्वक्, मांस, शोणित, अस्थि, स्नायु, मज्जा, शुक्रसंज्ञक सप्तधातुमय सप्तर्षि; मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ, स्वायम्भुव मनु आदि प्रजापति; मूर्तिमन्त वेद, यज्ञ, ओषधि, यम, नियम, तप, अष्टैश्वर्य, श्री, लक्ष्मी, कीर्ति, पृथ्वी, नक्षत्र, ध्रुव, सरस्वती, समुद्र, सरोवर, सरिता, मेघमण्डल, पितृगण तथा त्रिगुणादिका संनिवेश है तथापि भगवान्‌का वासुदेवविग्रह निर्गुण निराकारकल्प होता है। वह भौतिक नहीं होता। अभिप्राय यह है कि भगवान् निर्गुण निराकार होनेपर भी स्वरूपभूता सन्धिनी, संवित् और ह्लादिनी शक्तिके योगसे अधिभूत, अध्यात्म और अधिदैव एवं त्रिगुणमय प्रकृतिसारसर्वस्व अवतारविग्रह धारण करते हैं। अतएव उनका दर्शन किसी बद्ध या मुक्त जीव (प्राणी)-के दर्शनतुल्य नहीं होता। वे सर्वव्यापक, सर्वभूतान्तरात्मा हैं। वे भूत तथा भौतिक शरीरादिके नष्ट हो जानेपर भी नष्ट नहीं होते हैं। देवर्षि नारदके प्रति स्वयं श्रीहरिने इस रहस्यका प्रतिपादन किया है—

माया ह्येषा मया सृष्टा यन्मां पश्यसि नारद॥
सर्वभूतगुणैर्युक्तं नैवं त्वं ज्ञातुमर्हसि।
मयैतत् कथितं सम्यक् तव मूर्तिचतुष्टयम्॥
अहं हि जीवसंज्ञातो मयि जीवः समाहितः।
नैवं ते बुद्धिरत्राभूद् दृष्टो जीवो मयेति वै॥
अहं सर्वत्रगो ब्रह्मन् भूतग्रामान्तरात्मकः।
भूतग्रामशरीरेषु नश्यत्सु न नशाम्यहम्॥

(महाभारत, शान्ति० ३३९।४५—४८)

विवक्षावशात् उत्पत्ति, स्थिति, संहार, निग्रह तथा अनुग्रह नामक कृत्योंमें निग्रहका संहारमें और अनुग्रहका स्थितिमें अन्तर्भाव कर उत्पत्ति, स्थिति, संहाररूप तीन कृत्योंको ही माना जाता है। इस दृष्टिसे वेदान्तवेद्य परब्रह्म सच्चिदानन्दकी आत्मार्था सृष्टिमें संनिहित सत्प्रधाना सन्धिनी शक्ति, चित्प्रधाना संवित्‌शक्ति तथा आनन्दप्रधाना ह्लादिनी शक्ति है और जीवार्था सृष्टिमें संनिहित सत्प्रधाना तामसी, चित्प्रधाना सात्त्विकी एवं आनन्दप्रधाना राजसी शक्ति है। सन्धिनी तथा तमस्‌से रूपकी, संवित् तथा सत्त्वसे नामकी तथा ह्लादिनी एवं रजस्‌से क्रियाकी निष्पत्ति होती है। नाम, रूप, लीला और धाममें; रूप तथा धाममें समानता है। नाम, रूप और क्रियाका समवेतस्वरूप लीला है। स्वरूपकी प्रकारान्तर अभिव्यक्ति 'रूप' है। रूपकी ख्यापक सामग्री 'नाम' है। स्वरूपख्यापन 'क्रिया' है। आरोहक्रमसे चरम रूप 'स्वरूप' है अर्थात् घटादिका ऊर्ध्वमुख चरम रूप सच्चिदानन्दस्वरूप 'ब्रह्म' है। नाम और क्रिया 'स्पन्द' है। स्वरूप परब्रह्म है। स्पन्द शब्दब्रह्म है। शब्दब्रह्म प्रकृति, प्रणव और लक्ष्मी है—

'महालक्ष्मीर्मूलप्रकृतिरिति।'

(नारायणपूर्वतापनीयोपनिषद् २)

सीता भगवती ज्ञेया मूलप्रकृतिसंज्ञिता।
प्रणवत्वात्प्रकृतिरिति वदन्ति ब्रह्मवादिनः॥

(सीतोपनिषद्)

२-अवतारप्रयोजन—वेदान्तप्रस्थानके अनुसार अव्यक्त-का व्यक्त होना अवतार है। अविज्ञेय अव्यक्त है और विज्ञेय व्यक्त है—**'यदविज्ञेयं तदव्यक्तम्।'''यद् व्यज्यते तद् व्यक्तस्य व्यक्तत्वम्।'** (अव्यक्तोपनिषद् १-३)

जीव, जगत् और जगदीश्वरमें अचिन्त्य मायाशक्तिके योगसे सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्मकी अभिव्यक्ति मान्य है। अतएव तीनों ही ब्रह्मके अवतार हैं। यद्यपि ब्रह्म, ईश्वर, जीव, माया, जीवेश्वरभेद, माया और चिद्रूप ब्रह्मका योग—ये छः अनादि हैं तथापि ईश्वर और जीव चैतन्य ब्रह्मके अनादिसिद्ध अवतार हैं। जगत् मायायोगसे ब्रह्म, ईश्वर और जीवका सम्मिलित अवतार है। ब्रह्म सर्वाधिष्ठान है, अतः उसके लिये उसका कोई प्रयोजन नहीं। ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् हैं; अतः उनका उनके लिये कोई प्रयोजन नहीं। माया और मायिक प्रपञ्च अचित् होनेसे परार्थ हैं, अतः उनका उनके लिये कोई प्रयोजन नहीं। जीव (प्राणी) अल्पज्ञ तथा अल्पशक्तिमान् हैं; अतः ब्रह्म, ईश्वर, माया और जगत्‌से धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षरूप अभ्युदय और निःश्रेयससिद्धि उसका प्रयोजन है। जगत्‌से अर्थ, काम तथा धर्मकी सिद्धिरूपा भुक्ति और विरक्ति प्रयोजन है। ईश्वरसे उत्पत्ति, स्थिति, संहति, निग्रह तथा अनुग्रह प्रयोजन हैं। षडैश्वर्यसम्पन्न ईश्वर भगवान् हैं। भगवान्‌के अवतारसे जीवका प्रयोजन अर्थ-कामरूप भोगकी सिद्धि, भगवद्भक्ति तथा योगरूप समाधिकी सिद्धि और पूर्ण कृतार्थतारूप मोक्षकी सिद्धि है। भोग 'प्रेय' है, मोक्ष 'श्रेय' है। प्रेय और श्रेयोमार्गका

द्वारभूत धर्म है। अधर्म धर्मका अवरोधक है। अधर्मके अभ्युत्थानसे समुद्भूत धर्मग्लानिका निवारण और धर्मग्लानिमें हेतुभूत कुमार्गगामियोंका उन्मूलन तथा धर्मसिद्धिमें हेतुभूत सन्मार्गगामी साधुओंका परित्राण भगवान्‌के अवतारका प्रयोजन है।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चतुर्वर्गकी सिद्धि प्रशस्त राजसिंहासन (राजगद्दी, शासनतन्त्र) तथा व्यासपीठ (व्यासगद्दी)-के अधीन है। राजगद्दी और व्यासगद्दीके शोधनके लिये भगवान्‌का अवतार अनिवार्य है। अतएव शिवावतार भगवत्पाद श्रीशंकराचार्यके अनुसार व्यासगद्दीसे सम्बद्ध ब्राह्मणोंके ब्राह्मणत्वको सुस्थिर कर राजगद्दीसे सम्बद्ध क्षत्रियोंको क्षात्रधर्ममें प्रतिष्ठित करनेके लिये श्रीभगवान्‌का अवतार होता है। अत्यन्त उग्र अराजक तत्त्वोंका उन्मूलन और उद्धार तथा अराजक तत्त्वोंके उत्पातसे अत्यन्त उत्पीडित सज्जनोंका त्राण तथा आह्लादरूप परित्राण भगवान्‌के अवतार लिये बिना असम्भव है।

यहाँ ध्यान रखनेकी आवश्यकता यह है कि सुषुप्तिके तुल्य महाप्रलय पुरुषार्थभूमि नहीं है। अतएव भगवान् अर्थ, धर्म, काम और मोक्षरूप पुरुषार्थचतुष्टयकी सिद्धिके लिये अकृतार्थ जीवोंको सर्गारम्भमें बुद्धि, इन्द्रिय, मन और प्राणसे युक्त जीवन प्रदान करते हैं तथा पाञ्चभौतिक प्रपञ्चकी रचना कर उन्हें कृतार्थ होनेका पूर्ण अवसर प्रदान करते हैं—

बुद्धीन्द्रियमनः प्राणान् जनानामसृजत् प्रभुः।
मात्रार्थं च भवार्थं च आत्मनेऽकल्पनाय च॥

(श्रीमद्भा० १०।८७।२)

भगवान्‌का अवतार पुरुषार्थचतुष्टयकी द्रुतगतिसे सिद्धि और पुरुषार्थचतुष्टयके उपायभूत ब्रह्माण्डके पोषक और पृथिवीके धारक मानविन्दुओंकी रक्षा तथा तदर्थ प्रेरणाके लिये होता है—

गोविप्रसुरसाधूनां छन्दसामपि चेश्वरः।
रक्षामिच्छंस्तनूर्धत्ते धर्मस्यार्थस्य चैव हि॥

(श्रीमद्भा० ८।२४।५)

विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या, ईशाना और अनुग्रहाशक्तिसम्पन्न सर्वेश्वर गौ, ब्राह्मण, सुर, साधु, वेद, धर्म और अर्थकी रक्षाके लिये श्रीविग्रह धारण करते हैं।

नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप।
अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः॥

(श्रीमद्भा० १०।२९।१४)

हे नृप! अव्यय, अप्रमेय, निर्गुण और दिव्यातिदिव्य अचिन्त्य गुणगणनिलय भगवान्‌की अभिव्यक्ति (अवतार)-का प्रयोजन मनुष्यादि प्राणियोंके निःश्रेयस (परम कल्याण)-के लिये है।

अज, अनादि, अप्रमेय, अव्यय, निर्गुण ब्रह्म ब्रह्मादि देवशिरोमणियोंके लिये भी अदृश्य है। यह उसका सत्पुरुषोंपर अनुग्रह ही है कि वह भक्तवत्सलताके कारण स्वयंको अचिन्त्यलीलाशक्तिके योगसे सगुण साकार रूपसे व्यक्त कर लेता है। अविद्या, काम, कर्मसे अतीत सर्वेश्वर लीलापूर्वक जन्म लेता है, अतः उसका जन्म लेना दिव्य है। वह अपनी अविक्रिय विज्ञानघन अव्ययरूपताका समादर करता हुआ ही कर्म करता है, अतः उसका कर्म करना दिव्य है। उसके योगवैभवका प्रधान प्रयोजन अपने प्रति आस्था और अनुरक्तिकी प्रगाढ़ अभिव्यक्ति ही है—

त्वं भावयोगपरिभावितहृत्सरोज
आस्से श्रुतेक्षितपथो ननु नाथ पुंसाम्।
यद्यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति
तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय॥

(श्रीमद्भा० ३।९।११)

'नाथ! आपका मार्ग केवल गुणश्रवणसे ही जाना जाता है। आप भावयोगसे परिभावित हृदयकमलमें निवास करते हैं। पुण्यश्लोक प्रभो! रसिक भावुक जिस-जिस भावसे आपकी विशेष भावना करते हैं, उन सत्पुरुषोंपर अनुग्रह करनेके लिये आप वही-वही रूप धारण कर लेते हैं।'

तथा परमहंसानां मुनीनाममलात्मनाम्।
भक्तियोगविधानार्थं कथं पश्येम हि स्त्रियः॥

(श्रीमद्भा० १।८।२०)

'जब आत्मानात्मविवेकसम्पन्न परमहंस, मननशील मुनि और रागादिविरहित शमादिसम्पन्न सनकादिसरीखे अमलात्मा संत भी स्वरूप, शक्ति, वैभवसे अनन्त, अचिन्त्यमहिमामण्डित आपको नहीं जान पाते, तव आपकी भक्ति करनेकी भावनावाली, किंतु देह, गेह, सगे-सम्बन्धियोंमें रची-पची हम स्त्रियाँ आपको कैसे पहचान सकती हैं? अभिप्राय यह है कि आप मुनियों और परमहंसोंके मनको

भी अपने दिव्यातिदिव्य गुणगणोंसे समाकृष्टकर उन्हें भक्तियोग प्रदान करनेके लिये अवतीर्ण होते हैं।'

श्रीमद्भगवद्गीता (४।२-३, ७-८)-के अनुसार श्रीभगवान्‌का अवतार मोक्षप्रद तत्त्वज्ञानरूप योगकी प्रतिष्ठा, धर्मसंस्थापन, दुष्टदलन और साधुपरित्राणके लिये होता है—

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप॥
स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्॥
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

ध्यान रहे—विरक्ति, भक्ति और भगवत्प्रबोधमें वेदोक्त कर्मोपासना और ज्ञानकाण्डका तात्पर्य संनिहित है। तदनुकूल व्यासपीठ और शासनतन्त्र अपेक्षित है। तदर्थ मर्त्यशिक्षण मर्त्यावतारका प्रयोजन है—

मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं
रक्षोवधायैव न केवलं विभोः।
कुतोऽन्यथा स्याद्रमतः स्व आत्मनः
सीताकृतानि व्यसनानीश्वरस्य॥

(श्रीमद्भा० ५।१९।५)

'प्रभो आपका मर्त्यावतार केवल राक्षसोंके वधके लिये ही नहीं है। इसका मुख्य प्रयोजन तो मनुष्योंको शिक्षा देना है। अन्यथा आप सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वेश्वर आत्मारामको सीताजीके वियोगमें इतना दुःख कैसे हो सकता था?'

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः॥

(श्रीमद्भा० १।७।१०)

मननशील, चिज्जडग्रन्थिभेदनसम्पन्न आत्माराम भगवान्‌की निष्काम भक्ति किया करते हैं। क्यों न हो, भगवान्‌के अप्राकृत दिव्यातिदिव्य गुणगण ही ऐसे अनुपम हैं, जो गुणातीत परमहंसोंको भी अपनी ओर हठात् आकर्षित करते हैं।

विश्वरूपप्रोक्त नारायणकवचके अनुशीलनसे मत्स्यादि अवतारोंकी उपयोगिताका परिज्ञान होता है। मत्स्यावतार जलजन्तुओंसे और वरुणपाशसे रक्षा करनेवाले हैं। स्थल तथा नभमें वामनावतार रक्षा करनेवाले हैं। नृसिंहावतार वन, दुर्ग, रणादि दुर्गम स्थलोंमें रक्षा करनेवाले हैं। वराहावतार मार्गमें रक्षा करनेवाले हैं। परशुरामावतार पर्वतोंके शिखरोंपर रक्षा करनेवाले हैं। रामावतार प्रवासमें रक्षा करनेवाले हैं। नारायणावतार अभिचार और प्रमादसे रक्षा करनेवाले हैं। नरावतार गर्वसे रक्षा करनेवाले हैं। दत्तात्रेयावतार योगान्तरायसे रक्षा करनेवाले हैं। कपिलावतार कर्मबन्धसे रक्षा करनेवाले हैं। सनत्कुमार कामसे रक्षा करनेवाले हैं। हयग्रीव देवापराधसे रक्षा करनेवाले हैं। नारदावतार सेवापराधसे रक्षा करनेवाले हैं। कच्छपावतार नरकसे रक्षा करनेवाले हैं। धन्वन्तरि कुपथ्यसे रक्षा करनेवाले हैं। ऋषभावतार द्वन्द्वोंसे रक्षा करनेवाले हैं। यज्ञावतार लोकापवादसे रक्षा करनेवाले हैं। बलरामावतार मनुष्यकृत कष्टोंसे रक्षा करनेवाले हैं। शेषावतार क्रोधवश नामक सर्प-समुदायसे रक्षा करनेवाले हैं। व्यासावतार अज्ञानसे रक्षा करनेवाले हैं। बुद्धावतार पाखण्डियों और प्रमादसे रक्षा करनेवाले हैं। कल्किदेव कलिकालके दोषोंसे रक्षा करनेवाले हैं। केशव, गोविन्द, मधुसूदन, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, पद्मनाभ, श्रीहरि, जनार्दन, दामोदर तथा विश्वेश्वर अहर्निश रक्षा करनेवाले हैं। (श्रीमद्भा० ६।८।१२—२२)

हरिरेव जगज्जगदेव हरिर्हरितो जगतो नहि भिन्नतनुः।
इति यस्य मतिः परमार्थगतिः स नरो भवसागरमुत्तरति॥

हरि ही जगत् हैं, जगत् ही हरि हैं, हरि और जगत्‌में किञ्चिन्मात्र भी भेद नहीं है। जिसकी ऐसी मति है, उसीकी परमार्थमें गति है, वह पुरुष संसार-सागरको तर जाता है।

श्रीहंसावतार एवं सुदर्शनचक्रावतार—श्रीभगवन्निम्बार्काचार्य

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री 'श्रीजी' महाराज)

भगवदवतारका हेतु स्वयं सर्वनियन्ता सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने श्रीमद्भगवद्गीतामें इन सुप्रसिद्ध श्लोकद्वयसे स्पष्टरूपेण निरूपित किया है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

(गीता ४।७-८)

इस धराधामपर जब-जब भी अनादि वैदिक सनातनधर्मका ह्रास होता है एवं अधर्मकी अभिवृद्धि होती है, तब-तब मैं स्वयं भूतलपर अवतीर्ण होता हूँ। उत्तमश्लोक श्रेष्ठ महापुरुषोंके सर्वविध-रक्षार्थ एवं पापाचारपरायण दुरितजनोंके परिहार एवं श्रुतिसम्मत सनातनधर्मके सम्यक् संस्थापननिमित्त ही मैं स्वयं प्रत्येक युगमें अवतरित होता हूँ।

यद्यपि श्रीमद्भगवद्गीतोक्त श्रीभगवदीय वचनसे अवतारका प्रमुखहेतु स्वतः स्वाभाविक एवं सुस्पष्ट है तथापि सुदर्शनचक्रावतार श्रीभगवन्निम्बार्काचार्यचरणोंने अपने 'वेदान्तकामधेनु-दशश्लोकी' के अष्टम श्लोकसे श्रीहरिके अवतारका जो भाव प्रतिपादित किया है, वह निश्चय ही अत्यन्त विलक्षण, परम दिव्य भावसे परिपूर्ण एवं शास्त्रसम्मत है।

वे श्रीप्रभु अनन्तकोटिब्रह्माण्डाधिपति क्षराक्षरातीत जगज्जन्मादिहेतु निखिलजगदभिन्ननिमित्तोपादानकारण कर्तुम-कर्तुमन्यथाकर्तुं सर्वसमर्थ हैं। वे सर्वनियन्ता, सर्वान्तरात्मा और सर्वशक्तिमान् हैं। वे अपने नित्यदिव्यधाममें विराजित रहते हुए '**संकल्पादेव तच्छ्रुतेः**' इस सिद्धान्तानुसार समस्त चराचर जगत्का क्षणमात्रमें उद्भव, संरक्षण एवं विलय कर देते हैं, उन्हें अवतारकी अपेक्षा ही नहीं तथापि अनुग्रहविग्रहस्वरूप श्रीसर्वेश्वर अपने प्रपन्न, परम भागवत भगवज्जनोंकी स्वाभाविक पराभक्तिसे समाकृष्ट हो भारतकी इस पावन वसुधापर अवश्य ही विभिन्न स्वरूपोंमें अवतीर्ण होते हैं।

'वेदान्तकामधेनु-दशश्लोकी' के अष्टम श्लोकसे भगवच्छरणागतिके निरूपणक्रममें भगवदवतारपरक जो प्रतिपादन हुआ है, वह परम कमनीय है—

नान्या गतिः कृष्णपदारविन्दात्
संदृश्यते ब्रह्मशिवादिवन्दितात्।
भक्तेच्छयोपात्तसुचिन्त्यविग्रहा-
दचिन्त्यशक्तेरविचिन्त्यसाशयात्॥

इस श्लोकके तृतीय चरणमें '**भक्तेच्छयोपात्त-सुचिन्त्यविग्रहात्**' का निर्देश करके श्रीप्रभुके अवतार लेनेका हेतु स्पष्ट रूपसे अभिव्यक्त है, जिसमें यही भाव निर्दिष्ट किया गया है कि वे सर्वाधिष्ठान श्रीहरि भक्तोंके चिरभिलषित पावन मनोरथोंको पूर्ण करनेहेतु ही समय-समयपर स्वयं श्रीराम-श्रीकृष्णप्रभृति स्वरूपमें शिशुरूप धारण कर अवतीर्ण होकर उनके श्रेष्ठतम मनोरथोंको सर्वात्मना पूर्ण करते हैं। महाराज दशरथ और माता कौसल्या, व्रजाधीश नन्द एवं यशोदाके उत्तमोत्तम मनोरथोंको पूर्ण करनेके निमित्त ही स्वयं बालरूपमें आविर्भूत होते हैं। यही तो उन सर्वेश्वरकी भगवत्ता एवं परम कृपालुता है।

श्रीहंसावतारधारणका भी यही प्रमुख लक्ष्य है। जगत्स्रष्टा पितामह श्रीब्रह्माके समक्ष जब उन्हींके मानस पुत्र श्रीसनक-सनन्दन-सनातन-सनत्कुमार महर्षिप्रवरोंने यह जिज्ञासापूर्ण प्रश्न उपस्थित किया—

गुणेष्वाविशते चेतो गुणाश्चेतसि च प्रभो।
कथमन्योन्यसंत्यागो मुमुक्षोरतितितीर्षोः॥

(श्रीमद्भा० ११।१३।१७)

अर्थात् हे ब्रह्मदेव! प्राणिमात्रका यह त्रिगुणात्मक चित्त इस चराचरात्मक त्रिगुणरूप जगत्के विषयोंमें आलिप्त है तथा ये जागतिक विषय इस चित्तमें व्याप्त हैं, अतः विषय तथा चित्त—ये दोनों ही आपसमें एक-दूसरेसे मिले हुए हैं तब इस भवार्णवसे निवृत्त होनेकी उत्कण्ठावाले मोक्षाभिलाषीको इस जगत्से मोक्षकी प्राप्ति कैसे सम्भव है? इनका उभयात्मक परस्पर स्वाभाविक सम्बन्ध है,

अतएव इस जगत्से चित्तकी सर्वथा निवृत्ति कैसे सम्भावित है? कृपाकर इसका सम्यक् समाधान करें।

श्रीसनकादि महर्षियोंके इस परम गूढ़तम, रहस्यात्मक और अत्यद्भुत प्रश्न करनेपर जगत्पिता ब्रह्मा भी व्यामुग्ध हो गये और इसका सही समाधान न पानेपर उन्होंने मन-ही-मन अकारणकरुणावरुणालय अखिलान्तरात्मा भगवान् सर्वेश्वर श्रीकृष्णका चिन्तन किया। अनन्तकृपासिन्धु दयार्णव श्रीहरि इस अतीव गूढ़तम प्रश्नके समाधानार्थ श्रीब्रह्माके वाहन हंसरूपमें उनके समक्ष कुछ ही दूरीपर अतिशय देदीप्यमानस्वरूपमें अवतीर्ण हो गये और उन्होंने श्रीसनकादि महर्षियोंके जिज्ञासापूर्ण प्रश्नका इस प्रकार समाधान किया—

पञ्चात्मकेषु भूतेषु समानेषु च वस्तुतः।
को भवानिति वः प्रश्नो वाचारम्भो ह्यनर्थकः॥

(श्रीमद्भा० ११।१३।२३)

देव, मानव, पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग आदि सभी पञ्चभूतात्मक होनेपर आप कौन हैं? यह जिज्ञासात्मक प्रश्न ही यथार्थ नहीं है, मात्र वाग्विलास कथनरूप व्यर्थ ही है।

मनसा वचसा दृष्ट्या गृह्यतेऽन्यैरपीन्द्रियैः।
अहमेव न मत्तोऽन्यदिति बुध्यध्वमञ्जसा॥

(श्रीमद्भा० ११।१३।२४)

मन, वाणी श्रोत्र, नेत्रप्रभृति इन्द्रियोंसे जो भी ज्ञान किया जाय, वह मैं सर्वेश्वर ही हूँ। इसके रहित कोई भी पदार्थ नहीं, अतः यही अन्तर्बाह्यज्ञान ज्ञातव्य है।

इस प्रकार श्रीसनकादिकोंद्वारा श्रीब्रह्माके प्रति किये गये प्रश्नका श्रीहंस भगवान्से समाधान पानेपर ये चारों महर्षिवृन्द अत्यन्त संतुष्ट हुए। पश्चात् उसी क्षण श्रीसनकादि महर्षियोंकी अभिलाषानुसार गुञ्जाफलसदृश दक्षिणावर्ती चक्राङ्कित अर्चाविग्रहरूप शालग्रामस्वरूप श्रीसर्वेश्वर प्रभुकी सेवा उन्हें हंस भगवान्से प्राप्त हुई जो आगे चलकर वैष्णवपराभक्तिरसकी सर्वस्वरूपा बन गयी। इसीका अवबोध महर्षिवर्य श्रीसनकादिकोंने देवर्षिप्रवर श्रीनारदको कराया। इसके अनन्तर द्वापरान्तमें सुदर्शनचक्रावतार श्रीभगवन्निम्बार्काचार्यको यही श्रीसर्वेश्वर प्रभुकी सेवा देवर्षिवर्य श्रीनारदजीने प्रदान की। यह सेवा अद्यावधि आचार्यपरम्परागत निम्बार्काचार्यपीठ निम्बार्कतीर्थ पुष्करक्षेत्र (राजस्थान)-में विद्यमान है। यहाँ प्रतिदिन गोदुग्धसे वैदिक पुरुषसूक्तके मन्त्रोंद्वारा अभिषेक होता है।

महर्षिवर्य श्रीसनकादिकोंने लोकलोकान्तरोंमें विचरण करते हुए इस धराधामपर तीर्थगुरु श्रीपुष्करतीर्थमें, जहाँ श्रीब्रह्माजी ब्रह्मलोककी भाँति सर्वदा सुशोभित हैं, आकर अपना यह अतीव गूढ़तम प्रश्न किया और भगवान् सर्वेश्वर श्रीकृष्णने ही श्रीहंसरूपमें अवतीर्ण होकर उनके प्रश्नका दिव्यतम समाधान किया।

चौबीस अवतारोंका शास्त्रोंमें वर्णन है और सभी अवतार इसी भूतलपर—भारतवर्षकी पावन वसुधापर हुए हैं। अवतरणका अर्थ ही ऊर्ध्व लोकोंसे पृथ्वीतलपर आना है। अतः यह अवतार भी भूतलपर पुष्करमें ही हुआ है। अतः पुष्करतीर्थ श्रीहंसभगवान्की पावनस्थली भी है।

इसी प्रकार वे जगन्नियन्ता श्रीहरि कभी स्वयं तो कभी अपने नित्य एवं दिव्य पार्षदोंको भी सम्प्रेषित कर अज्ञानान्धकारका निवारण एवं आसुरी शक्तिका परिहार कराते हैं और अनादि वैदिक सनातन वैष्णवधर्मका प्रतिष्ठापन भी कराते हैं।

पञ्चसहस्रवर्षपूर्व द्वापरान्त एवं कलियुगारम्भकालमें अपने ही करारविन्दमें नित्य सुशोभित चक्रराज श्रीसुदर्शनको उन्होंने एवंविध आज्ञा प्रदान की—

सुदर्शन महाबाहो कोटिसूर्यसमप्रभ।
अज्ञानतिमिरान्धानां विष्णोर्मार्गं प्रदर्शय॥

(भविष्यपुराण)

अर्थात् करोड़ों सूर्यसदृश दिव्य प्रभायुत महाबाहो! श्रीसुदर्शन! आप इस जगतीतलपर अज्ञानान्धकारके निवारणार्थ आचार्यस्वरूपसे अवतीर्ण हों और संसारासक्त जनोंको वैष्णव पराभक्तिके पावनपथका उत्तम ज्ञान करावें।

अनुग्रहविग्रहस्वरूप सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्णका मङ्गल आदेश प्राप्त कर चक्रराज श्रीसुदर्शन इस अवनितलपर भारतवर्षके दक्षिणाञ्चलक्षेत्र गोदावरी तटवर्ती पैंठनके संनिकट मूंगी ग्राममें महर्षिवर्य श्रीअरुणके यहाँ माता श्रीजयन्तीके पावन उदरसे नियमानन्दके रूपमें अवतीर्ण हुए और आपने व्रजमण्डलस्थ गोवर्धन-संनिकटवर्ती निम्बग्राममें देवर्षि श्रीनारदजीसे पञ्चपदी विद्यात्मक श्रीगोपालमन्त्रराजकी दीक्षा ली तथा श्रीसनकादिसंसेवित श्रीसर्वेश्वर प्रभुकी सेवा प्राप्त की। यहीं पर आपने अपने आश्रममें सूर्याग्नि संनिध

श्रीसुदर्शनचक्रराजका आवाहन कर समागत दिवाभोजी दण्डीयतिरूप श्रीब्रह्माको सूर्यवत् दिवानुभूति कराकर उनका आतिथ्य कर उन्हें भगवत्प्रसाद कराया, इसीसे जगत्स्रष्टा श्रीब्रह्मदेवने उन्हें 'निम्बार्क' नामसे सम्बोधित किया। तभीसे आप श्रीनिम्बार्काचार्य नामसे विख्यात हुए। आपकी उपासना नित्यनिकुञ्जवृन्दावनविहारी युगलकिशोर भगवान् श्रीराधाकृष्णकी है और आपका दार्शनिक सिद्धान्त स्वाभाविक-द्वैताद्वैत है। एकादशीव्रतादिमें कपालवेधसिद्धान्त आपको ग्राह्य है। प्रस्थानत्रयीमें आपका ब्रह्मसूत्रपर 'वेदान्तपारिजातसौरभ' नामक भाष्य वृत्त्यात्मक रूपसे परम प्रख्यात है। आपके 'वेदान्तकामधेनु-दशश्लोकी', 'प्रात:स्तवराज', 'श्रीराधाष्टकस्तोत्र', 'मन्त्ररहस्यषोडशी' एवं 'प्रपन्नसुरतरुमञ्जरी' प्रभृति ग्रन्थ परम मननीय हैं। आप वैष्णव चतु:सम्प्रदायोंमें अत्यन्त प्राचीनतम हैं। आपकी आचार्यपरम्परामें पूर्वाचार्योंने संस्कृत वाङ्मय एवं हिन्दी व्रजसाहित्यमें अनेक दार्शनिक तथा उपासनापरक सरस रचनाएँ की हैं, जो भागवतजनोंके लिये अपने अन्तर्मानसमें सर्वदा अवधारणीय हैं।

वेदोंमें अवतारवाद

(स्वामी श्रीविज्ञानानन्दजी सरस्वती)

परमेश्वरका अवतरण होता है, वे स्वयं अवतार लेते हैं अर्थात् शरीर धारण करते हैं, परंतु अपने ज्ञानको विलुप्त करके नहीं, अपितु ज्ञानपूर्वक ही अवतार धारण करते हैं। उनका अदृष्ट नहीं होता, वे किसी अदृष्टकी प्रेरणासे बाध्य होकर जन्म नहीं लेते। कर्तृत्वाभिमान न होनेसे वे कोई नया कर्म भी नहीं करते हैं, प्रत्युत **'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्'** मात्रके लिये ही लीला करते हैं।

विचार करके देखा जाय तो हमारे वेद, ब्राह्मण-ग्रन्थ, उपनिषद्, रामायण, महाभारत तथा समस्त पुराण तथा उपपुराणसमूह अवतारवादके अपूर्व भण्डार हैं। पुराणसमूह तो अवतारवादसे भरे पड़े हैं; क्योंकि पुराण वेदोंके उपबृंहण हैं, यही कारण है कि हमारा वैदिक सनातन धर्म अवतारवादसे ओतप्रोत है। अवतारवादका मूल वेद ही है। वेदमें अवतारवादके बीज यत्र-तत्र पाये जाते हैं।

सृष्टिके मूलमें अनेक कारण नहीं हैं अपितु एक कारण है और वह ब्रह्म ही है। इसलिये वेदमें कहा भी है—**'न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते।'** (अथर्व० १३।४।१६) उस चैतन्यस्वरूप ब्रह्ममें द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ आदि कुछ भी भेद नहीं है। **'एकमेवाद्वितीयम्॥'** (छा० ६।२।१) वह एक अद्वितीय तत्त्व ब्रह्ममात्र विद्यमान है। इसलिये वेदकी ऋचाओंमें ही स्पष्ट शब्दोंमें कहा है—

'पुरुष एवेदं सर्व यद्भूतं यच्च भव्यम्॥'

(ऋक्० १०।९०।२)

जो भूतकालमें उत्पन्न हुआ था, जो वर्तमानकालमें है और जो भविष्यत् कालमें होनेवाला है वह सब पुरुष (ब्रह्म)-रूप ही है। अन्यत्र भी कहा है—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्य: स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहु:॥

(ऋक्० १।१६४।४६)

इस विश्वब्रह्माण्डके पीछे एक ही सद् वस्तु (ब्रह्ममात्र) विद्यमान है। मनस्वीजन उस एक तत्त्वको ही—इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि आदि अनेक नामोंसे पुकारते हैं। सुन्दर पंखवाले तीव्रगामी गरुड़ भी वे ही हैं। उसी तत्त्वको यम तथा मातरिश्वा नामसे भी कहते हैं। क्या वे अनेक हैं? नहीं, अनेक नहीं हैं, अपितु उस एकके ही वे अनेक नाम और रूपमात्र हैं। एक ही ब्रह्म अनेक कैसे बन जाता है? इसका उत्तर भी वेदमें ही दिया हुआ है। अत: देखिये—

रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव
तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय।
इन्द्रो मायाभि: पुरुरूप ईयते
युक्ता ह्यस्य हरय: शता दश॥

(ऋक्० ६।४७।१८)

वह परमेश्वर अपनी मायाशक्तिसे अर्थात् अनन्त सामर्थ्योंसे अनेक देहोंके रूपवाला हो जाता है। वह इस अपने रूपको सबपर विख्यात करनेके लिये जैसे-जैसे रूपकी इच्छा करता है, वैसे-वैसे रूपवाला हो जाता है।

अत: उस परमेश्वरके अनन्त रूप हैं।

इस प्रकारसे जब एक ही ब्रह्मतत्त्व सम्पूर्ण विश्व-ब्रह्माण्डमें ओत-प्रोत होकर पूर्ण व्यापकरूपमें सर्वत्र विद्यमान है तो वहाँ दूसरे चेतनके लिये अवकाश ही कहाँ रह जाता है? अत: दूसरे चेतनके लिये अनवकाश है। जब ऐसा है तो एक ब्रह्म ही सब देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, सरीसृप आदि समस्त प्राणियोंके रूपमें हुआ। तब अवतार भी इस ईश्वरका ही हुआ और फिर जीव और ब्रह्मकी एकता भी स्वत: ही सिद्ध हो जाती है।

साकार और निराकार ब्रह्म—वेदमें उस निर्गुण-निर्विशेष ब्रह्मतत्त्वका ही सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार तथा मूर्त और अमूर्तके भेदसे दो रूपोंमें वर्णन किया गया है। श्रुतिमें कहा गया है—

'द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चैवामूर्तं च॥'

(बृह० २।३।१)

ब्रह्मके दो रूप हैं, एक मूर्त, जो सगुण-साकाररूपमें जाना जाता है और दूसरा है अमूर्त, जो निर्गुण-निराकारके रूपमें जाना जाता है। अन्यत्र भी कहा है—

'परं चापरं च ब्रह्म यदोङ्कारः' (प्रश्न०उप० ५।२) अर्थात् यह ओंकाररूप ब्रह्म ही परब्रह्म भी है और अपरब्रह्म भी।

निर्गुण निराकारका तात्पर्य है जिसका कोई रूप या आकार न हो। जिसके आकारकी कल्पना न हो, गुणसे रहित गुणातीत हो वही निराकारतत्त्व ब्रह्म है। वेदोंमें निर्गुण निराकार ब्रह्मका वर्णन बहुलरूपमें मिलता है। जैसे ऋग्वेद (८।६९।११), यजुर्वेद (४०।८), मुण्डक० (१।१६) तथा बृहदारण्यक (३।८।८) आदिमें देखा जा सकता है। रही बात सगुण-साकारकी। सगुण-साकार ब्रह्मका वर्णन भी वेदोंमें ही मौजूद है जो कि पुरुषसूक्तमें देखा जा सकता है। पुरुषसूक्त थोड़ा अन्तरके साथ चारों वेदोंमें आता है। उसी पुरुषसूक्तके प्रथम मन्त्रमें ही सगुण-साकार ब्रह्मका वर्णन आता है। यथा—

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥

(ऋक्० १०।९०।१)

हजारों मस्तक जिसके हैं, हजारों आखें जिसकी हैं, हजारों बाहु जिसके हैं, हजारों पाँव जिसके हैं, ऐसा एक पुरुष है। वह भूमिको चारों ओर घेरकर रह रहा है और दस अङ्गुल नाभिसे ऊपर हृदयस्थानमें अथवा दस अङ्गुल-रूप अल्प-सृष्टिको व्याप्त कर बाहर भी वह है।

इस पुरुषके सिर, आँख, बाहु और पाँव आदि लिखे हैं। यह उपलक्षण है। अर्थात् इस पुरुषके—सिर, आँख, नाक, कान, बाहु, छाती, उदर, मूत्रद्वार, जाँघें, गुह्यद्वार, पिण्डलियाँ, पाँव अर्थात् समस्त अवयव हजारों, लाखों, करोड़ों, अरबों हैं। ऐसा यह पुरुष पृथ्वीके ऊपर चारों ओर पृथ्वीको घेरकर रह रहा है और पृथ्वी जैसे अन्य लोकोंमें भी है।

उक्त मन्त्रमें सगुण-साकार ब्रह्मका ही वर्णन किया गया है निर्गुण-निराकार ब्रह्मका नहीं; क्योंकि हाथ, पाँव, नेत्र तथा मस्तक आदि सगुण-साकार ब्रह्मके ही होते हैं निर्गुण-निराकार ब्रह्मके नहीं। जब ब्रह्म सगुण-साकार है तो वह गर्भमें भी आता है, शरीर भी धारण करता है और अवतार आदि भी लेता है—यह बात स्वत: ही सिद्ध हो जाती है। इसलिये वेदमें स्पष्ट रूपमें कहा है—

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा वि जायते।
तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा॥

(यजु० ३१।१९)

सर्वात्मा प्रजापति गर्भमें प्रविष्ट होकर अजन्मा होते हुए भी अनेक कारणरूप होकर जन्म लेते हैं, शरीर धारण करते हैं। धीर पुरुष उस प्रजापतिके मूलस्थानको देखते हैं। सम्पूर्ण भुवन उस कारणात्मक प्रजापतिरूप ब्रह्ममें स्थित है।

अन्यत्र भी कहा है—

'एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः। स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ्जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः॥' (यजु० ३२।४)

वह परमात्मदेव सब दिशा-विदिशाओंमें नाना रूप धारण करके ठहरा हुआ है। वही प्रथम सृष्टिके आरम्भमें हिरण्यगर्भके रूपमें उत्पन्न हुआ, वही गर्भके भीतर आया और वही उत्पन्न हुआ। आगे भी वही उत्पन्न होगा—जो सबके भीतर ठहरा हुआ है और जो नाना रूप

धारण करके सब ओर मुखवाला हो रहा है। अथर्ववेदमें भी स्पष्ट शब्दोंमें कहा है कि—

'उतैषां पितोत वा पुत्र एषामुतैषां ज्येष्ठ उत वा कनिष्ठः।
एको ह देवो मनसि प्रविष्टः प्रथमो जातः स उ गर्भे अन्तः॥'

(अथर्व० १०।८।२८)

हे सर्वेश्वर! तू ही इन प्राणियोंका पिता है, पुत्र है, इनका ज्येष्ठ है और कनिष्ठ भी है। एक ही देवता मनमें प्रविष्ट हुआ है और वही गर्भके भीतर आता है तथा जन्म लेता है।

वेदकी उक्त ऋचाओंसे स्पष्ट प्रमाणित हो जाता है कि परमात्मा गर्भमें आता है, शरीर धारण करता है, अवतार धारण करता है।

प्रश्न—परमात्मा अवतार क्यों लेते हैं? क्या प्रयोजन है उन्हें अवतार लेनेका?

उत्तर—इस प्रश्नका उत्तर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने स्वयं ही गीता (४।७-८)-में इन शब्दोंके द्वारा दिया है। यथा—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

हे भरतवंशी अर्जुन! जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब-तब ही मैं अपने रूपको रचता हूँ अर्थात् साकार रूप धारण कर लोगोंके सम्मुख प्रकट होता हूँ। साधुपुरुषोंका उद्धार और पापकर्म करनेवालोंका विनाश करनेके लिये एवं धर्मको पुनः प्रतिस्थापित करनेके लिये मैं युग-युगमें प्रकट होता हूँ—शरीर धारण करता हूँ। परंतु **'जन्म कर्म च मे दिव्यम्'** (गीता ४।९) मेरा जन्म और कर्म दिव्य और अलौकिक होता है। यही तो अवतारोंकी विशेषता होती है।

प्रश्न—परमात्मा जब किसी स्थानविशेषमें अवतार धारण कर लेता है तब तो वह एकदेशीय अर्थात् सीमित बन गया और उसकी सर्वव्यापकता भी समाप्त हो जाती होगी, तब जगत्का शासन कौन करता होगा?

उत्तर—परमात्माके किसी स्थानविशेषमें अवतार धारण कर लेनेपर भी उसकी सर्वव्यापकता समाप्त नहीं हो जाती और न ही उसका शासन ही समाप्त हो जाता है, प्रत्युत पूर्ववत् चलता ही रहता है। उसके लिये श्रुतिने अग्नि और वायुका दृष्टान्त दिया है। यथा—

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो
रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा
रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥

(कठ० २।२।९)

जिस प्रकार समस्त ब्रह्माण्डमें प्रविष्ट एक ही अग्नि नाना रूपोंमें उनके समान रूपवाला-सा हो रहा है, वैसे ही समस्त प्राणियोंका अन्तरात्मा परब्रह्म एक होते हुए भी नाना रूपोंमें उन्हींके-जैसे रूपवाला हो रहा है और उनके बाहर भी वही है।

इसी प्रकार वायुका भी दृष्टान्त दिया है। अतः परमात्माके कहींपर भी अवतार धारण कर लेनेपर भी न तो उनकी सर्वव्यापकता समाप्त हो जाती है और न जगत्का शासन-कार्य ही समाप्त हो जाता है, प्रत्युत समस्त कार्य पूर्ववत् चलता ही रहता है, यही उनकी विशेषता है।

चौबीस अवतारोंके नाम—पुराणोंमें जिन चौबीस अवतारोंका नाम आता है, वे इस प्रकार हैं—१-नारायण (विराट् पुरुष), २. ब्रह्मा, ३. सनक-सनन्दन-सनत्कुमार-सनातन, ४. नर-नारायण, ५. कपिल, ६. दत्तात्रेय, ७. यज्ञ, ८. हयग्रीव, ९. ऋषभदेव, १०. पृथु, ११. मत्स्य, १२. कूर्म, १३. हंस, १४. धन्वन्तरि, १५. वामन, १६. परशुराम, १७. मोहिनी, १८. नृसिंह, १९. वेदव्यास, २०. राम, २१. बलराम, २२. श्रीकृष्ण, २३. बुद्ध तथा २४. कल्कि।

इनमें दस अवतार मुख्य हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं—मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि। कल्कि अवतार अभी नहीं हुआ है, कलिके अन्तमें होगा।

अवतारोंकी दिव्य कथा अत्यन्त रोचक तथा प्रभावशाली है। इस सन्दर्भमें कुछ अवतारोंकी वैदिकताका सांकेतिक वर्णनमात्र प्रस्तुत है—

ब्रह्मावतार—ब्रह्मावतारके विषयमें अथर्ववेदमें कहा गया है कि—

ब्रह्मज्येष्ठा संभृता वीर्याणि ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमा ततान्।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः॥

(अथर्व० १९।२३।३०)

ब्रह्माजीने बड़े बल धारण किये हैं, उन्होंने ही सृष्टिके आरम्भमें बड़े द्युलोकका विस्तार किया है। वे समस्त प्राणियोंसे पूर्व प्रकट हुए। उन ज्येष्ठ ब्रह्मासे स्पर्धा करनेमें कौन समर्थ है? अर्थात् कोई नहीं।

मुण्डक श्रुतिमें भी कहा गया है कि—

'**ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता।**' (मुण्डक० १।१।१)

ब्रह्माजी समस्त देवताओंसे प्रथम उत्पन्न हुए, जो जगत्के रक्षक तथा विश्वके बनानेवाले हैं।

यजुर्वेदमें भी कहा गया है—

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

(यजु० १३।४)

हिरण्यपुरुषरूप ब्रह्माण्डमें गर्भरूपसे स्थित प्रजापति ब्रह्मा हिरण्यगर्भ हैं। समस्त प्राणियोंमें पहले उन्होंने शरीर धारण किया, वे ही जातमात्र समस्त जगत्के अकेले ही पति हुए। वे अन्तरिक्ष, द्युलोक और इस पृथ्वीको धारण किये हुए हैं। उन प्रजापतिको हम हवि देते हैं।

मनुने भी कहा है—

तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम्।
तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः॥

(मनु० १।९)

वह जो सुवर्णकी कान्तिवाला सूर्यके समान तेजधारी अण्ड था, उस अण्डमें सर्वलोकके पिता ब्रह्मा स्वयं प्रकट हुए। इससे भी ब्रह्मावतारकी बात सिद्ध होती है।

वामनावतार—वामनावतारका उल्लेख भी वेदमें ही है। जैसे कहा है—

'**इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्। समूढमस्य पांसुरे स्वाहा॥**' (यजु० ५।१५)

सर्वव्यापक विष्णुने इस चराचर विश्वको विभक्त कर पहला पृथिवी, दूसरा अन्तरिक्ष और तीसरा द्युलोकमें पदनिक्षेप किया है। इस विष्णुके पदमें सम्पूर्ण विश्व समा गये। हम उन्हीं परमात्माके लिये हवि देते हैं।

ब्राह्मणग्रन्थमें भी कहा है कि—

'**वामनो ह विष्णुरास**''''॥' (शतपथ० कां० १।२।२।५) अर्थात् विष्णु ही वामन थे—जो वामनावतार कहलाये। अन्य श्रुतिमें भी कहा है—'**मध्ये वामनमासीनं विश्वेदेवा उपासते॥**' (काठक श्रुति० ५।३)

शरीरके मध्य (हृदय)-में बैठे हुए उस सर्वश्रेष्ठ वामनरूप परमात्माकी सभी देवता उपासना करते हैं—पूजते हैं। इससे भी वामनावतार सिद्ध हो जाता है।

वराह-अवतार—वराहावतारकी बात भी वेदमें ही मिल जाती है। जैसे कहा है—

मल्वं बिभ्रती गुरुभृद् भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः।
वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय वि जिहीते मृगाय॥

(अथर्व० १२।१।४८)

शत्रुको भी धारण करनेवाली, पुण्य और पाप करनेवालेके शवको भी सहनेवाली, बड़े-बड़े पदार्थोंको धारण करनेवाली और वराह—सूकर जिसे ढूँढ़ रहे थे वह पृथ्वी वराहको ही प्राप्त हुई थी और उन्होंने ही पृथ्वीका उद्धार किया है।

इसकी पुष्टिमें तैत्तिरीय आरण्यकमें कहा गया है—

'**उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना।**'

(तै० आरण्यक १।१।३०)

हे भूमि! तुम्हारा असंख्य भुजावाले कृष्ण-वराहने उद्धार किया।

इसी बातको शतपथब्राह्मणमें भी कहा गया है। यथा—

इयतीह वा इयमग्रे पृथिव्यास प्रादेशमात्री तामेमूष।
इति वराह उज्जघान सोस्याः पति प्रजापतिरिति॥

(शतपथ० १४।१।२।११)

पहले तो भूमि प्रादेशमात्र प्रकट हुई, उसका वराहने उद्धार किया, इसलिये इसका पति प्रजापति हैं। इससे भी वराहावतार सिद्ध होता है।

यक्षावतार—सामवेदीय केनोपनिषद् तलवकार ब्राह्मणके अन्तर्गत है। इसमें प्रारम्भसे लेकर अन्ततक सर्वप्रेरक ब्रह्मतत्त्वके ही स्वरूप तथा प्रभावका वर्णन

किया गया है। इसमें चार खण्ड हैं, तीसरे खण्डमें यक्षोपाख्यान है। इसके द्वारा देवताओंकी अन्तस्थ-अहंवृत्तिका निरसन हुआ है।

एक बार परब्रह्म परमात्माने ही देवताओंको शक्ति प्रदान की, जिससे उन्होंने असुरोंपर विजय प्राप्त की, किंतु उस परब्रह्म परमात्माकी विजयमें इन्द्र आदि देवताओंने अपनेमें महत्त्वका अभिमान कर लिया। वे ऐसा समझने लगे कि यह हमारी ही विजय है और हमारी ही यह सब महिमा है।

परंतु उस परब्रह्मने इन देवताओंके अभिमानको जान लिया और कृपापूर्वक उनका अभिमान दूर करनेके लिये देवताओंके समक्ष वे निर्गुण-निराकार ब्रह्म ही सगुण-साकार रूप धारण कर अर्थात् यक्षके रूपमें प्रकट हो गये। अचानक ही व्योममण्डलमें एक दिव्य तेजस्वी यक्षके रूपको देखकर सब देवता घबरा गये। यह यक्ष कौन है? कोई असुर ही तो हमारा भेद लेनेके लिये नहीं आ गया? इसका पता लगा लेना चाहिये। तब देवताओंने अपने प्रधान अग्निदेवसे कहा कि हे जातवेदा अग्नि! आप जाकर इस बातका पता लगाइये कि यह यक्ष कौन है? अग्निने कहा—बहुत अच्छा। ऐसा कहकर अग्नि यक्षके पास जा पहुँचे। यक्षने पूछा—आप कौन हैं? अग्निने उत्तरमें कहा—मैं जातवेदा अग्नि हूँ। यक्षने फिर पूछा—आपमें क्या पराक्रम है? अग्निने कहा—मेरे पराक्रमकी बात मत पूछिये, मैं यदि चाहूँ तो समस्त ब्रह्माण्डको जलाकर राखका ढेर बना दूँ। यह सुनकर यक्षने उनके सामने एक तिनका रखकर कहा कि इसको जलाकर दिखायें। अग्नि बड़े वेगसे उस तिनकेपर टूट पड़े, परंतु वे उस तिनकेको नहीं जला सके। तब निराश होकर वे देवताओंके पास लौट आये और कहा कि यह यक्ष कौन है, मैं नहीं जान सका। उसे जानना मेरी शक्तिसे बाहर है।

उसके बाद देवताओंने वायुसे कहा कि अब आप जायँ और यह पता लगायें कि यह यक्ष कौन है? आदेश मिलते ही वायुदेवता शीघ्रतापूर्वक यक्षके पास पहुँच गये। यक्षने पूछा—आप कौन हैं? उसने उत्तर दिया कि मैं मातरिश्वा वायु हूँ। यक्षने उनसे भी पूछा कि आपमें क्या बल-पराक्रम है? वायुने कहा—यदि मैं चाहूँ तो इस ब्रह्माण्डको उड़ाकर इसके टुकड़े-टुकड़े बना दूँ। यक्षने उनके सामने भी एक तिनका रखकर कहा कि इसे उड़ाएँ। वायुने बड़े वेगसे उस तृणको उड़ाना चाहा, किंतु पूरी शक्ति लगाकर भी वायुदेवता उस तिनकेको उड़ा न सके। हारकर वायु भी देवताओंके पास जाकर बोले कि यह यक्ष कौन है, मैं नहीं जान सका।

तदनन्तर देवताओंने इन्द्रसे कहा कि अब आप जायँ और यह पता लगायें कि यह यक्ष कौन है? इन्द्र जब यह पता लगानेके लिये यक्षके पास गये तबतक यक्ष वहाँसे अन्तर्धान हो गया। बादमें ब्रह्मविद्यारूपिणी हैमवती उमाने इन्द्रको बताया कि यह यक्ष साक्षात् ब्रह्म ही था.

शिवावतारी गुरु गोरक्षनाथका लोक-कल्याणकारी रूप

(श्रीगोरक्षपीठाधीश्वर महन्त श्रीअवेद्यनाथजी महाराज)

गुरु गोरक्षनाथ भारतीय मानसमें देवाधिदेव शिवके रूपमें प्रतिष्ठित हैं। गोरक्षनाथको पुराणोंमें शिवका अवतार माना गया है। शिवके गोरक्ष-अवतारका वर्णन करते हुए कहा गया है कि भगवान् शिवने गोरक्षरूपमें अवतरित होकर योगशास्त्रकी रक्षा की और उसी योगशास्त्रको योगाचार्योंने यम-नियम आदि योगाङ्गोंके रूपमें यथास्थान निरूपित किया—

शिवो गोरक्षरूपेण योगशास्त्रं जुगोप ह।
यमाद्यङ्गैर्यथास्थाने स्थापिता योगिनोऽपि च॥

'महाकालयोगशास्त्रकल्पद्रुम' में देवताओंके पूछनेपर कि गोरक्षनाथ कौन हैं? स्वयं महेश्वर उत्तर देते हैं—

अहमेवास्मि गोरक्षो मद्रूपं तन्निबोधत।
योगमार्गप्रचाराय मया रूपमिदं धृतम्॥

भारतीय संस्कृतिमें सभी प्रकारके ज्ञानके आदिस्रोत शिव ही हैं। ये ही शिव योगमार्गके प्रचारके लिये 'गोरक्ष'-के रूपमें अवतरित होते हैं। योगमार्ग उतना ही प्राचीन है, जितनी प्राचीन भारतीय संस्कृति।

भारतीय साधनाके इतिहासमें गोरक्षनाथ निश्चय ही अत्यन्त महिमामय, अलौकिक प्रतिभासम्पन्न, युगद्रष्टा, लोक-कल्याणरत, महातेजस्वी, ज्ञानविचक्षण महापुरुष हुए हैं, जिन्होंने समस्त भारतीय तत्त्व-चिन्तनको आत्मसात् करके साधनाके एक अत्यन्त निर्मल मार्गका प्रवर्तन किया और लोकमानसमें वे शिवरूपमें प्रतिष्ठित हुए। नाथ-तत्त्व चिरन्तन है। शिवरूप गोरखनाथ देश-कालकी सीमासे परे हैं। भारतवर्षमें कोई ऐसा प्रदेश नहीं है, जहाँ गोरक्षनाथकी मान्यता न हो और जहाँके लोग सीधे उनसे अपना सम्बन्ध न जोड़ते हों। यह व्यापक स्वीकृति इस बातका प्रमाण है कि किसी समय नाथ-मत अत्यन्त प्रभावशाली रहा होगा। इसकी शक्तिका अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि इसमें शैव, शाक्त, जैन, बौद्ध, तन्त्र, रसायनके साथ ही औपनिषदिक चिन्तनके तत्त्व भी विद्यमान हैं। यही नहीं; वैष्णव-तन्त्रपर भी गोरखनाथजीकी योग-साधनाका स्पष्ट प्रभाव है। नाथयोगमें शक्ति-संयुक्त शिवकी जो परिकल्पना है, वह प्रमाणित करती है कि यह मत अत्यन्त प्राचीन है।

नाथ-पन्थकी परम्परागत मान्यताके अनुसार महायोगी गुरु गोरक्षनाथ आदिनाथ शिवके अवतार हैं, अतः उनकी ऐतिहासिकता अविवेच्य है। आदिनाथ शिव और गोरक्षनाथ तत्त्वतः एक ही हैं। स्वानन्दविग्रह, परमानन्दस्वरूप, परम गुरु (मत्स्येन्द्रनाथ)-की कृपासे योगविग्रह शिवगोरक्ष महायोगी गोरखनाथजी योगामृत प्रदान करनेके लिये चारों युगोंमें विद्यमान रहकर प्राणिमात्रको कैवल्यस्वरूपमें अवस्थित करते रहते हैं। यह निरूपित किया गया है कि गोरखनाथजी सत्ययुगमें पंजाबमें प्रकट हुए। त्रेतायुगमें वे गोरखपुरमें अधिष्ठित थे। द्वापरमें वे द्वारका (हरभुज)-में थे और कलियुगमें उनका प्राकट्य सौराष्ट्रमें काठियावाड़के गोरखमढ़ी नामक स्थानमें हुआ था। ऐसा विश्वास एवं ऐसी मान्यता है कि नाथयोग-साधनाके प्रख्यात केन्द्र गोरखनाथ मन्दिर, गोरखपुरमें त्रेतायुगमें भगवान् श्रीरामने अश्वमेधयज्ञके समय तथा द्वापरमें धर्मराज युधिष्ठिरने गोरखनाथजीको अपने-यज्ञोंमें शामिल होनेके लिये आमन्त्रित किया था। 'श्रीनाथ-तीर्थावली' नामक पुस्तकमें उल्लेख है कि द्वापरयुगमें गोरखनाथजीने कृष्ण एवं रुक्मिणीका कंकण-बन्धन सिद्ध किया था। साथ ही वे श्रीराम, हनुमान्, युधिष्ठिर, भीम आदि सभी धर्म एवं शक्तिके प्रतीकोंके पूज्य एवं मान्य हैं।

उपर्युक्त सभी बातोंका तार्किक संकेत मात्र इतना ही है कि शिवस्वरूप होनेके कारण योगिराज गोरखनाथ सर्वयुगीन एवं सर्वकालिक हैं। पूरे देशमें गोरखनाथजीकी समाधि कहीं भी नहीं मिलती है, हर जगह उनकी तपःस्थली—साधना-स्थली ही विद्यमान है।

गोरखनाथजीका व्यक्तित्व भारतीय संस्कृतिकी पौराणिक चेतनामें ढलकर भारतीय जनमानसमें प्रतिष्ठित परम तत्त्वके अवतारी स्वरूपोंके प्रति व्यक्त होनेवाली गहरी आस्थाका केन्द्र बन गया है। हिन्दू संस्कृतिकी समन्वयशील परम्परा अपने आराध्य देवोंको कभी अलग-अलग नहीं देख सकती। आज शिवावतारी योगिराज गोरखनाथ विशाल हिन्दू जनताके मानसमें श्रीराम-कृष्ण आदि अवतारोंकी

ही भाँति प्रतिष्ठित एवं पूज्य हैं। संत कबीर महायोगी गुरु गोरखनाथजीके चरित्र-व्यक्तित्व एवं योगसिद्धिसे इतने प्रभावित थे कि उन्हें कलिमें गोरखनाथजीकी अमरताका वर्णन करना पड़ा—

'सांषी गोरखनाथ ज्यूँ अमर भये कलि माहिं।'

गुरु गोरखनाथका नामकरण वंश-परम्परागत था अथवा दीक्षागत, यह कहना कठिन है। पर उनका यह गोरक्षनाथ नाम सार्थक अवश्य था। 'गोरक्ष' शब्द प्राय: दो अर्थोंमें गृहीत है—गो-रक्षक एवं इन्द्रिय-रक्षक। गोरखनाथजीका अपनी इन्द्रियोंपर पूर्ण नियन्त्रण था, यह विषय तो निर्विवाद है। साथ ही गो-रक्षक अथवा गो-सेवकके रूपमें भी उनके व्यक्तित्वका परिचय मिल जाता है। अनेक किंवदन्तियाँ गोरक्षनाथके गो-पालक रूपसे सम्बद्ध हैं। नेपालस्थित काठमाण्डू नगरकी मृगस्थली गोरक्षनाथजीकी तपोभूमि बतलायी जाती है। मृगस्थलीके सन्निकटका क्षेत्र आज भी 'गोशाला' नामसे सम्बोधित किया जाता है। नाथयोगी संत वर्तमान समयमें भी गायोंको मातृवत् सम्मान देते हैं। नाथमठों एवं मन्दिरोंमें ऐसी व्यवस्था है कि गौके लिये नियमित रूपसे ग्रास निकालकर आदरके साथ उसे ग्रहण कराया जाता है। शिवावतारी गुरु गोरक्षनाथकी त्रेतायुगकी तप:स्थली वर्तमान गोरखनाथ मन्दिर, गोरखपुरमें भी स्वदेशी गो-वंशके संरक्षण एवं संवर्धनकी परम्परा अत्यन्त प्राचीन है।

गोरक्षनाथजीका तात्त्विक स्वरूप तो अलौकिक है ही, पर एक व्यक्तिके रूपमें भी उनका व्यक्तित्व मध्ययुगीन साधकोंमें अद्वितीय है। मध्यकालमें विकृत होती हुई भारतीय साधनाओंके स्वरूप-तत्त्वोंको आत्मसात् कर योगगुरु गोरक्षनाथजीने नाथयोगको नयी शक्ति प्रदान की थी। बौद्ध धर्मकी तान्त्रिक परिणति एवं तन्त्र-साधनामें वाममार्गी प्रवृत्तियोंके प्रवेशके बाद भारतीय साधनाके क्षेत्रमें अनेक विकृतियाँ आ गयी थीं। साधनाके अभूतपूर्व कार्य किया। उनके व्यक्तित्वमें निर्भीकता, मस्ती एवं अक्खड़पन समाहित है। उन्होंने विविध तान्त्रिक शैव सम्प्रदायोंके भीतर लक्षित होनेवाली अनेक विडम्बनाओंकी नि:सारता सिद्ध करते हुए उनमें अपने ढंगकी समन्वयात्मक चेतना जाग्रत् की। आचरणकी शुद्धताके साथ-साथ जाति-पाँतिकी नि:सारता, बाह्याचार एवं तन्मूलक श्रेष्ठताके प्रति फटकारकी भावना गोरक्षनाथमें लक्ष्य की जा सकती है—

मूरिष सभा न बैसिबा अवधू, पंडित सौ न करिबा वादं।
राजा संग्रामे झूझ न करबा, हेलेसे न षोड्या नादं॥

(गो०बा० सबदी पृ० ४७)

गोरखनाथजीने योगीके जीवनको वाद-विवादसे परे देखनेका प्रयास किया। कार्यकी सात्त्विकता और झूठके महापापके प्रति गोरक्षनाथने चेतावनी दी है—***'जैसा करै सो तैसा पाय, झूठ बोले सो महा पापी।'*** गोरखनाथजीका जीवन उदात्त था, जिसमें सत्याचरण, ईमानदारी एवं कथनी-करनीका मेल था। सामान्य जनोंको संयमित जीवन व्यतीत करनेका तथा शीलयुक्त आचरण करनेका आदेश गोरक्षनाथजीने दिया है—

हबकि न बोलिबा ठबकि न चलिबा धीरे धरिवा पावं।
गरब न करिबा सहजै रहिबा भणत गोरष रावं॥

(गो०बा० सवदी पृ० २७)

गुरु गोरक्षनाथको स्त्रीके कामिनीरूपसे अपार घृणा थी। उन्होंने कञ्चन एवं कामिनीको सर्वथा त्याज्य वताया तथा ब्रह्मचर्यपर अत्यधिक वल दिया। उनकी वाणी है कि ज्ञान ही सवसे वड़ा गुरु है। चित्त ही सवसे वड़ा चेला है। ज्ञान और चित्तका योग सिद्ध कर जीवको जगत्में अकेला रहना चाहिये। यही श्रेय अथवा आत्मकल्याणका पथ है—

ग्यान सरीखा गुरू न मिलिया, चिन सरीखा चेला।
मन सरीखा मेल न मिलिया, तीथें गोरख फिरै अकेला॥

भूमितक ले जाना है, जहाँ प्राण एवं मन दिव्य आत्माके साथ एकत्वकी अनुभूति करते हैं। '*व्यष्टि पिण्डका परपिण्ड पदसे सामरस्य*'—नाथयोगका प्राणतत्त्व है।

शिव गोरक्ष महायोगी गोरखनाथजीका दिव्य जीवन-चरित शिवस्वरूप नाथयोगामृतका माङ्गलिक पर्याय है। गोरखनाथजीकी योगदृष्टिमें 'नाथ' शिवस्वरूप हैं। महायोगी गोरखनाथजीने लोक-लोकान्तरके प्राणियोंको सत्स्वरूपके योग-ज्ञानमें प्रतिष्ठित करनेके लिये योगदेह धारण किया था। उन्होंने जन-जीवनको सम्बुद्ध किया कि अहंकार नष्ट कर देना चाहिये, सद्गुरुकी खोज करनी चाहिये और योग-पन्थकी योगमार्गीय-साधनाकी कभी भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। मनुष्य-जीवनकी प्राप्ति बार-बार नहीं होती है, इसीलिये सिद्ध पुरुषके शरणागत होकर स्वसंवेद्य निरञ्जन तत्त्वका साक्षात्कार कर लेना ही श्रेयस्कर है। *गोरखनाथजीका योगदर्शन सार्वभौम है।* उन्होंने बाह्यसाधना—योगाभ्यासकी अपेक्षा अन्त:साधनाकी सिद्धिपर विशेष बल दिया। उन्होंने कहा कि स्वसंवेद्य परमात्मशिव तत्त्व अपने ही भीतर विद्यमान है। बाह्य-उपासना—योग-साधनासे स्वरूपबोध नहीं हो सकता है। उन्होंने कहा कि योग ही सर्वश्रेष्ठ साधन—मार्ग है। यही परम सुखका पुण्यप्रद मार्ग है। यह महासूक्ष्म ज्ञान है। इसपर चलनेवाला साधक जीवन्मुक्त हो जाता है।

प्राणिमात्रपर अहैतुकी कृपा करनेके लिये महायोगी गुरु गोरखनाथजीने साधकोंको कायिक, वाचिक और मानसिक अन्धकारसे बाहर निकालकर परमात्मस्वरूपका सूक्ष्मतम दिव्य विज्ञान अत्यन्त सरल जन-साधारणकी भाषामें प्रदान किया। सामान्य जनोंके अलावा अनेकानेक नाथ सिद्ध-योगियों एवं योग साधकोंको भी उन्होंने अपने उदात्त यौगिक चरित्र और व्यवहार तथा आचार-विचारसे प्रभावित किया। ऐसे योगियोंमें योगिराज भर्तृहरि, गौड़ बंगालके गोपीचन्द, उड़ीसाके मल्लिकानाथ, महाराष्ट्रके गहनिनाथ, पंजाबके चौरंगीनाथ, राजस्थानके गोगा पीर और उत्तराञ्चलके हाजी रतननाथ आदिके नाम अग्रगण्य हैं। इन योगसिद्धोंने गोरखनाथजीके सदुपदेशामृत और अलौकिक दिव्य-चरितसे स्वरूप-बोध प्राप्त किया। भारतवर्षके प्राय: सभी प्रदेशोंमें गोरखनाथजीके प्रभावी व्यक्तित्वका दर्शन होता है। नेपालमें तो वे पूरे राष्ट्रके गुरुपदपर अत्यन्त प्राचीन कालसे सम्मानित एवं पूजित हैं। गोरखनाथजीने लोकमङ्गलकी भावनाको अपनी दृष्टिमें रखकर सुख-दु:ख और मुक्तिका अपनी वाणीमें बड़ा मार्मिक निरूपण किया है कि जो इस शरीरमें सुख है, वही स्वर्ग है—आनन्दभोग है। जो दु:ख है वही नरक है अथवा अशुभ कर्मोंकी नारकीय यातना है। सकाम कर्म ही बन्धन है, संकल्परहित अथवा निर्विकल्प हो जानेपर मुक्ति सहज सिद्ध है—

'यत् सुखं तत् स्वर्गं यद् दु:खं तन्नरकं यत् कर्म तद् बन्धनं यन्निर्विकल्पं तन्मुक्ति:।'

(सिद्धसिद्धान्तपद्धति ३।१३)

गोरक्षोपदिष्टमार्ग वह योगमार्ग है, जिसपर चलकर संकीर्ण सम्प्रदायगत मनोवृत्तियोंको समाप्त कर बृहद् मानव-समाजका निर्माण किया जा सकता है। मलिक मोहम्मद जायसीने अपने ग्रन्थ '*पद्मावत*' में यहाँतक कह दिया है कि योगी तभी सिद्धि प्राप्त कर सकता है, जब वह (*अमरकाय*) गोरखका दर्शन पाता है, गोरखनाथसे उसकी भेंट होती है—

बिनु गुरु पंथ न पाइअ भूलै सोइ जो भेंट।
जोगी सिद्ध होइ तब जब गोरख सौं भेंट॥

(*पद्मावत २१७*)

गोरखनाथजीने योगशास्त्रविहित (ईश्वरप्रणिधान) भगवद्भक्तिका योगकी साधनाके परिप्रेक्ष्यमें अत्यन्त श्रेयस्कर प्रतिपादन किया है।

अध्यात्मके उच्च शिखरपर आरूढ़ होते हुए भी शिवावतारी गुरु गोरखनाथजीने अपनी योग-देहसे कथनी-करनीकी एकता, कनक-कामिनीके भोगका त्याग, ज्ञान-निष्ठा, वाक्-संयम, ब्रह्मचर्य, अन्त:-बाह्यशुद्धि, संग्रह-प्रवृत्तिकी उपेक्षा, क्षमा, दया, दान आदिका महत्त्वपूर्ण उपदेश दिया है। गोरखनाथजीकी शिक्षाओंकी प्रधान विशेषता है इसकी सर्वजनीनता। गोरखनाथजी अमरकाय हैं। उनका नाथयोग सनातन है।

प्रभुके अनन्त अवतार

[अवतारकथा: शुभा:]

(आचार्य श्रीकृपाशंकरजी महाराज, रामायणी)

भारतीय वाङ्मयके समस्त ग्रन्थोंमें, श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहासमें और श्रीमद्भागवत, श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीरामचरितमानस आदि लोकोपकारक सर्वमान्य सद्ग्रन्थोंमें पूर्णब्रह्म परात्पर श्रीभगवान्‌के अवतारोंकी कथा, अवतारोंके कारण और अवतारोंके रहस्यका अनेक प्रकारसे वर्णन किया गया है। इन ग्रन्थोंके अनेक मङ्गलमय प्रसङ्गोंमें श्रीठाकुरजीके विभिन्न अवतारोंका विभिन्न प्रकारसे निरूपण किया गया है, परंतु अन्तमें यह भी कहा है—

हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थं कहि जाइ न सोई॥

अर्थात् श्रीहरिके अवतार इतने ही नहीं हैं। श्रीभगवान्‌के अनन्त अवतार हैं, उनका परिगणन अशक्य है। योगीश्वर श्रीद्रुमिलजीने कहा है—हे राजेश्वर! श्रीहरि अनन्त हैं, उनके गुण भी अनन्त हैं। जो इन गुणोंका परिगणन करनेकी कामना करता है, वह बालबुद्धि है। यह तो शक्य है कि कोई किसी प्रकार भगवती वसुन्धराके धूलिकणोंका परिगणन कर ले, परंतु समग्र शक्तियोंके आश्रयभूत श्रीहरिके अनन्त गुणोंकी, अवतारोंकी और उनके दिव्य नामोंकी गणना कोई कभी किसी प्रकार नहीं कर सकता है—

यो वा अनन्तस्य गुणाननन्ता-
ननुक्रमिष्यन् स तु बालबुद्धिः।
रजांसि भूमेर्गणयेत् कथञ्चित्
कालेन नैवाखिलशक्तिधाम्नः॥

(श्रीमद्भा० ११।४।२)

श्रीमद्भागवतमहापुराणके आरम्भमें ही प्रथम अध्यायमें श्रीशौनकादि ऋषियोंने श्रीसूतजीसे छः प्रश्न किये हैं।

किं श्रेयः शास्त्रसारः कः स्वावतारप्रयोजनम्।
किं कर्म कोऽवताराश्च धर्मः कं शरणं गतः॥
इत्येते सूतमुद्दिश्य षट् प्रश्नाः मुनिभिः कृताः।

उनमें पाँचवाँ प्रश्न है—

अथाख्याहि हरेर्धीमन्नवतारकथाः शुभाः।
लीला विदधतः स्वैरमीश्वरस्यात्ममायया॥

(श्रीमद्भा० १।१।१८)

इस श्लोकमें 'अथ' शब्दसे मङ्गलाचरण करके मुनिलोग प्रश्न करते हैं—हे धीमन्! हे दिव्यबुद्धिसम्पन्न श्रीसूतजी! मेरे इस प्रष्टव्य प्रश्नके उत्तरका परिज्ञान सर्वसाधारणको नहीं हो सकता है, एतावता सर्वसाधारणसे पूछा भी नहीं जा सकता है। आप भगवत्प्रदत्त बुद्धिसे सब जानते हैं। आपने महाभारत आदि समस्त इतिहासोंके साथ पुराणों और धर्मशास्त्रोंका विधिवत् अध्ययन किया है तथा उनकी विधिवत् व्याख्या भी की है। आपने वेदवेत्ताओंमें परम श्रेष्ठ महान् रसिक भगवान् बादरायणि—महामुनीन्द्र श्रीशुकदेवजीकी करुणामयी कृपा प्राप्त की है, सुतरां आप मेरे प्रश्नका उत्तर देनेमें सर्वथा समर्थ हैं। इसी आशयसे '**धीमन्**' सम्बोधनसे सम्बोधित किया है। **ईश्वरस्य**—सर्वं कर्तुं समर्थ श्रीभगवान्‌की, **आत्ममायया**—अपनी इच्छाशक्तिसे—'*आत्ममाया तदिच्छा स्याद् गुणमाया जडात्मिका।*' (महासंहिता) '*निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार।*' (रा०च०मा० १।१९२), '*निज इच्छाँ प्रभु अवतरइ सुर महि गो द्विज लागि।*' (रा०च०मा० ४।२६), '*इच्छामय नरबेष सँवारें। होइहउँ प्रगट निकेत तुम्हारें॥*' (रा०च०मा० १।१५२।१) अथवा '**आत्मनः स्वस्य मायया आश्चर्यशक्तियुक्तेन**' आश्चर्यशक्तिके द्वारा किं वा सङ्कल्परूपा ज्ञानशक्तिके द्वारा '**मायया सततं वेत्ति प्राणिनाञ्च शुभाऽशुभम्।**' अथवा **आत्ममायया**—अपनी योगमायाके द्वारा किं वा अपनी अनन्त अचिन्त्य शक्तिके द्वारा स्वच्छन्द लीला करते हैं। आप उन श्रीहरिकी शुभा—मङ्गलमयी—अमायिकी—वक्ता, श्रोता-प्रश्नकर्ताको यथेष्ट धर्मादि शुभ फल प्रदान करनेवाली अवतारकथाओंका वर्णन कीजिये।

श्रेयस् तो सत्त्वगुण शरीरवाले श्रीठाकुरजीसे ही होता है—

> सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्गुणास्तै-
> र्युक्तः परः पुरुष एक इहास्य धत्ते।
> स्थित्यादये हरिविरिञ्चिहरेति संज्ञाः
> श्रेयांसि तत्र खलु सत्त्वतनोर्नृणां स्युः॥
>
> (श्रीमद्भा० १।२।२३)

इसके पूर्व परमात्माका पुरुषावतार होता है। पुरुषावतार, गुणावतार और लीलावतार—इन तीन प्रकारके अवतारोंमें ही समस्त अवतारोंका अन्तर्भाव माना जाता है। तीन प्रकारके पुरुषावतार, तीन प्रकारके गुणावतार और अनेक प्रकारके लीलावतारोंका वर्णन किया गया है। श्रीसनकादि, श्रीनारद, श्रीवाराह, श्रीमत्स्य, श्रीयज्ञ, श्रीनर-नारायण, श्रीकपिल, श्रीदत्तात्रेय, श्रीहयग्रीव, श्रीहंस, श्रीपृश्निगर्भ, श्रीऋषभ, श्रीपृथु, श्रीनृसिंह, श्रीकूर्म, श्रीधन्वन्तरि, श्रीमोहिनी, श्रीवामन, श्रीपरशुराम, श्रीदाशरथि राम, श्रीवेदव्यास, श्रीबलभद्र, श्रीकृष्णचन्द्र, श्रीबुद्ध और श्रीकल्कि इत्यादि अवतार प्रत्येक कल्पमें होते हैं। इनके अतिरिक्त मन्वन्तरावतार आदि अनेक प्रकारके अवतार और भी होते हैं।

श्रीशौनकादि महर्षि श्रीसूतजीसे प्रश्न करते हैं—हे धीमन्! इन अवतारकथाओंका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये।

> **इति सम्प्रश्नसंहृष्टो विप्राणां रौमहर्षणिः।**
> **प्रतिपूज्य वचस्तेषां प्रवक्तुमुपचक्रमे॥**
>
> (श्रीमद्भा० १।२।१)

इस प्रकार ब्राह्मणोंके सम्यक् प्रश्नसे परम प्रसन्न होकर भगवद्गुणोंके श्रवण, स्मरण और वर्णन करते समय जिनके रोम-रोममें सर्वदा प्रसन्नता समुच्छलित होती रहती थी, ऐसे श्रीरोमहर्षणके पुत्र उग्रश्रवा सूतने ऋषियोंके मङ्गलमय वचनोंका अभिनन्दन करके कहना आरम्भ किया।

श्रीसूतजी श्रीहरिके अनेक अवतारोंका वर्णन करके अन्तमें कहते हैं—हे शौनकादि महर्षियो! यह तो श्रीभगवान्के अवतारोंका दिशानिर्देश मात्र किया गया है। उनके समस्त अवतारोंका सामस्त्येन वर्णन करनेमें कौन सक्षम है? जिस प्रकार उपक्षयशून्य—अगाध सरोवरसे सहस्रों छोटी-छोटी नदियाँ निकलती हैं, उसी प्रकार सत्त्वनिधि श्रीहरिके अगणित अवतार हुआ करते हैं—

> **अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः।**
> **यथाविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः॥**
>
> (श्रीमद्भा० १।३।२६)

इस श्लोकमें श्रीहरिको सत्त्वनिधि कहनेका आशय यह है कि श्रीभगवान् विशुद्ध सत्त्वमूर्ति हैं, वे पालन करते हैं। पालन करनेके लिये जब जिस अवतारकी अपेक्षा होती है, उसी समय उस अवतारको धारण कर लेते हैं। उदाहरणके रूपमें एक अत्यन्त भावपूर्ण विलक्षण प्रसङ्ग प्रस्तुत कर रहा हूँ। इस प्रसङ्गमें अवतारोंके आनन्त्य—असंख्य होनेका परिज्ञान होता है। किं बहुना परमकृपालु श्रीहरि किन-किन स्वरूपोंको हमारे लिये स्वीकार करते हैं, यह अनुभव भी भक्तहृदयको होता है।

महामुनीन्द्र व्यासनन्दन श्रीशुकदेवजी कहते हैं—'हे उत्तरानन्दन! सावधान होकर इस रहस्यमयी लीलाका आस्वादन करो।'

नन्दनन्दन परमानन्दकन्द मुरलीमनोहर श्यामसुन्दर श्रीकृष्णचन्द्र अपने सखा ग्वाल-बालोंकी मृत्युरूप अघासुरके मुखसे रक्षा करके उन्हें यमुना-पुलिनपर ले आये और उनसे कहने लगे—'हे मेरे सखाओ! यह कालिन्दीपुलिन यमुनातट कितना सुरम्य है। यहाँ हमलोगोंके क्रीडा करने योग्य समग्र सामग्री विद्यमान है। यहाँ गद्देके समान अत्यन्त सुकोमल और स्वच्छ बालुका—यामुनरेणु बिछी है। वृक्षोंपर बैठे पक्षी अत्यन्त मधुर ध्वनि कर रहे हैं, दूसरी ओर विकसित कमलोंकी सुगन्धसे आकृष्ट होकर भ्रमर गुञ्जार कर रहे हैं। मानो ये पक्षी और मधुप हमारा स्वागतगान कर रहे हैं। समय अधिक हो गया है, हमलोग क्षुधार्त्त भी हैं, सुतरां हमें यहीं भोजन कर लेना चाहिये। हमारे गोवत्स-बछड़े पासमें ही पानी पीकर धीरे-धीरे घास चरते रहें—

> 'चरन्तु शनकैस्तृणम्॥'
>
> (श्रीमद्भा० १०।१३।६)

श्रीठाकुरजीके प्रिय सखाओंने—ग्वालबालोंने कहा—हाँ, कन्हैया भैया! ऐसा ही हो। तदनन्तर उन्होंने गोवत्सोंको जल पिलाकर हरी-हरी घासोंमें छोड़ दिया। समस्त सखा श्रीभगवान्के सामने मण्डल बनाकर बैठ गये। सबके

मध्यमें सबके प्यारे दुलारे, आँखोंके तारे श्रीकृष्णचन्द्रजी विराज रहे थे। सखाओंके नेत्र श्रीहरिके मुखको निहारकर आनन्दसे प्रफुल्लित हो रहे थे। यद्यपि सबका प्रभुके सम्मुख होना सम्भव नहीं था तथापि श्रीहरिकी अचिन्त्य लीलाशक्तिने सबके सम्मुख सबके सामने लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्णचन्द्रको प्रकट कर दिया। व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रका मङ्गलमय मुखारविन्द प्रत्येक ग्वाल-बालकी ओर ही है। प्रत्येक सखाको प्रतीत हो रहा है—हमारा प्राणधन गोपाल हमारी ओर स्नेहपूर्ण दृष्टिसे देखकर स्नेह-सौहार्द्रकी अजस्र धारा प्रवाहित करते हुए अवस्थित है—

'सहोपविष्टा विपिने विरेजु-
श्छदा यथाम्भोरुहकर्णिकायाः॥'

(श्रीमद्भा० १०।१३।८)

आज ग्वाल-बालोंके भोजनपात्र भी अनोखे ही हैं। कुछने कमलके पत्र आदिको लेकर अपना भोजनपात्र निर्मित किया है। कुछने पवित्र कदली-पत्रको भोजनपात्र बनाया है। कुछ ग्वाल-बालोंने प्रक्षालित प्रस्तरखण्डोंको ही अपने सामने भोजनपात्रके लिये स्थापित कर लिया है।

श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी मधुर वाणीसे कहा—हे समुज्ज्वल निष्क-पदक धारण करनेवाले मेरे बन्धुओ! अपने-अपने

छींकोंसे सुन्दर सुस्वादु भोजन-सामग्री निकालो—

भो भो भो भो उज्ज्वलनिष्काः निष्कासयत भक्ष्य सामग्रीयमिति। (श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पू)

अपने प्राणसखा श्रीकृष्णचन्द्रके स्नेहिल वचनोंको सुनकर सबने अपने-अपने छींकेसे दही, भात, मीठा मोदक, नमकीन, बड़ा, शाक-भाजी, चटनी, अचार, मुरब्बा, पायस आदि अनेक प्रकारके व्यञ्जन निकाले और उन्हें पत्तों और पत्थरोंका पात्र बनाकर भोजन करने लगे। सभी अपने-अपने भोजनोंके स्वादका वर्णन करते थे। इस प्रकार हँसते-हँसाते भोजनानन्दका सब आनन्द ले रहे थे। इस प्रकार सुखसागरमें निमग्न बालकवृन्द भोजन करते हुए असीम आनन्दमें विभोर थे। स्वयं करुणा-वरुणालय जगदीश्वर कन्हैया जिनके सखाके रूपमें नित्य वर्तमान हैं, उनके सुखकी इयत्ता हो ही कैसे सकती है?

आकाशपथ विमानोंसे परिपूर्ण हो गया है। इस अभूतपूर्व अप्रतिम मनोहर छविका दर्शन देवसमाज अपने सहज निमेषोन्मेषरहित अपलक नेत्रोंसे—अतृप्त नेत्रोंसे कर रहा है। सर्वयज्ञभोक्ताका यह भोजन—ऐसा वात्सल्य-रससम्पुटित स्वच्छन्द भोजनकालीन विहार क्या बार-बार देखनेको मिल सकता है?

'स्वर्गे लोके मिषति बुभुजे यज्ञभुग् बालकेलिः॥'

(श्रीमद्भा० १०।१३।११)

'भोजन करत कुँवर साँवरे छवि लखि अमर भये बावरे।'

एक सखाने आश्चर्यसे कहा—हे कन्हैया! भैया! हमारे गोवत्स कहाँ चले गये? फिर तो सबके हाथके ग्रास हाथमें ही रह गये। सबकी दृष्टि उस अदूरवर्ती तृणश्यामल भूभागपर चली गयी, जहाँ अभी-अभी कुछ क्षण पूर्व समस्त गोवत्स स्वच्छन्द विचरण कर रहे थे, परंतु सम्प्रति वहाँ एक भी न था। सब-के-सब न जाने कहाँ चले गये। श्रीहरिके समस्त सखा अपने प्यारे कन्हैयाकी ओर भयसन्त्रस्त दृष्टिसे देखने लगे। उनकी दृष्टिसे अनेक प्रकारके भाव अभिव्यक्त हो रहे थे। भैया कन्हैया! आपको छोड़कर तो बछड़े कभी कहीं नहीं जाते थे। वे तो हमारी ही तरह आपका मङ्गलमय दर्शन करके आनन्दानुभूति करते थे। आज कहाँ चले गये? कैसे चले गये? क्यों चले गये?

भैया! कन्हैया! [illegible]

उसे यों ही छोड़कर चले आये। उसे तो जला देना चाहिये था। सर्प तो हवा चलनेपर स्वयं जीवित हो जाते हैं, कहीं जीवित होकर उसने हमारे गोवत्सोंको अपना ग्रास तो नहीं बना लिया? उस समय अपने सखाओंके मन, प्राण और इन्द्रियोंको शीतल करते हुए, उन्हें आश्वस्त करते हुए करुणामय श्रीकृष्णचन्द्रने कहा—हे मेरे सखाओ! तुम लोग निश्चिन्त हो जाओ, भोजन करना मत छोड़ो। गोवत्सोंको तो मैं अकेला ही जाकर लाता हूँ—

तान् दृष्ट्वा भयसंत्रस्तानूचे कृष्णोऽस्य भीभयम्।
मित्राण्याशान्मा विरमतेहानेष्ये वत्सकानहम्॥

(श्रीमद्भा० १०।१३।१३)

इस श्लोकमें श्रीकृष्णजीको '**अस्य भीभयम्**' कहा गया है। इसका भाव यह है—इस संसारके भी जो भय हैं—काल आदि, उनको भी भय प्रदान करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् हैं अर्थात् वे स्वतः ही सबको अभय प्रदान करनेवाले हैं, सुतरां इनके वाक्यसे ही सद्यः भय समाप्त हो गया।

इस प्रकार अपने सखाओंको आश्वस्त करके हस्तगृहीत-ग्रास श्रीहरि सखाओंके बछड़ोंको खोजनेके लिये चल पड़े—

'**विचिन्वन् भगवान् कृष्णः सपाणिकवलो ययौ॥**'

(श्रीमद्भा० १०।१३।१४)

इस पंक्तिमें **भगवान्, कृष्णः, सपाणिकवलः**—ये तीन शब्द मननीय हैं। '**भगवान्**' अर्थात् महान् दयालु हैं। '**कृष्णः**' अर्थात् सबके चित्तको आकर्षित करनेवाली मधुर लीलाका आस्वादन कराते हैं। '**सपाणिकवलः**' का आशय है—

(क) अपने प्रिय सखाओंके संतोषके लिये '**सपाणिकवलः**' होकर गये कि हे सखाओ! मैंने हाथ भी नहीं धोया, तुम्हारा कार्य करने जा रहा हूँ।

(ख) हे संसारके भक्तो! देखो, मैं अपने भक्तोंके लिये कितना दयालु हूँ कि जैसा था वैसा ही चल पड़ा।

(ग) वत्सान्वेषणके समय भी अपने सखाओंका अर्पण किया हुआ स्नेहिल भोजन करता रहूँगा।

(घ) गोवंशका संरक्षण करनेके लिये अत्यन्त शीघ्र चल पड़े।

(ङ) श्रीब्रह्माजीको शिक्षा दी कि देखो, मेरा यह भी एक स्वरूप है।

चतुर्मुख श्रीब्रह्माजी पहलेसे ही नभपथमें समुपस्थित थे। उन्होंने पहले तो बछड़ोंको और फिर गोपाल कृष्णके गोवत्सोंको खोजनेके लिये जानेपर ग्वाल-बालोंका भी अपहरण करके अन्यत्र ले जाकर स्थापित कर दिया। तदनन्तर स्वयं अन्तर्धान हो गये।

विश्वके समस्त ज्ञान-विज्ञानके जो उत्स हैं, वे सर्वज्ञशिरोमणि आज गोवत्सोंकी गतिविधिको नहीं जान पाये, उनका पता नहीं लगा पाये और अन्ततः निराश होकर यमुनापुलिनपर आ गये। वहाँ किसी सखाको न देखकर एक-एकका नाम लेकर पुकारने लगे। श्रीदाम, सुबल, तोककृष्ण, भद्रसेन, अर्जुन, पयोद, चन्दन, मङ्गल, मधुमङ्गल आदिका नाम ले-लेकर यशोदानन्दन करुणस्वरमें उच्च स्वरसे बुलाने लगे, परंतु कहींसे कोई प्रत्युत्तर नहीं प्राप्त हुआ—

ततो वत्सानदृष्ट्वैत्य पुलिनेऽपि च वत्सपान्।
उभावपि वने कृष्णो विचिकाय समन्ततः॥

(श्रीमद्भा० १०।१३।१६)

अन्तमें लीलाभिनय छोड़कर श्रीभगवान् अपने विश्ववित् रूपमें प्रतिष्ठित हो जाते हैं। गोवत्स, ग्वाल-बाल कहाँ हैं, वे कैसे गये, क्यों गये और उन्हें कौन ले गया—सब जान गये।

क्वाप्यदृष्ट्वान्तर्विपिने वत्सान् पालांश्च विश्ववित्।
सर्वं विधिकृतं कृष्णः सहसावजगाम ह॥

(श्रीमद्भा० १०।१३।१५)

करुणामय, वृजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रने सोचा— गोधूलिवेलामें जब मैं घर जाऊँगा, तब मेरी वात्सल्यमयी मैया आनन्द और उत्साहसे मेरा स्वागत करेगी। उस समय मेरे सखाओंकी माताएँ भी अपने-अपने वात्सल्यभाजन पुत्रोंको देखना चाहेंगी। गोवत्सोंकी माताएँ—गायें भी अपने वत्सोंकी दिदृक्षामें हम्बा-रवसे अपने लालोंको पुकारकर स्तनोंसे पय:क्षरण करती हुई दौड़ेंगी। उस समय ग्वाल-बालों और वत्सोंको न देखकर व्रजमें कोहराम मच जायगा, व्रजमें करुणाकी नदी बह जायगी। अहा! उस समय कितना कारुणिक दृश्य उपस्थित होगा? हा हन्त! उस समय मैं उन्हें कैसे देख पाऊँगा?

इतना सोचते ही विश्वकृदीश्वर—विश्वस्रष्टाओंके भी ईश्वर परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्रने अभूतपूर्व चमत्कार किया। सद्य: श्रीहरिके अनेक अवतारोंका, स्वरूपोंका जड़-चेतनके रूपमें प्राकट्य हो गया। सहसा लाखों स्वरूपोंमें श्रीहरि

प्रकट हो गये। इन अवतारोंके परिगणन करनेकी क्षमता सहस्रवदन श्रीशेष और अनन्तवदना वाग्वादिनी श्रीशारदामें भी नहीं है फिर अन्योंकी भौतिकी और क्षुद्र बुद्धिके विषयमें तो सोचना ही व्यर्थ है। श्रीशुक, श्रीव्यास, श्रीनारद और श्रीसूत सब एक स्वरमें कहते हैं—'**अवतारा ह्यसंख्येया:।**'

श्रीब्रह्माके द्वारा अपहृत ग्वाल-बाल और गोवत्स ही नहीं प्रकट हुए अपितु स्वयं श्रीकृष्णने ही स्वयंको दो रूपोंमें प्रकट कर दिया। बछड़ों एवं ग्वाल-बालोंकी माताओं और श्रीब्रह्माको भी आनन्दसिन्धुमें निमग्न करनेके लिये असंख्य ग्वाल-बाल एवं राशि-राशि गोवत्सोंके रूपमें स्वयं श्रीकृष्ण ही प्रकट हो गये—अवतरित हो गये। बलिहारी है, नाथ! आपकी, इस अदभ्र करुणाकी! इस अप्रतिम बाल्यलीला-विहारकी! असीम-अपरिमित अवतरणकी! धन्य है! धन्य है!!

तत: कृष्णो मुदं कर्तुं तन्मातॄणां च कस्य च।
उभयायितमात्मानं चक्रे विश्वकृदीश्वर:॥

(श्रीमद्भा० १०। १३। १८)

उस समय अनेक गोपशिशुओं, अनेक गोवत्सों, लाखों गोचारणकी छड़ियों, लाखों वंशियों, लाखों घुँघरुओं, लाखों लाल, पीले, हरे, श्वेत, नीले वस्त्रों, लाखों मुकुटों, लाखों छींकों, लाखों शृङ्गों आदिके जड़-चेतनात्मक रूपोंमें ठाकुरजीके अवतार हो गये। श्रीहरिके अनन्त असंख्य अवतारोंका इससे बढ़कर उदाहरण एवं प्रमाण और क्या हो सकता है? श्रीशुकमुखविगलित पीयूषवर्षिणी वाणीमें इसका समास्वादन करें—

यावद् वत्सपवत्सकाल्पकवपुर्यावत् कराङ्घ्र्यादिकं
यावद् यष्टिविषाणवेणुदलशिग् यावद् विभूषाम्बरम्।
यावच्छीलगुणाभिधाकृतिवयो यावद् विहारादिकं
सर्वं विष्णुमयं गिरोऽङ्गवदज: सर्वस्वरूपो बभौ॥

(श्रीमद्भा० १०। १३। १९)

परीक्षित्! वे बालक और बछड़े संख्यामें जितने थे, जितने छोटे-छोटे उनके शरीर थे, उनके हाथ-पैर जैसे-जैसे थे, उनके पास जितनी और जैसी छड़ियाँ, सिंगी, बाँसुरी, पत्ते और छीके थे, जैसे और जितने वस्त्राभूषण थे, उनके शील, स्वभाव, गुण, नाम, रूप और अवस्थाएँ जैसी थीं, जिस प्रकार वे खाते-पीते और चलते थे, ठीक वैसे ही और उतने ही रूपोंमें सर्वस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हो गये। उस समय 'यह सम्पूर्ण जगत् विष्णुरूप है'—यह वेदवाणी मानो मूर्तिमती होकर प्रकट हो गयी।

बीसवीं सदीकी एक सच्ची कथा

(पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)

मगध क्षेत्रके कोथवा, रामपुर, नयनचक, मुस्तफापुर, आदमपुर और आसोपुर आदि गाँवोंमें एक ही विद्यालय था, जो काफी प्रसिद्ध था, उसका नाम था 'वेदरत्न विद्यालय'। इस विद्यालयमें छः कोठरियाँ थीं, अतः छः ही कक्षाएँ थीं। छात्रावास भी था, जिसमें प्रान्तके विद्यार्थी आकर रहते तथा पढ़ते थे। उनके लिये एक भोजनशाला थी और एक खेलका मैदान भी था, मैदानमें गेंद भी खेला जाता था। इस प्रकार विद्यालयमें सभी सुविधाएँ थीं। विद्यालयमें पहली कक्षासे ही हिन्दी, संस्कृत, गणित, अंग्रेजीकी पढ़ाई शुरू हो जाती थी। पढ़ाई अच्छी थी। इस स्कूलको खोलनेका उद्देश्य था आर्य-मतका प्रचार करना। इस विद्यालयका नाम तो 'वेदरत्न विद्यालय' था, किंतु यह वेदविरोधी शिक्षा देता था। विद्यालयकी दूसरी कक्षामें 'धर्मशिक्षा—दूसरा भाग' नामक एक अनिवार्य पुस्तक थी, जिसके प्रथम पृष्ठपर लिखा था—

प्रश्न—क्या भगवान् अवतार लेते हैं?

उत्तर—नहीं।

अगर भगवान्‌का अवतार माना जाय तो वे भी जन्मने-मरनेवाले तथा अव्यापक हो जायँगे, अतः अवतारकी बात नहीं माननी चाहिये। रामजी दशरथ एवं कौसल्यासे जन्मे और आज नहीं हैं, इसलिये मरे भी हैं। अगर रामको भगवान् माना जाय तो ईश्वरको भी जन्मने और मरनेवाला कहना पड़ेगा। अतः अवतारको ईश्वर नहीं माना जा सकता।

अब रही व्यापकताकी बात। रामकथामें आता है कि कैकेयीको दिये वरदानस्वरूप जब राम वनमें चले गये तो उनके वियोगमें अयोध्यावासी तड़पने लगे, अयोध्या सूनी हो गयी। दशरथकी मृत्यु प्रमाण है, जो रामके वियोगमें मर गये। यदि राम ईश्वर होनेसे व्यापक होते तो वनवासके समय अयोध्यामें भी रहते और फिर रामवियोग होता ही क्यों? इस प्रकार अवतार माननेपर अव्यापकताका दोष भी जुड़ जाता है।

इस 'धर्मशिक्षा' को पढ़ानेवाले शिक्षक भी उसी मतके थे। वे प्रत्येक लड़केसे पाठ पढ़ानेके बाद पूछते—क्या रामको अवतार मानते हो, जो जन्मने-मरनेवाले थे तथा व्यापक भी नहीं थे? लड़का क्या कहता? कहता—अब नहीं मानेंगे।

हिन्दी पढ़नेवालोंमें एक लड़का ऐसे घरमें उत्पन्न हुआ था, जहाँ सुबह-शाम रामधुन गायी जाती थी। उसको आजकी पढ़ाई अच्छी नहीं लगी; किंतु उत्तर न मिलनेसे वह उद्विग्न हो गया, उसकी भूख बन्द हो गयी। उसने माँसे कहा—आज हम नहीं खायेंगे, तबियत ठीक नहीं है। संयोगसे उसी शाम उस लड़केके पिता दानापुरसे आ गये जो 'सनातन धर्म-सभा'-द्वारा दानापुरमें संचालित संस्कृतटोल नामक विद्यालयमें पढ़ाते थे तथा सातवें दिन घर आते थे। लड़केकी माँने पितासे कहा—देखिये, आज लड़का कहता है—हम नहीं खायेंगे, तबियत ठीक नहीं है। इसे देखिये तो जरा। लड़का पहले ही पिताके पैर छूने आ गया था। पिताने पूछा—क्या बात है, भोजन क्यों नहीं करते? तब उद्विग्न लड़केने कहा—हमारे मनमें तो राम हैं, परंतु''', फिर उसने सारी बातें दोहरा दीं।

पिताने कहा—बैठो, साथमें भोजन करो। कल तुम्हें साथ ले चलेंगे, उत्तर एक मिनटमें हो जायगा। लड़केके पिताको अगले दिन १० बजे संस्कृतटोल जाना था, इससे कुछ पहले ही इक्केपर बैठकर वे अपने आवासपर आ गये। आवास एक मन्दिरमें था। पिता-पुत्र पहुँचे। तब लड़केने कहा कि विद्यालय जानेमें १० मिनट देरी होगी, कोई बात नहीं, आप कलके प्रश्नका उत्तर दे दें तो मन हल्का हो जायगा। तब उन्होंने मन्दिरसे मिट्टीका एक बुझा हुआ दीपक और दियासलाई निकाली और लड़केसे पूछा—'बोलो यहाँ कहीं अग्नि है कि नहीं है?' लड़केने चारों ओर देखा, वहाँ अग्नि नहीं थी। पिताजीने कहा कि देखो, हम माचिस जलाते हैं, फिर कहा देखो, दीपकमें अग्नि है। इसके बाद पिताने उससे पूछा कि अग्नि सारे मन्दिरमें है या केवल दीयेमें है? लड़केने कहा—'अग्नि तो सभी जगह है भले ही वह दिखायी न पड़े।' पिताने कहा—'बेटा! सभी जगह व्यापक मानते हो तो हाथको

दियासलाईमें है कि नहीं।' लड़केके 'हाँ' में उत्तर देनेपर कहने लगे—इस प्रकार इसे कलकत्तामें, पटनामें—जहाँ भी जलाओगे; जल जायगी। इसीको संस्कृत (शास्त्रों)-में कहा जाता है कि आग समूचे विश्वमें व्यापक है, परंतु दिखती नहीं। जहाँ-जहाँ उसको प्रकट किया जाता है, वह वहींपर साकार दिखती है। इसके बाद पण्डितजीने दीपक बुझा दिया और पूछा कि अब आग है या नहीं? उसने कहा—नहीं, दीपक बुझ गया है। पिताने बताया कि वस्तुत: यह आग नहीं थी; यह उसका जन्मना-मरना नहीं है, यह उसका प्रकट होना-न होना था।

भाव यह है कि अप्रकट रूपसे अग्नि हर जगह व्याप्त है, परंतु दिखती नहीं है। जब दियासलाई आदि किसी उपायसे दिख जाती है, तब उसकी व्यापकतामें कोई दोष (कमी) नहीं आता। इसी प्रकार राम दशरथ एवं कौसल्यासे प्रकट हुए थे, मनुष्यकी तरह जन्मे नहीं थे। इसीलिये गोस्वामी तुलसीदासने लिखा है—'*भए प्रकट कृपाला*····।' और आज राम दिखते नहीं तो इसका यह अर्थ नहीं कि वे मर गये, वे केवल अप्रकट हो गये हैं। सामान्य मनुष्योंके जन्मने-मरनेसे यह सर्वथा भिन्न है। इसी बातको गीतामें भगवान्‌ने कहा है—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

(*गीता* ४।९)

—हे अर्जुन! मेरे जन्म और कर्म दिव्य अर्थात् निर्मल और अलौकिक हैं—इस प्रकार जो मनुष्य तत्त्वसे जान लेता है, वह शरीरको त्यागकर फिर जन्मको प्राप्त नहीं होता, अपितु मुझे ही प्राप्त होता है।

इसके बाद लड़केको साथ लेकर पण्डितजी संस्कृतटोल चले गये। रास्तेमें लड़केने पूछा—आपने रामायण और गीताके प्रमाण दिये; इनको हमारे स्कूलवाले नहीं मानते, अत: हमें कोई वेदका प्रमाण दीजिये। तब पिताने कहा—चलो हम पढ़ायेंगे नहीं; एक पुस्तक देंगे, हमने जो अभीतक बताया है; वह वेदकी ही बात है। वेदका एक मन्त्र है—

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो
रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा
रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥

(कठोपनिषद् २।२।९)

जिस प्रकार समस्त ब्रह्माण्डमें प्रविष्ट एक ही अग्नि नाना रूपोंमें उनके समान रूपवाला-सा हो रहा है, वैसे ही समस्त प्राणियोंका अन्तरात्मा परब्रह्म एक होते हुए भी नाना रूपोंमें उन्हींके जैसे रूपवाला हो रहा है और उनके बाहर भी है।

कहनेका तात्पर्य है कि अग्नि सारे संसारमें व्यापक है, अप्रकट रूपसे व्यापक है और यदि हम दियासलाई जलायें तो दीपक जलानेपर अल्प तथा होली जलायें तो वह व्यापक रूपसे प्रकट हो जाता है आदि। उसी तरह भगवान् भी कभी रामके रूपमें, कभी कृष्णके रूपमें प्रकट होते हैं। वेदोंमें भी भगवान्‌के अवतार-सिद्धान्तका वर्णन है—इस तथ्यको पाकर बालकको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने कहा कि पिताजी! जब इतनी साफ बात वेदमें लिखी है तो ये लोग गलत क्यों पढ़ाते हैं? पिताने कहा—इन सब बातोंको मत पूछो, यह अंग्रेजी (रहस्य) तुम्हारी समझमें नहीं आयेगी। तुम्हारा काम चल गया है, तुम रहने दो।

अवतारी-विग्रहकी विशेषता—भगवान् राम, कृष्ण आदिका अवतारी शरीर प्राकृतिक नहीं होता अर्थात् भगवान्‌के शरीरमें हड्डी, चाम, मांस आदि कुछ नहीं होता। भगवान्‌का स्वरूप है सच्चिदानन्द। वे ही भगवान् नीलरूपमें प्रकट हो गये—

'*कृष्णो वै पृथगस्ति कोऽप्यविकृतः सच्चिन्मयो नीलिमा॥*'

(प्रबोधसुधाकर)

पृथ्वीपर ही अभी आगको हमने देखा है। इसका भी शरीर कोई हड्डी, मांस, चामका नहीं है, फिर भी अग्निका स्वरूप प्राकृत पदार्थ है, परंतु भगवान् इससे सर्वथा विलक्षण हैं। यह अग्निका आधिभौतिक रूप है, इसका आधिदैविक रूप पृथक् है।

~~~ 0 ~~~
~~~

भगवान्‌की कृपाशक्ति प्रभुको अवतार ग्रहण करनेके लिये प्रेरित करती है

(पं० श्रीरामकृष्णजी शास्त्री)

समस्त स्थावरजङ्गमात्मक सृष्टिप्रपञ्च परमात्माका अवतार है। भगवती श्रुतिने भी कहा है—'**पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।**' (यजु० ३१। २) अर्थात् जगत्‌का जो स्वरूप विद्यमान है, जो अतीतमें था और जैसा भविष्यमें होगा, वह सब परमात्मस्वरूप ही है। महाप्रलयकालके उपस्थित होनेपर कार्यकारणरूप यह जगत् अपने कारणोंमें लीन होता हुआ अन्तमें सर्वकारणकारण परमात्मामें अवस्थित हो जाता है, तब परमात्मा योगमायाका आश्रय करके क्षीरसागरमें शयन करते हैं। भगवान्‌के साथ ही भगवान्‌की क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति भी निष्क्रिय हो जाती है, किंतु नारायणकी कृपाशक्ति उस स्थितिमें भी जागरूक रहती है और जब समूचे सृष्टिप्रपञ्चके समष्टि-प्रारब्धका परिपाक होता है तो भगवान्‌की कृपाशक्ति परमात्मासे जगत्‌का विस्तार करके संसारके प्राणियोंको अपना कल्याण करनेके लिये अवसर देनेका आग्रह करती है। अपनी कृपाशक्तिसे भगवान् अचिन्त्य मायाके गुणोंको स्वीकार करते हैं और सृष्टिके उद्भव, स्थिति और संहारके लिये स्वयंको तीन रूपोंमें विभक्त कर देते हैं—

नमः परस्मै पुरुषाय भूयसे सदुद्भवस्थाननिरोधलीलया।
गृहीतशक्तित्रितयाय देहिनामन्तर्भवायानुपलक्ष्यवर्त्मने॥

(श्रीमद्भा० २। ४। १२)

अर्थात् उन पुरुषोत्तम भगवान्‌के चरणकमलोंमें मेरे कोटि-कोटि प्रणाम हैं, जो संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयकी लीला करनेके लिये सत्त्व, रज तथा तमोगुणरूप तीन शक्तियोंको स्वीकार कर ब्रह्मा, विष्णु और शङ्करका रूप धारण करते हैं, जो समस्त चर-अचर प्राणियोंके हृदयमें अन्तर्यामीरूपसे विराजमान हैं, जिनका स्वरूप और उसकी उपलब्धिका मार्ग बुद्धिके विषय नहीं हैं, जो स्वयं अनन्त हैं तथा जिनकी महिमा भी अनन्त है।

यहींसे सृष्टि-प्रक्रियाका आरम्भ होता है। भगवान्‌से निर्मित यह विचित्र संसार उनकी मायाकी आवरणशक्तिके द्वारा अयथावत् (जैसा नहीं है वैसा) प्रतीत होता है। आवरणशक्ति स्वरूपका तिरोधान करती है, मलके द्वारा अयथावत् प्रतीति होती है तथा विक्षेपके कारण अविद्या, अस्मिता आदि पञ्चक्लेशों[1] तथा बुभुक्षा, पिपासा आदि षडूर्मियोंकी प्राप्ति होती है।

परमात्माकी कृपाका अवलम्ब लेकर श्रुतिस्मृतिसमर्थित पुरुषार्थके द्वारा ही अजेय मायाकी इस बाधाका यथाकथञ्चन निराकरण किया जाना सम्भव है। इस पुरुषार्थकी अनेक विधाएँ हैं। व्यक्तिको अपनी अर्हताके अनुसार मार्ग निर्धारित करके तदनुरूप पुरुषार्थमें अविलम्ब प्रवृत्त हो जानेकी आवश्यकता है। श्रीशुकदेवजीने महाराज परीक्षित्‌को उपदेश देते हुए कहा है कि रजोगुण और तमोगुणके द्वारा विक्षिप्त और मूढ़ हुए अन्तःकरणके कषायकी निवृत्तिके लिये भगवान्‌के स्थूल स्वरूपकी धारणा[2] करनी चाहिये, जिस धारणाके द्वारा साधक भगवत्-सम्बन्ध स्थापित करके भक्तियोगको प्राप्त कर लेता है। इसपर महाराज परीक्षित्‌ने कहा कि धारणा किसकी, कैसे और किस प्रकार की जानी चाहिये, जिससे रजोगुण और तमोगुणके द्वारा विक्षिप्त और विमूढ़ हुए अन्तःकरणकी चिकित्सा की जा सके। इसपर शुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! आसन, श्वास, आसक्ति और इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करके फिर बुद्धिके द्वारा मनको भगवान्‌के स्थूल रूपमें लगाना चाहिये। यह कार्यरूप सम्पूर्ण विश्व जो कुछ कभी था, है या होगा—सब-का-सब जिसमें दीख पड़ता है, वही भगवान्‌का स्थूल-से-स्थूल और विराट् शरीर है। जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहङ्कार, महत्तत्त्व और प्रकृति—इन सात आवरणोंसे घिरे हुए इस ब्रह्माण्ड शरीरमें जो विराट् पुरुष भगवान् हैं, वे ही धारणाके आश्रय हैं, उन्हींकी धारणा की जाती है।[3]

धारणाके माध्यमसे अन्तःकरणके मलकी आत्यन्तिक और अनैकान्तिक निवृत्ति सम्पादित करके क्रमशः ध्यान, समाधिकी स्थितिको प्राप्त हुआ जीव अपने सम्पूर्ण कल्याणको करनेमें समर्थ हो सकता है।

भगवान्‌के स्थूल स्वरूपकी धारणा साधकके लिये सामान्यतया शक्य या सम्भव प्रतीत होती है; क्योंकि प्रत्यक्षात्मक

---

१. अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः। (योगसूत्र २। ३)

२. देशबन्धश्चित्तस्य धारणा। (योगसूत्र ३। १) चित्तका वृत्तिमात्रसे किसी स्थानविशेषमें बाँधना 'धारणा' कहलाता है।

३. जितासनो जितश्वासो जितसङ्गो जितेन्द्रियः। स्थूले भगवतो रूपे मनः सन्धारयेद्धिया॥
विशेषस्तस्य देहोऽयं स्थविष्ठश्च स्थवीयसाम्। यत्रेदं दृश्यते विश्वं भूतं भव्यं भवच्च सत्॥
आण्डकोशे शरीरेऽस्मिन् सप्तावरणसंयुते। वैराजः पुरुषो योऽसौ भगवान् धारणाश्रयः॥ (श्रीमद्भा० २। १। २३—२५)

ज्ञानकी प्रक्रिया यह है कि जैसे कूप या सरोवरका जल नालीके माध्यमसे क्यारीमें जाकर क्यारीका जैसा आकार होता है—वर्तुल, चतुर्भुज, षट्कोण आदि, उसी आकार-प्रकारमें परिणत होता जाता है, इसी प्रकार अन्त:करण जिस विषयको ग्रहण करना चाहता है, उसके लिये अनादियोग्यतासिद्ध[१] इन्द्रियरूपी प्रणालिकाके द्वारा विषयदेशमें जाकर विषयाकारतया परिणत हो जाता है। विषयाकारतया परिणत अन्त:करणका आत्मचैतन्यपर प्रतिबिम्ब पड़ता है और तब विषयोंका प्रत्यक्षात्मक ज्ञान होता है। प्रत्यक्षज्ञानकी इस प्रक्रियाके अनुसार भगवान्‌के स्थूलस्वरूपकी धारणामें ही प्राणी समर्थ हो सकेगा। जहाँ रूप, रस आदि विषय नहीं हैं, जो तत्त्व निर्विषय और निर्विशेष है, उसकी धारणा कैसे की जा सकती है?

इसी प्रक्रियाको बुद्धि-विषय करके भक्तशिरोमणि श्रीप्रह्लादजीने असुरबालकोंको उपदेश करते हुए कहा है कि सर्वत्र सब वस्तुओंमें परमात्माका रूप देखना चाहिये अर्थात् सब वस्तुओंको परमात्म-स्वरूप देखना चाहिये। संसारमें मानव-शरीर धारण करनेका सबसे श्रेष्ठ और एकमात्र परमार्थ यही है कि वह भगवान्‌से शाश्वत सम्बन्ध स्थापित करके भगवान्‌की अनपायिनी और अनन्य अविस्मृतिरूप भक्ति प्राप्त कर ले, जिससे उसके सभी अनर्थोंकी निवृत्ति और पञ्चम पुरुषार्थकी प्राप्ति भी सम्भव हो जाय—

एतावानेव लोकेऽस्मिन्पुंसः स्वार्थः परः स्मृतः।
एकान्तभक्तिर्गोविन्दे यत् सर्वत्र तदीक्षणम्॥

(श्रीमद्भा० ७।७।५५)

भगवान्‌की अविस्मृतिसे अमङ्गलका नाश, अन्त:करणका निग्रह, अन्त:करणके कषायकी आत्यन्तिक निवृत्ति, वैराग्य और विज्ञानसे युक्त ज्ञान तथा परमात्माकी पराभक्ति प्राप्त हो जाती है—

अविस्मृतिः कृष्णपदारविन्दयोः
क्षिणोत्यभद्राणि शमं तनोति च।
सत्त्वस्य शुद्धिं परमात्मभक्तिं
ज्ञानं च विज्ञानविरागयुक्तम्॥

(श्रीमद्भा० १२।१२।५४)

स्थूल स्वरूपकी धारणा परिपक्व हो जानेके अनन्तर विराट् स्वरूपकी धारणामें साधकको अपना अग्रिम अपेक्षित अध्यवसाय करना चाहिये, जिसके लिये शास्त्रकी दृष्टिका अवलम्ब लेना होगा। भगवान्‌के विराट् रूपका वर्णन श्रीमद्भागवतमें किया गया है, जिसके अनुसार पाताल विराट् पुरुषके तलवे हैं, उनकी एड़ियाँ और पंजे रसातल हैं, दोनों गुल्फ—एड़ीके ऊपरकी गाँठें महातल हैं, उनके पैरके पिण्डे तलातल हैं। विश्वमूर्ति भगवान्‌के दोनों घुटने सुतल हैं, जाँघें वितल और अतल हैं, पेड़ू भूतल है और उनके नाभिरूप सरोवरको ही आकाश कहते हैं। आदिपुरुष परमात्माकी छातीको स्वर्गलोक, गलेको महर्लोक, मुखको जनलोक और ललाटको तपोलोक कहते हैं। उन सहस्र सिरवाले भगवान्‌का मस्तकसमूह ही सत्यलोक है।[२]

सम्पूर्ण प्राकृत सृष्टिप्रपञ्च त्रिगुणात्मक है। इन गुणोंका स्वभाव है कि जब एक गुण उत्कट होता है तो अन्य दो अभिभूत हो जाया करते हैं।

तमोगुणके उद्रेक होनेपर जब अनेक प्रकारकी कुत्सित प्रवृत्तियोंमें व्यक्ति अथवा समाजकी प्रवृत्ति होती है तथा परमात्माकी श्रुतिस्मृतिरूप व्यवस्था उच्छिन्न होने लगती है, श्रुति-स्मृतिकी व्यवस्थाके अधीन जीवन-निर्वाह करनेवाले साधुपुरुषोंकी दुर्दशा होने लगती है और धरणी आततायियोंके भारसे पीड़ित होने लगती है तब परमात्मा श्रुतिस्मृति-मर्यादाके उल्लङ्घन, अपने निजजनोंकी व्यथा, संतोंकी पीड़ा और पृथ्वीकी वेदनाको समाप्त करनेके लिये अवतार धारण करते हैं—यह बात भगवान्‌ने अपने श्रीमुखसे (गीता ४।७-८ में) कही है और संतोंने भी यत्र-तत्र इसे अवतारका प्रयोजन बताया है।

विचार करनेपर लगता है कि भगवान्‌की अचिन्त्य शक्तिसम्पन्ना माया भगवान्‌के अनुशासनको पाकर निमिषमात्रमें अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंके पालन और संहारकी शक्ति रखती है तो फिर भगवान्‌के द्वारा स्थापित मर्यादाका उल्लंघन करनेवाले असुरोंका विनाश करनेहेतु भगवान्‌को अवतार धारण करनेकी क्या आवश्यकता? यह कार्य तो उनके सङ्कल्पमात्रसे ही हो

---

१. महावैयाकरण भर्तृहरिने कहा है—'इन्द्रियाणां स्वविषयेष्वनादिर्योग्यता यथा' (वाक्यपदीय)।

२. पातालमेतस्य हि पादमूलं पठन्ति पार्ष्णिप्रपदे रसातलम्। महातलं विश्वसृजोऽथ गुल्फौ तलातलं वै पुरुषस्य जङ्घे॥
द्वे जानुनी सुतलं विश्वमूर्तेरूरुद्वयं वितलं चातलं च। महीतलं तज्जघनं महीपते नभस्तलं नाभिसरो गृणन्ति॥
उरःस्थलं ज्योतिरनीकमस्य ग्रीवा महर्वदनं वै जनोऽस्य। तपो रराटीं विदुरादिपुंसः सत्यं तु शीर्षाणि सहस्रशीर्ष्णः॥
(श्रीमद्भा० २।१।२६—२८)

सकता है।

वस्तुत: तमोगुण और रजोगुणकी उत्कर्षावस्थामें अपने कल्याण करनेके लिये चर्चित सभी साधन भी बाधित हो जाते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि प्रवृत्तियोंके द्वारा ज्ञान और वैराग्य *समास-सा हो जाता है।* शास्त्रोक्त जप, तप, मख, दान आदि सभी कल्याणकारी साधनोंका फल केवल श्रममात्र रह जाता है। भक्तशिरोमणि गोस्वामीजीने कहा है—

नाहिंन आवत आन भरोसो।
यहि कलिकाल सकल साधनतरु है स्रम-फलनि फरो सो॥
तप, तीरथ, उपवास, दान, मख जेहि जो रुचै करो सो।

× × ×

काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह मिलि ग्यान बिराग हरो सो।

(विनय-पत्रिका १७३)

अत: भवबन्धनसे मुक्ति प्राप्त करनेके जितने उपाय हैं, उन सभीके बाधित हो जानेके कारण भगवान्‌की मङ्गलमयी कृपाशक्ति परमात्माको अवतार ग्रहण करनेके लिये प्रेरित करती है। भगवान् अपनी निग्रहानुग्रहात्मिका कृपाके साथ अवतीर्ण होकर नाना प्रकारकी लीला करते हैं और नाना प्रकारके अपने कर्म और गुणोंका विस्तार करते हैं। जीव परमात्माके अवतार, गुण और कर्मका बोध करानेवाले उनके मङ्गलमय नामोंका कीर्तन करके अनायास ही अपना कल्याण कर सकता है—

यस्यावतारगुणकर्मविडम्बनानि
नामानि येऽसुविगमे विवशा गृणन्ति।
ते नैकजन्मशमलं सहसैव हित्वा
संयान्त्यपावृतमृतं तमजं प्रपद्ये॥

(श्रीमद्भा० ३।९।१५)

अर्थात् जो लोग प्राणत्याग करते समय आपके अवतार, गुण और कर्मोंको सूचित करनेवाले देवकीनन्दन, जनार्दन, कंसनिकन्दन आदि नामोंका विवश होकर भी उच्चारण करते हैं, वे अनेक जन्मोंके पापोंसे तत्काल छूटकर मायादि आवरणोंसे रहित ब्रह्मपद प्राप्त करते हैं। आप नित्य अजन्मा हैं, मैं आपकी शरण लेता हूँ।

तमोगुण और रजोगुणके उद्रेककी स्थितिमें समस्त कल्याणकारी साधन बाधित हो जानेके कारण ही भगवान् कृष्णद्वैपायन व्यासजीने कहा है—

संसारसिन्धुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षो-
र्नान्य: प्लवो भगवत: पुरुषोत्तमस्य।
लीलाकथारसनिषेवणमन्तरेण
पुंसो भवेद् विविधदु:खदवार्दितस्य॥[१]

(श्रीमद्भा० १२।४।४०)

परमात्मा अमलान्तरात्मा महात्माओंकी भावनाके अनुरूप उनके ऊपर कृपा करके उनके हृदयमें तत्तद् रूपोंमें प्रकट हो जाते हैं, यह परमात्माके अवतारकी एक दूसरी विलक्षण लीला है—

त्वं भावयोगपरिभावितहृत्सरोज
आस्से श्रुतेक्षितपथो ननु नाथ पुंसाम्।
यद्यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति
तत्तद्वपु: प्रणयसे सदनुग्रहाय॥[२]

(श्रीमद्भा० ३।९।११)

इस प्रकार भगवान् अपनी अवतार-लीला और गुण-कर्मोंका विस्तार करनेके लिये अपनी कृपाशक्तिके साथ अनेक रूप धारण करते हैं, उनमें इसी वैवस्वत मन्वन्तरमें भगवान्‌ने वामनरूप धारण किया था।

वामनावतार-कथा—इन्द्रने बलिके ऊपर आक्रमण करके उनका सर्वस्व जीत लिया और बलिकी हत्या भी कर दी, तब शुक्राचार्यने सञ्जीवनी विद्याके आधारपर बलिको पुनर्जीवित कर दिया। जीवन धारण करनेके अनन्तर राजा बलि ब्रह्मवादी भृगुवंशी ब्राह्मणोंकी निष्ठापूर्वक सेवा करते हुए उनसे प्राप्त शक्तिके कारण उत्कट कोटिके पुण्यकर्म और यज्ञ-यागादिमें प्रवृत्त हो गये। भृगुवंशी ब्राह्मणोंने उनसे विश्वजित् यज्ञ कराया।

हविष्योंके द्वारा जब अग्निदेवताकी पूजा की गयी, तब यज्ञकुण्डमेंसे सोनेकी चद्दरसे मढ़ा हुआ एक बड़ा सुन्दर रथ निकला। फिर इन्द्रके घोड़ों-जैसे हरे रंगके घोड़े और सिंहके

---

१. जो लोग अत्यन्त दुस्तर संसार-सागरसे पार जाना चाहते हैं अथवा जो लोग अनेक प्रकारके दु:ख-दावानलसे दग्ध हो रहे हैं, उनके लिये पुरुषोत्तमभगवान्‌की लीला-कथारूप रसके सेवनके अतिरिक्त और कोई साधन, कोई नौका नहीं है। ये केवल लीला-रसायनका सेवन करके ही अपना मनोरथ सिद्ध कर सकते हैं।

२. नाथ! आपका मार्ग केवल गुण-श्रवणसे ही जाना जाता है। आप निश्चय ही मनुष्योंके भक्तियोगके द्वारा परिशुद्ध हुए हृदयकमलमें निवास करते हैं। पुण्यश्लोक प्रभो! आपके भक्तजन जिस-जिस भावनासे आपका चिन्तन करते हैं, उन साधु पुरुषोंपर अनुग्रह करनेके लिये आप वही-वही रूप धारण कर लेते हैं।

चिह्नसे युक्त रथपर लगानेकी ध्वजा निकली। साथ ही सोनेके पत्रसे मढ़ा हुआ दिव्य धनुष, कभी खाली न होनेवाले दो अक्षय तरकस और दिव्य कवच भी प्रकट हुए। बलिके पितामह प्रह्लादजीने बलिको एक ऐसी माला दी, जिसके फूल कभी कुम्हलाते न थे। शुक्राचार्यने एक शङ्ख दिया। इस प्रकार ब्राह्मणोंकी कृपासे युद्धकी सामग्री प्राप्त करके उनके द्वारा स्वस्तिवाचन हो जानेपर राजा बलिने उन ब्राह्मणोंकी प्रदक्षिणा की और उन्हें नमस्कार किया। इसके बाद उन्होंने प्रह्लादजीके चरणोंमें नमस्कार किया।

तदनन्तर भृगुवंशियोंके द्वारा प्रदत्त महान् रथपर आरूढ़ होकर बलिने देवराज इन्द्रकी पुरीको चारों ओरसे घेर लिया और आचार्यके द्वारा दिये हुए महान् ध्वनिवाले शङ्खको बजाया। देवराज इन्द्रने बलिके युद्धोद्यमको जानकर बृहस्पतिकी शरण ली। देवगुरु बृहस्पतिने ब्रह्मवादी भृगुवंशी ब्राह्मणोंके द्वारा बलिसे विश्वजित्-यज्ञ कराये जानेके वृत्तान्तको बताकर इन्द्रसे शत्रुके पराभवकालकी प्रतीक्षा करनेके लिये कहा। महाराज बलिके द्वारा जगत्त्रयपर विजय प्राप्त कर लेनेके अनन्तर भृगुवंशी ब्राह्मणोंने उनसे सौ अश्वमेधयज्ञ कराये। इस प्रकार ब्राह्मण और देवोंके द्वारा प्राप्त ऐश्वर्यका उपभोग बलि करने लगे।

अपने पुत्रोंके पराभवसे अत्यन्त दुःखी अदितिने अपने पति महर्षि कश्यपसे अपने दुःखको प्रकाशित करते हुए प्रार्थना की कि हमारे श्रीहीन पुत्रोंको लक्ष्मी पुनः वरण कर ले, शत्रुओंके द्वारा जीते गये उनके स्थान उन्हें प्राप्त हो जायँ, कृपया ऐसा कल्याणका मार्ग बतानेका अनुग्रह करें। कश्यपजीने अदितिके पुत्रादिविषयक मोहरूपी बन्धनमें डालनेवाली भगवान्‌की मायाके बलके प्रति आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा—

अहो मायाबलं विष्णोः स्नेहबद्धमिदं जगत्॥
क्व देहो भौतिकोऽनात्मा क्व चात्मा प्रकृतेः परः।
कस्य के पतिपुत्राद्या मोह एव हि कारणम्॥

(श्रीमद्भा० ८।१६।१८-१९)

अर्थात् बड़े आश्चर्यकी बात है। भगवान्‌की माया भी कैसी प्रबल है! यह सारा जगत् स्नेहकी रज्जुसे बँधा हुआ है। कहाँ यह पञ्चभूतोंसे बना हुआ अनात्मा शरीर और कहाँ प्रकृतिसे परे आत्मा? न किसीका कोई पति है, न पुत्र है और न तो सम्बन्धी ही है। मोह ही मनुष्यको नचा रहा है।

सामने अपने स्वरूपमें प्रकट हो गये और उन्होंने कहा—देवमाता! आपके अभिलाषको हमने जान लिया। आप शत्रुओंके द्वारा पराजित अपने पुत्रोंको पुनः उनका स्थान दिलाना चाहती हैं, किंतु इस समय युद्धमें देवोंद्वारा असुरोंको परास्त किया जाना सम्भव नहीं, तथापि आपकी व्रतचर्यासे संतुष्ट होकर मैं उपायका चिन्तन करूँगा। श्रद्धानुरूप फल देनेवाली मेरी अर्चा व्यर्थ नहीं होती—ऐसा कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये और अदितिके गर्भमें प्रविष्ट हुए। कालक्रमसे परमात्मा भाद्रशुक्ल द्वादशीको श्रवण नक्षत्रमें अभिजित् मुहूर्त तथा विजयायोगमें वामनरूपमें प्रकट हुए। महर्षियोंने प्रसन्न होकर प्रजापतिको आगे करके उनके संस्कार सम्पन्न कराये। सविता देवताने उन्हें सावित्रीका उपदेश दिया, बृहस्पतिने ब्रह्मसूत्र दिया, कश्यपने मेखला दी, पृथ्वीने कृष्णाजिन प्रदान किया, सोमने दण्ड दिया और माताने कौपीन दिया। इस प्रकार भगवान्‌को वामन ब्रह्मचारीके रूपमें देखकर महर्षियोंको बड़ा आनन्द हुआ।

भगवान् वामनने सुना कि इस समय त्रैलोक्याधिपति बलि नर्मदाके उत्तर तटपर भृगुकच्छ नामक क्षेत्रमें यज्ञानुष्ठान कर रहे हैं—ऐसा सुनकर भगवान्‌ने बलिके यज्ञस्थानकी ओर प्रस्थान किया। परमात्मा वामनने छत्र, दण्ड, सजल कमण्डलु धारण करते हुए अश्वमेधयज्ञके मण्डपमें प्रवेश किया। यजमान बलि भगवान्‌के मङ्गलमय परम आकर्षक विग्रहको देखकर हर्षातिरेकमें मग्न हो गये, उन्होंने उन्हें आसन दिया, स्वागत-वचन कहे, उनके चरणोंका प्रक्षालन करके उनकी पूजा की और परमात्माके चरणामृतको अपने सिरपर धारण किया। भगवान्‌के अपने यज्ञमें पधारनेसे बलिने अपने कुल और अपने अहोभाग्यकी प्रशंसा की और फिर कहा—'ब्राह्मणबालक! मेरा अनुमान है कि तुम किसी प्रयोजनसे आये हो, तुम जो भी चाहते हो, उसे माँग लो।' बलिके धर्मयुक्त वचनको सुनकर उन्होंने उसके पूर्वज हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, प्रह्लाद और उसके पिता विरोचनकी प्रशंसा की और कहा—आपकी कुलपरम्पराकी वदान्यता सर्वत्र प्रसिद्ध है। दानवीरोंमें श्रेष्ठ आप सब कुछ देनेमें समर्थ हैं। यद्यपि आप जगदीश्वर हैं तथापि हे दैत्येन्द्र! मैं आपसे अपने पैरोंके प्रमाणसे तीन पग भूमिकी याचना करता हूँ; क्योंकि जितनेमें न्यूनतम निर्वाह हो

सकता है। यह तुम्हारा स्थान, ऐश्वर्य, लक्ष्मी, तेज और यश— सब छीनकर इन्द्रको दे देगा। तुम्हारी वृत्ति विपन्न हो जायगी और भार्या-पुत्र आदि सब संकटग्रस्त हो जायँगे। इसपर बलिने शुक्राचार्यजीसे कहा—

नाहं बिभेमि निरयान्नाधन्यादसुखार्णवात्।
न स्थानच्यवनान्मृत्योर्यथा विप्रप्रलम्भनात्॥

(श्रीमद्भा० ८। २०। ५)

अर्थात् मैं नरकसे, अधन्यतासे, दु:खके समुद्रसे, अपने राज्यके नाशसे और मृत्युसे भी उतना नहीं डरता, जितना ब्राह्मणसे प्रतिज्ञा करके उसे धोखा देनेसे डरता हूँ।

तदनन्तर बलिद्वारा दानका सङ्कल्प करते ही भगवान् वामनने विराट् रूप धारण कर लिया। उन्होंने एक पैरसे सम्पूर्ण पृथ्वीको नाप लिया, शरीरसे आकाश और भुजाओंसे दिशाएँ घेर लीं। दूसरे पैरसे उन्होंने स्वर्गको नाप लिया, तीसरा पैर रखनेके लिये बलिकी जब कोई वस्तु नहीं बची तब भगवान्ने बलिसे कहा—'सङ्कल्पको तुम पूरा नहीं कर सके, अत: नरकमें प्रवेश करो।' भगवान्के तात्पर्यको जानकर गरुडजीने वारुणपाशसे बलिको बाँध लिया। इसके बाद बलिने भगवान्की प्रार्थना की और कहा—कृपया आप अपना तीसरा पैर मेरे सिरपर रख दीजिये।[१]

बन्धनमें पड़े बलिको देखकर प्रह्लादजी उपस्थित हुए और उन्होंने कहा—प्रभो! आपने इसे समस्त ऐश्वर्य दिया था और यह इस ऐश्वर्यसे मोहित न हो जाय, इसलिये कृपा करके आपने उसे छीन लिया। वस्तुत: आपका यह कृपाप्रसाद न ब्रह्माको प्राप्त हुआ, न लक्ष्मीने प्राप्त किया है और न शिवको ही प्राप्त हो सका है। विश्ववन्द्य ब्रह्मा आदिके द्वारा जिनके चरणोंकी वन्दना की जाती है, वे ही आप हम असुरोंके दुर्गपाल हो गये।

भगवान्की ऐसी लीला देखकर ब्रह्माजी उपस्थित हुए और उन्होंने भगवान्से कहा—

यत्पादयोरशठधी: सलिलं प्रदाय
दूर्वाङ्कुरैरपि विधाय सतीं सपर्याम्।
अप्युत्तमां गतिमसौ भजते त्रिलोकीं
दाश्वानविक्लवमना: कथमार्तिमृच्छेत्॥

(श्रीमद्भा० ८। २२। २३)

अर्थात् प्रभो! जो मनुष्य सच्चे हृदयसे कृपणता छोड़ आपके चरणोंमें जलका अर्घ्य देता है और केवल दूर्वादलसे भी आपकी सच्ची पूजा करता है, उसे भी उत्तम गतिकी प्राप्ति होती है। फिर बलिने तो बड़ी प्रसन्नतासे धैर्य और स्थिरतापूर्वक आपको त्रिलोकीका दान कर दिया है, तब यह दु:खका भागी कैसे हो सकता है?

इसपर परमात्मा भगवान् वामनने ब्रह्माजीसे कहा—ब्रह्मन्! मैं जिसके ऊपर कृपा करता हूँ, उसके धनका हरण कर लेता हूँ,[२] जिस धनके मदसे व्यक्ति उन्मत्त होकर लोककी और मेरी अवमानना करता है। मैंने देवताओंके लिये भी दुष्प्राप्य स्थान इसे दे दिया है। यह सावर्णि मन्वन्तरमें इन्द्र होगा। फिर बलिको सम्बोधित कर भगवान्ने कहा—

इन्द्रसेन महाराज याहि भो भद्रमस्तु ते।
सुतलं स्वर्गिभि: प्रार्थ्यं ज्ञातिभि: परिवारित:॥
रक्षिष्ये सर्वतोऽहं त्वां सानुगं सपरिच्छदम्।
सदा सन्निहितं वीर तत्र मां द्रक्ष्यते भवान्॥

(श्रीमद्भा० ८। २२। ३३, ३५)

महाराज इन्द्रसेन! तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम अपने भाई-बन्धुओंके साथ उस सुतल लोकमें जाओ, जिसे स्वर्गके देवता भी चाहते रहते हैं। मैं तुम्हारी, तुम्हारे अनुचरोंकी और भोगसामग्रीकी भी सब प्रकारके विघ्नोंसे रक्षा करूँगा। वीर बलि! तुम मुझे वहाँ सदा-सर्वदा अपने पास ही देखोगे।

यहाँ यह विचारणीय है कि प्रह्लादजी दैत्येन्द्र बलिके ऊपर भगवान्की अनुग्रहात्मिका कृपाको अङ्गीकार करते हैं और ब्रह्माजीने इसी सन्दर्भको परमात्माकी निग्रहात्मिका कृपाके रूपमें देखा है तो यह निग्रहानुग्रहात्मिका कृपा दृष्टिभेदसे ही भिन्न जान पड़ती है। वस्तुत: परमात्माका कृपाप्रसाद निग्रहानुग्रहात्मक जैसा भी हो, जीवके सम्पूर्ण कल्याणको सम्पादित करनेका एकमात्र हेतु है।

भगवान् वामनके अवतारके सारे प्रकरणपर दृष्टिपात करते हुए यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि परमात्माका वामनावतार जब हुआ था, तब न धर्मकी ग्लानि थी और न ही अधर्माभ्युत्थान हुआ था। अत: गोस्वामीजीकी इन पंक्तियों—*'हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थं कहि जाइ न सोई॥'* के अनुसार परमात्मा ही अपने अवतारका हेतु जानें। संतोंके द्वारा भगवान्के जिस अवतारके पूर्व जगत्‌की जैसी स्थिति थी, उसीके अनुरूप अवतारके हेतुकी भी कल्पना की गयी है।

---

१. बलिके इस सर्वस्व-समर्पणरूपी दानके अनन्तर ही 'बलिदान' पदका प्रयोग आरम्भ हुआ जान पड़ता है।

२. परमात्माने भी यहाँ अपनी निग्रहात्मिका कृपाको ही कृपाके रूपमें निरूपित किया है।

[विभिन्न युगोंमें भगवान्‌के सगुण-साकार रूपमें विभिन्न अवतारोंका दिव्य दर्शन हमें प्राप्त होता है। भगवान् नारायण (विष्णु), श्रीगङ्गाधर (शिव), महाशक्ति (भगवती दुर्गा), गणनाथ (गणेश) और भुवनभास्कर (सूर्यदेव)—ये पञ्चदेव एक ही तत्त्वके पाँच स्वरूप हैं, वैसे दिव्य धामोंमें इनके पृथक्-पृथक् नित्य धाम हैं, किंतु साकार विग्रह पृथक्-पृथक् होते हुए भी ये एक ही परम तत्त्वके अनेक रूप हैं। अतः इनमें न सामर्थ्यका कोई अन्तर है और न अनुग्रहका। एक अनन्त सच्चिदानन्द चाहे जिस रूपमें हों, उनमें कोई अंतर सम्भव नहीं है। अवतार इन पाँच देवोंमेंसे ही किसीका होता है अथवा इनके माध्यमसे ही होता है। अतः परब्रह्मस्वरूप पञ्चदेवोंके प्राकट्य एवं अवतारकी विभिन्न कथाएँ यहाँ प्रस्तुत हैं—सम्पादक]

भगवान् श्रीगणेशकी विभिन्न अवतारकथाएँ

जब-जब आसुरी शक्तियोंके प्रबल होनेसे जन-जीवन कण्टकाकीर्ण हो जाता है, निर्दय दैत्य सत्त्वगुण-सम्पन्न सुर-समुदायका सर्वस्व हरणकर निरन्तर उन्हें पीडित करते हैं, धराधामपर सर्वत्र अनीति, अनाचार और दुराचारका साम्राज्य स्थापित हो जाता है, धर्मका ह्रास एवं अधर्मकी वृद्धि होने लगती है, तब-तब मङ्गल-मोद-निधान श्रीगणेशजी भू-भारहरणार्थ अवतार ग्रहण करते हैं। वे गुणतत्त्व-विवेचक आदिदेव गजमुख दैत्योंका विनाशकर देवताओंका अपहृत अधिकार उन्हें लौटाते हैं तथा प्रत्येक रीतिसे सद्धर्मकी स्थापना करते हैं, जिससे समस्त प्राणियोंको सुख-शान्तिकी अनुभूति होती है।

भगवान् गणेशके प्राकट्यकी विभिन्न लीलाएँ पुराणोंमें प्राप्त होती हैं। कहीं वे भगवती पार्वतीके उबटनसे उत्पन्न बताये गये हैं तो कहीं गङ्गाजीके सहयोगसे जन्म लेते हैं और गाङ्गेय भी कहलाते हैं, इसी तरह कहीं देवी पार्वतीके पुण्यक व्रतके प्रभावसे प्रकट होते हैं। प्राकट्यके ये स्वरूप अनेक कल्प-कल्पान्तरोंमें होते हैं, ऐसा मानना चाहिये।

प्रत्येक युगमें उन महामहिम प्रभुके नाम, वाहन, गुण, लीला और कर्म आदि पृथक्-पृथक् होते हैं तथा उनके द्वारा जिन दैत्योंका संहार होता है, वे भी भिन्न-भिन्न ही होते हैं।

कृतयुगमें ये परमप्रभु गजानन सिंहारूढ 'महोत्कट विनायक' के नामसे प्रख्यात हुए, त्रेतामें ये मङ्गलमोद-प्रदाता गणेश मयूरारूढ 'मयूरेश्वर' के नामसे प्रसिद्ध हुए; द्वापरमें मूषकवाहन शिवपुत्रकी 'गजानन' या 'गौरीपुत्र' के नामसे ख्याति हुई तथा कलिके अन्तमें ये धर्मरक्षक गजानन अश्वारोही 'धूम्रकेतु' के नामसे प्रसिद्ध होंगे।

महोत्कट विनायकका अवतार

एक बारकी बात है, महर्षि कश्यप अग्निहोत्र कर चुके थे। सुगन्धित यज्ञ-धूम आकाशमें फैला हुआ था। इसी समय पुण्यमयी अदिति अपने पति महर्षि कश्यपके समीप पहुँचीं। परम तपस्वी पतिके श्रीचरणोंमें प्रणामकर उन्होंने निवेदन किया—'स्वामिन्! इन्द्रादि देवगणोंको तो मैंने पुत्ररूपमें प्राप्त किया है; किंतु पूर्ण परात्पर सच्चिदानन्द परमात्मा मुझे पुत्ररूपसे प्राप्त हों—यह कामना मेरे मनमें बार-बार उदित हो रही है। वे परम प्रभु किस कारण मेरे पुत्र होकर मुझे कृतकृत्य करेंगे, आप कृपापूर्वक बतलानेकी कृपा कीजिये।'

महर्षि कश्यपने अपनी प्रिय पत्नी अदितिको विनायकका ध्यान, उनका मन्त्र और न्याससहित पुरश्चरणकी पूरी विधि विस्तारपूर्वक बताकर उन्हें कठोर तपस्याके लिये प्रोत्साहित किया।

महाभागा अदिति अत्यन्त प्रसन्न हुईं और पतिकी आज्ञा प्राप्तकर कठोर तप करनेके लिये एकान्त शान्त अरण्यमें जा पहुँचीं तथा वहाँ देवदेव विनायकके ध्यान और जपमें तन्मय हो गयीं।

भगवती अदितिकी सुदृढ़ प्रीति एवं कठोर तपसे कोटि-कोटि भुवनभास्करकी प्रभासे भी अधिक परम

तेजस्वी कामदेवसे भी अधिक सुन्दर देवदेव गजानन विनायकने उनके सम्मुख प्रकट होकर कहा—'मैं तुम्हारे अत्यन्त घोर तपसे संतुष्ट होकर तुम्हें वर प्रदान करने आया हूँ। तुम इच्छित वर माँगो। मैं तुम्हारी कामना अवश्य पूरी करूँगा।'

'प्रभो! आप ही जगत्‌के स्रष्टा, पालक और संहारकर्ता हैं। आप सर्वेश्वर, नित्य, निरञ्जन, प्रकाशस्वरूप, निर्गुण, निरहंकार, नाना रूप धारण करनेवाले और सर्वस्व प्रदान करनेवाले हैं। प्रभो! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो कृपापूर्वक मेरे पुत्ररूपमें प्रकट होकर मुझे कृतार्थ करें। आपके द्वारा दुष्टोंका विनाश एवं साधु-परित्राण हो और सामान्य-जन कृतकृत्य हो जायँ।'

'मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा।' वाञ्छाकल्पतरु विनायकने तुरंत कहा—'साधुजनोंका रक्षण, दुष्टोंका विनाश एवं तुम्हारी इच्छाकी पूर्ति करूँगा।' इतना कहकर देवदेव विनायक अन्तर्धान हो गये।

देवमाता अदिति अपने आश्रमपर लौटीं। उन्होंने अपने पतिके चरणोंमें प्रणामकर उन्हें सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया। महर्षि कश्यप आनन्दमग्न हो गये।

× × ×

उधर देवान्तक और नरान्तकके कठोरतम क्रूर शासनमें समस्त देवसमुदाय और ब्राह्मण अत्यन्त भयाक्रान्त हो कष्ट पा रहे थे। वे अधीर और अशान्त हो गये थे। तब ब्रह्माजीके निर्देशानुसार दुष्ट दैत्योंके भारसे पीडित—व्याकुल धरित्रीसहित देवताओं और ऋषियोंने हाथ जोड़कर आदिदेव विनायककी स्तुति करते हुए कहा—'देव! सम्पूर्ण जगत् हाहाकारसे व्याप्त एवं स्वधा और स्वाहासे रहित हो गया है। हम सब पशुओंकी तरह सुमेरु-पर्वतकी कन्दराओंमें रह रहे हैं। अतएव हे विश्वम्भर! आप इन महादैत्योंका विनाश करें।'

—इस प्रकार करुण प्रार्थना करनेपर पृथ्वीसहित देवताओं और ऋषियोंने आकाशवाणी सुनी—

कश्यपस्य गृहे देवोऽवतरिष्यति साम्प्रतम्।
करिष्यत्यद्भुतं कर्म पदानि वः प्रदास्यति॥
दुष्टानां निधनं चैव साधूनां पालनं तथा।

(गणेशपु० २।६।१७-१८)

'सम्प्रति देवदेव गणेश महर्षि कश्यपके घरमें अवतार लेंगे और अद्भुत कर्म करेंगे। वे ही आप लोगोंको पूर्वपद भी प्रदान करेंगे। वे दुष्टोंका संहार एवं साधुओंका पालन करेंगे।'

'देवि! तुम धैर्य धारण करो।' आकाशवाणीसे आश्वस्त होकर पद्मयोनिने मेदिनीसे कहा—'समस्त देवता पृथ्वीपर जायँगे और निःसंदेह महाप्रभु विनायक अवतार ग्रहणकर तुम्हारा कष्ट निवारण करेंगे।'

पृथ्वी, देवता तथा मुनिगण विधाताके वचनसे प्रसन्न होकर अपने-अपने स्थानोंको चले गये।

× × ×

कुछ समय बाद सती कश्यप-पत्नी अदितिके समक्ष मङ्गलमयी वेलामें अद्भुत, अलौकिक, परमतत्त्व प्रकट हुआ। वह अत्यन्त बलवान् था। उसकी दस भुजाएँ थीं। कानोंमें कुण्डल, ललाटपर कस्तूरीका शोभाप्रद तिलक और मस्तकपर मुकुट सुशोभित था। सिद्धि-बुद्धि साथ थीं और कण्ठमें रत्नोंकी माला शोभायमान थी। वक्षपर चिन्तामणिकी अद्भुत सुषमा थी और अधरोष्ठ जपापुष्प-तुल्य अरुण थे। नासिका ऊँची थी और सुन्दर भ्रुकुटिके संयोगसे ललाटकी सुन्दरता बढ़ गयी थी। वह दाँतसे दीप्तिमान् था। उसकी अपूर्व देहकान्ति अन्धकारको नष्ट करनेवाली थी। उस शुभ बालकने दिव्य वस्त्र धारण कर रखा था।

महिमामयी अदिति उस अलौकिक सौन्दर्यको देखकर चकित और आनन्द-विह्वल हो रही थीं। उस समय परम तेजस्वी अद्भुत बालकने कहा—'माता! तुम्हारी तपस्याके फलस्वरूप मैं तुम्हारे यहाँ पुत्ररूपसे आया हूँ। मैं दुष्ट दैत्योंका संहारकर साधु-पुरुषोंका हित एवं तुम्हारी कामनाओंकी पूर्ति करूँगा।'

'आज मेरे अद्भुत पुण्य उदित हुए हैं, जो साक्षात गजानन मेरे यहाँ अवतरित हुए।' हर्ष-विह्वल माता अदितिने विनायकदेवसे कहा—'यह मेरा परम सौभाग्य है; जो चराचरमें व्याप्त, निराकार, नित्यानन्दमय, सत्यस्वरूप परब्रह्म परमेश्वर गजानन मेरे पुत्रके रूपमें प्रकट हुए।' किंतु अब आप इस अलौकिक एवं परम दिव्य रूपका उपसंहार

कर प्राकृत बालककी भाँति क्रीडा करते हुए मुझे पुत्र-सुख प्रदान करें—

> **इदं रूपं परं दिव्यमुपसंहर साम्प्रतम्।**
> **प्राकृतं रूपमास्थाय क्रीडस्व कुहको यथा॥**
>
> (गणेशपु० २।६।३५)

तत्क्षण अदितिके सम्मुख अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट सशक्त बालक धरतीपर तीव्र रुदन करने लगा। उसके रुदनकी ध्वनि आकाश, पाताल और धरतीपर दसों दिशाओंमें व्याप्त हो गयी। अद्भुत बालकके रुदनसे धरती काँपने लगी, वन्ध्या स्त्रियाँ गर्भवती हो गयीं, नीरस वृक्ष सरस हो गये; देव-समुदायसहित इन्द्र आनन्दित और दैत्यगण भयभीत हो गये।

महर्षि कश्यपकी पत्नी अदितिके अङ्कमें बालक आया जानकर ऋषि-मुनि एवं ब्रह्मचारी आदि आश्रमवासी तथा देवगण सभी प्रसन्न थे। बालकके स्वरूपके अनुसार पिता कश्यपने उसका नामकरण किया—'महोत्कट।'

ऋषिपुत्र—महोत्कटके जन्मका समाचार सुनकर असुरोंके मनमें भय व्याप्त हो गया और वे उन्हें बाल्यकालमें ही मार डालनेका प्रयत्न करने लगे। असुरराज देवान्तकने महोत्कटको मारनेके लिये 'विरजा' नामकी एक क्रूर राक्षसीको भेजा, परंतु महोत्कटने खेल-खेलमें ही उसे परमधाम प्रदान कर दिया। इसके बाद 'उद्धत' और 'धुन्धुर' नामक दो राक्षस शुक-रूपमें कश्यपके आश्रममें पहुँचकर अपने तीक्ष्ण चोंचोंसे मुनिकुमार 'महोत्कट' को मारनेका प्रयास करने लगे। इसपर क्रुद्ध हो उन्होंने क्षणभरमें उन शुकरूप राक्षसोंको धरतीपर पटककर मार डाला। इसी प्रकार महोत्कटने धूम्राक्ष, जृम्भा, अन्धक, नरान्तक तथा देवान्तक आदि भयानक मायावी असुरों एवं आसुरी सेनाका अनेक लीलाओंसे संहारकर तीनों लोकोंको आनन्दित किया—विश्वकी रक्षा की। भगवान्‌के हाथों मृत्यु होनेसे इन असुरोंको परमपदकी प्राप्ति हुई। देवान्तक-युद्धमें प्रभु द्विदन्तीसे एकदन्ती हो गये और अपने एक रूपसे 'ढुण्ढिविनायक' के नामसे काशीमें प्रतिष्ठित हो गये।

~~~ o ~~~

भगवान् मयूरेश्वरका अवतार

त्रेतायुगकी बात है। मैथिलदेशमें प्रसिद्ध गण्डकी नगरके सद्धर्मपरायण नरेश चक्रपाणिके पुत्र सिन्धुके क्रूरतम शासनसे धराधामपर धर्मकी मर्यादाका अतिक्रमण हो रहा था। उसी समय भगवान् गणेशने 'मयूरेश्वर' के रूपमें लीला-विग्रह धारणकर विविध लीलाएँ कीं और महावली सिन्धुके अत्याचारोंसे त्रैलोक्यका रक्षण करते हुए पुनः विधाताके शाश्वत नियमोंकी प्रतिष्ठापना की।

अत्यन्त शक्तिशाली सिन्धुके दो सहस्र वर्षकी उग्र तपस्यासे सहस्रांशु बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे अभीष्ट वरके रूपमें अमृतपात्र प्रदान करते हुए कहा—'जबतक यह अमृतपात्र तुम्हारे कण्ठमें रहेगा, तबतक तुम्हें देवता, नाग, मनुष्य, पशु एवं पक्षी आदि कोई भी दिन, रात, प्रातः तथा सायं किसी भी समय मार न सकेगा।' अब तो वर पाकर वह अत्यन्त मदोन्मत्त हो गया। [illegible] सत्धर्मके समर्थक [illegible] एवं अबोध शिशुओंकी हत्या करनेमें गर्वका अनुभव करने लगा। सम्पूर्ण धरित्री रक्त-रंजित-सी हो गयी। इसके बाद उसने पातालमें भी अपना आधिपत्य जमा लिया और ससैन्य स्वर्गलोकपर चढ़ाई करके वहाँ शचीपति इन्द्रादि देवताओंको पराभूतकर तथा विष्णुको वंदी वनाकर सर्वत्र हाहाकार मचा दिया।

चिन्तित देवताओंने इस विकट कष्टसे मुक्ति पानेके लिये अपने गुरु बृहस्पतिसे निवेदन किया। सुरगुरुने कहा—'परम प्रभु विनायक स्वल्प पूजासे ही शीघ्र प्रसन्न होनेवाले हैं; अतः आप लोग असुरसंहारक, दशभुज विनायककी स्तुति-प्रार्थना करें। ऐसा करनेसे वे करुणासिन्धु अवतरित होकर असुरोंका वधकर धराका भार हलका करेंगे और आप लोगोंको अपना पद पुनः प्रदान करेंगे।' प्रसन्नतापूर्वक देवताओंने भक्तिपूर्वक उनका स्तवन प्रारम्भ कर दिया।
~~~

देवताओंकी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर परमप्रभु विनायक प्रकट हो गये और कहने लगे—'जिस प्रकार मैंने महामुनि कश्यपकी परम साध्वी पत्नी अदितिके गर्भसे जन्म लिया था, उसी प्रकार शिवप्रिया माता पार्वतीके यहाँ अवतरित होकर महादैत्य सिन्धुका वध करूँगा और आप सबको अपना-अपना पद प्रदान करूँगा। इस अवतारमें मेरा नाम 'मयूरेश्वर' प्रसिद्ध होगा'—इतना कहकर परम प्रभु विनायक अन्तर्धान हो गये। देवगणोंके तो हर्षका ठिकाना न रहा।

एक बार माता पार्वती देवाधिदेव भगवान् शंकरको तपश्चरणमें निरत देख उनसे कहने लगीं—'प्रभो! आप तो स्वयं सृष्टिके पालन एवं संहारकर्ता तथा अनन्तानन्त-कोटि ब्रह्माण्डोंके नायक हैं, फिर आप किसे प्रसन्न करनेके लिये तप करते हैं'? शूलपाणिने उत्तर दिया—'निष्पापे! मैं उन अनन्त महाप्रभुकी प्रसन्नताके लिये तप करता हूँ, जिनकी शक्ति, गुण और कर्म सभी अनन्त हैं। अनन्तानन्त ब्रह्माण्ड उनके प्रत्येक रोममें निवास करते हैं और समस्त गुणोंके ईश होनेके कारण वे 'गुणेश' कहे जाते हैं। मैं उन्हीं 'गुणेश' का निरन्तर ध्यान करता रहता हूँ।' यह सुनकर गौरीने जिज्ञासा प्रकट की—'प्रभो! वे परम प्रभु मुझपर कैसे प्रसन्न होंगे, मुझे उनका प्रत्यक्ष दर्शन किस प्रकार हो सकेगा?' भगवान् शंकरने कहा—'हे प्रिये! निष्ठापूर्वक किये गये आराधन तथा तपश्चरणसे ही उनका दर्शन सुलभ हो सकेगा। इसके लिये तुम्हें बारह वर्षोंतक गणेशके एकाक्षरी मन्त्रका जप करना होगा।' जगन्माता पार्वती भगवान् शंकरसे उपदिष्ट उस एकाक्षरी गणेशमन्त्र (गं)-का जप करने लगीं।

× × ×

कुछ ही समय बाद भाद्रपद-मासकी शुक्ल-पक्षीय चतुर्थी-तिथि आयी। सभी ग्रह-नक्षत्र शुभस्थ एवं मङ्गलमय योगमें विराजमान थे। उसी समय विराट्रूपमें पार्वतीके सम्मुख भगवान् गणेशका अवतरण हुआ। इस रूपसे चकित-थकित होती हुई तपस्विनी पार्वतीने कहा—'प्रभो! मुझे अपने पुत्र-रूपका दर्शन कराइये।' इतना सुनना था कि सर्वसमर्थ प्रभु तत्काल स्फटिकमणितुल्य षड्भुज दिव्य विग्रहधारी शिशुरूपमें क्रीडा करने लगे। उनकी देहकी कान्ति अद्भुत लावण्ययुक्त एवं प्रभासम्पन्न थी। उनका वक्षःस्थल विशाल था। सभी अंग पूर्णतः शुभ चिह्नोंसे अलंकृत थे। दिव्य शोभासम्पन्न यह विग्रह ही 'मयूरेश्वर' रूपमें साक्षात् प्रकट हुआ था। मयूरेशके आविर्भावसे ही प्रकृतिमात्र आनन्दविभोर हो उठी। आकाशस्थ देवगण पुष्प-वर्षण करने लगे।

आविर्भावके समयसे ही सर्वविघ्नहारी शिवा-पुत्रकी दिव्य लीलाएँ प्रारम्भ हो गयी थीं। एक दिनकी बात है। समस्त ऋषियोंके अन्यतम प्रीतिभाजन हेरम्ब क्रीडा-मग्न थे, सहसा गृध्ररूपधारी एक भयानक असुरने उन्हें अपनी चोंचमें पकड़ लिया और बहुत ऊँचे आकाशमें उड़ गया। जब पार्वतीने अपने प्राणप्रिय बालकको आकाशमें उस विशाल गृध्रके मुखमें देखा तो सिर धुन-धुनकर करुण विलाप करने लगीं। सर्वात्मा हेरम्बने माताकी व्याकुलता देखकर मुष्टि-प्रहार मात्रसे ही गृध्रासुरका वध कर दिया। चीत्कार करता हुआ वह विशालकाय असुर पृथ्वीपर गिर पड़ा। बाल भगवान् मयूरेश उस असुरके साथ ही नीचे आये थे, परंतु वे सर्वथा सुरक्षित थे, उन्हें खरोंचतक नहीं लगी थी। माता पार्वतीने दौड़कर बच्चेको उठा लिया और देवताओंकी मिन्नतें करती हुई दुग्धपान कराने लगीं।

इसी तरह एक दिन माता पार्वती जब उन्हें पालनेमें लिटाकर लोरी सुना रही थीं, उसी समय क्षेम और कुशल नामक दो भयानक असुर वहाँ आकर बालकको मारनेका प्रयत्न करने लगे, पार्वती अभी कुछ समझ पातीं तबतक बालकने अपने पदाघातसे ही उन राक्षसोंका हृदय विदीर्ण कर दिया। वे राक्षस रक्त-वमन करते हुए वहीं गिर पड़े। भगवान्ने उन्हें मोक्ष प्रदान कर दिया।

× × ×

एक दिन माता पार्वती सखियोंके साथ मन्दिरमें पूजा करने गयीं। बालक गणेश वहीं मन्दिरके बाहर खेलने लगे। उसी समय क्रूर नामक एक महाबलवान् असुर ऋषिपुत्रके वेषमें आकर उनके साथ खेलने लगा और खेल-खेलमें हेरम्बको मार डालनेके लिये उनके केश पकड़कर उन्हें धरतीपर पटकना चाहता था, परंतु लीलाधारी भगवान्ने उसका गला दबाकर तत्क्षण ही उसकी इहलीला समाप्त कर

दी। सखियोंसहित पार्वती यह दृश्य देखकर आश्चर्यचकित हो गयीं।

इसी तरह मङ्गलमोद प्रभु गणेशने लीला करते हुए असुर सिन्धुद्वारा भेजे गये अनेक छल-छद्मधारी असुरोंको सदा-सर्वदाके लिये मुक्त कर दिया। इस क्रममें उन्होंने दुष्ट वकासुर तथा श्वानरूपधारी 'नूतन' नामक राक्षसका वध किया। अपने शरीरसे असंख्य गणोंको उत्पन्न कर 'कमलासुर' की बारह अक्षौहिणी सेनाका विनाश कर दिया तथा त्रिशूलसे कमलासुरका मस्तक काट डाला। उसका मस्तक भीमा नदीके तटपर जा गिरा। देवताओं तथा ऋषियोंकी प्रार्थनापर गणेश वहाँ 'मयूरेश' नामसे प्रतिष्ठित हुए।

इधर दुष्ट दैत्य सिन्धुने जब सभी देवताओंको कारागारमें बंदी बना लिया, तब भगवान्‌ने दैत्यको ललकारा। भयंकर युद्ध हुआ। असुर-सैन्य पराजित हुआ। यह देख कुपित दैत्यराज अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे मयूरेशपर प्रहार करने लगा; परंतु सर्वशक्तिमान्‌के लिये शस्त्रास्त्रोंका क्या महत्त्व! सभी प्रहार निष्फल हो गये। अन्तमें महादैत्य सिन्धु मयूरेशके परशु-प्रहारसे निश्चेष्ट हो पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसे दुर्लभ मुक्ति प्राप्त हुई। देवगण मयूरेशकी स्तुति करने लगे। भगवान् मयूरेशने सबको आनन्दितकर सुख-शान्ति प्रदान किया और अपने लीलावतरणके प्रयोजनकी पूर्णता बतलाते हुए अन्तमें अपनी लीलाका संवरण करके वे परम प्रभु परमधामको पधार गये—वहीं अन्तर्धान हो गये।

श्रीगजाननकी प्राकट्य-लीला

द्वापर युगकी बात है। एक दिन पार्वतीवल्लभ शिव ब्रह्म-सदन पहुँचे। उस समय चतुर्मुख शयन कर रहे थे। कमलासनने निद्रासे उठते ही जँभाई ली। उसी समय उनके मुखसे एक महाघोर पुरुष प्रकट हुआ। जन्म लेते ही उसने त्रैलोक्यमें भय उत्पन्न करनेवाली घोर गर्जना की। उसके उस गर्जनसे सम्पूर्ण वसुधा काँप गयी, दिक्पाल चकित हो गये।

उस महाघोर पुरुषकी अङ्ग-कान्ति जपा-पुष्पके सदृश लाल थी और उसके शरीरसे तीव्र सुगन्ध निकल रही थी। उसके रूप-सौन्दर्यको देखकर पद्मयोनि भी चकित हो गये। उन्होंने उससे पूछा—'तुम कौन हो? तुम्हारा जन्म कहाँ हुआ है और तुम्हें क्या अभीष्ट है?'

उक्त पुरुषने उत्तर दिया—'देवाधिदेव! आप अनेक ब्रह्माण्डोंका निर्माण करते हैं, सर्वज्ञ हैं, फिर अनजानकी तरह कैसे पूछ रहे हैं? जँभाई लेते समय मैं आपके मुखसे प्रकट हुआ आपका पुत्र हूँ; अतएव आप मुझे स्वीकार कीजिये और मेरा नामकरण कर दीजिये।'

विधाता अपने पुत्रका सौन्दर्य देखकर मुग्ध हो गये थे, अब उसकी मधुर वाणी सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—'बेटा! अतिशय अरुणवर्ण होनेके कारण तेरा नाम 'सिन्दूर' होगा। त्रैलोक्यको अधीन करनेकी तुझमें अद्भुत शक्ति होगी। तू क्रोधपूर्वक अपनी विशाल भुजाओंमें पकड़कर जिसे दबोच लेगा, उसके शरीरके सैकड़ों टुकड़े हो जायँगे, त्रैलोक्यमें तेरी जहाँ इच्छा हो, तुझे जो स्थान प्रिय लगे, वहीं निवास कर।'

पितासे इतने वर प्राप्तकर मदोन्मत्त सिन्दूर सोचने लगा—'उनका वर-प्रदान सत्य है कि नहीं, कैसे पता चले? यहाँ कोई है भी नहीं, जिसे मैं अपने भुजापाशमें आबद्धकर वरका परीक्षण कर लूँ। कहाँ जाऊँ? कहीं तो कोई नहीं दीखता।'

अब वह सीधे पितामहके समीप पहुँचा। उसने अपनी दोनों भुजाओंको तौलते हुए गर्जना की। उसकी कुचेष्टाकी कल्पना करके भयभीत पद्मयोनिने दूर जाकर पूछा—'लौट कैसे आये बेटा?'

'आपके वरकी परीक्षा करना चाहता हूँ।'

सिन्दूरका कथन सुनकर पितामहने उसे शाप देते हुए कहा—'सिन्दूर! अब तू असुर हो जायगा। सिन्दूर-प्रिय सिन्दूरारुण प्रभु गजानन तेरे लिये अवतरित होंगे और निश्चय ही तुझे मार डालेंगे।'

इस प्रकार शाप देते हुए पितामह प्राण लेकर भागे। दौड़ते-दौड़ते वे वैकुण्ठ पहुँचे और श्रीहरिसे निवेदन किया—'प्रभो! इस दुष्टसे आप मेरी रक्षा कीजिये।'

वर-प्राप्त सिन्दूरकी सुगठित प्रचण्ड काया देखकर श्रीविष्णुने अत्यन्त मधुर वाणीमें उसे समझाना चाहा; लेकिन सर्वथा मूर्ख, उद्दण्ड-प्रचण्ड वह असुर युद्धके लिये विष्णुकी ओर बढ़ने लगा। तब भगवान् विष्णुने उसे भगवान् शंकरसे युद्धके लिये प्रेरित किया।

बलोन्मत्त मूर्ख असुर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। वह बड़े वेगसे उड़ा और कैलासपर्वतपर जा पहुँचा। वहाँ आशुतोष शिव पद्मासन लगाये ध्यानस्थ थे। नन्दी और भृङ्गी आदि गण उन परम प्रभुके आस-पास थे और माता पार्वती उनकी सेवा कर रही थीं।

सिन्दूर पार्वतीकी ओर मुड़ा ही था कि वे वटपत्रकी भाँति काँपती हुई मूर्च्छित हो गयीं। महापातकी असुरने जगज्जननीकी वेणी पकड़ ली और उन्हें बलपूर्वक ले चला। कोलाहलसे त्रिपुरारिकी समाधि भङ्ग हुई।

यह देख क्रोधसे भगवान् शंकरके नेत्र लाल हो गये। वे तीव्रतम गतिसे सिन्दूरके पीछे दौड़े तथा क्षणभरमें ही उसके समीप पहुँच गये। अत्यन्त कुपित वृषभध्वज असुरसे युद्ध करनेके लिये उद्यत थे ही; उसी समय माता पार्वतीने मन-ही-मन मयूरेशका चिन्तन किया। तत्क्षण कोटिसूर्य-समप्रभ देवदेव मयूरेश्वर ब्राह्मणके वेषमें सिन्दूर और शंकरके बीच प्रकट हो गये। वे अत्यन्त सुन्दर एवं वस्त्राभूषण-भूषित थे। उन्होंने अपने तीक्ष्णतम तेजस्वी परशुसे असुरको पीछे हटाकर अत्यन्त मधुर वाणीमें कहा—'माता गिरिजाको तुम मेरे पास छोड़ दो; फिर शिवके साथ युद्ध करो। युद्धमें जिसकी विजय होगी, पार्वती उसीकी होंगी, अन्यथा नहीं।'

ब्राह्मणवेषधारी मयूरेशके वचन सुनकर सिन्दूर संतुष्ट हुआ। उसने माता पार्वतीको मयूरेशके पास चले जाने दिया और फिर युद्ध आरम्भ हुआ। परशुके आघातसे सिन्दूरकी शक्ति अत्यन्त क्षीण हो गयी। उसके शिथिल होते ही मदनान्तकने उसपर अपने कठोर त्रिशूलका प्रहार किया, जिससे आहत होकर असुर वहीं गिर पड़ा।

विवश हो सिन्दूरने पार्वतीकी आशा छोड़ दी और वह पृथ्वीके लिये प्रस्थित हुआ। शंकर विजयी हुए।

अब ब्राह्मणवेषधारी मयूरेश अपने स्वरूपमें प्रकट हो गये और अपनी माताकी ओर देखकर मन्द-मन्द मुस्कराने लगे तथा मातासे कहा—'मैं आपके पुत्ररूपमें शीघ्र ही प्रकट होकर असुरोंका विनाश करूँगा।' इतना कहकर वे अन्तर्धान हो गये।

इधर जब सिन्दूरके आतंकसे त्रैलोक्य कम्पित हो गया तब सुरगुरु बृहस्पतिके निर्देशानुसार देवगण करुणामय विनायककी स्तुति करने लगे। स्तुति करके देवता और मुनि सभी तपस्यामें संलग्न हुए। देवताओं और ऋषियोंके कठोर तपसे देवदेव गणराज प्रसन्न हो उनके समक्ष प्रकट हुए और उन्होंने कहा—'देवताओ! मैं असुर सिन्दूरका वध करूँगा। तुम लोग निश्चिन्त हो जाओ। 'गजानन' यह मेरा सर्वार्थसाधक नाम प्रसिद्ध होगा। मैं सिन्दूरका वधकर पार्वतीके सम्मुख अनेक प्रकारकी लीलाएँ करूँगा। इतना कहकर गजानन अन्तर्धान हो गये।

देवाधिदेव भगवान् शंकरके अनुग्रहसे जगज्जननी पार्वतीके सम्मुख अतिशय तेजोराशिसे उद्दीप्त चन्द्र-तुल्य परमाह्लादक परम तत्त्व प्रकट हुआ।

माता पार्वतीने उस परम तेजस्वी मूर्तिसे पूछा—'आप कौन हैं? कृपया परिचय देकर आप मुझे आनन्द प्रदान करें।'

तेजस्वी विग्रहने उत्तर दिया—'माता! त्रेतामें शुभ्रवर्ण षड्भुज मयूरेश्वरके रूपमें मैंने ही आपके पुत्रके रूपमें अवतरित होकर सिन्धु-दैत्यका वध किया था और द्वापरमें पुनः आपको पुत्र-सुख प्रदान करनेका जो वचन दिया था, उसका पालन करनेके लिये मैं आपके पुत्र-रूपमें प्रकट हुआ हूँ। मैंने ही ब्राह्मण-वेषमें आकर सिन्दूरके हाथसे आपकी रक्षा की थी। माता! अब मैं सिन्दूरका वधकर त्रिभुवनको सुख-शान्ति दूँगा और भक्तोंकी कामना-पूर्ति करूँगा। मेरा नाम 'गजानन' प्रसिद्ध होगा।'

देवदेव विनायकको पहचानकर गौरीने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर हाथ जोड़कर वे उनका स्तवन करने लगीं।

माताकी प्रार्थना सुनते ही परम प्रभु अत्यन्त अद्भुत चतुर्भुज शिशु हो गये। उनकी चार भुजाएँ थीं। नासिकाके स्थानपर शुण्डदण्ड सुशोभित था। उनके मस्तकपर चन्द्रमा

और हृदयपर चिन्तामणि दीप्तिमान् थे। वे गणपति दिव्य वस्त्र धारण किये, दिव्यगन्धयुक्त नवजात शिशुकी तरह माताके सम्मुख उपस्थित थे। कुछ क्षणके पश्चात् शिशुरूपधारी परम प्रभु गजाननने शिवसे कहा—'सदाचारपरायण परम पवित्र धर्मात्मा राजा वरेण्य मेरा भक्त है। उसकी सुन्दरी साध्वी पत्नीका नाम पुष्पिका है। पुष्पिका पतिव्रता, पतिप्राणा और पतिवाक्यपरायणा है। उन दोनोंने मुझे संतुष्ट करनेके लिये बारह वर्षोंतक कठोर तप किया था। मैंने प्रसन्न होकर उन्हें वर प्रदान किया था—'निश्चय ही मैं तुम्हारा पुत्र बनूँगा।' पुष्पिकाने अभी-अभी प्रसव किया है, किंतु उसके पुत्रको एक राक्षसी उठा ले गयी है। इस समय वह मूर्च्छित है; पुत्रके बिना वह प्राण त्याग देगी। अतएव आप मुझे तुरंत उस प्रसूताके पास पहुँचा दीजिये।'

गजाननकी वाणी सुनकर भगवान् शंकरने नन्दीको बुलाकर कहा—'पराक्रमी नन्दी! माहिष्मी नामक श्रेष्ठ नगरीमें वरेण्य नामक नरेशकी पत्नी पुष्पिकाने अभी कुछ ही देर पूर्व प्रसव किया है। वह कष्टसे मूर्च्छित हो गयी है और उसके शिशुको एक राक्षसी उठा ले गयी है। तुम इस पार्वती-पुत्रको तुरंत उसके समीप रखकर लौट आओ। पुष्पिकाकी मूर्च्छा दूर होनेके पूर्व ही यह शिशु उसके समीप पहुँच जाय; अन्यथा प्रसूताके प्राण-संकटकी सम्भावना है।'

नन्दी अपने स्वामीके चरणोंमें प्रणामकर गजाननको लेकर वायुवेगसे उड़ चले और मूर्च्छिता पुष्पिकाके सम्मुख चुपचाप गजमुखको रखकर तुरंत लौट आये।

रात्रि व्यतीत हुई। अरुणोदय हुआ। पुष्पिकाने ध्यानपूर्वक अपने शिशुको देखा—रक्तवर्ण, चतुर्बाहु, गजवक्त्र, कस्तूरी-तिलक, चन्दन-चर्चित अङ्गपर पीतवर्ण-परिधान और मोतियोंकी माला तथा विविध रत्नाभरण शोभित हो रहे थे।

इस प्रकारका अद्भुत बालक देखकर पुष्पिका चकित और दुःखी ही नहीं हुई, भयसे काँपती हुई वह प्रसूति-गृहसे बाहर भागी। वह शोकसे व्याकुल होकर रोने लगी। रानीका रुदन सुनकर परिचारिकाएँ प्रसूति-गृहमें गयीं। अलौकिक बालकको देखकर वे भी भयाक्रान्त हो काँपती हुई बाहर आ गयीं। दूसरे जिन-जिन स्त्री-पुरुषोंने उन शिशु-रूपधारी परम पुरुषका दर्शन किया, वे सभी भयभीत हुए। कुछ तो मूर्च्छित हो गये।

प्रत्यक्षदर्शियोंने राजासे कहा—ऐसे विचित्र बालकको घरमें नहीं रखना चाहिये।

सबके मुँहसे भयभीत करनेवाले ऐसे वचन सुनकर नरेश वरेण्यने अपने दूतको बुलाकर आज्ञा दी—'इस शिशुको निर्जन वनमें छोड़ आओ।'

राजाके दूतने नवजात शिशुको उठाया और शीघ्रतासे निर्जन वनमें एक सरोवरके तटपर धीरेसे रख दिया और द्रुत गतिसे लौट चला।

गहन काननमें सरोवरके तटपर पड़े नवजात शिशुपर अचानक महर्षि पराशरकी दृष्टि पड़ी। उन्होंने शिशुके समीप पहुँचकर देखा—'दिव्य वस्त्रालंकारविभूषित, सूर्यतुल्य तेजस्वी, चतुर्भुज, गजमुख अलौकिक शिशु।'

महामुनिने शिशुको बार-बार ध्यानपूर्वक देखा। उसके नन्हे-नन्हे अरुण चरण-कमलोंपर दृष्टि डाली। उनपर ध्वज, अंकुश और कमलकी रेखाएँ दिखायी दीं।

महर्षिको रोमांच हो आया। हर्षातिरेकसे हृदय गद्गद, कण्ठ अवरुद्ध और नेत्र सजल हो गये। आश्चर्यचकित मुनिके मुँहसे निकल गया—'अरे, ये तो साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर हैं। इन करुणामयने देवता और ऋषियोंका कष्ट निवारण करने और मेरा जीवन—जन्म सफल बनानेके लिये अवतार ग्रहण किया है।'

महर्षिने शिशुके चरणोंमें प्रणामकर उसे अत्यन्त आदरपूर्वक अङ्कमें ले लिया और प्रसन्न-मन द्रुत गतिसे आश्रमकी ओर चले।

गजाननके चरण-स्पर्शसे ही महर्षि पराशरका सुविस्तृत आश्रम अतिशय मनोहर हो गया। वहाँके सूखे वृक्ष भी पल्लवित और पुष्पित हो उठे। वहाँकी गायें कामधेनु-तुल्य हो गयीं। सुखद पवन बहने लगा। आश्रम दिव्यातिदिव्य हो गया।

'मेरे शिशुका पालन दिव्यदृष्टि-सम्पन्न महर्षि पराशर कर रहे हैं।' इस संवादसे नरेश वरेण्य अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने यहाँ पुत्रोत्सव मनाया। वाद्य बजने लगे। घर-घर मिष्टान्न-वितरण हुआ। नरेशने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक

ब्राह्मणोंको बहुमूल्य वस्त्र, स्वर्ण और रत्नालङ्करण देकर संतुष्ट किया।

गजानन नौ वर्षके हुए। इस बीच उन्होंने अपनी भुवनमोहिनी बाल-क्रीडाओंसे महर्षि पराशर, माता वत्सला और आश्रमोंके ऋषियों, ऋषि-पत्नियों तथा मुनि-पुत्रोंको अतिशय सुख प्रदान किया। साथ ही कुशाग्रबुद्धि विचक्षण गजानन समस्त वेदों, उपनिषदों, शास्त्रों एवं शस्त्रास्त्रसंचालन आदिमें पारंगत विद्वान् हो गये। उनकी प्रखर प्रतिभाका अनुभव करके महर्षि पराशर चकित हो जाते; ऋषिगण विस्मित रहते। गजमुख सबके अन्यतम प्रीतिभाजन बन गये थे।

इधर सर्वथा निरंकुश, परम उद्दण्ड, शक्तिशाली सिन्दूरका अत्याचार पराकाष्ठापर पहुँच गया था। उसके भयसे देवपूजन और यज्ञ-यागादि सब बंद हो गये थे तथा देवता, ऋषि और ब्राह्मण त्रस्त थे, भीत थे। कुछ गिरि-गुफाओं और निविड वनोंमें छिपकर अपने दिन व्यतीत करते थे। अधिकांश सत्त्वगुणसम्पन्न धर्मपरायण देव-विप्रादि सिन्दूरके कारागारमें यातना सह रहे थे।

उस उद्धत असुरकी इस अनीतिका संवाद जब पराशर-आश्रममें पहुँचता तो गजानन अधीर और अशान्त हो जाते और अब तो त्रैलोक्यकी दारुण स्थिति उनके लिये असह्य हो गयी। क्षुब्ध गजाननने अपने पिता पराशरके समीप जाकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया और कहा— 'मुनिवर! सिन्दूरासुरके दुराचारसे धरती त्रस्त हो गयी है, अतः आप और माँ दोनों मुझे आशिष् दें, जिससे मैं अधर्मका नाश और धर्मकी स्थापना कर सकूँ।'

पुलकित महर्षि और महर्षि-पत्नीके नेत्र बरस पड़े। वे लोग गजाननके सिरपर हाथ फेरते हुए गद्गद-कण्ठ हो बोल न सके, उनके मुँहसे केवल अधूरा वाक्य निकल सका—'माता-पिता तो अपने प्राण-प्रिय पुत्रकी सदा ही विजय''''।'

फिर वत्सलानन्दन अपने चारों हाथोंमें अंकुश, परशु, पाश और कमल धारणकर मूषकपर आरूढ हुए। वीर बालक गजाननने गर्जना की। उनके गर्जनसे त्रिभुवन काँपने लगा। गजानन वायुवेगसे चल पड़े। उनके परम तेजस्वी स्वरूपसे प्रलयाग्नि-तुल्य ज्वाला निकल रही थी।

भयभीत दूतोंने सिन्दूरके पास जाकर इसकी सूचना दी। सिन्दूर आकाशवाणीकी स्मृतिसे चिन्तित हो गया; किंतु दूसरे ही क्षण क्रोधसे उसके नेत्र लाल हो गये। वह वेगसे चला और गजमुखके सम्मुख पहुँच गया तथा अनेक प्रकारके अनर्गल प्रलापसे गजाननको डराने-धमकाने लगा।

'दुष्ट असुर!' गजाननने अत्यन्त निर्भीकतासे कहा— 'मैं दुष्टोंका सर्वनाश कर धरणीका उद्धार और सद्धर्मकी स्थापना करनेवाला हूँ। यदि तू मेरी शरण आकर अपने पातकोंके लिये क्षमा-प्रार्थनापूर्वक सद्धर्मपरायण नरेशकी भाँति जीवित रहनेकी प्रतिज्ञा कर ले, तब तो तुम्हें छोड़ दूँगा; अन्यथा विश्वास कर, तेरा अन्तकाल समीप आ गया है।'

इतना कहते ही पार्वतीनन्दनने विराट् रूप धारण कर लिया। उनका मस्तक ब्रह्माण्डका स्पर्श करने लगा। दोनों पैर पातालमें थे। कानोंसे दसों दिशाएँ आच्छादित हो गयीं। वे सहस्रशीर्ष, सहस्राक्ष, सहस्रपाद विश्वरूप प्रभु सर्वत्र व्याप्त थे। वे अनादिनिधन, अनिर्वचनीय विराट् गजानन दिव्य वस्त्र, दिव्य गन्ध और दिव्य अलंकारोंसे अलंकृत थे। उन अनन्त प्रभुका तेज अनन्त सूर्योंके समान था।

महामहिम गजाननका महाविराट् रूप देखकर परम प्रचण्ड वर-प्राप्त असुर सिन्दूर सहम गया, पर उसने धैर्य नहीं छोड़ा। उसने भयानक गर्जना की और फिर वह प्रज्वलित दीपपर शलभकी तरह अपना खड्ग लेकर प्रहार करना ही चाहता था कि देवदेव गजाननने कहा—'मूढ़! तू मेरे अत्यन्त दुर्लभ स्वरूपको नहीं जानता; अब मैं तुझे मुक्ति प्रदान करता हूँ।'

देवदेव गजाननने महादैत्य सिन्दूरका कण्ठ पकड़ लिया। इसके बाद वे उसे अपने वज्र-सदृश दोनों हाथोंसे दबाने लगे। असुरके नेत्र बाहर निकल आये और उसी क्षण उसका प्राणान्त हो गया।

क्रुद्ध गजाननने उसके लाल रक्तको अपने दिव्य अङ्गोंपर पोत लिया। इस कारण जगत्‌में उन भक्तवाञ्छाकल्पतरु प्रभुका 'सिन्दूरवदन' और 'सिन्दूरप्रिय' नाम प्रसिद्ध हो गया।

'जय गजानन!' उच्च घोष करते हुए आनन्दमग्न देवगण आकाशसे पुष्प-वृष्टि करने लगे। वहाँ हर्षके बाजे बज उठे। अप्सराएँ नृत्य करने लगीं।

ब्रह्मा, इन्द्रादि देव और वसिष्ठादि मुनि 'गजाननकी जय' बोलते हुए पवित्रतम उपहार लिये धरणीका दुःख दूर करनेवाले परम प्रभु गजमुखके सम्मुख एकत्र हुए। सिन्दूर-वधसे प्रसन्न नृपतिगण भी वहाँ पहुँच गये।

उन सबने सर्वाभरणभूषित, पाश, अंकुश, परशु और मालाधारी, चतुर्भुज, मूषक-वाहन गजाननकी भक्तिपूर्वक षोडशोपचार पूजा की।

'मेरे पुत्रने लोककण्टक सिन्दूरको समाप्त किया है।' इस समाचारसे प्रसन्न होकर राजा वरेण्य भी वहाँ आ पहुँचे।

अपने पुत्रका प्रत्यक्ष प्रभाव देखकर राजा वरेण्य अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने अत्यन्त प्रीतिपूर्वक गजाननकी पूजा की और कहा—'जिस अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड-नायकको ब्रह्मादि देवगण भी नहीं जान पाते, भला मैं अज्ञानी मनुष्य उसे कैसे जान पाता। मैं अपनी मूढताको क्या कहूँ ? घर आयी कामधेनु और सुरतरुको मैंने बाहर खदेड़ दिया। आपकी मायासे मोहित होकर मैंने बड़ा अनर्थ किया है। आप मुझे क्षमा करें।'

पश्चात्ताप करते हुए राजा वरेण्यकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर वरेण्यनन्दन गजाननने अपनी चारों भुजाओंसे उनका आलिङ्गन किया और फिर कहा—'नरेश! पूर्वकल्पमें जब तुमने अपनी पत्नीके साथ सूखे पत्तोंपर जीवन-निर्वाह करते हुए दिव्य सहस्र वर्षोंतक कठोर तप किया था, तब मैंने प्रसन्न होकर तुम्हें दर्शन दिया। तुमने मुझसे मोक्ष न माँगकर मुझे पुत्र-रूपमें प्राप्त करनेकी इच्छा व्यक्त की। अतएव तुम्हारे पुत्र-रूपमें सिन्दूरका वधकर भू-भार-हरण करने तथा साधुजनोंके पालनके लिये मैंने साकार विग्रह धारण किया; अन्यथा मैं तो निराकार-रूपसे अणु-परमाणुमें व्याप्त हूँ। मैंने अवतार धारणकर सारा कार्य पूर्ण कर लिया। अब स्वधामप्रयाण करूँगा। तुम चिन्ता मत करना।'

'प्रभो! जगत् शाश्वत दुःखालय है।' प्रभुके स्वधामगमनकी बात सुनते ही राजा वरेण्यने अत्यन्त व्याकुलतासे हाथ जोड़कर कहा—'आप कृपापूर्वक मुझे इससे मुक्त होनेका मार्ग बता दीजिये।'

कृपापरवश प्रभु गजानन वहीं आसनपर बैठ गये। अपने सम्मुख बद्धाञ्जलि-आसीन राजा वरेण्यके मस्तकपर उन्होंने अपना त्रितापहारी वरद हस्त रख दिया। तदनन्तर उन्होंने नरेश वरेण्यको सुविस्तृत ज्ञानोपदेश प्रदान किया। तत्पश्चात् भगवान् श्रीगजानन अन्तर्धान हो गये।

परम प्रभुकी संनिधि, उनके कर-स्पर्श एवं अमृतमय उपदेशसे नरेश वरेण्य पूर्ण विरक्त हो गये। उन्होंने राज्यका दायित्व अमात्योंको सौंपा और स्वयं तपश्चरणार्थ वनमें चले गये। वहाँ उन्होंने अपना चित्त विषयोंसे हटाकर परब्रह्म श्रीगजाननमें केन्द्रित किया तथा अपना जीवन-जन्म सफल कर लिया।

श्रीगजानन-प्रदत्त वह अमृतोपदेश 'गणेश-गीता' के नामसे प्रख्यात हुआ।

~~ o ~~

श्रीधूम्रकेतुका अवतार

श्रीगणेशका कलियुगीय भावी अवतार 'धूम्रकेतु' के नामसे विख्यात होगा। जब कलियुगमें सर्वत्र धर्मका लोप हो जायगा, अत्याचार-अनाचारका साम्राज्य व्याप्त हो जायगा, आसुरी-तामसी वृत्तियोंकी प्रबलता छा जायगी, तब कलिके अन्तमें सर्वदुःखापह परम प्रभु गजानन धराधामपर अवतरित होंगे। उनका 'शूर्पकर्ण' और 'धूम्रवर्ण' नाम भी प्रसिद्ध होगा। क्रोधके कारण उन परम तेजस्वी प्रभुके शरीरसे ज्वाला निकलती रहेगी। वे नीले अश्वपर आरूढ होंगे। उन प्रभुके हाथमें शत्रु-संहारक तीक्ष्णतम खड्ग होगा। वे अपने इच्छानुसार नाना प्रकारके सैनिक एवं बहुमूल्य अमोघ शस्त्रास्त्रोंका निर्माण कर लेंगे।

फिर पातकध्वंसी परम प्रभु शूर्पकर्ण अपने तेज एवं सेनाके द्वारा सहज ही म्लेच्छोंका सर्वनाश कर देंगे। म्लेच्छ या म्लेच्छ-जीवन व्यतीत करनेवाले निश्चय ही परम प्रभु धूम्रकेतुके द्वारा मारे जायँगे। उन धर्म-संस्थापक प्रभुके नेत्रोंसे अग्नि-वर्षा होती रहेगी।

वे सर्वाधार, सर्वात्मा प्रभु धूम्रकेतु उस समय गिरिकन्दराओं एवं अरण्योंमें छिपकर वनफलोंपर जीवन-निर्वाह करनेवाले ब्राह्मणोंको बुलाकर उन्हें सम्मानित करेंगे और करुणामय धर्ममूर्ति शूर्पकर्ण उन सत्पुरुषोंको सद्धर्म एवं सत्कर्मके पालनके लिये प्रेरणा एवं प्रोत्साहन प्रदान करेंगे। फिर सबके द्वारा धर्माचरण सम्पादित होगा और धर्ममय सत्ययुगका शुभारम्भ हो जायगा। (गणेशपुराण)

~~ o ~~

श्रीगणेशके प्रमुख आठ अवतार

मुद्गलपुराणमें कहा गया है कि विघ्नविनाशन गणेशके अनन्त अवतार हैं। उनका वर्णन सौ वर्षोंमें भी सम्भव नहीं है। उनमें कुछ मुख्य हैं। उन मुख्य अवतारोंमें भी ब्रह्मधारक आठ मुख्य अवतार हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—

(१) '**वक्रतुण्डावतार**' देह-ब्रह्मको धारण करनेवाला है, वह मत्सरासुरका संहारक तथा सिंहवाहनपर चलनेवाला माना गया है। (२) '**एकदन्तावतार**' देहि-ब्रह्मका धारक है, वह मदासुरका वध करनेवाला है; उसका वाहन मूषक बताया गया है। (३) '**महोदर**'-नामसे विख्यात अवतार ज्ञान-ब्रह्मका प्रकाशक है। उसे मोहासुरका विनाशक और मूषक-वाहन बताया गया है। (४) '**गजानन**' नामक अवतार सांख्यब्रह्म-धारक है। उसको सांख्ययोगियोंके लिये सिद्धिदायक जानना चाहिये। उसे लोभासुरका संहारक और मूषकवाहन कहा गया है। (५) '**लम्बोदर**' नामक अवतार क्रोधासुरका उन्मूलन करनेवाला है; वह सत्स्वरूप जो शक्तिब्रह्म है, उसका धारक कहलाता है। वह भी मूषकवाहन ही है। (६) '**विकट**'-नामसे प्रसिद्ध अवतार कामासुरका संहारक है। वह मयूर-वाहन एवं सौरब्रह्मका धारक माना गया है। (७) '**विघ्नराज**' नामक जो अवतार है, उसके वाहन शेषनाग बताये जाते हैं, वह विष्णुब्रह्मका वाचक (धारक) तथा ममतासुरका विनाशक है। (८) '**धूम्रवर्ण**' नामक अवतार अभिमानासुरका नाश करनेवाला है, वह शिवब्रह्म-स्वरूप है। उसे भी मूषक-वाहन ही कहा जाता है।

इस प्रकार मङ्गलमूर्ति आदिदेव परब्रह्म परमेश्वर *श्रीगणपतिके अवतारोंकी अत्यन्त संक्षिप्त मङ्गलमयी लीलाकथा* पूरी हुई। इसका पठन, श्रवण और मनन-चिन्तन जन-जनके लिये परम कल्याणकारक है। इन अवतारोंका पौराणिक एवं ऐतिहासिक महत्त्व तो है ही, उससे भी बढ़कर आध्यात्मिक महत्त्व है। सर्वव्यापी परमात्मा श्रीगणपति सबके हृदयमें नित्य विराजमान हैं। संग और प्राक्तन संस्कारवश प्रत्येक मनुष्यके हृदयमें समय-समयपर मात्सर्य, मद, मोह, लोभ, काम, ममता एवं अहंता—इन आन्तरिक दोषोंका उद्‌बोधन होता ही है। आसुरी सम्पत्तिके प्रतीक होनेसे इनको 'असुर' कहा गया है। इन आसुरी-वृत्तियोंसे परित्राण पानेका अमोघ उपाय है—'भगवान् गणपतिका चरणाश्रय।' गीतामें भी भगवान्‌ने यही कहा है—'**मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥**' अतः इन आसुरी-वृत्तियोंके दमन तथा दैवी-सम्पदाओंके संवर्धनके लिये परम प्रभु गणपतिका मङ्गलमय स्मरण करना सबके लिये सर्वथा श्रेयस्कर है और यही इस अवतार-कथाका सारभूत संदेश है।

~~~ ० ~~~

विविध पुराणोंमें उपलब्ध भगवान् गणेशके प्राकट्यकी कथाएँ

(पं० श्रीघनश्यामजी अग्निहोत्री)

आदिपूज्यं गणाध्यक्षमुमापुत्रं विनायकम्।
मङ्गलं परमं रूपं श्रीगणेशं नमाम्यहम्॥

क्षीरसागरमें शेषशय्यापर लेटे हुए श्रीनारायण और उनके चरण पखारती देवी लक्ष्मीको छोड़कर सभी देवता प्रत्येक कल्पकी समाप्तिपर नारायणमें समायोजित हो जाते हैं और नये कल्पके संधिकालमें पुनः प्रकट होकर सृष्टिकी रचना, पालन तथा संहारमें अपने-अपने धर्मका निर्वहन करते हैं। इसी सिद्धान्तके अनुसार श्रीगणेशजी भी प्रत्येक कल्पमें प्रकट होकर लीला करते हैं, यह रहस्य शिवपुराणमें स्वयं ब्रह्माजीने नारदजीको बताया है। ब्रह्मवैवर्तपुराणमें भी श्रीकृष्णने वृद्ध ब्राह्मणके रूपमें माता पार्वतीके समक्ष उपस्थित होकर उनकी स्तुति की और उन्हें बताया कि—

गणेशरूपः श्रीकृष्णः कल्पे कल्पे तवात्मजः।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, गणपतिखण्ड)

हे देवी! *श्रीकृष्ण स्वयं प्रत्येक कल्पमें* आपके पुत्ररूपमें अवतीर्ण होते आये हैं।

वेदों और पुराणोंके अनुसार श्रीगणेशजी आदिदेवता हैं। उनकी आदिकालसे उपासना एवं महिमाके कई प्रमाण वेदों, पुराणों तथा अन्य ग्रन्थोंमें उपलब्ध हैं, यथा—

गणानां त्वा गणपतिः हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिः
~~~

हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिः हवामहे वसो मम। आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्। (शुक्लयजुर्वेद २३। १९)

अर्थात् हे गणोंके बीच रहनेवाले सर्वश्रेष्ठ गणपति! हम आपका आवाहन करते हैं। हे प्रियोंके बीच रहनेवाले प्रियपति! हम आपका आवाहन करते हैं। हे निधियोंके बीच सर्वश्रेष्ठ निधिपति! हम आपका आवाहन करते हैं। हे जगत्को बसानेवाले! आप हमारे हों। आप समस्त जगत्को गर्भमें धारण करते हैं, पैदा (प्रकट) करते हैं। आपकी इस क्षमताको हम भली प्रकार जानें।

इसी प्रकारका उल्लेख ऋग्वेद (२। २३। १)-में भी मिलता है, जिसमें श्रीगणेशका आवाहन किया गया है।

गणपत्यथर्वशीर्षोपनिषद् (६)-में वर्णित है कि श्रीगणेश सर्वदेवमय हैं। यथा—

'त्वं ब्रह्मा त्वं विष्णुस्त्वं रुद्रस्त्वमिन्द्रस्त्वमग्निस्त्वं वायुस्त्वं सूर्यस्त्वं चन्द्रस्त्वं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्।'

अर्थात् तुम ब्रह्मा हो, तुम विष्णु हो, तुम रुद्र हो, तुम इन्द्र हो, तुम अग्नि हो, तुम वायु हो, तुम सूर्य हो, तुम चन्द्रमा हो, सगुण ब्रह्म हो, तुम निर्गुण त्रिपाद भूः, भुवः, स्वः एवं प्रणव हो।

मङ्गलदाता, उमा-महेशसुत, कुमार कार्तिकेयके भ्राता, देवी सिद्धि एवं बुद्धिके स्वामी, क्षेम और लाभके पिता, बुद्धिविधाता श्रीगणेशकी प्राकट्य कथाएँ तथा लीलाएँ भी अद्भुत एवं अलौकिक हैं। विभिन्न कल्पोंमें उनका प्राकट्य एक विलक्षणता लिये हुए है। विभिन्नता लिये हुए इन कथाओंमें शंका नहीं करनी चाहिये वरन् *'हरि अनंत हरिकथा अनंता'* का भाव रखकर उसका लाभ लेना चाहिये। सदा यह भावना रहे कि श्रीगणेश, श्रीकृष्ण, श्रीमहादेव आदि एक ही तत्त्व हैं। यहाँ विभिन्न पुराणोंमें उपलब्ध भगवान् श्रीगणेशकी प्राकट्यकथाएँ निम्नानुसार संक्षेपमें उल्लिखित की जा रही हैं—

१-पद्मपुराणमें वर्णित प्राकट्यकथा—इस पुराणके सृष्टिखण्डमें श्रीगणेशको देवी पार्वती एवं त्रैलोक्यतारिणी भगवती गङ्गाका पुत्र बताया गया है। शिव-पार्वतीविवाहके उपरान्त एक दिन देवी पार्वती गङ्गाजीके निकट तटपर बैठकर स्नानपूर्व अपनी सखियोंसे सुगन्धित औषधियोंसे निर्मित उबटन लगवा रही थीं। बैठे-बैठे देवीने अपने शरीरसे पृथ्वीपर गिरे अनुलेपको एकत्रकर एक पुरुष-आकृति बनाकर उसे हस्तिमुख प्रदान कर दिया। इस विचित्र गजमुख आकृतिको देवी पार्वतीने गङ्गामें डाल दिया। पुण्यसलिला गङ्गाने उसे सजीव (प्राणवान्) बनाकर एक स्वस्थ सुन्दर बालकका रूप दे दिया। यह देख स्नेहवश माता पार्वतीने उसे जलसे निकाल 'पुत्र' सम्बोधित किया एवं गोदमें लेकर वे उसे पुत्रवत् दुलार करने लगीं। इसी समय भगवती गङ्गा, जो पार्वतीजीकी सहेली हैं, प्रकट हुई और वे भी सुन्दर बालकको 'पुत्र' कहकर दुलारने लगीं। इस विलक्षण दृश्यको निहारने आकाशमें देवसमूह एकत्र हो गया। स्वयं ब्रह्माजीने बालकको आशिष् प्रदान कर गणोंका अधिपति घोषित कर दिया। देवगण भी वहाँ उपस्थित हो देवी पार्वती और सुरसरिके पुत्रकी वन्दना करने लगे और 'श्रीगणेश' तथा 'गाङ्गेय' नामसे बालकको विभूषित कर आशिष् प्रदान कर वे देवलोकको प्रस्थान कर गये। इस प्रकार पद्मपुराणमें वर्णित है कि स्वयं माता पार्वतीने गणेशजीको गजमुख बनाया एवं पुण्यसलिला गङ्गाने उन्हें सजीव किया।

२-शिवपुराणमें वर्णित प्राकट्यकथा—शिवपुराणमें वर्णित कथाका सार इस प्रकार है—भगवती पार्वतीने एक बार शिवजीके गण नन्दीके द्वारा उनकी आज्ञा-पालनमें त्रुटिसे खिन्न होकर अपनी प्रिय सहेलियों जया और विजयाके सुझावपर स्वयंके मङ्गलमय पावनतम शरीरके उबटनसे एक चेतन पुरुष निर्मित कर उसे सम्पूर्ण शुभ गुणोंसे संयुक्त कर दिया। यथा—

विचार्येति च सा देवी वपुषो मलसम्भवम्।
पुरुषं निर्ममौ सा तु सर्वलक्षणसंयुतम्॥
सर्वावयवनिर्दोषं सर्वावयवसुन्दरम्।
विशालं सर्वशोभाढ्यं महाबलपराक्रमम्॥

(शिवपुराण, रुद्रसंहिता, कुमारखण्ड १३। २०-२१)

अर्थात् वह बालक शुभ लक्षणोंसे संयुक्त था। उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग दोषरहित एवं सुन्दर थे। उसका शरीर विशाल, परम शोभायमान एवं महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न था।

ऐसी सुन्दर रचना कर देवीने बालकको सुन्दर वस्त्रों एवं अलंकारोंसे सुशोभित कर आशीर्वाद दिया एवं कहा—तुम मेरे परम प्रिय पुत्र हो, तुम्हें केवल मेरे ही आदेशका पालन करना है, अन्य किसीका नहीं। तुम मेरे द्वारपाल होकर मेरी आज्ञाके बिना किसीको भीतर महलमें प्रवेश मत करने देना। प्यार-दुलारकर माता पुत्रको एक छड़ी देकर सखियोंके साथ महलमें स्नानार्थ चली गयीं। उसी समय त्रिलोकीनाथ त्रिकालदर्शी शिव वहाँ उपस्थित हुए और भवनमें जाने लगे। बालकने उन्हें विनयपूर्वक रोका, पर महारुद्र भी हठ कर गये। परिणामतः शक्तिपुत्रके साथ भयंकर युद्ध कर शिवने पिनाक नामक धनुषसे भी विजय नहीं पानेपर अपने तीक्ष्णतम शस्त्र शूलके प्रहारसे नन्हे बालकका शीश भंग कर दिया। यह

समाचार सुन भगवती अत्यन्त कुपित हो गयीं। सभी लोकोंमें हाहाकार मच गया। समस्त देवताओंद्वारा परमेश्वरी शिवप्रिया गिरिजाकी स्तुति की जाने लगी। भगवतीने केवल पुत्रके जीवित होनेपर विनाश रोकनेकी बात कही।

पशुपतिनाथ शिवकी आज्ञासे एक दाँतवाले गजबालकका शीश लाकर मृत बालकके शरीरसे जोड़ा गया एवं उसे प्राणवान् बनाया गया। श्रीनारायण एवं रुद्रसहित सभी देवताओंने गजमुख बालकका पूजन-अर्चन कर उसे आशिष् प्रदान किया। जगदीश्वरी प्रसन्न हो बालकको गोदमें लेकर दुलार करने लगीं। श्रीनारायणने बालकको गणेश, गजानन, गणपति, एकदन्त-जैसे नामोंसे सम्बोधितकर अग्रपूजाका आशीर्वाद दिया। देवाधिदेव महादेवने बालकको पुत्रवत् स्वीकारकर अपने गणोंका अध्यक्ष नियुक्त कर कहा—

चतुर्थ्यां त्वं समुत्पन्नो भाद्रे मासि गणेश्वर।
असिते च तथा पक्षे चन्द्रस्योदयने शुभे॥
प्रथमे च तथा यामे गिरिजायाः सुचेतसः।
आविर्बभूव ते रूपं यस्मात्ते व्रतमुत्तमम्॥

(शिवपुराण, रुद्रसंहिता, कुमारखण्ड १८। ३५-३६)

हे गणेश्वर! तू भाद्रपद मासके कृष्णपक्षकी चतुर्थी शुभ तिथिको शुभ चन्द्रोदय होनेपर उत्पन्न हुआ है। जिस समय गिरिजाके सुन्दर चित्तसे तेरा रूप प्रकट हुआ, उस समय रात्रिका प्रथम पहर बीत रहा था, इसलिये उसी

तिथिमें तेरा उत्तम व्रत करना चाहिये।

यह व्रत सर्वसिद्धिप्रद होगा। सभी वर्णोंद्वारा, विशेषकर स्त्रियोंको, यह चतुर्थीव्रत अवश्य करना चाहिये। इससे सभी वाञ्छित अभिलाषाएँ पूर्ण होंगी। यह आशिष् रुद्रने श्रीगणेशको देकर पुत्रवत् दुलार किया। यह शिवपुराणके कुमारखण्डमें वर्णित कथाका सारांशमात्र है।

३-ब्रह्मवैवर्तपुराणमें वर्णित प्राकट्यकथा—इस पुराणके गणपतिखण्डके तेरह अध्यायोंमें श्रीगणेशकी मङ्गलमयी प्राकट्यकथा वर्णित है। संक्षेपमें कथासार निर्दिष्ट है—

एक समय देवी पार्वतीने सदाशिवसे एक उत्तम पुत्र पानेकी अभिलाषा व्यक्त की। देवाधिदेव महादेवने देवीको पुण्यकव्रतका अनुष्ठान करनेका परामर्श दिया एवं कहा कि इस पुण्यकव्रतके प्रभावसे तुम्हें स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण पुत्ररूपमें प्राप्त होंगे। देवी पार्वतीको व्रतका विधि-विधान बताकर गणोंको सम्पूर्ण व्यवस्थाका भार सौंप सदाशिवने समस्त देवताओं, ऋषि-मुनियों आदिको कैलासपर आमन्त्रित कर दिया। देवी पार्वतीने इस परमोत्तम व्रतके सम्पूर्ण कर्तव्योंको वर्षपर्यन्त प्रतिदिन विधि-विधानसे पूर्णकर व्रतका उद्यापन किया। इसके फलस्वरूप गोलोकनाथ साक्षात् परब्रह्म श्रीकृष्ण उन्हें सर्वाङ्ग-मनोहर शिशुरूपमें प्राप्त हुए। कैलासपर इस अवसरपर विलक्षण उत्सव मनाया गया, जिसमें श्रीनारायण, श्रीब्रह्मा आदि देवता सपरिवार सम्मिलित हुए एवं उन्होंने शिशुको अनेक उपहार तथा शुभ आशिष् प्रदान किये। इस अवसरपर शनिदेव भी वहाँ उपस्थित थे, पर उन्होंने न तो शिशुको निहारा, न आशिष् दिया। भगवती पार्वतीके पूछनेपर उन्होंने पत्नीद्वारा शाप दिये जानेका वृत्तान्त बताकर कहा—देवि! मेरे देखनेमात्रसे इस सुन्दर शिशुका अनिष्ट हो सकता है। माता पार्वतीने स्नेहपूर्वक शनिदेवको आश्वस्त करते हुए कहा कि कर्मभोगफल तो ईश्वरेच्छाके अधीन होते हैं, अतः तुम निःसंकोच मेरे पुत्रको देखो एवं आशिष् प्रदान करो। परिणामतः शनिकी दृष्टिमात्र पड़ते ही शिशुका मस्तक धड़से पृथक् होकर आकाशमें विलीन हो गया और गोलोकमें जाकर अपने अभीष्ट परात्पर श्रीकृष्णमें प्रविष्ट हो गया। यह देख माता पार्वती घोर विलाप करने लगीं। सम्पूर्ण कैलासमें हाहाकार मच गया। तभी वहाँ उपस्थित श्रीविष्णु गरुडपर सवार हो पुष्पभद्रा नदीके तटसे उत्तरकी ओर सिर किये एक गजका मस्तक ले आये और पार्वतीसुतके धड़पर सुन्दरतासे जोड़कर उसे प्राणवान् कर दिया। तदुपरान्त अचेत माता पार्वतीको सचेतकर शिशु उनकी गोदमें दे दिया एवं कहा—हे देवि! महर्षि कश्यपके शापसे शिवपुत्रका शीश-भंग होना एक प्रारब्ध था, इसमें शनिका कोई दोष नहीं है। कैलासमें पुनः उल्लासका वातावरण बन गया। श्रीविष्णुने बालकके विघ्नेश, गणेश, हेरम्ब, गजानन आदि नाम रखे।
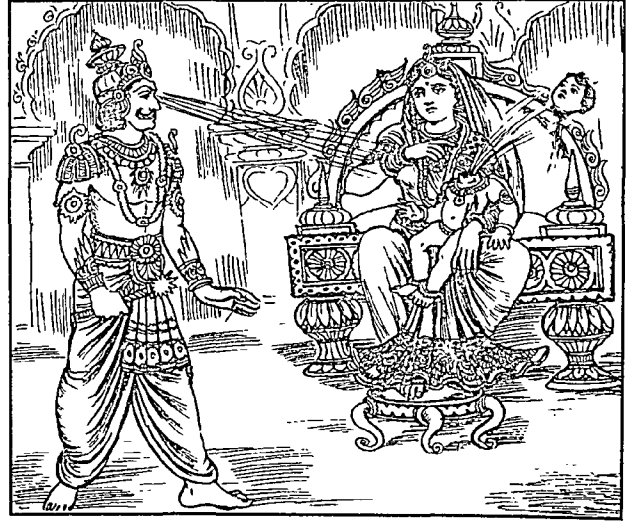
वहाँ उपस्थित त्रिदेवोंसहित सभी देवी-देवताओं, ऋषि-मुनियों आदिने गजाननका निम्न ३२ अक्षरोंके मन्त्रसे पूजन किया—

ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं गणेश्वराय ब्रह्मरूपाय चारवे।
सर्वसिद्धिप्रदेशाय विघ्नेशाय नमो नमः॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, गणपतिखण्ड १३।३२)

यह मन्त्र सम्पूर्ण मनोकामनाओंको पूर्णकर अन्तमें मोक्ष प्रदान करनेवाला है।

इसके उपरान्त श्रीविष्णुजीने 'गणेशस्तोत्रम्' द्वारा श्रीगजानन गणेशकी सुन्दर स्तुति की, जिसका कुछ अंश यहाँ प्रस्तुत है—

प्रवरं सर्वदेवानां सिद्धानां योगिनां गुरुम्।
सर्वस्वरूपं सर्वेशं ज्ञानराशिस्वरूपिणम्॥
अव्यक्तमक्षरं नित्यं सत्यमात्मस्वरूपिणम्।
वायुतुल्यातिनिर्लिप्तं चाक्षतं सर्वसाक्षिणम्॥
संसारार्णवपारे च मायापोते सुदुर्लभे।
कर्णधारस्वरूपं च भक्तानुग्रहकारकम्॥
वरं वरेण्यं वरदं वरदानामपीश्वरम्।
सिद्धं सिद्धिस्वरूपं च सिद्धिदं सिद्धिसाधनम्॥

(ब्र०वै०पु० गण० १३।४२—४५)

अर्थात् आप सभी देवोंमें श्रेष्ठ, सिद्धों और योगियोंके गुरु, सर्वस्वरूप, सर्वेश्वर, ज्ञानराशिस्वरूप, अव्यक्त, अविनाशी, नित्य, सत्य, आत्मस्वरूप, वायुके समान अत्यन्त निर्लेप, क्षतरहित और सबके साक्षी हैं। आप संसारसागरसे पार होनेके लिये परम दुर्लभ मायारूपी नौकाके कर्णधारस्वरूप और भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले हैं। आप श्रेष्ठ, वरणीय, वरदाता एवं वरदानियोंके भी ईश्वर हैं। आप सिद्ध, सिद्धिस्वरूप, सिद्धिदाता एवं सिद्धिके साधन हैं।

इसके उपरान्त श्रीविष्णुने देवी पार्वतीको बताया कि आज आपके इस पुत्रकी हम त्रिदेवोंने प्रथम पूजा की है। अतः आजसे यह प्रथम पूजाका अधिकारी रहेगा। आज भाद्रपदमासके शुक्लपक्षकी चतुर्थी है, यह आपके पुत्रके नामसे गणेशचतुर्थी कही जायगी। आज जो आपके पुत्रकी पूजा-अर्चना करेगा उसके समस्त संकट एवं कष्टोंका निवारण हो जायगा और उसे समस्त कार्यकलापोंमें सिद्धि प्राप्त होगी।

४-लिङ्गपुराणमें वर्णित प्राकट्यकथा—आशुतोष भगवान् शिव एवं श्रीब्रह्माजीसे वरदान प्राप्तकर राक्षस हमेशा देवलोकपर चढ़ाई कर देवताओंको वहाँसे खदेड़ दिया करते थे, इसीसे व्यथित देवगण देवर्षि नारदके साथ कैलासपर भगवान् शङ्करके पास गये और उनकी स्तुति कर गुणगान करने लगे। अन्तर्यामी कैलासपतिने प्रसन्न होकर देवताओंसे इच्छित वर माँगनेको कहा। कातरभावसे देवताओंने राक्षसोंसे रक्षाकी याचना की और कहा—प्रभो! असुरोंके कार्यमें जैसे विघ्न पड़े, वैसा आप करें। पार्वतीवल्लभने 'तथास्तु' कहकर देवताओंको सम्मानसहित विदा किया। इसके बाद एक दिन परम तेजस्वी, सुन्दर शरीरवाले गजमुख शिशुरूपमें एक हाथमें त्रिशूल तथा दूसरेमें पाश लेकर भगवती पार्वतीके सम्मुख प्रकट हुए और उन्हें माता कहकर दण्डवत् प्रणाम किया। भगवती माता पार्वतीने आश्चर्यपूर्ण भावके साथ तेजस्वी मनोहर बालकको गोदमें उठा लिया। उसी समय वहाँ भगवान् शिवने उपस्थित होकर देवी पार्वतीसे कहा—यह तुम्हारा पुत्र है, जो देवताओंकी रक्षाहेतु प्रकट हुआ है। भगवती प्रसन्न हो बालकका शृंगार करने लगीं और पुत्रवत् दुलार करने लगीं। देवगण प्रसन्न हो आकाशमें नृत्य-गानके साथ पुष्पवर्षा करने लगे। तब कल्याणकारी शिवने अपने पुत्रसे कहा—

तवावतारो दैत्यानां विनाशाय ममात्मज।
देवानामुपकारार्थं द्विजानां ब्रह्मवादिनाम्॥
× × ×
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्चैव गजानन।
सम्पूज्यः सर्वसिद्ध्यर्थं भक्ष्यभोज्यादिभिः शुभैः॥
त्वां गन्धपुष्पधूपाद्यैरनभ्यर्च्य जगत्त्रये।
देवैरपि तथान्यैश्च लब्धव्यं नास्ति कुत्रचित्॥

(लिङ्गपुराण १०५।१५, २४-२५)

अर्थात् हे मेरे पुत्र! तुम्हारा यह अवतार राक्षसोंका नाश करने तथा देवता, ब्राह्मण और ब्रह्मवादियोंपर उपकार करनेके निमित्त हुआ है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रोंद्वारा भी तुम सभी कार्योंकी सिद्धिके लिये भक्ष्य-भोज्य एवं शुभ पदार्थोंसे पूजित होओगे। तीनों लोकोंमें जो चन्दन, पुष्प, धूप-दीप आदिके द्वारा तुम्हारी पूजा किये बिना कुछ पानेकी चेष्टा करेंगे—चाहे वे देवता हों अथवा अन्य, उन्हें कुछ भी प्राप्त नहीं होगा।

इस प्रकार श्रीगणेश, गजानन आदि नामोंसे शृंगारित कर शिवजीने अपने अवतार हस्तिमुखको प्रथमपूज्य होनेका आशिष् दिया।

यह लिङ्गपुराणमें वर्णित कथाका सार है।

५-स्कन्दपुराणमें वर्णित प्राकट्यकथा—इस पुराणमें वर्णित प्राकट्यकी कथा शिवपुराणमें वर्णित कथाके समान ही है। केवल शिवजीद्वारा शीशभंग किये जानेके बादवाले

प्रसंगमें अन्तर है। शिवजीद्वारा द्वाररक्षक शिशुका मस्तक काटा ही गया था कि गणोंसे गजासुर नामक राक्षसके कैलासपर आक्रमणकी सूचना प्राप्त होते ही वे उससे युद्ध करने जा पहुँचे। शिवने गजासुरको भी शीशविहीन कर दिया। इसी समय नंदीने देवी पार्वतीद्वारा उनके पुत्रके

धड़को लेकर विलाप करनेका समाचार शिवजीको बताया। उन्होंने गजासुरका कटा शीश अपने हाथोंमें उठा लिया और उसे लाकर बालकके धड़से जोड़कर उसे प्राणवान् कर दिया तथा बालकको पुत्रवत् स्वीकार कर 'गजानन' नामकरण किया एवं देवी पार्वतीकी प्रसन्नताहेतु स्वयं गजाननकी पूजा कर अग्रपूजाका वर प्रदान किया। इस पुराणमें भी श्रीगणेशका प्राकट्य भाद्रपदमास शुक्लपक्षकी चतुर्थीको होना बताया गया है। इस दिन की गयी इनकी आराधनाको बहुत महत्त्वपूर्ण बताया गया है।

उपर्युक्त पुराणोंके अतिरिक्त निम्न पुराणोंमें भी श्रीगणेशकी प्राकट्यकथाएँ वर्णित हैं, किंतु उनमें उपर्युक्त कथाएँ ही वर्णित हैं, अतः उन्हें यहाँ केवल अति संक्षेपमें उल्लिखित किया जा रहा है—

६-मत्स्यपुराण—यह प्राकट्यकथा पद्मपुराणमें वर्णित कथाके समान ही है। देवी पार्वती और गङ्गाजीके पुत्र गणेश एवं गाङ्गेय नामसे विख्यात हो प्रथमपूज्य होंगे, यही आशय दर्शाया गया है।

७—९-वायुपुराण, सौरपुराण एवं ब्रह्मपुराण—इन पुराणोंमें लिङ्गपुराणमें वर्णित कथाके अनुसार श्रीगणेशको साक्षात् शिव ही दर्शाया गया है।

१०-गणेशपुराण—इसमें श्रीगणेशको श्रीविष्णुका अवतार बताया गया है, जैसा कि ब्रह्मवैवर्तपुराणमें वर्णित है।

११-महाभारत—इसमें उन्हें वेदव्यासद्वारा महाभारत महाकाव्य लिखनेहेतु स्मरण करनेमात्रसे प्रकट होना प्रतिपादित किया गया है।

इस प्रकार विभिन्न पुराणोंमें श्रीगणेशकी प्राकट्य-कथाओंमें विविधता होते हुए भी प्रत्येक कल्पमें उन्हें शंकरसुवन, भवानीनन्दन ही बताया गया है। श्रीगणेश सभीकी आस्थाके केन्द्र हैं। विश्वभरमें उनके कई मन्दिर हैं, उनकी मूर्ति भी भव्य आकारकी अतिमनोहर होती है। भाद्रपदमासके शुक्लपक्षकी चतुर्थीको श्रीगजाननके प्राकट्यके विषयमें निम्न श्लोक प्रसिद्ध है—

सर्वदेवमयः साक्षात् सर्वमङ्गलदायकः।
भाद्रशुक्लचतुर्थ्यां तु प्रादुर्भूतो गणाधिपः॥
सिद्ध्यन्ति सर्वकार्याणि मनसा चिन्तितान्यपि।
तेन ख्यातिं गतो लोके नाम्ना सिद्धिविनायकः॥

इस दिनकी आराधनासे भगवान् श्रीगणेश अपने भक्तों (आराधकों)-को समस्त कार्य-कलापोंमें सिद्धि प्रदान करते हैं।

कलियुगमें श्रीगणेश ही एकमात्र ऐसे देवता हैं जो दूर्वा, सिन्दूर, चन्दन, पुष्प एवं गुड़-बताशेमात्रसे प्रसन्न होकर अपने भक्तकी सभी कामनाएँ पूर्ण कर देते हैं। उनकी आराधनामात्रसे—

विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी लभते धनम्।
पुत्रार्थी लभते पुत्रान्मोक्षार्थी लभते गतिम्॥

—विद्यार्थीको विद्या, धनकी इच्छावालेको धन, पुत्रकी कामनावालेको पुत्र एवं मोक्ष चाहनेवालेको परमगति प्राप्त होती है।

भगवान् श्रीविष्णुके चौबीस अवतार

[भगवान् अनन्त हैं। वे सर्वशक्तिमान् करुणामय परमात्मा अपना कोई प्रयोजन न रहनेपर भी साधु-परित्राण, धर्म-संरक्षण एवं जीवोंपर अनुग्रह करनेके लिये शरीर-धारण कर लिया करते हैं। उनके अवतरण और उनके अवतार-चरित्र भी अनन्त हैं। श्रीमद्भागवतमें सूतजीने कहा है—

अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः। यथाविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः॥

(१।३।२६)

'जिस प्रकार किसी एक अक्षय जलाशयसे हजारों छोटे-छोटे जल-प्रवाह निकलकर चारों ओर धावित होते हैं, उसी प्रकार सत्त्वनिधि परमेश्वरसे विविध अवतारोंकी उत्पत्ति होती है।' पुरुषावतार, गुणावतार, कल्पावतार, युगावतार, पूर्णावतार, अंशावतार, कलावतार, आवेशावतार आदि उनके अवान्तर भेद हैं। कल्पभेदसे प्रभु-चरित्रोंमें भी भिन्नता आती है। श्रीमद्भागवतादि पुराणग्रन्थोंमें सर्वसमर्थ, कल्याण-विग्रह प्रभुके मुख्यतया चौबीस अवतारोंका सविशेष वर्णन है; पर उनमें भी क्रम-भेद है। यहाँ हम दयाधामके उन अद्भुत एवं मङ्गलकर चौबीस अवतारोंका चरित्र स्थानाभावके कारण अत्यन्त संक्षेपमें दे रहे हैं तथापि इस संक्षिप्त कथाके भी मनोयोगपूर्वक पठन-पाठनसे पाठक लाभान्वित होंगे, हमारा ऐसा विश्वास है—सम्पादक]

(१) श्रीसनकादि

सृष्टिके प्रारम्भमें लोकपितामह ब्रह्माने विविध लोकोंको रचनेकी इच्छासे तपस्या की। स्रष्टाके उस अखण्ड तपसे प्रसन्न होकर विश्वाधार प्रभुने 'तप' अर्थवाले 'सन' नामसे युक्त होकर सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार—इन चार निवृत्तिपरायण ऊर्ध्वरेता मुनियोंके रूपमें अवतार ग्रहण किया। ये प्राकट्य-कालसे ही मोक्षमार्ग-परायण, ध्यानमें तल्लीन रहनेवाले, नित्यसिद्ध एवं नित्य विरक्त थे। इन नित्य ब्रह्मचारियोंसे ब्रह्माजीके सृष्टि-विस्तारकी आशा पूरी नहीं हो सकी।

देवताओंके पूर्वज और लोकस्रष्टाके आद्य मानसपुत्र सनकादिके मनमें कहीं किंचित् आसक्ति नहीं थी। वे प्रायः आकाशमार्गसे विचरण किया करते थे। एक बार वे श्रीभगवान्के श्रेष्ठ वैकुण्ठधाममें पहुँचे। वहाँ सभी शुद्ध-सत्त्वमय चतुर्भुजरूपमें रहते हैं। सनकादि भगवद्दर्शनकी लालसासे वैकुण्ठकी दुर्लभ दिव्य दर्शनीय वस्तुओंकी उपेक्षा करते हुए छठी ड्योढ़ीके आगे बढ़ ही रहे थे कि भगवान्के पार्षद जय और विजयने उन पञ्चवर्षीय-से दीखनेवाले दिगम्बर तेजस्वी कुमारोंकी हँसी उड़ाते हुए उन्हें आगे बढ़नेसे रोक दिया। भगवद्दर्शनमें व्यवधान उत्पन्न होनेके कारण सनकादिने उन्हें दैत्यकुलमें जन्म लेनेका शाप दे दिया।

अपने प्राणप्रिय एवं अभिन्न सनकादि कुमारोंके अनादरका संवाद मिलते ही वैकुण्ठनाथ श्रीहरि तत्काल वहाँ पहुँच गये। भगवान्की अद्भुत, अलौकिक एवं दिव्य सौन्दर्यराशिके दर्शन कर सर्वथा विरक्त सनकादि कुमार चकित हो गये। अपलक नेत्रोंसे प्रभुकी ओर देखने लगे। उनके हृदयमें आनन्द-सिन्धु उच्छलित हो रहा था। उन्होंने वनमालाधारी लक्ष्मीपति भगवान् श्रीविष्णुकी स्तुति करते हुए कहा—

प्रादुश्चकर्थ यदिदं पुरुहूत रूपं
तेनेश निर्वृतिमवापुरलं दृशो नः।
तस्मा इदं भगवते नम इद्विधेम
योऽनात्मनां दुरुदयो भगवान् प्रतीतः॥

(श्रीमद्भा० ३।१५।५०)

'विपुलकीर्ति प्रभो! आपने हमारे सामने जो यह मनोहर रूप प्रकट किया है, उससे हमारे नेत्रोंको बड़ा ही सुख मिला है; विषयासक्त अजितेन्द्रिय पुरुषोंके लिये इसका दृष्टिगोचर होना अत्यन्त कठिन है। आप साक्षात् भगवान् हैं और इस प्रकार स्पष्टतया हमारे नेत्रोंके सामने प्रकट हुए हैं। हम आपको प्रणाम करते हैं।'

'ब्राह्मणोंकी पवित्र चरण-रजको मैं अपने मुकुटपर धारण करता हूँ।' श्रीभगवान्‌ने अत्यन्त मधुर वाणीमें कहा। 'जय-विजयने मेरा अभिप्राय न समझकर आप लोगोंका अपमान किया है। इस कारण आपने इन्हें दण्ड देकर सर्वथा उचित ही किया है।'

लोकोद्धारार्थ लोक-पर्यटन करनेवाले, सरलता एवं करुणाकी मूर्ति सनकादि कुमारोंने श्रीभगवान्‌की सारगर्भित मधुर वाणीको सुनकर उनसे अत्यन्त विनीत स्वरमें कहा—

यं वानयोर्दममधीश भवान् विधत्ते
वृत्तिं नु वा तदनुमन्महि निर्व्यलीकम्।
अस्मासु वा य उचितो ध्रियतां स दण्डो
येऽनागसौ वयमयुङ्क्ष्महि किल्बिषेण॥

(श्रीमद्भा० ३।१६।२५)

'सर्वेश्वर! इन द्वारपालोंको आप जैसा उचित समझें, वैसा दण्ड दें अथवा पुरस्काररूपमें इनकी वृत्ति बढ़ा दें—हम निष्कपटभावसे सब प्रकार आपसे सहमत हैं। अथवा हमने आपके इन निरपराध अनुचरोंको शाप दिया है, इसके लिये हमें ही उचित दण्ड दें। हमें वह भी सहर्ष स्वीकार है।'

'यह मेरी प्रेरणासे ही हुआ है।' श्रीभगवान्‌ने उन्हें संतुष्ट किया। इसके अनन्तर सनकादिने सर्वाङ्गसुन्दर भगवान् विष्णु और उनके धामका दर्शन किया और प्रभुकी परिक्रमा कर उनका गुणगान करते हुए वे चारों कुमार लौट गये। जय-विजय इनके शापसे तीन जन्मोंतक क्रमशः हिरण्यकशिपु-हिरण्याक्ष, रावण-कुम्भकर्ण और शिशुपाल-दन्तवक्त्र हुए।

एक समय जब भगवान् सूर्यकी भाँति परमतेजस्वी सनकादि आकाशमार्गसे भगवान्‌के अंशावतार महाराज पृथुके समीप पहुँचे, तब उन्होंने अपना अहोभाग्य समझते हुए उनकी सविधि पूजा की। उनका पवित्र चरणोदक माथेपर छिड़का और उन्हें सुवर्णके सिंहासनपर बैठाकर बद्धाञ्जलि हो विनयपूर्वक निवेदन किया—

अहो आचरितं किं मे मङ्गलं मङ्गलायनाः।
यस्य वो दर्शनं ह्यासीद्दुर्दर्शानां च योगिभिः॥
नैव लक्ष्यते लोको लोकान् पर्यटतोऽपि यान्।
यथा सर्वदृशं सर्व आत्मानं येऽस्य हेतवः॥

(श्रीमद्भा० ४।२२।७, ९)

'मङ्गलमूर्ति मुनीश्वरो! आपके दर्शन तो योगियोंको भी दुर्लभ हैं; मुझसे ऐसा क्या पुण्य बना है, जिसके फलस्वरूप मुझे स्वतः आपका दर्शन प्राप्त हुआ। ····इस दृश्य-प्रपञ्चके कारण महत्तत्त्वादि यद्यपि सर्वगत हैं, तो भी वे सर्वसाक्षी आत्माको नहीं देख सकते; इसी प्रकार यद्यपि आप समस्त लोकोंमें विचरते रहते हैं, तो भी अनधिकारी लोग आपको नहीं देख पाते।'

फिर अपने सौभाग्यकी सराहना करते हुए उन्होंने अत्यन्त आदरपूर्वक कहा—

तदहं कृतविश्रम्भः सुहृदो वस्तपस्विनाम्।
सम्पृच्छे भव एतस्मिन् क्षेमः केनाञ्जसा भवेत्॥

(श्रीमद्भा० ४।२२।१५)

'आप संसारानलसे संतप्त जीवोंके परम सुहृद् हैं; इसलिये आपमें विश्वास करके मैं यह पूछना चाहता हूँ कि इस संसारमें मनुष्यका किस प्रकार सुगमतासे कल्याण हो सकता है?'

भगवान् सनकादिने आदिराज पृथुका ऐसा प्रश्न सुनकर उनकी बुद्धिकी प्रशंसा की और उन्हें विस्तारपूर्वक कल्याणका उपदेश देते हुए कहा—

अर्थेन्द्रियार्थाभिध्यानं सर्वार्थापह्नवो नृणाम्।
भ्रंशितो ज्ञानविज्ञानाद्येनाविशति मुख्यताम्॥
न कुर्यात्कर्हिचित्सङ्गं तमस्तीव्रं तितीरिषुः।
धर्मार्थकाममोक्षाणां यदत्यन्तविघातकम्॥
कृच्छ्रो महानिह भवार्णवमप्लवेशां
षड्वर्गनक्रमसुखेन तितीरषन्ति।
तत् त्वं हरेर्भगवतो भजनीयमङ्घ्रिं
कृत्वोडुपं व्यसनमुत्तर दुस्तरार्णम्॥

(श्रीमद्भा० ४।२२।३३-३४, ४०)

'धन और इन्द्रियोंके विषयोंका चिन्तन करना मनुष्यके सभी पुरुषार्थोंका नाश करनेवाला है; क्योंकि इनकी चिन्तासे वह ज्ञान और विज्ञानसे भ्रष्ट होकर वृक्षादि स्थावर योनियोंमें जन्म पाता है। इसलिये जिसे अज्ञानान्धकारसे पार होनेकी इच्छा हो, उस पुरुषको विषयोंमें आसक्ति कभी नहीं करनी चाहिये; क्योंकि यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्तिमें बड़ी बाधक है।'

'जो लोग मन और इन्द्रियरूप मगरोंसे संकुल इस

संसार-सागरको योगादि दुष्कर साधनोंसे पार करना चाहते हैं, उनका उस पार पहुँचना कठिन ही है; क्योंकि उन्हें कर्णधाररूप श्रीहरिका आश्रय नहीं है। अतः तुम तो भगवान्‌के आराधनीय चरण-कमलोंको नौका बनाकर अनायास ही इस दुस्तर दुःख-समुद्रको पार कर लो।

भगवान् सनकादिके इस अमृतमय उपदेशसे आप्यायित होकर आदिराज पृथुने उनकी स्तुति करते हुए पुनः उनकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक सविधि पूजा की।

ऋषिगण प्रलयके कारण पहले कल्पका आत्मज्ञान भूल गये थे। श्रीभगवान्‌ने अपने इस अवतारमें उन्हें यथोचित उपदेश दिया, जिससे उन लोगोंने शीघ्र ही अपने हृदयमें उस तत्त्वका साक्षात्कार कर लिया।

सनकादि अपने योगबलसे अथवा **'हरिः शरणम्'** मन्त्रके जप-प्रभावसे सदा पाँच वर्षके ही कुमार बने रहते हैं। ये प्रमुख योगवेत्ता, सांख्यज्ञान-विशारद, धर्मशास्त्रोंके आचार्य तथा मोक्षधर्मके प्रवर्तक हैं। श्रीनारदजीको इन्होंने श्रीमद्भागवतका उपदेश किया था।

भगवान् सनत्कुमारने ऋषियोंके तत्त्वज्ञान-सम्बन्धी प्रश्नके उत्तरमें सुविस्तृत उपदेश देते हुए बताया था—

नास्ति विद्यासमं चक्षुर्नास्ति सत्यसमं तपः।
नास्ति रागसमं दुःखं नास्ति त्यागसमं सुखम्॥
निवृत्तिः कर्मणः पापात् सततं पुण्यशीलता।
सद्वृत्तिः समुदाचारः श्रेय एतदनुत्तमम्॥

(महा०, शान्ति० ३२९। ६-७)

'विद्याके समान कोई नेत्र नहीं है। सत्यके समान कोई तप नहीं है। रागके समान कोई दुःख नहीं है और त्यागके समान कोई सुख नहीं है। पापकर्मोंसे दूर रहना, सदा पुण्यकर्मोंका अनुष्ठान करना, श्रेष्ठ पुरुषोंके-से बर्ताव और सदाचारका पालन करना—यही सर्वोत्तम श्रेय (कल्याण)-का साधन है।'

प्राणिमात्रके सच्चे शुभाकाङ्क्षी कुमार-चतुष्टयके पावन पद-पद्मोंमें अनन्त प्रणाम!

(२) भगवान् वराह

स्रुक्तुण्ड सामस्वरधीरनाद
प्राग्वंशकायाखिलसत्रसन्धे।
पूर्तेष्टधर्मश्रवणोऽसि देव
सनातनात्मन् भगवन् प्रसीद॥

(विष्णुपुराण १। ४। ३४)

'प्रभो! स्रुक् आपका तुण्ड (थूथनी) है, सामस्वर धीर-गम्भीर शब्द है, प्राग्वंश (यजमानगृह) शरीर है तथा सम्पूर्ण सत्र (सोमयाग) शरीरकी संधियाँ हैं। देव! इष्ट (यज्ञ-यागादि) और पूर्त (कुआँ, बावली, तालाब आदि खुदवाना, बगीचा लगाना आदि लोकोपकारी कार्य)-रूप धर्म आपके कान हैं। नित्यस्वरूप भगवन्! प्रसन्न होइये।'

× × ×

सम्पूर्ण शुद्धसत्त्वमय लोकोंके शिरोभागमें भगवान् विष्णुका वैकुण्ठधाम स्थित है। वहाँ वेदान्तप्रतिपाद्य धर्ममूर्ति श्रीआदिनारायण अपने भक्तोंको सुखी करनेके लिये शुद्धसत्त्वमय स्वरूप धारणकर निरन्तर विराजमान रहते हैं। विष्णुप्रिया श्रीलक्ष्मीजी वहाँ चञ्चलता त्यागकर निवास करती हैं। उस दिव्य और अद्भुत वैकुण्ठधाममें सभी लोग विष्णुरूप होकर रहते हैं और वहाँ सम्पूर्ण कामनाओंको त्यागकर अपने धर्मद्वारा उन क्षीराब्धिशायीकी आराधना करनेवाले परम भागवत ही प्रवेश पाते हैं।

एक बारकी बात है। आसक्ति त्यागकर समस्त लोकोंमें आकाशमार्गसे विचरण करनेवाले चतुर्मुख ब्रह्माके मानसपुत्र सनकादि उक्त अलौकिक वैकुण्ठधाममें जा पहुँचे। उनके मनमें भगवद्दर्शनकी लालसा थी, इस कारण वे अन्य दर्शनीय सामग्रियोंकी उपेक्षा करते आगे बढ़ते हुए छः ड्योढ़ियाँ पार कर गये। जब वे सातवीं ड्योढ़ीपर पहुँचे, तब उन्हें हाथमें गदा लिये दो समान आयुवाले देवश्रेष्ठ दिखलायी दिये। वे बाजूबंद, कुण्डल और किरीट आदि अनेक बहुमूल्य आभूषणोंसे अलंकृत थे। उनकी चार श्यामल भुजाओंके बीच वनमाला सुशोभित थी, जिसपर भ्रमर गुंजार कर रहे थे।

समदर्शी सनकादि सातवीं ड्योढ़ीमें प्रवेश कर ही रहे थे कि श्रीभगवान्‌के उन दोनों द्वारपालोंने उन्हें दिगम्बर वृत्तिमें देखकर उनकी हँसी उड़ायी और बेंत अड़ाकर उहें आगे बढ़नेसे रोक दिया।

'तुम भगवान् वैकुण्ठनाथके पार्षद हो, किंतु तुम्हारी बुद्धि अत्यन्त मन्द है।' सनकादिने क्रुद्ध होकर उन्हें शाप देते हुए कहा—'तुम तो देव-रूपधारी हो, फिर भी तुम्हें ऐसा क्या दिखायी देता है, जिससे तुमने भगवान्‌के साथ कुछ भेदभावके कारण होनेवाले भयकी कल्पना कर ली? तुम अपनी भेदबुद्धिके दोषसे इस वैकुण्ठलोकसे निकलकर उन पापपूरित योनियोंमें जाओ; जहाँ काम, क्रोध एवं लोभ—प्राणियोंके ये तीन शत्रु निवास करते हैं।'

'भगवन्! हमने निश्चय ही अपराध किया है, सनकादिके दुर्निवार शापसे व्याकुल होकर दोनों पार्षद उनके चरणोंमें लोटकर अत्यन्त दीनभावसे प्रार्थना करने लगे—'आपके दण्डसे हमारे पापका प्रक्षालन हो जायगा; किंतु आप इतनी कृपा करें कि अधमाधम योनियोंमें जानेपर भी हमारी भगवत्स्मृति बनी रहे।'

इधर श्रीभगवान् पद्मनाभको जब विदित हुआ कि हमारे पार्षदोंने सनकादिका अनादर किया है, तब वे तुरंत लक्ष्मीजीके साथ वहाँ पहुँच गये। समाधिके विषय

भुवनमोहन चतुर्भुज विष्णुके अचिन्त्य, अनन्त सौन्दर्यराशिके दर्शन कर सनकादिकी विचित्र दशा हो गयी। वे अपनेको सँभाल न सके और करुणासिन्धु भगवान् कमलनयनके चरणारविन्द-मकरन्दसे मिली तुलसीमञ्जरीकी अलौकिक गन्धसे उनके मनमें भी खलबली उत्पन्न हो गयी।

ते वा अमुष्य वदनासितपद्मकोश-
मुद्वीक्ष्य सुन्दरतराधरकुन्दहासम्।
लब्धाशिषः पुनरवेक्ष्य तदीयमङ्घ्रि-
द्वन्द्वं नखारुणमणिश्रयणं निदध्युः॥

(श्रीमद्भा० ३।१५।४४)

'भगवान्‌का मुख नील कमलके समान था, अति सुन्दर अधर और कुन्दकलीके समान मनोहर हाससे उसकी शोभा और भी बढ़ गयी थी। उसकी झाँकी करके वे कृतकृत्य हो गये और फिर पद्मरागके समान लाल-लाल नखोंसे सुशोभित उनके चरण-कमल देखकर वे उन्हींका ध्यान करने लगे।'

फिर प्रभुके प्रत्यक्ष दर्शनका परम सौभाग्य प्राप्तकर वे निखिलसृष्टिनायककी स्तुति और उनके मङ्गलमय चरणकमलोंमें प्रणाम करने लगे।

'मुनियो!' वैकुण्ठनिवास श्रीहरिने उनकी प्रशंसा करते हुए कहा—'ये जय-विजय मेरे पार्षद हैं। इन्होंने आपका अपराध किया है। आपने इन्हें दण्ड देकर उचित ही किया है। ब्राह्मण मेरे परम आराध्य हैं। मेरे अनुचरोंके द्वारा आपलोगोंका जो अनादर हुआ है, उसे मैं अपने द्वारा ही किया मानता हूँ। मैं आपलोगोंसे प्रसन्नताकी भिक्षा माँगता हूँ।'

त्रैलोक्यनाथ! सनकादिने प्रभुकी अर्थपूर्ण और सारयुक्त गम्भीर वाणी सुनकर उनका गुणगान करते हुए कहा—'आप सत्त्वगुणकी खान और सम्पूर्ण जीवोंके कल्याणके लिये सदा उत्सुक रहते हैं। इन द्वारपालोंको आप दण्ड अथवा पुरस्कार दें, हम विशुद्ध हृदयसे आपसे सहमत हैं या हमने क्रोधवश इन्हें शाप दे दिया, इसके लिये हमें ही दण्डित करें, हमें सहर्ष स्वीकार है।'

'मुनियो!' दयामय प्रभुने सनकादिसे अत्यन्त स्नेहपूर्वक कहा—'आप सत्य समझिये, आपका यह शाप मेरी ही प्रेरणासे हुआ है। ये दैत्ययोनिमें जन्म तो लेंगे, किंतु क्रोधावेशसे बढ़ी एकाग्रताके कारण शीघ्र ही मेरे पास लौट आयेंगे।'

सनकादि ऋषियोंने प्रभुकी अमृतमयी वाणीसे आप्यायित होकर उनकी परिक्रमा की और उनके त्रैलोक्यवन्दित चरणोंमें प्रणाम कर उनकी महिमाका गान करते हुए वे लौट गये।

'तुमलोग निर्भय होकर जाओ।' प्रभुने ऋषियोंके प्रस्थानके अनन्तर अपने अनुचरोंसे कहा—'तुम्हारा कल्याण होगा। मैं सर्वसमर्थ होकर भी ब्रह्मतेजकी रक्षा चाहता हूँ, यही मुझे अभीष्ट है। एक बार मेरे योगनिद्रामें स्थिर होनेपर तुम दोनोंने द्वारमें प्रवेश करती हुई लक्ष्मीजीको रोका था। उस समय उन्होंने क्रुद्ध होकर पहले ही तुम्हें शाप दे दिया था। अब दैत्ययोनिमें मेरे प्रति अत्यधिक क्रोधके कारण तुम्हारी जो एकाग्रता होगी, उससे तुम विप्र-तिरस्कारजनित पापसे मुक्त होकर कुछ ही समयमें मेरे पास लौट आओगे।'

श्रीभगवान्‌के पधारते ही सुरश्रेष्ठ जय-विजय ब्रह्मशापके कारण भगवान्‌के उस श्रेष्ठ धाममें ही श्रीहीन हो गये और उनका सारा गर्व चूर्ण हो गया।

× × ×

लीलामय प्रभुकी लीला अत्यन्त विचित्र होती है। उसका हेतु तथा रहस्य देवता और ऋषि-महर्षियोंकी भी समझमें नहीं आता, मनुष्य तो क्या समझे? किंतु प्रभुकी लीला जब हो, जैसी हो, होती है परम मङ्गलमयी; उसकी परिणति शुभ और कल्याणमें ही होती है।

प्रभुकी इसी अद्भुत लीलाके फलस्वरूप तपस्वी मरीचिनन्दन कश्यपमुनि जब खीरकी आहुतियोंद्वारा अग्निजिह्व भगवान्‌की उपासना कर सूर्यास्त देख अग्निशालामें ध्यानमग्न बैठे थे कि उनकी पत्नी दक्षपुत्री दितिदेवी उनके समीप पहुँचकर सर्वश्रेष्ठ संतान प्राप्त करनेकी कामना व्यक्त करने लगीं।

महर्षि कश्यपने उनकी इच्छापूर्तिका आश्वासन देते हुए असमयकी ओर संकेत किया, पर दिति अपनी

कामनापूर्तिके लिये हठ करती ही जा रही थीं। महर्षि कश्यप जब सब प्रकारसे समझाकर थक गये, किंतु उनकी पत्नीका दुराग्रह नहीं टला, तब विवश होकर इसे श्रीभगवान्‌की लीला समझकर उन्होंने मन-ही-मन सर्वान्तर्यामी प्रभुके चरणोंमें प्रणाम किया और एकान्तमें जाकर दितिकी कामना-पूर्ति की और फिर स्नानोपरान्त यज्ञशालामें बैठकर तीन बार आचमन किया और सायंकालीन संध्या-वन्दन करने लगे।

संध्या-वन्दनादि कर्मसे निवृत्त होकर महर्षि कश्यपने देखा कि उनकी सहधर्मिणी दिति भयवश थर-थर काँप रही हैं और अपने गर्भके लौकिक तथा पारलौकिक

उत्थानके लिये प्रार्थना कर रही है।

'तुमने चतुर्विध अपराध किया है।' महर्षि कश्यपने दितिदेवीसे कहा—'एक तो कामासक्त होनेके कारण तुम्हारा चित्त मलिन था, दूसरे वह असमय था, तीसरे तुमने मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन किया और चौथे, तुमने रुद्र आदि देवताओंका तिरस्कार किया है; इस कारण तुम्हारे गर्भसे दो अत्यन्त अधम और क्रूरकर्मा पुत्र उत्पन्न होंगे। उनके कुकर्मों एवं अत्याचारोंसे महात्मा पुरुष क्षुब्ध एवं धरित्री व्याकुल हो जायगी। वे इतने पराक्रमी और तेजस्वी होंगे कि ब्रह्मतेजसे भी वे प्रभावित नहीं होंगे। उनका वध करनेके लिये स्वयं नारायण दो पृथक्-पृथक् अवतार ग्रहण करेंगे। तुम्हारे दोनों पुत्रोंकी मृत्यु प्रभुके ही हाथों होगी।'

'भगवान् चक्रपाणिके हाथों मेरे पुत्रोंका अन्त हो, यह मैं भी चाहती हूँ।' कुछ संतोषके साथ दिति बोली—'ब्राह्मणोंके शापसे उनकी रक्षा हो जाय; क्योंकि ब्रह्मशापसे दग्ध प्राणीपर तो नारकीय जीव भी दया नहीं करते। मेरे पुत्रोंके कारण लक्ष्मीवल्लभ श्रीविष्णु अवतार ग्रहण करेंगे—यह अत्यन्त प्रसन्नताकी बात है, यद्यपि वे प्रभुभक्त नहीं होंगे—इस बातका मुझे दुःख है।'

दितिदेवीका सर्वेश्वर प्रभुके प्रति सम्मानका भाव देखकर महामुनि कश्यप संतुष्ट हो गये। उन्होंने कहा—'देवि! तुम्हें अपने कर्मके प्रति पश्चात्ताप हो रहा है, शीघ्र ही तुम्हारा विवेक जाग्रत् हो गया और भगवान् विष्णु, भूतभावन शिव तथा मेरे प्रति भी तुम्हारे मनमें आदरका भाव दीख रहा है, इस कारण तुम्हारे एक पुत्रके चार पुत्रोंमें एक श्रीभगवान्का अनन्य भक्त होगा। वह श्रीभगवान्का अत्यन्त प्रीतिभाजन होगा और भक्तजन उसका सदा गुणगान करते रहेंगे। तुम्हारे उस पौत्रको कमलनयन हरिका प्रत्यक्ष दर्शन होगा।'

'मेरा पौत्र श्रीनारायण प्रभुका भक्त होगा तथा मेरे पुत्रोंके जीवनका अन्त श्रीहरिके द्वारा होगा'—यह जानकर दितिका मन उल्लाससे भर गया। किंतु अपने पुत्रोंके द्वारा सुर-समुदायके कष्टकी कल्पना कर उन्होंने अपने पति (कश्यपजी)-के तेजको सौ वर्षतक उदरमें ही रखा। उस गर्भस्थ तेजसे लोकोंमें सूर्यादिका तेज क्षीण होने लगा। इन्द्रादि लोकपाल सभी तेजोहत हो गये।

'भूमन्!' इन्द्रादि देवगण तथा लोकपालादिने ब्रह्माके समीप जाकर उनकी स्तुतिके अनन्तर निवेदन किया—'इस समय सर्वत्र अन्धकार बढ़ता जा रहा है। दिन-रातका विभाग स्पष्ट न रहनेसे लोकोंके सारे कर्म लुप्त होते जा रहे हैं। सब दुःखी और व्याकुल हैं। आप उनका दुःख-निवारण कीजिये। दितिका गर्भ चतुर्दिक् अन्धकार फैलाता हुआ बढ़ता जा रहा है।'

'इस समय दक्षसुता दितिके उदरमें महर्षि कश्यपका तेज है' विधाताने अपने मानसपुत्र सनकादिके द्वारा वैकुण्ठधाममें श्रीनारायणके पार्षद जय-विजयको दिये हुए शापका वृत्तान्त सुनाते हुए कहा—'और उसमें श्रीनारायणके उन दोनों पार्षदोंने प्रवेश किया है। उन दोनों दैत्योंके तेजके सम्मुख ही तुम सबका तेज मलिन पड़ गया है। इस समय लीलाधर श्रीहरिकी यही इच्छा प्रतीत होती है। वे सृष्टि-स्थिति-संहारकारी श्रीहरि ही हम सबका कल्याण करेंगे। इस सम्बन्धमें हमलोगोंके सोच-विचार करनेका कोई अर्थ नहीं।'

शङ्का-निवारण हो जानेके कारण देवगण श्रीभगवान्का स्मरण करते हुए स्वर्गके लिये प्रस्थित हुए।

'मेरे पुत्र उपद्रवी होंगे और उनसे सत्पुरुषोंको कष्ट होगा'—यह आशङ्का दितिके मनमें बनी रहती थी। इस कारण सौ वर्ष पूरा हो जानेके उपरान्त उन्होंने दो यमज (जुड़वाँ) पुत्र उत्पन्न किये।

उन दैत्योंके धरतीपर पैर रखते ही पृथ्वी, आकाश और स्वर्गमें अनेकों उपद्रव होने लगे। अन्तरिक्ष तिमिराच्छन्न हो गया और बिजली चमकने लगी। पृथ्वी और पर्वत काँपने लगे। भयानक आँधी चलने लगी। सर्वत्र अमङ्गलसूचक शब्द तथा प्रलयकारी दृश्य दृष्टिगोचर होने लगे। सनकादिके अतिरिक्त सभी जीव भयभीत हो गये। उन्होंने समझा कि अब संसारका प्रलय होनेवाला ही है।

वे दोनों दैत्य जन्म लेते ही पर्वताकार एवं परम पराक्रमी हो गये। प्रजापति कश्यपजीने उनमेंसे जो उनके वीर्यसे दितिके गर्भमें पहले स्थापित हुआ था, उसका नाम 'हिरण्यकशिपु' तथा जो दितिके गर्भसे पृथ्वीपर पहले आया, उसका नाम 'हिरण्याक्ष' रखा।

हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष—दोनों भाइयोंमें बड़ी प्रीति थी। दोनों एक-दूसरेको प्राणाधिक प्यार करते थे। दोनों ही महाबलशाली, अमित पराक्रमी एवं उद्धत थे। वे अपने सम्मुख किसीको कुछ नहीं समझते थे। हिरण्याक्षने अपनी विशाल गदा कंधेपर रखी और स्वर्ग जा पहुँचा। इन्द्रादि देवताओंके लिये उसका सामना करना सम्भव नहीं था। सब भयभीत होकर छिप गये। निराश हिरण्याक्ष अपने प्रतिपक्षीको ढूँढ़ने लगा, किंतु उसके सम्मुख कोई टिक नहीं पाता था।

अथ भूम्युपरि स्थित्वा मर्त्या यक्ष्यन्ति देवताः।
तेन तेषां बलं वीर्यं तेजश्चापि भविष्यति॥
इति मत्वा हिरण्याक्षः कृते सर्गे तु ब्रह्मणा।
भूमेर्या धारणाशक्तिस्तां नीत्वा स महासुरः॥
विवेश तोयमध्ये तु रसातलतलं नृप।
विना शक्त्या च जगती प्रविवेश रसातलम्॥

(श्रीनरसिंहपुराण ३९।७—९)

एक बार उसने सोचा—'मर्त्यलोकमें रहनेवाले पुरुष पृथ्वीपर रहकर देवताओंका यजन करेंगे, इससे उनका बल, वीर्य और तेज बढ़ जायगा'—यह सोचकर महान् असुर हिरण्याक्ष ब्रह्माजीद्वारा सृष्टि-रचना की जानेपर उसे धारण करनेकी भूमिमें जो धारणा-शक्ति थी, उसे ले जाकर जलके भीतर-ही-भीतर रसातलमें चला गया। आधारशक्तिसे रहित होकर यह पृथ्वी भी रसातलमें ही चली गयी।

मदोन्मत्त हिरण्याक्षने देखा कि उसके तेजके सम्मुख सभी देवता छिप गये हैं, तब वह महाबलवान् दैत्य जलक्रीड़ाके लिये गम्भीर समुद्रमें घुस गया। उसे देखते ही वरुणके सैनिक जलचर भयवश दूर भागे। वहाँ भी किसीको न पाकर वह समुद्रकी उत्ताल तरंगोंपर ही अपनी गदा पटकने लगा। इस प्रकार प्रतिपक्षीको ढूँढ़ते हुए वह वरुणकी राजधानी विभावरीपुरीमें जा पहुँचा।

'मुझे युद्धकी भिक्षा दीजिये।' बड़ी ही अशिष्टतासे उसने वरुणदेवको प्रणाम करते हुए व्यंग्यसहित कहा। 'आपने कितने ही पराक्रमियोंके वीर्यमदको चूर्ण किया है। एक बार आपने सम्पूर्ण दैत्योंको पराजितकर राजसूय यज्ञ भी किया था। कृपया मेरी युद्धकी क्षुधाका निवारण कीजिये।'

'भाई! अब तो मेरी युद्धकी इच्छा नहीं है।' पराक्रमी और उन्मत्त शत्रुके व्यंग्यपर वरुणदेव क्रुद्ध तो हुए, पर प्रबल दैत्यको देखकर धैर्यपूर्वक उन्होंने कहा—'मेरी दृष्टिमें श्रीहरिके अतिरिक्त अन्य कोई योद्धा नहीं दीखता, जो तुम्हारे-जैसे वीरपुंगवको संतुष्ट कर सके। तुम उन्हींके पास जाओ। उनसे भिड़नेपर तुम्हारा अहंकार शान्त हो जायगा। वे तुम-जैसे दैत्योंके संहारके लिये अनेक अवतार ग्रहण किया करते हैं।'

× × ×

सत्यसङ्कल्प ब्रह्माजी सृष्टि-विस्तारके लिये मन-ही-मन श्रीहरिका स्मरण कर रहे थे कि अकस्मात् उनके शरीरके दो भाग हो गये। एक भागसे 'नर' हुआ और दूसरे भागसे 'नारी'। विधाता अत्यन्त प्रसन्न हुए।

''मेरे मनके अनुरूप होनेके कारण तुम्हारा नाम 'मनु' होगा।'' नरकी ओर देखकर उन्होंने कहा—''मुझ स्वयम्भूके पुत्र होनेसे तुम्हारा 'स्वायम्भुव' नाम भी प्रख्यात होगा। तुम्हारी बगलमें अपने शत-शत रूपोंसे मनको आकृष्ट करनेवाली सुन्दरी खड़ी है। इसका नाम 'शतरूपा' प्रसिद्ध होगा। तुम पति और यह तुम्हारी पत्नी होगी। मेरे आधे अङ्गसे बननेके कारण यह तुम्हारी अर्धाङ्गिनी होगी। तुम्हारे मध्य धर्म स्थित है। इसे साक्षी देकर तुम इसे सहधर्मिणी बना लो। यह तुम्हारी धर्मपत्नी होगी। तुम्हारे वंशज 'मनुष्य' कहे जायँगे।''

'भगवन्! एकमात्र आप ही सम्पूर्ण प्राणियोंके जीवनदाता हैं।' अत्यन्त विनयपूर्वक स्वायम्भुव मनुने अपने पिता विधातासे हाथ जोड़कर कहा। 'आप ही सबको जीविका प्रदान करनेवाले पिता हैं। हम ऐसा कौन-सा उत्तम कर्म करें, जिससे आप संतुष्ट हों और लोकमें हमारे यशका विस्तार हो।'

'मैं तुमसे अत्यधिक संतुष्ट हूँ।' सृष्टि-विस्तारके कार्यमें अपने पूर्वपुत्रोंसे निराश विधाताने प्रसन्न होकर मनुसे कहा। 'तुम अपनी इस भार्यासे अपने ही समान गुणवती संतति उत्पन्न कर धर्मपूर्वक पृथ्वीका पालन करते हुए यज्ञोंके द्वारा श्रीभगवान्‌की उपासना करो।'

'मैं आपकी आज्ञाका पालन अवश्य करूँगा;' मनुने श्रीब्रह्मासे निवेदन किया। 'किंतु आप मेरे तथा मेरी भावी

प्रजाके रहनेयोग्य स्थान बताइये। पृथ्वी तो प्रलयजलमें डूबी हुई है। उसके उद्धारका यत्न कीजिये।'

'अथाह जलमें डूबी पृथ्वीको कैसे निकालूँ?' चतुर्मुख ब्रह्मा विचार करने लगे। 'क्या करूँ?' फिर उन्होंने सोचा—'जिन श्रीहरिके संकल्पमात्रसे मेरा जन्म हुआ है, वे ही सर्वसमर्थ प्रभु यह कार्य करें।'

सर्वान्तर्यामी, सर्वलोकमहेश्वर प्रभुकी स्मृति होते ही अकस्मात् पद्मयोनिके नासाछिद्रसे अँगूठेके बराबर एक श्वेत वराह-शिशु निकला। विधाता उसकी ओर आश्चर्यचकित हो देख ही रहे थे कि वह तत्काल विशाल हाथीके बराबर हो गया।

'निश्चय ही यज्ञमूर्ति भगवान् हमलोगोंको मोहित कर रहे हैं।' स्वायम्भुव मनुके साथ ब्रह्माजी विचार करते हुए इस निष्कर्षपर पहुँचे। 'यह कल्याणमय प्रभुका ही वेदयज्ञमय वराह-वपु है।'

इतनेमें ही भगवान्का वराह-वपु पर्वताकार हो गया। उन यज्ञमूर्ति वराह भगवान्का घोर गर्जन चतुर्दिक् व्याप्त हो गया। वे घुरघुराते और गरजते हुए मत्त गजेन्द्रकी-सी लीला करने लगे। उस समय मुनिगण प्रभुकी प्रसन्नताके लिये स्तुति कर रहे थे। वराह भगवान्का बड़ा ही अद्भुत एवं दिव्य स्वरूप था—

उत्क्षिप्तवालः खचरः कठोरः सटा विधुन्वन् खररोमशत्वक्।
खुराहताभ्रः सितदंष्ट्र ईक्षाज्योतिर्बभासे भगवान्महीध्रः॥
घ्राणेन पृथ्व्याः पदवीं विजिघ्रन् क्रोडापदेशः स्वयमध्वराङ्गः।
करालदंष्ट्रोऽप्यकरालदृग्भ्यामुद्वीक्ष्य विप्रान् गृणतोऽविशत्कम्॥

(श्रीमद्भा० ३।१३।२७-२८)

'पहले वे सूकररूप भगवान् पूँछ उठाकर बड़े वेगसे आकाशमें उछले और अपनी गर्दनके बालोंको फटकारकर खुरोंके आघातसे बादलोंको छितराने लगे। उनका शरीर बड़ा कठोर था, त्वचापर कड़े-कड़े बाल थे, दाढ़ें सफेद थीं और नेत्रोंसे तेज निकल रहा था; उस समय उनकी बड़ी शोभा हो रही थी। भगवान् स्वयं यज्ञपुरुष हैं, तथापि सूकररूप धारण करनेके कारण अपनी नाकसे सूँघ-सूँघकर पृथ्वीका पता लगा रहे थे। उनकी दाढ़ें बड़ी कठोर थीं। इस प्रकार यद्यपि वे बड़े क्रूर जान पड़ते थे, तथापि अपनी स्तुति करनेवाले मरीचि आदि मुनियोंकी ओर बड़ी सौम्य दृष्टिसे निहारते हुए उन्होंने जलमें प्रवेश किया।'

वज्रमय पर्वतके तुल्य अत्यन्त कठोर और विशाल वराह भगवान्के कूदते ही महासागरमें ऊँची-ऊँची लहरें उठने लगीं। समुद्र जैसे व्याकुल होकर आकाशकी ओर जाने लगा। भगवान् वराह बड़े वेगसे जलको चीरते हुए रसातलमें पहुँचे। वहाँ उन्होंने सम्पूर्ण प्राणियोंकी आश्रयभूता पृथ्वीको देखा। प्रभुको सम्मुख उपस्थित देखकर पृथ्वीने प्रसन्न होकर उनकी अनेक प्रकारसे स्तुति की—

नमस्ते पुण्डरीकाक्ष शङ्खचक्रगदाधर।
मामुद्धरास्मादद्य त्वं त्वत्तोऽहं पूर्वमुत्थिता॥
भवतो यत्परं तत्त्वं तन्न जानाति कश्चन।
अवतारेषु यद्रूपं तदर्चन्ति दिवौकसः॥
यत्किञ्चिन्मनसा ग्राह्यं यद्ग्राह्यं चक्षुरादिभिः।
बुद्ध्या च यत्परिच्छेद्यं तद्रूपमखिलं तव॥
मूर्तामूर्तमदृश्यं च दृश्यं च पुरुषोत्तम।
यच्चोक्तं यच्च नैवोक्तं मयात्र परमेश्वर।
तत्सर्वं त्वं नमस्तुभ्यं भूयो भूयो नमो नमः॥

(विष्णुपुराण १।४।१२, १७, १९, २४)

पृथ्वी बोली—'शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण करनेवाले कमलनयन प्रभो! आपको नमस्कार है। आज आप इस पातालसे मेरा उद्धार कीजिये। पूर्वकालमें आपसे ही मैं उत्पन्न हुई थी। ····प्रभो! आपका जो परतत्त्व है, उसे तो कोई भी नहीं जानता; अतः आपका जो रूप अवतारोंमें प्रकट होता है, उसीकी देवगण पूजा करते हैं। ····मनसे जो कुछ ग्रहण (संकल्प) किया जाता है, चक्षु आदि इन्द्रियोंमें जो कुछ (विषयरूपसे) ग्रहण करनेयोग्य है, बुद्धिद्वारा जो कुछ आकलनीय है, वह सब आपका ही रूप है। ····हे पुरुषोत्तम! हे परमेश्वर! मूर्त-अमूर्त, दृश्य-अदृश्य तथा जो कुछ इस प्रसङ्गमें मैंने कहा है और जो नहीं कहा, वह सब आप ही हैं। अतः आपको नमस्कार है, बारम्बार नमस्कार है।'

धरित्रीकी स्तुति सुनकर भगवान् वराहने घोर-शब्दसे गर्जना की और—

ततः समुत्क्षिप्य धरां स्वदंष्ट्रया
महावराहः स्फुटपद्मलोचनः

रसातलादुत्पलपत्रसंनिभः
समुत्थितो नील इवाचलो महान्॥
(विष्णुपुराण १।४।२६)

'फिर विकसित कमलके समान नेत्रोंवाले उन महावराहने अपनी दाढ़ोंसे पृथिवीको उठा लिया और वे कमल-दलके समान श्याम तथा नीलाचलके सदृश विशालकाय भगवान् रसातलसे बाहर निकले।'

उधर वरुणदेवके द्वारा अपने प्रतिपक्षीका पता पाकर हिरण्याक्ष अत्यन्त प्रसन्न हुआ। 'आप मुझे श्रीहरिका पता बता दें।' हिरण्याक्ष देवर्षि नारदके पास पहुँच गया। उसे युद्धकी अत्यन्त त्वरा थी।

'श्रीहरिने तो अभी-अभी श्वेतवराहके रूपमें समुद्रमें प्रवेश किया है।' देवर्षिके मनमें दया थी। उन्होंने सोचा—'यह भगवान्‌के हाथों मरकर दूसरा जन्म ले। तीन ही जन्मके अनन्तर तो यह अपने स्वरूपको प्राप्त होगा।' बोले—'यदि शीघ्रता करो तो तुम उन्हें पा जाओगे।'

हिरण्याक्ष दौड़ा रसातलकी ओर। वहाँ उसकी दृष्टि अपनी विशाल दाढ़ोंकी नोकपर पृथ्वीको ऊपरकी ओर ले जाते हुए वराहभगवान्‌पर पड़ी।

'अरे सूकररूपधारी सुराधम!' चिल्लाते और भगवान्‌की ओर तेजीसे दौड़ते हुए हिरण्याक्षने कहा। 'मेरी शक्तिके सम्मुख तुम्हारी योगमायाका प्रभाव नहीं चल सकता। मेरे देखते तू पृथ्वीको लेकर नहीं भाग सकता। निर्लज्ज कहींका।'

श्रीभगवान् दुर्जय दैत्यके वाग्बाणोंकी चिन्ता न कर पृथ्वीको ऊपर लिये चले जा रहे थे। वे भयभीत पृथ्वीको उचित स्थानपर स्थापित करना चाहते थे। इस कारण हिरण्याक्षके दुर्वचनोंका कोई उत्तर नहीं दे रहे थे। कुपित होकर दैत्यने कहा—'सत्य है, तेरे-जैसे व्यक्ति सभी अकरणीय कृत्य कर डालते हैं।'

प्रभुने पृथ्वीको जलके ऊपर लाकर व्यवहारयोग्य स्थलपर स्थापितकर उसमें अपनी आधारशक्तिका संचार किया। उस समय हिरण्याक्षके सामने ही भगवान्‌पर देवगण पुष्प-वृष्टि और ब्रह्मा उनकी स्तुति करने लगे।

'मैं तो तेरे सामने कुछ नहीं।' तब प्रभुने कज्जलगिरिके तुल्य हिरण्याक्षसे कहा। वह अपने हाथमें विशाल गदा लिये अनर्गल प्रलाप करता हुआ दौड़ा आ रहा था। प्रभु बोले—'अब तू अपने मनकी कर ले।'

फिर तो वीरवर हिरण्याक्ष एवं भगवान् वराहमें भयानक संग्राम हुआ। दोनोंके वज्रतुल्य शरीर गदाकी चोटसे रक्तमें सन गये। हिरण्याक्ष और मायासे वराहरूप धारण करनेवाले भगवान् यज्ञमूर्तिका युद्ध देखने मुनियोंसहित ब्रह्माजी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने प्रभुसे प्रार्थना की, 'प्रभो! शीघ्र इसका वध कर डालिये।'

विधाताके भोलेपनपर श्रीभगवान्‌ने मुस्कराकर उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। अब अत्यन्त शूर हिरण्याक्षसे प्रभुका भयानक संग्राम हुआ। अपने किसी अस्त्र-शस्त्र तथा छल-छद्मका आदिवराहपर कोई प्रभाव पड़ता न देख हिरण्याक्ष श्रीहत होने लगा। अन्तमें श्रीभगवान्‌ने हिरण्याक्षकी कनपटीपर एक तमाचा मारा।

श्रीभगवान्‌ने यद्यपि तमाचा उपेक्षासे मारा था, किंतु

उसकी चोटसे हिरण्याक्षके नेत्र बाहर निकल आये। वह घूमकर कटे वृक्षकी तरह धराशायी हो गया। उसके प्राण-पखेरू उड़ गये।

'ऐसी दुर्लभमृत्यु किसे प्राप्त होती है!' ब्रह्मादि देवताओंने हिरण्याक्षके भाग्यकी सराहना करते हुए कहा। 'मिथ्या उपाधिसे मुक्ति प्राप्त करनेके लिये योगीन्द्र-मुनीन्द्र जिन महामहिम परमेश्वरका ध्यान करते हैं, उन्हींके चरण-प्रहारसे उनका मुख देखते हुए इस दैत्यराजने अपना प्राण-त्याग किया! धन्य है यह।'

इसके साथ ही सुर-समुदाय महावराह प्रभुकी स्तुति करने लगा। और—

विहाय रूपं वाराहं तीर्थे कोकेति विश्रुते।
वैष्णवानां हितार्थाय क्षेत्रं तद्गुह्यमुत्तमम्॥
(श्रीनरसिंहपुराण ३९।१८)

'फिर प्रभुने वैष्णवोंके हितके लिये कोकामुख तीर्थमें वराहरूपका त्याग किया। वह वराह-क्षेत्र उत्तम एवं गुप्त तीर्थ है।'

पृथ्वीके उसी पुनः प्रतिष्ठा-कालसे इस श्वेतवाराह-कल्पकी सृष्टि प्रारम्भ हुई है।

×   ×   ×

उत्तरकुरुवर्षमें भगवान् यज्ञपुरुष वराहमूर्ति धारण करके विराजमान हैं। साक्षात् पृथ्वीदेवी वहाँके निवासियोंसहित उनकी अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिसे उपासना करती हैं और इस परमोत्कृष्ट मन्त्रका जप करती हुई उनका स्तवन करती हैं—

'ॐ नमो भगवते मन्त्रतत्त्वलिङ्गाय यज्ञक्रतवे महाध्वरावयवाय महापुरुषाय नमः कर्मशुक्लाय त्रियुगाय नमस्ते।' (श्रीमद्भा० ५।१८।३५)

'जिनका तत्त्व मन्त्रोंसे जाना जाता है, जो यज्ञ और क्रतुरूप हैं तथा बड़े-बड़े यज्ञ जिनके अङ्ग हैं— उन ओंकारस्वरूप शुक्लकर्ममय त्रियुगमूर्ति पुरुषोत्तम भगवान् वराहको बार-बार नमस्कार है।'

(३) देवर्षि नारद

मङ्गलमूर्ति नारदजी श्रीभगवान्के मनके अवतार हैं। कृपामय प्रभु जो कुछ करना चाहते हैं, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी वीणापाणि नारदजीके द्वारा वैसी ही चेष्टा होती है।

श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

तृतीयमृषिसर्गं च देवर्षित्वमुपेत्य सः।
तन्त्रं सात्वतमाचष्ट नैष्कर्म्यं कर्मणां यतः॥
(१।३।८)

''ऋषियोंकी सृष्टिमें उन्होंने देवर्षि नारदके रूपमें तीसरा अवतार ग्रहण किया और सात्वत-तन्त्रका (जिसे 'नारदपञ्चरात्र' कहते हैं) उपदेश किया; उसमें कर्मोंके द्वारा किस प्रकार कर्मबन्धनसे मुक्ति मिलती है, इसका वर्णन है।''

परम तपस्वी और ब्राह्मतेजसे सम्पन्न नारदजी अत्यन्त सुन्दर हैं। उनका वर्ण गौर है। उनके मस्तकपर शिखा सुशोभित है। अत्यन्त कान्तिमान् नारदजी देवराज इन्द्रके दिये हुए दो उज्ज्वल, महीन, दिव्य, शुभ और बहुमूल्य वस्त्र धारण करते हैं। वेद और उपनिषदोंके ज्ञाता, देवताओंद्वारा पूजित, पूर्वकल्पोंकी बातोंके जानकार, महाबुद्धिमान् और असंख्य सद्गुणोंसे सम्पन्न महातेजस्वी नारदजी भगवान् पद्मयोनिसे प्राप्त वीणाकी मनोहर झंकृतिके साथ दयामय भगवान्के मधुर, मनोहर एवं मङ्गलमय नाम और गुणोंका गान करते हुए लोक-लोकान्तरोंमें विचरण किया करते हैं। मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले साधु पुरुषोंके हितके लिये नारदजी सतत प्रयत्नशील रहते हैं। वे सचल कल्पवृक्ष हैं।

वे स्वयं अपने मुखारविन्दसे कहते हैं—

प्रगायतः स्ववीर्याणि तीर्थपादः प्रियश्रवाः।
आहूत इव मे शीघ्रं दर्शनं याति चेतसि॥
(श्रीमद्भागवत १।६।३४)

'जब मैं उनकी लीलाओंका गान करने लगता हूँ, तब वे प्रभु, जिनके चरण-कमल समस्त तीर्थोंके उद्गमस्थान हैं और जिनका यशोगान मुझे बहुत ही प्रिय लगता है, बुलाये हुएकी भाँति तुरन्त मेरे हृदयमें आकर दर्शन दे देते हैं।'

कृपाकी मूर्ति नारदजी वेदान्त, योग, ज्यौतिष, आयुर्वेद एवं संगीत आदि अनेक शास्त्रोंके आचार्य हैं और भक्तिके तो वे मुख्याचार्य हैं। उनका पञ्चरात्र भागवत-मार्गका प्रधान ग्रन्थरत्न है। प्राणिमात्रकी कल्याण-कामना करनेवाले नारदजी श्रीहरिके मार्गपर अग्रसर होनेकी इच्छा रखनेवाले प्राणियोंको सहयोग देते रहते हैं। मुमुक्षुओंका मार्गदर्शन उनका प्रमुख कर्तव्य है। उन्होंने त्रैलोक्यमें कितने प्राणियोंको किस प्रकार परम प्रभुके पावन पद-पद्मोंमें पहुँचा दिया, इसकी गणना सम्भव नहीं।

बालक प्रह्लादकी दृढ़ भक्तिसे भगवान् नृसिंह अवतरित हुए। प्रह्लादके इस भगवद्विश्वास एवं प्रगाढ़ निष्ठामें भगवान्

नारद ही मुख्य हेतु थे। उन्होंने गर्भस्थ प्रह्लादको लक्ष्य करके उनकी माता दैत्येश्वरी कयाधूको भक्ति और ज्ञानका उपदेश दिया। प्रह्लादजीका वही ज्ञान उनके जीवन और जन्मको सफल करनेमें हेतु बना। इसी प्रकार पिताके तिरस्कारसे क्षुब्ध ध्रुवकुमारके वन-गमनके समय नारदजीने उन्हें भगवान् वासुदेवका मन्त्र दिया तथा उन्हें उपासनाकी

पद्धति भी विस्तारपूर्वक बतायी। जब दक्ष प्रजापतिने पञ्चजनकी पुत्री असिक्नीसे 'हर्यश्व' नामक दस सहस्र पुत्र उत्पन्न कर उन्हें सृष्टि-विस्तारका आदेश दिया और एतदर्थ वे पश्चिम दिशामें सिन्धु नदी और समुद्रके संगमपर स्थित पवित्र नारायण-सरपर तपश्चरण करने पहुँचे, तब नारदजीने अपने अमृतमय उपदेशसे उन

सबको विरक्त बना दिया। दक्ष प्रजापति बड़े दुःखी हुए। उन्होंने फिर 'शबलाश्व' नामक एक सहस्र पुत्र उत्पन्न किये। नारदजीने कृपापूर्वक उन्हें भी श्रीभगवच्चरणारविन्दोंकी ओर उन्मुख कर दिया। फिर तो अत्यन्त क्रुद्ध होकर प्रजापति दक्षने अजातशत्रु नारदजीको शाप दे दिया—'तुम
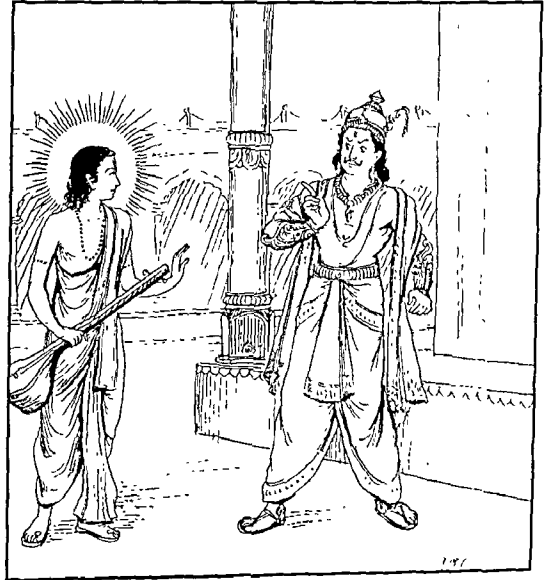
लोक-लोकान्तरोंमें भटकते ही रहोगे।' साधुशिरोमणि नारदजीने इसे प्रभुकी मङ्गलमयी इच्छा समझकर दक्षका शाप स्वीकार कर लिया।

जब वेदोंका विभाग तथा पञ्चम वेद महाभारतकी रचना कर लेनेपर भी श्रीव्यासजी अपनेको अपूर्णकाम अनुभव करते हुए खिन्न हो रहे थे, तब दयापरवश श्रीनारदजी उनके समीप पहुँच गये और व्यासजीके पूछनेपर उन्होंने बताया—'व्यासजी! आपने भगवान्‌के निर्मल यशका गान प्रायः नहीं किया। मेरी ऐसी मान्यता है कि वह शास्त्र या ज्ञान सर्वथा अपूर्ण है, जिससे जगदाधार स्वामी संतुष्ट न हों। वह वाणी आदरके योग्य नहीं, जिसमें श्रीहरिकी परमपावनी कीर्ति वर्णित न हो। वह तो कौओंके लिये उच्छिष्ट फेंकनेके स्थानके समान अपवित्र है। उसके द्वारा तो मूर्ख कामुक व्यक्तियोंका ही मनोरञ्जन हो सकता है। मानस-सरके कमलवनमें विहार करनेवाले राजहंसोंके समान ब्रह्मधाममें विहार करनेवाले भगवच्चरणारविन्दाश्रित परमहंस भक्तोंका मन उसमें कैसे रम सकता है? विद्वान् पुरुषोंने निर्णय किया है कि मनुष्यकी तपस्या, वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान एवं

समस्त धर्मकर्मोंकी सफलता इसीमें है कि पुण्यकीर्ति श्रीप्रभुकी कल्याणमयी लीलाओंका गान किया जाय। अतएव—

त्वमप्यदभ्रश्रुत विश्रुतं विभोः
समाप्यते येन विदां बुभुत्सितम्।
आख्याहि दुःखैर्मुहुरर्दितात्मनां
संक्लेशनिर्वाणमुशन्ति नान्यथा॥

(श्रीमद्भा० १।५।४०)

'व्यासजी! आपका ज्ञान पूर्ण है; आप भगवान्‌की ही कीर्तिका—उनकी प्रेममयी लीलाका वर्णन कीजिये। उसीसे बड़े-बड़े ज्ञानियोंकी भी जिज्ञासा पूर्ण होती है। जो लोग दुःखोंके द्वारा बार-बार रौंदे जा रहे हैं, उनके दुःखकी शान्ति इसीसे हो सकती है। इसके सिवा उनका और कोई उपाय नहीं है।'

जब दुर्योधनके छल और कुटिल नीतिसे सहृदय पाण्डवोंने अरण्यके लिये प्रस्थान किया, उस समय भरतवंशियोंके विनाशसूचक अनेक प्रकारके भयानक अपशकुन होने लगे। चिन्तित होकर इस सम्बन्धमें धृतराष्ट्र और विदुर परस्पर बातचीत कर ही रहे थे कि उसी समय महर्षियोंसे घिरे भगवान् नारद कौरवोंके सामने आकर खड़े हो गये और सुस्पष्ट शब्दोंमें उन्होंने भविष्यवाणी करते हुए कहा—

इतश्चतुर्दशे वर्षे विनक्ष्यन्तीह कौरवाः।
दुर्योधनापराधेन भीमार्जुनबलेन च॥

(महा०, सभा० ८०।३४)

'आजसे चौदहवें वर्षमें दुर्योधनके अपराधसे भीम और अर्जुनके पराक्रमद्वारा कौरवकुलका नाश हो जायगा।'

इतना कहकर महान् ब्रह्मतेजधारी नारदजी आकाशमें जाकर सहसा अन्तर्धान हो गये।

सर्वोच्च ज्ञानके परमपावन विग्रह श्रीशुकदेवजीको उपदेश देते हुए महामुनि नारदजीने कहा था—

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं हि जीवितम्॥
अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः।
आत्मनैव सहायेन यश्चरेत् स सुखी भवेत्॥

(महा०, शान्ति० ३३०।२०, ३०)

'संग्रहका अन्त है विनाश। ऊँचे चढ़नेका अन्त है नीचे गिरना। संयोगका अन्त है वियोग और जीवनका अन्त है मरण।'

'जो अध्यात्मविद्यामें अनुरक्त, कामनाशून्य तथा भोगासक्तिसे दूर है, जो अकेला ही विचरण करता है, वही सुखी होता है।'

जब अविनाशी नारायण और नर बदरिकाश्रममें घोर तप करते हुए अत्यन्त दुर्बल हो गये थे और उन परम तेजस्वी प्रभुका दर्शन अत्यन्त दुर्लभ था, उस समय नारदजी महामेरु पर्वतसे गन्धमादन पर्वतपर उतर गये और जब भगवान् नर और नारायणके समीप पहुँचे, तब उन्होंने शास्त्रीय विधिसे नारदजीकी पूजा की। नारदजीने उनसे अनेक भगवत्सम्बन्धी प्रश्नोंका तृप्तिकर उत्तर प्राप्त किया और फिर उनकी अनुमतिसे श्वेतद्वीपमें पहुँचकर श्रीभगवान्‌के विश्वरूपका दर्शन-लाभ कर पुनः गन्धमादन पर्वतपर श्रीनर-नारायणके समीप चले आये। नारदजीने भगवान् नर-नारायणको सारा वृत्तान्त सुनाया और उनके समीप दस सहस्र दिव्य वर्षोंतक रहकर वे भजन एवं मन्त्रानुष्ठान करते रहे।

स्कन्दपुराणमें इन्द्रकृत श्रीनारदजीकी एक अत्यन्त सुन्दर स्तुति है। उसके सम्बन्धमें एक बार भगवान् श्रीकृष्णने नारदजीके गुणोंकी प्रशंसा करते हुए राजा उग्रसेनसे कहा था कि 'मैं देवराज इन्द्रद्वारा किये गये स्तोत्रसे दिव्यदृष्टिसम्पन्न श्रीनारदजीकी सदा स्तुति किया करता हूँ।'*

सर्वसुहृद् श्रीनारदजी ही एकमात्र ऐसे हैं, जिनका सभी देवता और दैत्यगण समानरूपसे सम्मान एवं विश्वास करते हैं, उन्हें अपना शुभैषी समझते हैं और निश्चय ही वे दयामय सबके यथार्थ हित-साधनके लिये सचिन्त और प्रयत्नशील रहते हैं। अब भी करुणामय प्रभुके सच्चे प्रेमी भक्तोंको उनके दर्शन हो जाते हैं।

~~ o ~~

* उक्त स्तोत्र यहाँ स्थानाभावसे नहीं दिया जा सका। वह स्कन्दपुराणके माहेश्वर (कुमारिका) खण्डके ५४वें अध्यायमें श्लोक संख्या २७ से ४६ तकमें वर्णित है।

(४) भगवान् नर-नारायण

दृश्यते ज्ञानयोगेन आवां च प्रसृतौ ततः।
एवं ज्ञात्वा तमात्मानं पूजयावः सनातनम्॥
ये तु तद्भाविता लोके ह्येकान्तित्वं समास्थिताः।
एतदभ्यधिकं तेषां यत् ते तं प्रविशन्त्युत॥

(महा०, शान्तिपर्व ३३४।४२, ४४)

'ज्ञानयोगद्वारा उस (परमात्मा)-का साक्षात्कार होता है। हम दोनोंका आविर्भाव उसीसे हुआ है—यह जानकर हम दोनों उस सनातन परमात्माकी पूजा करते हैं।....'

जो सदा उसका स्मरण करते तथा अनन्यभावसे उसकी शरण लेते हैं, उन्हें सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि वे उसके स्वरूपमें प्रवेश कर जाते हैं।'—नर-नारायण

स्वयं भगवान् वासुदेवने सृष्टिके आरम्भमें धर्मकी सहधर्मिणी मूर्तिसे दो रूपोंमें अवतार धारण किया। वे अपने मस्तकपर जटामण्डल धारण किये हुए थे। उनके हाथोंमें हंस, चरणोंमें चक्र एवं वक्षःस्थलमें श्रीवत्सके चिह्न सुशोभित थे। उनकी बड़ी-बड़ी भुजाएँ, मेघके समान गम्भीर स्वर, सुन्दर मुख, चौड़ा ललाट, बाँकी भौंहें, सुन्दर ठोढ़ी और मनोहर नासिका थी। उनका सम्पूर्ण वेष तपस्वियोंका था। वे अत्यन्त तेजस्वी, रूप-रंग और स्वभावमें एक-से थे। उन वरदाता तपस्वियोंके नाम थे—'नर और नारायण'।

अवतार ग्रहण करते ही अविनाशी नर-नारायण बदरिकाश्रममें चले गये। वहाँ वे गन्धमादन पर्वतपर एक विशाल वट-वृक्षके नीचे तपस्या करने लगे। भगवान् श्रीहरिके अंशावतार उन नर-नारायण नामक दोनों ऋषियोंने वहाँ रहकर एक सहस्र वर्षतक कठोर तपस्या की। उनके प्रचण्ड तपसे देवराज इन्द्र सशङ्क हो तुरंत गन्धमादन पर्वतपर पहुँचे। वहाँ उन्होंने परम पवित्र आश्रममें तपोभूमि भारतके आराध्य परम तेजस्वी भगवान् नर-नारायणको तपनिरत देखा।

'धर्मनन्दन! तुम दोनों अवश्य ही अत्यन्त भाग्यवान् हो।' सूर्यकी भाँति प्रकाश विकीर्ण करते हुए तपोधन नर-नारायणके समीप पहुँचकर शचीपतिने कहा। 'तुम दोनोंकी तपश्चर्यासे संतुष्ट होकर मैं तुम्हें वर देनेके लिये ही यहाँ आया हूँ। तुम अपना अभीष्ट बताओ। मैं उसे अवश्य पूर्ण करूँगा।'

इस प्रकार देवाधिप इन्द्रके सम्मुख खड़े होकर

बार-बार आग्रह करनेपर भी नर-नारायणने कोई उत्तर नहीं दिया। उनका चित्त सर्वथा शान्त एवं अविचलित रहा।

तब इन्द्रने उन्हें भयभीत करनेके लिये मायाका प्रयोग किया। भयानक झंझावात, प्रलयंकर वृष्टि एवं अग्निवर्षा प्रारम्भ हो गयी। भेड़िये और सिंह गरजने लगे; किंतु नर-नारायण सर्वथा शान्त थे। उनका चित्त किसी प्रकार भी विचलित नहीं हुआ। अनेक प्रकारकी मायाका प्रयोग किये जानेपर भी जब तपस्वियोंके सिरमौर नर-नारायण तपसे विरत नहीं हुए, तब इन्द्र निराश होकर लौट गये।

उन्होंने रम्भा, तिलोत्तमा, पुष्पगन्धा, सुकेशी और काञ्चनमालिनी आदि अप्सराओं और वसन्तके साथ कामदेवको प्रभु नर-नारायणको वशीभूत करनेके लिये भेजा। उक्त श्रेष्ठ पर्वत गन्धमादनपर वसन्तके पहुँचते ही आम, बकुल, तिलक, पलाश, साखू, ताड़, तमाल और महुआ आदि सभी वृक्ष पुष्पोंसे सुशोभित हो गये। कोयलें कूकने लगीं। सुगन्धित पवन मन्द गतिसे बहने लगा। इसके साथ ही रतिसहित पुष्पधन्वा भी वहाँ जा पहुँचे। रम्भा और तिलोत्तमा आदि संगीत-कलामें प्रवीण अप्सराओंने स्वर और तालमें गायन प्रारम्भ किया।

मधुर संगीत, कोयलोंका कलरव और भ्रमरोंकी गुंजारसे नर-नारायणकी समाधि टूट गयी। उन्होंने इसे

इन्द्रकी कुटिलता समझकर उन लोगोंसे कहा—'कामदेव, मलय पवन और देवाङ्गनाओ! तुमलोग आनन्दपूर्वक ठहरो। तुम सभी स्वर्गसे यहाँ आये हो, इसलिये हमारे अतिथि हो। हम तुम्हारा अद्भुत प्रकारसे आतिथ्य-सत्कार करनेके लिये तैयार हैं।'

भगवान्‌के शान्त वचन सुनकर काँपते हुए कामदेवके मनमें निर्भयता आयी। उन्होंने हाथ जोड़कर कहा—'प्रभो! आप मायासे परे, निर्विकार हैं। बड़े-बड़े आत्माराम और धीर पुरुष सदा आपके चरणकमलोंमें प्रणाम करते रहते हैं। प्रभो! क्रोध आत्मनाशक है, पर बड़े-बड़े तपस्वी उसके वश हो अपनी कठिन तपस्या खो बैठते हैं, किंतु आपके चरणोंका आश्रय लेनेवाला सदा निरापद जीवन व्यतीत करता है।'

कामदेव और वसन्त आदिकी इस प्रकारकी स्तुति सुनकर सर्वसमर्थ भगवान्‌ने वस्त्रालंकारोंसे अलंकृत, अद्भुत रूप-लावण्यसे सम्पन्न सहस्रों स्त्रियाँ प्रकट करके दिखलायीं, जो प्रभुकी सेवा कर रही थीं। जब इन्द्रके अनुचरोंने समुद्रतनया लक्ष्मीके समान अनुपम रूप-लावण्यकी राशि सहस्रों देवियोंको अत्यन्त श्रद्धापूर्वक प्रभुकी सेवा-पूजा करते देखा तो लज्जासे उनका सिर झुक गया। वे श्रीहत होकर उनके शरीरसे निकलनेवाली दिव्य सुगन्धसे मोहित हो गये।

'तुमलोग इनमेंसे किसी एक स्त्रीको, जो तुम्हारे अनुरूप हो, ग्रहण कर लो।' भक्तप्राण नारायणने मुस्कराते हुए कहा। 'वह तुम्हारे स्वर्गकी शोभा बढ़ायेगी।'

'जैसी आज्ञा!' कहकर उन सबने प्रभुके चरणोंमें प्रणाम किया और उनके द्वारा प्रकट की हुई स्त्रियोंमें सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी उर्वशीको लेकर वे स्वर्गलोक चले गये।

स्वर्गमें उन्होंने देवराज इन्द्रको प्रणाम कर देवदेवेश नर-नारायणकी महिमाका गान किया तो सुराधिप चकित, विस्मित और भयभीत हो गये।

पुराणपुरुष नर-नारायण स्वयं सर्वसमर्थ होकर भी सृष्टिमें तपश्चर्याका आदर्श स्थापित करनेके लिये निरन्तर कठोर तप करते रहते हैं। काम, क्रोध और मोहादि शत्रु तपके महान् विघ्न हैं। अहंकार और क्रोधके दोषसे तपका क्षय होता है—यह नर-नारायण प्रभुने अपने जीवनसे सिखाया है।

बात तबकी है, जब अपने पिता हिरण्यकशिपुके शरीरान्तके बाद भक्तवर प्रह्लाद भगवान् नृसिंहके आदेशसे पातालमें रहने लगे। वहीं उनकी राजधानी थी। वे अत्यन्त धर्मपूर्वक शासन करते थे। दानवराज प्रह्लाद देवता और ब्राह्मणोंके सच्चे भक्त थे। तपस्या करना, धर्मका प्रचार करना और तीर्थाटन करना—यही उस समयके ब्राह्मणोंका कार्य था। सभी वर्णोंके लोग स्वधर्मका पालन तत्परतापूर्वक करते थे।

एक बारकी बात है, तपस्वी भृगुनन्दन च्यवनजी पवित्र नर्मदाके तटपर व्याहृतीश्वर तीर्थमें स्नान करने चले। मार्गमें रेवा नदी मिली। महर्षि च्यवन उसके तटपर उतरने लगे कि एक भयानक विषधरने उन्हें पकड़ लिया। विषधरके प्रयाससे ही वे पातालमें पहुँच गये। विवश होकर ऋषि मन-ही-मन कमललोचन श्रीहरिका ध्यान करने लगे। ध्यान करते ही उनका सर्प-विष दूर हो गया और तपस्वी समझकर सर्पने भी भयवश उन्हें छोड़ दिया और शापभयसे नाग-कन्याएँ ऋषिकी पूजा करने लगीं।

इसके अनन्तर महर्षि च्यवन दानवों और नागोंकी पुरीमें जाकर वहाँका दृश्य देखने लगे।

'भगवन्! आप यहाँ कैसे पधारे?' दानवराज प्रह्लादकी उनपर दृष्टि पड़ी तो उन्होंने ऋषिकी विधिवत् पूजा की और फिर पूछा—'सुरेश्वर इन्द्र हमलोगोंसे शत्रुता रखते हैं। कहीं उन्होंने तो मेरा भेद लेनेके लिये आपको नहीं भेजा है? कृपापूर्वक सत्य बताइये।'

'राजन्! मैं भृगुका धर्मात्मा पुत्र च्यवन हूँ।' महर्षिने उत्तर दिया। 'मैं इन्द्रका दौत्य-कर्म क्यों करने लगा? आप श्रीविष्णुके भक्त हैं, मुझे भी वैसा ही समझिये।' और फिर उन्होंने अपने पातालपुरीमें प्रविष्ट होनेकी सारी घटना उन्हें बता दी।

ऋषिके उत्तरसे संतुष्ट होकर प्रह्लादजीने उनसे पृथ्वीके पवित्र तीर्थोंके सम्बन्धमें पूछा। महर्षि च्यवनके मुँहसे पृथ्वीके तीर्थोंका वर्णन सुनकर दानवेन्द्र प्रह्लादने नैमिषारण्य जानेका निश्चय कर लिया।

सहस्रों महाबली दैत्योंका समूह दानवराज प्रह्लादके

साथ नैमिषारण्य पहुँचा। वहाँ सबने स्नान किया। भक्तराज प्रह्लाद नैमिषारण्य तीर्थके कार्यक्रम पूरे कर रहे थे कि उन्हें कुछ ही दूरीपर एक विशाल वट-वृक्ष दिखायी दिया। वहाँ उन्होंने विभिन्न प्रकारके सुतीक्ष्ण शर देखे।

'इस परम पवित्र तीर्थमें धनुर्बाणधारी व्यक्तिका क्या काम?'

दानवेश्वर प्रह्लाद मनमें विचार कर ही रहे थे कि उन्हें सम्मुख कृष्ण-मृगचर्म धारण किये नर-नारायणके दर्शन हुए। उनकी अत्यन्त सुन्दर विशाल जटाएँ थीं। उनके सामने शार्ङ्ग और आजगव नामक दो चमकते हुए प्रसिद्ध धनुष तथा बाणपूरित तरकस रखे थे।

'तुमलोगोंने यह क्या पाखण्ड रच रखा है?' ध्यानमग्न धर्मनन्दन नर-नारायणको देखकर क्रोधसे नेत्र लाल किये भक्त प्रह्लादने कहा। 'उत्कट तप और धनुर्बाणधारण, ऐसा आश्चर्य तो कहीं नहीं देखा। इस प्रकारके आडम्बरसे धर्मकी क्षति होती है। तुम्हें तो धर्माचरण ही उचित है।'

'दानवेन्द्र! तुम हमारी तपस्याकी व्यर्थ चिन्ता मत करो।' नारायण बोले। 'युद्ध और तप—दोनोंमें हमारी गति है। ब्राह्मणोंकी व्यर्थ चर्चा उचित नहीं। तुम अपना मार्ग पकड़ो।'

'तपस्वियो! तुम्हें व्यर्थ अहंकार उचित नहीं।' दैत्येन्द्र प्रह्लादने कहा। 'मैं दैत्योंका राजा हूँ। धर्म-रक्षा मेरा कर्त्तव्य है। मेरे रहते इस पावन क्षेत्रमें तुम्हारा यह आचरण उचित नहीं। यदि तुम्हारे पास ऐसी कोई शक्ति है तो रणभूमिमें उसका प्रदर्शन करो।'

'तुम्हारी इस इच्छाकी पूर्ति हो जायगी।' भगवान् नरने तुरंत उत्तर दिया। 'युद्धमें तुम मेरे सामने आ जाओ।'

'यद्यपि इन्द्रियजयी नर-नारायण कठोर तपस्वी हैं' अत्यन्त क्रुद्ध होकर अप्रतिम बलशाली वीर प्रह्लादने प्रतिज्ञा की—'तथापि मैं इन तपस्वियोंको अवश्य पराजित करूँगा।'

प्रह्लादने धनुष उठा लिया और नरसे भयानक संग्राम होने लगा। पीछे नारायणने भी युद्धमें भाग लिया। दोनों पक्ष एक-दूसरेपर भयानक अस्त्रोंका प्रहार करते रहे। उनका यह युद्ध इन्द्रसहित कितने ही देवता आकाशमें विमानपर बैठे चकित हो देख रहे थे। विश्ववन्द्य नर-नारायण तथा दानवकुलभूषण प्रह्लादका युद्ध देवताओंके एक हजार वर्षतक चलता रहा, पर कोई पक्ष विचलित नहीं हुआ।

अन्ततः लक्ष्मीसहित शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म धारण किये, नवजलधरश्याम श्रीविष्णु प्रह्लादके आश्रमपर पधारे। श्रीभगवान्‌के चरणोंमें श्रद्धा-भक्तिपूर्ण प्रणाम और उनकी स्तुति कर भक्त प्रह्लादने भगवान् रमापतिसे कहा—'भक्तवाञ्छाकल्पतरु प्रभो! तपस्वियोंसे दीर्घकालतक युद्ध करते रहनेपर भी मेरी विजय न होनेका हेतु समझमें नहीं आता। मैं अत्यन्त चकित हूँ।'

'इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है।' भगवान् विष्णुने उत्तर दिया। 'विख्यात जितात्मा तपस्वी नर और नारायण मेरे अंशावतार हैं। तुम इन्हें किसी प्रकार भी पराजित नहीं कर सकते। अतएव मुझमें भक्ति रखते हुए पाताल चले जाओ। इन परमादर्श महातपस्वियोंका विरोध उचित नहीं।'

प्रभुका आदेश पाकर दैत्येन्द्र प्रह्लाद असुर-यूथोंके साथ अपनी राजधानीके लिये प्रस्थित हुए और नर-नारायण अपनी तपश्चर्यामें लग गये।

× × ×

बात उस समयकी है, जब नर-नारायणने धर्ममय रथपर आरूढ़ होकर गन्धमादन पर्वतपर दीर्घकालीन महान् तप किया था। उसी समय प्रजापति दक्षने भी यज्ञ प्रारम्भ किया। उक्त यज्ञमें रुद्रको भाग न देनेके कारण दधीचिके कहनेसे रुद्रने अत्यन्त क्रुद्ध होकर दक्षका यज्ञ विध्वंस करनेके लिये अपना प्रज्वलित त्रिशूल फेंका। यह तीक्ष्ण त्रिशूल दक्ष-यज्ञका विनाश करते हुए अत्यन्त वेगसे बदरिकाश्रममें जाकर नारायणके वक्षमें लगा। उस प्रज्वलित त्रिशूलकी लपटसे नारायणकी जटा मूँजके रंगकी हो गयी। इससे उनका नाम 'मुञ्जकेश' हुआ।

देवेश नारायणके हुंकारसे प्रतिहत होकर वह त्रिशूल भगवान् शिवके हाथमें वापस चला गया। इसपर रुद्र अत्यन्त क्रुद्ध हुए और तप करते हुए नर-नारायणपर टूट पड़े।

तपस्विश्रेष्ठ नारायणने रुद्रके आकस्मिक आक्रमणसे क्षुब्ध हुए बिना ही रुद्रका कण्ठ पकड़ लिया। इससे उनका कण्ठ नीला पड़ गया और रुद्र 'नीलकण्ठ' नामसे प्रख्यात हुए।

फिर नरने एक अभिमन्त्रित सींक रुद्रपर छोड़ी। वह सींक एक विशाल तीक्ष्ण परशुके रूपमें परिणत हो गयी, पर उसे रुद्रने खण्डित कर दिया। इस कारण उनका नाम 'खण्डपरशु' हुआ।

श्रीनारायण और रुद्रके भयानक युद्धसे त्रैलोक्य काँपने लगा। भयानक अपशकुन प्रकट होनेपर पद्मयोनि विधाता वहाँ पहुँचे और रुद्रकी स्तुति करते हुए उन्होंने कहा—

नरो नारायणश्चैव जातौ धर्मकुलोद्वहौ।
तपसा महता युक्तौ देवश्रेष्ठौ महाव्रतौ॥
अहं प्रसादजस्तस्य कुतश्चित् कारणान्तरे।
त्वं चैव क्रोधजस्तात पूर्वसर्गे सनातनः॥
मया च सार्धं वरद विबुधैश्च महर्षिभिः।
प्रसादयाशु लोकानां शान्तिर्भवतु मा चिरम्॥

(महा०, शान्ति० ३४२। १२७—१२९)

'धर्मकुलमें उत्पन्न हुए ये दोनों महाव्रती देवश्रेष्ठ नर और नारायण महान् तपस्यासे युक्त हैं। किसी निमित्तसे उन्हीं नारायणके कृपाप्रसादसे मेरा जन्म हुआ है। तात! आप भी पूर्व सर्गमें उन्हीं भगवान्‌के क्रोधसे उत्पन्न हुए सनातन पुरुष हैं। वरद! आप देवताओं और महर्षियों तथा मेरे साथ शीघ्र इन भगवान्‌को प्रसन्न कीजिये, जिससे सम्पूर्ण जगत्‌में शीघ्र ही शान्ति स्थापित हो।'

ब्रह्माकी वाणी सुनकर रुद्र सर्वसमर्थ नारायणको प्रसन्न कर उनकी शरणमें गये। वरदायक नारायणने प्रसन्न होकर रुद्रका प्रेमालिङ्गन करते हुए कहा—'प्रभो! मेरी भक्ति करनेवाला आपका भक्त है और आपको संतुष्ट करनेवाला मुझे तुष्ट करता है। मुझमें और आपमें कोई अन्तर नहीं। हम दोनों एक ही हैं।'*

फिर आदिदेव नारायणने कहा—'मेरे वक्षमें आपके शूलका यह चिह्न आजसे 'श्रीवत्स' के नामसे प्रसिद्ध होगा और आपके कण्ठमें मेरे हाथका चिह्न अङ्कित होनेके कारण आप 'श्रीकण्ठ' कहे जायँगे।'

इस प्रकार भगवान् नारायणने रुद्रदेवको संतुष्ट कर उन्हें विदा किया और स्वयं तपश्चरणमें लग गये।

परम तपस्वी देवाधिदेव नर-नारायणने देवताओंकी सहायताके लिये भी रणाङ्गणमें अपने अद्भुत युद्धकौशल तथा अनुपम शूरताका परिचय दिया था। उनके युद्धमें प्रवेश करते ही दैत्यकुलमें हाहाकार मच गया था।

समुद्र-मन्थनके पश्चात् जब अमृत असुरोंके हाथसे निकल गया, तब वे अत्यन्त कुपित हुए और संगठित होकर देवताओंसे संग्राम करने लगे। क्षीरसागरके तटपर भयानक युद्ध छिड़ा। देवता और दैत्योंमें प्रचण्ड युद्ध हो ही रहा था कि उनकी सहायताके लिये भगवान् विष्णुके दोनों रूप नर और नारायण भी समर-क्षेत्रमें आ गये। भगवान् नरके हाथमें दिव्य धनुष और सुतीक्ष्ण शर देखकर नारायणने सुदर्शनचक्रका स्मरण किया। देवताओंके साथ नर-नारायणके प्रबल आक्रमणसे दैत्यकुल छटपटाकर मृत्यु-मुखमें जाने लगा। दैत्य अत्यन्त कुपित होकर देवताओंपर आकाशसे पर्वतों एवं विशाल शिलाखण्डोंकी वृष्टि करने लगे। उक्त पर्वतों एवं शिलाओंके वर्षणसे वनोंसहित धरती काँपने लगी और देवता व्याकुल एवं निराश होने लगे।

तब भगवान् नरने सुवर्ण-भूषित अग्रभागवाले पंखयुक्त तीक्ष्ण शरोंसे पर्वतों एवं शिलाखण्डोंको चूर-चूर कर दिया। सम्पूर्ण आकाश तेजस्वी नरके बाणोंसे आच्छादित हो गया और प्रज्वलित विशाल अग्निपिण्डकी भाँति सुदर्शनचक्रसे भस्म होते हुए दैत्य अपने प्राण लेकर खारे समुद्रमें प्रवेश कर गये।

इस विजयसे देवता बड़े प्रसन्न हुए। देवताओंसहित सुरेन्द्रने अमृतकी निधि रक्षाकी दृष्टिसे भगवान् नरके हाथोंमें दे दी।

× × ×

क्रोधादि वृत्तियोंसे रहित होकर भगवान् नर-नारायण सदा तपमें ही लगे रहते हैं। तपस्याकी अद्भुत शक्तिका आदर्श वे भूमण्डलके मनुष्योंके सम्मुख रखते हैं, किंतु कभी-कभी शिक्षा देनेके लिये भी उन्हें युद्ध करना पड़ता है।

* यस्त्वां वेत्ति स मां वेत्ति यस्त्वामनु स मामनु। नावयोरन्तरं किञ्चिन्मा तेऽभूद् बुद्धिरन्यथा॥ (महा०, शान्तिपर्व ३४२। १३३)

बहुत पहलेकी बात है। दण्डोद्भव नामक एक प्रख्यात सम्राट् थे। सम्पूर्ण पृथ्वी-मण्डलपर उनका राज्य था। वे प्रबल पराक्रमी नरेश थे, किंतु अपने राज्य एवं शक्तिका उन्हें अत्यन्त अहंकार और मद हो गया था।

'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रमें क्या कोई ऐसा शूर-वीर है' सम्राट् दण्डोद्भव अत्यन्त गर्वोन्मत्त होकर ब्राह्मणोंसे प्रश्न करते—'जो युद्धमें मेरी समता कर सके?'

'राजन्! दो ऐसे श्रेष्ठ पुरुष हैं, जिन्होंने अनेक प्रख्यात योद्धाओंको पराजित किया है।' ब्राह्मणोंके बार-बार ऐसा उत्तर देनेपर भी धन-वैभवके मदसे मत्त नरेशके प्रतिदिन प्रश्न करनेपर कुपित होकर ब्राह्मणोंने उत्तर दिया। 'आप उनकी तुलनामें नगण्य सिद्ध होंगे।'

'वे दोनों वीर कौन हैं?' क्रोध छिपाते हुए दण्डोद्भवने पूछा। 'वे कहाँ रहते हैं और क्या करते हैं?'

ब्राह्मणोंने उत्तरमें कहा—

नरो नारायणश्चैव तापसाविति नः श्रुतम्।
आयातौ मानुषे लोके ताभ्यां युध्यस्व पार्थिव॥
श्रूयेते तौ महात्मानौ नरनारायणावुभौ।
तपो घोरमनिर्देश्यं तप्येते गन्धमादने॥

(महा०, उद्योग० ९६। १४-१५)

'भूपाल! हमने सुना है कि वे नर-नारायण नामके तपस्वी हैं और इस समय मनुष्यलोकमें आये हैं। तुम उन्हीं दोनोंके साथ युद्ध करो। सुना है, वे दोनों महात्मा नर और नारायण गन्धमादन पर्वतपर ऐसी घोर तपस्या कर रहे हैं, जिसका वाणीद्वारा वर्णन नहीं हो सकता।'

गर्वोन्मत्त नरेश दुर्गम गिरिको लाँघते हुए, शस्त्रसज्ज हो, गन्धमादन पर्वतपर उन दोनों महान् तपस्वियोंके समीप ससैन्य पहुँचे। अत्यन्त कठोर तपके कारण उन दोनों महात्माओंका शरीर अत्यन्त कृश हो गया था। उनके समीप जाकर नरेशने उनके चरणोंमें प्रणाम किया।

भगवान् नर-नारायणने राजाका स्वागत करते हुए उन्हें आसन, जल एवं फल प्रदानकर भोजनके लिये आमन्त्रित करते हुए अत्यन्त विनयपूर्वक मधुर वाणीमें कहा—'हम आपकी क्या सेवा करें?'

'मैंने अपने बाहुबलसे पृथ्वीके समस्त नरेशोंको पराजित कर दिया है।' राजा दण्डोद्भवने अपना परिचय देते हुए यात्राका उद्देश्य स्पष्ट किया। 'मैंने अपने शत्रुओंका विनाश कर डाला है। अब आपसे युद्धकी इच्छा लेकर इतनी दूर दुर्गम गिरिपर आया हूँ। आप अतिथि-सत्कारके रूपमें मेरा यह मनोरथ पूर्ण कीजिये।'

'राजन्! यह तपोभूमि है और हम क्रोध-लोभसे रहित हो यहाँ तप करते हैं।' नर-नारायणने अतिथि नरेशको उत्तर दिया। 'इस विशाल वसुन्धरापर कितने ही शूर-वीर क्षत्रिय होंगे। आप उन्हींके पास जाकर अपनी युद्धकी पिपासा शान्त कर लें। हमें शान्तिपूर्वक तपश्चरणमें लगे रहने दें।'

'मुझे आपसे ही युद्ध अभीष्ट है।' नर-नारायणके बार-बार क्षमा-याचना करते रहनेपर भी सम्राट् दण्डोद्भवने उन्हें युद्धके लिये प्रेरित करते हुए कहा—'आप व्यर्थका बहाना न कर मुझे युद्धका दान दें।'

'युद्धलोलुप नरेश! तू नहीं मानता तो अस्त्र-शस्त्रसहित अपनी सम्पूर्ण सेनाओंको ले आ।' महात्मा नरने हाथमें एक मुट्ठी सींक लेकर कहा। 'अहंकारसे मत्त होकर तू सबको ललकारता फिरता है, अतएव मैं तेरी युद्ध-कामनाकी पूर्ति किये देता हूँ।'

'आप एक मुट्ठी सींकसे ही युद्ध करना चाहते हैं?' दण्डोद्भवने कहा। 'तथापि मुझे आपसे युद्ध करना ही है। इसीलिये मैं इतनी दूरसे आया हूँ। मैं आपके साथ युद्ध अवश्य करूँगा।'

और सम्राट् दण्डोद्भव उन महातपस्वियोंको पराजित करनेके उद्देश्यसे उनपर अपने तीक्ष्ण शरोंकी वर्षा करने लगे। वे बाण निश्चय ही शत्रु-संहार करनेमें समर्थ थे; किंतु प्रभु नरने उन्हें सींकोंसे ही नष्ट कर दिया तथा राजाके ऊपर अचूक ऐषीकास्त्रका प्रयोग किया। इस प्रकार भगवान् नरने सींकोंसे ही सम्राट् दण्डोद्भवके नेत्र, नासिका और कान तथा सम्पूर्ण अङ्गोंको बींध डाला। दण्डोद्भवने देखा—अन्तरिक्ष सींकोंसे आच्छादित होकर उज्ज्वल हो गया है, तब अत्यन्त लज्जाके साथ प्रभुके चरणोंमें गिरकर नरेशने कहा—'भगवन्! क्षमा करें। मैं आपके शरण हूँ। मेरा कल्याण कीजिये।'

क्षत्रिय-धर्म और राजनीतिके अनुसार विनीत-बुद्धि, लोभशून्य, अहंकाररहित, जितेन्द्रिय, क्षमाशील, कोमल-स्वभाव तथा सौम्य होकर प्रजापालनका उपदेश देते हुए भगवान् नरने दण्डोद्भवसे कहा—

अनुज्ञातः स्वस्ति गच्छ मैवं भूयः समाचरेः।
कुशलं ब्राह्मणान् पृच्छेरावयोर्वचनाद् भृशम्॥

(महा०, उद्योग० ९६। ३८)

'मैंने तुम्हें आज्ञा दे दी; तुम्हारा कल्याण हो। जाओ, फिर ऐसा बर्ताव न करना। विशेषतः हम दोनोंके कहनेसे तुम ब्राह्मणोंसे उनका कुशल-समाचार पूछते रहना।'

सम्राट् दण्डोद्भवने श्रद्धा-भक्तिपूर्वक श्रीनर-नारायणके चरणोंमें प्रणाम किया और अपनी राजधानीमें लौटकर अहंकार-शून्य चित्तसे धर्मपूर्वक शासन करने लगे।

× × ×

एक बार आदिदेव नर-नारायणके दर्शनार्थ देवर्षि नारद गन्धमादन पर्वतपर पहुँचे। देवता और पितरोंका पूजन करनेके अनन्तर जब भगवान् नर-नारायणने देवर्षि नारदको देखा तो शास्त्रोक्त विधिसे उनकी पूजा की।

शास्त्रधर्मके विस्तार और इस आश्चर्यपूर्ण व्यवहारसे अत्यन्त प्रसन्न होकर नारदजीने भगवान् नर-नारायणके चरणोंमें प्रणाम किया।

'प्रभो! सम्पूर्ण वेद, शास्त्र और पुराण आपकी ही महिमाका गान करते हैं।' नारायण-भक्त श्रीनारदजीने श्रद्धापूर्वक निवेदन किया। 'आप अजन्मा, सनातन और निखिल प्राणि-जगत्के माता-पिता हैं। आप ही जगद्गुरु हैं। सम्पूर्ण देवता तथा मनुष्य आपकी ही उपासना करते हैं, फिर आप किसकी पूजा करते हैं, समझमें नहीं आता। बतलानेकी कृपा कीजिये।'

'ब्रह्मन्! यह अत्यन्त गोपनीय विषय है।' श्रीभगवान् बोले। 'यह सनातन रहस्य किसीसे कहनेयोग्य नहीं, किंतु तुम्हारे-जैसे अत्यन्त प्रेमी भक्तसे छिपाना भी उचित नहीं। अतएव मैं तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो।' श्रीभगवान्ने आगे कहा—

तां योनिमावयोर्विद्धि योऽसौ सदसदात्मकः।
आवाभ्यां पूज्यतेऽसौ हि दैवे पित्र्ये च कल्प्यते॥
नास्ति तस्मात् परोऽन्यो हि पिता देवोऽथ वा द्विज।
आत्मा हि नः स विज्ञेयस्ततस्तं पूजयावहे॥
दैवं पित्र्यं च सततं तस्य विज्ञाय तत्त्वतः।
आत्मप्राप्तानि च ततः प्राप्नुवन्ति द्विजोत्तमाः॥

(महा०, शान्ति० ३३४। ३२-३३, ३८)

'वह सदसत्स्वरूप परमात्मा ही हम दोनोंकी उत्पत्तिका कारण है—इस बातको जान लो। हम दोनों उसीकी पूजा करते तथा उसीको देवता और पितर मानते हैं। ब्रह्मन्! उससे बढ़कर दूसरा कोई देवता या पितर नहीं है। वे ही हमलोगोंकी आत्मा हैं, यह जानना चाहिये; अतः हम उन्हींकी पूजा करते हैं। ····श्रेष्ठ द्विज उसीके उद्देश्यसे किये जानेवाले देवता तथा पितृ-सम्बन्धी कार्योंको ठीक-ठीक जानकर अपनी अभीष्ट वस्तुओंको प्राप्त कर लेते हैं।'

'आपने कृपापूर्वक गोपनीय विषय भी मुझपर प्रकट कर दिया, इसके लिये मैं आपका चिरकृतज्ञ रहूँगा।' नारदजीने कहा। 'मुझे आपकी कृपाका ही सहारा है। अब मैं श्वेतद्वीपस्थित आपके आदिविग्रहका दर्शन करना चाहता हूँ। आप आज्ञा प्रदान करें।'

भगवान् नारायणने श्रीनारदजीकी पूजा की और फिर उन्हें वहाँ जानेकी आज्ञा दे दी।

कुछ दिनोंके अनन्तर ब्रह्मपुत्र नारदजी जब अत्यन्त अद्भुत श्वेतद्वीपका तथा प्रभुका दुर्लभ दर्शन करके लौटे, तब पुनः गन्धमादन पर्वतपर भगवान् नर-नारायणके समीप पहुँचे। वे भगवान् नर-नारायणके परम तेजस्वी अद्भुत रूपका दर्शन कर कृतार्थताका अनुभव करते हुए सोचने लगे—'अरे, मैंने श्वेतद्वीपमें भगवान्की सभाके भीतर जिन सर्वभूतवन्दित सदस्योंका दर्शन किया था, ये दोनों श्रेष्ठ ऋषि भी तो वैसे ही हैं।'

भगवान् नर-नारायणने नारदजीका स्वागत कर उनका कुशल-समाचार पूछा। नारदजीने अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिसे भगवान् नर-नारायणकी परिक्रमा की और उनके सम्मुख एक कुशासनपर बैठे। भगवान् नर-नारायण भी पाद्यार्घ्यादिसे नारदजीका पूजन कर उनके सामने अपने-अपने आसनोंपर बैठ गये।

'देवर्षे!' नर-नारायणने अत्यन्त मधुर वाणीमें नारदजीसे पूछा—'तुमने श्वेतद्वीपमें जाकर हम दोनोंके कारणरूप परब्रह्म परमेश्वरका दर्शन कर लि—?'

'भगवन्! अत्यन्त दया कर विश्वरूपधारी, अविनाशी परम पुरुषने मुझे अपना परम दुर्लभ दर्शन दिया। निखिल ब्रह्माण्ड उन अचिन्त्य, अनन्त, अपरिसीम, महामहिम परमात्मामें ही स्थित है।' श्रीनारदजीने कहा। श्रीभगवान्‌ने मुझे सम्पूर्ण धर्म, क्षेत्रज्ञ एवं भावी अवतारोंके सम्बन्धमें भी बताया था। और प्रभो!

अद्यापि चैनं पश्यामि युवां पश्यन् सनातनौ॥
यैर्लक्षणैरुपेतः स हरिरव्यक्तरूपधृक्।
तैर्लक्षणैरुपेतौ हि व्यक्तरूपधरौ युवाम्॥

(महा०, शान्ति ३४३। ४८-४९)

'मैं इस समय भी आप दोनों सनातन पुरुषोंको देखकर यहाँ श्वेतद्वीपनिवासी भगवान्‌की झाँकी कर रहा हूँ। वहाँ मैंने अव्यक्तरूपधारी श्रीहरिको जिन लक्षणोंसे सम्पन्न देखा था, आप दोनों व्यक्तरूपधारी पुरुष भी उन्हीं लक्षणोंसे सुशोभित हैं।'

इसके अनन्तर नारदजीने कहा—'इतना ही नहीं, उन परमात्माके समीप मैंने आप दोनों महापुरुषोंको भी देखा था और उन परम प्रभुके आदेशसे ही मैं यहाँ पुनः आपके समीप आया हूँ। त्रैलोक्यमें उन महाप्रभुके सदृश आपके सिवा अन्य कोई नहीं दीखता।'

'तुमपर श्रीभगवान्‌का बड़ा अनुग्रह है, जो उन्होंने तुम्हें अपना दर्शन दे दिया' नर-नारायण बोले। 'परमात्माके उक्त स्थलमें हम दोनोंके अतिरिक्त तुम्हारे पिता कमलयोनि ब्रह्माके भी प्रवेशका अधिकार नहीं है। उन प्रभुको भक्तके समान और कोई प्रिय नहीं। अपने मनको एकाग्र कर लेनेवाले शौच-संतोष आदि नियमोंसे सम्पन्न, जितेन्द्रिय भक्त ही अनन्यभावसे उनके चरणकमलोंकी शरण ग्रहणकर उन वासुदेवमें प्रवेश करते हैं। हम दोनों धर्मके यहाँ अवतार ग्रहणकर इस बदरिकाश्रममें कठोर तपश्चर्यामें लगे हैं।'

ये तु तस्यैव देवस्य प्रादुर्भावाः सुरप्रियाः।
भविष्यन्ति त्रिलोकस्थास्तेषां स्वस्तीत्यथो द्विज॥

(महा०, शान्ति ३४४। २१)

'ब्रह्मन्! उन्हीं भगवान् परमदेव परमात्माके तीनों लोकोंमें जो देवप्रिय अवतार होनेवाले हैं, उनका सदा ही परम मङ्गल हो—यही हमारी इस तपस्याका उद्देश्य है।'

भगवान् नर-नारायणने आगे कहा—'ब्रह्मन्! तुमने श्वेतद्वीपमें भगवान्‌के दर्शन और उनसे वार्तालाप किया, यह सब हमें विदित है।'

नर और नारायणकी यह बात सुनकर नारदजी उनके चरणोंमें गिर पड़े और फिर वहीं उनके चरणोंमें रहकर भगवान् वासुदेवकी एवं नर-नारायणकी आराधनामें लग गये। उन्होंने नारायण-सम्बन्धी अनेक मन्त्रोंका जप करते हुए भगवान् नर-नारायणके पवित्रतम आश्रममें एक हजार दिव्य वर्षोंतक निवास किया।

× × ×

द्वापरमें भू-भारहरण करनेके लिये अवतरित होनेवाले कमलनयन श्रीकृष्ण और उनके प्राणप्रिय सखा पाण्डुनन्दन अर्जुनके रूपमें भगवान् नर-नारायणने ही अवतार ग्रहण किया था। द्वारकामें ब्राह्मणके मृतपुत्रोंको लानेके लिये जब मधुसूदन कुन्तीपुत्र अर्जुनके साथ शेषशायी अनन्त भगवान्‌के पास पहुँचे, तब ब्राह्मणके मृतपुत्रोंको लौटाते हुए उन्होंने स्वयं उन दोनोंसे कहा था—

द्विजात्मजा मे युवयोर्दिदृक्षुणा
मयोपनीता भुवि धर्मगुप्तये।
कलावतीर्णाववनेर्भरासुरान्
हत्वेह भूयस्त्वरयेतमन्ति मे॥
पूर्णकामावपि युवां नरनारायणावृषी।
धर्ममाचरतां स्थित्यै ऋषभौ लोकसंग्रहम्॥

(श्रीमद्भा० १०। ८९। ५९-६०)

'श्रीकृष्ण और अर्जुन! मैंने तुम दोनोंको देखनेके लिये ही ब्राह्मणके बालक अपने पास मँगा लिये थे। तुम दोनोंने धर्मकी रक्षाके लिये मेरी कलाओंके साथ पृथ्वीपर अवतार ग्रहण किया है; पृथ्वीके भाररूप दैत्योंका संहार करके शीघ्र-से-शीघ्र तुमलोग फिर मेरे पास लौट आओ। तुम दोनों ऋषिवर नर और नारायण हो। यद्यपि तुम पूर्णकाम और सर्वश्रेष्ठ हो, फिर भी जगत्‌की स्थिति और लोक-संग्रहके लिये धर्मका आचरण करो।'

× × ×

कौरवोंकी सभामें जब दुश्शासन द्रौपदीका वस्त्र खींचने जा रहा था, उस समय लाज बचानेके लिये द्रौपदीने श्रीकृष्णके साथ भगवान् नरको पुकारा था—

'कृष्णं च विष्णुं च हरिं नरं च त्राणाय विक्रोशति याज्ञसेनी।'

(महा०, सभा० ६८। ४६)

'यज्ञसे उत्पन्न हुई कृष्णा अपनी रक्षाके लिये श्रीकृष्ण, विष्णु, हरि और नर आदि भगवन्नामोंको जोर-जोरसे पुकार रही थी।'

अन्तकालमें जिनके प्राणोंका निष्क्रमण ग्रीवासे होता है, वे भाग्यवान् ऋषियोंमें परमोत्तम नरकी संनिधि-लाभ करते हैं—

'ग्रीवया तु मुनिश्रेष्ठं नरमाप्नोत्यनुत्तमम्।'

(महा०, शान्ति० ३१७। ५)

भगवान् नर-नारायणका अवतार कल्पपर्यन्त तपश्चर्याके लिये हुआ है। वे प्रभु आज भी बदरिकाश्रममें तप कर रहे हैं। अधिकारी पुरुष उनके दर्शन भी प्राप्त कर सकते हैं।

(५) भगवान् कपिलमुनि

नान्यत्र मद्भगवतः प्रधानपुरुषेश्वरात्।
आत्मनः सर्वभूतानां भयं तीव्रं निवर्तते॥

(श्रीमद्भा० ३। २५। ४१)

'मैं साक्षात् भगवान् हूँ, प्रकृति और पुरुषका भी प्रभु हूँ तथा समस्त प्राणियोंका आत्मा हूँ, मेरे सिवा और किसीका आश्रय लेनेसे मृत्युरूप महाभयसे छुटकारा नहीं मिल सकता।'—भगवान् कपिल

सृष्टिके प्रारम्भिक पाद्मकल्पके स्वायम्भुव मन्वन्तरकी बात है। लोकपितामह चतुराननको सृष्टिसंवर्द्धनकी ही चिन्ता थी। उन्होंने स्वायम्भुव मनुको शतरूपासे विवाह करनेकी प्रेरणा की। तदनन्तर स्रष्टाने अपने मानसपुत्र महर्षि कर्दमको भी प्रजा-वृद्धिका आदेश दिया। महर्षि कर्दमने पिताकी आज्ञा स्वीकार की और बिन्दुसरतीर्थपर जाकर तप करने लगे। वे अपनी चित्तवृत्तियोंको एकाग्र कर धारणा-ध्यानसे ऊपर समाधिमें स्थित होकर त्रैलोक्यवन्दित शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी श्रीहरिके भुवनमोहन सौन्दर्यका दर्शन कर आप्यायित हो रहे थे। उन्हें बाह्य जगत्का किंचित् भी ज्ञान नहीं था। इस प्रकार दस सहस्र वर्ष व्यतीत होनेपर अचानक महर्षिके हृदयसे उनकी प्राणप्रिय ध्यानमूर्ति अदृश्य हो गयी। व्याकुलतासे उनके नेत्र खुले तो वे धन्यातिधन्य, परम कृतार्थ हो गये। महर्षि कर्दमके सम्मुख उनकी ध्यानकी वही मूर्ति, उनके वे ही परम ध्येय नीलोत्पलदलश्याम, पीताम्बरधारी श्रीहरि उनके सम्मुख प्रत्यक्ष खड़े मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे। महर्षि प्रभुके चरणकमलोंमें दण्डकी भाँति लोट गये और फिर हाथ जोड़कर प्रेमपूर्ण हृदयसे अत्यन्त मधुर वाणीमें स्तुति करते हुए कहने लगे—

तथा स चाहं परिवोढुकामः
समानशीलां गृहमेधधेनुम्।
उपेयिवान्मूलमशेषमूलं
दुराशयः कामदुघाङ्घ्रिपस्य॥
तं त्वानुभूत्योपरतक्रियार्थं
स्वमायया वर्तितलोकतन्त्रम्।
नमाम्यभीक्ष्णं नमनीयपाद-
सरोजमल्पीयसि कामवर्षम्॥

(श्रीमद्भा० ३। २१। १५, २१)

'प्रभो! आप कल्पवृक्ष हैं। आपके चरण समस्त मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले हैं। मेरा हृदय काम-कलुषित है। मैं भी अपने अनुरूप स्वभाववाली और गृहस्थ-धर्मके पालनमें सहायक शीलवती कन्यासे विवाह करनेके लिये आपके चरणकमलोंकी शरणमें आया हूँ। नाथ! आप स्वरूपसे निष्क्रिय होनेपर भी मायाके द्वारा सारे संसारका व्यवहार चलानेवाले हैं तथा थोड़ी-सी उपासना करनेवालेपर भी समस्त अभिलषित वस्तुओंकी वर्षा करते रहते हैं। आपके चरणकमल वन्दनीय हैं, मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ।'

'मुने! जिसके लिये तुम दीर्घकालसे मेरी आराधना कर रहे हो, वह अवश्य पूरी होगी।' भक्त-प्राणधन श्रीहरिने मुस्कराते हुए कर्दमजीसे कहा। सप्तद्वीपा वसुन्धराके यशस्वी सम्राट् स्वायम्भुव मनु ब्रह्मावर्तमें रहकर पृथ्वीका

शासन करते हैं। वे परसों ही अपनी रूप-यौवन-गुण-शील-सम्पन्ना देवहूति नामक कन्याको लेकर अपनी साध्वी पत्नी शतरूपाके साथ यहाँ आयेंगे। वह राजकन्या सर्वथा तुम्हारे योग्य है। महाराज स्वायम्भुव मनु उसे तुम्हें सविधि अर्पण कर देंगे। उस महिमामयी आदर्श देवीकी कोखसे नौ कन्याएँ उत्पन्न होंगी। वे कन्याएँ मरीच्यादि ऋषियोंसे विवाहित होकर स्रष्टाके अभीष्ट सृष्टि-संवर्द्धनमें सहायक होंगी। इसके अनन्तर सर्वान्तर्यामी, सर्वसमर्थ, करुणावरुणालय प्रभुने कहा—

त्वं च सम्यगनुष्ठाय निदेशं म उशत्तमः।
मयि तीर्थीकृताशेषक्रियार्थो मां प्रपत्स्यसे॥
सहाहं स्वांशकलया त्वद्वीर्येण महामुने।
तव क्षेत्रे देवहूत्यां प्रणेष्ये तत्त्वसंहिताम्॥

(श्रीमद्भा० ३। २१। ३०, ३२)

'तुम भी मेरी आज्ञाका अच्छी तरह पालन करनेसे [शु]द्धचित्त हो फिर अपने सब कर्मोंका फल मुझे अर्पणकर [मु]झको ही प्राप्त होओगे। महामुने! मैं भी अपने अंश-[क]लारूपसे तुम्हारे वीर्यद्वारा तुम्हारी पत्नी देवहूतिके गर्भसे [अ]वतीर्ण होकर सांख्यशास्त्रकी रचना करूँगा।'

इतना कहकर श्रीहरि गरुडारूढ़ हो स्वधाम पधारे [औ]र महर्षि कर्दम वहीं बिन्दुसरपर महाराज स्वायम्भुव [म]नुके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे। उस समय पुष्प एवं [फ]लोंके भारसे लदे पवित्र वृक्ष-लताओंसे घिरे बिन्दुसरकी [अ]द्भुत शोभा हो रही थी। वहाँ अनेक प्रकारके सुन्दर [प]क्षी निर्द्वन्द्व होकर प्रसन्नतापूर्वक कलरव कर रहे थे।

आदिराज महाराज मनु अपनी भाग्यशालिनी पुत्री [दे]वहूतिके साथ उक्त परम पावन तीर्थमें पहुँचे तो उन्होंने [अ]ग्निहोत्रसे निवृत्त हुए महामुनि कर्दमको देखा। वे तपकी [स]जीव मूर्ति, जटा-जूटमण्डित तप्तकाञ्चनकाय ऋषिको [दे]खकर आनन्दविह्वल हो गये और उन्होंने उनके चरणोंमें [प्र]णाम किया। महर्षिने आशीर्वाद देकर उनसे आश्रममें [आ]नेका हेतु जानना चाहा।

'मुने! यह प्रियव्रत और उत्तानपाद—नामक दो [ब]न्धुओंकी बहन मेरी प्राणप्रिया पुत्री देवहूति है।' महाराज [स्]वायम्भुव मनुने निवेदन किया। 'इसने देवर्षि नारदके [मु]खसे आपके रूप, आयु, विद्या, शील एवं तप आदिका वर्णन सुनकर आपको पतिरूपमें प्राप्त करनेका निश्चय कर लिया है। मैं अत्यन्त आदर एवं श्रद्धाके साथ इसे आपके करकमलोंमें समर्पित करने आया हूँ।'

'मैं परम प्रतापी महाराज स्वायम्भुव मनुकी परम लावण्यमयी, सर्वसद्गुणसम्पन्ना पवित्र कन्याका पाणिग्रहण अवश्य करूँगा।' महर्षिने स्पष्ट शब्दोंमें उत्तर दिया। 'और जबतक इसके संतान नहीं हो जायगी, तबतक मैं गृहस्थ-धर्मका पालन भी करूँगा; किंतु संतान होनेके बाद मैं परम पिता परमात्माको प्रसन्न करनेके लिये तपश्चरणार्थ वनमें चला जाऊँगा। इसे आप समझ लें।'

यह कहकर महर्षि कर्दम मौन हो गये। पर अपनी पुत्री देवहूतिकी प्रसन्नताका अनुभव कर महाराज स्वायम्भुव मनु और शतरूपाने उसका वहीं महर्षिके साथ सविधि विवाह कर दिया और वस्त्राभूषण तथा पात्र आदि अत्यधिक मात्रामें दिये।

पुत्रीसे बिछुड़ते समय मनु और शतरूपाके नेत्र बरसने लगे, किंतु महर्षि कर्दमके आश्वासनसे धैर्य धारणकर वे रथपर बैठे और पुण्यतोया सरस्वती नदीके दोनों तटोंपर ऋषि-मुनियोंके आश्रमोंकी शोभा देखते हुए अपनी राजधानी बर्हिष्मतीपुरीके लिये प्रस्थित हुए।

भगवान्‌की प्रेरणासे ही महर्षि कर्दमके मनमें कामनाका अंकुर उगा था, अन्यथा वे परम तपस्वी सर्वथा निःस्पृह थे। मनोनुकूल पत्नीके लिये उन्होंने दीर्घकालतक तप किया, पर विवाहमें भी उनकी किंचित् भोगबुद्धि नहीं थी। इधर विवाह हुआ और उधर महर्षि तपश्चरणमें लग गये, पर राजकुलकी सुख-सुविधामें पली परमसाध्वी सुकुमारी देवहूतिने अपना तन, मन, और प्राण—सभी पतिकी सेवामें लगा दिये। वे अपने पतिदेवकी छोटी-से-छोटी सुविधाओंका भी ध्यान रखती थी। समिधाएँ, कुश, पुष्प, फल तथा जल वनमें दूरतक जाकर वे ढूँढ़-ढूँढ़कर ले आतीं, आश्रमको झाड़-बुहार एवं गोमयसे लीपकर स्वच्छ और पवित्र रखतीं। इस प्रकार पतिकी सेवामें उनका सुकोमल सुन्दर शरीर सूखकर काला पड़ गया। उनके काले सुचिक्कण नागिन-तुल्य लम्बे केश जटाओंमें बदल गये। वे भी वल्कलधारिणी तपस्विनी हो गयीं।

'राजकुमारी!' एक दिन अत्यन्त प्रसन्न होकर महर्षिने

अपनी सहधर्मिणी देवहूतिसे कहा। 'तुमने मेरी सेवाके लिये अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया है। अब मैं तुम्हें इसका प्रतिदान देना चाहता हूँ।'

महर्षिके योग-प्रभावसे अत्यन्त अद्भुत दिव्य विमान प्रकट हुआ। उसमें सभी उपकरण स्वर्ण एवं बहुमूल्य रत्नोंके थे। उपवन, सरोवर, शयन-कक्ष, विश्राम-कक्ष, भोजनालय आदि सभी अलौकिक थे। सहस्रों अलौकिक दास-दासियाँ भी थीं। दासियोंने उन्हें दिव्य गन्धयुक्त अङ्गराग लगाकर दिव्यौषधियोंके जलोंसे स्नान कराया। दुर्लभ वस्त्राभरण धारणकर भगवती देवहूति अपने परम तपोधन पति कर्दमजीके साथ विमानपर आरूढ़ हुईं।

विमानमें सभी लोकोत्तर ऐश्वर्य विद्यमान थे। उस अद्भुत विमानपर निवास कर दुर्लभ सुखोंका उपभोग करते हुए महर्षिने मेरु पर्वतकी घाटियोंमें विहार किया, जो लोकपालोंकी विहारभूमि है। इस तेजोमय विमानपर महर्षि अपनी सती धर्मपत्नी देवहूतिके साथ वैश्रम्भक, सुरसन, नन्दन, पुष्पभद्र और चैत्ररथ आदि अनेक देवोपवनों, मानस-सरोवर तथा सभी लोकोंमें विचरते हुए विहार करते रहे। इस प्रकार अपनी प्राणप्रिया देवहूतिको समस्त वसुन्धराका परिभ्रमण कराकर महर्षि कर्दम अपने आश्रमपर लौट आये। देवहूतिके नौ कन्याएँ उत्पन्न हुईं। वे कन्याएँ अनिन्द्य सुन्दरी थीं और उनके प्रत्येक अङ्गसे लाल कमलकी सुगन्ध निकल रही थी।

'अब मैं अपने कथनानुसार त्यागपूर्ण जीवन एवं तपश्चर्याके लिये वनमें जाऊँगा।' महर्षि कश्यपने अपनी परम सुशीला धर्मपत्नी देवहूतिसे स्पष्ट कह दिया। 'तुम्हारे पिताजीके सम्मुख ही यह निश्चय हो गया था।'

देवी देवहूति अधीर हो गयीं। उनकी बुद्धि काम नहीं कर रही थी। उनके कमल-सरीखे नेत्रोंमें आँसू भर आये, किंतु अपने मनोभावोंको दबाकर उन्होंने अत्यन्त प्रेमसे मुस्कराते हुए मधुर वाणीमें कहा—'भगवन्! आपकी प्रतिज्ञा अक्षरश: पूरी हुई, तब भी मैं आपकी शरणमें हूँ। आप मुझे निर्भय और निश्चिन्त करें। मैं दुर्बल स्त्री हूँ। इन नौ कुमारियोंको सत्पात्रोंके हाथों समर्पित करना है और आपके वन-गमनके पश्चात् मेरे जीवन-मृत्युका दु:ख-निवारण करनेवाला भी कोई होना चाहिये', इसके अनन्तर उन्होंने अत्यन्त विनयपूर्वक अपने सर्वसमर्थ विरक्त पतिसे निवेदन किया—

नेह यत्कर्म धर्माय न विरागाय कल्पते।
न तीर्थपदसेवायै जीवन्नपि मृतो हि सः॥
साहं भगवतो नूनं वञ्चिता मायया दृढम्।
यत्त्वां विमुक्तिदं प्राप्य न मुमुक्षेय बन्धनात्॥

(श्रीमद्भा० ३।२३।५६-५७)

'संसारमें जिस पुरुषके कर्मोंसे न तो धर्मका सम्पादन होता है, न वैराग्य उत्पन्न होता है और न भगवान्की सेवा ही सम्पन्न होती है, वह पुरुष जीते ही मुर्देके समान है। अवश्य ही मैं भगवान्की मायासे बहुत ठगी गयी, जो आप-जैसे मुक्तिदाता पतिदेवको पाकर भी मैंने संसार-बन्धनसे छूटनेकी इच्छा नहीं की।'

'निर्दोष प्रिये! देवी देवहूतिकी वैराग्यमयी वाणी सुनकर दयालु महर्षि कर्दम प्रसन्न हो गये और उसी समय उन्हें जगत्पति श्रीविष्णुके वचनकी स्मृति हो आयी। उन्होंने अपनी पत्नीसे कहा—'तुम सर्वथा निश्चिन्त हो जाओ। मेरा साथ व्यर्थ नहीं जायगा। तुम्हारे अनेक प्रकारके व्रत सफल होकर रहेंगे। तुम संयम, नियम और तप करती हुई भी भगवान्का श्रद्धापूर्वक भजन करो। दान और प्रत्येक धर्मका पालन करो। साक्षात् श्रीहरि तुम्हारे गर्भसे अवतीर्ण होकर मेरा, तुम्हारा और जगत्का अशेष मङ्गल करेंगे।'

अपने परम तपस्वी पतिके वचनपर सुदृढ़ विश्वासके कारण महिमामयी माता देवहूतिकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं थी। वे प्राणपणसे अखिलभुवनपति श्रीपुरुषोत्तमका स्मरण-चिन्तन, भजन-कीर्तन, पूजन एवं उपासना करने लगीं। उनका मन, बुद्धि, वाणी और प्रत्येक इन्द्रिय परब्रह्म परमात्माको ही परम प्रसन्न करनेमें लग गयी।

अन्ततः परम पुनीत क्षण उपस्थित हुआ। जलाशयों एवं सरिताओंके जल निर्मल हो गये। शीतल-मन्द-सुगन्ध समीर बहने लगा। दिशाएँ प्रसन्न हो गयीं। पृथ्वी और आकाशमें सर्वत्र अलौकिक आनन्द छा गया। आकाशसे सुरगण दिव्य सुमनोंकी वृष्टि करने लगे। परम सौभाग्य-शालिनी माता देवहूतिकी कोखसे देवाधिदेव नारायण अवतरित हुए।

कुछ दिनों बाद महर्षि कर्दमने लोकस्रष्टा ब्रह्माके आदेशानुसार अपनी पवित्र-कन्याओंमेंसे कला नामकी कन्या महर्षि मरीचिको, अनसूया अत्रिको, श्रद्धा अङ्गिराको, हविर्भू पुलस्त्यको, गति पुलहको, क्रिया क्रतुको, ख्याति भृगुको, अरुन्धती वसिष्ठको और शान्ति अथर्वाऋषिको सविधि समर्पित कर दी। कन्याएँ प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने पतियोंके साथ चली गयीं।

कुछ समय बाद महर्षि कर्दम अपने पुत्रके रूपमें अवतरित ज्ञानावतार कपिलजीके समीप पहुँचे। उस समय भगवान् कपिल एकान्तमें ध्यानमग्र बैठे हुए थे। महर्षिने उनके चरणोंमें आदरपूर्वक प्रणाम किया तो वे संकोचमें पड़ गये। इसपर महर्षिने उनकी स्तुति करते हुए कहा—

त्वां सूरिभिस्तत्त्वबुभुत्सयाद्धा
सदाभिवादार्हणपादपीठम् ।
ऐश्वर्यवैराग्ययशोऽवबोध-
वीर्यश्रिया पूर्त्तमहं प्रपद्ये॥

(श्रीमद्भा० ३।२४।३२)

'आपका पाद-पीठ तत्त्वज्ञानकी इच्छासे युक्त विद्वानोंद्वारा सर्वदा वन्दनीय है तथा आप ऐश्वर्य, वैराग्य, यश, ज्ञान, वीर्य और श्री—इन छहों ऐश्वर्योंसे पूर्ण हैं। मैं आपकी शरण हूँ।'

फिर उन्होंने कहा—'प्रभो! आपके अनुग्रहसे मेरी सारी कर्मराशि समाप्त हो गयी। मैं देव-ऋषि-पितृ-ऋणसे मुक्त हो गया। अब मेरा करणीय कुछ शेष नहीं रहा। अब तो मैं सर्वस्व त्यागकर संन्यास ग्रहण करना चाहता हूँ और चाहता हूँ कि आपका चिन्तन करता हुआ शान्तिपूर्वक जीवनके शेष श्वास पूरे कर दूँ। आपने कृपापूर्वक मेरे यहाँ पुत्ररूपमें अवतार ग्रहण किया, यह आपकी दयालुताका प्रत्यक्ष प्रमाण है। अब आप मुझे आज्ञा प्रदान करें।

अत्यन्त विरक्त एवं परम कृतार्थ महर्षि कर्दमको सदुपदेश देते हुए भगवान् कपिलने उनसे कहा—

गच्छ कामं मयाऽऽपृष्टो मयि संन्यस्तकर्मणा।
जित्वा सुदुर्जयं मृत्युममृतत्वाय मां भज॥
मामात्मानं स्वयंज्योतिः सर्वभूतगुहाशयम्।
आत्मन्येवात्मना वीक्ष्य विशोकोऽभयमृच्छसि॥

(श्रीमद्भा० ३।२४।३८-३९)

'मुने! मैं आज्ञा देता हूँ, तुम इच्छानुसार जाओ और अपने सम्पूर्ण कर्म अर्पण करते हुए दुर्जय मृत्युको जीतकर मोक्षपद प्राप्त करनेके लिये मेरा भजन करो। मैं स्वयंप्रकाश और सम्पूर्ण जीवोंके अन्तःकरणोंमें रहनेवाला परमात्मा ही हूँ। अतः जब तुम विशुद्ध बुद्धिके द्वारा अपने अन्तःकरणमें मेरा साक्षात्कार कर लोगे, तब सब प्रकारके शोकोंसे छूटकर निर्भय पद (मोक्ष) प्राप्त कर लोगे।'

इसके अनन्तर श्रीभगवान्ने कहा—'मैं अपनी परमपुण्यमयी सरला जननीको भी तत्त्वज्ञानका उपदेश करूँगा, जिससे उसे आत्मज्ञान प्राप्त हो जायगा और वह सहज ही इस भवाटवीके पार अनन्त अपरिसीम आनन्दसिन्धुमें सदाके लिये निमज्जित हो जायगी।'

महर्षि कर्दमने भगवान् कपिलकी परिक्रमा की और बार-बार उनके चरणोंमें प्रणाम कर निस्सङ्गभावसे विचरण करनेके लिये चले गये। समदर्शिता एवं सर्वात्मभावके कारण

उनकी बुद्धि अन्तर्मुखी और शान्त हो गयी। सर्वान्तर्यामी जगत्पति भगवान् वासुदेवमें चित्त स्थिर हो जानेके कारण वे सम्पूर्ण बन्धनोंसे मुक्त हो गये और करुणामय श्रीभगवान्की भक्तिके प्रभावसे उन्होंने उनका दुर्लभ परम पद प्राप्तकर अपना जीवन और जन्म सफल कर लिया।

परमभाग्यवती माता देवहूतिने देखा कि उनके तपःपूत पति परमात्माके परमपदकी प्राप्तिके लिये वनमें चले गये, पुत्रियाँ अपने तपस्वी पतियोंके आश्रयमें सुखपूर्वक रहने लगीं और रहा एक पुत्र, जो साक्षात् परमपुरुषका ज्ञानावतार है।

महर्षि कर्दमकी धर्मपत्नी एवं भगवान् कपिलकी जननी होनेके कारण वे अध्यात्मकी सजीव मूर्ति थीं ही, अब उनके मनमें अत्यधिक वैराग्य भर गया। अब उन्हें वृक्ष-लता, सर-सरिता, वन-उपवन, पशु-पक्षी—सबमें असारता और नश्वरताके ही दर्शन होते थे। देवदुर्लभ विमानके लोकोत्तर सुख एवं सहस्रों दास-दासियोंकी सेवा—सबको उन्होंने क्षणभरमें ही त्याग दिया।

एक दिन परमविरक्ता माता देवहूतिने देखा, उनके पुत्रके रूपमें प्रकट भगवान् कपिल बिन्दुसरके समीप लता-मण्डपमें ध्यानावस्थित आसीन हैं। माता देवहूतिने उनके चरणोंमें श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया।

'माता! आप यह क्या कर रही हैं?' अत्यन्त संकोचमें पड़कर भगवान् कपिलने कहा। 'मैं आपका पुत्र हूँ। आप मुझे आज्ञा प्रदान करें।'

'प्रभो! यह सर्वथा सत्य है कि आपने इस पृथ्वीपर मुझे ही जननी-पदपर प्रतिष्ठित होनेका गौरवपूर्ण सौभाग्य प्रदान किया है।' माता देवहूतिने उत्तर दिया। 'पर लोकपितामहने मुझे आपके प्राकट्य-कालमें ही बता दिया था कि आप निखिल-लोकपति साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर हैं, यह सर्वथा निर्भ्रान्त सत्य है। मैं विषयकी लालसाओंसे घबरा गयी हूँ। इनकी कहीं सीमा नहीं। अब आप कृपापूर्वक मेरे अज्ञानतिमिरको अपनी ज्ञानरश्मियोंसे नष्ट कर दें। मेरा देह-गेहादिके प्रति महामोह आप दूर कर दें। मैं आपके चरणोंमें श्रद्धायुक्त प्रणाम करती हूँ। आपके शरण हूँ। आप मुझे भी ज्ञान प्रदानकर मेरा परम कल्याण कर दीजिये। मुझपर दया कीजिये।'

भगवान् कपिल अपनी माता देवहूतिकी परम पवित्र वाणी सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने मन-ही-मन अपनी माताकी प्रशंसा की और धीरे-धीरे कहने लगे—'माता! अध्यात्मयोगके द्वारा ही मनुष्य अपना सुनिश्चित परम कल्याण-साधन कर सकता है। वहाँ 'स्व' और 'पर', 'राग' और 'द्वेष' तथा 'सुख' और 'दु:ख'—सब समाप्त हो जाते हैं। जिस समय प्राणी अहंता और ममतासे उत्पन्न होनेवाले काम-क्रोधादिसे मुक्त और पवित्र होता है, वह सुख-दु:खादि द्वन्द्वोंसे मुक्त होकर समताकी स्थितिमें पहुँच जाता है, उस समय प्राणी ज्ञान-वैराग्य एवं भक्तिपरिपूरित हृदयसे आत्माको प्रकृतिसे परे, एकमात्र, भेदरहित स्वयंप्रकाश, सूक्ष्म, अखण्ड और उदासीन देखता है और प्रकृतिको असमर्थ समझने लगता है। बुद्धिमान् मुनि संग या आसक्तिको ही बन्धनका हेतु बतलाते हैं, पर वही संग और आसक्ति मुक्तपुरुषोंमें होनेसे मुक्तिका हेतु बन जाती है। भगवत्प्राप्तिके लिये श्रीभगवान्की भक्तिके अतिरिक्त अन्य कोई सरल एवं सुगम साधन नहीं है।*

इस प्रकार भगवान् कपिलने धीरे-धीरे अत्यन्त विस्तारसे अपनी माता देवहूतिको महदादि तत्त्वोंकी उत्पत्तिका क्रम समझाकर प्रकृति और पुरुषका विवेक प्राप्त होनेपर मोक्षकी प्राप्ति होती है, यह बताया। फिर उन्होंने पुरुषोंकी देह-गेहमें आसक्तिका कुपरिणाम एवं अष्टाङ्गयोगकी विधि बतलाते हुए भक्तिका मर्म बतलाया। उन्होंने अपनी माता देवहूतिसे स्पष्ट शब्दोंमें कहा—

ज्ञानवैराग्ययुक्तेन भक्तियोगेन योगिनः।
क्षेमाय पादमूलं मे प्रविशन्त्यकुतोभयम्॥
एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसां निःश्रेयसोदयः।
तीव्रेण भक्तियोगेन मनो मय्यर्पितं स्थिरम्॥

(श्रीमद्भा० ३। २५। ४३-४४)

योगिजन ज्ञान-वैराग्ययुक्त भक्तियोगके द्वारा शान्ति प्राप्त करनेके लिये मेरे निर्भय चरणकमलोंका आश्रय लेते हैं। संसारमें मनुष्यके लिये सबसे बड़ी कल्याण-प्राप्ति यही है कि उसका चित्त तीव्र भक्तियोगके द्वारा मुझमें लगकर स्थिर हो जाय।

सत्ययुगके प्रथम ऋषि-अवतार भगवान् कपिलने अपनी माता देवहूतिको भक्ति, ज्ञान और योगका विस्तृत उपदेश दिया। उन्होंने अपनी माताको पूर्ण आत्मज्ञानसम्पन्ना बना दिया और जब उन्हें निश्चय हो गया कि उनकी माताने परमार्थके तत्त्व और रहस्यको भलीभाँति समझ लिया है, तब विवेक-वैराग्यके सजीव विग्रह भगवान् कपिलने त्यागका आदर्श स्थापित करनेका निश्चय कर अपनी परमविरक्ता ब्रह्मवादिनी माताके चरणोंमें प्रणाम किया।

माता देवहूतिने भी गुरुभावसे उनकी पूजा और परिक्रमा की और बार-बार उनके चरणोंमें प्रणाम किया।

माया- मोहरहित भगवान् कपिलने अपनी वन्दनीया

* भगवान् कपिलका यह सदुपदेश श्रीमद्भागवतके तीसरे स्कन्धमें विस्तारपूर्वक दिया गया है।

माता देवहूतिको वहीं सरस्वतीके पावनतटपर सिद्धाश्रममें छोड़ दिया और स्वयं वहाँसे पूर्व और उत्तर दिशाकी मध्य दिशा ईशानकोणकी ओर चल दिये। ज्ञानसम्पन्न होनेपर भी माता देवहूति पुत्रके विछोहसे अधीर हो गयीं। उनके नेत्रोंसे स्नेहाश्रु बहने लगे। उनकी आन्तरिक स्थितिकी अनुभूति तो सदाके लिये इकलौते पुत्रसे बिछुड़ती हुई माता ही कर सकती है।

भगवान् कपिलके चले जानेपर उनकी माता देवहूतिने उनके द्वारा उपदिष्ट ज्ञानमें अपने चित्तको एकाग्र कर लिया। उन्होंने अल्पकालमें ही सिद्धि प्राप्त कर ली। अब उन्हें अपने शरीरका भी भान नहीं रहा। कुछ दिन तो उनके शरीरकी दूसरोंके द्वारा रक्षा हुई, पीछे आत्मस्वरूप नित्यमुक्त परब्रह्म परमात्माको प्राप्त परमविरक्ता माता देवहूतिका शरीर कब द्रवित होकर परम पुण्यमयी स्वच्छ-सलिलपूरिता सरिताके रूपमें परिणत होकर प्रवाहित होने लगा, वे नहीं जान सकीं। माता देवहूतिने जिस स्थलपर सिद्धि प्राप्त की, वह 'सिद्धपुर' (मातृगया)-के नामसे प्रख्यात है।

अत्यन्त प्राचीनकालमें 'स्यूमरश्मि' नामक ऋषिने भगवान् कपिलसे अत्यन्त श्रद्धापूर्वक शिष्यकी भाँति अनेक प्रश्न किये थे। भगवान् कपिलने उनके तर्कोंका खण्डन करते हुए उनसे कहा था—

आनृशंस्यं क्षमा शान्तिरहिंसा सत्यमार्जवम्।
अद्रोहोऽनभिमानश्च ह्रीस्तितिक्षा शमस्तथा॥
पन्थानो ब्रह्मणस्त्वेते एतैः प्राप्नोति यत्परम्।
तद् विद्वाननुबुद्ध्येत मनसा कर्मनिश्चयम्॥

(महा०, शान्ति० २७०। ३९-४०)

'समस्त प्राणियोंपर दया, क्षमा, शान्ति, अहिंसा, सत्य, सरलता, अद्रोह, निरभिमानता, लज्जा, तितिक्षा और शम—ये परब्रह्म परमात्माकी प्राप्तिके मार्ग हैं। इनके द्वारा पुरुष परब्रह्मको प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार विद्वान् पुरुषको मनके द्वारा कर्मके वास्तविक परिणामका निश्चय समझना चाहिये।'

धरणीको धारण करनेवालोंमें धर्मादिके साथ भगवान् कपिलका भी नाम आता है—

धर्मः कामश्च कालश्च वसुर्वासुकिरेव च।
अनन्तः कपिलश्चैव सप्तैते धरणीधराः॥

(महा०, अनु० १५०। ४१)

'धर्म, काम और काल, वसु और वासुकि, अनन्त और कपिल—ये सात पृथ्वीको धारण करनेवाले हैं।'

शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मपितामहके शरीर-त्यागके समय वेदज्ञ व्यासादि ऋषियोंके साथ भगवान् कपिल भी वहाँ उपस्थित थे।

भगवान् कपिल अपनी मातासे विदा होकर परम पुण्यतोया जाह्नवीके तटपर पहुँचे। फिर उनके तटका सौन्दर्य देखते हुए वे धीरे-धीरे वहाँ पहुँचे, जहाँ भगवती भागीरथी महासागरमें मिलती हैं। उसे 'गङ्गासागर' भी कहते हैं। भगवान् कपिलके वहाँ पहुँचनेपर समुद्रने सशरीर समीप आकर उनके चरणोंमें प्रणाम कर उनकी सविधि पूजा की। आकाशसे देवता तथा सिद्धादि परम प्रभुका स्तवन करते हुए उनके ऊपर दिव्य पुष्पोंकी वर्षा करने लगे।

भगवान् कपिलकी वहाँ निवास करनेकी इच्छा जाननेपर समुद्रके प्रसन्नताकी सीमा न रही। उसने इसे अपना परम सौभाग्य समझा। भगवान् वहीं समुद्रके भीतर रहकर तपश्चरण करते हैं। वर्षमें एक दिन मकरकी संक्रान्तिके दिन समुद्रने वहाँसे हट जानेका वचन दिया था, जिससे उस दिन वहाँ जाकर दर्शन करनेवाले अक्षय पुण्य प्राप्त कर सकें।

राजा सगरके साठ सहस्र पुत्र अश्वान्वेषणके लिये धरतीको खोदते हुए तपोमूर्ति भगवान् कपिलके आश्रमपर पहुँचे और उनकी धर्षणा करनेपर उनके नेत्रकी ज्वालासे भस्म हो गये।

भगवान् कपिल सांख्य-दर्शनके प्रवर्तक हैं। आप भागवत धर्मके मुख्य बारह आचार्योंमेंसे एक हैं। आपका एक नाम 'चक्रधनु' भी है। विष्णु-वाहन गरुडने महर्षि गालवको बताया था—

अत्र चक्रधनुर्नाम सूर्याज्जातो महानृषिः॥
विदुर्यं कपिलं देवं येनार्ताः सगरात्मजाः।

(महा०, उद्योग० १०९। १७-१८)

'सूर्यके समान तेजस्वी महर्षि कर्दमसे उत्पन्न हुए 'चक्रधनु' नामक महर्षि इसी दिशामें रहते थे, जिन्हें सब लोग कपिलदेवके नामसे जानते हैं। उन्होंने ही सगरके पुत्रोंको भस्म कर दिया था।'

प्रतिवर्ष मकर-संक्रान्तिके दिन गङ्गासागर-संगमपर सहस्रों स्त्री-पुरुष भगवान् कपिलके पुनीत आश्रमके दर्शनार्थ जाते हैं।

(६) भगवान् दत्तात्रेय

जो अज्ञान-तिमिरको दूरकर हृदयमें ज्ञानका प्रकाश फैलाते हैं, उन्हें 'गुरु' कहते हैं। **'गिरति अज्ञानम्'** अथवा **'गृणाति ज्ञानम्, स गुरुः'**—ऐसी 'गुरु' शब्दकी व्युत्पत्ति है। जीवोंका अज्ञान मिटानेके लिये अथवा जीवोंके हृदयमें ज्ञानका प्रकाश फैलानेके लिये ही प्रायः भगवान्‌के अवतार होते हैं। वैसे तो अवतारके कई प्रयोजन होते हैं, किंतु जीवोंका अज्ञानान्धकार-निवारण अवतारका परम प्रयोजन होता है। जबतक सृष्टिमें जीव हैं, तबतक इस कर्मको अविरतरूपमें चलाना अपरिहार्य है—यही सोचकर भगवान् श्रीविष्णुने सद्‌गुरु श्रीदत्तात्रेयजीके रूपमें अवतार ग्रहण किया।

जैसे जलपूरित महासरोवरसे असंख्य स्रोत उमड़ पड़ते हैं, उसी प्रकार परोपकारके लिये भगवान्‌के अवतार होते ही रहते हैं। उन अनन्त अवतारोंमें चौबीस अवतारोंका निर्देश श्रीमद्भागवतकारने किया है। उन चौबीस अवतारोंमें सिद्धराज भगवान् श्रीदत्तात्रेयजीका अवतार छठा माना जाता है। इस अवतारकी परिसमाप्ति नहीं है, इसीलिये इन्हें 'अविनाश' भी कहते हैं। ये समस्त सिद्धोंके राजा होनेके कारण 'सिद्धराज' कहलाते हैं। योगविद्यामें असाधारण अधिकार रखनेके कारण इन्हें 'योगिराज' भी कहते हैं। अपने असाधारण योगचातुर्यसे इन्होंने देवताओंका संरक्षण किया है, इसलिये ये 'देवदेवेश्वर' भी कहे जाते हैं।

'मुझे प्राणियोंका दुःख-निवारण करनेवाला पुत्र प्राप्त हो'—इस अभिप्रायसे अत्रिमुनिकी भावपूर्ण घोर तपस्या देखकर अत्यन्त प्रसन्न होकर भगवान् श्रीविष्णुने कहा—'मैंने निजको ही तुम्हें दान कर दिया है'—इस कारण इनकी 'दत्त' संज्ञा हुई **'दत्तो मयाहमिति यद्भगवान् स दत्तः'** (श्रीमद्भा० २।७।४)। अत्रिमुनिके पुत्र होनेके कारण इन्हें 'आत्रेय' भी कहते हैं। 'दत्त' और 'आत्रेय'—इन दोनों नामोंके संयोगसे इनका 'दत्तात्रेय' एक ही नाम रूढ हो गया। ये निस्स्पृह होकर सदा ही ज्ञानका दान देते रहते हैं, अतएव 'गुरुदेव' या 'सद्‌गुरु'—ये दो विशेषण इनके नामके पूर्व व्यवहृत होते हैं।

इनकी माता थीं परम सती श्रीअनसूया देवी। वे अत्यन्त सुन्दरी भी थीं, किंतु उनमें गर्वका लेश भी नहीं था। एक दिन श्रीनारदजीके मुखसे श्रीसरस्वती, श्रीउमा और श्रीरमाने महासती अनसूयाजीकी महिमा सुन ली। 'वे हमसे बड़ी कैसे हैं?' इस विचारसे उनके मनमें कुछ ईर्ष्या हुई। तीनों देवियोंने अपने-अपने पतियोंको अनसूयाजीके सतीत्व-परीक्षणके लिये महर्षि अत्रिके आश्रममें भेजा। ब्रह्मा, विष्णु और महेश वहाँ पहुँचे, किंतु सतीशिरोमणि अनसूयाके सतीत्वके प्रभावसे तीनों नवजात शिशु बन गये। माता अनसूयाने वात्सल्यभावसे उन्हें अपना स्तन्य-पान कराया। कुछ दिनों बाद सरस्वती, उमा और रमा माता अनसूयाके समीप आकर उनके चरणोंमें गिरीं और उन्होंने उनसे क्षमा-याचना की। दयामयी माता अनसूयाने तीनों बालकोंको पूर्ववत् ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर बना दिया।

'आप चिन्ता न करें, हम आपके पुत्ररूपमें आपके पास ही रहेंगे।' जाते समय त्रिदेवोंने अत्रि और अनसूयाका अभिप्राय समझकर कहा। फिर ब्रह्मदेव सोमके रूपमें, भगवान् श्रीविष्णु दत्तके रूपमें और भगवान् शंकर दुर्वासाके रूपमें भगवती अनसूयाके पुत्र बनकर अवतरित हुए। ऐसी और भी कई कथाएँ विभिन्न पुराणोंमें वर्णित हैं। इन कथाओंमें भेद होते हुए भी विरोध नहीं है। सूक्ष्म

विचार करनेपर सभी कथाओंका ठीकसे समन्वय हो सकता है।

भगवान् श्रीविष्णुने दत्तात्रेयजीके रूपमें अवतरित होकर जगत्‌का बड़ा ही उपकार किया है। कृतयुगमें उन्होंने श्रीकार्तिकस्वामी, श्रीगणेश भगवान् और भक्त प्रह्लादको उपदेश देकर उन्हें उपकृत किया था। त्रेतामें राजा अलर्कप्रभृतिको योगविद्या एवं अध्यात्मविद्याका उपदेश देकर उन्हें कृतार्थ किया। राजा पुरूरवा और राजा आयु भी दत्तात्रेयजीकी कृपाके ऋणी थे। द्वापरमें भगवान् श्रीपरशुराम तथा हैहयाधिपति राजा कार्तवीर्य आदिको भगवान् दत्तात्रेयका अनुग्रह प्राप्त हुआ था और उन्हींकी कृपासे वे तेजस्वी एवं यशस्वी हुए। कलियुगमें भी भगवान् शंकराचार्य, गोरक्षनाथ, महाप्रभु, सिद्ध नागार्जुन—ये सब दत्तात्रेयजीके अनुग्रहसे ही धन्य हो गये हैं। श्रीसंत ज्ञानेश्वर महाराज, श्रीजनार्दन स्वामी, श्रीसंत एकनाथ, श्रीसंत दासोपंत, श्रीसंत तुकाराम महाराज—इन भक्तोंने दत्तात्रेयजीका प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त किया था। भगवान् श्रीदत्तात्रेय भक्तका करुण-क्रन्दन सुनकर तुरंत उसके समीप पहुँच जाते हैं। इसी कारण इन्हें 'स्मर्तृगामी' (स्मरण करते ही आनेवाले) कहा गया है।

गिरनार श्रीदत्तात्रेयजीका सिद्धपीठ है। उनका उन्मत्तोंकी तरह विचित्र वेष और उनके आगे-पीछे कुत्ते—उन्हें पहचान लेना सरल नहीं। वे सिद्धोंके परमाचार्य हैं और उन्हें उच्चकोटिके अधिकारी पुरुष ही पहचान सकते हैं, किंतु उनके आराधक तो अपना जीवन धन्य कर ही लेते हैं।

~~~ o ~~~

(७) भगवान् यज्ञ

बात है स्वायम्भुव मन्वन्तरकी। स्वायम्भुव मनुकी ष्यापा पत्नी शतरूपाके गर्भसे महाभागा आकूतिका न्म हुआ। वे रुचि प्रजापतिकी पत्नी हुईं। इन्हीं आकूतिकी क्षिसे धरणीपर धर्मका प्रचार करनेके लिये आदिपुरुष भगवान् अवतरित हुए। उनकी 'यज्ञ' नामसे ख्याति हुई। हीं परमप्रभुने यज्ञका प्रवर्तन किया और इन्हींके नामसे ज्ञ प्रचलित हुआ। उनसे देवताओंकी शक्ति बढ़ी और वताओंकी शक्तिसे सारी सृष्टि शक्तिशालिनी हुई।

परम धर्मात्मा स्वायम्भुव मनुकी धीरे-धीरे सारिक विषय-भोगोंसे अरुचि हो गयी। संसारसे विरक्त जानेके कारण उन्होंने राज्य त्याग दिया और अपनी हेमामयी पत्नी शतरूपाके साथ तपस्या करनेके लिये नमें चले गये। वे पवित्र सुनन्दा नदीके तटपर एक पैरपर ड़े होकर आगे दिये हुए मन्त्रमय उपनिषत्-स्वरूप तिका निरन्तर जप करने लगे। वे तपस्या करते हुए तेदिन श्रीभगवान्‌की स्तुति करते थे—

येन चेतयते विश्वं विश्वं चेतयते न यम्।
यो जागर्ति शयानेऽस्मिन्नायं तं वेद वेद सः॥
यं न पश्यति पश्यन्तं चक्षुर्यस्य न रिष्यति।
तं भूतनिलयं देवं सुपर्णमुपधावत॥

(श्रीमद्भा० ८।१।९, ११)

'जिनकी चेतनाके स्पर्शमात्रसे यह विश्व चेतन हो जाता है, किंतु यह विश्व जिन्हें चेतनाका दान नहीं कर सकता; जो इसके सो जानेपर प्रलयमें भी जागते रहते हैं, जिनको यह विश्व नहीं जान सकता, परंतु जो इसे जानते हैं—वे ही परमात्मा हैं। भगवान् सबके साक्षी हैं। उन्हें बुद्धि-वृत्तियाँ या नेत्र आदि इन्द्रियाँ नहीं देख सकतीं, परंतु उनकी ज्ञान-शक्ति अखण्ड है। समस्त प्राणियोंके हृदयमें रहनेवाले उन्हीं स्वयम्प्रकाश असङ्ग परमात्माकी शरण ग्रहण करो।'*

इस प्रकार स्तुति एवं जप करते हुए उन्होंने सौ वर्षतक अत्यन्त कठोर तपश्चरण किया। एकाग्र चित्तसे इस मन्त्रमय उपनिषद्-स्वरूप श्रुतिका पाठ करते-करते उन्हें अपने शरीरकी भी सुधि नहीं रही। उसी समय वहाँ अत्यन्त क्षुधार्त असुरों एवं राक्षसोंका समुदाय एकत्र हो गया। वे ध्यानमग्न परम तपस्वी मनु और शतरूपाको खानेके लिये दौड़े।

सर्वान्तर्यामी आकूतिनन्दन भगवान् यज्ञ अपने

* पूरी श्रुति श्रीमद्भागवतके ८वें स्कन्धके प्रथम अध्यायमें श्लोक-संख्या ९ से १६ तक देखनी चाहिये।
~~~

याम नामक पुत्रोंके साथ तुरन्त वहाँ पहुँच गये। राक्षसोंसे भयानक संग्राम हुआ। अन्ततः राक्षस पराजित हुए। कालके गालमें जानेसे बचे असुर और राक्षस अपने प्राण बचाकर भागे।

भगवान् यज्ञके पौरुष एवं प्रभावको देखकर देवताओंकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। उन्होंने भगवान्से देवेन्द्र-पद स्वीकार करनेकी प्रार्थना की। देव-समुदायकी तुष्टिके लिये भगवान् इन्द्रासनपर विराजित हुए। इस प्रकार श्रीभगवान्ने इन्द्र-पदपालनका आदर्श उपस्थित किया।

भगवान् यज्ञके उनकी धर्मपत्नी दक्षिणासे अत्यन्त तेजस्वी बारह पुत्र उत्पन्न हुए थे। वे ही स्वायम्भुव मन्वन्तरमें 'याम' नामक बारह देवता कहलाये।

(८) भगवान् ऋषभदेव

नित्यानुभूतनिजलाभनिवृत्ततृष्णः
श्रेयस्यतद्रचनया चिरसुप्तबुद्धेः।
लोकस्य यः करुणयाभयमात्मलोक-
माख्यान्नमो भगवते ऋषभाय तस्मै॥

(श्रीमद्भागवत ५।६।१९)

'निरन्तर विषय-भोगोंकी अभिलाषा करनेके कारण अपने वास्तविक श्रेयसे चिरकालतक बेसुध हुए लोगोंको जिन्होंने करुणावश निर्भय आत्मलोकका उपदेश दिया और जो स्वयं निरन्तर अनुभव होनेवाले आत्मस्वरूपकी प्राप्तिसे सब प्रकारकी तृष्णाओंसे मुक्त थे, उन भगवान् ऋषभदेवको नमस्कार है।'

× × ×

आग्नीध्रनन्दन महाराज नाभिके कोई संतान नहीं थी। इस कारण उन्होंने अपनी धर्मपत्नी मेरुदेवीके साथ पुत्रकी कामनासे यज्ञ प्रारम्भ किया। तपःपूत ऋत्विजोंने श्रुतिके मन्त्रोंसे यज्ञपुरुषका स्तवन किया और ब्राह्मणसर्वस्व, शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी चतुर्भुज नारायण प्रकट हुए। उनके श्रीअङ्गोंकी अद्भुत शोभा थी। अनन्त अपरिसीम सौन्दर्यसुधासिन्धु मङ्गलमय प्रभुका दर्शन कर राजा, रानी और ऋत्विजोंकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं थी। सबने अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिसे प्रभु-पदपद्मोंमें सादर दण्डवत् प्रणाम कर अर्घ्यादिके द्वारा उनकी पूजा एवं वन्दना की।

'प्रभो! राजर्षि नाभि और उनकी पत्नी मेरुदेवी आपके ही समान पुत्र चाहते हैं।' ऋत्विजोंने प्रभु-गुण-गान करनेके उपरान्त कामना स्पष्ट कर दी।

'ऋषियो! आपलोगोंने बड़ा दुर्लभ वर माँगा है।' श्रीभगवान्ने मन्द-मन्द मुस्कराते हुए कहा। 'मैं अद्वितीय हूँ। अतएव आपलोगोंके वचनकी रक्षाके लिये मैं स्वयं महाराज नाभिके यहाँ अवतरित होऊँगा; क्योंकि मेरे समान तो मैं ही हूँ, अन्य कोई नहीं।'

यों कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये और कुछ दिनोंके बाद महाराज नाभिकी परम सौभाग्यशालिनी पत्नी मेरुदेवीकी कुक्षिसे परमतत्त्व प्रकट हुआ।

नाभिनन्दनके अङ्ग विष्णुके वज्र-अङ्कुश आदि चिह्नोंसे युक्त थे। पुत्रके अत्यन्त सुन्दर सुगठित शरीर, कीर्ति, तेज, बल, ऐश्वर्य, यश, पराक्रम और शूरवीरता आदि गुणोंको देखकर महाराज नाभिने उसका नाम 'ऋषभ' (श्रेष्ठ) रखा।

महाराज नाभि परमप्रभु ऋषभदेवका पुत्रवत् पालन करने लगे। पुत्रको अतिशय प्यारसे पुकारने तथा अङ्कमें लेकर लाड़ लड़ानेसे वे अत्यधिक आनन्दका अनुभव करने लगे; किंतु कुछ ही दिनोंके अनन्तर जब ऋषभदेव वयस्क हो गये और महाराज नाभिने देखा कि सम्पूर्ण राष्ट्रके नागरिक तथा मन्त्री आदि सभी लोग ऋषभदेवको अतिशय आदर और प्रीतिकी दृष्टिसे देखते हैं, तब उन्होंने ऋषभदेवको राजपदपर अभिषिक्त कर दिया और स्वयं अपनी सती पत्नी मेरुदेवीके साथ तप करने वनमें चले गये। वे उत्तर दिशामें हिमालयके अनेक शिखरोंको पार करते हुए गन्धमादन पर्वतपर भगवान् नर-नारायणके वासस्थान बदरिकाश्रममें पहुँचे। वहाँ वे परमप्रभुके नर-नारायण-रूपकी उपासना एवं उनका चिन्तन करते हुए समयानुसार उन्हींमें विलीन हो गये।

शासनका दायित्व अपने कन्धेपर आ जानेके कारण ऋषभदेवने मानवोचित कर्तव्यका पालन करना प्रारम्भ

किया। उन्होंने गुरुकुलमें कुछ काल रहकर वेद-वेदाङ्गोंका अध्ययन किया और फिर अन्तिम गुरुदक्षिणा देकर व्रतान्तस्नान किया। इसके उपरान्त वे राज-कार्य देखने लगे। ऋषभदेव राज्यका सारा कार्य बड़ी ही सावधानी एवं तत्परतापूर्वक देखते थे। उनकी राज्य-व्यवस्था और शासनप्रणाली सर्वथा अनुकरणीय और अभिनन्दनीय थी।

'भगवतर्षभेण परिरक्ष्यमाण एतस्मिन् वर्षे न कश्चन पुरुषो वाञ्छत्यविद्यमानमिवात्मनोऽन्यस्मात्कथञ्चन किमपि कर्हिचिदवेक्षते भर्तर्यनुसवनं विजृम्भितस्नेहातिशयमन्तरेण।'

(श्रीमद्भागवत ५।४।१८)

'भगवान् ऋषभदेवके शासनकालमें इस देशका कोई भी पुरुष अपने लिये किसीसे भी अपने प्रभुके प्रति दिन-दिन बढ़नेवाले अनुरागके सिवा और किसी वस्तुकी कभी इच्छा नहीं करता था। यही नहीं, आकाशकुसुमादि अविद्यमान वस्तुकी भाँति कोई किसीकी वस्तुकी ओर दृष्टिपात भी नहीं करता था।'

सम्पूर्ण प्रजा ऋषभदेवको अत्यधिक प्यार करती एवं श्रीभगवान्‌की तरह उनका आदर और सम्मान करती थी। यह देखकर शचीपति (इन्द्र)-के मनमें बड़ी ईर्ष्या हुई। उन्होंने सोचा—'मैं त्रैलोक्यपति हूँ, वर्षाके द्वारा सबका भरण-पोषण करता और सबको जीवन-दान देता हूँ, फिर भी प्रजा मेरे प्रति इतनी श्रद्धा नहीं रखती। इसके विपरीत धरतीका एक नरेश इतना लोकप्रिय क्यों है? उसे प्रजा परमेश्वरकी भाँति क्यों पूजती है? मैं इस नरपतिका प्रभाव देखता हूँ।' तब सुरेन्द्रने ईर्ष्यावश एक वर्षतक वर्षा बन्द कर दी।

भगवान् ऋषभदेवने अमरपतिकी ईर्ष्या-द्वेषकी वृत्ति एवं अहंकारको समझकर योगबलसे सजल-घनोंकी सृष्टि की। आकाश काले मेघोंसे आच्छादित हो गया और पृथ्वीपर जल-ही-जल हो गया। समस्त भूमि शस्यश्यामला बन गयी।

सुरपतिका मद उतर गया। उन्होंने भगवान् ऋषभदेवके प्रभावको समझ लिया। फिर तो उन्होंने ऋषभदेवकी स्तुति की और अपनी पुत्री जयन्तीका विवाह उनके साथ कर दिया। ऋषभदेवने लोक-मर्यादाकी रक्षाके लिये गृहस्थाश्रम-धर्मका पालन किया और उनसे सौ पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें सबसे बड़े, सर्वाधिक गुणवान् एवं महायोगी भरतजी थे। वे इतने प्रतापी नरेश हुए कि उन्हींके नामपर इस अजनाभखण्डका नाम 'भारतवर्ष' प्रख्यात हुआ।

राजकुमार भरतसे छोटे कुशावर्त, इलावर्त, ब्रह्मावर्त, मलय, केतु, भद्रसेन, इन्द्रस्पृक्, विदर्भ और कीकट—ये नौ राजकुमार भारतवर्षमें पृथक्-पृथक् देशोंके प्रजापालक नरेश हुए। ये सभी नरेश तपस्वी, धर्माचरणसम्पन्न एवं भगवद्भक्त थे। इनके देश इन्हीं राजाओंके नामसे विख्यात हुए।

इन दस राजकुमारोंसे छोटे कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, अविर्होत्र, द्रुमिल, चमस और करभाजन—ये नौ राजकुमार बालब्रह्मचारी, भागवतधर्मका प्रचार करनेवाले एवं बड़े भगवद्भक्त थे। ये योगी एवं संन्यासी हो गये। इनसे छोटे महाराज ऋषभदेवके इक्यासी पुत्र वेदज्ञ, कर्मकाण्डी, सदाचारी, मातृ-पितृभक्त, विनीत, शान्त तथा महान् थे। वे निरन्तर यज्ञ, देवार्चन एवं पुण्यकर्मोंके करनेसे ब्राह्मण हो गये।

एक बारकी बात है। महाराज ऋषभदेव भ्रमण करते हुए गङ्गा-यमुनाके मध्यकी पुण्यभूमि ब्रह्मावर्तमें पहुँचे, जहाँके शासक उनके चतुर्थ पुत्र ब्रह्मावर्त थे। वहाँ उन्होंने प्रख्यात महर्षियोंके समुदायके साथ अपने अत्यन्त विनयी एवं शीलवान् पुत्रोंको भी बैठे देखा। उक्त सुअवसरसे लाभ उठाकर भगवान् ऋषभदेवने अपने पुत्रोंके मिससे जगत्‌के लिये अत्यन्त कल्याणकर उपदेश दिया। ऋषभदेवने कहा—
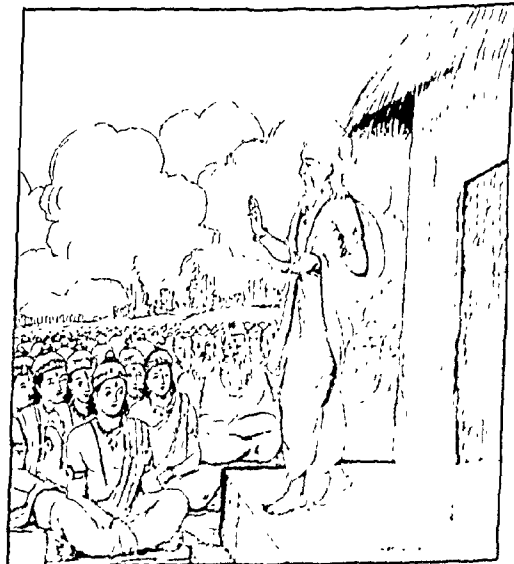
नायं देहो देहभाजां नृलोके
कष्टान् कामानर्हते विड्भुजां ये।
तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं
शुद्ध्येद्यस्माद् ब्रह्मसौख्यं त्वनन्तम्॥

(श्रीमद्भागवत ५।५।१)

'पुत्रो! इस मर्त्यलोकमें यह मनुष्य-शरीर दुःखमय विषयभोग प्राप्त करनेके लिये ही नहीं है। ये भोग तो विष्ठाभोजी सूकर-कूकरादिको भी मिलते ही हैं। इस शरीरसे दिव्य तप ही करना चाहिये, जिससे अन्तःकरण शुद्ध हो; क्योंकि इसीसे अनन्त ब्रह्मानन्दकी प्राप्ति होती है।'

'मनुष्य प्रमादवश कुकर्ममें प्रवृत्त होता है, किंतु इससे आत्माको नश्वर एवं दुःखदायी शरीर प्राप्त होता है। जबतक मनुष्य श्रीहरिके चरणोंका आश्रय नहीं लेता, उन्हींका नहीं बन जाता, तबतक उसे जन्म-जरा-मरणसे त्राण नहीं मिल पाता। अतएव प्रत्येक माता-पिता एवं गुरुका परम पुनीत कर्तव्य है कि वह अपनी संतति एवं शिष्यको विषयासक्ति एवं काम्यकर्मोंसे सर्वथा पृथक् रहनेकी ही सीख दे।' फिर संसारकी नश्वरता एवं भगवद्भक्तिका माहात्म्य बताते हुए श्रीऋषभदेवने कहा—

गुरुर्न स स्यात् स्वजनो न स स्यात्
पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात्।
दैवं न तत् स्यान्न पतिश्च स स्या-
न्न मोचयेद्यः समुपेतमृत्युम्॥
सर्वाणि मद्धिष्ण्यतया भवद्भि-
श्चराणि भूतानि सुता ध्रुवाणि।
सम्भावितव्यानि पदे पदे वो
विविक्तदृग्भिस्तदुहार्हणं मे॥

(श्रीमद्भागवत ५।५।१८, २६)

'जो अपने प्रिय सम्बन्धीको भगवद्भक्तिका उपदेश देकर मृत्युकी फाँसीसे नहीं छुड़ाता, वह गुरु गुरु नहीं है, स्वजन स्वजन नहीं है, पिता पिता नहीं है, माता माता नहीं है, इष्टदेव इष्टदेव नहीं है और पति पति नहीं है। पुत्रो! तुम सम्पूर्ण चराचर भूतोंको मेरा ही शरीर समझकर शुद्ध बुद्धिसे पद-पदपर उनकी सेवा करो; यही मेरी सच्ची पूजा है।'

अपने सुशिक्षित एवं भक्त पुत्रोंके मिससे जगत्को उपदेश देकर ऋषभदेवजीने अपने बड़े पुत्रको राज-पदपर अभिषिक्त कर दिया और स्वयं विरक्त-जीवनका आदर्श प्रस्तुत करनेके लिये राजधानीसे बाहर वनमें चले गये। भगवान् ऋषभदेव सर्वथा ज्ञानस्वरूप थे, किंतु लोकदृष्टिसे प्राणियोंको शिक्षा देने एवं पारमहंस्य धर्मकी श्रेष्ठता सिद्ध करनेके लिये उन्होंने उन्मत्तोंका वेष धारण कर लिया।

ब्रह्मावर्तसे बाहर जानेपर उनका मुँह जिधर उठा, उसी ओर चल देते। बुद्धिके आगार होनेपर भी मूर्खों-जैसा उनका आचरण होने लगा। वे किसीके प्रश्नका उत्तर न देकर मूक-सा व्यवहार करने लगे। धूलि-धूसरित शरीर, जिधर जीमें आता दौड़ने लगते। लड़के पीछे-पीछे तालियाँ बजाते, इन्हें चिन्ता नहीं। जहाँ कोई कुछ दे देता, पेटमें डाल लेते; पर किसीसे माँगते न थे।

ऋषभदेवजी सर्वथा दिगम्बर होकर विचरण करने लगे। उनकी उच्चतम स्थितिको न समझकर कितने ही दुष्ट उनपर दण्ड-प्रहार कर बैठते। कितने गालियाँ देते और कितने उन परम पुरुषपर थूक देते। कुछ कंकड़-पत्थर मारते तो कुछ उनके ऊपर लघुशङ्का अथवा मलत्यागतक कर देते। पर शरीरके प्रति अनासक्ति और मैं-पनका भाव न होनेके कारण ऋषभदेवजी कुछ नहीं बोलते। सर्वथा शान्त और मौन रहकर अपनी राह आगे बढ़ जाते। ऋषभदेवजीकी धूलिसे लिपटी काया एवं रूखे बालोंकी उलझी लटें तथा पागल-जैसा वेष भी अत्यन्त मनोहर एवं चित्ताकर्षक प्रतीत होता था। अब वे अवधूत-वृत्तिके अनन्तर अजगर-वृत्तिसे रहने लगे। उन्हें मनुष्यताका अभिमान विस्मृत हो गया। अब उनको कोई खानेको दे देता तो खा लेते, अन्यथा उनके द्वारा भोजनकी कोई चेष्टा नहीं होती थी। वे पशुओंकी तरह पानी पी लेते। पशुओंकी ही भाँति जहाँ होता, लेटे-ही-लेटे मल-मूत्रका त्याग कर देते। मलको अपने सारे शरीरमें पोत लेते, किंतु उनके मलसे अत्यन्त अलौकिक सुगन्ध निकलती थी, जो दस-दस योजनतक फैल जाती थी। इस प्रकार मोक्षपति भगवान् ऋषभदेव अनेक प्रकारकी योगचर्याओंका आचरण करते हुए निरन्तर आनन्दमग्न रहते थे। प्रभुका यह जीवन आचरणीय नहीं, यह तो अवस्था थी। यह स्थिति शास्त्रसे परे है।

जब भगवान् ऋषभदेव संसारकी असारताका पूर्णतया अनुभव कर जीवन्मुक्तावस्थाका आनन्द-लाभ कर रहे थे, उस समय समस्त सिद्धियोंने उनकी सेवा में उपस्थित

होकर कैंकर्यावसर प्रदान करनेकी प्रार्थना की; पर उन्हें स्वीकार करना तो दूर, ऋषभदेवने मुस्कराते हुए उन्हें तत्काल वहाँसे चले जानेकी आज्ञा दे दी।

सर्वसमर्थ भगवान् ऋषभदेवको सिद्धियोंकी आवश्यकता भी क्या थी? वे तो सिद्धोंके सिद्ध, महासिद्ध थे। सिद्धियाँ तो उनकी चरण-धूलिका स्पर्श प्राप्त करनेके लिये लालायित रहतीं, व्याकुल रहतीं; पर वह पुण्यमयी धूलि—सुर-मुनिवन्दित रज उन्हें मिल नहीं पाती। साथ ही साधकों, भक्तों एवं योगाभ्यासियोंके सम्मुख उन्हें आदर्श भी उपस्थित करना था। मन बड़ा चञ्चल होता है। इसे तनिक भी सुविधा देने, इसकी ओरसे तनिक भी असावधान होनेसे यह घात कर बैठता है, पतनके महागर्तमें ढकेल देता है।

कामो मन्युर्मदो लोभः शोकमोहभयादयः।
कर्मबन्धश्च यन्मूलः स्वीकुर्यात्को नु तद् बुधः॥

(श्रीमद्भागवत ५।६।५)

'काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह और भय आदि शत्रुओंका तथा कर्म-बन्धनका मूल तो यह मन ही है; इसपर कोई भी बुद्धिमान् कैसे विश्वास कर सकता है?'

इसी कारण भगवान् ऋषभदेवने साक्षात् पुराणपुरुष आदिनारायणके अवतार होनेपर भी अपने ईश्वरीय प्रभावको छिपाकर अवधूतका-सा, मोक्षकी प्राप्ति करानेवाले पारमहंस्य-धर्मका आचरण किया। ज्ञानी तो अपनी योग-दृष्टिसे उन्हें ईश्वरावतार समझते थे; किंतु सर्वसाधारणको उनके वास्तविक स्वरूपका तनिक भी परिचय होना कठिन था। संकल्प-शून्य होकर उनका शरीर प्रारब्धवश पृथ्वीपर डोल रहा था। इस प्रकार वे दिगम्बर-वेषमें कोङ्क, वेङ्क, कुटक और कर्णाटक आदि दक्षिण-देशमें मुँहमें पत्थर दबाये घूमते रहे। उन्मत्तताकी स्थितिमें वे कुटकाचलके निर्जन वनमें विचरण कर रहे थे।

अब ऋषभदेवजीको पाञ्चभौतिक शरीर त्याग देनेकी इच्छा हुई। एक दिन सहसा प्रबल झंझावातसे घर्षणके कारण वनके बाँसोंमें आग लग गयी और वह आग अपनी लाल-लाल लपटोंसे सम्पूर्ण वनको भस्मसात् करने लगी। ऋषभदेवजी भी वहीं विद्यमान थे। उनकी शरीरमें तनिक भी आसक्ति और मोह होता तो उसकी रक्षाके लिये उद्योग करते; किंतु उनकी तो सर्वत्र समबुद्धि थी। अतएव वे चुपचाप बैठे रहे और उनका नश्वर शरीर अग्निकी भयानक ज्वालामें जलकर भस्म हो गया। इस प्रकार शरीर छोड़कर भगवान् ऋषभदेवने योगियोंको देहत्यागकी विधिकी भी शिक्षा दे दी—

'अयमवतारो रजसोपप्लुतकैवल्योपशिक्षणार्थः॥'

(श्रीमद्भागवत ५।६।१२)

'भगवान्‌का यह अवतार रजोगुणसे भरे हुए लोगोंको मोक्षमार्गकी शिक्षा देनेके लिये ही हुआ था।'

~~~ ० ~~~

अवतार-प्रयोजन

(श्रीनारायणदासजी भक्तमाली 'मामाजी')

दुखी दीनों पै जब असुरोंका अत्याचार होता है।
तभी भूतल पै करुणासिन्धुका अवतार होता है॥

संत सुर भूमि भूसुर सुरभि सज्जन कष्ट जब पाते।
प्रजा पीड़ित, प्रताड़ित, जगमें हाहाकार होता है॥ तभी०॥
तमोगुणका अँधेरा घोर, चारों ओर जब फैले।
सरल सज्जन गरीबोंका जीना दुश्वार होता है॥ तभी०॥
कृतघ्नी क्रूर कुटिल कुमार्गगामी खल जभी बढ़ते।
धराधर-शेषके सिर पापियोंका भार होता है॥ तभी०॥

अधर्मी लंपटों, पर-द्रोहियोंकी बाढ़ जब आती।
धर्मपर अति कठिन प्रहार बारम्बार होता है॥ तभी०॥
परायी नारि, पर-धन लूटनेवाले लुटेरोंसे।
प्रभावित जब प्रशासन होके भ्रष्टाचार होता है॥ तभी०॥
प्रथम तो फूलते-फलते दिखायी पड़ते हैं पापी।
अन्त जब फूटता भंडा तो बंटाढार होता है॥ तभी०॥

परिस्थितिसे न घबड़ाओ, धरो धीरज सुमिरु प्रभुको।
कृपा कर दें जो 'नारायण' तो बेड़ा पार होता है॥ तभी०॥

~~~ ० ~~~

(९) आदिराज पृथु

त्वन्माययाद्धा जन ईश खण्डितो
यदन्यदाशास्त ऋतात्मनोऽबुधः।
यथा चरेद्बालहितं पिता स्वयं
तथा त्वमेवार्हसि नः समीहितुम्॥

(श्रीमद्भागवत ४। २०। ३१)

'प्रभो! आपकी मायासे ही मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप आपसे विमुख होकर अज्ञानवश अन्य स्त्री-पुत्रादिकी इच्छा करता है; फिर भी जिस प्रकार पिता पुत्रकी प्रार्थनाकी अपेक्षा न रखकर अपने-आप ही पुत्रका कल्याण करता है, उसी प्रकार आप भी हमारी इच्छाकी अपेक्षा न करके हमारे हितके लिये स्वयं ही प्रयत्न करें।'

× × ×

स्वायम्भुव मनुके वंशमें अङ्ग नामक प्रजापतिका विवाह मृत्युकी मानसिक पुत्री सुनीथाके साथ हुआ। उनके वेन नामक पुत्र हुआ। वेन अपने मातामह (नाना)-के स्वभावपर गया। वह अत्यन्त उग्र, अधार्मिक, परपीड़क और राग-द्वेषके वशीभूत हो प्रजापर अत्याचार करने लगा। उसकी दुष्टतासे प्रजा अत्यन्त कष्ट पाने लगी। महर्षियोंद्वारा राजपदपर अभिषिक्त होते ही उसने घोषणा कर दी—

न यष्टव्यं न दातव्यं न होतव्यं कथञ्चन।
भोक्ता यज्ञस्य कस्त्वन्यो ह्यहं यज्ञपतिः प्रभुः॥

(विष्णुपुराण १। १३। १४)

'भगवान् यज्ञपुरुष मैं ही हूँ, मुझसे अतिरिक्त यज्ञका भोक्ता और स्वामी हो ही कौन सकता है। इसलिये कभी कोई यज्ञ, दान और हवन आदि न करे।'

'महाराज! आप ऐसी आज्ञा दीजिये, जिससे धर्मका क्षय न हो।' प्रजापति वेनकी घोषणासे चकित होकर महर्षियोंने उसे समझाते हुए कहा। 'आपका मङ्गल हो।' देखिये, हम बड़े-बड़े यज्ञोंद्वारा जो सर्वयज्ञेश्वर देवाधिदेव श्रीहरिकी पूजा करेंगे, उसके फलका षष्ठांश आपको भी प्राप्त होगा। इस प्रकार यज्ञोंद्वारा यज्ञपुरुष भगवान् विष्णु प्रसन्न होकर हमलोगोंके साथ आपकी भी आकांक्षाओंकी पूर्ति करेंगे।'

'मुझसे भी बढ़कर मेरा पूज्य कौन है?' मदोन्मत्त वेनने महर्षियोंकी उपेक्षा करते हुए कहा—"जिसे तुम यज्ञेश्वर मानते हो, वह 'हरि' कहलानेवाला कौन है? कृपा करने और दण्ड देनेमें समर्थ सभी देवता राजाके

शरीरमें निवास करते हैं, अतएव राजा सर्वदेवमय है। इसलिये ब्राह्मणो! मेरी आज्ञाका पालन हो। कोई भी दान, यज्ञ और हवन न करे। मेरी आज्ञाका पालन ही तुमलोगोंका धर्म है।"

'इस पापात्माको मार डालो।' सर्वेश्वर हरिकी निन्दा सुनकर क्रुद्ध महर्षियोंने मन्त्रपूत कुशोंद्वारा उसे मार डाला।

माता सुनीथाने कुछ दिनोंतक अपने पुत्र वेनका मृत शरीर सुरक्षित रखा और उधर राजाके बिना चोर-डाकुओं और लुटेरोंके कारण सर्वत्र अराजकता व्याप्त हो गयी। यह स्थिति देखकर ऋषि मन्त्रोच्चारणपूर्वक वेनकी दाहिनी जङ्घाका मन्थन करने लगे। उससे जले ठूँठके समान काला, अत्यन्त नाटा और छोटे मुखवाला एक पुरुष उत्पन्न हुआ। उसने अत्यन्त आतुरतासे ब्राह्मणोंसे पूछा—'मैं क्या करूँ?'

'निषीद (बैठ)!' ब्राह्मणोंने उत्तर दिया। अतः वह 'निषाद' कहलाया। उक्त निषादरूप द्वारसे वेनका सम्पूर्ण पाप निकल गया।

इसके अनन्तर ब्राह्मणोंने पुत्रहीन राजा वेनकी भुजाओंका मन्थन किया, तब उनसे एक स्त्री-पुरुषका जोड़ा प्रकट हुआ।

'यह पुरुष भगवान् विष्णुकी विश्वपालनी कलासे प्रकट हुआ है' ऋषियोंने कहा। 'और यह स्त्री उन परम पुरुषकी शक्ति लक्ष्मीजीका अवतार है।'

''अपनी सुकीर्तिका प्रथन—विस्तार करनेके कारण यह यशस्वी पुरुष 'पृथु' नामक सम्राट् होगा।'' ऋषियोंने और बताया। ''और इस सर्वशुभलक्षणसम्पन्ना परम सुन्दरीका नाम 'अर्चि' होगा। यह सम्राट पृथुकी धर्मपत्नी होगी।'' पृथुके दाहिने हाथमें चक्र और चरणोंमें कमलका चिह्न देखकर ऋषियोंने और बताया—'पृथुके वेषमें स्वयं श्रीहरिका अंश अवतरित हुआ है और प्रभुकी नित्य सहचरी लक्ष्मीजीने ही अर्चिके रूपमें धरतीपर पदार्पण किया है।'

'महात्माओ! धर्म और अर्थका दर्शन करानेवाली अत्यन्त सूक्ष्म बुद्धि मुझे स्वत: प्राप्त हो गयी है।' इन्द्रके समान तेजस्वी नरश्रेष्ठ पृथुने कवच धारण कर रखा था। उनकी कमरमें तलवार बँधी थी। वे धनुष-

बाण लिये हुए थे। उन्हें वेद-वेदाङ्गोंका पूर्ण ज्ञान था। वे धनुर्वेदके भी विद्वान् थे। उन्होंने हाथ जोड़कर ऋषियोंसे कहा—'मुझे इस बुद्धिके द्वारा आपलोगोंकी कौन-सी सेवा करनी है? आपलोग आज्ञा प्रदान करें। मैं उसे अवश्य पूरी करूँगा।'

तब वहाँ देवताओं और महर्षियोंने उनसे कहा—

नियतो यत्र धर्मो वै तमशङ्कः समाचर॥
प्रियाप्रिये परित्यज्य समः सर्वेषु जन्तुषु।
कामं क्रोधं च लोभं च मानं चोत्सृज्य दूरतः॥
यश्च धर्मात् प्रविचलेल्लोके कश्चन मानवः।
निग्राह्यस्ते स्वबाहुभ्यां शश्वद्धर्ममवेक्षता॥
प्रतिज्ञां चाधिरोहस्व मनसा कर्मणा गिरा।
पालयिष्याम्यहं भौमं ब्रह्म इत्येव चासकृत्॥
यश्चात्र धर्मो नित्योक्तो दण्डनीतिव्यपाश्रयः।
तमशङ्कः करिष्यामि स्ववशो न कदाचन॥
अदण्ड्या मे द्विजाश्चेति प्रतिजानीहि हे विभो।
लोकं च संकरात्कृत्स्नं त्रातास्मीति परंतप॥

(महा०, शान्तिपर्व ५९। १०३—१०८)

''वेननन्दन! जिस कार्यमें निश्चितरूपसे धर्मकी सिद्धि होती हो, उसे निर्भय होकर करो। प्रिय और अप्रियका विचार छोड़कर, काम, क्रोध, लोभ और मानको दूर हटाकर समस्त प्राणियोंके प्रति समभाव रखो। लोकमें जो कोई भी मनुष्य धर्मसे विचलित हो, उसे सनातन धर्मपर दृष्टि रखते हुए अपने बाहुबलसे परास्त करके दण्ड दो। साथ ही यह भी प्रतिज्ञा करो कि 'मैं मन, वाणी और क्रियाद्वारा भूतलवर्ती ब्रह्म (वेद)-का निरन्तर पालन करूँगा। वेदमें दण्डनीतिसे सम्बन्ध रखनेवाला जो नित्य धर्म बताया गया है, उसका मैं निश्शंक होकर पालन करूँगा। कभी स्वच्छन्द नहीं होऊँगा।' परंतप प्रभो! साथ ही यह भी प्रतिज्ञा करो कि 'ब्राह्मण मेरे लिये अदण्डनीय होंगे तथा मैं सम्पूर्ण जगत्को वर्णसंकरता और धर्मसंकरतासे बचाऊँगा।''

'पूज्य महात्माओ!' आदिसम्राट् महाराज पृथुने अत्यन्त विनम्र वाणीमें ऋषियोंके आज्ञापालनका दृढ़ संकल्प व्यक्त करते हुए कहा—'महाभाग ब्राह्मण मेरे लिये सदा वन्दनीय होंगे।'

महाराज पृथुके दृढ़ आश्वासनसे ऋषिगण अत्यन्त संतुष्ट हुए। उन्होंने महाराज पृथुका अभिषेक करनेका निर्णय किया। उस समय नदी, समुद्र, पर्वत, सर्प, गौ, पक्षी, मृग, स्वर्ग, पृथ्वी तथा अन्य सभी प्राणियों और देवताओंने भी उन्हें बहुमूल्य उपहार दिये। फिर सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत महाराज पृथुका विधिवत् राज्याभिषेक

हुआ। उस समय महारानी अर्चिके साथ उनकी अद्भुत शोभा हो रही थी।

इसके अनन्तर भविष्यद्रष्टा ऋषियोंकी प्रेरणासे वन्दीजनोंने महाराज पृथुके भावी पराक्रमोंका वर्णन कर उनकी स्तुति की। महाराज पृथुने वन्दीजनोंकी प्रशंसा करते हुए उन्हें अभीष्ट वस्तुएँ देकर संतुष्ट किया; साथ ही उन्होंने ब्राह्मणादि चारों वर्णों, सेवकों, मन्त्रियों, पुरोहितों, पुरवासियों, देशवासियों तथा विभिन्न व्यवसायियों आदिका भी यथोचित सत्कार किया।

'महाराज! हमारे प्राणोंकी रक्षा करें।' भूखसे जर्जर, अत्यन्त कृशकाय प्रजाजनोंने आकर अपने सम्राट्से प्रार्थना की। हम पेटकी भीषण ज्वालासे जल रहे हैं। आप हमारे अन्नदाता प्रभु बनाये गये हैं, हम आपके शरण हैं। आप अन्नकी शीघ्र व्यवस्था कर हमारे प्राणोंको बचा लें।'

वेनके पापाचरणसे पृथ्वीका अन्न नष्ट हो गया था। सर्वत्र दुर्भिक्ष फैला हुआ था। प्राणप्रिय प्रजाके आर्त्तनादसे व्याकुल हो आदिसम्राट् महाराज सोचने लगे।

'पृथ्वीने ही अन्न एवं ओषधियोंको अपने भीतर छिपा लिया है।' यह विचार मनमें आते ही महाराज पृथु अपना 'आजगव' नामक दिव्य धनुष और दिव्य वाण लेकर अत्यन्त क्रोधपूर्वक पृथ्वीके पीछे दौड़े। उन्हें शस्त्र उठाये देखकर पृथ्वी काँप उठी और भयभीत मृगीकी भाँति गौका रूप धारणकर प्राण लेकर भागी। दिशा-विदिशा, धरती-आकाश और स्वर्गतक पृथ्वी भागती गयी; किंतु सर्वत्र उसे धनुषकी प्रत्यञ्चापर अपना तीक्ष्ण शर चढ़ाये, लाल आँखें किये अत्यन्त क्रुद्ध सम्राट् पृथु दीखे। विवश होकर अपनी प्राण-रक्षाके लिये काँपती हुई पृथ्वीने परम पराक्रमी महाराज पृथुसे कहा—'महाराज!

मुझे मारनेपर आपको स्त्री-वधका पाप लगेगा।'

'जहाँ एक दुष्टके वधसे बहुतोंकी विपत्ति टल जाती हो,' कुपित पृथुने पृथ्वीको उत्तर दिया, 'सब सुखी होते हों, उसे मार डालना ही पुण्यप्रद है।'

'नृपोत्तम!' पृथ्वी बोली—'मुझे मार देनेपर आपकी प्रजाका आधार ही नष्ट हो जायगा।' 'वसुधे! अपनी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेके कारण मैं तो तुझे मार ही डालूँगा।' प्रतापी महाराज पृथुने उत्तर दिया। 'फिर मैं अपने योगबलसे प्रजाको धारण करूँगा।'

'लोकरक्षक प्रभो!' धरणीने महाराज पृथुके चरणोंमें प्रणाम कर उनकी स्तुति की। फिर उसने कहा—'पापात्माओंके द्वारा दुरुपयोग किये जाते देखकर मैंने बीजोंको अपनेमें रोक लिया। अधिक समय होनेसे वे मेरे उदरमें पच गये हैं। आपकी इच्छा हो तो मैं उन्हें दुग्धके रूपमें दे सकती हूँ। आप प्रजाहितके लिये ऐसा बछड़ा प्रस्तुत करें, जिससे वात्सल्यवश मैं उन्हें दुग्धरूपसे निकाल सकूँ।'

'धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ महाराज!' पृथ्वीने आगे कहा—'एक बात और है। आप मुझे समतल करनेका भी कष्ट करें, जिससे वर्षा ऋतु व्यतीत होनेपर मेरे ऊपर इन्द्रका बरसाया जल सर्वत्र बना रहे। मेरी आर्द्रता सुरक्षित रहे, शुष्क न हो जाय। यह आपके लिये भी शुभकर होगा।'

पृथ्वीके उपयोगी वचन सुनकर महाराज पृथुने

स्वायम्भुव मनुको बछड़ा बना उसका दोहन करके उससे ओषधि-बीज-अन्नादिका उत्पादन किया। पृथ्वीके द्वारा सब कुछ प्रदान करनेपर महाराज पृथु बड़े प्रसन्न हुए और अत्यधिक स्नेहवश उन्होंने सर्वकामदुघा पृथ्वीको अपनी कन्याके रूपमें स्वीकार कर लिया। महाराज पृथुने पृथ्वीको समतल भी कर दिया—

मन्वन्तरेषु सर्वेषु विषमा जायते मही।
उज्जहार ततो वैन्यः शिलाजालान् समन्ततः॥
धनुष्कोट्या महाराज तेन शैला विवर्धिताः।

(महा०, शान्ति० ५९। ११५-११६)

'सभी मन्वन्तरोंमें यह पृथ्वी ऊँची-नीची हो जाती है; अतः वेनकुमार पृथुने धनुषकी कोटिद्वारा चारों ओरसे शिलासमूहोंको उखाड़ डाला और उन्हें एक स्थानपर संचित कर दिया; इसीलिये पर्वतोंकी लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई बढ़ गयी।'

न हि पूर्वविसर्गे वै विषमे पृथिवीतले।
प्रविभागः पुराणां वा ग्रामाणां वा पुराभवत्॥
न सस्यानि न गोरक्ष्यं न कृषिर्न वणिक्पथः।
वैन्यात्प्रभृति मैत्रेय सर्वस्यैतस्य सम्भवः॥

(विष्णुपुराण १। १३। ८३-८४)

'इससे पूर्व पृथ्वीके समतल न होनेसे पुर और ग्राम आदिका कोई विभाग नहीं था। हे मैत्रेय! उस समय अन्न, गोरक्षा, कृषि और व्यापारका भी कोई क्रम न था। यह सब तो वेनपुत्र पृथुके समयसे ही प्रारम्भ हुआ है।'

महाराज पृथुके राज्यमें सर्वत्र सुख-शान्ति थी। प्रजा सर्वथा निश्चिन्त रहकर अपने-अपने धर्मका पालन करती थी। वहाँ रोग-शोक नामकी कोई वस्तु नहीं थी—

न जरा न च दुर्भिक्षं नाधयो व्याधयस्तथा॥
सरीसृपेभ्यः स्तेनेभ्यो न चान्योन्यात् कदाचन।
भयमुत्पद्यते तत्र तस्य राज्ञोऽभिरक्षणात्॥

(महा०, शान्ति० ५९। १२१-१२२)

'महाराज पृथुके राज्यमें किसीको बुढ़ापा, दुर्भिक्ष तथा आधि-व्याधिका कष्ट नहीं था। राजाकी ओरसे रक्षाकी समुचित व्यवस्था होनेके कारण वहाँ कभी किसीको सर्पों, चोरों तथा आपसके लोगोंसे भय नहीं प्राप्त होता था।'

इतना ही नहीं, विष्णुके अंशावतार श्रीपृथुके शासनमें इच्छित वस्तुएँ स्वयं प्राप्त हो जाती थीं—

अकृष्टपच्या पृथिवी सिद्ध्यन्त्यन्नानि चिन्तया।
सर्वकामदुघा गावः पुटके पुटके मधु॥

(विष्णुपुराण १। १३। ५०)

'पृथ्वी बिना जोते-बोये धान्य पकानेवाली थी। केवल चिन्तामात्रसे ही अन्न सिद्ध हो जाता था, गौएँ कामधेनुरूप थीं और पत्ते-पत्तेमें मधु रहता था।'

महाराज पृथुके चरणोंमें सारा जगत् देवताके समान मस्तक झुकाता था। वे सागरकी ओर जाते तो उसका जल स्थिर हो जाता। पर्वत उन्हें मार्ग दे देते थे। उनके रथकी पताका सदा फहराती रही।

सम्राट् पृथु अत्यन्त धर्मात्मा तथा परम भगवद्भक्त थे। उन्हें विषयभोगोंकी तनिक भी इच्छा नहीं थी। सांसारिक कामनाएँ उनका स्पर्शतक नहीं कर सकी थीं। वे सदा श्रीभगवान्‌को ही प्रसन्न रखना चाहते थे। उन्होंने प्रभुको संतुष्ट करनेके लिये मनुके ब्रह्मावर्त्त क्षेत्रमें, जहाँ पुण्यतोया सरस्वती पूर्वमुखी होकर बहती हैं, सौ अश्वमेध-यज्ञोंकी दीक्षा ली। श्रीहरिकी कृपासे उस यज्ञानुष्ठानसे उनका बड़ा उत्कर्ष हुआ; किंतु यह बात देवराज इन्द्रको प्रिय नहीं लगी। सौ श्रौतयाग करनेके फलस्वरूप ही जीवको इन्द्रपद प्राप्त होता है। सुतरां ऐसी स्थितिमें दूसरा कोई 'शतक्रतु' हो जाय, यह उन्हें कैसे सहन होता। जब महाराज पृथु अन्तिम यज्ञद्वारा यज्ञपति श्रीभगवान्‌की आराधना कर रहे थे, इन्द्रने यज्ञका अश्व चुरा लिया। पाखण्डसे अनेक प्रकारके वेष बनाकर वे अश्वकी चोरी करते और महर्षि अत्रिकी आज्ञासे पृथुके महारथी पुत्र विजिताश्व उनसे अश्व छीन लाते।

जब इन्द्रकी दुष्टताका पता महाराज पृथुको चला, तब वे अत्यन्त कुपित हुए, उनके नेत्र लाल हो गये। उन्होंने इन्द्रको दण्ड देनेके लिये धनुष उठाया और उसपर अपना तीक्ष्ण बाण रखा।

'राजन्! यज्ञदीक्षा लेनेपर शास्त्रविहित यज्ञपशुके अतिरिक्त अन्य किसीका वध उचित नहीं है।' ऋत्विजोंने असह्यपराक्रम महाराज पृथुको रोकते हुए कहा। 'इस यज्ञमें उपद्रव करनेवाला आपका शत्रु इन्द्र आपकी सुकीर्तिसे ही

निस्तेज हो रहा है। हम अमोघ आवाहन-मन्त्रोंके द्वारा उसे अग्निमें हवनकर भस्म कर देते हैं। आप यज्ञमें दीक्षित पुरुषकी मर्यादाका निर्वाह करें।'

यजमान महाराज पृथुसे परामर्श करके याजकोंने क्रोधपूर्वक इन्द्रका आवाहन किया। वे स्रुवासे आहुति देना ही चाहते थे कि चतुर्मुखने उपस्थित होकर उन्हें रोक दिया। विधाताने आदिसम्राट् महाराज पृथुसे कहा—'राजन्! यज्ञसंज्ञक इन्द्र तो श्रीभगवान्‌की ही मूर्ति हैं। यज्ञके द्वारा आप जिन देवताओंको संतुष्ट कर रहे हैं, वे इन्द्रके ही अङ्ग हैं और उसे आप यज्ञद्वारा भस्म कर देना चाहते हैं! आप तो श्रीहरिके अनन्य भक्त हैं। आपको तो मोक्ष प्राप्त करना है। अतएव आपको इन्द्रपर क्रोध नहीं करना चाहिये। आप यज्ञ बन्द कर दीजिये।'

श्रीब्रह्माजीके इस प्रकार समझानेपर महाराज पृथुने यज्ञकी वहीं पूर्णाहुति कर दी। उनकी सहिष्णुता, विनय एवं निष्काम भक्तिसे भगवान् विष्णु बड़े प्रसन्न हुए। भक्तवत्सल प्रभु इन्द्रके साथ वहाँ उपस्थित हो गये। इन्द्र अपने कर्मोंसे लज्जित होकर महाराज पृथुके चरणोंमें गिरना ही चाहते थे कि महाराजने उन्हें अत्यन्त प्रीतिपूर्वक हृदयसे लगा लिया और उनके मनकी मलिनता दूर कर दी।

महाराज पृथुने त्रैलोक्यसुन्दर, भुवनमोहन भगवान् विष्णुकी ओर देखा तो उनके आनन्दकी सीमा नहीं रही। नेत्रोंमें जल भर आनेके कारण वे प्रभुका दर्शन नहीं कर पा रहे थे। श्रीभगवान्‌ने उन्हें ज्ञान, वैराग्य तथा राजनीतिके गूढ़ रहस्योंको बताते हुए कहा—

वरं च मत् कञ्चन मानवेन्द्र
वृणीष्व तेऽहं गुणशीलयन्त्रितः।
नाहं मखैर्वै सुलभस्तपोभि-
र्योगेन वा यत्समचित्तवर्ती॥

(श्रीमद्भागवत ४। २०। १६)

'राजन्! तुम्हारे गुणों और स्वभावने मुझको वशमें कर लिया है; अतः तुम्हें जो इच्छा हो, वही वर मुझसे माँग लो। उन क्षमा आदि गुणोंसे रहित यज्ञ, तप अथवा योगके द्वारा मुझको पाना सरल नहीं है; मैं तो उन्हींके हृदयमें रहता हूँ, जिनके चित्तमें समता रहती है।'

प्रभुके चरणकमल वसुन्धराको स्पर्श कर रहे थे। उनका एक करकमल गरुडजीके कन्धेपर था। महाराज पृथुने अश्रु पोंछकर प्रभुके मुखारविन्दकी ओर देखते हुए अत्यन्त विनयके साथ कहा—

वरान् विभो त्वद्वरदेश्वराद् बुधः कथं वृणीते गुणविक्रियात्मनाम्।
ये नारकाणामपि सन्ति देहिनां तानीश कैवल्यपते वृणे न च॥
न कामये नाथ तदप्यहं क्वचिन्न यत्र युष्मच्चरणाम्बुजासवः।
महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतो विधत्स्व कर्णायुतमेष मे वरः॥

(श्रीमद्भागवत ४। २०। २३-२४)

'मोक्षपति प्रभो! आप वर देनेवाले ब्रह्मादि देवताओंको भी वर देनेमें समर्थ हैं। कोई भी बुद्धिमान् पुरुष आपसे देहाभिमानियोंके भोगनेयोग्य विषयोंको कैसे माँग सकता है? वे तो नारकी जीवोंको भी मिलते ही हैं। अतः मैं इन तुच्छ विषयोंको आपसे नहीं माँगता। मुझे तो उस मोक्षपदकी भी इच्छा नहीं है, जिसमें महापुरुषोंके हृदयसे उनके मुखद्वारा निकला हुआ आपके चरणकमलोंका मकरन्द नहीं है—जहाँ आपकी कीर्ति-कथा सुननेका सुख नहीं मिलता। इसलिये मेरी तो यही प्रार्थना है कि आप मुझे दस हजार कान दे दीजिये, जिनसे मैं आपके लीला-गुणोंको सुनता ही रहूँ।'

'तुम्हारी अनुरक्ति मुझमें बनी रहे!'—इस प्रकार वरदान देकर महाराज पृथुद्वारा पूजित श्रीभगवान् अपने धामको पधारे।

× × ×

आदिराज महाराज पृथुने गङ्गा-यमुनाके मध्यवर्ती क्षेत्र प्रयागराजको अपनी निवासभूमि बना लिया था। वे सर्वथा अनासक्त भावसे तत्परतापूर्वक प्रजाका पालन करते थे। वे अनेक प्रकारके महोत्सव किया करते थे। एक बार एक महासत्रमें देवता, ब्रह्मर्षि और राजर्षि भी उपस्थित थे। उन सबका यथायोग्य स्वागत-सत्कार करनेके उपरान्त परम भागवत महाराज पृथुने सबके सम्मुख अपनी प्रजाको उपदेश देते हुए कहा—'प्रिय प्रजाजन! अपने इस राजाके पारमार्थिक हितके लिये आपलोग परस्पर दोषदृष्टि छोड़कर हृदयसे सर्वेश्वर प्रभुको स्मरण करते हुए अपने-अपने कर्तव्यका पालन करते रहिये। आपका स्वार्थ भी इसीमें है और इस प्रकार मुझपर भी आपका परम अनुग्रह होगा। इस पृथ्वीतलपर मेरे जो प्रजाजन सर्वगुरु श्रीहरिकी निष्ठापूर्वक अपने-अपने धर्मोंके द्वारा निरन्तर पूजा करते हैं, उनकी मुझपर बड़ी कृपा है।' भगवान्‌की महिमाका निरूपण

करनेके साथ ही उन्होंने क्लेशोंकी निवृत्ति तथा मोक्ष-प्राप्तिका साधन भी भगवद्भजनको ही बताया। उन्होंने सबको धर्मका उपदेश किया और अन्तमें अपनी अभिलाषा व्यक्त की कि 'ब्राह्मण-कुल, गोवंश और भक्तोंके सहित भगवान् मुझपर सदा प्रसन्न रहें।'

सभी महाराज पृथुकी प्रशंसा करने लगे। उसी समय वहाँ लोगोंने आकाशसे सूर्यके समान तेजस्वी चार सिद्धोंको उतरते देखा। परम पराक्रमी महाराज पृथुने सनकादिकुमारोंको पहचानकर इन्हें श्रेष्ठ स्वर्णासनपर बैठाया और श्रद्धा-भक्तिपूर्ण हृदयसे उनकी विधिवत् पूजा की। फिर उनके चरणोदकको अपने मस्तकपर चढ़ाया और हाथ जोड़कर अत्यन्त विनयपूर्वक उन्होंने सनकादिसे कहा—'प्रभो! आपने मेरे यहाँ पधारनेकी कृपा कर मेरा बड़ा ही उपकार किया है। मैं आपके प्रति आभार किन शब्दोंमें व्यक्त करूँ? अब आप दयापूर्वक यह बतानेका कष्ट करें कि इस धरतीपर प्राणीका किस प्रकार सुगमतासे कल्याण हो सकता है।'

महाराज पृथुपर अत्यन्त प्रसन्न होकर सनकादि कुमारोंने उन्हें धन और इन्द्रियोंके विषयोंके चिन्तनका त्याग कर भगवान्‌की भक्ति करनेका सदुपदेश दिया।

'आपलोगोंके उपकारका बदला भला, मैं कैसे दे सकता हूँ।' सनकादिके अमृतमय उपदेशोंसे उपकृत महाराज पृथुने उनकी स्तुति तथा पूजा की और वे आत्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ सनकादि महाराजके शील-गुणकी सराहना करते हुए सबके सामने ही आकाशमार्गसे प्रस्थित हुए।

इस प्रकार प्रजाके जीवन-निर्वाहकी पूरी व्यवस्था तथा साधुजनोचित धर्मका पालन करते हुए महाराज पृथुकी आयु ढलने लगी।

'अब मुझे अन्तिम पुरुषार्थ—मोक्षके लिये प्रयत्न करना चाहिये।' यों विचारकर उन्होंने अपनी पुत्रीरूपा पृथ्वीका भार अपने पुत्र*को सौंप दिया और अपनी सहधर्मिणी अर्चिके साथ वे तपस्याके लिये वनमें चले गये।

वहाँ महाराज पृथुने अत्यन्त कठोर तपस्या करते हुए सनकादिके उपदेशके अनुसार श्रीभगवान्‌में चित्त स्थिर कर लिया। इस प्रकार अपने परमाराध्य श्रीहरिमें मन लगाकर एक दिन आसनपर बैठे-बैठे ही उन्होंने योगधारणाके द्वारा अपना भौतिक कलेवर त्याग दिया।

अपने पुण्यमय पतिके तपःकालमें उनकी सुकुमारी महारानी अर्चिने अत्यन्त दुर्बल होते हुए भी उनकी प्रत्येक रीतिसे सेवा की। वे निर्जन वनमें समिधा एकत्र करतीं; कुश, पुष्प और फल एकत्र करतीं और पवित्र जल लाकर पतिके भजनमें सतत योगदान करती रहीं। जब उन्होंने पतिके निष्प्राण शरीरको देखा, तब वे करुण विलाप करने लगीं।

कुछ देरके बाद परमपराक्रमी आदिराज महाराज पृथुकी महारानी अर्चिने धैर्य धारणकर लकड़ियाँ एकत्र कीं और समीपस्थ पर्वतपर चिता तैयार की। फिर पतिके निर्जीव शरीरको स्नान कराकर उसे चितापर रख दिया। इसके अनन्तर उन्होंने स्वयं स्नान कर अपने पतिको जलाञ्जलि दी। फिर अन्तरिक्षमें उपस्थित देवताओंकी वन्दना कर उन्होंने चिताकी तीन बार परिक्रमा की और स्वयं भी प्रज्वलित अग्निमें प्रविष्ट हो गयीं।

महारानी अर्चिको अपने वीर पति पृथुका अनुगमन करते देख सहस्रों वरदायिनी देवियोंने उनकी स्तुति की। वहाँ देववाद्य बजने लगे और आकाशसे सुमन-वृष्टि होने लगी। देवाङ्गनाओंने परम सती महारानी अर्चिकी प्रशंसा करते हुए कहा—

सैषा नूनं व्रजत्यूर्ध्वमनु वैन्यं पतिं सती।
पश्यतास्मानतीत्यार्चिर्दुर्विभाव्येन कर्मणा॥
तेषां दुरापं किं त्वन्यन्मर्त्यानां भगवत्पदम्।
भुवि लोलायुषो ये वै नैष्कर्म्यं साधयन्त्युत॥

(श्रीमद्भागवत ४। २३। २६-२७)

'अवश्य ही अपने अचिन्त्य कर्मके प्रभावसे यह सती हमें भी लाँघकर अपने पतिके साथ उच्चतर लोकोंको जा रही है। इस लोकमें कुछ ही दिनोंका जीवन होनेपर भी जो लोग भगवान्‌के परमपदकी प्राप्ति करानेवाला आत्मज्ञान प्राप्त कर लेते हैं, उनके लिये संसारमें और कौन पदार्थ दुर्लभ है।'

× × × ×

पृथ्वीपर महाराज पृथु जैसे आदिराजा थे, महारानी अर्चि भी उसी प्रकार पतिके साथ सहमरण करनेवाली प्रथम सती थीं।

~~~ ○ ~~~

* अर्चिके गर्भसे पाँच योग्य पुत्र उत्पन्न हुए थे। उनके नाम थे—विजिताश्व, धूम्रकेश, हर्यक्ष, द्रविण और वृक।
~~~

(१०) भगवान् मत्स्य

प्रलयपयसि धातुः सुप्तशक्तेर्मुखेभ्यः
श्रुतिगणमपनीतं प्रत्युपादत्त हत्वा।
दितिजमकथयद् यो ब्रह्म सत्यव्रतानां
तमहमखिलहेतुं जिह्ममीनं नतोऽस्मि॥

(श्रीमद्भागवत ८। २४। ६१)

'प्रलयकालीन समुद्रमें जब ब्रह्माजी सो गये थे, उनकी सृष्टि-शक्ति लुप्त हो चुकी थी, उस समय उनके मुखोंसे निकली हुई श्रुतियोंको चुराकर हयग्रीव दैत्य पातालमें ले गया था। भगवान्‌ने उसे मारकर वे श्रुतियाँ ब्रह्माजीको लौटा दीं एवं राजर्षि सत्यव्रत तथा सप्तर्षियोंको ब्रह्मतत्त्वका उपदेश किया। उन समस्त जगत्‌के परम कारण लीला-मत्स्यभगवान्‌को मैं नमस्कार करता हूँ।'

× × ×

कृतयुगके आदिमें सत्यव्रत-नामसे विख्यात एक राजर्षि थे। ये ही वर्तमान महाकल्पमें श्राद्धदेव-नामसे प्रसिद्ध विवस्वान्‌के पुत्र हुए, जिन्हें भगवान्‌ने वैवस्वत मनु बना दिया था। राजा सत्यव्रत बड़े क्षमाशील, समस्त श्रेष्ठ गुणोंसे सम्पन्न और सुख-दुःखको समान समझनेवाले एक वीर पुरुष थे। ये पुत्रको राज्यभार सौंपकर स्वयं तपस्याके लिये वनमें चले गये और मलय पर्वतके एक शिखरपर उत्तम योगका आश्रय लेकर घोर तपमें संलग्न हो गये। दस हजार वर्ष बीतनेके पश्चात् कमलासन ब्रह्मा राजाके समक्ष प्रकट हुए और बोले—'**वरं वृणीष्व**—वर माँगो।' तब राजाने पितामहके चरणोंमें प्रणाम करके कहा—'देव! मैं आपसे केवल एक ही उत्तम वर प्राप्त करना चाहता हूँ, वह यह है कि प्रलयकाल उपस्थित होनेपर मैं चराचर समस्त भूत-समुदायकी रक्षा करनेमें समर्थ हो सकूँ।' यह सुनकर विश्वात्मा ब्रह्मा '**एवमस्तु**—यही हो' यों कहकर वहीं अन्तर्हित हो गये और देवताओंने राजापर महान् पुष्पवृष्टि की।

एक दिनकी घटना है कि राजर्षि सत्यव्रत नदीमें स्नान करके तर्पण कर रहे थे। इतनेमें ही जलके साथ एक छोटी-सी मछली उनकी अञ्जलिमें आ गयी। राजाने जलके साथ ही उसे फिरसे नदीमें डाल दिया। तब उस मछलीने बड़ी करुणाके साथ राजासे कहा—'राजन्! आप बड़े दयालु हैं। आप जानते ही हैं कि बड़े-बड़े जलजन्तु अपनी जातिवाले छोटे-छोटे जलजन्तुओंको खा जाते हैं; तब फिर आप मुझे इस नदीके जलमें क्यों छोड़ रहे हैं।' राजा सत्यव्रतने उस मछलीकी अत्यन्त दीनतापूर्ण वाणी सुनकर उसे अपने कमण्डलुमें रख लिया और आश्रमपर ले आये। एक ही रातमें वह मछली इतनी बढ़ गयी कि उसके रहनेके लिये कमण्डलुमें स्थान ही नहीं रह गया। तब वह राजासे बोली—'राजन्! अब तो इस कमण्डलुमें मेरा किसी प्रकार भी निर्वाह नहीं हो सकता, अतः मेरे सुखपूर्वक रहनेके लिये कोई बड़ा-सा स्थान नियत कीजिये।' तब राजर्षि सत्यव्रतने उस मछलीको कमण्डलुसे निकालकर एक बहुत बड़े पानीके मटकेमें रख दिया, परंतु दो ही घड़ीमें वह वहाँ भी बढ़कर तीन हाथकी हो गयी। फिर उसने राजासे कहा—'राजन्! यह मटका भी मेरे लिये पर्याप्त नहीं है, अतः मुझे सुखपूर्वक रहनेके लिये कोई दूसरा बड़ा-सा स्थान दीजिये।' राजा सत्यव्रतने वहाँसे उस मछलीको उठाकर एक बड़े सरोवरमें डाल दिया, परंतु थोड़ी ही देरमें उसने उस सरोवरके जलको भी घेर लिया और कहा—'राजन्! यह भी मेरे सुखपूर्वक रहनेके लिये पर्याप्त नहीं है।' इस प्रकार राजा उसे अन्यान्य अगाध जलराशिवाले सरोवरोंमें छोड़ते गये और
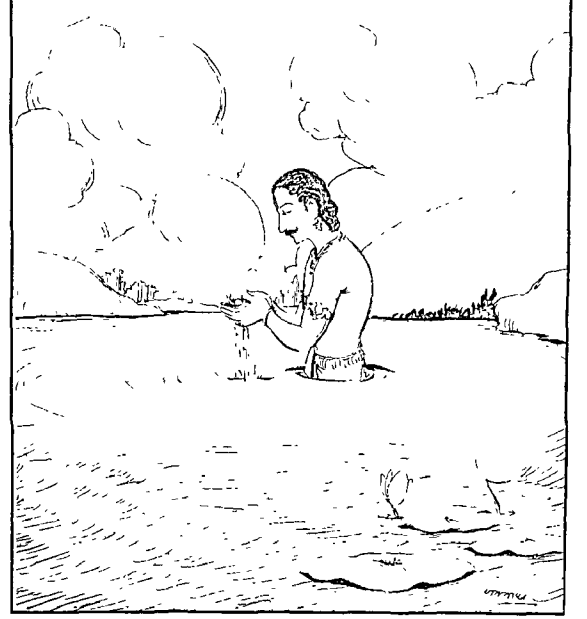
वह उन्हें अपनी शरीर-वृद्धिसे परिव्याप्त करती गयी। तब राजाने उसे समुद्रमें डाल दिया। समुद्रमें छोड़े जाते समय उस लीला-मत्स्यने कहा—'वीरवर नरेश! समुद्रमें बहुत-से विशालकाय मगरमच्छ रहते हैं, वे मुझे निगल जायँगे, अतः आप मुझे समुद्रमें मत डालिये।'

मत्स्यभगवान्‌की वह मधुर वाणी सुनकर राजा सत्यव्रतकी बुद्धि मोहाच्छन्न हो गयी। तब उन्होंने पूछा—

'हमें मत्स्यरूपसे मोहित करनेवाले आप कौन हैं? आपने एक ही दिनमें सौ योजन विस्तारवाले सरोवरको आच्छादित कर लिया। ऐसा पराक्रमशाली जलजन्तु तो हमने आजतक न देखा था और न सुना ही था। निश्चय ही आप साक्षात् सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापी अविनाशी श्रीहरि हैं। जीवोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही आपने जलचरका रूप धारण किया है। पुरुषश्रेष्ठ! आप जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके कर्ता हैं; आपको नमस्कार है। विभो! हम शरणागत भक्तोंके आप ही आत्मा और आश्रय हैं। यद्यपि आपके सभी लीलावतार प्राणियोंके अभ्युदयके लिये ही होते हैं तथापि मैं यह जानना चाहता हूँ कि आपने यह मत्स्यरूप किस उद्देश्यसे धारण किया है?'

राजाके यों पूछनेपर मत्स्यभगवान् बोले—"शत्रुसूदन! आजसे सातवें दिन भूर्लोक आदि तीनों लोक प्रलयपयोधिमें निमग्न हो जायँगे। उस समय प्रलयकालकी जलराशिमें त्रिलोकीके डूब जानेपर मेरी प्रेरणासे एक विशाल नौका तुम्हारे पास आयेगी। तब तुम समस्त ओषधियों, छोटे-बड़े सभी प्रकारके बीजों और प्राणियोंके सूक्ष्मशरीरोंको लेकर सप्तर्षियोंके साथ उस बड़ी नावपर चढ़ जाना और निश्चिन्त होकर उस एकार्णवके जलमें विचरण करना। उस समय प्रकाश नहीं रहेगा, केवल ऋषियोंके दिव्य तेजका ही सहारा रहेगा। जब झंझावातके प्रचण्ड वेगसे नाव डगमगाने लगेगी, उस समय मैं इसी रूपमें तुम्हारे निकट उपस्थित होऊँगा। तब तुम वासुकि नागके द्वारा उस नावको मेरे सींगमें बाँध देना। इस प्रकार जबतक ब्राह्मी निशा रहेगी, तबतक मैं तुम्हारे तथा ऋषियोंके द्वारा अधिष्ठित उस नावको प्रलय-सागरमें खींचता हुआ विचरण करूँगा। उस समय तुम्हारे प्रश्न करनेपर मैं उनका उत्तर दूँगा, जिनसे मेरी महिमा, जो 'परब्रह्म' नामसे विख्यात है, तुम्हारे हृदयमें प्रस्फुटित हो जायगी।' राजासे यों कहकर मत्स्यभगवान् वहीं अन्तर्हित हो गये।

राजर्षि सत्यव्रत भगवान्‌के बताये हुए उस कालकी प्रतीक्षा करने लगे। वे कुशोंको, जिनका अग्रभाग पूर्वकी ओर था, बिछाकर उसपर ईशानकोणकी ओर मुख करके बैठ गये और मत्स्यरूपधारी श्रीहरिके चरणोंका चिन्तन करने लगे। इतनेमें ही राजाने देखा कि समुद्र अपनी मर्यादाभङ्ग करके चारों ओरसे पृथ्वीको डुबाता हुआ बढ़ रहा है और भयंकर मेघ वर्षा कर रहे हैं। तब उन्होंने

भगवान्‌के आदेशका ध्यान किया और देखा कि नाव आ गयी। फिर तो राजा ओषधि, बीज और सप्तर्षियोंको साथ लेकर उस नावपर सवार हो गये। तब सप्तर्षियोंने प्रसन्न होकर कहा—'राजन्! केशवका ध्यान कीजिये। वे ही

हमलोगोंकी इस संकटसे रक्षा करके कल्याण करेंगे।' तदनन्तर राजाके ध्यान करते ही श्रीहरि मत्स्यरूप धारण करके उस प्रलयाब्धिमें प्रकट हो गये। उनका शरीर स्वर्ण-सा देदीप्यमान तथा चार लाख कोसके विस्तारवाला था। उनके एक सींग भी था। राजाने पूर्वकथनानुसार उस नावको वासुकि नागद्वारा मत्स्यभगवान्‌के सींगमें बाँध दिया और स्वयं प्रसन्न होकर उन मधुसूदनकी स्तुति करने लगे।

राजा सत्यव्रतके स्तवन कर चुकनेपर मत्स्यरूपधारी पुरुषोत्तम भगवान्‌ने प्रलय-पयोधिमें विहार करते हुए उन्हें तत्त्वज्ञानका उपदेश किया, जो 'मत्स्यपुराण' नामसे प्रसिद्ध है। तत्पश्चात् प्रलयान्तमें भगवान्‌ने हयग्रीव असुरको मारकर उससे वेद छीन लिये और ब्रह्माजीको दे दिये। भगवान्‌की कृपासे राजा सत्यव्रत ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न होकर इस कल्पमें वैवस्वत मनु हुए।

(११) भगवान् कूर्म

पृष्ठे भ्राम्यदमन्दमन्दरगिरिग्रावाग्रकण्डूयना-
न्निद्रालोः कमठाकृतेर्भगवतः श्वासानिलाः पान्तु वः।
यत्संस्कारकलानुवर्तनवशाद् वेलानिभेनाम्भसां
यातायातमतन्द्रितं जलनिधेर्नाद्यापि विश्राम्यति॥

(श्रीमद्भागवत १२।१३।२)

'जिस समय भगवान्‌ने कच्छपरूप धारण किया था और उनकी पीठपर बड़ा भारी मन्दराचल मथानीकी तरह घूम रहा था, उस समय मन्दराचलकी चट्टानोंकी नोकसे पीठके खुजलाये जानेके कारण भगवान्‌को तनिक सुख मिला। उन्हें नींद-सी आने लगी और उनके श्वासकी गति थोड़ी बढ़ गयी। उस समय उस श्वास-वायुसे जो समुद्रके जलको धक्का लगा था, उसका संस्कार आज भी उसमें शेष है। आज भी समुद्र उसी श्वास-वायुके थपेड़ोंके फलस्वरूप ज्वार-भाटोंके रूपमें दिन-रात चढ़ता-उतरता रहता है, उसे अबतक विश्राम न मिला। भगवान्‌की वही परमप्रभावशाली श्वास-वायु आपलोगोंकी रक्षा करे।'

'सुन्दरी! अपने हाथमें सुशोभित संतानक-पुष्पोंकी अत्यन्त सुगन्धित दिव्य माला मुझे दे दो।' एक बार भगवान् शंकरके अंशावतार महर्षि दुर्वासाने सानन्द पृथ्वीतलपर विचरण करते हुए एक विद्याधरीके हाथमें अत्यन्त सुवासित मालाको देखकर उससे कहा।

'मेरा परम सौभाग्य है।' विद्याधरीने महर्षिके चरणोंमें श्रद्धापूर्वक प्रणाम कर उनके कर-कमलोंमें माला देते हुए अत्यन्त विनम्रतापूर्वक मधुर वाणीमें कहा। 'मैं तो कृतार्थ हो गयी।'

महर्षिने माला लेकर अपने गलेमें डाल ली और आगे बढ़ गये। उधरसे त्रैलोक्याधिपति देवराज इन्द्र ऐरावतपर चढ़कर देवताओंके साथ आ रहे थे। महर्षि दुर्वासाने प्रसन्न होकर अपने गलेकी भ्रमरोंसे गुञ्जायमान अत्यन्त सुन्दर और सुगन्धित माला निकालकर शचीपति इन्द्रके ऊपर फेंक दी। सुरेश्वरने वह माला ऐरावतके मस्तकके ऊपर डाल दी। ऐरावतने उस भ्रमरोंकी गुंजारसे युक्त सुवासित मालाको सूँडसे सूँघा और फिर उसे पृथ्वीपर फेंक दिया। यह दृश्य देखकर महर्षि दुर्वासाके नेत्र लाल हो गये। उन्होंने अत्यन्त कुपित होकर सहस्राक्षको शाप दे दिया—

मया दत्तामिमां मालां यस्मान्न बहु मन्यसे।
त्रैलोक्यश्रीरतो मूढ विनाशमुपयास्यति॥
मद्दत्ता भवता यस्मात् क्षिप्ता माला महीतले।
तस्मात् प्रणष्टलक्ष्मीकं त्रैलोक्यं ते भविष्यति॥

(विष्णुपुराण १।९।१४, १६)

'रे मूढ! तूने मेरी दी हुई मालाका कुछ भी आदर नहीं किया, इसलिये तेरा त्रिलोकीका वैभव नष्ट हो जायगा। तूने मेरी दी हुई मालाको पृथ्वीपर फेंका है, इसलिये तेरा यह त्रिभुवन भी शीघ्र ही श्रीहीन हो जायगा।'

भयाक्रान्त शचीपति ऐरावतसे उतरकर महर्षिके चरणोंपर गिर पड़े और हाथ जोड़कर अनेक प्रकारकी स्तुतियोंसे उन्हें प्रसन्न करनेका प्रयत्न करने लगे। तव भी महर्षि दुर्वासाने कहा—

नाहं क्षमिष्ये बहुना किमुक्तेन शतक्रतो।
विडम्बनामिमां भूयः करोत्यनुनयात्मिकाम्॥

(विष्णुपुराण १।९।२४)

'शतक्रतो! तू बारम्बार अनुनय-विनयका ढोंग क्यों करता है? तेरे इस कहने-सुननेसे क्या होगा? मैं तुम्हें क्षमा नहीं कर सकता।'

महर्षि दुर्वासा वहाँसे चले गये और इन्द्र भी उदास होकर अमरावती पहुँचे। उसी क्षणसे अमरेन्द्रसहित त्रैलोक्यके वृक्ष तथा तृण-लतादि क्षीण होनेसे श्रीहत एवं विनष्ट होने लगे। त्रिलोकीके श्रीहीन एवं सत्त्वशून्य हो जानेसे प्रबल-पराक्रमी दैत्योंने अपने तीक्ष्ण अस्त्रोंसे देवताओंपर आक्रमण कर दिया। देवगण पराजित होकर भागे। स्वर्ग दानवोंका क्रीडाक्षेत्र बन गया।

असहाय, निरुपाय एवं दुर्बल देवताओंकी दुर्दशा देखकर इन्द्र, वरुण आदि देवता समस्त देवताओंके साथ सुमेरुके शिखरपर लोकपितामहके पास पहुँचे। संकटग्रस्त देवताओंके त्राणके लिये चतुरानन सबके साथ भगवान् अजितके धाम वैकुण्ठमें पहुँचे। वहाँ कुछ भी न दीखनेपर उन्होंने वेदवाणीके द्वारा श्रीभगवान्‌की स्तुति करते हुए प्रार्थना की—

स त्वं नो दर्शयात्मानमस्मत्करणगोचरम्।
प्रपन्नानां दिदृक्षूणां सस्मितं ते मुखाम्बुजम्॥

(श्रीमद्भागवत ८।५।४५)

'प्रभो! हम आपके शरणागत हैं और चाहते हैं कि मन्द-मन्द मुस्कानसे युक्त आपका मुखकमल अपने इन्हीं नेत्रोंसे देखें। आप कृपा करके हमें उसका दर्शन कराइये।'

देवताओंके स्तवनसे संतुष्ट होकर अमित तेजस्वी, मङ्गलधाम एवं नयनानन्ददाता भगवान् विष्णु मन्द-मन्द मुस्कराते हुए उन्हींके बीच प्रकट हो गये। देवताओंने पुनः दयामय, सर्वसमर्थ प्रभुकी स्तुति करते हुए अपना अभीष्ट निवेदन किया—

त्वमार्त्ताः शरणं विष्णो प्रयाता दैत्यनिर्जिताः।
वयं प्रसीद सर्वात्मंस्तेजसाप्याययस्व नः॥

(विष्णुपुराण १।९।७२)

'विष्णो! दैत्योंद्वारा परास्त हुए हमलोग आतुर होकर आपकी शरणमें आये हैं; सर्वस्वरूप! आप हमपर प्रसन्न होइये और अपने तेजसे हमें सशक्त कीजिये।'

'पुनः सशक्त होनेके लिये तुम्हें जरा-मृत्युनिवारिणी सुधा अपेक्षित है।' जगत्पति भगवान् विष्णुने मेघगम्भीर स्वरमें देवताओंसे कहा। 'अमृत समुद्र-मन्थनसे प्राप्त होगा। यह काम अकेले तुम देवताओंसे नहीं हो सकता। इसके लिये तुमलोग सामनीतिका अवलम्बन कर असुरोंसे संधि कर लो। अमृतपानके प्रश्नपर वे भी सहमत हो जायँगे। फिर समुद्रमें सारी ओषधियाँ लाकर डाल दो। इसके उपरान्त मन्दरगिरिको मथानी एवं नागराज वासुकिकी नेती बनाकर मेरी सहायतासे समुद्र-मन्थन करो। तुम्हें निश्चय ही सुफल प्राप्त होगा; पर आलस्य और प्रमाद त्यागकर शीघ्र ही अमृतप्राप्तिके लिये प्रयत्न करो।'

लीलाधारी प्रभु वहीं अन्तर्धान हो गये। इन्द्रादि देवता दैत्यराज बलिके समीप पहुँचे। बुद्धिमान् इन्द्रने

उन्हें अपने बन्धुत्वका स्मरण कराया और भगवान्‌के आदेशानुसार बलिसे अमृत-प्राप्तिके लिये समुद्र-मन्थनकी बात कही। 'अमृतमें देवताओं और दैत्योंका समान भाग होगा'—इस लाभकी दृष्टिसे दैत्येश्वर बलिने सुरेन्द्रका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। वहाँ उपस्थित अन्य सेनापति शम्बर-अरिष्टनेमि और त्रिपुरनिवासी दैत्योंने भी इसका समर्थन किया।

फिर तो धराधामकी सारी ओषधियाँ, तृण और लताएँ क्षीरसागरमें डाल दी गयीं। देवताओं और दैत्योंने अपना मतभेद त्यागकर मन्दरगिरिको उखाड़ा और उसे क्षीराब्धितटकी ओर ले चले; किंतु महान मन्दराचल उनसे अधिक दूर नहीं जा सका। विवशतः उन लोगोंने

उसे बीचमें ही पटक दिया। उस सोनेके मन्दरगिरिके गिरनेसे कितने ही देव और दैत्य हताहत हो गये।

देवों और दैत्योंका उत्साह भङ्ग होते ही भगवान् गरुडध्वज वहाँ प्रकट हो गये। उनकी अमृतमयी कृपादृष्टिसे मृत देवता पुनः जीवित हो गये और उनकी शक्ति भी पूर्ववत् हो गयी। दयाधाम सर्वसमर्थ श्रीभगवान्ने एक हाथसे धीरेसे मन्दराचलको उठाकर गरुडकी पीठपर रखा और देवता तथा दैत्योंसहित जाकर उसे क्षीरोदधि-तटपर रख दिया।

देवता और दैत्योंने महान् मन्दरगिरिको समुद्रमें डालकर नागराज वासुकिकी नेती बनायी। सर्वप्रथम अजितभगवान् नागराज वासुकिके मुखकी ओर गये। उन्हें देखकर अन्य देवता भी वासुकिके मुखकी ओर चले गये।

'पूँछ सर्पका अशुभ अङ्ग है।' दैत्योंने विरोध करते हुए कहा। 'हम इसे नहीं पकड़ेंगे।' और दैत्यगण दूर खड़े हो गये।

देवताओंने कोई आपत्ति नहीं की। वे पूँछकी ओर आ गये और दैत्यगण सगर्व मुखकी ओर जाकर सोत्साह समुद्रमन्थन करने लगे। किंतु मन्दरगिरिके नीचे कोई आधार नहीं था। इस कारण वह नीचे समुद्रमें डूबने लगा। यह देखकर अचिन्त्यशक्ति-सम्पन्न श्रीभगवान् विशाल एवं विचित्र कच्छपका रूप धारणकर समुद्रमें मन्दरगिरिके नीचे पहुँच गये। कच्छपावतार भगवान्की एक लाख योजन विस्तृत पीठपर मन्दरगिरि ऊपर उठ गया। देवता और दैत्य समुद्र-मन्थन करने लगे। भगवान् आदिकच्छपकी सुविस्तृत पीठपर मन्दरगिरि अत्यन्त तीव्रतासे घूम रहा था और श्रीभगवान्को ऐसा प्रतीत होता था, जैसे कोई उनकी पीठ खुजला रहा है।

समुद्र-मन्थनका कार्य सम्पन्न हो जाय, एतदर्थ श्रीभगवान् शक्ति-संवर्द्धनके लिये असुरोंमें असुररूपसे, देवताओंमें देवरूपसे और वासुकिनागमें निद्रारूपसे प्रविष्ट हो गये। इतना ही नहीं, वे मन्दरगिरिको ऊपरसे दूसरे महान् पर्वतकी भाँति अपने हाथोंसे दबाकर स्थित हो गये। श्रीभगवान्की इस लीलाको देखकर ब्रह्मा, शिव और इन्द्रादि देवगण स्तुति करते हुए उनके ऊपर दिव्य पुष्पोंकी वृष्टि करने लगे।

इस प्रकार कच्छपावतार श्रीभगवान्की पीठपर मन्दराचल स्थिर हुआ और उन्हींकी शक्तिसे समुद्र-मन्थन हुआ।

~~~ ० ~~~

(१२) भगवान् धन्वन्तरि

देवान् कृशानसुरसंघनिपीडिताङ्गान्
दृष्ट्वा दयालुरमृतं वितरीतुकामः।
पाथोधिमन्थनविधौ प्रकटोऽभवद्यो
धन्वन्तरिः स भगवानवतात् सदा नः॥

'असुरोंके द्वारा पीड़ित होनेसे जो दुर्बल हो रहे थे, उन देवताओंको अमृत पिलानेकी इच्छासे ही भगवान् धन्वन्तरि समुद्र-मन्थनसे प्रकट हुए थे। वे हमारी सदा रक्षा करें।'

× × ×

सागर-मन्थनका महत्त्व बतलाकर देवताओंने असुरोंको अपना मित्र बना लिया। इसके पश्चात् देव और दानवोंने मिलकर अनेक ओषधियोंको क्षीरसागरमें डाला। मन्दराचलको मथानी और वासुकिनागको रस्सी बनाकर ज्यों ही उन्होंने समुद्र-मन्थन प्रारम्भ किया, त्यों ही निराधार मन्दराचल समुद्रमें धँसने लगा। तब स्वयं सर्वेश्वर भगवान्ने कूर्मरूपसे मन्दरगिरिको अपनी पीठपर धारण किया। इतना ही नहीं श्रीभगवान्ने देवता, दानवों एवं वासुकिनागमें प्रविष्ट होकर और स्वयं मन्दराचलको ऊपरसे दबाकर समुद्र-मन्थन कराया। हलाहल, कामधेनु, ऐरावत, उच्चैःश्रवा अश्व, अप्सराएँ, कौस्तुभमणि, वारुणी, शङ्ख, कल्पवृक्ष, चन्द्रमा, लक्ष्मीजी और कदलीवृक्ष उससे प्रकट हो चुके थे। अमृत-प्राप्तिके लिये पुनः समुद्र-मन्थन होने लगा और अन्तमें हाथमें अमृत-कलश लिये भगवान् धन्वन्तरि प्रकट हुए। धन्वन्तरि साक्षात् विष्णुके अंशसे प्रकट हुए थे, इस कारण उनका स्वरूप भी मेघश्याम श्रीहरिके समान श्यामल एवं दिव्य था। चतुर्भुज धन्वन्तरि शौर्य एवं तेजसे युक्त थे।

अमृत-वितरण हो जानेपर देवराज इन्द्रने इनसे
~~~

देववैद्यका पद स्वीकार करनेकी प्रार्थना की। इन्होंने इन्द्रके इच्छानुसार अमरावतीमें निवास करना स्वीकार कर लिया। कुछ समय बाद पृथ्वीपर अनेक व्याधियाँ फैलीं। मनुष्य विभिन्न प्रकारके रोगोंसे कष्ट पाने लगे। तब इन्द्रकी प्रार्थनासे भगवान् धन्वन्तरिने काशिराज दिवोदासके रूपमें पृथ्वीपर अवतार धारण किया। इन्हें आदिदेव, अमरवर, अमृतयोनि एवं अब्ज आदि नामोंसे सम्बोधित किया गया है।

लोक-कल्याणार्थ एवं जरा आदि व्याधियोंको नष्ट करनेके लिये स्वयं भगवान् श्रीविष्णु धन्वन्तरिके रूपमें कार्तिक कृष्ण त्रयोदशीको प्रकट हुए थे, अतः आयुर्वेद-प्रेमी भगवान् धन्वन्तरिके भक्तगण एवं आयुर्वेदके विद्वान् इसी दिन प्रतिवर्ष आरोग्य-देवताके रूपमें इनकी जयन्ती मनाते हैं।

(१३) श्रीमोहिनी

जरा-मृत्युनिवारिणी सुधाकी प्राप्तिके लिये देवता और दैत्योंने मिलकर क्षीरसागरका मन्थन किया। अनेक अलौकिक वस्तुओंके अनन्तर जब श्वेतवस्त्रधारी भगवान् धन्वन्तरि अमृत-कलश लिये प्रकट हुए, तब सुधा-पानके लिये आतुर असुर उनके हाथसे अमृत-घट छीनकर भाग खड़े हुए। प्रत्येक असुर अद्भुत शक्ति एवं अमरता प्रदान करनेवाला अमृत सर्वप्रथम पी लेना चाहता था। किसीको धैर्य नहीं था। किसीका विश्वास नहीं था।

'पूरा अमृत कहीं एक ही पी गया तो?' सभी सशङ्क थे। सभी चिन्तित थे। अमृत-घट प्राप्त करनेके लिये सब परस्पर छीना-झपटी और तू-तू, मैं-मैं करने लगे।

'इस छीना-झपटीमें कहीं अमृत-कलश उलट गया और अमृत गिर गया तब?'—यह प्रश्न सबके सम्मुख था; किंतु स्वार्थके सम्मुख वस्तुस्थितिका विचार कौन करता? दैत्योंसे न्याय और धर्मकी आशा व्यर्थ थी। दुर्बल देवता दूर उदास और निराश खड़े थे। कोई समाधान नहीं था।

सहसा कोलाहल शान्त हुआ। देवता और दानवोंकी दृष्टि एक स्थानपर टिक गयी। अनुपम रूप-लावण्य-सम्पन्न लोकोत्तर रमणी सामने खड़ी थी। नखसे शिखतक—उसके अङ्ग-अङ्गपर कोटि-कोटि रतियोंका अनूप रूप न्योछावर था, सर्वथा फीका था। उन मोहिनीरूपधारी श्रीभगवान्‌को देखकर सब-के-सब मोहित, सब-के-सब मुग्ध हो गये।

'सुन्दरि! तुम उचित निर्णय कर दो।' असुरोंने अद्भुत छटा बिखेरती त्रैलोक्यमोहिनीसे कहा। 'हम सभी कश्यपके पुत्र हैं और अमृत-प्राप्तिके लिये हमने समानरूपसे श्रम किया है। तुम इसे हम दैत्य और देवताओंमें निष्पक्षभावसे वितरित कर दो, जिससे हमारा यह विवाद समाप्त हो जाय।'

'आपलोग परम पुनीत महर्षि कश्यपकी संतान हैं।' मोहिनीने मन्दस्मितसे जैसे सुधा-वृष्टि कर दी। 'और मेरी जाति और कुल-शीलसे आप सर्वथा अपरिचित हैं। फिर आपलोग मेरा विश्वासकर यह दायित्व मुझे क्यों सौंप रहे हैं?'

'हमें आपपर विश्वास है।' मोहिनीरूपधारी जगत्पति श्रीभगवान्‌के अलौकिक सौन्दर्यसे मोहित असुरोंने अमृत-घट उनके हाथमें दे दिया।

'मेरी वितरण-पद्धतिमें यदि आपलोगोंको तनिक भी आपत्ति न हो तो मैं यह कार्य कर सकती हूँ।' अत्यन्त मोहग्रस्त करनेवाली मोहिनीने आश्वासन चाहा। 'अन्यथा यह काम आपलोग स्वयं कर लें।'

'हमें कोई आपत्ति नहीं।' मोहिनीकी मधुर वाणी सुनकर दैत्योंने कहा—'आप निष्पक्षभावसे सुधा-वितरण करनेमें स्वतन्त्र हैं।'

देवता और दैत्य—दोनोंने एक दिन उपवास कर स्नान किया। नूतन वस्त्र धारणकर अग्निमें आहुतियाँ दीं। ब्राह्मणोंसे स्वस्तिपाठ कराया और पूर्वाग्र कुशोंके आसनोंपर पृथक्-पृथक् पङ्क्तिमें सब बैठ गये।

अमित सौन्दर्यराशि मोहिनीने अपने सुकोमल करकमलोंमें अमृतकलश उठाया। स्वर्णमय नूपुर झंकृत

हो उठे। देवता और असुरोंकी दृष्टि भुवनमोहिनी मोहिनीकी ओर थी। मोहिनीने मुस्कराते हुए दैत्योंकी ओर दृष्टिपात किया। वे आनन्दोन्मत्त हो गये।

मोहिनीरूपधारी विश्वात्मा प्रभुने दैत्योंकी ओर देखते और मुस्कराते हुए दूरकी पङ्क्तिमें बैठे अमरोंको अमृत-पान कराना प्रारम्भ किया। अपने वचन एवं त्रैलोक्य-दुर्लभ मोहिनीकी रूपराशिसे मर्माहत असुरगण चुपचाप अपनी पारीकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्हें लावण्यमयी मोहिनीकी प्रेम-प्राप्तिकी आशा थी, विश्वास था।

धैर्य-धारण न कर सकनेके कारण छाया-पुत्र राहु देवताओंके वेषमें सूर्य-चन्द्रके समीप बैठ गया। अमृत उसके कण्ठके नीचे उतर भी न पाया था कि दोनों देवताओंने इङ्गित कर दिया और दूसरे ही क्षण क्षीराब्धिशायी प्रभुके तीक्ष्णतम चक्रसे उसका मस्तक कटकर पृथ्वीपर जा गिरा।

चौंककर दानवोंने देखा तो मोहिनी शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी सजलमेघश्याम श्रीविष्णु बन गयी। असुरोंका मोह-भङ्ग हुआ। उन्होंने कुपित होकर शस्त्र उठाया और भयानक देवासुर-संग्राम छिड़ गया।

सम्पूर्ण सृष्टि भगवान् मायापतिकी माया है। कामके वशीभूत सभी प्रभुके उस मायारूपपर लुब्ध हैं, आकृष्ट हैं। आसुरभावसे अमरता प्रदान करनेवाला अमृत प्राप्त होना सम्भव नहीं। वह तो करुणामय प्रभुकी चरण-शरणसे ही सम्भव है—

असदविषयमङ्घ्रिं भावगम्यं प्रपन्ना-
नमृतममरवर्यानाशयत् सिन्धुमथ्यम्।
कपटयुवतिवेषो मोहयन् यः सुरारीं-
स्तमहमुपसृतानां कामपूरं नतोऽस्मि॥

(श्रीमद्भागवत ८।१२।४७)

'दुष्ट पुरुषोंको भगवान्‌के चरणकमलोंकी प्राप्ति कभी हो नहीं सकती। वे तो भक्तिभावसे युक्त पुरुषको ही प्राप्त होते हैं। इसीसे उन्होंने स्त्रीका मायामय रूप धारण करके दैत्योंको मोहित किया और अपने चरणकमलोंके शरणागत देवताओंको समुद्र-मन्थनसे निकले हुए अमृतका पान कराया। उन्हींकी बात नहीं—चाहे जो भी उनके चरणोंकी शरण ग्रहण करे, वे उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण कर देते हैं। मैं उन प्रभुके चरणकमलोंमें नमस्कार करता हूँ।'

(१४) भगवान् नृसिंह

कृतयुगकी बात है, एक बार ब्रह्माके मानस-पुत्र सनकादि, जिनकी अवस्था सदा पञ्चवर्षीय बालककी-सी ही रहती है, वैकुण्ठलोकमें जा पहुँचे। वे भगवान् विष्णुके पास जाना चाहते थे, परंतु जय-विजय नामक द्वारपालोंने उन्हें बालक समझकर भीतर जानेसे रोक दिया। तब तो ऋषियोंको क्रोध आ गया और उन्होंने शाप देते हुए कहा—'तुमलोगोंकी बुद्धि तमोगुणसे अभिभूत है, अतः तुम दोनों असुर हो जाओ। तीन जन्मोंके बाद पुनः तुम्हें इस स्थानकी प्राप्ति होगी।' ऋषि-शापवश वे ही दोनों दितिके गर्भसे हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्षके रूपमें उत्पन्न हुए। हिरण्याक्षको भगवान् विष्णुने वराहावातर धारण करके मार डाला। भाईके वधसे संतप्त हो हिरण्यकशिपु दैत्यों और दानवोंको अत्याचार करनेके लिये आज्ञा देकर स्वयं महेन्द्राचलपर चला गया। उसके हृदयमें वैरकी आग धधक रही थी, अतः वह विष्णुसे बदला लेनेके लिये घोर तपस्यामें संलग्न हो गया।

इधर हिरण्यकशिपुको तपस्या-निरत देखकर इन्द्रने दैत्योंपर चढ़ाई कर दी। दैत्यगण अनाथ होनेके कारण भागकर रसातलमें चले गये। इन्द्रने राजमहलमें प्रवेश करके राजरानी कयाधूको बंदी बना लिया। उस समय वह गर्भवती थी, इसलिये उसे वे अमरावतीकी ओर ले जा रहे थे। मार्गमें उनकी देवर्षि नारदसे भेंट हो गयी। नारदजीने कहा—'इन्द्र! इसे कहाँ ले जा रहे हो।' इन्द्रने कहा—'देवर्षे! इसके गर्भमें हिरण्यकशिपुका अंश है, उसे मारकर इसे छोड़ दूँगा।' यह सुनकर नारदजीने कहा—'देवराज! इसके गर्भमें बहुत बड़ा भगवद्भक्त है, जिसे मारना तुम्हारी शक्तिके बाहर है; अतः इसे छोड़ दो।' नारदजीके कथनका गौरव मानते हुए इन्द्र कयाधूको

छोड़कर अमरावती चले गये। नारदजी कयाधूको अपने आश्रमपर ले आये और उससे बोले—'बेटी! तुम यहाँ तबतक सुखपूर्वक निवास करो, जबतक तुम्हारा पति तपस्यासे लौटकर नहीं आ जाता।' समय-समयपर नारदजी गर्भस्थ बालकको लक्ष्य करके कयाधूको तत्त्वज्ञानका उपदेश देते रहते थे। यही बालक जन्म लेनेपर परम भागवत प्रह्लाद हुआ।

जब हिरण्यकशिपुकी तपस्यासे त्रिलोकी संतप्त हो उठी और देवताओंमें खलबली मच गयी, तब वे सब संगठित होकर ब्रह्माकी शरणमें गये और उनसे हिरण्यकशिपुको तपसे विरत करनेकी प्रार्थना की। ब्रह्मा हंसपर आरूढ़ होकर वहाँ आये, जहाँ हिरण्यकशिपु तपस्या कर रहा था। उसके शरीरको चींटियाँ चाट गयी थीं, केवल अस्थिगत प्राण अवशेष थे और एक बाँबीका आकार दीख पड़ता था। ब्रह्माने अपने कमण्डलुका जल उस बाँबीपर छिड़क दिया। उसमेंसे हिरण्यकशिपु अपने असली रूपमें निकल आया। तब ब्रह्माने कहा—'बेटा! ऐसी तपस्या तो आजतक न किसीने की है और न आगे कोई करेगा ही। अब तुम अपना अभीष्ट वर माँग लो।' यह सुनकर हिरण्यकशिपु बोला—'प्रभो! यदि आप मुझे अभीष्ट वर देना चाहते हैं तो ऐसा वर दीजिये कि आपके बनाये हुए किसी प्राणीसे—चाहे वह मनुष्य हो या पशु, प्राणी हो या अप्राणी, देवता हो या दैत्य अथवा नागादि—किसीसे भी मेरी मृत्यु न हो। भीतर-बाहर, दिनमें-रात्रिमें, आपके बनाये प्राणियोंके अतिरिक्त और भी किसी जीवसे, अस्त्र-शस्त्रसे, पृथ्वी या आकाशमें—कहीं भी मेरी मृत्यु न हो। युद्धमें मेरा कोई सामना न कर सके। मैं समस्त प्राणियोंका एकच्छत्र सम्राट् हो जाऊँ। देवताओंमें आप-जैसी महिमा मेरी भी हो और तपस्वियों एवं योगियोंके समान अक्षय ऐश्वर्य मुझे भी दीजिये।'

ब्रह्मा उसकी तपस्यासे प्रसन्न तो थे ही, अतः उसे मुँहमाँगा वरदान देकर वहीं अन्तर्धान हो गये। हिरण्यकशिपु अपनी राजधानीमें चला आया। कयाधू भी नारदजीके आश्रमसे राजमहलमें आ गयी। उसके गर्भसे भागवतरत्न प्रह्लाद उत्पन्न हुए। हिरण्यकशिपुके चार पुत्र थे। प्रह्लाद उनमें सबसे छोटे थे, अतः उनपर हिरण्यकशिपुका विशेष स्नेह था। उसने अपने गुरुपुत्र षण्ड और अम[र्क] [को] बुलवाया और शिक्षा देनेके लिये प्रह्लादको उनके ह[वाले] कर दिया। प्रह्लाद गुरु-गृहमें शिक्षा पाने लगे। कुशाग्र[बुद्धि] होनेके कारण वे गुरु-प्रदत्त शिक्षा शीघ्र ही ग्रहण [कर] लेते थे। साथ ही उनकी भगवद्भक्ति भी बढ़ती गयी। [वे] असुर-बालकोंको भी भगवद्भक्तिकी शिक्षा देते थे। [एक] दिन हिरण्यकशिपुने बड़े प्रेमसे प्रह्लादको गोदमें बैठा[कर] पुचकारते हुए कहा—'बेटा! अपनी पढ़ी हुई अच्छी-[से-]अच्छी बात सुनाओ।' तब प्रह्लादने भगवद्भक्तिकी प्रशं[सा] की। यह सुनते ही हिरण्यकशिपु क्रोधसे आगबबूला [हो] गया और उसने प्रह्लादको अपनी गोदसे उठाकर भूमि[पर] पटक दिया तथा असुरोंको उन्हें मार डालनेकी आज्ञा दी। फिर तो प्रह्लादका काम तमाम कर देनेके लि[ये] असुरोंने उनपर विभिन्न अस्त्रोंका प्रयोग किया, परंतु [वे] सभी निष्फल हो गये। तत्पश्चात् उन्हें हाथियोंसे कुचलवाय[ा], विषधर सर्पोंसे डँसवाया, पुरोहितोंसे कृत्या राक्षसी उत्प[न्न] करायी, पहाड़की चोटीसे नीचे डलवा दिया, शम्बरासुर[से] अनेक प्रकारकी मायाका प्रयोग करवाया, अँधेरी कोठरियोंमें बंद करा दिया, विष पिलाया, भोजन बंद कर दिया, बर्फीली जगह, दहकती हुई आग और समुद्रमें डलवाया, आँधीमें छोड़ दिया तथा पर्वतके नीचे दबवा दिया, परंतु किसी भी उपायसे प्रह्लादका बाल भी बाँका न हुआ।

एक दिन गुरु-पुत्रोंके शिकायत करनेपर हिरण्यकशिपुने प्रह्लादको अपने निकट बुलाया और उन्हें तरह-तरहसे डराने-धमकाने लगा। फिर उसने कहा—'रे दुष्ट! जिसके बलपर तू ऐसी बहकी-बहकी बातें बोल रहा है, तेरा वह ईश्वर कहाँ है? वह यदि सर्वत्र है तो इस खम्भेमें क्यों नहीं दिखायी देता?' तब प्रह्लादने कहा—'मुझे तो वे प्रभु खम्भेमें भी दीख रहे हैं।' यह सुनकर जब हिरण्यकशिपु क्रोधके मारे अपनेको सँभाल न सका, तब हाथमें खड्ग लेकर सिंहासनसे कूद पड़ा और बड़े जोरसे उस खम्भेमें एक घूँसा मारा। उसी समय उस खम्भेसे बड़ा भयंकर शब्द हुआ। ऐसा जान पड़ता था मानो ब्रह्माण्ड फट गया हो। उस शब्दको सुनकर हिरण्यकशिपु घबराया हुआ-सा इधर-उधर देखने लगा कि यह शब्द करनेवाला कौन है; परंतु उसे सभाके भीतर कुछ भी दिखायी न पड़ा। इतनेमें

ही वहाँ बड़ी अलौकिक घटना घटी।

सत्यं विधातुं निजभृत्यभाषितं
व्याप्तिं च भूतेष्वखिलेषु चात्मनः।
अदृश्यतात्यद्भुतरूपमुद्वहन्
स्तम्भे सभायां न मृगं न मानुषम्॥

(श्रीमद्भा० ७।८।१८)

'इसी समय अपने भृत्य प्रह्लादकी वाणी सत्य करने तथा समस्त भूतोंमें अपनी व्यापकता दिखानेके लिये सभाके भीतर उसी खम्भेमेंसे अत्यन्त अद्भुत रूप धारण करके भगवान् प्रकट हुए। वह रूप न तो समूचा सिंहका ही था और न मनुष्यका ही।'

जिस समय हिरण्यकशिपु शब्द करनेवालेकी खोज कर रहा था, उसी समय उसने खम्भेके भीतरसे निकलते हुए उस अद्भुत प्राणीको देखा। वह सोचने लगा—'अहो! यह न तो मनुष्य है न पशु, फिर यह नृसिंहके रूपमें कौन-सा अलौकिक जीव है?' जिस समय हिरण्यकशिपु इस उधेड़-बुनमें लगा हुआ था, उसी समय उसके ठीक सामने ही भगवान् नृसिंह खड़े हो गये। उनका रूप बड़ा भयावना था—

'उनकी तपाये हुए सोनेके समान पीली-पीली भयावनी आँखें थीं, चमचमाते हुए गरदनके तथा मुँहके बालोंसे उनका चेहरा भरा-भरा दीख रहा था, उनकी दाढ़ें बड़ी विकराल थीं, तलवारके समान लपलपाती हुई तथा छुरेकी धारके सदृश तीखी उनकी जीभ थी, टेढ़ी भौंहोंके कारण उनका मुख और भी भीषण था; उनके कान निश्चल एवं ऊपरकी ओर उठे हुए थे; उनकी फूली हुई नासिका और खुला हुआ मुख पर्वतकी गुफाके सदृश अद्भुत जान पड़ता था, फटे हुए जबड़ोंके कारण उसकी भीषणता बहुत बढ़ गयी थी। उनका विशाल शरीर स्वर्गका स्पर्श कर रहा था। गरदन कुछ नाटी और मोटी थी, छाती चौड़ी और कमर पतली थी, चन्द्रमाकी किरणोंके समान सफेद रोएँ सारे शरीरपर चमक रहे थे, चारों ओर सैकड़ों भुजाएँ फैली हुई थीं, जिनके बड़े-बड़े नख आयुधका काम दे रहे थे।' (श्रीमद्भा० ७।८।२०—२२) भयके मारे भगवान् नृसिंहके निकट जानेका साहस किसीको नहीं होता था। भगवान्ने चक्र आदि आयुधोंद्वारा सारे दैत्य-दानवोंको खदेड़ दिया।

तत्पश्चात् हिरण्यकशिपु सिंहनाद करता हुआ हाथमें गदा लेकर नृसिंहभगवान्पर टूट पड़ा। तब भगवान् भी कुछ देरतक उसके साथ युद्धलीला करते रहे। अन्तमें उन्होंने बड़ा भीषण अट्टहास किया, जिससे हिरण्यकशिपुकी आँखें बंद हो गयीं। तब भगवान्ने झपटकर उसे उसी प्रकार दबोच लिया, जैसे साँप चूहेको पकड़ लेता है। फिर उसे सभाके दरवाजेपर ले जाकर अपनी जाँघोंपर गिरा लिया और खेल-ही-खेलमें अपने नखोंसे उसके कलेजेको फाड़ डाला। उस समय उनकी क्रोधसे भरी आँखोंकी ओर देखा नहीं जा सकता था। वे अपनी लपलपाती हुई जीभसे दोनों जबड़ोंको चाट रहे थे। उनके मुख और गरदनके बालोंपर खूनके छींटे झलक रहे थे। उन्होंने अपने तीखे नखोंसे हिरण्यकशिपुके कलेजेको फाड़कर उसे पृथ्वीपर पटक दिया। फिर सहायतार्थ आये हुए सभी दैत्योंको उन्होंने खदेड़-खदेड़कर मार डाला। उस समय भगवान् नृसिंहके गरदनके बालोंके झटकेसे बादल तितर-बितर हो जा रहे थे। उनके नेत्रोंकी ज्वालासे सूर्य आदि ग्रहोंका तेज फीका पड़ गया। उनके श्वासके धक्केसे समुद्र क्षुब्ध हो उठे। उनके सिंहनादसे भयभीत होकर दिग्गज चिग्घाड़ने लगे। उनकी गरदनके बालोंसे टकराकर देवताओंके विमान अस्त-व्यस्त हो गये। स्वर्ग डगमगा गया, पैरोंकी धमकसे भूकम्प आ गया, वेगसे पर्वत उड़ने लगे, तेजकी चकाचौंधसे दिशाओंका दीखना बंद हो गया। उनका क्रोध बढ़ता जा रहा था। वे हिरण्यकशिपुकी राजसभामें ऊँचे सिंहासनपर विराजमान हो गये। उनकी क्रोधपूर्ण भयंकर

मुखाकृतिको देखकर किसीका भी साहस नहीं हुआ, जो निकट जाकर उन्हें प्रसन्न करनेकी चेष्टा करे।

उधर स्वर्गमें देवाङ्गनाओंको जब यह समाचार मिला कि भगवान्‌के हाथों हिरण्यकशिपुकी जीवन-लीला समाप्त हो गयी, तब वे आनन्दसे खिल उठीं और भगवान्‌पर बारंबार पुष्पोंकी वर्षा करने लगीं। इसी समय ब्रह्मा, इन्द्र, शंकर आदि देवगण, ऋषि, पितर, सिद्ध, विद्याधर, महानाग, मनु, प्रजापति, गन्धर्व, अप्सराएँ, चारण, यक्ष, किम्पुरुष, वेताल, किंनर और भगवान्‌के सभी पार्षद उनके पास आये और थोड़ी दूरपर स्थित होकर सभीने अञ्जलि बाँधकर अलग-अलग नृसिंहभगवान्‌की स्तुति की। इस प्रकार स्तवन करनेपर भी जब भगवान्‌का क्रोध शान्त नहीं हुआ, तब देवताओंने लक्ष्मीजीको उनके निकट भेजा; परंतु भगवान्‌के उस उग्र रूपको देखकर वे भी भयभीत हो गयीं और उनके पासतक न जा सकीं। तब ब्रह्माने प्रह्लादसे कहा—'बेटा! तुम्हारे पितापर ही तो भगवान् कुपित हुए थे। अब तुम्हीं जाकर उन्हें शान्त करो।' प्रह्लाद 'जो आज्ञा' कहकर भगवान्‌के निकट जा, हाथ जोड़ पृथ्वीपर साष्टाङ्ग लोट गये। अपने चरणोंमें एक नन्हेंसे बालकको पड़ा हुआ देखकर भगवान् दयार्द्र हो गये। उन्होंने प्रह्लादको उठाकर उनके सिरपर अपना करकमल रख दिया। फिर तो प्रह्लादके बचे-खुचे सभी अशुभ संस्कार नष्ट हो गये। तत्काल उन्हें परमतत्त्वका साक्षात्कार हो गया। उन्होंने भावपूर्ण हृदय तथा निर्निमेष नयनोंसे भगवान्‌को निहारते हुए प्रेम-गद्‌गद वाणीसे स्तुति की।

प्रह्लादद्वारा की गयी स्तुतिसे नृसिंहभगवान् संतुष्ट हो गये और उनका क्रोध जाता रहा। तब वे प्रेमसे भरकर प्रसन्नतापूर्वक बोले—

प्रह्राद भद्र भद्रं ते प्रीतोऽहं तेऽसुरोत्तम।
वरं वृणीष्वाभिमतं कामपूरोऽस्म्यहं नृणाम्॥
मामप्रीणत आयुष्मन् दर्शनं दुर्लभं हि मे।
दृष्ट्वा मां न पुनर्जन्तुरात्मानं तप्तुमर्हति॥
प्रीणन्ति ह्यथ मां धीराः सर्वभावेन साधवः।
श्रेयस्कामा महाभागाः सर्वासामाशिषां पतिम्॥

(श्रीमद्भा० ७।९।५२—५४)

'भद्र प्रह्लाद! तुम्हारा कल्याण हो। असुरोत्तम! मैं तुमपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम्हारी जो अभिलाषा हो, माँग लो, मैं मनुष्योंकी कामना पूर्ण करनेवाला हूँ। आयुष्मन्! जो मुझे प्रसन्न नहीं कर लेता, उसके लिये मेरा दर्शन दुर्लभ है; परंतु जब मेरे दर्शन हो जाते हैं, तब प्राणीके हृदयमें किसी प्रकारकी जलन नहीं रह जाती। मैं समस्त मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला हूँ, इसीलिये सभी कल्याणकामी परम भाग्यवान् साधुजन जितेन्द्रिय होकर अपनी समस्त वृत्तियोंसे मुझे प्रसन्न करनेका ही प्रयत्न करते हैं।'

तब प्रह्लादने कहा—'मेरे वरदानिशिरोमणि स्वामी! यदि आप मुझे मुँहमाँगा वरदान देना चाहते हैं तो ऐसी कृपा कर दीजिये कि मेरे हृदयमें कभी किसी कामनाका बीज अंकुरित ही न हो।'

यह सुनकर नृसिंहभगवान्‌ने कहा—'वत्स प्रह्लाद! तुम्हारे-जैसे एकान्तप्रेमी भक्तको यद्यपि किसी वस्तुकी अभिलाषा नहीं रहती तथापि तुम केवल एक मन्वन्तरतक मेरी प्रसन्नताके लिये इस लोकमें दैत्याधिपतिके समस्त भोग स्वीकार कर लो। यज्ञभोक्ता ईश्वरके रूपमें मैं ही समस्त प्राणियोंके हृदयमें विराजमान हूँ, अतः तुम मुझे अपने हृदयमें देखते रहना और मेरी लीला-कथाएँ सुनते रहना। समस्त कर्मोंके द्वारा मेरी ही आराधना करके अपने प्रारब्ध-कर्मका क्षय कर देना। भोगके द्वारा पुण्यकर्मोंके फल और निष्काम पुण्यकर्मोंके द्वारा पापका नाश करते हुए समयपर शरीरका त्याग करके समस्त बन्धनोंसे मुक्त होकर तुम मेरे पास आ जाओगे। देवलोकमें भी लोग तुम्हारी विशुद्ध कीर्तिका गान करेंगे। इतना ही नहीं, जो भी हमारा और तुम्हारा स्मरण करेगा, वह समस्त कर्म-बन्धनोंसे मुक्त हो जायगा।'

तदनन्तर प्रह्लादने कहा—'दीनबन्धो! मेरी एक प्रार्थना यह है कि मेरे पिताने आपको भ्रातृहन्ता समझकर आपसे और आपका भक्त जानकर मुझसे जो द्रोह किया है, उस दुस्तर दोषसे वे आपकी कृपासे मुक्त हो जायँ।'

तब नृसिंहभगवान्‌ने हिरण्यकशिपुकी पवित्रताको प्रमाणित करते हुए प्रह्लादको उसकी अन्त्येष्टि-क्रिया करनेकी आज्ञा दी और स्वयं ब्रह्माद्वारा की गयी स्तुतिको सुनकर उन्हें वैसा वर देनेसे मना करते हुए वे वहीं अन्तर्धान हो गये।

~~~ ० ~~~
~~~

(१५) भगवान् वामन

पूर्वकालकी बात है। देवताओं और दैत्योंमें युद्ध हुआ। देवता पराजित हुए। दैत्योंने स्वर्गपर अधिकार कर लिया।

इस प्रकार दैत्येश्वर बलिका आधिपत्य देखकर देवराज इन्द्र अपनी माता अदितिके सुन्दर आश्रमपर, जो सुमेरुगिरिके शिखरपर विराजमान था, पहुँचे। वहाँ दानवोंसे पराजित हुए उन सभी देवताओंने माता अदितिके निकट जाकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया और अपनी सारी कष्ट-कहानी कह सुनायी। फिर माता अदितिके आदेशानुसार इन्द्रादि देवगण परम तपस्वी मरीचिनन्दन कश्यपके समीप जा, उनके चरणोंमें प्रणाम करके हाथ जोड़कर बोले—'पिताजी! बलशाली दैत्यराज बलि युद्धमें हमारे लिये अजेय हो गया है। इसलिये कोई ऐसा उपाय कीजिये, जो हम देवताओंके लिये श्रेयस्कर और पुष्टिवर्धक हो।'

पुत्रोंकी बात सुनकर महर्षि कश्यपने देवताओंको साथ लिया और वे ब्रह्माकी परमोत्कृष्ट विशाल सभामें पहुँचे। ब्रह्माकी उस सर्वकामप्रदायिनी सभामें प्रवेश करके धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ कश्यप तथा उनके पुत्र देवराज इन्द्र और उन सभी देवताओंने पद्मासनपर विराजमान ब्रह्माका दर्शन किया और ब्रह्मर्षियोंके साथ उनके चरणोंमें सिर झुकाकर प्रणाम किया। ब्रह्माके चरणोंका स्पर्श करते ही वे सभी पापोंसे मुक्त हो गये। तब कश्यपके साथ उन सभी देवताओंको आया हुआ देखकर देवेश्वर ब्रह्माने उन्हें उत्तर दिशामें स्थित क्षीरसागरके उत्तर तटपर जाकर कठिन तप करनेकी आज्ञा दी।

पितामहकी आज्ञा स्वीकार करके देवताओंने उन्हें सिर झुकाकर प्रणाम किया और वे श्वेतद्वीपमें पहुँचनेके उद्देश्यसे उत्तर दिशाकी ओर चल पड़े। थोड़ी ही देरमें वे सरित्पति क्षीराब्धिके तटपर पहुँच गये। वहाँसे वे सातों समुद्रों, काननोंसहित पर्वतों तथा अनेकों पुण्यसलिला नदियोंको लाँघते हुए पृथ्वीके अन्तमें जा पहुँचे। वहाँ चारों ओर अन्धकार-ही-अन्धकार व्याप्त था। वहाँ महर्षि कश्यप एक निष्कण्टक स्थानपर पहुँचकर ब्रह्मचर्य एवं मौनपूर्वक वीरासनसे बैठ गये और उन्होंने सहस्र-वार्षिक दिव्य व्रतकी दीक्षा ले ली; क्योंकि उन्हें सहस्रनेत्रधारी योगाधिपति भगवान् नारायणको प्रसन्न करना था। इसी प्रकार सभी देवता क्रमशः तपस्यामें निरत हो गये। तदनन्तर महर्षि कश्यपने नारायणको रिझानेके लिये वेदोक्त 'परमस्तव' नामक स्तोत्रद्वारा उनकी स्तुति की।

इस प्रकार मरीचिपुत्र द्विजवर कश्यपद्वारा किये गये स्तवनको सुनकर भगवान् नारायणका मन प्रसन्न हो गया और उन्होंने गम्भीर वाणीमें कहा—'देवगण! आपका मङ्गल हो। आप कोई अभीष्ट वर माँग लें। मैं आपलोगोंको वर देना चाहता हूँ।'

कश्यपजीने कहा—'सुरश्रेष्ठ! यदि आप हमपर प्रसन्न हैं तो मैं सभी लोगोंके एकमतसे यह याचना कर रहा हूँ कि आप स्वयं अदितिके गर्भसे इन्द्रके छोटे भाईके रूपमें उत्पन्न हों।' उधर वरार्थिनी देवमाता अदितिने भी वरदायक भगवान्से पुत्रके लिये ही प्रार्थना की। साथ ही सभी देवताओंने भी एक साथ निवेदन किया कि 'महेश्वर'! आप हम सारे देवताओंके इसी प्रकार त्राता, भर्ता, दाता और आश्रय बनें।

भगवान् विष्णुने उन देवताओंसे कहा—"देवगण! आपलोगोंके जितने भी शत्रु होंगे, वे सभी मिलकर मेरे सामने क्षणमात्र भी नहीं ठहर सकते। मैं यज्ञभागके अग्रभोजी सारे असुरोंका संहार करके सभी देवताओंको 'हव्याशी' तथा पितृगणोंको 'कव्याशी' बनाऊँगा। सुरश्रेष्ठगण! आपलोग जिस मार्गसे आये हैं, उसी मार्गसे लौट जायँ।"

प्रभावशाली भगवान् विष्णुके यों कहनेपर उन सभी देवताओंने कश्यप और अदितिको आगे कर भगवान् विष्णुकी पूजा की और फिर उन्हें प्रणाम करके वे कश्यपाश्रमकी ओर चल पड़े। वहाँ पहुँचकर उन्होंने अदितिको समझा-बुझाकर घोर तपस्याके लिये राजी कर लिया। उस समय महर्षियोंको दैत्योंद्वारा तिरस्कृत होते देखकर अदितिके मनमें महान् निर्वेद उत्पन्न हुआ। वे सोचने लगीं कि 'मेरा पुत्र उत्पन्न करना ही व्यर्थ हो गया।' इसलिये वे इन्द्रियोंको वशमें करके शरणागतवत्सल भगवान् विष्णुकी आराधनामें तत्पर हो गयीं। उस समय वायु ही

उनका आहार था। वे उन सर्वव्यापी भगवान्‌की स्तुति करने लगीं।

अदितिके द्वारा किये गये स्तवनसे प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु सभी प्राणियोंसे अलक्षित रहते हुए अदितिके सम्मुख प्रकट हो गये और बोले—

'महाभागा अदिति! तुम्हारे हृदयमें जिस वर-प्राप्तिकी अभिलाषा है, वह मुझे ज्ञात है। धर्मज्ञे! तुम जिन-जिन वरोंको प्राप्त करनेकी इच्छा रखती हो, वे सभी मेरी कृपासे निस्सन्देह तुम्हें मिल जायँगे। मेरा दर्शन कभी निष्फल नहीं होता।'

अदितिने कहा—"भक्तवत्सल प्रभो! यदि आप मेरी भक्तिसे प्रसन्न हैं तो मुझे यह वरदान दीजिये कि 'मेरा पुत्र इन्द्र त्रिलोकीका अधिपति हो जाय और असुरोंने जो उसका राज्य तथा यज्ञभाग छीन लिया है, वह सब आपकी कृपासे मेरे पुत्रको प्राप्त हो जाय।' केशव! मेरे पुत्रका राज्य चला गया, इसका मुझे लेशमात्र भी दुःख नहीं है, परंतु यज्ञभागका छिन जाना मेरे हृदयमें शूल-सा चुभ रहा है।"

यह सुनकर भगवान् विष्णु वरदान देते हुए बोले—

कृतः प्रसादो हि मया तव देवि यथेप्सितम्।
स्वांशेन चैव ते गर्भे सम्भविष्यामि कश्यपात्॥
तव गर्भे समुद्भूतस्ततस्ते ये त्वरातयः।
तानहं च हनिष्यामि निवृता भव नन्दिनि॥

(वामनपुराण २८।१०-११)

'देवि! तुम्हारी कामनाके अनुसार ही मैं कार्य करूँगा। मैं महर्षि कश्यपके द्वारा अपने अंशसे तुम्हारे गर्भमें प्रवेश करूँगा। इस प्रकार तुम्हारे गर्भसे उत्पन्न होनेके पश्चात् जो कोई भी तुम्हारे शत्रु होंगे, उन सबका मैं संहार करूँगा। नन्दिनि! तुम शोक छोड़कर स्वस्थ हो जाओ।'

अदितिसे यों कहकर भगवान् अन्तर्हित हो गये। उस समय अदितिको यह जानकर कि स्वयं भगवान् मेरे गर्भसे जन्म लेंगे, महान् हर्ष हुआ। वह बड़े प्रेमसे अपने पतिदेव कश्यपकी सेवामें जुट गयी। कश्यपजी भी तत्त्वदर्शी थे। उन्होंने समाधियोगके द्वारा यह जान लिया कि भगवान्‌का अंश उनके अन्दर प्रविष्ट हो गया है। तब जैसे वायु लकड़ीमें अग्निका आधान करती है, उसी प्रकार कश्यपजीने समाहित चित्तसे अपनी तपस्याद्वारा चिरसंचित वीर्यका अदितिमें आधान किया। इस प्रकार भगवान् विष्णु अदितिके गर्भमें प्रविष्ट होकर क्रमशः बढ़ने लगे।'

जब ब्रह्माजीको यह बात ज्ञात हुई कि अदितिके गर्भमें स्वयं अविनाशी भगवान् आये हैं, तब उन्होंने भगवान्‌के रहस्यमय नामोंसे उनकी स्तुति की।

समय बीतते देर नहीं लगती। अन्ततोगत्वा दसवें मासमें भगवान्‌का प्राकट्य-काल उपस्थित हुआ। उस समय चन्द्रमा श्रवणनक्षत्रपर थे। भाद्रपदमासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथि थी। अभिजित् मुहूर्त्त चल रहा था। सभी नक्षत्र और तारे मङ्गलकी सूचना दे रहे थे। ऐसी शुभ वेलामें भगवान् अदितिके सामने प्रकट हुए। उस समय उनका अलौकिक रूप था—

चतुर्भुजः शङ्खगदाब्जचक्रः
पिशङ्गवासा नलिनायतेक्षणः॥
श्यामावदातो झषराजकुण्डल-
त्विषोल्लसच्छ्रीवदनाम्बुजः पुमान्।
श्रीवत्सवक्षा वलयाङ्गदोल्लस-
त्किरीटकाञ्चीगुणचारुनूपुरः॥
मधुव्रतव्रातविघुष्टया स्वया
विराजितः श्रीवनमालया हरिः।
प्रजापतेर्वेश्मतमः स्वरोचिषा
विनाशयन् कण्ठनिविष्टकौस्तुभः॥

(श्रीमद्भागवत ८।१८।१—३)

'भगवान्‌के चार भुजाएँ थीं, जिनमें शङ्ख, गदा, कमल और चक्र सुशोभित थे। शरीरपर पीताम्बर चमक रहा था। कमल-पुष्पके समान विशाल एवं सुन्दर नेत्र थे। उज्ज्वल श्यामवर्णका शरीर था। मकराकृति कुण्डलोंकी कान्तिसे मुख-कमलकी शोभा विशेषरूपसे उल्लसित हो रही थी। वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न, हाथोंमें कंगन, भुजाओंमें बाजूबन्द, मस्तकपर किरीट, कमरमें करधनीकी लड़ियाँ और पैरोंमें सुन्दर नूपुर शोभा दे रहे थे। गलेमें उनकी अपनी स्वरूपभूत वनमाला विराजमान थी, जिसके चारों ओर झुण्ड-के-झुण्ड भौंरे गुञ्जार कर रहे थे। कण्ठ कौस्तुभमणिसे विभूषित था। वे अपनी प्रभासे प्रजापति कश्यपके घरके अन्धकारका विनाश कर रहे थे।'

भगवान्‌के जन्म लेनेके समय दिशाएँ निर्मल हो गयीं।

नदी और सरोवरोंका जल स्वच्छ हो गया। प्रजाके हृदयमें आनन्दकी बाढ़ आ गयी। सब ऋतुएँ एक साथ अपना-अपना गुण प्रकट करने लगीं। स्वर्गलोक, अन्तरिक्ष, पृथ्वी, देवता, गौ, द्विज और पर्वत—इन सबके हृदयमें हर्षका संचार हो गया। सुखदायिनी शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु चलने लगी। आकाश निर्मल हो गया। सभी प्राणियोंकी बुद्धि धर्ममें प्रवृत्त हो गयी। आकाशमें शङ्ख, ढोल, मृदङ्ग,

डफ और नगारे बजने लगे। दुन्दुभियोंकी तुमुल ध्वनि होने लगी। अप्सराएँ प्रसन्न होकर नाचने लगीं। श्रेष्ठ गन्धर्व गाने लगे। मुनि, देवता, मनु, पितर और अग्नि स्तुति करने लगे। सिद्ध, विद्याधर, किम्पुरुष, किन्नर, चारण, यक्ष, राक्षस, पक्षी, मुख्य-मुख्य नागगण और देवताओंके अनुचर नाचने-गाने और भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे तथा उन लोगोंने पुष्प-वृष्टि करके उस आश्रमको ढक दिया। लोकस्रष्टा ब्रह्मा भी भावाविष्ट होकर स्तुति करने लगे।

श्रद्धा-भक्तिपूर्ण स्तुति किये जानेपर भगवान्ने चतुर्भुज रूपका परित्याग करके अपनेको वामनाकृतिमें परिवर्तित कर लिया। यह देखकर माता अदितिको महान् हर्ष हुआ तब कश्यपजीने जातकर्म आदि संस्कार किये। तदनन्तर भगवान् वामनद्वारा अपने उपनयनकी इच्छा व्यक्त किये जानेपर ब्रह्मर्षियोंने उनका उपनयन-संस्कार सम्पन्न किया। उस समय वामन वटुकको महर्षि पुलहने यज्ञोपवीत, पुलस्त्यने दो श्वेत वस्त्र, अगस्त्यने मृगचर्म, भरद्वाजने मेखला, ब्रह्मपुत्र मरीचिने पलाशदण्ड, वसिष्ठने अक्षसूत्र, अङ्गिराने कुशका बना हुआ वस्त्र, सूर्यने छत्र, भृगुने एक जोड़ी खड़ाऊँ और बृहस्पतिने कमण्डलु प्रदान किया। यों उपनीत होनेके पश्चात् वामनने अङ्गोंसहित वेदों और शास्त्रोंका अध्ययन करके एक ही मासमें उनमें निपुणता प्राप्त कर ली। तब उन्होंने महर्षि भरद्वाजसे कहा—

ब्रह्मन् व्रजामि देह्याज्ञां कुरुक्षेत्रं महोदयम्।
तत्र दैत्यपतेः पुण्यो हयमेधः प्रवर्तते॥

(वामनपुराण ८८।५२)

'ब्रह्मन्! मैं महोदय (कान्यकुब्ज) मण्डलके अन्तर्गत परम पवित्र कुरुक्षेत्रमें जाना चाहता हूँ, वहाँ दैत्यराज बलिका पवित्र अश्वमेध यज्ञ हो रहा है, उसके लिये मुझे आज्ञा दीजिये।'

यह सुनकर महर्षिने कहा—'प्रभो! मैं इस विषयमें आपको आज्ञा नहीं दे सकता। अपनी इच्छासे आप जायँ या रहें, परंतु हमलोग अब शीघ्र ही यहाँसे बलिके यज्ञमें जायँगे।' तब भगवान् वामन ब्रह्मचारीके वेषमें छत्र-दण्ड-कमण्डलु आदिसे सुसज्जित होकर दैत्यराज बलिके यज्ञमें पहुँचनेके लिये कुरुक्षेत्रकी ओर चले। उस समय देवगुरु बृहस्पति उनके आगे-आगे मार्ग दिखाते चलते थे। उनके पैर रखनेसे पृथ्वीमें गड्ढे हो जाते थे। समुद्र विक्षुब्ध हो उठे। पृथ्वी काँपने लगी। इस प्रकार वे ब्रह्मर्षियोंके साथ आगे बढ़ रहे थे।

उधर दैत्यगुरु शुक्राचार्यने अमिततेजस्वी राजा बलिको विधिपूर्वक अश्वमेध यज्ञके लिये दीक्षित कर रखा था। दैत्यराज बलि श्वेत वस्त्र धारण किये हुए थे और श्वेत पुष्पोंकी माला तथा श्वेत चन्दनसे विभूषित थे। उनकी पीठपर मोरपंखसे चिह्नित मृगचर्म बँधा हुआ था। वे हयग्रीव, क्षुर, मय और बाणासुर आदि सदस्योंसे घिरे हुए बैठे थे। उनकी पत्नी ऋषिकन्या विन्ध्यावली भी, जो सहस्रों नारियोंमें प्रधान थी, यज्ञकर्ममें दीक्षित थी। शुक्राचार्यने शुभलक्षणसम्पन्न श्वेत वर्णवाले यज्ञिय अश्वको पृथ्वीपर विचरनेके लिये छोड़ दिया था और तारकाक्ष उसकी रक्षामें नियुक्त था। इस प्रकार सुचारुरूपसे यज्ञ चल रहा था। इतनेमें ही पृथ्वी काँपने लगी। समुद्रोंमें ज्वार-भाटा उठने लगा। दिशाएँ क्षुभित हो गयीं। असुरोंने यज्ञभाग ग्रहण करना छोड़ दिया। यह देखकर बलिने शुक्राचार्यजीसे

पूछा—'गुरुदेव! सहसा ये जो उत्पात उठ खड़े हुए हैं, इसका क्या कारण है?'

तब वेदज्ञश्रेष्ठ महाबुद्धिमान् शुक्राचार्यजी दीर्घकालतक ध्यान करनेके बाद कहने लगे—'दानवश्रेष्ठ! जगद्योनि सनातन परमात्मा श्रीविष्णु वामनरूपसे कश्यपके घरमें अवतीर्ण हुए हैं। निश्चय ही वे तुम्हारे यज्ञमें आ रहे हैं। उन्हींके पादप्रक्षेपसे यह पृथ्वी चलायमान हो गयी है, पर्वत काँप रहे हैं और सागर क्षुब्ध हो उठे हैं। पृथ्वी उन जगदीश्वरको वहन करनेमें समर्थ नहीं है। उन्होंने ही देव, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और पन्नगोंसहित समूची पृथ्वीको धारण कर रखा है तथा वे ही जल, अग्नि, पवन, आकाश और समस्त देवताओं, मनुष्यों एवं असुरोंको भी धारण करते हैं। जगद्धाता विष्णुकी यह माया दुरत्यय है। उन्हींके संनिधानसे देवता यज्ञभागभोजी हो गये हैं, इसी कारण तीनों अग्नियाँ आसुर भागको ग्रहण नहीं कर रही हैं।'

शुक्राचार्यकी बात सुनकर हर्षातिरेकके कारण बलिके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। तब उन्होंने कहा—'ब्रह्मन्! मैं धन्य हूँ। मैंने पूर्वजन्ममें कोई महान् पुण्यकर्म किया है, जिसके फलस्वरूप स्वयं यज्ञपति भगवान् मेरे यज्ञमें पधार रहे हैं। भला, मुझसे बढ़कर भाग्यशाली दूसरा और कौन होगा; क्योंकि योगीलोग सदा योगयुक्त होकर जिन अविनाशी परमात्माका दर्शन करनेकी अभिलाषा करते हैं (परंतु देख नहीं पाते), वे ही भगवान् मेरे यज्ञमें पधारेंगे! इसलिये गुरुदेव! अब मेरे लिये जो कर्तव्य हो, उसका आदेश देनेकी कृपा कीजिये।'

तब शुक्रने कहा—"दैत्यराज! वेदोंके प्रमाणसे देवता ही यज्ञभागके अधिकारी हैं, किंतु तुमने दानवोंको यज्ञभागका भोक्ता बना दिया है। ये भगवान् देवताओंका कार्य सम्पन्न करना चाहते हैं, अतः जब वे देवोंकी उन्नतिके लिये उद्यत होकर तुमसे कोई याचना करें तो तुम्हें यही कहना चाहिये कि 'देव! मैं यह देनेमें समर्थ नहीं हूँ'।"

यह सुनकर बलिने उत्तर दिया—"ब्रह्मन्! जब मैं किसी याचकको निराश नहीं करता, तब भला, संसारके पाप-समूहको नष्ट करनेवाले देवेश्वर विष्णुद्वारा कुछ माँगे जानेपर मैं '**नास्ति**'—'नहीं है' कैसे कह सकता हूँ? जो भगवान् श्रीहरि विभिन्न प्रकारके व्रतोपवासोंद्वारा प्राप्त किये जाते हैं, वे ही गोविन्द मुझसे याचना करें—इससे बढ़कर मेरा और कौन-सा सौभाग्य होगा? अहो! शौचादिगुणसम्पन्न पुरुषोंद्वारा जिनकी प्रसन्नताके लिये अनेक यज्ञानुष्ठान किये जाते हैं, वे ही भगवान् मुझसे याचना करेंगे! पूर्वजन्ममें मैंने कोई श्रेष्ठ पुण्यकर्म और उत्तम तपस्या की है, जो मेरे दिये हुए दानको स्वयं श्रीहरि ग्रहण करेंगे। गुरो! परमेश्वरके पधारनेपर '**नास्ति**'—'नहीं है' यह मैं कैसे कह सकता हूँ? मैं प्राणोंका विसर्जन भले ही कर दूँगा, परंतु '**नास्ति**' किसी प्रकार नहीं कह सकता। यदि इस यज्ञमें भगवान् यज्ञेश मुझसे याचना करते हैं तो निश्चय ही मेरा मनोरथ पूर्ण हो गया। यदि वे गोविन्द मुझसे माँगेंगे तो मैं बिना आगा-पीछा सोचे अपना मस्तक भी उन्हें समर्पित कर दूँगा। इससे अधिक और क्या कहूँ? महाभाग! मेरे राज्यमें कोई दुःखी, दरिद्र, आतुर, वस्त्ररहित, उद्विग्न अथवा विषादयुक्त नहीं है। सभी लोग हृष्ट-पुष्ट, संतुष्ट, सुगन्धित वस्तुओंसे युक्त और सम्पूर्ण गुणोंसे सम्पन्न हैं। यह मुझे विशिष्ट दानरूपी बीजके फलरूपमें प्राप्त हुआ है। मुनिशार्दूल! इसका ज्ञान मुझे आपके मुखसे ही प्राप्त हुआ है। गुरो! यह श्रेष्ठ दान-बीज यदि महान् पात्र जनार्दनके हाथमें पड़ जाय तो बताइये, मुझे क्या नहीं मिल गया? मेरा वह दान सर्वोत्तम होगा। और कहा जाता है कि दान उपभोगसे सौगुना अधिक सुखदायी होता है। निश्चय ही यज्ञसे पूजित हुए श्रीहरि मुझपर प्रसन्न हैं, इसीलिये निस्सन्देह वे दर्शन देकर मेरा कल्याण करनेके लिये आ रहे हैं अथवा यदि वे क्रुद्ध होकर देवभागमें रुकावट डालनेवाले मुझको मारनेके लिये ही आ रहे हैं, तो भी उन अच्युतके हाथसे मारा जाना मेरे लिये श्लाघ्यतम होगा। किंतु भला, वे हृषीकेश मेरा वध क्यों करेंगे? मुनिश्रेष्ठ! यह जानकर जगदीश्वर गोविन्दके आनेपर आपको दानमें विघ्नकारक नहीं बनना चाहिये।"

यह सुनकर महर्षि शुक्राचार्य कुपित हो उठे और बलिको शाप देते हुए बोले—

दृढं पण्डितमान्यज्ञः स्तब्धोऽस्यस्मदुपेक्षया।
मच्छासनातिगो यस्त्वमचिराद् भ्रश्यसे श्रियः॥

(श्रीमद्भागवत ८।२०।१५)

'मूर्ख! है तो तू अज्ञानी! परंतु अपनेको महान

पण्डित समझता है। तुझे गर्व हो गया है, इसी कारण तू मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन कर रहा है। मेरी उपेक्षा करनेके कारण तू शीघ्र ही अपनी राजलक्ष्मीसे भ्रष्ट हो जायगा।'

महर्षि शुक्राचार्य यों कह ही रहे थे, तबतक भगवान् वामन देवगुरु बृहस्पतिको आगे करके सुरगणोंके साथ उस यज्ञशालामें आ पहुँचे। तब बलिने अपने पुरोहित शुक्राचार्यसे फिर कहा—'ब्रह्मन्! जो सभी प्राणियोंके हृदयके साक्षी, सर्वदेवमय और अचिन्त्य हैं, वे ही भगवान् जनार्दन मायासे वामनरूप धारण करके मुझसे इच्छानुसार याचना करनेके लिये मेरे घर पधारे हैं!' इस प्रकार वामनभगवान्को यज्ञशालामें प्रविष्ट हुआ देखकर उनके प्रभावसे सभी असुरगण विक्षुब्ध हो उठे और उनके तेजसे उन सबकी कान्ति फीकी पड़ गयी तथा उस महायज्ञमें पधारे हुए वसिष्ठ, विश्वामित्र, गर्ग और अन्यान्य महर्षि भयसे थर्रा उठे; परंतु बलिने अपना जन्म सफल माना। उस समय संक्षुब्ध होनेके कारण कोई किसीसे कुछ बोल न सका। सभीने उन देवदेवेश्वरकी पूजा की। तब असुरराज बलि तथा मुनीश्वरोंको विनम्र हुआ देखकर देवदेवेश्वर वामनरूपधारी साक्षात् विष्णु उस यज्ञ, अग्नि, यजमान, ऋत्विज, यज्ञकर्माधिकारी सदस्य और द्रव्य-सम्पत्ति आदिकी प्रशंसा करने लगे। यह सुनकर सभी ब्राह्मणोंने उन्हें साधुवाद दिया। तत्पश्चात् जिनके शरीरमें हर्षके मारे रोमाञ्च हो रहा था, वे राजा बलि अर्घ्य लेकर गोविन्दकी पूजा करने लगे। उस समय महारानी विन्ध्यावली झारी लेकर जल गिरा रही थीं और बलि वामनभगवान्के पद पखार रहे थे। यह देखकर चतुर्दिक बलिके भाग्यकी सराहना हो रही थी। दैत्यराज बलिने उस चरणोदकको अपने सिरपर धारण करके भगवान्से कहा—'विप्रवर! सुनिये, सुवर्ण और रत्नोंके ढेर, गज, महिष, स्त्रियाँ, वस्त्र, अलंकार, गौएँ, अन्य बहुत-सी धातुएँ और सारी पृथ्वी—मेरी इन सम्पत्तियोंमें जो भी आपको प्रिय लगे अथवा जो अभीप्सित हो, उसे कहिये, मैं सब देनेके लिये तैयार हूँ।'

दैत्याधिप बलिके ये प्रेमभरे वचन सुनकर वामनरूपधारी भगवान् विष्णु मुसकराते हुए गम्भीर वाणीमें बोले—

ममाग्निशरणार्थाय देहि राजन् पदत्रयम्।
सुवर्णग्रामरत्नादि तदर्थिभ्यः प्रदीयताम्॥

(वामनपुराण ३१।४४)

'राजन्! सुवर्ण, ग्राम, रत्न आदि पदार्थ उनकी याचना करनेवालोंको दीजिये। मुझे तो अग्निहोत्रके लिये केवल तीन पग भूमि प्रदान कीजिये।'

तब बलिने कहा—'मानवश्रेष्ठ! तीन पग भूमिसे तुम्हारा क्या प्रयोजन सिद्ध होगा? अरे! सैकड़ों हजारों पग क्यों नहीं माँग लेते?'

यह सुनकर भगवान् वामन बोले—

एतावता दैत्यपते कृतकृत्योऽस्मि मार्गणे।
अन्येषामर्थिनां वित्तमिच्छया दास्यते भवान्॥

(वामनपुराण ३१।४६)

'दैत्यपते! मैं तो इतना पाने (इन तीन पगोंकी याचना)-से ही कृतकृत्य हूँ। आप अन्य याचकोंको उनके इच्छानुसार धन दीजियेगा।'

वामनके वचन सुनकर बलि अपनी पत्नी विन्ध्यावली तथा पुत्र बाणासुरकी ओर दृष्टिपात करके कहने लगा—'देखो न; यह केवल शरीरसे ही वामन नहीं है, इसे वस्तुएँ भी छोटी ही प्रिय हैं, जो मुझ-जैसे व्यक्तिसे तीन पगमात्र भूमि माँग रहा है। ठीक है, जिसका भाग्य विपरीत हो जाता है, उस मन्दबुद्धि पुरुषको विधाता अधिक धन नहीं देते। इसी कारण यह मुझ-जैसे दातासे भी तीन पग भूमि माँग रहा है।' पत्नी और पुत्रसे यों कहकर सुरारि बलिने पुनः भगवान् वामनसे कहा—'विष्णो! हाथी, घोड़े, पृथ्वी, दासियाँ और सुवर्ण आदि जो पदार्थ और जितनी मात्रामें अभीप्सित हो, मुझसे माँग लें। विष्णो! आप याचक हैं और मैं जगत्पति दाता हूँ—ऐसी दशामें तीन पग भूमि दान करनेमें मुझे लज्जा कैसे नहीं होगी। इसलिये वामन! जरा स्वस्थचित्त होकर याचना करें। मैं रसातल, भूलोक अथवा स्वर्गलोक—इनमेंसे कौन-सा लोक आपको प्रदान करूँ?'

तब वामनभगवान्ने कहा—

गजाश्वभूहिरण्यादि तदर्थिभ्यः प्रदीयताम्।
एतावता त्वहं चार्थी देहि राजन् पदत्रयम्॥

(वामनपुराण ९१।१६)

'राजन्! हाथी, घोड़े, भूमि, सुवर्ण आदि उन-उन वस्तुओंके याचकोंको दीजिये; मैं तो इतनेकी ही याचना करता हूँ, इसलिये मुझे तीन पग (भूमि) प्रदान कीजिये।

महात्मा वामनके यों कहनेपर बलिने गड्डुएसे जल लेकर उन्हें तीन पग भूमि दान करनेका संकल्प किया।

उसी समय एक अद्भुत घटना घटी। भगवान्‌के हाथमें संकल्पका जल पड़ते ही वे वामनसे अवामन हो गये और उसी क्षण उन्होंने अपना सर्वदेवमय रूप प्रकट कर दिया। अब वे अखिल ज्योति तथा परमोत्कृष्ट तपकी मूर्ति थे।

भगवान् विष्णुके उस सर्वदेवमय रूपको देखकर महाबली दैत्य उसी प्रकार उनके निकट नहीं जा सके, जैसे फतिंगे अग्निके। इसी बीच महादैत्य चिक्षुरने भगवान्‌के पादाङ्गुष्ठको दाँतोंसे पकड़ लिया। तब श्रीहरिने अङ्गुष्ठसे ही उसकी ग्रीवापर प्रहार किया और पैरों तथा हाथोंके तलवोंसे ही सारे असुरोंको मार डाला। तत्पश्चात् उन्होंने एक पगसे चराचरसहित पृथ्वी अपने अधिकारमें कर ली। पुनः दूसरा पग ऊपर बढ़ानेपर उस महारूपके दाहिने चन्द्रमा और बायें सूर्य आ गये। इस प्रकार आधे पगसे उन्होंने स्वर्ग, महः, जन और तपोलोकको तथा आधेसे समूचे आकाशको आच्छादित कर लिया। तीसरे पगको आगे बढ़ानेपर वह ब्रह्माण्डोदरका भेदन करके निरालोक प्रदेशमें जा पहुँचा। इसी समय भगवान्‌के पैरके आगे बढ़नेसे अण्डकटाहके फूट जानेसे विष्णुपदसे जलकी बूँदें झरने लगीं। इसीलिये तापस लोक इसे 'विष्णुपदी' कहकर इसकी स्तुति करते हैं। इस प्रकार तीसरे पगके पूर्ण न होनेपर सर्वव्यापी भगवान् विष्णु बलिके निकट आकर क्रोधावेशमें होंठको कुछ कँपाते हुए यों बोले—

'दैत्येन्द्र! अब तो तुम ऋणी हो गये, जिसके परिणामस्वरूप घोर बन्धनकी प्राप्ति होती है। इसलिये या तो तुम मेरा तीसरा पग पूरा करो अन्यथा मेरे बन्धनमें आ जाओ।' (वामनपुराण ९१। ३५)

भगवान्‌के इस वचनको सुनकर बलि-पुत्र बाणासुर हँसने लगा और उन देवेश्वरसे हेतुयुक्त वचन बोला—'जगत्पते! आप तो स्वयं भुवनेश्वरोंके विधाता हैं, फिर भी थोड़ी-सी पृथ्वीकी याचना करके मेरे पितासे इतनी विस्तृत भूमि क्यों माँग रहे हैं? विभो! आपने जितनी पृथ्वीकी सृष्टि की थी, उतनी-की-उतनी मेरे पिताने आपको दे डाली। अब वाक्चातुर्यसे आप उन्हें क्यों बाँध रहे हैं? इन दैत्यराजने पहले जिस शक्तिसे आपके सामने प्रतिज्ञा की थी, उसी शक्तिसे ये अब भी पूजा करनेमें समर्थ हैं। इसलिये प्रभो! इनपर कृपा कीजिये; बन्धनकी आज्ञा मत दीजिये। श्रुतियोंमें आपके ही कहे हुए ऐसे वचन मिलते हैं कि उत्तम पात्र, पवित्र देश और पुण्यकालमें दिया हुआ दान विशेष सुखदायक होता है। वह पूरा-का-पूरा आप चक्रपाणिमें वर्तमान है। जैसे—भूमिका दान है, सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले अजितात्मा देवदेवेश्वर आप पात्र हैं, ज्येष्ठा और मूल नक्षत्रोंके योगमें चन्द्रमा वर्तमान हैं—ऐसा पुण्यकाल है और कुरुक्षेत्र-जैसा प्रसिद्ध पुण्यदेश है। देव! आप तो स्वयं श्रुतियोंके आदिकर्ता और व्यवस्थापक हैं; ऐसी दशामें भला, मुझ-जैसा मन्दबुद्धि व्यक्ति आपको उचित-अनुचितकी शिक्षा कैसे दे सकता है। लोकनाथ! जब आपने वामनरूपसे तीन पग भूमिकी याचना की है, तब फिर लोकवन्दित विश्वमयरूपसे उसे क्यों ग्रहण कर रहे हैं? आप कृपया उसी रूपसे दान भी ग्रहण कीजिये। विष्णो! ऐसी स्थितिमें आप मेरे पिताको क्यों बाँध रहे हैं? फिर भी विभो! जैसी आपकी इच्छा हो, वैसा कीजिये।'

बलिपुत्र बाणके तर्कोंको सुनकर भगवान् वामनने उनका उत्तर दिया—"बलिनन्दन! तुमने जो अभी-अभी बातें कहीं हैं, उनका सारयुक्त उत्तर देता हूँ, सुनो। मैंने पहले तुम्हारे पितासे कहा था—'राजन्! मुझे मेरे प्रमाणसे तीन पग भूमि प्रदान कीजिये।' अतः मैंने उसीका पालन किया है। क्या तुम्हारे पिता असुरराज बलि मेरे प्रमाणको नहीं जानते थे, जो

इन्होंने निश्शङ्क होकर मेरे शरीरके मापके अनुसार तीन पग भूमि दान कर दी? अरे, यदि मैं चाहूँ तो एक ही डगसे भूः, भुवः आदि सभी लोकोंको नाप लूँ। मैंने तो बलिके हितके लिये ही इन्हें दो पगसे नापा है। इसलिये तुम्हारे पिताने जो मेरे हाथमें संकल्पका जल दिया है, उसके प्रभावसे मैंने उसे एक कल्पकी आयु प्रदान की है।'' बलिकुमार बाणसे यों कहकर भगवान् त्रिविक्रमने बलिसे मधुर वाणीमें कहा—

इन्द्रसेन महाराज याहि भो भद्रमस्तु ते।
सुतलं स्वर्गिभिः प्रार्थ्यं ज्ञातिभिः परिवारितः॥
न त्वामभिभविष्यन्ति लोकेशाः किमुतापरे।
त्वच्छासनातिगान् दैत्यांश्चक्रं मे सूदयिष्यति॥
रक्षिष्ये सर्वतोऽहं त्वां सानुगं सपरिच्छदम्।
सदा सन्निहितं वीर तत्र मां द्रक्ष्यते भवान्॥

(श्रीमद्भागवत ८।२२।३३—३५)

'महाराज इन्द्रसेन! तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम अपने भाई-बन्धुओंके साथ उस सुतललोकमें जाओ, जिसे स्वर्गवासी भी चाहते रहते हैं। बड़े-बड़े लोकपाल भी अब तुम्हें पराजित नहीं कर सकते, दूसरोंकी तो बात ही क्या है। तुम्हारी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेवाले दैत्योंको मेरा चक्र छिन्न-भिन्न कर डालेगा। मैं तुम्हारी, तुम्हारे अनुचरोंकी और भोग-सामग्रीकी भी सब प्रकारसे रक्षा करूँगा। वीरवर! तुम मुझे वहाँ सदा अपने पास ही देखोगे।'

मधुसूदनने इस प्रकार दैत्यराज बलिसे कहकर पत्नी-पुत्रसहित उसे विदा कर दिया और स्वयं पृथ्वीको लेकर ब्रह्मा और देवगणोंके साथ तुरंत ही इन्द्रके पास पहुँचे। वहाँ वे इन्द्रको स्वर्गका अधिपति और देवगणोंको यज्ञभागभोजी बनाकर सबके देखते हुए अन्तर्हित हो गये।

(१६) भगवान् हयग्रीव

पृथ्वीके एकार्णवमें विलीन हो जानेपर विद्याशक्तिसे सम्पन्न भगवान् विष्णु योगनिद्राका आश्रय लेकर शेषनागपर शयन कर रहे थे। प्रभुकी नाभिसे सहस्रदल पद्म प्रकट हुआ। उक्त सहस्रदल कमलपर सम्पूर्ण लोकोंके पितामह, लोकस्रष्टा, सिन्दूरारुण भगवान् हिरण्यगर्भ व्यक्त हुए। परम तेजस्वी ब्रह्माने दृष्टिपात किया तो चतुर्दिक् जल-ही-जल था। जिस पद्मपत्रपर लोकस्रष्टा बैठे थे, उसपर क्षीरोदधिशायी श्रीनारायणकी प्रेरणासे पहलेसे ही रजोगुण और तमोगुणकी प्रतीक जलकी दो बूँदें पड़ी थीं।

उनमेंसे एक बूँदपर आद्यन्तहीन श्रीभगवान्की दृष्टि पड़ी तो वह तमोमय मधु नामक दैत्यके रूपमें परिणत हो गयी। वह दैत्य मधुके रंगका अत्यन्त सुन्दर था। जलकी दूसरी बूँद भगवान्के इच्छानुसार दूसरे अत्यन्त शक्तिशाली एवं पराक्रमी दैत्यके रूपमें व्यक्त हुई। उसका नाम 'कैटभ' पड़ा। दोनों ही दैत्य अत्यन्त वीर एवं बलवान् थे।

कमल-नालके सहारे वे दैत्यद्वय वहाँ पहुँच गये, जहाँ अत्यन्त तेजस्वी ब्रह्मा बैठे हुए थे। लोक-पितामह सृष्टि-रचनामें प्रवृत्त थे और उनके समीप ही अत्यन्त सुन्दर स्वरूप धारण किये हुए चारों वेद थे। उन महाबली, महाकाय, श्रेष्ठ दैत्योंकी दृष्टि वेदोंपर पड़ते ही उन्होंने वेदोंका हरण कर लिया। श्रुतियोंको लेकर वे पूर्वोत्तर महासागरमें प्रविष्ट होकर रसातलमें पहुँच गये।

'वेद ही मेरे नेत्र, वेद ही मेरी अद्भुत शक्ति, वेद ही मेरे परम आश्रय एवं वेद ही मेरे उपास्य देव हैं।' श्रुतियोंको अपने समीप न देखकर विधाता अत्यन्त दुःखी होकर मन-ही-मन विलाप करने लगे। 'वेदोंके नष्ट हो जानेसे आज मुझपर भयानक विपत्ति आ पड़ी है। इस समय कौन मेरा दुःख दूर करेगा? वेदोंका उद्धार कौन करेगा?' फिर उन्होंने सर्वान्तर्यामी और सर्वसमर्थ श्रीनारायणसे प्रार्थना की। ब्रह्माजीने कहा—

'कमलनयन! आपका पुत्र मैं शुद्ध सत्त्वमय शरीरसे उत्पन्न हुआ हूँ। आप ईश्वर, स्वभाव, स्वयम्भू एवं पुरुषोत्तम हैं। आपने मुझे वेदरूपी नेत्रोंसे युक्त बनाया है। आपकी ही कृपासे मैं कालातीत हूँ—मुझपर कालका वश नहीं चलता। मेरे नेत्ररूप वे वेद दानवोंद्वारा हर लिये गये हैं; अतः मैं अन्धा-सा हो गया हूँ। प्रभो! निद्रा त्यागकर जागिये। मुझे मेरे नेत्र वापस दीजिये; क्योंकि मैं आपका प्रिय भक्त हूँ और आप मेरे प्रियतम स्वामी हैं।' (महा०, शान्तिपर्व अ० ३४७)

हिरण्यगर्भकी यह श्रद्धा-भक्तिपूर्ण करुण स्तुति सुनकर देवदेवेश श्रीनारायण तत्क्षण अपनी निद्रा त्यागकर जग गये। श्रुतियोंका उद्धार करनेके लिये वे सर्वात्मा परम प्रभु अत्यन्त सुन्दर एवं कान्तिमान् हयग्रीवके रूपमें प्रकट हुए।

प्रभुकी गर्दन और मुखाकृति घोड़ेकी-सी थी। उनका वह परमपवित्र मुखारविन्द वेदोंका आश्रय था। तारकखचित स्वर्ग उनका मस्तक था और अंशुमालीकी रश्मियोंके तुल्य उनके बाल चमक रहे थे। आकाश-पाताल उनके कान, पृथ्वी ललाट, गङ्गा और सरस्वती उनके नितम्ब तथा दो सागर उनके भ्रू थे। सूर्य और चन्द्र उनके नेत्र, संध्या नासिका, ओंकार संस्कार (आभूषण) और विद्युत् जिह्वा थी। पितर उनके दशन, ब्रह्मलोक उनके ओष्ठ तथा कालरात्रि उनकी ग्रीवा थी।

इस प्रकार अत्यन्त अद्भुत, अत्यन्त तेजस्वी, अत्यन्त शक्तिशाली, अत्यन्त पराक्रमी एवं अत्यन्त बुद्धि-वैभव-सम्पन्न, आदि-अन्तसे रहित भगवान्ने श्रीहयग्रीवका रूप धारणकर महासमुद्रमें प्रवेश किया और वे रसातलमें जा पहुँचे।

वहाँ भगवान् श्रीहयग्रीवने सामगानका सस्वर गान शुरू किया। भगवान्की लोकोपकारिणी मधुर ध्वनि रसातलमें सर्वत्र फैल गयी। मधु और कैटभ दोनों दैत्योंने भी सामगानका वह चित्ताकर्षक स्वर सुना तो उन्होंने वेदोंको कालपाशमें बाँधकर रसातलमें फेंक दिया और उक्त मङ्गलकारिणी मधुर ध्वनिकी ओर दौड़ पड़े।

भगवान् हयग्रीवने अच्छा अवसर देखा। उन्होंने तुरन्त वेदोंको रसातलसे निकालकर ब्रह्माको दे दिया और पुनः महासागरके पूर्वोत्तर भागमें वेदोंके आश्रय अपने हयग्रीवरूपकी स्थापना कर पुनः पूर्वरूप धारण कर लिया। भगवान् हयग्रीव वहीं रहने लगे।

मधु और कैटभने देखा, जहाँसे मधुर ध्वनि आ रही थी, वहाँ तो कुछ भी नहीं है। अतएव वे पुनः बड़े वेगसे रसातलमें पहुँचे। वहाँ वेदोंको न पाकर वे अत्यन्त आश्चर्यचकित एवं क्रुद्ध हुए। शत्रुको ढूँढ़नेके लिये वे दोनों दैत्य तत्काल अत्यन्त शीघ्रतासे रसातलके ऊपर पहुँचे तो वहाँ उन्होंने देखा कि महासागरकी विशाल लहरोंपर चन्द्रमाके तुल्य गौर वर्णके सुन्दरतम भगवान् श्रीनारायण शेषनागकी शय्यापर अनिरुद्ध-विग्रहमें शयन कर रहे हैं।

'निश्चय ही इसीने रसातलसे वेदोंको चुराया है।' दैत्योंने अट्टहास करते हुए कहा। 'पर यह है कौन? किसका पुत्र है? यहाँ कैसे आया? और यहाँ सर्पशय्यापर क्यों शयन कर रहा है?'

मधु-कैटभने अत्यन्त कुपित होकर भगवान् श्रीनारायणको जगाया। त्रैलोक्यसुन्दर विष्णुने नेत्र खोलकर चारों ओर देखा तो उन्होंने समझ लिया कि ये दैत्य युद्ध करनेके लिये कटिबद्ध हैं।

भगवान् उठे और उनका मधु और कैटभ दोनों महान् दैत्योंसे भयानक संग्राम छिड़ गया। श्रीविष्णुका उन अत्यन्त पराक्रमी दैत्योंसे पाँच सहस्र वर्षोंतक केवल बाहुयुद्ध चलता रहा। वे अपनी महान् शक्तिके मदसे उन्मत्त तथा श्रीभगवान्की महामायासे मोहमें पड़े हुए थे। उनकी बुद्धि भ्रमित हो गयी।

तब हँसते हुए श्रीहरिने कहा—'अबतक मैं कितने ही दैत्योंसे युद्ध कर चुका हूँ, किंतु तुम्हारी तरह शूर-वीर मुझे कोई नहीं मिले। मैं तुमलोगोंके युद्ध-कौशलसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुमलोग कोई इच्छित वर माँग लो।'

श्रीभगवान्की वाणी सुनकर अहंकारके साथ दैत्योंने कहा—'विष्णो! हम तुमसे याचना क्या करें? तुम हमें क्या दोगे?' वे भगवान् विष्णुसे कहने लगे—'हम तुम्हारी वीरतासे अत्यन्त संतुष्ट हैं। तुम हमलोगोंसे कोई वर माँग

लो।' श्रीभगवान्‌ने कहा—

भवेतामद्य मे तुष्टौ मम वध्यावुभावपि॥
किमन्येन वरेणात्र एतावद्धि वृतं मम।

(मार्कण्डेयपुराण ८१।७४)

'यदि तुम दोनों मुझपर प्रसन्न हो तो अब मेरे हाथसे मारे जाओ। बस, इतना-सा ही मैंने वर माँगा है। इस समय दूसरे किसी वरसे क्या लेना है?'

'हम तो ठगे गये।' भगवान् विष्णुकी वाणी सुन चकित होकर दैत्योंने देखा, सर्वत्र जल-ही-जल है। तब उन्होंने श्रीभगवान्‌से कहा—'जनार्दन! तुम देवताओंके स्वामी हो। तुम मिथ्याभाषण नहीं करते। पहले तुमने ही हमें वर देनेके लिये कहा था। इसलिये तुम भी हमारा अभिलषित वर दे दो।' अत्यन्त उदास होकर दैत्योंने श्रीभगवान्‌से निवेदन किया—

'आवां जहि न यत्रोर्वी सलिलेन परिप्लुता॥'

(मार्कण्डेय० ८१।७६)

'जहाँ पृथ्वी जलमें डूबी हुई न हो—जहाँ सूखा स्थान हो, वहीं हमारा वध करो।'

'महाभाग! जलशून्य स्थानपर ही मैं तुम्हें मार रहा हूँ।' श्रीभगवान् विष्णुने सुदर्शन चक्रको स्मरण किया और अपनी विशाल जाँघोंको जलपर फैलाकर मधु-कैटभको जलपर ही स्थल दिखला दिया और हँसते हुए उन्होंने दैत्योंसे कहा—'इस स्थानपर जल नहीं हैं, तुमलोग अपना मस्तक रख दो। आजसे मैं भी सत्यवादी रहूँगा और तुम भी।'

कुछ देरतक मधु और कैटभ दोनों महादैत्य भगवान्‌की वाणीकी सत्यतापर विचार करते रहे। फिर उन्होंने भगवान्‌की दोनों सटी हुई विशाल एवं विचित्र जाँघोंपर चकित होकर अपना मस्तक रख दिया और श्रीभगवान्‌ने तत्काल अपने तीक्ष्ण चक्रसे उन्हें काट डाला। दैत्योंका प्राणान्त हो गया और उनके चार हजार कोसवाले विशाल शरीरके रक्तसे सागरका सारा जल लाल हो गया।

इस प्रकार वेदोंसे सम्मानित और श्रीभगवान् नारायणसे सुरक्षित होकर लोकस्रष्टा ब्रह्मा सृष्टि-कार्यमें जुट गये।

दूसरे कल्पमें

प्रख्यात दितिपुत्र हयग्रीव सुन्दर, बलवान् एवं परम-पराक्रमी था। उसकी भुजाएँ विशाल थीं। वह पुण्यतोया सरस्वती नदीके पावन तटपर उपवास करता हुआ करुणामयी जगदीश्वरीके मायाबीजके एकाक्षर मन्त्रका जप करने लगा। उसने इन्द्रियोंको वशमें करके सम्पूर्ण भोगोंको त्याग दिया था। वह महान् दैत्य एक हजार वर्षतक श्रीजगदम्बाकी तामसी शक्तिकी आराधना करता हुआ उग्र तप करता रहा।

'सुव्रत! वर माँगो।' करुणामयी सिंहवाहिनीने प्रत्यक्ष दर्शन देकर हयग्रीवसे कहा। 'तुम्हारी जो इच्छा हो, माँग लो। मैं उसे देनेके लिये तैयार हूँ।'

'सृष्टि-स्थिति-संहारकारिणी कल्याणमयी देवी!' प्रेमसे पुलकित नेत्रोंमें अश्रुभरे हयग्रीवने भगवती जगदम्बाकी स्तुति की—'आपके चरणोंमें प्रणाम है। पृथ्वीपर, आकाशमें और जहाँ-कहीं जो कुछ है, वह सब आपसे ही उत्पन्न हुआ है। आप दयामयी हैं। आपकी महिमाका पार पाना सम्भव नहीं।'

'तुम इच्छित वर माँग लो!' त्रैलोक्येश्वरी भगवतीने हयग्रीवसे पुनः कहा। 'तुमने अद्भुत तप किया है। मैं तुम्हारी भक्तिसे प्रसन्न हूँ। तुम अभिलषित वर माँग लो।'

'माता! मुझे मृत्युका मुख न देखना पड़े।' हयग्रीवने कृपामयी आराध्यासे निवेदन किया। 'मेरी कामना है कि मैं अमर योगी बन जाऊँ।'

'दैत्यपते! जन्मके अनन्तर मृत्यु सुनिश्चित है।' देवीने कहा। 'ऐसी सिद्ध मर्यादा जगत्‌में कैसे व्यर्थ की जा सकती है? मृत्युके सम्बन्धमें इस नियमको स्पष्ट समझकर इच्छित वर माँग लो।'

'अच्छा, मैं हयग्रीवके द्वारा ही मारा जाऊँ।' हयग्रीवने अपनी समझसे बुद्धिमानी की। वह स्वयं अपनेको क्यों मारेगा? उसने दयामयी माँसे निवेदन किया—'कोई दूसरा मुझे न मार सके।' 'तथास्तु' देवीने कहा। 'हयग्रीवके अतिरिक्त तुम्हें और कोई नहीं मार सकेगा। अब तुम घर लौटकर सानन्द राज्य करो।'

जगदम्बा वहीं अन्तर्धान हो गयीं और दैत्यराज हयग्रीव भी आनन्दमग्न हो अपने घर लौट गया। फिर तो उसने अनेक उपद्रव करने प्रारम्भ किये। ऋषियों-मुनियोंको वह पीड़ित करने लगा। अनेक प्रकारसे वह वेदोंको सता रहा था। अपनी बुद्धिसे अमरताके लिये आश्वस्त अत्यन्त शूर-वीर हयग्रीव अपनी असुरता अक्षरशः चरितार्थ कर रहा था। सत्पुरुष एवं देवता उससे त्रस्त एवं व्याकुल थे, पर उसे पराजित करना या उसे मार डालना किसीके

वशकी बात नहीं थी। हयग्रीव सर्वथा निश्चिन्त, निस्संकोच धर्मध्वंस कर रहा था। पृथ्वी व्याकुल हो गयी।

अन्ततः भगवान् श्रीहरि वेदों, भक्तों एवं धर्मके त्राण तथा अधर्मका नाश करनेके लिये हयग्रीवके रूपमें प्रकट हुए। श्रीहरिका वह हयग्रीव रूप अत्यन्त तेजस्वी एवं मनोहर था। उनकी शक्ति और सामर्थ्यका पार नहीं था। वे असीम बलशाली एवं परम पराक्रमी थे। उनके अङ्ग-अङ्गसे तेज छिटक रहा था।

अत्यन्त अभिमानी एवं देवताओंके शत्रु दैत्य हयग्रीवका परमप्रभु श्रीहयग्रीवसे युद्ध छिड़ गया। बड़ा ही भयानक संग्राम था वह। दीर्घकालतक युद्ध करता हुआ वह असुर हयग्रीव परम मङ्गलमय भगवान् श्रीहयग्रीवके द्वारा मार डाला गया।

ब्रह्मादि देव-समुदाय प्रभु श्रीहरिकी जय-जयकार करने लगा।

~~○~~

(१७) [क] भगवान् श्रीहरिकी भक्त ध्रुवपर कृपा

भक्तिं मुहुः प्रवहतां त्वयि मे प्रसङ्गो
भूयादनन्त महताममलाशयानाम्।
येनाञ्जसोल्बणमुरुव्यसनं भवाब्धिं
नेष्ये भवद्गुणकथामृतपानमत्तः॥

(श्रीमद्भा० ४।९।११)

'अनन्त परमात्मन्! मुझे तो आप उन विशुद्धहृदय महात्मा भक्तोंका सङ्ग दीजिये, जिनका आपमें अविच्छिन्न भक्तिभाव है; उनके सङ्गमें मैं आपके गुणों और लीलाओंकी कथा-सुधाको पी-पीकर उन्मत्त हो जाऊँगा और सहज ही इस अनेक प्रकारके दुःखोंसे पूर्ण भयंकर संसार-सागरके उस पार पहुँच जाऊँगा।'—ध्रुव

× × ×

स्वायम्भुव मनुके अत्यन्त प्रतापी पुत्र उत्तानपादकी दो पत्नियाँ थीं। उनमेंसे छोटी सुरुचिपर महाराजकी अत्यधिक प्रीति थी। उसके पुत्रका नाम उत्तम था। बड़ी रानी सुनीतिके पुत्रका नाम था ध्रुव।

एक दिनकी बात है। उत्तम अपने पिताकी गोदमें बैठा हुआ था। उसी समय ध्रुवने भी पिताकी गोदमें बैठना चाहा; किंतु पिताकी ओरसे उसे प्यार और दुलार नहीं मिला और वहीं बैठी हुई पतिप्रेम-गर्विता सुरुचिने ध्रुवका तिरस्कार करते हुए द्वेषपूर्ण स्वरमें कहा—'बेटा ध्रुव! तू भी यद्यपि राजाका पुत्र है, फिर भी इतनेसे ही राजसिंहासनपर बैठनेका अधिकार तुझे नहीं है। पिताकी गोद और राजसिंहासनपर बैठनेके लिये तुम्हें मेरे उदरसे जन्म लेना चाहिये था। यदि तू अपनी यह इच्छा पूरी करना चाहता है तो परमपुरुष श्रीनारायणको प्रसन्न कर उनके अनुग्रहसे मेरी कोखसे जन्म ले। इसका अधिकारी तो मेरा पुत्र 'उत्तम' ही है।'

पिताके दुलारसे वञ्चित ध्रुव सुरुचिकी कटूक्ति सुनकर तिलमिला उठे। क्रोध और दुःखसे उनके अधर काँपने लगे। उनके नेत्रोंमें आँसू भर आये। रोते हुए वे अपनी माताके समीप पहुँचे।

सुरुचिके द्वारा किये गये अपमानसे व्यथित अपने प्राणप्रिय पुत्र ध्रुवको सुबुकियाँ भरते देखकर माता सुनीतिका हृदय दुःखसे भर गया। उनके नेत्रोंसे आँसू बहने लगे। वे ध्रुवको अपनी गोदमें बैठाकर उसके सिरपर हाथ फेरते हुए समझाने लगीं—'बेटा! तू व्याकुल मत हो। रोना छोड़ दे। इस पृथ्वीपर जन्म लेनेपर पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मोंके फल ही सुख-दुःखके रूपमें प्राप्त होते हैं। पूर्वके पुण्य कर्मोंके ही कारण सुरुचिमें राजाकी सुरुचि (प्रीति) है और पुण्यरहित होनेके कारण ही मैं केवल भार्या (भरण करनेयोग्य) हूँ। इसी प्रकार उत्तम भी अपने पूर्वके शुभ कर्मोंके कारण पिताका प्यार-दुलार पा रहा है और तू मन्दभाग्य होनेके कारण ही उससे वञ्चित है।'

कुछ क्षण रुककर अश्रु पोंछते हुए माता सुनीतिने कहा—'बेटा! तू सुशील, पुण्यात्मा और प्राणिमात्रका शुभचिन्तक बन। इससे समस्त सम्पत्तियाँ सुलभ होती हैं। एक बात सुरुचिने सौतेली माँ होकर भी अत्यन्त उत्तम कही है। वह यह कि ईर्ष्या-द्वेष छोड़कर तू श्रीअधोक्षज भगवान्‌की आराधना आरम्भ कर दे। तुम्हारे प्रपितामह ब्रह्मा उन्हीं परमपुरुषकी आराधनासे ब्रह्मा हुए और तुम्हारे पितामह स्वायम्भुव मनु उन्हीं अशरण-शरण प्रभुकी वन्दी-

बड़ी दक्षिणाओंवाले यज्ञोंके द्वारा अनन्य भावसे आराधना कर अत्यन्त दुर्लभ लौकिक-अलौकिक सुख प्राप्त कर सके थे। तुम भी उन्हीं कमलदल-लोचन श्रीहरिकी चरण-शरण ग्रहण करो। उनके अतिरिक्त महान् दुःखोंसे त्राण देनेवाला अन्य कोई नहीं है।'

'माँ! मुझे आज्ञा दे।' ध्रुवने अपनी माताके चरणोंपर मस्तक रखकर प्रार्थना की। 'निश्चय ही मैं अब परमपुरुष परमात्मासे अप्राप्य वस्तु प्राप्त करूँगा। तू प्रसन्नमनसे मुझे आशिष् दे।'

'मेरे तन, मन और प्राणकी सारी आशिष् तेरे लिये है, बेटा!' नेत्रोंसे बहते आँसू पोंछती हुई माता सुनीतिने अधीर होकर कहा। 'पर बेटा! अभी तू निरा बालक है। तेरी आयु गृह-त्यागके उपयुक्त नहीं। तू घरमें ही रहकर दान-धर्म आदि पुण्यकर्म और क्षीराब्धिशायी विष्णुकी प्रीतिपूर्वक उपासना कर। समयपर प्रभु-प्राप्तिके लिये गृहत्याग भी कर लेना। अभी तो कहीं जानेकी बात सोचना उचित नहीं।'

'माँ! तू बिल्कुल ठीक कहती है।' ध्रुव बोले। 'किंतु मेरा हृदय छटपटा रहा है। प्रभुके समीप जानेमें अब एक क्षणका विलम्ब भी मुझे सह्य नहीं। मुझे राजसिंहासन नहीं चाहिये। मैं अलभ्य-लाभके लिये करुणामय स्वामीके चरणोंमें अवश्य जाऊँगा। तू मुझे दयाकर आज्ञा दे दे।'

'सर्वान्तर्यामी, सर्वसमर्थ, करुणावरुणालय तुम्हारा कल्याण करें, बेटा!' माता सुनीति बोलीं—

विष्णोराराधने नाहं वारये त्वां सुपुत्रक।
जिह्वा मे शतधा यातु यदि त्वां वारयामि भोः॥

'बेटा! मैं तुम्हें भगवान् श्रीविष्णुकी आराधनासे नहीं रोकती। यदि मैं ऐसी चेष्टा करूँ तो मेरी जीभ सैकड़ों टुकड़े होकर गिर पड़े; क्योंकि श्रीभगवान्की आराधनासे सम्पूर्ण असम्भव सम्भव हो जाता है।'

माता सुनीतिने ध्रुवकी दृढ़ निष्ठा देखकर नीलकमलोंकी माला पहनाकर उसे अपनी गोदमें ले लिया और उसके सिरपर हाथ फेरकर अनुमति देते हुए कहा—'बेटा! जा, कण-कणमें व्याप्त श्रीहरि तुम्हारा सर्वविध मङ्गल करें। तू उनकी कृपा प्राप्त कर।'

माता सुनीतिके आँसू झर रहे थे और दृढ़निश्चयी ध्रुव अपने पिताके नगरसे निकल पड़े।

प्रभु-पदपद्मोंकी ओर अग्रसर होनेवाले भक्तोंको देवर्षि नारदजीका सहयोग और उनकी सहायता तत्काल सुलभ होती है। थोड़ा-सा भी मान-भङ्ग न सह सकनेवाले नन्हे-से क्षत्रिय-बालकको परमपुरुष परमेश्वरकी आराधनाका निश्चय कर वन-गमन करते देख देवर्षि तत्काल वहाँ पहुँच गये। उन्होंने ध्रुवके मस्तकपर अपना पापनाशक, मङ्गलमय वरद कमलहस्त फेरते हुए स्नेहसिक्त स्वरमें कहा—'बेटा! तेरी आयु बहुत छोटी है और परब्रह्म परमात्माकी प्राप्ति अत्यन्त दुष्कर है। योगीन्द्र-मुनीन्द्र तथा देवताओंको भी उनका दर्शन बड़ी कठिनतासे प्राप्त होता है। अतएव तू अपनी जन्मदायिनी जननीकी आज्ञा मानकर घर लौट जा। वहाँ योगाभ्यास एवं शुभ कर्मोंके द्वारा संतोषपूर्वक जीवन व्यतीत कर। बड़ा होनेपर प्रभुप्राप्तिके लिये तप करना।'

'ब्रह्मन्! आपका उपदेश बड़ा सुन्दर है।' अत्यन्त विनयपूर्वक ध्रुवने देवर्षिसे निवेदन किया। 'मैं क्षत्रियकुलोत्पन्न बालक हूँ। माता सुरुचिकी कटूक्ति मेरे हृदयमें टूटी हुई बर्छीकी अनीकी भाँति करक रही है। मैं छटपटा रहा हूँ। मैं त्रैलोक्य-दुर्लभ पदकी प्राप्तिके लिये कटिबद्ध हूँ। मेरे पूर्वजोंने जो नहीं पाया है, वह श्रेष्ठ पद मुझे अभीष्ट है। आप कमलयोनि ब्रह्माके पवित्र पुत्र हैं और जगत्के अशेषमङ्गलके लिये वीणा बजाते, हरिगुण गाते त्रैलोक्यमें विचरण किया करते हैं। आप मुझपर भी दया करें और उन सुर-नर-मुनिवन्दित परब्रह्म परमात्माकी प्राप्तिका मार्ग बतायें। आपके श्रीचरणकमलोंमें मेरी यही प्रार्थना है।'

'बेटा! तुम्हारी माता सुनीतिने जो तुम्हें मार्ग बताया है, वही भगवान् वासुदेवकी प्राप्तिका एकमात्र उपाय है।' ध्रुवकी बातोंसे अत्यन्त प्रसन्न होकर देवर्षि नारदने अत्यन्त प्यारसे ध्रुवको बताया—

तत्तात गच्छ भद्रं ते यमुनायास्तटं शुचि।
पुण्यं मधुवनं यत्र सांनिध्यं नित्यदा हरेः॥

(श्रीमद्भा० ४।८।४२)

'बेटा! तेरा कल्याण होगा, अब तू श्रीयमुनाजीके तटवर्ती परम पवित्र मधुवनमें जा, वहाँ श्रीहरिका नित्य

निवास है।'

'वहाँ कालिन्दीके निर्मल जलमें त्रिकाल स्नान कर, नित्यकर्मोंसे निवृत्त हो, आसन बिछाकर बैठना और प्राणायामके द्वारा इन्द्रियोंके दोषोंको दूर कर मनसे परम पुरुष परमात्माका इस प्रकार ध्यान करना'—

'वे दयाके समुद्र नवजलधर-वपु, मंद-मंद मुस्करा रहे हैं। उनके श्रीअङ्गोंसे आनन्द और प्रेम-सुधाकी वर्षा हो रही है। उन भुवनमोहन प्रभुकी नासिका, भौंहें, कपोल, अधर-पल्लव, दंतपंक्तियाँ—सभी परम सुन्दर और दिव्य हैं। उनके वक्षपर श्रीवत्सका चिह्न है। उनके कम्बुकण्ठमें अत्यन्त सुगन्धित वनमाला पड़ी हुई है और उससे दिव्यातिदिव्य मधुर सुगन्ध निकल रही है। उस सुगन्धसे हमारे तन-मन-प्राण आनन्द-सिन्धुमें सराबोर होते जा रहे हैं। उनकी चार भुजाएँ हैं, जिनमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म सुशोभित हैं। श्रीअङ्गोंपर किरीट, कुण्डल, केयूर और कङ्कणादि आभूषण सुशोभित हैं। परम दिव्य, श्यामल घन-तुल्य मङ्गलमय श्रीविग्रहपर पीताम्बर अत्यन्त शोभा पा रहा है। कटिप्रदेशमें सुवर्णकी करधनी सुशोभित है, जिससे अद्भुत प्रकाश छिटक रहा है। देव-ऋषिवन्दित कमल-सरीखे चरणोंमें अद्भुत सुवर्णमय पैंजनी शोभा दे रही है। मानस-पूजा करनेवाले भक्तोंके हृदयरूपी कमलकी कर्णिकापर वे भक्तवत्सल प्रभु अपने नखमणिमण्डित मनोहर पादारविन्दोंको स्थापितकर विराजते हैं। वे प्रभु हमारी ओर अत्यन्त कृपापूर्ण दृष्टिसे निहार रहे हैं, मंद-मंद हँस रहे हैं। इस प्रकार श्रीभगवान्‌का ध्यान करते रहनेसे मन उनकी सौन्दर्य-सुधामें डूब जाता है।'

देवर्षि नारदने अत्यन्त कृपापूर्वक ध्रुवको आगे बताया—'**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**—यह भगवान् वासुदेवका परम पवित्र एवं परम गुह्य मन्त्र है। इसका ध्यानके साथ जप करता रहे। जल, पुष्प, पुष्पमाला, मूल और फलादि सभी सामग्रियाँ और तुलसी आदि प्रभु-पूजाके जिन-जिन उपचारोंका विधान किया गया है, उन्हें मन्त्रमूर्ति वासुदेवको इस द्वादशाक्षर मन्त्रसे ही अर्पित करे।'

देवर्षि नारदके इस उपदेशका ध्यानपूर्वक श्रवणकर सुनीतिकुमार ध्रुवने उनकी परिक्रमा कर उनके चरणोंमें प्रणाम किया। इसके अनन्तर श्रीनारदजीके आदेशानुसार वे परम पवित्र मधुवनके लिये चल पड़े।

विष्णुपुराणमें आया है कि उत्तानपादनन्दन ध्रु अपनी माता सुनीतिसे बिदा हो नगरके बाहर उपवन पहुँचे। वहाँ उन्होंने पहलेसे ही सात कृष्णमृग-चर्म आसनोंपर बैठे सप्तर्षियोंको देखकर उनके चरणोंमें अत्य श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया। ध्रुवने अपनी व्यथा सुनाते हु उनसे उसके निवारणका उपाय पूछा।

'तुमने क्या सोचा है और हम तुम्हारी क्या सहायत करें?' सप्तर्षियोंने नन्हे ध्रुवमें क्षात्रतेज देखकर कहा 'तुम निस्संकोच अपने मनकी बात हमसे कह दो।'

'मुझे राज्य और धन आदि किसी वस्तुकी इच्छ नहीं है' ध्रुवने उनसे अपना अभीष्ट व्यक्त किया। 'मैं तो केवल एक उसी स्थानको चाहता हूँ, जिसे अबतक कभी किसीने पहले न भोगा हो। आप कृपाकर यही बता दें कि क्या करनेसे वह अग्रगण्य स्थान मुझे प्राप्त हो सकता है?' महर्षि मरीचि, अत्रि और अङ्गिराके बाद महर्षि पुलस्त्यने कहा—

परं ब्रह्म परं धाम योऽसौ ब्रह्म तथा परम्।
तमाराध्य हरिं याति मुक्तिमप्यतिदुर्लभाम्॥

(विष्णुपुराण १।११।४६)

'जो परब्रह्म, परमधाम और जो सबसे बड़े और श्रेष्ठ हैं, उन हरिकी आराधना करनेसे मनुष्य अति दुर्लभ मोक्षपदको भी प्राप्त कर लेता है।'

महर्षि पुलह और क्रतुने भी जनार्दनको प्रसन्न करनेके लिये उनकी आराधनाका उपदेश दिया। अन्तमें वसिष्ठजीने कहा—

प्राप्नोष्याराधिते विष्णौ मनसा यद्यदिच्छसि।
त्रैलोक्यान्तर्गतं स्थानं किमु वत्सोत्तमोत्तमम्॥

(विष्णुपुराण १।११।४९)

'हे वत्स! विष्णुभगवान्‌की आराधना करनेपर तू अपने मनसे जो कुछ चाहेगा, वही प्राप्त कर लेगा, फिर त्रिलोकीके उत्तमोत्तम स्थानकी तो बात ही क्या है।'

ऋषियोंके इस सदुपदेशसे प्रसन्न होकर ध्रुवने उनसे जपादिके सम्बन्धमें पूछा तो ऋषियोंने बताया—"राजकुमार! विष्णुभगवान्‌की आराधनामें तत्पर पुरुषको सम्पूर्ण बाह्य विषयोंसे चित्तको हटाकर उसे जगदीश्वरमें स्थिर कर देना

चाहिये। इस प्रकार एकाग्रचित्त होकर तन्मय भावसे '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**'—इस द्वादशाक्षर मन्त्रका जप करना चाहिये। तुम्हारे पितामह स्वायम्भुव मनुने भी इसी मन्त्रका जप करके अपना अभीष्ट प्राप्त किया था। तू भी इस मन्त्रका जप करता हुआ श्रीगोविन्दको प्रसन्न कर, उनकी कृपा प्राप्त कर ले।''

इस प्रकार ऋषियोंके उपदेश सुनकर ध्रुवने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और उनका आशीर्वाद ले कालिन्दीकूलस्थित पवित्रतम मधुवनकी यात्रा आरम्भ की।

सुनीतिकुमार ध्रुव मधुवन पहुँचे। उन्होंने श्रीयमुनाजीको प्रणाम कर स्नान किया और रात्रिमें उपवास कर प्रात:काल पुन: स्नान कर ऋषियोंके उपदेशानुसार श्रीनारायणकी आराधना आरम्भ कर दी। उन्होंने उपासना-कालमें एक मासतक प्रति तीसरे दिन शरीर-निर्वाहके लिये कैथ और बेरका फल लिया, दूसरे मासमें छ:-छ: दिनके बाद वे सूखे घास और पत्ते खाकर भक्तवत्सल प्रभुकी उपासना करते रहे। तीसरे मासमें वे नवें दिन केवल जल पीकर भजनमें लगे रहे। चौथे महीने बारह दिनोंके अन्तरसे केवल वायु पीकर परमात्माके ध्यान और भजनमें लगे रहे। पाँचवें मासमें उत्तानपादनन्दन ध्रुव श्वास रोककर एक पैरपर खड़े हो हृदयस्थित भगवान् वासुदेवका चिन्तन करने लगे। उनकी चित्तवृत्ति सर्वथा शान्त एवं स्थिर होकर कमल-नयन प्रभुमें ही लीन हो गयी थी। ध्रुवके द्वारा सम्पूर्ण तत्त्वोंके आधार परब्रह्मकी धारणा की जानेपर त्रैलोक्य काँप उठा। ध्रुवके एक पैरपर खड़े होनेसे उनके अँगूठेसे दबकर आधी धरती एक ओर झुक गयी। उनके इन्द्रिय एवं प्राणोंको रोककर अनन्य बुद्धिसे परब्रह्म परमात्माका ध्यान करने एवं उनकी समष्टि प्राणसे अभिन्नता हो जानेके कारण जीवमात्रका श्वास-प्रश्वास रुक गया। फलत: लोक और लोकपाल—सभी व्याकुल हो गये।

फिर तो देवाधिप इन्द्रके साथ कूष्माण्ड नामक उपदेवताओंने अनेक भयानक रूपोंसे ध्रुवका ध्यान भङ्ग करना प्रारम्भ किया। भयानक राक्षसियाँ आयीं और चीत्कार करने लगीं, पर ध्रुवने उनकी ओर देखातक नहीं। फिर मायाकी सुनीति प्रकट हुई और विलाप करते हुए उसने कहा—'बेटा! तू इस भयानक वनमें क्या कर रहा है? तेरा कष्ट मुझसे देखा नहीं जा रहा है। सौतकी कटूक्तिके कारण मुझ अनाथाको छोड़ देना तुझे उचित नहीं है। क्या मैंने इसी दिनके लिये तुम्हें पाला था?' फिर सुनीति बड़े जोरसे चिल्लायी—'अरे बेटा! भाग-भाग! देख, इस निर्जन वनमें कितने क्रूर राक्षस भयानक अस्त्र लिये दौड़े चले आ रहे हैं।' यह कह; वह चली गयी। फिर कितने ही राक्षस और राक्षसियाँ प्रकट हुए। वे अत्यन्त भयानक थे तथा उनके मुखसे आगकी ज्वालाएँ निकल रही थीं। 'मारो-काटो'—इस प्रकार वे चिल्ला रहे थे। फिर उस छोटे-से बालकको भयाक्रान्त करनेके लिये ऊँट, सिंह, मकर और शृगाल आदिके मुखवाले राक्षस चीत्कार करने लगे, हृदयको कँपा देनेवाले उपद्रव करने लगे; पर श्रीहरिसे एकाकार हुआ ध्रुवका मन तनिक भी विचलित नहीं हुआ। वे नवनीरदवपु श्रीविष्णुके ध्यानमें ही तन्मय रहे।

ध्रुवपर मायाका कोई प्रभाव पड़ता न देख और श्वास-प्रश्वासकी गति अवरुद्ध हो जानेके कारण भयभीत होकर देवता शरणागतवत्सल श्रीहरिके पास पहुँचे और उन्होंने अत्यन्त करुण स्वरमें कहा—'प्रभो! ध्रुवकी तपस्यासे व्याकुल होकर हम आपकी शरणमें आये हैं। हमें पता नहीं, वह इन्द्र, सूर्य, कुबेर, वरुण, चन्द्रमा या किसके पदकी कामना करता है। आप हमपर प्रसन्न हों, ध्रुवको तपसे निवृत्तकर हमें शान्ति प्रदान कीजिये।'

'देवताओ! मेरे प्रिय भक्त ध्रुवको इन्द्र, सूर्य, वरुण अथवा कुबेर आदि किसीके भी पदकी अभिलाषा नहीं है।' श्रीभगवान्ने देवताओंको आश्वस्त करते हुए कहा। 'उसकी इच्छा मैं पूर्ण करूँगा। आपलोग निश्चिन्त होकर जायँ, मैं जाकर उसे तपसे निवृत्त करता हूँ।'

मायातीत देवाधिदेव प्रभुके वचन सुनकर इन्द्रादि देवताओंने प्रभुके चरणकमलोंमें प्रणाम किया तथा वे अपने-अपने स्थानको चले गये। इधर परमपुरुष श्रीभगवान् ध्रुवके तपसे प्रसन्न होकर उनके सम्मुख चतुर्भुजरूपमें प्रकट हो गये।

'सुनीतिकुमार! मैं तुम्हारी तपस्यासे अत्यन्त प्रसन्न होकर तुम्हें वर देने आया हूँ।' मन्द-मन्द मुस्कराते हुए नवघनश्याम चतुर्भुजरूपधारी भगवान्ने ध्रुवसे कहा। 'तू

इच्छित वर माँग।'

साथ ही, ध्रुव जिस देदीप्यमान मूर्तिका अपने हृदय-कमलमें ध्यान कर रहे थे, वह सहसा लुप्त हो गयी। तब तो घबराकर ध्रुवने अपनी आँखें खोल दीं और उन्होंने अपने सम्मुख किरीट, कुण्डल तथा शङ्ख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग धनुष और खड्ग धारण किये परमप्रभुको देखा तो वे उनके चरणोंमें लोट गये। प्रणामके अनन्तर ध्रुव हाथ जोड़कर खड़े हो गये। उनका रोम-रोम प्रेमसे पुलकित हो रहा था। नेत्रोंमें प्रेमाश्रु भर गये थे। उनका कण्ठ गद्गद था। वे त्रैलोक्यपावन, परम दिव्य, अलौकिक और परम दुर्लभ कल्याणमयी श्रीभगवान्‌की परम सौन्दर्यमयी कृपामयी मूर्तिको अपलक नेत्रोंसे निहारते हुए उनकी स्तुति करना चाहते थे; पर प्रभु-स्तवन किस प्रकार करें, वे जानते नहीं थे।

सर्वान्तर्यामी प्रभुने करस्थ श्रुतिरूप शङ्खसे बालकके कपोलका स्पर्श कर दिया। ध्रुवके मनमें हंसवाहिनी

सरस्वती प्रकट हो गयीं। उन्हें वेदमयी दिव्यवाणी प्राप्त हो गयी और वे अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिसे अपने परमाराध्य परमप्रभुका स्तवन करने लगे—

'सर्वातीत, सर्वात्मन्, सर्वशक्तिसम्पन्न, करुणामय, जगदाधार स्वामी! मैं आपके कल्याणमय, मङ्गलमय, सुर-मुनिवन्दित चरणकमलोंमें प्रणाम करता हूँ।' ध्रुवने प्रभुकी स्तुति की। 'प्रभो! आप एक हैं, किंतु अपनी रची हुई सम्पूर्ण सृष्टिके कण-कणमें व्याप्त हैं। दयामय स्वामी! इन्द्रियोंसे भोगा जानेवाला विषय-सुख तो नरकमें भी प्राप्त हो सकता है; ऐसी स्थितिमें जो लोग विषय-सुखके लिये लालायित रहते हैं, उसीके लिये रात-दिन प्रयत्नशील रहते हैं और जन्म-जरा-मरण-व्याधिसे मुक्त होनेके लिये आपके चरणोंका आश्रय नहीं लेते, वे घोर मायाविद्ध अत्यन्त अभागे हैं। प्रभो! आपके आनन्दमय, कल्याणमय, अनन्त सौन्दर्य-सम्पन्न नवनीरद वपुके ध्यान, आपके मधुर नामोंके जप तथा आपके और आपके भक्तोंके पावन चरित्र सुननेमें जो सुख प्राप्त होता है, वह सुख निजानन्द ब्रह्ममें भी नहीं, जगत्‌में तो कहाँसे प्राप्त होगा? पद्मनाभ प्रभो! जिनका मन आपके चरणकमलोंका भ्रमर बन चुका है, जिनकी जिह्वाको आपके नामामृत-पानका चस्का लग गया है, उन आपके प्रेमी भक्तोंका सङ्ग-लाभ होनेपर, सगे-सम्बन्धी, स्त्री-पुत्र, बन्धु-बान्धव, घर-द्वार और मित्रादि सभी छूट जाते हैं। उन्हें आपके स्वरूपका ध्यान, आपके नामका जप और आपकी लीला-कथाका श्रवण-मनन-चिन्तन तथा आपके अनुरागी भक्तोंके सङ्गके अतिरिक्त और कहीं कुछ अच्छा नहीं लगता। उन्हें अपने शरीरकी भी सुधि नहीं रह जाती। दयामय! आप नित्यमुक्त, शुद्धसत्त्वमय, सर्वज्ञ, परमात्मस्वरूप, निर्विकार, आदिपुरुष, षडैश्वर्य-सम्पन्न तथा तीनों गुणोंके अधिपति हैं। आप सम्पूर्ण जगत्‌के कारण, अखण्ड, अनादि, अनन्त, आनन्दमय, निर्विकार ब्रह्मरूप हैं। मैं आपके शरण हूँ। परमानन्दमूर्ति प्रभो! भजनका सच्चा फल आपके चरणकमलोंकी प्राप्ति है और वे देवदुर्लभ, त्रैलोक्यपूज्य परम पावन चरण-कमल मुझे प्राप्त हो चुके हैं। अब मैं उन्हें नहीं छोड़ूँगा। प्रभो! ये मङ्गलमय, त्रैलोक्यपावन चरणकमल सदा-सर्वदा मेरे हृदयधनके रूपमें बने रहें। मुझे कभी इनका विछोह न हो। मैं पहले यहाँ माता सुरुचिकी कटूक्तिसे आहत होकर दुर्लभ पद-प्राप्तिकी कामना लेकर आया था; किंतु अब मुझे कोई इच्छा नहीं है। अब तो मैं केवल इन चरणकमलोंका भ्रमर बनकर रहना चाहता हूँ। मुझे क्षणभरके लिये भी आपकी विस्मृति न हो—मैं यही चाहता हूँ। दयामय! अचिन्त्यशक्तिसम्पन्न परमात्मन्! आप सदा-सर्वदा मेरे बने रहें—बस, मेरी यही कामना है। आप इसकी पूर्ति कर दें, नाथ!'

'बालक! मेरा दर्शन होनेसे तेरी तपस्या सफल हो गयी।' श्रीभगवान्‌ने ध्रुवसे अत्यन्त स्नेहपूर्वक कहा। 'किंतु मेरा दर्शन अव्यर्थ होता है। तुम्हारी लौकिक कामनाओंकी पूर्ति भी अवश्य होगी। पूर्वजन्ममें तू मुझमें निरन्तर एकाग्रचित्त रखनेवाला मातृ-पितृभक्त, धर्माचरण-सम्पन्न ब्राह्मण था। कुछ ही दिनोंमें एक अत्यन्त सुन्दर राजपुत्रसे तेरी मैत्री हो गयी। उसके वैभवको देखकर तुम्हारे मनमें भी राजपुत्र होनेकी कामना उदित हुई, उसीके फलस्वरूप तूने दुर्लभ स्वायम्भुव मनुके वंशमें उत्तानपादके पुत्रके रूपमें जन्म लिया। अब अपनी आराधनाके फलस्वरूप मैं तुझे त्रैलोक्य-दुर्लभ, सर्वोत्कृष्ट 'ध्रुव' (निश्चल)-पद दे रहा हूँ, जो सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि आदि ग्रहों, सभी नक्षत्रों, सप्तर्षियों और सम्पूर्ण विमानचारी देवगणोंसे ऊपर है। साथ ही तुझे एक कल्पतरुकी स्थिति दे रहा हूँ।'

'तेरी माता सुनीति भी प्रज्वलित तारेके रूपमें तेरे समीप ही एक विमानपर उतने ही दिनोंतक रहेगी। प्रात:-सायं तेरा गुणगान करनेवाले भी पुण्यके भागी होंगे।'

श्रीभगवान्‌ने ध्रुवसे आगे कहा—'तपश्चरणके लिये अपने पिताके वनमें जानेके अनन्तर तू राज्यका अधिकारी होगा और अनेक बड़ी-बड़ी दक्षिणाओंवाले यज्ञ करते हुए छत्तीस हजारवर्षतक पृथ्वीका शासन करेगा और फिर अन्तमें तू सम्पूर्ण लोकोंद्वारा वन्दनीय, अत्यन्त दुर्लभ और परम सुखद मेरे धाममें पहुँच जायगा, जहाँ जाकर फिर इस जगत्‌में कोई लौटकर नहीं आता।'

सुनीतिनन्दन ध्रुवको इस प्रकार वर देकर ध्रुवसे पूजित श्रीभगवान् वासुदेव अपने धाम पधारे; किंतु प्रभुके विछोहसे उदास होकर ध्रुव अपने नगरके लिये लौट पड़े।

उधर देवर्षि नारद ध्रुवके वनगमनके अनन्तर राजा उत्तानपादके समीप पहुँचकर बोले—'राजन्! तुम कुछ उदास दीख रहे हो। तुम्हारी चिन्ताका क्या कारण है?'

'मैं बड़ा ही स्त्रैण और निष्ठुर हूँ।' बिलखते हुए नरेशने देवर्षिसे कहा। 'मेरी दुष्टताके कारण मेरा पाँच वर्षका अबोध बच्चा गृह त्यागकर वनमें चला गया। पता नहीं, वह कैसे है। उसे हिंस्र जंतुओंने खा डाला या उसका क्या हुआ? वह बालक प्रेमवश मेरी गोदमें आना चाहता था, किंतु मैंने उसे प्यार नहीं दिया। मेरी पत्नीने उसे बड़ी कटूक्तियाँ कहीं। यह मेरे ही पापका परिणाम है, पर अब मेरा हृदय अधीर और अशान्त है। मेरे दु:खकी सीमा नहीं। मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? कुछ समझमें नहीं आता।'

'ध्रुवके रक्षक सर्वसमर्थ हरि हैं, तुम उसकी चिन्ता मत करो।' श्रीनारदजीने उत्तानपादको आश्वस्त किया। 'वह बालक देवदुर्लभ पद प्राप्तकर सकुशल लौट आयेगा। अत्यन्त यशस्वी होगा ध्रुव!'

श्रीनारदजी चले गये, पर राजा उत्तानपाद निरन्तर पुत्रकी चिन्तामें ही घुलने लगे। राजकार्यमें उनका मन नहीं लग पा रहा था।

× × ×

'दुर्लभ मणि सम्मुख रहनेपर भी मैं काँच ले बैठा।' ध्रुवका मन अत्यन्त दु:खी और उदास था। 'भगवान्‌की सेवाके स्थानपर मैंने दुर्लभ पद ले लिया।' मैं बड़ा ही मूढ़ और अभागा हूँ।' इस प्रकार सोचते और अपने आराध्यका स्मरण करते हुए वे अपनी राजधानीके समीप पहुँचे।

'कुमार ध्रुव नगरके समीपतक आ गये हैं'—संदेश मिलनेपर भी राजा उत्तानपादको सहसा विश्वास नहीं हुआ, पर देवर्षि नारदके वचनोंका स्मरण कर वे अत्यन्त हर्षित हो गये। उन्होंने इस सुखद संवाद लानेवालेको बहुमूल्य हार उतारकर दे दिया। नगर-द्वार-चौराहे—सब सज उठे। माङ्गलिक वाद्य बजने लगे। प्रजाकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं थी। राजा उत्तानपाद, ध्रुवकी माँ सुनीति तथा सुरुचि पुत्रका मुँह देखनेके लिये अधीर हो रहे थे। राजा ब्राह्मणों, वंशके वृद्ध मन्त्री और बन्धुजनोंको साथ ले, स्वर्णजटित रथपर आरूढ़ होकर नगरके बाहर पहुँचे। उनके आगे-आगे शङ्ख-दुन्दुभि आदि वाद्य बज रहे थे। सुनीति और सुरुचि उत्तमके साथ पालकियोंपर बैठकर वहाँ पहुँचीं।

उपवनके समीप पहुँचते ही महाराज उत्तानपादने ध्रुवको देखा और तुरंत रथसे उतर पड़े। उन्होंने अपने

बच्चे ध्रुवको छातीसे लगा लिया। उनके नेत्र बरस पड़े तथा साँस जोरसे चलने लगी। राजा बार-बार अपने बिछुड़े पुत्रके सिरपर हाथ फेर रहे थे। उनके आँसू थमते ही न थे। ध्रुवने पिताके चरणोंपर सिर रख दिया।

'चिरंजीवी रहो।' ध्रुवने माता सुरुचिके चरणोंपर सिर रखा तो स्नेहवश उन्होंने आशीर्वाद दिया। जिसपर भगवान् कृपा करते हैं, उसपर सबकी कृपा स्वत: उतर पड़ती है।

ध्रुव अपने भाई उत्तमसे गले मिले और जब अपनी माता सुनीतिके चरणोंपर उन्होंने सिर रखा तब उनकी विचित्र दशा हो गयी। बिछुड़े हुए बछड़ेको पाकर जिस प्रकार गायकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं रहती, उसी प्रकार माता सुनीतिकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं रही। उन्होंने अपने प्यारे बच्चेको वक्षसे लगाया तो सब कुछ भूल गयीं। उन्हें अपने तन और प्राणकी भी सुधि नहीं रही। उनके नेत्रोंसे आँसू और स्तनोंसे दुग्ध-धारा बहने लगी।

'आपने निश्चय ही विश्ववन्द्य हरिकी उपासना की है', पुरवासियोंने महारानीकी प्रशंसा करते हुए कहा। 'जो आपका खोया हुआ लाल लौटकर आ गया। श्रीहरिकी आराधना करनेवाले तो दुर्जय मृत्युपर भी विजय प्राप्त कर लेते हैं।'

ध्रुवके दर्शनसे लोगोंके नेत्र तृप्त नहीं हो रहे थे। उनके प्रति सभी अपना स्नेह व्यक्त कर रहे थे। उसी समय महाराज उत्तानपाद ध्रुवके साथ उत्तमको भी हाथीपर बैठाकर राजधानीमें प्रवेश करनेके लिये चल पड़े। मार्ग खूब सजाया गया था और ध्रुवपर प्रजा-परिजन पुष्प, पुष्पमाला एवं माङ्गलिक द्रव्योंकी वर्षा कर रहे थे। इस प्रकार ध्रुव राजभवनमें पहुँचे।

देवर्षि नारदके कथनानुसार महाराज उत्तानपाद ध्रुवका भक्तिपरायण, अत्यन्त तेजस्वी जीवन देखकर मन-ही-मन आश्चर्यचकित हो रहे थे। ध्रुवकी तरुणाई एवं उनपर प्रजाकी प्रीति तथा अपनी वृद्धावस्था देखकर महाराज उत्तानपाद उन्हें राज्यपर अभिषिक्त कर स्वयं तपश्चर्याके लिये वनमें चले गये।

पृथ्वीके सम्राट् ध्रुवका शासन कैसा रहा होगा, यह सहज ही सोचा जा सकता है। परम भगवद्भक्त नरेशके राज्यमें प्राय: बड़े-बड़े यज्ञ हुआ करते थे। सर्वत्र सुख-शान्तिका अखण्ड साम्राज्य था। सत्य, क्षमा, दया, उपकार, त्याग, तपप्रभृति सर्वत्र दीखते थे। सर्वत्र श्रीभगवान्का पूजन, भजन और कीर्तन होता था। मिथ्याचार एवं दुराचारकी प्रजाके मनमें कल्पना भी नहीं थी।

परम वैष्णव नरेश ध्रुवके छत्तीस सहस्र वर्षोंके दीर्घ-कालव्यापी शासनमें युद्धका कहीं अवसर नहीं आया, किंतु एक बार उनका भाई उत्तम आखेटके व्यसनके कारण वनमें गया। वहाँ एक बलवान् यक्षने उसे मार डाला। ममतामयी माँ सुरुचि कुछ लोगोंके साथ उसे ढूँढ़ने गयी, पर वहाँ आग लग जानेके कारण वह जलकर भस्म हो गयी।

इस संवादसे आहत और कुपित होकर ध्रुव एक रथपर सवार होकर यक्षोंके देशमें जा पहुँचे। वहाँ यक्षोंने पृथ्वीके सम्राट्का अभिनन्दन करना तो दूर रहा, शस्त्रास्त्रसहित वे ध्रुवपर टूट पड़े। यद्यपि वे ध्रुवकी बाण-वर्षासे व्याकुल हो गये, फिर भी उनकी संख्या अत्यधिक थी। यक्षोंने कुपित होकर एक ही साथ ध्रुवपर इतने परिघ, खड्ग, प्रास, त्रिशूल, फरसे, शक्ति, ऋष्टि, भुशुण्डी तथा चित्र-विचित्र पंखवाले बाणोंकी वर्षा की कि वे शस्त्रोंसे ढक गये। यह दृश्य देखकर आकाशस्थित सिद्धगण व्याकुल हो गये। यक्षगण अपनी विजयका अनुमान कर हर्षोन्मादसे गर्जन करने लगे।

किंतु कुछ ही देर बाद ध्रुवजी उस शस्त्रसमूहसे इस प्रकार बाहर निकल आये जैसे कुहरेको भेदकर अंशुमाली प्रकट होते हैं। फिर ध्रुवने यक्षोंपर इतने तीक्ष्ण शरोंकी वर्षा की कि यक्षोंके अङ्ग-प्रत्यङ्ग कटकर सर्वत्र बिखर गये। बचे-खुचे यक्ष प्राण लेकर भागे। रणभूमि यक्षोंसे रहित हो गयी, परंतु कुछ ही देर बाद यक्षोंने भयानक माया रची। आकाशमें काले बादल घिर आये। बिजली चमकने लगी। उनसे रक्त, कफ, पीव एवं विष्ठा-मूत्रादिकी वर्षा होने लगी। ध्रुवकी ओर अनेक हिंसक व्याघ्रादि जन्तु गर्जन करते दौड़कर आते हुए दीखे। उन असुरोंकी कँपानेवाली मायाको देखकर ऋषियोंने वहाँ आकर महाराज ध्रुवको शुभाशीर्वाद प्रदान किया—

औत्तानपादे भगवांस्तव शार्ङ्गधन्वा
देव: क्षिणोत्ववनतार्तिहरो विपक्षान्।

यन्नामधेयमभिधाय निशम्य चाद्धा
लोकोऽञ्जसा तरति दुस्तरमङ्ग मृत्युम्॥

(श्रीमद्भा० ४।१०।३०)

'उत्तानपादनन्दन ध्रुव! शरणागत-भय-भञ्जन शार्ङ्गपाणि भगवान् नारायण तुम्हारे शत्रुओंका संहार करें। भगवान्का तो नाम ही ऐसा है, जिसके सुनने और कीर्तन करनेमात्रसे मनुष्य दुस्तर मृत्युके मुखसे अनायास ही बच जाता है।'

ऋषियोंके वचन सुन ध्रुवजीने आचमन कर श्रीनारायणद्वारा निर्मित नारायणास्त्रको अपने धनुषपर चढ़ाकर छोड़ दिया। फिर तो यक्षोंकी सारी माया क्षणार्द्धमें ही नष्ट हो गयी और वे कट-कटकर गिरने लगे। यक्षोंने कुपित होकर पुनः अपने शस्त्र सँभाले, पर ध्रुवके शरोंसे वे गाजर-मूलीकी भाँति कटने लगे।

असंख्य यक्षोंको तड़प-तड़पकर मृत्युके मुखमें जाते देखकर ध्रुवके पितामह स्वायम्भुव मनुका हृदय द्रवित हो गया। उन्होंने तुरन्त वहाँ आकर ध्रुवसे कहा—'बेटा! बस करो। क्रोध नरकका द्वार है। तुम्हारी अपने भाईके प्रति प्रीति थी, यह ठीक है; पर एक यक्षके कारण इतने निर्दोष यक्षोंका संहार हमारे कुलकी रीति नहीं; यह उचित नहीं है।' स्वायम्भुव मनुने अपने पौत्र ध्रुवको सीख दी—

नायं मार्गो हि साधूनां हृषीकेशानुवर्तिनाम्।
यदात्मानं पराग्गृह्य पशुवद्भूतवैशसम्॥
तितिक्षया करुणया मैत्र्या चाखिलजन्तुषु।
समत्वेन च सर्वात्मा भगवान् सम्प्रसीदति॥

(श्रीमद्भा० ४।११।१०, १३)

'इस जड शरीरको ही आत्मा मानकर इसके लिये पशुओंकी भाँति प्राणियोंकी हिंसा करना—यह भगवत्सेवा-परायण साधुजनोंका मार्ग नहीं है, सर्वात्मा श्रीहरि तो अपनेसे बड़े पुरुषोंके प्रति सहनशीलता, छोटोंके प्रति दया, बराबरवालोंके साथ मित्रता तथा समस्त जीवोंके साथ समताका बर्ताव करनेसे ही प्रसन्न होते हैं।'

'बेटा! तुम्हारे भाईको मारनेवाले ये यक्ष नहीं हैं; क्योंकि प्राणीके जन्म-मृत्युका कारण तो परमात्मा हैं। तुम क्रोधको शान्त करो; क्योंकि यह कल्याणमार्गका शत्रु है—

येनोपसृष्टात्पुरुषाल्लोक उद्विजते भृशम्।
न बुधस्तद्वशं गच्छेदिच्छन्नभयमात्मनः॥

(श्रीमद्भा० ४।११।३२)

'क्रोधके वशीभूत हुए पुरुषसे सभी लोगोंको बड़ा भय होता है, इसलिये जो बुद्धिमान् पुरुष ऐसा चाहता है कि मुझसे किसी भी प्राणीको भय न हो और मुझे भी किसीसे भय न हो, उसे क्रोधके वशमें कभी नहीं होना चाहिये।'

'बेटा! यक्षोंके इतने संहारसे तुमसे कुबेरका अपराध बन गया है। तुम उन्हें यथाशीघ्र संतुष्ट कर लो। भगवान् तुम्हारा मङ्गल करें।'

ध्रुवने बड़ी श्रद्धासे अपने पितामह मनुके चरणोंमें प्रणाम किया। इसके अनन्तर मनुजी महर्षियोंसहित अपने लोकको चले गये।

अपना क्रोध त्यागकर ध्रुव भगवान् कुबेरके समीप गये और उनके सम्मुख हाथ जोड़कर खड़े हो गये।
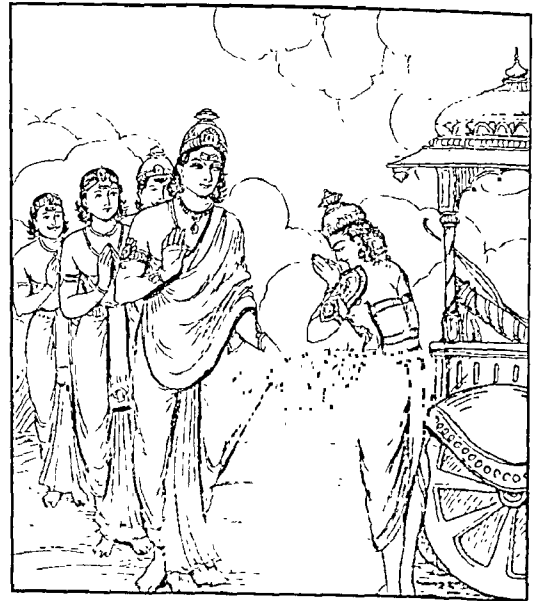
'अपने पितामहके सदुपदेशसे तुमने वैरभावका त्याग कर दिया, इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई' कुबेरने कहा। 'सच तो यह है कि न तो यक्षोंने तुम्हारे भाईको मारा है और न तुमने यक्षोंको। सम्पूर्ण जीवोंके जन्म और मृत्युके हेतु तो भगवान् काल हैं। भगवान् तुम्हारा कल्याण करें। तुम मुझसे कोई वर माँग लो।'

'श्रीहरिकी अखण्ड स्मृति बनी रहे!' ध्रुवने विनयपूर्वक वर माँगा। 'जिससे मनुष्य सहज ही दुस्त्यज संसारसागरसे

तर जाता है।'

श्रीकुबेरने ध्रुवको अखण्ड भगवत्स्मृतिका वर दिया और वहीं अन्तर्धान हो गये। ध्रुवजी अपनी राजधानीको लौट आये।

ध्रुवजी अत्यन्त शीलवान्, ब्राह्मणभक्त, दीनवत्सल एवं मर्यादाके रक्षक थे। वे सदा यज्ञादि पावन कर्म एवं भगवच्चिन्तनमें लगे रहते थे। उन्होंने देखा, राजकार्य करते छत्तीस हजार वर्ष बीत गये और ये संसारकी सारी वस्तुएँ कालके गालमें पड़ी हुई हैं, अतएव अब तो उन्हें अपने आराध्यके भजनमें ही दिन व्यतीत करने चाहिये।

बस, उन्होंने अपने पुत्र उत्कलका राजतिलक किया और बदरिकाश्रमको चले गये। वहाँ स्नानादिसे निवृत्त होकर वे आसनपर बैठे और प्राणायामद्वारा वायुको वशमें कर लिया। फिर वे श्रीहरिके ध्यानमें तन्मय हो गये। ध्रुवजी प्रेमोन्मत्त होकर भगवान् वासुदेवका ध्यान कर रहे थे। उनका रोम-रोम पुलकित होता और नेत्रोंसे अश्रु झरते जाते। कुछ समय बाद उनका देहाभिमान सर्वथा गल गया। मैं कौन हूँ और कहाँ हूँ, इसकी स्मृति भी उन्हें नहीं रही।

अचानक उन्होंने देखा, जैसे चन्द्रमा उनके सम्मुख उतर रहा हो। समीप आनेपर उन्होंने देखा, एक सुन्दर विमान था। उससे चतुर्दिक् प्रकाश छिटक रहा था। उससे दो अत्यन्त श्याम वर्ण किशोर चतुर्भुजपार्षद उतरे। वे सुन्दर वस्त्र एवं दिव्य आभूषणोंसे अलंकृत थे।

उन्हें श्रीविष्णुके पार्षद जानकर ध्रुवजी उठकर खड़े हो गये। उन्होंने श्रीभगवान्‌का नाम लेते हुए उन्हें प्रणाम किया और हाथ जोड़े, सिर नीचा किये, श्रीभगवान्‌के नामका जप एवं उनके चरणोंका ध्यान करने लगे।

भगवान्‌के पार्षद सुनन्द और नन्दने मुस्कराते हुए ध्रुवके समीप आकर कहा—'भक्तवर ध्रुव! आपका मङ्गल हो। आपने पाँच वर्षकी आयुमें ही तप करके भगवान् वासुदेवका दर्शन प्राप्त कर लिया था। हम उन्हीं परम प्रभुके आदेशसे आपको उस लोकमें ले चलनेके लिये आये हैं, जहाँ सप्तर्षि भी नहीं पहुँच सके। केवल नीचेसे देखते रहते हैं। सम्पूर्ण नक्षत्रमण्डल उसकी परिक्रमा करते हैं। यह श्रेष्ठ विमान पुण्यश्लोक-शिखामणि प्रभुने आपके लिये भेजा है। आप इसपर बैठ जायँ।'

ध्रुवने स्नान और संध्या-वन्दनादि कर्म किया। बदरिकाश्रमके मुनियोंको प्रणाम कर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। इसके अनन्तर उक्त श्रेष्ठ विमानकी पूजा एवं उसकी परिक्रमा कर प्रभुके पार्षदोंका पूजन किया।

'मर्त्यधामके प्रत्येक प्राणीको मैं स्पर्श करता हूँ।' मूर्तिमान् कालको सम्मुख देखकर ध्रुवने कहा—'तुम्हें मेरा स्पर्श प्राप्त हो।' और उसके मस्तकपर पैर रखा और विमानपर आरूढ़ होने लगे।'

'क्या मैं अपनी जन्मदायिनी जननीको छोड़कर एकाकी वैकुण्ठधाम जाऊँगा?' विमानपर चढ़ते ही ध्रुव विचार करने लगे।

'वह देखिये!' सुनन्द और नन्दने ध्रुवके मनकी बात जानकर उनका समाधान करनेके लिये कहा। 'आपकी परम पूजनीया माता दूसरे विमानपर आगे-आगे जा रही हैं।'

ध्रुवने देखा, दूसरा विमान विद्युत्कान्तिकी भाँति प्रकाश बिखेरता शून्यमें चला जा रहा है।

ध्रुव सर्वथा निश्चिन्त होकर श्रीहरिका स्मरण करते हुए विमानमें बैठ गये और वह परमधाम—अविचल धामके लिये उड़ चला।

आकाशमें मङ्गल-वाद्य बज उठे।

× × ×

यद् भ्राजमानं स्वरुचैव सर्वतो
लोकास्त्रयो ह्यनु विभ्राजन्त एते।

यन्नाव्रजञ्जन्तुषु ये ऽननुग्रहा
व्रजन्ति भद्राणि चरन्ति येऽनिशम्॥
शान्ताः समदृशः शुद्धाः सर्वभूतानुरञ्जनाः।
यान्त्यञ्जसाच्युतपदमच्युतप्रियबान्धवाः ॥

(श्रीमद्भा० ४।१२।३६-३७)

'यह दिव्य धाम (विष्णुधाम) सब ओर अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित है, इसीके प्रकाशसे तीनों लोक प्रकाशित हैं। इसमें जीवोंपर निर्दयता करनेवाले पुरुष नहीं जा सकते। यहाँ तो उन्हींकी पहुँच होती है, जो दिन-रात प्राणियोंके कल्याणके लिये शुभ कर्म ही करते रहते हैं। जो शान्त, समदर्शी, शुद्ध और सब प्राणियोंको प्रसन्न रखनेवाले हैं तथा भगवद्भक्तोंको ही अपना एकमात्र सच्चा सुहृद् मानते हैं—ऐसे लोग सुगमतासे ही इस भगवद्धामको प्राप्त कर लेते हैं।'

~~○~~

[ख] गजेन्द्रोद्धारक भगवान् श्रीहरि

नायं वेद स्वमात्मानं यच्छक्त्याहंधिया हतम्।
तं दुरत्ययमाहात्म्यं भगवन्तमितोऽस्म्यहम्॥

(श्रीमद्भा० ८।३।२९)

'आपकी मायारूपा अहंबुद्धिसे आत्माका स्वरूप ढक गया है, इसीसे यह जीव अपने स्वरूपको नहीं जान पाता। आपकी महिमा अपार है। उन सर्वशक्तिमान् एवं माधुर्यनिधि आप भगवान्के मैं शरण हूँ।'—गजेन्द्र

× × ×

अत्यन्त प्राचीन कालकी बात है। द्रविड़ देशमें एक पाण्ड्यवंशी राजा राज्य करते थे। उनका नाम था—इन्द्रद्युम्न। वे भगवान्की आराधनामें ही अपना अधिक समय व्यतीत करते थे। यद्यपि उनके राज्यमें सर्वत्र सुख-शान्ति थी, प्रजा प्रत्येक रीतिसे संतुष्ट थी तथापि राजा इन्द्रद्युम्न अपना समय राजकार्यमें कम ही दे पाते थे। 'श्रीभगवान् ही मेरे राज्यकी व्यवस्था करते हैं। उनका राज्य, चिन्ता वे करें।' वे तो बस, अपने इष्ट परमप्रभुकी उपासनामें ही दत्तचित्त रहते।

राजा इन्द्रद्युम्नके मनमें आराध्य-आराधनाकी लालसा उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी, इस कारण वे राज्यका त्याग कर मलयपर्वतपर रहने लगे। उनका वेष तपस्वियोंका था। सिरके बाल बढ़कर जटाके रूपमें हो गये। राजा इन्द्रद्युम्नने मौन-व्रत धारण कर लिया था और वे स्नानादिसे निवृत्त होकर निरन्तर परब्रह्म परमात्माकी आराधनामें तल्लीन रहते। उनके मन और प्राण भी श्रीहरिके चरणकमलोंके मधुकर बने रहते। इसके अतिरिक्त उन्हें जगत्की कोई वस्तु न सुहाती और न उन्हें राज्य, कोष, प्रजा, पत्नी आदि किसी प्राणी-पदार्थकी स्मृति ही होती।

एक बारकी बात है, राजा इन्द्रद्युम्न प्रतिदिनकी भाँति अपने नियमानुसार स्नानादिसे निवृत्त होकर सर्वसमर्थ प्रभुकी उपासनामें तल्लीन थे। उन्हें बाह्य जगत्का तनिक भी ध्यान न था। संयोगवश उसी समय महर्षि अगस्त्य अपने शिष्य-समुदायके साथ वहाँ पहुँचे।

न पाद्य, न अर्घ्य, न स्वागत! मौनव्रती राजा इन्द्रद्युम्न तो परमप्रभुके ध्यानमें निमग्न थे।

महर्षि अगस्त्य कुपित हो गये, इन्द्रद्युम्नको उन्होंने शाप दे दिया—

तस्मा इमं शापमदादसाधु-
रयं दुरात्माकृतबुद्धिरद्य।
विप्रावमन्ता विशतां तमोऽन्धं
यथा गजः स्तब्धमतिः स एव॥

(श्रीमद्भा० ८।४।१०)

'इस राजाने गुरुजनोंसे शिक्षा नहीं ग्रहण की है, अभिमानवश परोपकारसे निवृत्त होकर मनमानी कर रहा है। ब्राह्मणोंका अपमान करनेवाला यह हाथीके समान जडबुद्धि है, इसलिये इसे वही घोर अज्ञानमयी हाथीकी योनि प्राप्त हो।'

क्रुद्ध महर्षि अगस्त्य भगवद्भक्त इन्द्रद्युम्नको शाप देकर चले गये। नरेशने इसे श्रीभगवान्का मङ्गलमय विधान समझकर प्रभुके चरणोंमें सिर रख दिया।

× × ×

क्षीराब्धिमें दस सहस्र योजन लम्बा-चौड़ा और ऊँचा एक त्रिकूट नामक पर्वत था। वह पर्वत अत्यन्त सुन्दर एवं श्रेष्ठ था। उस पर्वतराज त्रिकूटकी तराईमें

ऋतुमान् नामक भगवान् वरुणका एक क्रीडा-कानन था। उसके चारों ओर दिव्य वृक्ष सुशोभित थे। वे वृक्ष सदा पुष्पों और फलोंसे लदे रहते थे।

उक्त काननमें एक अत्यन्त सुन्दर एवं विशाल सरोवर था। उसमें खिले कमलोंकी अद्भुत शोभा थी। उनपर भ्रमर गुंजार करते रहते थे। उसके तटपर चारों ओर अत्यन्त सुगन्धित पुष्पोंवाले वृक्ष शोभा दे रहे थे। वे वृक्ष प्रत्येक ऋतुमें हरे-भरे और पुष्पित रहते थे। देवाङ्गनाएँ वहाँ क्रीड़ा करने आया करती थीं।

उक्त भगवान् वरुणके क्रीडा-कानन ऋतुमान्के समीप पर्वतश्रेष्ठ त्रिकूटके गहन वनमें हथिनियोंके साथ अत्यन्त शक्तिशाली और अमित पराक्रमी एक गजेन्द्र रहता था। वह श्रेष्ठ गजोंमें अग्रगण्य और यूथपति था। यूथपति गजेन्द्र अपनी हथिनियों, कलभों और दूसरे हाथियोंके साथ वनमें विचरण किया करता था। अत्यन्त बलशाली गजेन्द्रकी महान् शक्तिसे हिंसक जंगली पशु सदा ही सशङ्क रहते। उसके गण्डसे चूनेवाली मदधाराकी गन्धसे व्याघ्र, गैंडे, नाग और चमरी गाय आदि जंगली पशु दूर भाग जाते।

एक बारकी बात है। गर्मीके दिन थे। मध्याह्नकाल और प्रचण्ड धूप थी। गजेन्द्र अपने साथियोंसहित तृषाधिक्यसे व्याकुल हो गया। कमलकी गन्धसे सुगन्धित वायुको सूँघकर वह उक्त अत्यन्त सुन्दर और चित्ताकर्षक विशाल सरोवरके तटपर जा पहुँचा।

गजेन्द्रने उक्त सरोवरके अत्यन्त निर्मल, शीतल और मीठे जलमें प्रवेश किया। पहले तो उसने जल पीकर अपनी तृषा बुझायी और फिर उक्त जलमें स्नानकर अपना श्रम दूर किया। फिर उसने जल-क्रीड़ा आरम्भ की। वह अपनी सूँड़में जल भरकर उसकी फुहारोंसे हथिनियोंको स्नान कराने लगा तथा कलभोंके मुँहमें सूँड़ डालकर उन्हें जल पिलाने लगा। दूसरी हथिनियाँ और गज अपनी सूँड़ोंकी फुहारसे गजेन्द्रको स्नान करा रहे थे तथा उसका सत्कार कर रहे थे।

अचानक गजेन्द्रने सूँड़ उठाकर चीत्कार की। पता नहीं, किधरसे एक मगरने आकर उसका पैर पकड़ लिया। गजेन्द्रने अपना पैर छुड़ानेके लिये पूरी शक्ति लगायी, पर उसका वश नहीं चला, पैर नहीं छूटा अपने स्वामी गजेन्द्रको ग्राहग्रस्त देखकर हथिनियाँ, कलभ और अन्य गज अत्यन्त व्याकुल हो गये। वे सूँड़ उठाकर चिग्घाड़ने और गजेन्द्रको बचानेके लिये सरोवरके भीतर-बाहर दौड़ने लगे। उन्होंने पूरी चेष्टा की, पर वे सफल नहीं हुए।

महर्षि अगस्त्यके शापसे शप्त महाराज इन्द्रद्युम्न ही गजेन्द्र हो गये थे और गन्धर्वश्रेष्ठ हूहू महर्षि देवलके शापसे ग्राह हो गये थे। वे भी अत्यन्त पराक्रमी थे।

संघर्ष चल रहा था। गजेन्द्र बाहर खींचता और ग्राह गजेन्द्रको भीतर। सरोवरका निर्मल जल गँदला हो गया। कमल-दल क्षत-विक्षत हो गये। जल-जन्तु व्याकुल हो उठे। गजेन्द्र और ग्राहका संघर्ष एक सहस्र वर्षतक चलता रहा। दोनों जीवित रहे। यह दृश्य देखकर देवगण चकित हो गये।

अन्ततः गजेन्द्रका शरीर शिथिल हो गया। उसके शरीरमें शक्ति और मनमें उत्साह नहीं रहा; परंतु जलचर होनेके कारण ग्राहकी शक्तिमें कोई कमी नहीं आयी। उसकी शक्ति बढ़ गयी और वह नवीन उत्साहसे और अधिक शक्ति लगाकर गजेन्द्रको खींचने लगा।

सर्वथा असमर्थ गजेन्द्रके प्राण संकटमें पड़ गये। उसकी शक्ति और पराक्रमका अहंकार चूर्ण हो गया। वह पूर्णतया निराश हो गया, किंतु पूर्वजन्मकी निरन्तर भगवदाराधनाके फलस्वरूप उसे भगवत्स्मृति हो आयी। उसने मन-ही-मन निश्चय किया—'मैं कराल कालके भयसे चराचर प्राणियोंके शरण्य सर्वसमर्थ प्रभुकी शरण ग्रहण करता हूँ।'

गजेन्द्र इस निश्चयके साथ मनको एकाग्रकर पूर्वजन्ममें सीखे श्रेष्ठ स्तोत्रके द्वारा परम प्रभुकी स्तुति करने लगा—

जो जगत्के मूल कारण हैं और सबके हृदयमें पुरुषरूपमें विराजमान हैं एवं समस्त जगत्के एकमात्र स्वामी हैं, जिनके कारण इस संसारमें चेतना जाग्रत होती है—उन भगवान्के चरणोंमें मैं प्रणाम करता हूँ। प्रेमपूर्वक उन्हीं प्रभुका ध्यान करता हूँ। प्रलयकालमें सब कुछ नष्ट हो जानेपर भी जो महामहिम परमात्मा बने रहते हैं, वे प्रभु मेरी रक्षा करें। नटकी भाँति

अनेक वेष धारण करनेवाले प्रभुका वास्तविक स्वरूप एवं रहस्य देवता भी नहीं जानते, फिर अन्य कोई उसका कैसे वर्णन करे? वे प्रभु मेरी रक्षा करें। जिन कल्याणमय प्रभुके दर्शनके लिये संत-महात्मागण सर्वस्व त्यागकर जितेन्द्रिय हो वनमें अखण्ड तपश्चरण करते हैं, वे परमात्मा मेरी रक्षा करें। मैं सर्वशक्तिमान्, सर्वैश्वर्यमय, सर्वसमर्थ प्रभुके चरणोंमें नमस्कार करता हूँ। मैं जीवित रहना नहीं चाहता। इस अज्ञानमय योनिमें रहकर करूँगा ही क्या? मैं तो आत्मप्रकाशको आच्छादित करनेवाले अज्ञानके आवरणसे मुक्त होना चाहता हूँ, जो कालक्रमसे अपने-आप नहीं छूट सकता, किंतु केवल भगवत्कृपा और तत्त्वज्ञानद्वारा ही नष्ट होता है। अतएव मैं उन श्रीहरिके चरणोंमें प्रणाम करता हूँ, जिनकी कृपासे जीवन और मृत्युके कठोर पाशसे जीव सहज ही छूट जाता है। हे प्रभो! आपकी मायाके वश होकर जीव अपने स्वरूपको नहीं जान पाता। आपकी महिमाका पार नहीं। आप अनादि, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, सर्वान्तर्यामी एवं सौन्दर्यमाधुर्यनिधि हैं। मैं आपके शरण हूँ। आप मेरी रक्षा करें।'

गजेन्द्रकी स्तुति सुनकर सर्वात्मा सर्वदेवरूप श्रीहरि प्रकट हो गये। गजेन्द्रको पीड़ित देखकर श्रीहरि वेदमय गरुडपर आरूढ़ होकर अत्यन्त शीघ्रतासे उक्त सरोवरके तटपर गजेन्द्रके पास पहुँच गये।

जब जीवनसे निराश और पीड़ासे छटपटाते गजेन्द्रने हाथमें चक्र लिये गरुडारूढ़ श्रीहरिको तीव्रतासे अपनी ओर आते देखा तो उसने कमलका एक सुन्दर पुष्प अपनी सूँड़में लेकर ऊपर उठाया और बड़े कष्टसे कहा—'नारायण! जगद्गुरो! भगवन्! आपको नमस्कार है।'

गजेन्द्रको अत्यन्त पीड़ित देखकर सर्वशक्तिमान् श्रीहरि गरुडकी पीठसे कूद पड़े और गजेन्द्रके साथ ही ग्राहको भी सरोवरसे बाहर खींच लाये। इसके उपरान्त श्रीहरिने तुरंत अपने तीक्ष्ण चक्रसे ग्राहका मुँह फाड़कर गजेन्द्रको मुक्त कर दिया।

ब्रह्मादि देवगण श्रीहरिकी प्रशंसा करते हुए उनके ऊपर स्वर्गीय सुमनोंकी वृष्टि करने लगे। दुन्दुभियाँ बज उठीं। गन्धर्व नृत्य और गान करने लगे। सिद्ध, ऋषि-महर्षि परब्रह्म श्रीहरिका गुणानुवाद गाने लगे।

ग्राह दिव्यशरीरधारी हो गया। उसने श्रीभगवान्के चरणोंमें सिर रखकर प्रणाम किया और फिर वह भगवान्के गुणोंकी प्रशंसा करने लगा। भगवान् श्रीहरिके मङ्गलमय वरद हस्तके स्पर्शसे पापमुक्त होकर शप्त हूहू गन्धर्वने प्रभुकी परिक्रमा की और उनके त्रैलोक्यवन्दित चरणकमलोंमें प्रणामकर वह अपने लोकको चला गया। भगवान् श्रीहरिने गजेन्द्रका उद्धार कर उसे अपना पार्षद बना लिया। गन्धर्व, सिद्ध और देवगण उनकी इस लीलाका गान करने लगे। गजेन्द्रकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर सर्वात्मा एवं सर्वभूतस्वरूप श्रीहरिने सबलोगोंके सामने कहा—

ये मां स्तुवन्त्यनेनाङ्ग प्रतिबुध्य निशात्यये।
तेषां प्राणात्यये चाहं ददामि विमलां मतिम्॥

(श्रीमद्भा० ८।४।२५)

'प्यारे गजेन्द्र! जो लोग ब्राह्ममुहूर्तमें जगकर तुम्हारी की हुई स्तुतिसे* मेरा स्तवन करेंगे, मृत्युके समय उन्हें मैं निर्मल बुद्धिका दान करूँगा।'

श्रीहरिने पार्षदरूप गजेन्द्रको साथ लिया और गरुडारूढ़ हो अपने दिव्यधामके लिये प्रस्थित हो गये।

~~~ 0 ~~~

* श्रीमद्भागवतके आठवें स्कन्धका तृतीय अध्याय 'गजेन्द्रस्तुति' है।
~~~

(१८) भगवान् परशुराम

महर्षि जमदग्निकी पतिपरायणा पत्नी (महाराज रेणुकी पुत्री) रेणुकाके गर्भसे पाँच पुत्र उत्पन्न हुए—रुमण्वान्, सुषेण, वसु, विश्वावसु और पाँचवें सबसे छोटे परशुराम। इनमेंसे परशुराम निखिलसृष्टिनायक श्रीविष्णुके आवेशावतार हैं। प्रकट होते ही ये पार्वतीवल्लभ भगवान् शंकरकी आराधना करनेके लिये कैलासपर्वतपर चले गये। देवाधिदेव महादेवने संतुष्ट होकर इन्हें वर माँगनेके लिये कहा। परशुरामजी बोले—'प्रभो! आप कृपापूर्वक मुझे कभी कुण्ठित न होनेवाला अमोघ अस्त्र प्रदान कीजिये।'

भगवान् शंकरने इन्हें अनेक अस्त्र-शस्त्रोंसहित दिव्य परशु प्रदान किया। वह दिव्य परशु भगवान् शंकरके उसी महातेजसे निर्मित हुआ था, जिससे श्रीविष्णुका सुदर्शन चक्र और देवराज इन्द्रका वज्र बना था। अत्यन्त तीक्ष्ण धारवाला अमोघ परशु धारण करनेके कारण भगवान् 'राम' का परशुसहित नाम 'परशुराम' पड़ा।

परशुरामजी बाल्यकालसे ही अत्यन्त वीर, पराक्रमी, अस्त्र-शस्त्र-विद्याके प्रेमी, त्यागी, तपस्वी एवं सुन्दर थे। धनुर्वेदकी विधिवत् शिक्षा इन्होंने अपने पितासे ही प्राप्त की। ये 'रुरु' नामक मृगका चर्म धारण करते। कंधेपर धनुर्बाण एवं हाथमें दिव्य परशु लेकर चलते समय ये वीररसके सजीव विग्रह प्रतीत होते थे। पिताके चरणोंमें इनकी अनन्य भक्ति थी।

एक बारकी बात है, संध्याका समय था। माता रेणुका अपने आश्रमसे जल लेने यमुना-तटपर गयीं। संयोगवश उसी समय गन्धर्वराज चित्ररथ अप्सराओंसहित वहाँ आकर जलमें क्रीड़ा करने लगा। माता रेणुकाका भाव दूषित हो गया और यह बात महर्षि जमदग्निको विदित हो गयी। माता रेणुका जल लेकर लौटीं तो क्रुद्ध होकर उन्होंने अपने पुत्रोंसे कहा—'इस पापिनीका वध कर दो।' किंतु वहाँ उपस्थित चारों पुत्र मातृस्नेहवश चुपचाप खड़े रहे।

'बेटा! तुम अपनी दुष्टा माता और इन चारों भाइयोंका सिर उतार लो।' परशुरामजी वनसे लौटे ही थे कि उन्हें क्रुद्ध पिताने आज्ञा दी। अपने पिताके तपोबलसे परिचित परशुरामजीने तुरंत परशु उठाया और मातासहित अपने चारों भाइयोंका मस्तक काटकर पृथक् कर दिया।

'धर्मज्ञ राम! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ।' क्रोध शान्त होनेपर महर्षि जमदग्निने परशुरामजीसे कहा। 'तुम इच्छित वर माँग लो।'

'पिताजी! मेरी माता जीवित हो जायँ और उन्हें मेरेद्वारा मारे जानेकी स्मृति न रहे।' परशुरामजीने हाथ जोड़कर पितासे निवेदन किया—'और वह मानस-पाप उन्हें स्पर्श न करे। मेरे चारों भाई जीवित हो जायँ। युद्धमें मेरा कोई सामना न कर सके और मैं दीर्घायु प्राप्त करूँ।'

'यही होगा।' मुस्कराकर जमदग्निजीने कहा—'इन सबके सिर इनके धड़ोंसे जोड़ दो।'

परशुरामजीने पिताकी आज्ञाका पालन किया और उनकी माता तथा अग्रज अनायास ही उठ बैठे। उन्होंने समझा, हमें गाढ़ निद्रा आ गयी थी।

एक बार हैहयवंशीय महाराज कृतवीर्यके परम पराक्रमी पुत्र माहिष्मतीपुरी (आधुनिक माहेश्वर)-के नरेश वीरवर सहस्रार्जुन महर्षि जमदग्निके आश्रममें उपस्थित हुए। महर्षिने कामधेनुके द्वारा ससैन्य उनका अद्भुत स्वागत किया। शूरशिरोमणि सहस्रार्जुनने महर्षिसे कामधेनु दे देनेके लिये कहा, पर महर्षि जमदग्निने कहा—'राजन्!

यह कामधेनु तो मेरे समस्त धर्म-कर्मोंकी जननी है। यज्ञिय सामग्री, देवता, ऋषि, पितर और अतिथियोंका सत्कार ही नहीं, इसी गौके द्वारा मेरे सारे इहलौकिक तथा पारलौकिक कर्म सम्पन्न होते हैं। मैं इसे देनेका विचार भी कैसे कर सकता हूँ?'

शक्तिसम्पन्न नरेश सहस्रार्जुनने बलपूर्वक गाय छीन ली और सेनासहित अपनी माहिष्मतीपुरीके लिये चलते बने। सवत्सा कामधेनु पीछे ऋषिकी ओर देख-देखकर रँभाती जा रही थी। दुष्ट क्षत्रिय उसे दण्ड-प्रहार कर हाँकते ले जा रहे थे।

परम वीतराग, क्षमामूर्ति, ब्राह्मण-ऋषिके नेत्रोंमें आँसू भर आये, पर वे कुछ बोल न सके। चुपचाप श्रीभगवान्‌के ध्यानमें बैठ गये।

'मैं अपने पिताका मलिन और उदास मुँह नहीं देख सकता, माँ!' समिधा लिये वनसे लौटकर मूर्तिमान् तप और तेज परशुरामने अपनी माताके मुखसे गो-हरणका संवाद सुना तो क्रोधसे काँप उठे। उन्होंने अपनी मातासे कहा—'माता! मैं उस कृतघ्न और दुष्ट नरेशको यथोचित दण्ड दे, कामधेनुको लेकर लौटनेपर ही पूज्य पिताके चरणोंमें प्रणाम निवेदन करूँगा।'

माता रेणुका कुछ बोल भी न सकीं कि उग्रताकी प्रचण्ड मूर्ति जामदग्न्य अत्यन्त शीघ्रतासे अपना धनुष, अक्षय तूणीर और प्रचण्ड परशु ले सहस्रार्जुनके पीछे दौड़े। तपस्यासे दीप्त, गौरवर्ण, बिखरी काली जटाएँ, कटिमें रुरु मृगका चर्म, स्कन्धपर धनुष, पृष्ठदेशपर अक्षय तूणीर, दाहिने हाथमें विद्युत्-तुल्य चमचमाता दिव्य अमोघ परशु, हृदयमें क्रोधकी ज्वाला लिये और लाल-लाल नेत्रोंसे अङ्गार बरसाते वायुवेगसे दौड़ते परशुराम—जैसे महाकालकी प्रचण्ड मूर्ति सहस्रार्जुनको निगल जानेके लिये दौड़ रही हो।

उद्धत कार्तवीर्य अपनी माहिष्मतीपुरीमें प्रविष्ट भी नहीं हो पाया था कि पितृभक्त, परम तेजस्वी ऋषिकुमार परशुरामकी गर्जना सुनकर सहम गया। अपने पीछे प्रज्वलित अग्नितुल्य परशुरामको युद्धके लिये प्रस्तुत देखकर उसने अत्यन्त उपेक्षा-भावसे अपने सैनिकोंसे कहा—'ब्राह्मण कामधेनु लेने आया है। इसे मार डालो।'

पर उसके आश्चर्यकी सीमा न रही, जब उसके लक्षाधिक सशस्त्र वीर सैनिक कुछ ही क्षणोंमें परशुरामके प्रचण्ड परशुकी भेंट हो गये। कार्तवीर्यने एक साथ पाँच सौ धनुषोंसे पाँच सौ तीक्ष्ण शरोंकी वर्षा परशुरामपर की, पर उनके एक ही धनुषके एक साथ छूटे हुए सहस्र शरोंकी वर्षासे कार्तवीर्यके शर बीचमें ही नष्ट हो गये और उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गसे रक्तकी धाराएँ निकलने लगीं। परम धीर सहस्रार्जुन घबरा गया। धनुर्बाणसे सफलताकी आशा न देख, वह परशुरामको पर्वतके नीचे दबाकर मार डालनेके लिये पर्वत उखाड़ना ही चाहता था कि मूषकपर विडालकी भाँति सहस्रार्जुनपर परशुराम चढ़ बैठे। उन्होंने उसकी सहस्र भुजाओंको काटकर पृथ्वीपर फेंक दिया और फिर उसका सिर धड़से अलग करके वे क्रोधसे प्रज्वलित विग्रहकी भाँति चतुर्दिक् शत्रुओंकी प्रतीक्षा करने लगे। सहस्रार्जुनके दस हजार पुत्र युद्धभूमिसे भाग गये थे।

परशुरामजीने एक ओर अत्यन्त भीत और चकित कामधेनुको देखा तो जैसे महापाषाण द्रवित हो गया हो, परशुरामजीके नेत्रोंसे जलकी दो बूँदें लुढ़क पड़ीं। उन्होंने गायके गलेमें अपनी लम्बी बाँहें डाल दीं तथा उसे सहलाकर प्यारपूर्वक ले चले।

'सार्वभौम नृपतिका वध ब्रह्महत्याके तुल्य पातक है।' सवत्सा कामधेनुसहित रामके श्रद्धापूर्वक प्रणाम करनेपर क्षमामय महर्षि जमदग्निने अशान्त चित्तसे अपने पुत्रसे कहा—'ब्राह्मणका सर्वोपरि धर्म क्षमा है। तुम्हारे लिये प्रायश्चित्त आवश्यक है।'

'पिताजी! प्रेमपूर्वक स्वागत करनेवाले तपस्वी ब्राह्मणकी गाय बलपूर्वक छीन लेनेवाले नराधम और परम पातकीका वध पाप नहीं।' परशुरामजीने सिर झुकाकर शान्तिपूर्वक उत्तर दिया। 'पर आपके आदेशानुसार मैं प्रायश्चित्त अवश्य करूँगा। आपकी प्रत्येक आज्ञा मुझे शिरोधार्य है।'

अपने पिता महर्षि जमदग्निके आदेशानुसार निस्स्पृह तपस्वी परशुरामजी अपने हृदयमें भुवनमोहन परम प्रभुकी मङ्गलमयी छविका ध्यान एवं मुखसे उनके सुमधुर नामोंका धीरे-धीरे कीर्तन करते हुए तीर्थयात्राके लिये निकल पड़े। परशुरामजी एक वर्षमें पिताके बताये सम्पूर्ण

तीर्थोंका सविधि पर्यटनकर अपने आश्रममें लौटे, तब उन्होंने माता-पिताके चरणोंमें अत्यन्त भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और उन्होंने भी अपने निष्पाप तपस्वी पुत्रको अत्यन्त प्रसन्न होकर शुभाशीर्वाद प्रदान किया।

वीर सहस्रार्जुनके कायर पुत्र परशुरामजीके सम्मुख तो नहीं ठहर सके, प्राणभयसे भाग गये; किंतु वे अपने पिताके वधका बदला लेनेके लिये सदा सचिन्त रहते थे। एक बार जब उन्हें विदित हुआ कि अपने चारों भाइयोंसहित राम वनमें दूर चले गये हैं, तब वे नर-राक्षस जमदग्निके आश्रमपर पहुँचे और चोरीसे ध्यानरत महर्षिका मस्तक उतार, उसे अपने साथ ले, आश्रमको नष्ट करते हुए भाग गये।

'हा राम! हा राम!!'—माताका करुण-क्रन्दन सुनकर परशुराम भागते हुए आश्रमपर आये। उन्होंने सहस्रार्जुनके नीच पुत्रोंके द्वारा अपने परमपूज्य पिताकी हत्या देखी तो वे अपना अक्षय तूणीरसहित धनुष और तीक्ष्ण परशु लेकर दौड़े। माहिष्मतीपुरीमें पहुँचते ही वे सहस्रार्जुनके सहस्रों पुत्रोंको अपने अमोघ परशुसे काटने लगे। साक्षात् कालकी भाँति वे दुष्ट क्षत्रियोंको काट रहे थे। माहिष्मतीपुरी जैसे रक्तमें डूब गयी। सहस्रार्जुनके पाँच पुत्र—जयध्वज, शूरसेन, वृषभ, मधु और ऊर्जित किसी प्रकार लुक-छिपकर प्राण बचाकर भाग जानेमें समर्थ हुए, पर अत्युग्र परशुरामजी क्रूरकर्मी क्षत्रियोंका वध करते ही रहे। वे नगर-नगर और गाँव-गाँवमें जाकर पृथ्वीके भारभूत कुकर्मी और पातकी क्षत्रियोंका संहार करने लगे। उन्होंने पृथ्वीको क्षत्रिय-शून्य समझकर अपने पिताके सिरको धड़से जोड़कर उनका विधिवत् दाह-संस्कार किया। महर्षि जमदग्निको स्मृतिरूप संकल्पमय शरीर तथा सप्तर्षियोंमें सातवाँ स्थान मिला।

भगवान् परशुरामने पृथ्वीको इक्कीस बार क्षत्रियोंसे हीन कर दिया। वे क्षत्रियोंको ढूँढ़-ढूँढ़कर एकत्र करते और कुरुक्षेत्रमें ले जाकर उनका वध कर डालते। इस प्रकार परशुरामजीने क्षत्रियोंके रक्तसे पाँच सरोवर भर दिये। वह स्थान 'समन्तपञ्चक' नामसे प्रसिद्ध है।

उन सरोवरोंके रक्तरूपी जलसे भगवान् परशुरामने अपने पितरोंका तर्पण किया। परशुरामजीके ऋचीक आदि पितृगण प्रसन्न होकर उनके समीप आये और उन्हें इच्छित वर माँगनेके लिये कहा। अपने पितरोंके चरणोंमें प्रणाम कर तपस्वी परशुरामजीने उनसे प्रार्थना की—

यदि मे पितरः प्रीता यद्यनुग्राह्यता मयि।
यच्च रोषाभिभूतेन क्षत्रमुत्सादितं मया॥
अतश्च पापान्मुच्येऽहमेष मे प्रार्थितो वरः।
ह्रदाश्च तीर्थभूता मे भवेयुर्भुवि विश्रुताः॥

(महा०आदि० २।८-९)

'यदि आप सब हमारे पितर मुझपर प्रसन्न हैं और मुझे अपना अनुग्रह-पात्र समझते हैं तो मैंने जो क्रोधवश क्षत्रियवंशका विध्वंस किया है, इस कुकर्मके पापसे मैं मुक्त हो जाऊँ और ये मेरे बनाये हुए सरोवर पृथ्वीमें प्रसिद्ध तीर्थ हो जायँ। यही वर मैं आपलोगोंसे चाहता हूँ।'

'यही होगा।' पितरोंने परशुरामजीको वर देते हुए कहा—'पर अब शेष क्षत्रिय-वंशका संहार मत करना, उन्हें क्षमा कर देना।'

अपने पूज्य पितरोंके आदेशसे जमदग्निनन्दन शान्त हो गये। उस समय सम्पूर्ण वसुन्धरा परशुरामजीके अधीन थी। उनका विरोध करनेका साहस किसीमें नहीं था, किंतु उन्हें राज्यसुख एवं वैभवकी कोई कामना नहीं थी। फलतः उन्होंने सारी पृथ्वी कश्यपजीको दान कर दी।

जब श्रीभगवान्के आवेशावतार परशुरामजीने सम्पूर्ण पृथिवीको तृणतुल्य समझकर दान कर दिया, तब महर्षि कश्यपने उनसे कहा—'तुम मेरी पृथ्वी छोड़ दो और अपने लिये समुद्रसे स्थान माँग लो।'

परशुरामजी तुरंत वहाँसे महेन्द्रपर्वतपर चले गये। उस समय महर्षि भरद्वाजके यशस्वी पुत्र द्रोण धनुर्वेद, दिव्यास्त्रों एवं नीतिशास्त्रके ज्ञानके लिये भगवान् परशुरामके पास महेन्द्रपर्वतपर पहुँचे।

'मैं आङ्गिरस-कुलोत्पन्न महर्षि भरद्वाजका अयोनिज पुत्र 'द्रोण' हूँ।' अपना परिचय देते हुए द्रोणने परशुरामजीके चरणोंमें प्रणाम किया और कहा—'मैं धनकी इच्छासे आपके पास आया हूँ, आप मुझपर दया करें।'

परमविरक्त परशुरामजीने द्रोणसे कहा—

शरीरमात्रमेवाद्य मया समवशेषितम्।
अस्त्राणि वा शरीरं वा ब्रह्मन्नेकतमं वृणु॥

(महा०, आदि० १६५।१०)

'ब्रह्मन्! अब तो मैंने केवल अपने शरीरको ही बचा रखा है (शरीरके सिवा सब कुछ दान कर दिया)। अत: अब तुम मेरे अस्त्रों अथवा यह शरीर—दोनोंमेंसे किसी एकको माँग लो।'

'प्रभो! आप मुझे सम्पूर्ण अस्त्र, उनके प्रयोग तथा उपसंहारकी विधि प्रदान करें।' द्रोणने निवेदन किया।

तब रेणुकानन्दनने अपने सब अस्त्र द्रोणको दे दिये। आचार्य द्रोण भृगुनन्दन परशुरामजीसे दुर्लभ ब्रह्मास्त्रका भी ज्ञान प्राप्तकर धरतीपर अत्यधिक शक्तिशाली हो गये।

राजा युधिष्ठिरके राज्याभिषेकके समय महातपस्वी व्यास, देवल, असित तथा अन्य महर्षियोंके साथ जामदग्न्यने भी उनका अभिषेक किया था।

भीष्मपितामहने भी इनसे अस्त्र-विद्या सीखी थी। उन्होंने अपने मुखारविन्दसे कहा—'एक बार मुझसे मेरे गुरु परम तेजस्वी परशुरामजीका युद्ध हुआ। परशुरामजीके पास रथ नहीं था। तब मैंने कहा—'ब्रह्मन्! मैं रथपर बैठा हूँ और आप धरतीपर खड़े हैं। इस कारण मैं आपसे युद्ध नहीं करूँगा। मुझसे युद्ध करनेके लिये आप कवच पहनकर रथारूढ़ हो जायँ।'

'तब युद्धभूमिमें मुस्कराते हुए परशुरामजीने मुझसे कहा—

रथो मे मेदिनी भीष्म वाहा वेदाः सदश्ववत्॥
सूतश्च मातरिश्वा वै कवचं वेदमातरः।
सुसंवीतो रणे ताभिर्योत्स्येऽहं कुरुनन्दन॥

(महा०, उद्योग० १७९। ३-४)

'कुरुनन्दन भीष्म! मेरे लिये पृथ्वी ही रथ है, चारों वेद ही उत्तम अश्वोंके समान मेरे वाहन हैं, वायुदेव ही सारथि हैं और वेदमाताएँ (गायत्री, सावित्री और सरस्वती) ही कवच हैं। इन सबसे आवृत एवं सुरक्षित होकर मैं रणक्षेत्रमें युद्ध करूँगा।'

'इतना कहकर पराक्रमी परशुरामजीने मुझे अपने तीक्ष्ण शरोंसे घेर लिया। उस समय मैंने देखा—परशुरामजी एक नगरतुल्य विस्तृत, अद्भुत एवं दिव्य विमानमें बैठे हैं। उसमें दिव्य अश्व जुते थे। वह स्वर्णनिर्मित रथ प्रत्येक रीतिसे सजा हुआ था। उसमें सम्पूर्ण श्रेष्ठ आयुध रखे हुए थे। परशुरामजीने सूर्य-चन्द्र-खचित कवच धारण कर रखा था और उनके प्रिय सखा वेदवेत्ता अकृतव्रण उनके सारथिका कार्य कर रहे थे।'

परम पराक्रमी, परम तेजस्वी, परम तपस्वी, परम पितृभक्त भगवान् परशुरामजीके साथ मेरा भयानक संग्राम हुआ। सुहृदोंके समझानेसे युद्ध बंद हुआ तो मैंने परमर्षि परशुरामजीके समीप जाकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया। परशुरामजीने मुस्कराकर मुझसे कहा—

त्वत्समो नास्ति लोकेऽस्मिन् क्षत्रियः पृथिवीचरः।
गम्यतां भीष्म युद्धेऽस्मिंस्तोषितोऽहं भृशं त्वया॥

(महा० उद्योग० १८५। ३६)

'भीष्म! इस जगत्में भूतलपर विचरनेवाला कोई भी क्षत्रिय तुम्हारे समान नहीं है। जाओ, इस युद्धमें तुमने मुझे बहुत संतुष्ट किया है।'

श्रीपरशुरामजी कल्पान्त-स्थायी हैं। किसी-किसी भाग्यशाली पुण्यात्माको उनके दर्शन भी हो जाते हैं।

(१९) भगवान् व्यास

लोकोत्तर-शक्तिसम्पन्न भगवान् व्यास भगवान् नारायणके कलावतार थे। वे महाज्ञानी महर्षि पराशरके पुत्ररूपमें प्रकट हुए थे। उनका जन्म कैवर्तराजकी पोष्यपुत्री महाभागा सत्यवतीके गर्भसे यमुनाजीके द्वीपमें हुआ था। इस कारण उन्हें 'पाराशर्य' और 'द्वैपायन' भी कहते हैं। उनका वर्ण घननील था, अतएव वे 'कृष्णद्वैपायन' नामसे प्रख्यात हैं। बदरीवनमें रहनेके कारण वे 'बादरायण' भी कहे जाते हैं। उन्हें अङ्गों और इतिहासोंसहित सम्पूर्ण वेद और परमात्मतत्त्वका ज्ञान स्वत: प्राप्त हो गया, जिसे दूसरे व्रतोपवासनिरत यज्ञ, तप और वेदाध्ययनसे भी प्राप्त नहीं कर पाते।

'आवश्यकता पड़नेपर तुम जब भी मुझे स्मरण करोगी' धरतीपर पदार्पण करते ही अचिन्त्य-शक्तिशाली व्यासने अपनी जननीसे कहा—'मैं अवश्य तुम्हारा दर्शन करूँगा।' और वे माताकी आज्ञासे तपश्चरणमें लग गये।

प्रारम्भमें वेद एक ही था। ऋषिवर अङ्गिराने उसमेंसे

सरल तथा भौतिक उपयोगके छन्दोंको पीछेसे संगृहीत किया। वह संग्रह 'अथर्वाङ्गिरस' या 'अथर्ववेद' के नामसे प्रसिद्ध हुआ। परम पुण्यमय सत्यवतीनन्दनने मनुष्योंकी आयु और शक्तिको अत्यन्त क्षीण होते देखकर वेदोंका व्यास (विभाग) किया। इसीलिये वे 'वेदव्यास' नामसे प्रसिद्ध हुए।

फिर वेदार्थ-दर्शनकी शक्तिके साथ अनादि पुराणको लुप्त होते देखकर भगवान् कृष्णद्वैपायनने पुराणोंका प्रणयन किया। उन पुराणोंमें निष्ठाके अनुरूप आराध्यकी प्रतिष्ठा कर उन्होंने वेदार्थ चारों वर्णोंके लिये सहज सुलभ कर दिया। अष्टादश पुराणोंके अतिरिक्त बहुत-से उपपुराण तथा अन्य ग्रन्थ भी भगवान् व्यासद्वारा ही निर्मित हैं।

अत्यन्त विस्तृत पुराणोंमें कल्पभेदसे चरित्रभेद पाये जाते हैं। समस्त चरित्र इस कल्पके अनुरूप हों तथा समस्त धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष-सम्बन्धी सिद्धान्त भी उनमें एकत्र हो जायँ—इस निश्चयसे वेदव्यासजीने महान् ग्रन्थ 'महाभारत' की रचना की। महाभारतको 'पञ्चम वेद' और 'कार्ष्णवेद' भी कहते हैं। श्रुतिका सारांश, भगवान् व्यासने महाभारतमें एकत्र कर दिया। इस महान् ग्रन्थ-रत्नको भगवान् व्यास बोलते जाते थे और साक्षात् गणेशजी लिखते गये।

जब व्यासजीने महाभारत लिखनेके लिये गणेशजीसे प्रार्थना की तो गणेशजीने कहा—'लिखते समय यदि मेरी लेखनी क्षणभर भी न रुके तो मैं यह कार्य कर सकता हूँ।'

'मुझे स्वीकार है;' जीवमात्रके परम हितैषी व्यासजीने कहा—'किंतु आप भी बिना समझे एक अक्षर भी न लिखें।'

कहा जाता है कि भगवान् व्यासने आठ हजार आठ सौ ऐसे श्लोकोंकी रचना की है, जिनका ठीक-ठीक अर्थ वे और व्यासनन्दन श्रीशुकदेवजी ही समझते हैं। जब गणेशजी ऐसे श्लोकोंका अर्थ समझनेके लिये कुछ देर रुकते, तबतक व्यासजी और कितने ही श्लोकोंकी रचना कर डालते थे। इस प्रकार यह पञ्चम वेद लिपिबद्ध हुआ।

भगवान् द्वैपायनने ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेदका अध्ययन क्रमशः अपने शिष्यों पैल, जैमिनि, वैशम्पायन और सुमन्तुको और महाभारतका अध्ययन रोमहर्षण सूतको कराया।

सर्वश्रेष्ठ वरदायक, महान् पुण्यमय, यशस्वी वेदव्यासजी राजा जनमेजयके सर्पयज्ञकी दीक्षा लेनेका संवाद पा वेदवेदाङ्गोंके पारंगत विद्वान् शिष्योंके साथ उनके य मण्डपमें पहुँचे। यह देखकर राजा जनमेजय बड़े हर्षित हु उन्होंने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक पराशरनन्दन व्यासको सुवर्ण पीठ देकर आसनकी व्यवस्था की। फिर उन्होंने पा आचमनीय और अर्घ्यादिके द्वारा उनकी सविधि पूजा की

फिर राजा जनमेजयके अनुरोधसे महर्षि व्या अपने शिष्य वैशम्पायनको वहाँ महाभारत सुनानेकी अ दी। अतएव विप्रवर वैशम्पायनने वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, त्रिकालद परमपवित्र गुरुदेव व्यासजीके चरणोंमें प्रणाम किया उ उन्होंने राजा जनमेजय, सभासद्गण तथा अन्य उपस्थि नरेशोंके सम्मुख विस्तारपूर्वक व्यासविरचित कौरव-पाण्डवों सुविस्तृत इतिहास 'महाभारत' सुनाया।

धृतराष्ट्रके पुत्रोंद्वारा अधर्मपूर्वक पाण्डवोंको राज्य बहिष्कृत कर दिये जानेपर सर्वज्ञ व्यासजी वनमें उनके पा पहुँचे। वहाँ उन्होंने कुन्तीसहित पाण्डवोंको धैर्य बँधा और उनकी एकचक्रा नगरीके समीप एक ब्राह्मणके घर रहनेकी व्यवस्था कर दी। फिर उनसे अपनी एक मासत वहीं प्रतीक्षा करनेका आदेश देकर वे लौट गये।

सत्यव्रतपरायण व्यासजी एक मासके बाद पुन पाण्डवोंके समीप पहुँचे। उनसे उनका कुशल संवा पूछकर धर्मसम्बन्धी और अर्थविषयक चर्चा की। फि उन्होंने महाराज पृषतकी पौत्री सती-साध्वी कृष्णाके पूर्वजन्मक वृत्तान्त सुनाकर पाण्डवोंको उसके स्वयंवरमें पाञ्चालनग जानेकी प्रेरणा दी। व्यासजीने पाण्डवोंसे कहा कि 'सत द्रौपदी तुम्हीं लोगोंकी पत्नी नियत की गयी है।'

पाण्डव पाञ्चालनगर पहुँचे और स्वयंवरमें अर्जुनने लक्ष्यवेध कर सती द्रौपदीकी जयमाला प्राप्त की; किंतु जब माता कुन्तीके आदेशानुसार युधिष्ठिर आदि पाँचों भाइयोंने एक साथ द्रौपदीके साथ विवाह करना चाहा, तब महाराज द्रुपदने इसे सर्वथा अनुचित और अधर्म समझकर आपत्ति की। उसी समय निग्रहानुग्रहसमर्थ व्यासजी वहाँ पहुँच गये। वहाँ उन्होंने महाराज द्रुपदको पाण्डवों एवं द्रौपदीके इस जीवनके पूर्वका विवरण ही नहीं दिया, उन्हें दिव्य दृष्टि देकर उनके परम तेजस्वी स्वरूपका दर्शन भी करा दिया। फिर तो महाराज द्रुपदने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक द्रौपदीका

'बरषहिं सुमन देव मुनि बृंदा। जय कृपाल जय जयति मुकुंदा।।'

सरल तथा भौतिक उपयोगके छन्दोंको पीछेसे संगृहीत किया। वह संग्रह 'अथर्वाङ्गिरस' या 'अथर्ववेद' के नामसे प्रसिद्ध हुआ। परम पुण्यमय सत्यवतीनन्दनने मनुष्योंकी आयु और शक्तिको अत्यन्त क्षीण होते देखकर वेदोंका व्यास (विभाग) किया। इसीलिये वे 'वेदव्यास' नामसे प्रसिद्ध हुए।

फिर वेदार्थ-दर्शनकी शक्तिके साथ अनादि पुराणको लुप्त होते देखकर भगवान् कृष्णद्वैपायनने पुराणोंका प्रणयन किया। उन पुराणोंमें निष्ठाके अनुरूप आराध्यकी प्रतिष्ठा कर उन्होंने वेदार्थ चारों वर्णोंके लिये सहज सुलभ कर दिया। अष्टादश पुराणोंके अतिरिक्त बहुत-से उपपुराण तथा अन्य ग्रन्थ भी भगवान् व्यासद्वारा ही निर्मित हैं।

अत्यन्त विस्तृत पुराणोंमें कल्पभेदसे चरित्रभेद पाये जाते हैं। समस्त चरित्र इस कल्पके अनुरूप हों तथा समस्त धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष-सम्बन्धी सिद्धान्त भी उनमें एकत्र हो जायँ—इस निश्चयसे वेदव्यासजीने महान् ग्रन्थ 'महाभारत' की रचना की। महाभारतको 'पञ्चम वेद' और 'कार्ष्णवेद' भी कहते हैं। श्रुतिका सारांश, भगवान् व्यासने महाभारतमें एकत्र कर दिया। इस महान् ग्रन्थ-रत्नको भगवान् व्यास बोलते जाते थे और साक्षात् गणेशजी लिखते गये।

जब व्यासजीने महाभारत लिखनेके लिये गणेशजीसे प्रार्थना की तो गणेशजीने कहा—'लिखते समय यदि मेरी लेखनी क्षणभर भी न रुके तो मैं यह कार्य कर सकता हूँ।'

'मुझे स्वीकार है;' जीवमात्रके परम हितैषी व्यासजीने कहा—'किंतु आप भी बिना समझे एक अक्षर भी न लिखें।'

कहा जाता है कि भगवान् व्यासने आठ हजार आठ सौ ऐसे श्लोकोंकी रचना की है, जिनका ठीक-ठीक अर्थ वे और व्यासनन्दन श्रीशुकदेवजी ही समझते हैं। जब गणेशजी ऐसे श्लोकोंका अर्थ समझनेके लिये कुछ देर रुकते, तबतक व्यासजी और कितने ही श्लोकोंकी रचना कर डालते थे। इस प्रकार यह पञ्चम वेद लिपिबद्ध हुआ।

भगवान् द्वैपायनने ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेदका अध्ययन क्रमशः अपने शिष्यों पैल, जैमिनि, वैशम्पायन और सुमन्तुको और महाभारतका अध्ययन रोमहर्षण सूतको कराया।

सर्वश्रेष्ठ वरदायक, महान् पुण्यमय, यशस्वी वेदव्यासजी राजा जनमेजयके सर्पयज्ञकी दीक्षा लेनेका संवाद पाकर वेदवेदाङ्गोंके पारंगत विद्वान् शिष्योंके साथ उनके यज्ञ-मण्डपमें पहुँचे। यह देखकर राजा जनमेजय बड़े हर्षित हुए। उन्होंने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक पराशरनन्दन व्यासको सुवर्णका पीठ देकर आसनकी व्यवस्था की। फिर उन्होंने पाद्य, आचमनीय और अर्घ्यादिके द्वारा उनकी सविधि पूजा की।

फिर राजा जनमेजयके अनुरोधसे महर्षि व्यासने अपने शिष्य वैशम्पायनको वहाँ महाभारत सुनानेकी आज्ञा दी। अतएव विप्रवर वैशम्पायनने वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, त्रिकालदर्शी, परमपवित्र गुरुदेव व्यासजीके चरणोंमें प्रणाम किया और उन्होंने राजा जनमेजय, सभासद्गण तथा अन्य उपस्थित नरेशोंके सम्मुख विस्तारपूर्वक व्यासविरचित कौरव-पाण्डवोंका सुविस्तृत इतिहास 'महाभारत' सुनाया।

धृतराष्ट्रके पुत्रोंद्वारा अधर्मपूर्वक पाण्डवोंको राज्यसे बहिष्कृत कर दिये जानेपर सर्वज्ञ व्यासजी वनमें उनके पास पहुँचे। वहाँ उन्होंने कुन्तीसहित पाण्डवोंको धैर्य बँधाया और उनकी एकचक्रा नगरीके समीप एक ब्राह्मणके घरमें रहनेकी व्यवस्था कर दी। फिर उनसे अपनी एक मासतक वहीं प्रतीक्षा करनेका आदेश देकर वे लौट गये।

सत्यव्रतपरायण व्यासजी एक मासके बाद पुनः पाण्डवोंके समीप पहुँचे। उनसे उनका कुशल संवाद पूछकर धर्मसम्बन्धी और अर्थविषयक चर्चा की। फिर उन्होंने महाराज पृषतकी पौत्री सती-साध्वी कृष्णाके पूर्वजन्मका वृत्तान्त सुनाकर पाण्डवोंको उसके स्वयंवरमें पाञ्चालनगर जानेकी प्रेरणा दी। व्यासजीने पाण्डवोंसे कहा कि 'सती द्रौपदी तुम्हीं लोगोंकी पत्नी नियत की गयी है।'

पाण्डव पाञ्चालनगर पहुँचे और स्वयंवरमें अर्जुनने लक्ष्यवेध कर सती द्रौपदीकी जयमाला प्राप्त की; किंतु जब माता कुन्तीके आदेशानुसार युधिष्ठिर आदि पाँचों भाइयोंने एक साथ द्रौपदीके साथ विवाह करना चाहा, तब महाराज द्रुपदने इसे सर्वथा अनुचित और अधर्म समझकर आपत्ति की। उसी समय निग्रहानुग्रहसमर्थ व्यासजी वहाँ पहुँच गये। वहाँ उन्होंने महाराज द्रुपदको पाण्डवों एवं द्रौपदीके इस जीवनके पूर्वका विवरण ही नहीं दिया, उन्हें दिव्य दृष्टि देकर उनके परम तेजस्वी स्वरूपका दर्शन भी करा दिया। फिर तो महाराज द्रुपदने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक द्रौपदीका
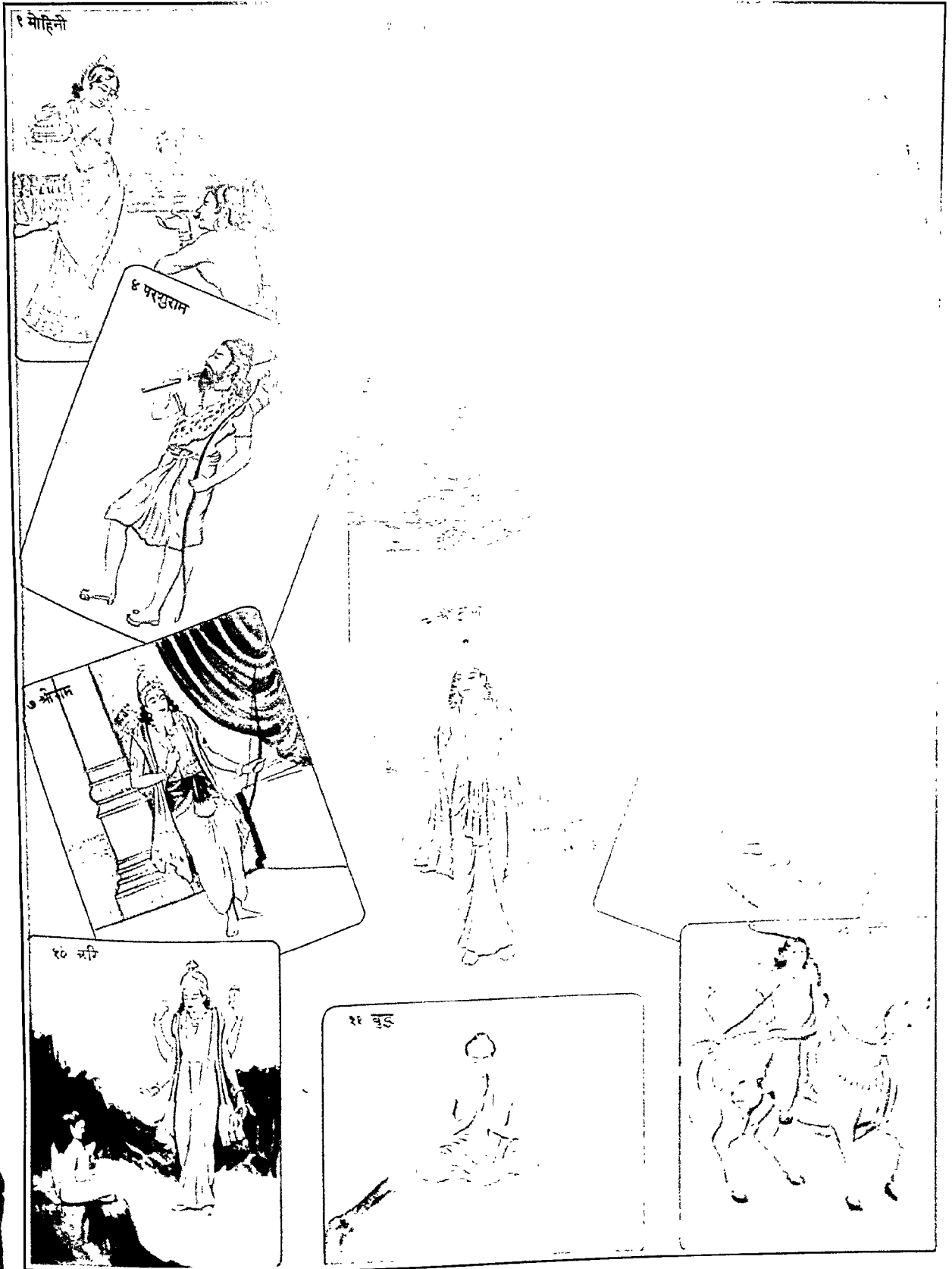
भगवान्के चौबीस अवतार [२]
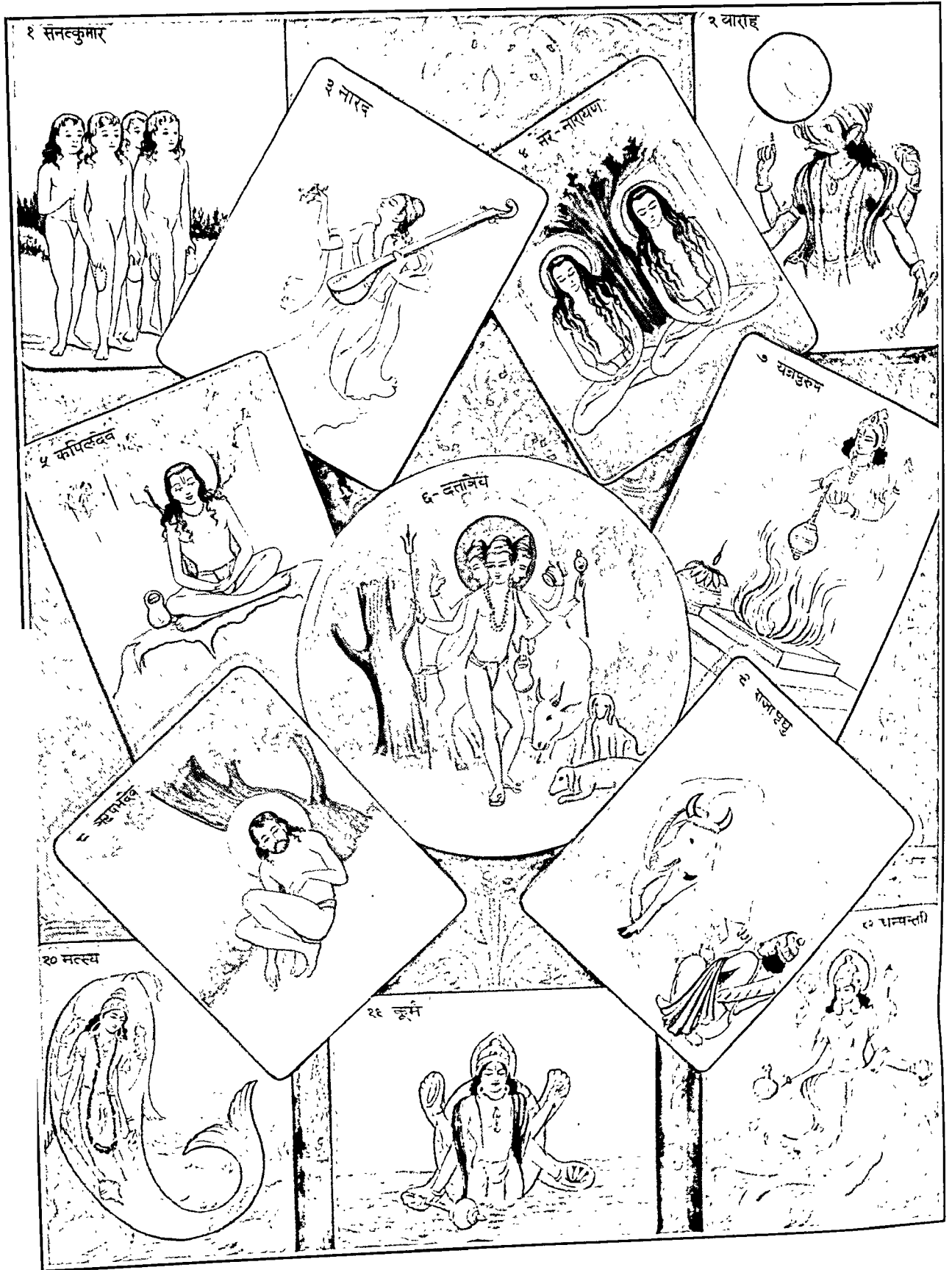
भगवान्‌के चौबीस अवतार [१]

भगवान्‌के चौबीस अवतार [२]
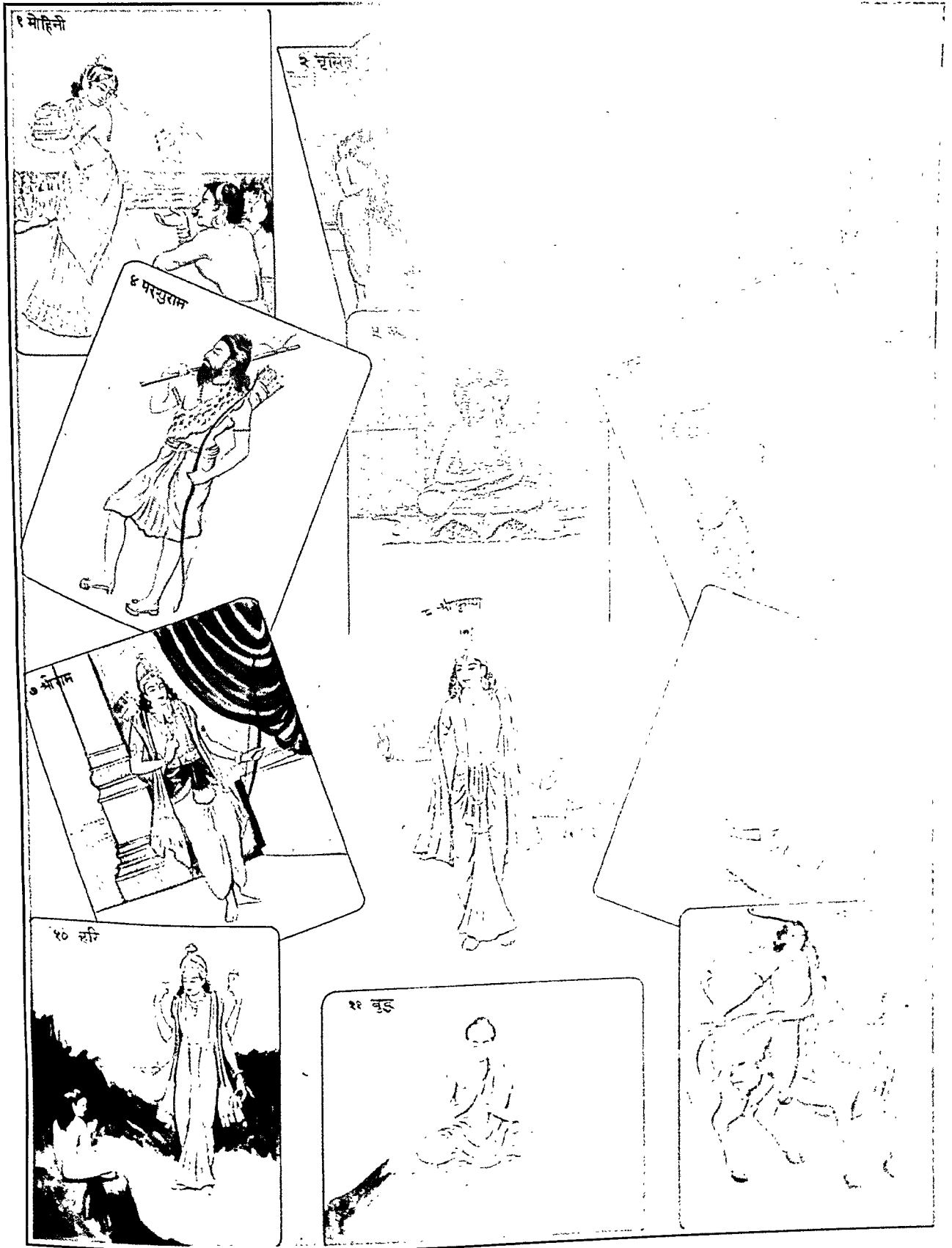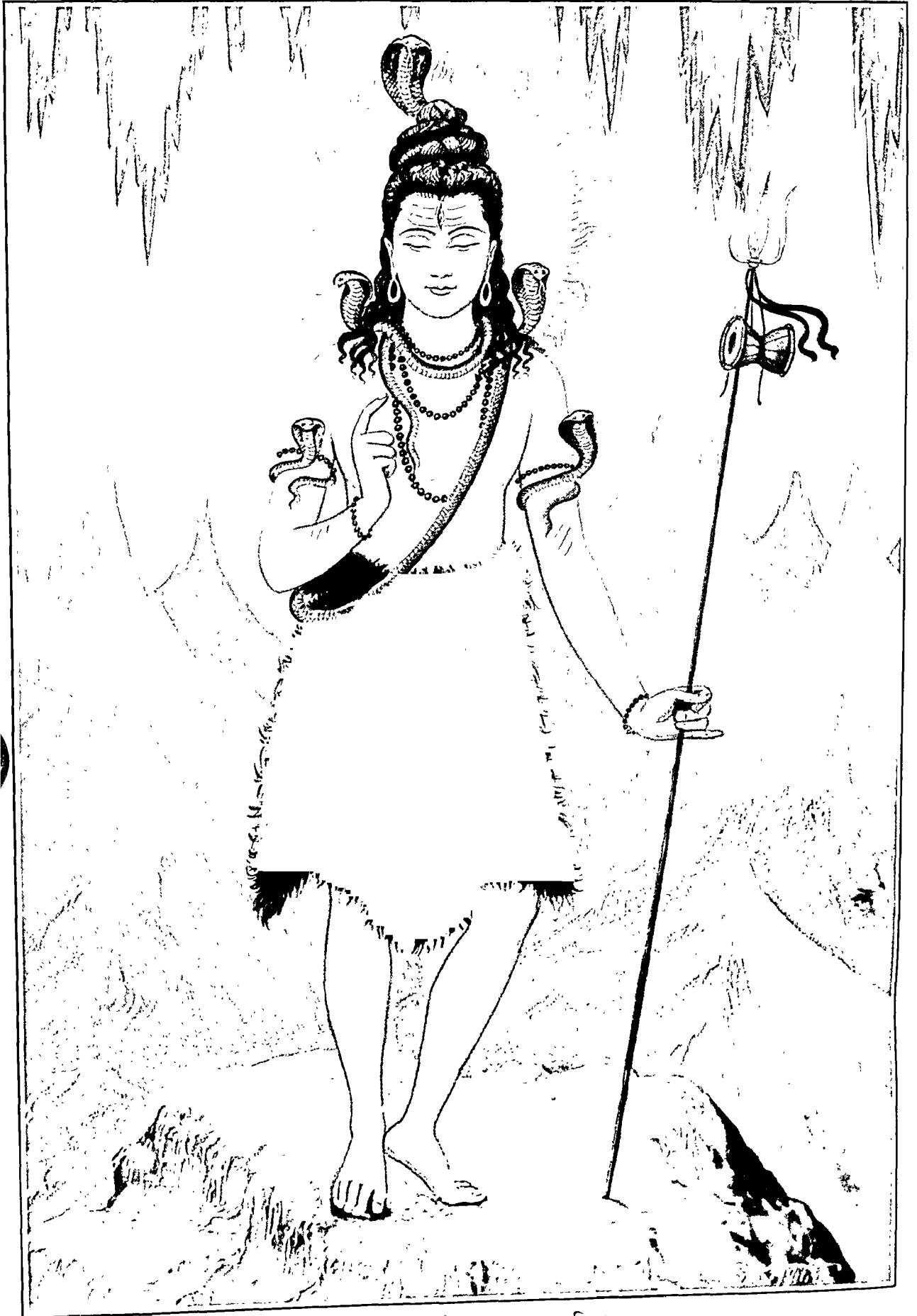
ध्यानमुद्रामें आदिदेव भगवान् सदाशिव

विवाह युधिष्ठिर आदि पाँचों भाइयोंके साथ कर दिया।

फिर जब महाराज युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णके सत्परामर्शसे राजसूययज्ञकी दीक्षा ली, तब परब्रह्म और अपरब्रह्मके ज्ञाता कृष्णद्वैपायन व्यासजी परम वेदज्ञ ऋत्विजोंके साथ वहाँ पहुँचे। उक्त यज्ञमें स्वयं उन्होंने ब्रह्माका काम सँभाला और यज्ञ सम्पन्न होनेपर देवर्षि नारद, देवल और असित मुनिको आगे करके महाराज युधिष्ठिरका अभिषेक किया।

अपने पौत्र युधिष्ठिरसे विदा होते समय व्यासजीने अन्य बातोंके अतिरिक्त उनसे कहा—'राजन्! आजसे तेरह वर्ष बाद दुर्योधनके पातक तथा भीम और अर्जुनके पराक्रमसे क्षत्रिय-कुलका महासंहार होगा और उसके निमित्त तुम बनोगे। किंतु इसके लिये तुम्हें चिन्ता नहीं करनी चाहिये, क्योंकि काल सबके लिये अजेय है।'

इतनी बात कहकर ज्ञानमूर्ति व्यासजीने अपने वेदज्ञ शिष्योंसहित कैलासपर्वतके लिये प्रस्थान किया।

शुद्धात्मा व्यासजी विपत्तिग्रस्त सरल एवं निश्छल पाण्डवोंकी समय-समयपर पूरी सहायता करते रहे। जब दुरात्मा दुर्योधनने छलपूर्वक पाण्डवोंका सर्वस्वापहरणकर उन्हें बारह वर्षोंके लिये वनमें भेज दिया, तब उसे प्रसन्नता हुई। किंतु उसे इतनेसे ही संतोष नहीं हुआ, उसने कर्ण, दु:शासन और शकुनिके परामर्शसे अरण्यवासी पाण्डवोंको मार डालनेका निश्चय कर लिया तथा शस्त्रसज्ज हो वे रथपर बैठे ही थे कि दिव्यदृष्टिसम्पन्न व्यासजी तत्काल वहाँ पहुँच गये और दुर्योधनको समझाकर उसे इस भयानक अपकर्मसे विरत किया। इसके अनन्तर वे तुरंत महाराज धृतराष्ट्रके पास पहुँचे और उनसे कहा—'वत्स! जैसे पाण्डु मेरे पुत्र हैं, वैसे ही तुम भी हो, उसी प्रकार ज्ञानसम्पन्न विदुरजी भी हैं। मैं स्नेहवश ही तुम्हारे और सम्पूर्ण कौरवोंके हितकी बात कहता हूँ। तुम्हारा दुष्ट पुत्र दुर्योधन क्रूर ही नहीं, अत्यन्त मूढ़ भी है। तनिक सोचो, छलपूर्वक राज्यलक्ष्मीसे वञ्चित पाण्डवोंके मनमें तेरह वर्षोतक अरण्यवासकी यातना सहते-सहते तुम्हारे पुत्रोंके प्रति कितना भयानक विष भर जायगा! वे तुम्हारे दुष्ट पुत्रोंको कैसे जीवित रहने देंगे! इतनेपर भी दुर्योधन उनका नृशंसतापूर्वक वध कर डालना चाहता है। यदि दुर्योधनकी इस कुप्रवृत्तिकी उपेक्षा हुई, उसे नहीं रोका गया, तो तुम्हारे सहित तुम्हारे निर्मल वंशको कलङ्कित ही नहीं होना पड़ेगा, उसका सर्वनाश भी हो जायगा। उचित तो यह है कि तुम्हारा पुत्र दुर्योधन एकाकी ही पाण्डवोंके साथ वनमें जाय। उनके संसर्गसे उसकी बुद्धि शुद्ध होकर उसके वैर-भावका शमन हो सकता है।'

अथवा जायमानस्य यच्छीलमनुजायते।
श्रूयते तन्महाराज नामृतस्यापसर्पति॥

(महा०, वन० ८। ११)

'किंतु महाराज! जन्मके समय किसी प्राणीका जो स्वभाव होता है, वह मृत्युपर्यन्त बना रहता है, यह बात मेरे सुननेमें आयी है।'

'राजन्! महर्षि मैत्रेय वनमें पाण्डवोंसे मिलकर आ रहे हैं। वे निश्चय ही सत्सम्मति प्रदान करेंगे। उनकी आज्ञा मान लेनेमें ही कौरव-कुलका हित है।' इतनी बात कहकर व्यासजी चले गये।

दुर्योधनने महर्षि मैत्रेयकी उपेक्षा की, इस कारण उन्होंने उसे अत्यन्त अनिष्टकर शाप दे दिया।

अरण्यवासके समय एक बार जब युधिष्ठिर अत्यन्त चिन्तित थे, तब त्रिकालदर्शी व्यासजी उनके पास पहुँचे और उन्होंने युधिष्ठिरको समझाया—'भरतश्रेष्ठ! अब तुम्हारे कल्याणका सर्वश्रेष्ठ अवसर उपस्थित हो चला है। तुम चिन्ता मत करो। तुम्हारे शत्रु शीघ्र ही पराजित हो जायँगे।'

इस प्रकार धर्मराज युधिष्ठिरको आश्वस्त करते हुए सर्वसमर्थ व्यासजीने उन्हें मूर्तिमती सिद्धितुल्य 'प्रतिस्मृति' नामक विद्या प्रदान कर दी, जिसके द्वारा उन्हें देवताओंके दर्शनकी क्षमता प्राप्त हो गयी। इतना ही नहीं, व्यासजीने पाण्डवोंके हितके लिये और भी अनेक शुभ सम्मतियाँ प्रदान कीं।

भगवान् व्यासने संजयको भी दिव्यदृष्टि प्रदान कर दी, जिससे उन्होंने महाभारतयुद्ध ही नहीं देखा, अपितु भगवान् श्रीकृष्णके मुखारविन्दसे निस्सृत श्रीमद्भगवद्गीताका भी श्रवण कर लिया, जिसे महाभाग पार्थके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं सुन पाया था। इतना ही नहीं, उक्त दिव्य दृष्टिके प्रभावसे संजयने श्रीभगवान्‌के विश्वरूपका भी अत्यन्त दुर्लभ दर्शन प्राप्त कर लिया।

पराशरनन्दन व्यास कृपाकी मूर्ति ही थे। एक बार उन्होंने मार्गमें आते हुए रथके कर्कश स्वरको सुनकर

प्राणभयसे भागते एक क्षुद्र कीटको देखा। कीटसे उन्होंने वार्तालाप किया तथा अपने तपोबलसे उसे अनेक योनियोंसे निकालकर शीघ्र ही मनुष्य-योनि प्राप्त करा दी। फिर क्रमशः क्षत्रिय-कुल एवं ब्राह्मण-कुलमें उत्पन्न होकर उस भूतपूर्व कीटने दयामय व्यासजीके अनुग्रहसे अत्यन्त दुर्लभ सनातन 'ब्रह्मपद' प्राप्त कर लिया।

महर्षि व्यासकी शक्ति अलौकिक थी। एक बार जब वे वनमें धृतराष्ट्र और गान्धारीसे मिलने गये, तब सपरिवार युधिष्ठिर भी वहीं उपस्थित थे। धृतराष्ट्र और गान्धारी पुत्रशोकसे दुःखी थे। धृतराष्ट्रने अपने कुटुम्बियों और स्वजनोंको देखनेकी इच्छा व्यक्त की। रात्रिमें महर्षि व्यासके आदेशानुसार धृतराष्ट्र आदि गङ्गा-तटपर पहुँचे। व्यासजीने गङ्गाजलमें प्रवेश किया और दिवंगत योद्धाओंको पुकारा। फिर तो जलमें युद्धकालका-सा कोलाहल सुनायी देने लगा। साथ ही पाण्डव और कौरव—दोनों पक्षोंके योद्धा और राजकुमार भीष्म और द्रोणके पीछे निकल आये। सबकी वेष-भूषा, शस्त्रसज्जा, वाहन और ध्वजाएँ पूर्ववत् थीं। सभी ईर्ष्या-द्वेषशून्य दिव्य-देहधारी दीख रहे थे। वे रात्रिमें अपने स्नेही सम्बन्धियोंसे मिले और सूर्योदयके पूर्व भगवती भागीरथीमें प्रवेशकर अपने-अपने लोकोंके लिये चले गये।

'जो स्त्रियाँ पतिलोक जाना चाहें, इस समय गङ्गाजीमें डुबकी लगा लें।' व्यासजीके वचन सुन जिन वीरगतिप्राप्त योद्धाओंकी पत्नियोंने गङ्गाजीमें प्रवेश किया, वे दिव्य वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित होकर विमानमें बैठीं और सबके देखते-देखते अभीष्ट लोकके लिये प्रयाण कर गयीं।

नागयज्ञकी समाप्तिपर जब यह कथा परीक्षित्‌के पुत्र जनमेजयने महर्षि वैशम्पायनसे सुनी, तब उन्हें इस अद्भुत घटनापर सहसा विश्वास न हुआ और उन्होंने इसपर शङ्का की। वैशम्पायनने उसका बड़ा ही युक्तिपूर्ण आध्यात्मिक समाधान किया। (महा०, आश्रमवासिक० २४)। पर वे इसपर भी न माने और कहा कि 'भगवान् व्यास यदि मेरे पिताजीको भी उसी वयोरूपमें ला दें तो मैं विश्वास कर सकता हूँ।' भगवान् व्यास वहीं उपस्थित थे और उन्होंने जनमेजयपर पूर्ण कृपा की। फलतः शृङ्गी, शमीक एवं मन्त्री आदिके साथ राजा परीक्षित् वहाँ उसी रूप-वयमें प्रकट हो गये। अवभृथ (यज्ञान्त)-स्नानमें वे सब सम्मिलित भी हुए और फिर वहीं अन्तर्धान हो गये।

महर्षि व्यास मूर्तिमान् धर्म थे। आद्यशंकराचार्य तथा अन्य कितने ही महापुरुषोंने उनका दर्शन-लाभ किया है। अब भी श्रद्धा-भक्तिसम्पन्न अधिकारी महात्मा उनके दर्शन प्राप्त कर सकते हैं।

दया-धर्म-ज्ञान एवं तपकी परमोज्ज्वल मूर्ति उन महामहिम व्यासजीके चरणकमलोंमें बार-बार प्रणाम।

(२०) भगवान् हंस

विषयान् ध्यायतश्चित्तं विषयेषु विषज्जते।
मामनुस्मरतश्चित्तं मय्येव प्रविलीयते॥

(श्रीमद्भा० ११। १४। २७)

'जो पुरुष निरन्तर विषय-चिन्तन किया करता है, उसका चित्त विषयोंमें फँस जाता है और जो मेरा स्मरण करता है, उसका चित्त मुझमें तल्लीन हो जाता है।'—भगवान् श्रीकृष्ण।

एक बारकी बात है। लोकपितामह चतुर्मुख ब्रह्मा अपनी दिव्य सभामें बैठे थे कि उनके मानस पुत्र सनकादि चारों कुमार दिगम्बर-वेषमें वहाँ पहुँच गये और उन्होंने अपने पिता श्रीब्रह्माजीके चरणकमलोंमें प्रणाम किया। फिर ब्रह्माजीके आदेशानुसार वे चारों कुमार पृथक्-पृथक् आसनोंपर बैठ गये। सभाके अन्य सदस्य तेजस्वी सनकादि कुमारोंके सम्मानमें सर्वथा मौन एवं शान्त हो गये थे।

'परम पूज्य श्रीपिताजी! चित्त गुणों अर्थात् विषयोंमें प्रविष्ट रहता है।' कुमारोंने अत्यन्त विनयपूर्वक जिज्ञासा प्रकट की—'और गुण भी चित्तकी एक-एक वृत्तिमें समाये रहते हैं। इनका परस्पर आकर्षण है, स्थायी सम्बन्ध है। फिर मोक्ष चाहनेवाला अपना चित्त विषयोंसे कैसे हटा सकता है? उसका चित्त गुणहीन अर्थात् निर्विषय कैसे हो सकता है? क्योंकि यदि मनुष्य-जीवन प्राप्तकर मोक्षकी ही सिद्धि नहीं की गयी तो सम्पूर्ण जीवन ही व्यर्थ हो जायगा।'

देवशिरोमणि, स्वयम्भू एवं प्राणियोंके जन्मदाता होनेपर भी विधाता प्रश्नमें संदेहका बीज कहाँ है, इसका पता नहीं लगा सके, प्रश्नका मूल कारण नहीं समझ सके। वे आदिपुरुष परब्रह्म परमात्माका ध्यान करने लगे।

सबके सम्मुख सहसा अत्यन्त सुन्दर, परमोज्ज्वल एवं परम तेजस्वी महाहंसके रूपमें श्रीभगवान् प्रकट हो गये। उक्त हंसके अलौकिक तेजसे प्रभावित होकर ब्रह्मा, सनकादि तथा अन्य सभी सभासद् उठकर खड़े हो गये। सबने हंसरूपी श्रीभगवान्‌के चरणोंमें श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया। इसके अनन्तर पाद्य-अर्घ्यादिसे सविधि पूजा कर उन्हें पवित्र और सुन्दर आसनपर बैठाया।

'आप कौन हैं?' उक्त महामहिम परमतेजस्वी हंसका परिचय प्राप्त करनेके लिये कुमारोंने उनसे पूछा।

'मैं क्या उत्तर दूँ?' हंसने विचित्र उत्तर दिया—'इसका निर्णय तो आपलोग ही कर सकते हैं। यदि इस पाञ्चभौतिक शरीरको आप 'आप' कहते हैं तो शरीरकी दृष्टिसे पृथिवी, वायु, जल, तेज और आकाशसे निर्मित, रस, रक्त, मेदा, मज्जा, अस्थि और शुक्रवाला शरीर सबका है। अतएव देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सभी शरीर पञ्चभूतात्मक होनेके कारण अभिन्न ही हैं और आत्माके सम्बन्धमें आपलोगोंका यह प्रश्न ही नहीं बनता। वह तो सदा सर्वत्र समानरूपसे व्याप्त है ही।'

कुछ रुककर मुस्कराते हुए भगवान् हंसने कहा—'अब आपलोग ही सोचें और निर्णय करें कि चित्तमें गुण हैं या गुणोंमें चित्त समाया हुआ है। स्वप्नका द्रष्टा, देखनेकी क्रिया और दृश्य—सब क्या पृथक् होते हैं?' भगवान् हंसने सनकादिसे कहा।

मनसा वचसा दृष्ट्या गृह्यतेऽन्यैरपीन्द्रियैः।
अहमेव न मत्तोऽन्यदिति बुध्यध्वमञ्जसा॥
गुणेष्वाविशते चेतो गुणाश्चेतसि च प्रजाः।
जीवस्य देह उभयं गुणाश्चेतो मदात्मनः॥

(श्रीमद्भा० ११।१३।२४-२५)

'मनसे, वाणीसे, दृष्टिसे तथा अन्य इन्द्रियोंसे भी जो कुछ ग्रहण किया जाता है, वह सब मैं ही हूँ, मुझसे भिन्न और कुछ नहीं है। यह सिद्धान्त आपलोग तत्त्वविचारके द्वारा सरलतासे समझ लीजिये।'

'यह चित्त चिन्तन करते-करते विषयाकार हो जाता है और विषय चित्तमें प्रविष्ट हो जाते हैं, यह बात सत्य है; तथापि विषय और चित्त—ये दोनों ही मेरे स्वरूपभूत जीवके देह हैं—उपाधि हैं। अर्थात् आत्माका चित्त और विषयके साथ कोई सम्बन्ध ही नहीं है।'

परमप्रभु हंसके उत्तरसे सनकादि मुनियोंका संदेह निवारण हो गया। उन्होंने अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिसे भगवान् हंसकी पूजा और स्तुति की। तदनन्तर ब्रह्माजीके सम्मुख ही महाहंसरूपधारी श्रीभगवान् अदृश्य होकर अपने पवित्र धाममें चले गये।

(२१) भगवान् श्रीराम

गुर्वर्थे त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवनं पद्मपद्भ्यां प्रियायाः
पाणिस्पर्शाक्षमाभ्यां मृजितपथरुजो यो हरीन्द्रानुजाभ्याम्।
वैरूप्याच्छूर्पणख्याः प्रियविरहरुषाऽऽरोपितभ्रूविजृम्भ-
त्रस्ताब्धिर्बद्धसेतुः खलदवदहनः कोसलेन्द्रोऽवतान्नः॥

(श्रीमद्भा० ९।१०।४)

अयोध्याका सिंहासन शून्य होने जा रहा था। रघुकी संतति-परम्पराका इस प्रकार कहीं उच्छेद हो सकता है। महाराज दशरथने तीन विवाह किये, अवस्था अधिक हो गयी; किंतु उस चक्रवर्ती साम्राज्यका उत्तराधिकारी किसी रानीकी गोदमें न आया। रघुवंशके परम रक्षक तो महर्षि वसिष्ठ हैं। महाराजने अपने उन कुलगुरुकी शरण ली। गुरुदेवके

आदेशसे शृंगी ऋषि आमन्त्रित हुए। पुत्रेष्टियज्ञका अनुष्ठान हुआ। साक्षात् अग्निदेवने प्रकट होकर चरु प्रदान किया। उस दिव्य चरुको ग्रहणकर रानियाँ गर्भवती हुईं।

देवता लङ्काधिप पुलस्त्यके पौत्र राक्षसराज रावणसे संत्रस्त हो गये थे। अपने ऐश्वर्यमें मत्त वह कुबेरका छोटा भाई वेदज्ञ होनेपर भी राक्षस हो गया। दानवेन्द्र मयने अपनी पुत्री मन्दोदरीका उससे विवाह कर दिया। श्वशुरकुलसे ही उसकी प्रकृति एक हो गयी। ऋषियों, ब्राह्मणों, देवताओं तथा धर्मका वह शत्रु हो गया। यज्ञ बलपूर्वक रोक दिये गये, पूजन-स्थल ध्वस्त किये गये। तपोवन राक्षसोंने जला दिये। ऋषि-मुनि राक्षसोंके भक्ष्य हो गये। देवराज इन्द्र पराजित हो चुके थे। लोकपालगण रावणकी आज्ञा माननेपर विवश थे। अन्ततः धरा यह अधर्म-भार कहाँतक सहे! पृथ्वीकी आर्त पुकार, देवताओंकी प्रार्थना, स्रष्टाकी चिन्ता—सबने उन परात्पर प्रभुको आकृष्ट किया। अयोध्यानरेश चक्रवर्ती महाराज दशरथकी बड़ी रानी कौसल्याकी गोदमें चैत्रकी रामनवमीके मध्याह्नमें वे साकेताधीश शिशु बनकर आ गये। उनके अंश भी आये—माता सुमित्राकी गोद दो स्वर्ण-गौर कुमारोंसे भूषित हुई और कैकेयीजीने भावमूर्ति नवजलधर वर्ण, रूपराशि भरतको प्राप्त किया।

चारों कुमार बड़े हुए। कुलगुरुसे शास्त्र एवं शस्त्रकी शिक्षा मिली। सहसा एक दिन महर्षि विश्वामित्र आ पहुँचे। उनके आश्रममें प्रत्येक पर्वपर राक्षस उपद्रव करते थे। महर्षिको राम-लक्ष्मणकी आवश्यकता थी। केवल दो कुमार—अवधकी चतुरङ्गिणी सेनाको तपोवनमें ले जाना इष्ट नहीं था। चक्रवर्ती महाराजकी चाहे जितनी अनिच्छा हो, सृष्टि-समर्थ विश्वामित्रजीका आग्रह कैसे टले? श्रीरामने भाईके साथ प्रस्थान किया। राक्षसी ताड़का मार्गमें ही एक बाणकी भेंट हो गयी। मुनिवरका यज्ञ रक्षित हुआ। सदल सुबाहु मारा जा चुका था और उसका भाई मारीच रामके 'फल'-हीन बाणके आघातसे सौ योजन दूर समुद्र-तटपर जा गिरा था।

महर्षिको तपोवनमें ही विदेहराज जनकका आमन्त्रण मिला। उनकी अयोनिजा कन्या सीताका स्वयंवर हो रहा था। महर्षिके साथ दोनों अवध-कुमार मिथिलाको धन्य करने पधारे। गौतमाश्रममें पाषाणभूता अहल्या श्रीरामकी चरणरजका स्पर्श पाकर पतिके शापसे मुक्त हो गयी और अपने पति-धामको चली गयी। 'जनकपुत्री भूमिसुता उसे वरण करेंगी, जो शंकरके महाधनुष पिनाकको तोड़ेगा।' मिथिलानरेशकी यह प्रतिज्ञा श्रीरामने पूर्ण की। श्रीपरशुरामजी अपने आराध्यदेवके धनुर्भंगसे अत्यन्त क्रुद्ध हुए; परंतु श्रीरामके शील, शक्ति एवं तेजसे गर्वरहित होकर लौट गये। अयोध्यानरेशको आमन्त्रण मिला। उनके चारों कुमार जनकपुरमें विवाहित हुए।

महाराज चाहते हैं, प्रजा चाहती है, गुरुदेव चाहते हैं कि श्रीरामका राज्याभिषेक हो; परंतु राम राज्य करें तो धराका भार कौन दूर करे? देवताओंने प्रेरणा की। माता कैकेयीको मोह हुआ। 'भरत-शत्रुघ्न ननिहालमें हैं और चुपचाप रामको राज्य दिया जा रहा है!' संदेह स्वयं पापका मूल है। 'भरतको राज्य और रामको चौदह वर्षका वनवास!' छोटी रानीने महाराजको वचनबद्ध करके वरदान माँगा। पिताके सत्यके रक्षार्थ रघुवंशविभूषण वल्कलधारी होकर प्रातः वनको विदा हुए। लक्ष्मण और श्रीजानकीजी उनसे पृथक् कैसे रह सकते हैं!

श्रीराम भाई एवं पत्नीके साथ वन गये। महाराजने प्रिय पुत्रके वियोगमें शरीर छोड़ दिया। भरत—उनकी दशा, दुःख, वेदना कौन-कैसे कहे? गुरुका आदेश ननिहालमें चरने सुनाया था। अयोध्या आकर पिताकी अन्त्येष्टि करनी पड़ी। समस्त समाज लेकर श्रीरामको लौटाने चित्रकूट गये, पर वहाँसे भी चरण-पादुका लेकर लौटना पड़ा। भरत बड़े भाईकी चरण-पादुका लेकर लौटे। अयोध्याका चक्रवर्ती सिंहासन उन पादुकाओंसे भूषित हुआ। रामहीन अयोध्यामें भरत रहेंगे? उन्होंने नन्दिग्राममें ***'महि खनि कुस साथरी सँवारी।'*** और 'गोमूत्र-यावक' (गोबरसे निकले जौको गोमूत्रमें पकाकर) उसके आहारपर तप करते हुए चौदह वर्ष व्यतीत करना स्थिर किया।

श्रीराम चित्रकूटसे आगे चले। अयोध्यासे ही महर्षियोंके दर्शनकी सुलालसा थी। प्रयागमें भरद्वाजजी, आगे महामुनि वाल्मीकिके दर्शन हुए ही थे। चित्रकूटके तो महर्षि अत्रि ही कुलपति थे। आगे शरभंग, सुतीक्ष्ण, अगस्त्यादिके दर्शन करके दण्डकारण्यको पवित्र किया उन्होंने। असुर विराध चित्रकूटसे निकलते ही मिला और मारा गया। पञ्चवटीमें पर्णकुटी बनी। कुछ वर्ष वहाँ शान्तिसे व्यतीत हुए। गृध्रराज जटायुसे परिचय हुआ।

उस दिन रावणकी बहन कुलटा शूर्पणखा कहींसे घूमती-घामती आ पहुँची। मर्यादापुरुषोत्तम वासना एवं दुष्टोंका निग्रह तो करते ही। नाक-कान काटनेपर उसने

खर-दूषणसे पुकार की। वे असुर चौदह सहस्त्र सेनाके साथ आये और अकेले श्रीराघवेन्द्रके शरोंके भोग हो गये। शूर्पणखा रावणके पास पहुँची। रावणने मारीचको साथ लिया। स्वर्ण-मृगके पीछे श्रीजानकीकी इच्छासे श्रीराम दौड़े। मारीचका छल सफल हुआ। वह शराघातसे मरा, किंतु रावण एकाकिनी जानकीको हरण करनेमें सफल हो गया। लङ्काके अशोकवनमें वे विश्वधातृ बंदिनी बनीं।

श्रीराम लौटे मृगको वञ्चनाका दण्ड देकर। आश्रम शून्य था। अन्वेषण प्रारम्भ हुआ। आहत जटायु मिले। वे दशाननको रोकनेके प्रयत्नमें छिन्नपक्ष हुए थे। श्रीरामके चरणोंमें उनका शरीर छूटा। राघवने अपने करकमलोंसे उनकी अन्त्येष्टि की। कबन्ध असुरका वध और शबरीके बेरोंका आस्वादन करते वे पम्पासर पहुँचे। वालीसे निर्वासित सुग्रीवको शरण मिली और दूसरे ही दिन जब वाली श्रीरामके बाणसे परधाम पधारे, सुग्रीव किष्किन्धाधीश हो गये। ऋष्यमूकपर राघवने वर्षा-ऋतु व्यतीत की। शरदागममें वानर-भालु सीतान्वेषणके लिये निकले।

श्रीपवनकुमार शतयोजन सागर पार लङ्कामें विदेह-नन्दिनीका दर्शन कर आये। स्वर्णपुरी उनकी पूँछकी लपटोंमें जल चुकी थी। श्रीरामने ससैन्य प्रस्थान किया। मदान्ध रावणसे पादताडित विभीषण उन विश्व-शरणदकी शरणमें आ गये। सागरपर सेतु बना और वह सुरासुर-अगम्य पुरी वानर-भालुओंसे धर्षित होने लगी। राक्षस-सेनानी मारे जाने लगे। रणभूमिने रावणपुत्र इन्द्रजित् तथा कुम्भकर्णकी आहुति ले ली। अन्तमें दशाननका वध करके श्रीरामने सुरकार्य पूर्ण कर दिया।

भरत चौदह वर्षसे एक दिन अधिक प्रतीक्षा न करेंगे। उनके प्राण इस अवधिमें आबद्ध हैं। पुष्पक सज्जित हुआ। श्रीराम् भाई तथा श्रीजानकी एवं सुग्रीव, विभीषण, हनुमान्, अङ्गदादि प्रधान नायकोंके साथ उस दिव्य विमानसे अयोध्या पधारे। पुरवासियोंकी, माताओंकी, भरतकी चिरप्रतीक्षा सफल हुई। श्रीराम कोसलके चक्रवर्ति-सिंहासनपर वैदेहीके साथ विराजमान हुए।

'रामराज्य'—सुशासन, सुव्यवस्था, धर्म, शान्ति, सदाचारादिकी पूर्णताके द्योतनके लिये आज भी मनुष्यके पास इससे सुन्दर शब्द नहीं। ग्यारह सहस्त्र वर्ष वह दिव्य शासन धराको कृतार्थ करता रहा। श्रीवाल्मीकीय रामायण और गोस्वामी तुलसीदासजीके श्रीरामचरितमानस श्रीरामके मङ्गलमय चरितसे लोकमें कल्याणका प्रसार करते हैं। भगवान् व्यासके अतिरिक्त अनेक संस्कृत, हिन्दी तथा अन्य भाषाओंके कवियों, विद्वानोंने अपनी वाणी राम-गुणगानसे पवित्र की है।

श्रीराम मर्यादापुरुषोत्तम हैं। हिन्दू-संस्कृतिकी पूर्ण प्रतिष्ठा उनके चरितमें हुई है। जीवनके प्रत्येक क्षेत्रके लिये उसमें आदर्श हैं। हिन्दू-संस्कृतिका स्वरूप 'श्रीरामचरित' के दर्पणमें ही पूर्णतः प्रतिबिम्बित हुआ है। भारतका वह आदर्श आज विश्व-मानवका गेय-ध्येय बने, तभी मानव सुसंस्कृत बन सकेगा।

(२२) [क] भगवान् बलराम

श्रीकृष्णावतार तो पिछले द्वापरमें सत्ताईस कलियुगोंके पश्चात् हुआ था। द्वापरमें पृथ्वीका भार हरण करने तो भगवान् बलराम ही प्रायः पधारते हैं। उन्हींको श्रुतियाँ द्वापरका युगावतार कहती हैं। माता देवकीके सप्तम गर्भमें वे पधारे। योगमायाने गोकुलमें नन्दबाबाके यहाँ स्थित रोहिणीजीमें उन्हें पहुँचा दिया। इस प्रकार वे सङ्कर्षण कहलाये। इनकी गोकुल, मथुरा और द्वारकाकी कई लीलाएँ बड़ी ही अद्भुत और आनन्ददायिनी हैं।

श्रीकृष्ण-बलराम परस्पर नित्य अभिन्न हैं। उनकी चरित-चर्चा एक-दूसरेसे पृथक् जैसे कुछ है ही नहीं। गोकुलमें दोनोंकी संग-संग बालक्रीडा और वहाँसे वृन्दावन-प्रस्थान। बहुत

उनके अग्रज नहीं थे। ऐसे ही बलरामजी अपने अनुजसे पृथक् बहुत कम रहे हैं।

वहाँ कंस-प्रेरित असुर प्रलम्ब आया था। श्रीकृष्णको तो कोई साथी चाहिये खेलनेके लिये। एक नवीन गोप-बालकको देखा और मिला लिया अपने दलमें। असुरने श्यामके दैत्य-दलन-चरित सुने थे। उसे उनसे भय लगा। अपने छद्मवेशमें वह दाऊको पीठपर बैठानेमें सफल हुआ और भागा। जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका धारक है, उसे कौन ले जा सकता है। दैत्यको अपना स्वरूप प्रकट करना पड़ा। एक घूसा पड़ा तत्क्षण उसके मस्तकपर, और फिर क्या सिर बच रहना था?

उस दिन सखा कह रहे थे कि उन्हें पक्व ताल-फलोंकी सुरभि लुब्ध कर रही है। सखा कुछ चाहें तो वह अप्राप्य कैसे रहे! असुर—गर्दभ धेनुक और उसका गर्दभ-परिवार—सब क्रीडामें ही नष्ट हो गये। प्रकृतिका उन्मुक्त दान कानन है। इन दुष्ट गर्दभोंने उसे पशुओंतकके लिये अगम्य बना दिया था। भगवान् बलरामने सखाओंको ताल-फल प्रदान करनेके बहाने सबके लिये निर्बाध कर दिया उसे।

कन्हैया तो महाचंचल है; किंतु दाऊ भैया गम्भीर, परमोदार, शान्त हैं। श्याम उन्हींका संकोच भी करता है। वे भी अपने अनुजकी इच्छाको ही जैसे देखते रहते हैं। व्रज-लीलामें जब श्यामने शङ्खचूड़को मारा, तब उसने समस्त गोप-नारियोंके सम्मुख उस यक्षका शिरोरत्न अपने अग्रजको उपहाररूपमें दिया। कुवलयापीड—कंसका उन्मत्त गजराज दोनों भाइयोंकी थप्पड़ों और घूसोंकी भेंट हुआ और मल्लशालामें चाणूरको श्यामने पछाड़ा तो मुष्टिक बलरामजीकी मुष्टिकाकी भेंट हो गया।

दोनों भाइयोंने गुरुगृहमें साथ-साथ निवास किया। जरासन्धको बलरामजी ही अपने योग्य प्रतिद्वन्द्वी जान पड़े और यदि श्रीकृष्णचन्द्रने अग्रजसे उसे छोड़ देनेकी प्रार्थना न की होती तो वह पकड़ लिया गया था तथा बलरामजी उसे मारने ही जा रहे थे। जिसे सत्रह युद्धोंमें पकड़कर छोड़ दिया, उसीके सामनेसे अठारहवीं बार भागना कोई अच्छी बात नहीं थी। किया क्या जाय? श्रीकृष्णने प्रातःसे वह दिन पलायनके लिये स्थिर कर लिया था। कालयवनके सम्मुख वे अकेले भागे। जरासन्धके सम्मुख भागनेमें इतना आग्रह किया कि अग्रजको साथ भागना ही पड़ा।

'यह भी कोई बात है कि केवल हँसा जाय! जो बना-बिगाड़ न सकता हो, वह हँसे या पश्चात्ताप करे?' बलरामजीका विवाह हुआ। रेवतीजी सत्ययुगकी कन्या ठहरीं। स्वभावतः बहुत लम्बी थीं। श्यामसुन्दर तो सदाके परिहासप्रिय हैं। बलरामजीने पत्नीको अपने अनुरूप ऊँचाईमें पहुँचा दिया।

'श्याम अकेला गया है?' कुण्डिनपुरके राजा भीष्मककी कन्या रुक्मिणीके विवाहमें शिशुपालके साथ जरासन्धादि ससैन्य आ रहे हैं, यह समाचार तो मिल ही चुका था। वहाँ अकेले श्रीकृष्ण कन्या-हरण करने गये, यह तो अच्छा नहीं हुआ। बलरामजीने यादवी सेना सज्जित की। वे इतनी शीघ्रतासे चले कि श्रीकृष्ण मार्गमें ही मिल गये। श्यामसुन्दरको केवल रुक्मिणीजीको लेकर चल देना था। शिशुपाल और उसके साथी तो बलरामके सैन्यसमूहसे ही पराजित हुए।

'कृष्ण! सम्बन्धियोंके साथ तुम्हें ऐसे व्यवहार नहीं करना चाहिये।' बलरामजी राजाओंकी सेनाको परास्त करके आगे बढ़े तो रुक्मीकी सेना आ गयी। उसके साथ उलझनेमें कुछ विलम्ब हुआ। आगे आकर देखा तो छोटे भाईने अपने ही साले रुक्मीको पराजित करके रथमें बाँध रखा है। उसके केश, श्मश्रु आदि मुण्डित कर दिये हैं। बड़ी दया आयी। छुड़ा दिया उसको; परंतु आगे चलकर रुक्मीने अपने स्वभाववश बलरामजीका अपमान किया, तब वह उन्हींके हाथों मारा गया।

दुर्योधन भी मदमत्त हो उठा था। क्या हुआ जो श्रीकृष्णके पुत्र साम्बने उसकी पुत्री लक्ष्मणाका हरण किया? क्षत्रियके लिये स्वयंवरमें कन्या-हरण अपराध तो है नहीं। अकेले लड़केको छः महारथियोंने मिलकर बंदी किया, यह तो अन्याय ही था। श्रीकृष्णचन्द्र कितने रुष्ट हुए थे समाचार पाकर। यदि वे नारायणी सेनाके साथ आ जाते—बलरामजीने छोटे भाईको शान्त किया। दुर्योधन उनका शिष्य था। सत्राजित्का वध करके शतधन्वा जब स्यमन्तकमणि लेकर भागा, श्यामसुन्दरके साथ बलभद्रजीने उसका पीछा किया। वह मिथिलाके समीप पहुँचकर भाग जा सका। मणि उसके वस्त्रोंमें मिली नहीं। बलरामजी इतने समीप आकर मिथिलानरेशसे मिले बिना लौट न सके। दो

मासतक वहीं दुर्योधनने उनसे गदा-युद्धकी शिक्षा ली। वही दुर्योधन यदुवंशियोंको अपना कृपाजीवी, क्षुद्र कहकर चला गया था और भगवान् बलरामके सम्मुख ही यादव महाराज उग्रसेनके प्रति उसने अपशब्द भी कहे। क्रुद्ध हलधरने हल उठाया। हस्तिनापुर नगर घूमने लगा। वे धराधार नगरको यमुनाजीमें फेंकने जा रहे थे। '**पशूनां लगुडो यथा।**' 'पशु डंडेसे मानते हैं।' दण्डसे भीत कौरव शरणापन्न हुए। वे क्षमामय दण्डका तो केवल नाट्य करते हैं। उन्हें भी क्या रोष आता है?

महाभारतमें वे किस ओर होते? एक ओर प्रिय शिष्य दुर्योधन और दूसरी ओर श्रीकृष्ण। वे तीर्थयात्रा करने चले गये। नैमिष-क्षेत्रमें इल्वल राक्षसका पुत्र बल्वल अपने उत्पातसे ऋषियोंको आकुल किये था। उस विपत्तिसे उन तपस्वियोंको त्राण मिला। जब वे तीर्थयात्रासे लौटे तब महाभारतयुद्ध समाप्त हो चुका था। भीम-दुर्योधनका अन्तिम संग्राम चल रहा था। दोनोंमेंसे कोई समझानेसे माननेको उद्यत नहीं था।

यदुवंशका उपसंहार होना ही था। भगवान्‌की इच्छासे अभिशप्त यादव परस्पर संग्राम कर रहे थे। भगवान् बलराम उन्हें समझाने—शान्त करने गये, पर मृत्युके वश हुए उन्होंने इनकी बात नहीं सुनी और नष्ट हो गये। अब लीला-संवरण करना था। समुद्र-तटपर उन्होंने आसन लगाया और अपने 'सहस्त्रशीर्षा' स्वरूपसे जलमें प्रविष्ट हो गये।

~~ ○ ~~

[ख] भगवान् श्रीकृष्ण

'तू जिसे इतने उत्साहसे पहुँचाने जा रहा है, उसीका आठवाँ पुत्र तुझे मारेगा!' आकाशवाणीसे कंस चौंका। सचमुच वह अपने चाचाकी छोटी लड़की देवकीको विवाह होनेपर कितने उत्साहसे पहुँचाने जा रहा था। दिग्विजयी कंस—मृत्युका भय शरीरासक्तको कायर बना देता है। वह अपनी बहनका वध करनेको ही उद्यत हो गया। वसुदेवजीने सद्योजात शिशु उसे देनेका वचन दिया। इतनेपर भी कंसने दम्पतिको रखा कारागारमें ही। विरोध करनेपर अपने ही पिता उग्रसेनको भी उसने बंदी बनाया और वह स्वयं मथुराका नरेश बन गया।

बच्चे होते, सत्यभीरु वसुदेवजी कंसके सम्मुख लाकर रख देते। वह उठाकर शिलापर पटक देता। हत्यासे शिलातल कलुषित होता गया। छः शिशु मरे। सातवें गर्भमें भगवान् शेष पधारे। योगमायाने उन्हें आकर्षित करके गोकुलमें रोहिणीजीके गर्भमें पहुँचा दिया। अष्टम गर्भमें वह अखिलेश आया। धरा असुर-नरेशोंके अशुभ कर्मोंसे आकुल है, उसके आराधक उसीकी प्रतीक्षामें पीडित हो रहे हैं, तो वह आयेगा ही।

कंसका कारागार, भाद्रकृष्ण अष्टमीकी मेघाच्छन्न अर्धनिशा—जैसे प्रकृतिने सम्पूर्ण कलुषको मूर्ति दे दी हो। चन्द्रोदयके साथ श्रीकृष्णचन्द्रका प्राकट्य हुआ। वन्दियोंके नेत्र धन्य हो गये। वह चतुर्भुज देखते-देखते शिशु बना, शृंखलाएँ स्वतः शिथिल हुईं, द्वार उन्मुक्त हुआ, वसुदेवजी उस हृदयधनको गोकुल जाकर नन्दभवनमें रख आये। कंसको मिली यशोदाकी योगमायारूपी कन्या और जब कंस उन्हें शिलातलपर पटक रहा था तब वे योगमाया गगनमें सायुधाभरण अष्टभुजा हो गयीं।

गोकुलमें, गलियोंमें आनन्द उमगा। आनन्दघन नन्दरानीकी गोदमें जो उतर आया था। कंसके क्रूर प्रयास उस प्रवाहमें प्रवाहित हो गये। पतना [illegible]

सब विफल होकर भी कन्हैयाके करोंसे सद्गति पा गये। मोहन चलने लगा, बड़ा हुआ और घर-घर धूम मच गयी—वह हृदयचोर नवनीतचोर जो हो गया था। गोपियोंके उल्लसित भाव सार्थक करने थे उसे। यह लीला समाप्त हुई अपने घरका ही नवनीत लुटाकर। मैयाने ऊखलमें बाँधकर दामोदर बना दिया। यमलार्जुनका उद्धार तो हुआ, किंतु उन महावृक्षोंके गिरनेसे गोप शंकित हो गये। वे गोकुल छोड़कर वृन्दावन जा बसे।

वृन्दावन, गोवर्धन, यमुना-पुलिन व्रज-युवराजकी मधुरिम क्रीडाके चलनेमें सबने और सहायता दी। श्रीकृष्ण वत्सचारक बने। कंसका प्रयत्न भी चलता रहा। बकासुर, वत्सासुर, प्रलम्ब, धेनुक, अघासुर, मयपुत्र व्योमासुर आदि आते रहे। श्यामसुन्दर तो सबके लिये मोक्षका अनावृत द्वार है। कालियके फणोंपर उस व्रजविहारीने रासका पूर्वाभ्यास कर लिया। ब्रह्माजी भी बछड़े चुराकर अन्तमें उस नटखटकी स्तुति ही कर गये। इन्द्रके स्थानपर गोवर्धन-पूजन किया गोपोंने और गोपालने। देव-कोपकी महावर्षासे गिरिराजको सात दिन अँगुलीपर उठाकर व्रजको बचा लिया। देवेन्द्र उस गिरिधारीको गोविन्द स्वीकार कर गये। कंसके प्रेषित वृषासुर, केशी आदि जब गोपालके करोंसे कर्मबन्धन-मुक्त हो गये, तब उसने अक्रूरको भेजकर उन्हें मथुरा बुलवाया। नन्दबाबा राम-श्याम तथा गोपोंके साथ मथुरापुरी पहुँचे।

राजाको संदेश मिला धोबीकी मृत्युसे श्यामके पधारनेका। उस दिनका उनका अङ्गराग मार्गमें ही उस चिर-चंचलने स्वीकार करके कुब्जाका कूबर दूर कर दिया। कंसका आराधित धनुष उसके गर्वकी भाँति तोड़ डाला गया। दूसरे दिन महोत्सव था कंसकी कूटनीतिका। रंगमण्डपके द्वारपर श्रीकृष्णचन्द्रने महागज कुवलयापीडको मारकर उसका श्रीगणेश किया। अखाड़ेमें उन सुकुमार-श्याम-गौर अङ्गोंसे चाणूर, मुष्टिक, शल, तोशल-जैसे मल्ल चूर्ण हो गये। कंसके जीवनकी पूर्णाहुतिसे उत्सव पूर्ण हुआ। महाराज उग्रसेन बन्दीगृहसे पुनः राज्यसिंहासनपर शुभासीन हुए।

श्रीकृष्ण व्रजमें कुल ग्यारह वर्ष, तीन मास रहे थे। इस अवस्थामें उन्होंने जो दिव्य लीलाएँ कीं, वे भावुकोंका जीवनपथ तो प्रशस्त करती हैं, पर आलोचककी कलुषित बुद्धि उनका स्पर्श नहीं कर सकती। वह इस वयके बालकमें या तो उन लीलाओंको समझ न पायेगा या अपने अन्त कलुषमें डूबेगा। अस्तु, फिर तो श्याम व्रज पधारे ही न उद्धवको भेज दिया एक बार आश्वासन देने। अवश्य बलरामजी द्वारकासे आकर एक मास रह गये एक बार।

अवन्ती जाकर श्यामसुन्दरने अग्रजके साथ शि प्राप्त की। गुरुदक्षिणामें गुरुका मृतपुत्र पुनः प्रदान क आये। मथुरा लौटते ही कंसके श्वशुर जरासन्धकी चढ़ाइयं उलझना पड़ा। वह सत्रह बार ससैन्य आया और पराजि होकर लौटा। अठारहवीं बार उसके आनेकी सूचनाके स कालयवन भी आ धमका। कहाँतक इस प्रकार युद्धम जीवन सहा जाय? समुद्रके मध्यमें दुर्गम दुर्ग द्वारकान बना। यादवकुलको वहाँ पहुँचाकर श्रीकृष्ण पैदल क यवनके सम्मुखसे भागे। पीछा करता हुआ यवन गुफा जाकर चिर-सुप्त मुचुकुन्दकी नेत्राग्निसे भस्म हो गया उधरसे लौटते ही जरासन्ध सेना लेकर आ पहुँचा। श्रीकृष्ण आज 'रणछोड़' हो रहे थे। बलरामजीको भी साथ भागन पड़ा। दोनों भाई प्रवर्षणपर चढ़कर भाग चले।

श्रीकृष्णके विवाह तो लोकप्रसिद्ध हैं। रुक्मिणीजीक उन्होंने हरण किया था। स्यमन्तकमणिकी खोजमें जाम्बवन्तसे युद्ध करके उपहारस्वरूप जाम्बवतीजीको ले आये। 'मणि'-के कारण कलंक लगानेके दोषसे लज्जित सत्राजित्ने अपनी पुत्री सत्यभामा स्वयं उन्हें प्रदान की। कालिन्दीजी उनके लिये तप ही कर रही थीं। लक्ष्मणाजीके स्वयंवरका मत्स्यभेद करनेमें दूसरा कोई समर्थ ही न हो सका और नग्नजित् नरेशके सातों साँड़ एक साथ नाथकर उनकी पुत्री सत्यासे दूसरा कौन विवाह कर पाता! मित्रविन्दाजीको उन्होंने स्वयं हरण किया और भद्राजीको उनके पिताने सादर प्रदान किया। यह तो आठ पटरानियोंकी बात है। पृथ्वीपुत्र भौमासुरने वरुणका छत्र, अदितिका कुण्डल हरण किया था। उसका वध आवश्यक था। सत्यभामाजीके साथ गरुडारूढ होकर जब उसे निजधाम दे चुके, तब जो सोलह सहस्र नरेन्द्र-कन्याएँ उसने बंदी बना रखी थीं, उनका उद्धार भी आवश्यक था। उनको अपनाये बिना उद्धार-कार्य कैसे पूर्ण होता। इस यात्रामें अमरावतीसे बलात् कल्पतरु द्वारका ले आये। इन्द्रने युद्धकी धृष्टता की और वे पराजित हुए।

बाणासुरसे विवश होकर युद्ध करना पड़ा। अपनी

सहस्र भुजाओंके मदमें वह अपने आराध्य भगवान् शंकरका अपमान करने लगा था। अनिरुद्धको बंदी बना लिया था उसने। भक्तवत्सल आशुतोषने फिर भी युद्धमें उसका पक्ष ग्रहण किया। चक्रने असुरके सभी हाथ काट डाले। केवल उसकी चार भुजाएँ शेष रहीं। पौण्ड्रक, दन्तवक्त्र और शाल्व—ये सब मारे गये अपने ही अपराधसे। पौण्ड्रक वासुदेव ही बननेपर तुला था। युद्ध माँगा था उसने। दन्तवक्त्रने आक्रमण किया और शाल्व तो मयनिर्मित विमानसे द्वारका ही नष्ट करने आया था। शिशुपाल भरी सभामें गालियाँ देने लगा तो कहाँतक क्षमा की जाय? सौ गालियोंके पश्चात् चक्रकी भेंट हो गया वह।

पाण्डवोंका परित्राण तो श्रीकृष्ण ही थे। राजसूय यज्ञ युधिष्ठिरका होता नहीं, यदि जरासन्ध मारा न जाता। राजसूयका वह सभास्थल—उसे वनमालीके आदेशसे मयने बनाया। द्यूतमें हारे पाण्डवोंकी पत्नी राजसूयकी साम्राज्ञी द्रौपदी जब भरी सभामें दु:शासनद्वारा नग्नकी जाने लगी, वस्त्रावतार धारण किया प्रभुने। दुर्योधनने दुर्वासाजीको वनमें भेजा ही था पाण्डवोंके विनाशके लिये, पर शाकका एक पत्र खाकर त्रिलोकीको तुष्ट करनेवाला वह पार्थप्रिय उपस्थित जो हो गया।

वह मयूरमुकुटी पाण्डवोंके लिये सन्धिदूत बनकर आया। विदुरपत्नीके केलेके छिलकोंका रसास्वाद कर गया। सुदामाके तन्दुलोंने प्रेमका स्वाद सिखा दिया था। युद्धारम्भ हुआ और वह राजसूयका अग्रपूज्य पार्थसारथि बना। संग्रामभूमिमें उस गीता-गायकने अर्जुनको अपनी दिव्य अमर वाणीसे प्रबुद्ध किया। भीष्म, द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामाके दिव्यास्त्रोंसे रक्षा की पाण्डवोंकी। युद्धका अन्त हुआ। युधिष्ठिरको सिंहासन प्राप्त हुआ। पाण्डवोंका एकमात्र वंशधर उत्तरापुत्र परीक्षित् मृत उत्पन्न हुआ। अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रने उसे प्राणहीन कर दिया था। श्रीकृष्णने उसे पुनर्जीवन दिया।

'यादवकुल पृथ्वीपर रहेगा तो वह बलोन्मत्त होकर अधर्म करेगा।' श्रीकृष्णको यह अभीष्ट नहीं था। ऋषियोंका शाप तो निमित्त बना। समस्त यादव परस्पर कलहसे कट मरे और आप देखते रहे। व्याधने पादतलमें बाण मारा तो उसे सशरीर स्वर्ग भेजनेका पुरस्कार दिया। इस प्रकार लीला-संवरण की द्वारकेशने।

श्रीकृष्णचन्द्र पूर्णपुरुष लीलावतार कहे गये हैं। भगवान् व्यासकी वाणीने श्रीमद्भागवतमें उनकी दिव्य लीलाओंका वर्णन किया है। शुकदेवजी-से विरक्त उस रसाम्बुधिमें मग्न रहा करते थे। श्रीमद्भागवत श्रीकृष्ण-लीलाका अमृतपयोनिधि है। श्रीकृष्णका चरित पूर्णताका ज्वलन्त प्रतीक है। भगवत्ताके छ: गुण—ऐश्वर्य, धर्म, यश, शोभा, ज्ञान और वैराग्य—सब उसमें पूर्ण हैं। त्याग, प्रेम, भोग और नीति—सब उन पूर्णपुरुषमें पूर्ण ही हैं। हिन्दू-संस्कृति निष्ठाकी पूर्णताको आदर्श मानती है। श्रीकृष्णमें समस्त निष्ठाओंकी पूर्णता होती है।

(२३) भगवान् बुद्ध

बौद्धधर्मके प्रवर्तक महाराज शुद्धोदनके यशस्वी पुत्र गौतम बुद्धके रूपमें ही श्रीभगवान् अवतरित हुए थे, ऐसी प्रसिद्धि विश्रुत है, परंतु पुराणवर्णित भगवान् बुद्धदेवका प्राकट्य गयाके समीप कीकट देशमें हुआ था। उनके पुण्यात्मा पिताका नाम 'अजन' बताया गया है। यह प्रसंग पुराणवर्णित बुद्धावतारका ही है।

दैत्योंकी शक्ति बढ़ गयी थी। उनके सम्मुख देवता टिक नहीं सके, दैत्योंके भयसे प्राण लेकर भागे। दैत्योंने देवधाम स्वर्गपर अधिकार कर लिया। वे स्वच्छन्द होकर देवताओंके वैभवका उपभोग करने लगे; किंतु उन्हें प्राय: चिन्ता बनी रहती थी कि पता नहीं, कब देवगण समर्थ होकर पुन: स्वर्ग छीन लें। सुस्थिर साम्राज्यकी कामनासे दैत्योंने सुराधिप इन्द्रका पता लगाया और उनसे पूछा—'हमारा अखण्ड साम्राज्य स्थिर रहे, इसका उपाय बताइये।'

देवाधिप इन्द्रने शुद्ध भावसे उत्तर दिया—'सुस्थिर शासनके लिये यज्ञ एवं वेदविहित आचरण आवश्यक है।'

दैत्योंने वैदिक आचरण एवं महायज्ञका अनुष्ठान प्रारम्भ किया। फलत: उनकी शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। स्वभावसे ही उद्दण्ड और निरंकुश दैत्योंका उपद्रव बढ़ा। जगत्में आसुरभावका प्रसार होने लगा।

असहाय और निरुपाय दु:खी देवगण जगत्पति श्रीविष्णुके पास गये। उनसे करुण प्रार्थना की। श्रीभगवान्ने

उन्हें आश्वासन दिया।

श्रीभगवान्‌ने बुद्धका रूप धारण किया। उनके हाथमें मार्जनी थी और वे मार्गको बुहारते हुए उसपर चरण रखते थे।

इस प्रकार भगवान् बुद्ध दैत्योंके समीप पहुँचे और उन्हें उपदेश दिया—'यज्ञ करना पाप है। यज्ञसे जीवहिंसा होती है। यज्ञकी प्रज्वलित अग्निमें ही कितने जीव भस्म हो जाते हैं। देखो, मैं जीवहिंसासे बचनेके लिये कितना प्रयत्नशील रहता हूँ। पहले झाड़ू लगाकर पथ स्वच्छ करता हूँ, तब उसपर पैर रखता हूँ।'

संन्यासी बुद्धदेवके उपदेशसे दैत्यगण प्रभावित हुए। उन्होंने यज्ञ एवं वैदिक आचरणका परित्याग कर दिया। परिणामत: कुछ ही दिनोंमें उनकी शक्ति क्षीण हो गयी।

फिर क्या था, देवताओंने उन दुर्बल एवं प्रतिरोधहीन दैत्योंपर आक्रमण कर दिया। असमर्थ दैत्य पराजित हुए और प्राणरक्षार्थ यत्र-तत्र भाग खड़े हुए। देवताओंका स्वर्गपर पुन: अधिकार हो गया।

इस प्रकार संन्यासीके वेषमें भगवान् बुद्धने त्रैलोक्यका मङ्गल किया।

~~~ 0 ~~~

(२४) भगवान् कल्कि

चराचरगुरोर्विष्णोरीश्वरस्याखिलात्मनः ।
धर्मत्राणाय साधूनां जन्म कर्मापनुत्तये॥

(श्रीमद्भा० १२।२।१७)

'सर्वव्यापक भगवान् विष्णु सर्वशक्तिमान् हैं। वे र्वस्वरूप होनेपर भी चराचर जगत्‌के सच्चे शिक्षक—द्‌गुरु हैं। वे साधु—सज्जन पुरुषोंके धर्मकी रक्षाके त्रये, उनके कर्मका बन्धन काटकर उन्हें जन्म-मृत्युके क्करसे छुड़ानेके लिये अवतार ग्रहण करते हैं।'

× × ×

अभी तो कलिका प्रथम चरण है। कलिके पाँच हस्रसे कुछ ही अधिक वर्ष बीते हैं। इतने दिनोंमें ानवजातिका कितना मानसिक ह्रास एवं नैतिक पतन हो या है, यह सर्वविदित है। यह स्थिति उत्तरोत्तर बढ़ती जायगी। ज्यों-ज्यों कलियुग आता जायगा, त्यों-त्यों धर्म, सत्य, पवित्रता, क्षमा, दया, आयु, बल और स्मरणशक्ति—सबका उत्तरोत्तर लोप होता जायगा। व्यावहारिक सत्य और ईमानदारी समाप्त हो जायँगे; छल-कपट-पटु व्यक्ति ही व्यवहारकुशल समझा जायगा। अर्थहीन व्यक्ति ही असाधु माने जायँगे। घोर दाम्भिक और पाखण्डी ही सत्पुरुष समझे जायँगे। धर्म, तीर्थ, माता-पिता और गुरुजन उपेक्षित और तिरस्कृत होंगे। मनुष्य-जीवनका सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ होगा—उदर-भरण। धर्मका सेवन यशके लिये किया जायगा। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंमें जो शक्तिसम्पन्न होगा, वही शासन करेगा। उस समयके नीच राजा अत्यन्त दुष्ट एवं निष्ठुर होंगे। लोभी तो वे इतने होंगे कि उनमें और लुटेरोंमें कोई अन्तर नहीं रह जायगा। उनसे भयभीत होकर प्रजा वनों और पर्वतोंमें छिपकर तरह-तरहके शाक, कंद-मूल, मांस, फल-फूल और बीज-गुठली आदिसे अपनी क्षुधा मिटायेगी। समयपर वृष्टि नहीं होगी, वृक्ष फल नहीं देंगे। भयानक सूखा, भयानक सर्दी और भयानक गर्मी पड़ेगी। तब भी शासक कर-पर-कर लगाते जायँगे। प्राणिमात्र धर्मकी मर्यादा त्यागकर स्वच्छन्द मार्गका अनुसरण करेंगे। मनुष्योंकी परमायु बीस वर्षकी हो जायगी।

कलिके प्रभावसे प्राणियोंके शरीर छोटे-छोटे, क्षीण और रोगग्रस्त होने लगेंगे। वेदमार्ग प्राय: मिट जायगा। राजा-महाराजा डाकू-लुटेरोंके समान हो जायँगे। वानप्रस्थी, संन्यासी आदि विरक्त-जीवन व्यतीत करनेवाले गृहस्थोंकी भाँति जीवन व्यतीत करने लगेंगे। मनुष्योंका स्वभाव गधों-जैसा दुस्सह, केवल गृहस्थीका भार ढोनेवाला हो
~~~

जायगा। लोग विषयी हो जायँगे। धर्म-कर्मका लेश भी नहीं रहेगा। लोग एक-दूसरेको लूटेंगे और मारेंगे। मनुष्य जपरहित, नास्तिक और चोर होंगे।

पुत्रः पितृवधं कृत्वा पिता पुत्रवधं तथा।
निरुद्वेगो बृहद्वादी न निन्दामुपलप्स्यते॥
म्लेच्छीभूतं जगत् सर्वं भविष्यति न संशयः।
हस्तो हस्तं परिमुषेद् युगान्ते समुपस्थिते॥

(महा०, वन० १९०।२८, ३८)

'पुत्र पिताका और पिता पुत्रका वध करके भी उद्विग्न नहीं होंगे। अपनी प्रशंसाके लिये लोग बड़ी-बड़ी बातें बनायेंगे, किंतु समाजमें उनकी निन्दा नहीं होगी। उस समय सारा जगत् म्लेच्छ हो जायगा—इसमें संशय नहीं। एक हाथ दूसरे हाथको लूटेगा—सगा भाई भी भाईके धनको हड़प लेगा।'

अधर्म बढ़ेगा, धर्म विदा हो जायगा। स्त्रियाँ अपने पतियोंकी सेवा छोड़ देंगी। वे कठोर स्वभाववाली और सदा कटुवादिनी होंगी। वे पतिकी आज्ञामें नहीं रहेंगी। पतिको माँगनेपर भी कहीं अन्न-जल या ठहरनेके लिये स्थान नहीं मिलेगा। सर्वत्र पाप-पीड़ा, दुःख-दारिद्र्य, क्लेश-अनीति, अनाचार और हाहाकार व्याप्त हो जायँगे।

उस समय सम्भलग्राममें विष्णुयशा नामक एक अत्यन्त पवित्र, सदाचारी एवं श्रेष्ठ ब्राह्मण होंगे। वे सरल एवं उदार होंगे। वे श्रीभगवान्‌के अत्यन्त अनुरागी भक्त होंगे। उन्हीं अत्यन्त भाग्यशाली ब्राह्मण विष्णुयशाके यहाँ समस्त सद्गुणोंके एकमात्र आश्रय, निखिल सृष्टिके सर्जक, पालक एवं संहारक परब्रह्म परमेश्वर भगवान् कल्किके रूपमें अवतरित होंगे। उनके रोम-रोमसे अद्भुत तेजोमयी किरणें छिटकती रहेंगी। वे महान् बुद्धि एवं पराक्रमसे सम्पन्न, महात्मा, सदाचारी तथा सम्पूर्ण प्रजाके शुभैषी होंगे।

मनसा तस्य सर्वाणि वाहनान्यायुधानि च॥
उपस्थास्यन्ति योधाश्च शस्त्राणि कवचानि च।
स धर्मविजयी राजा चक्रवर्ती भविष्यति॥
स चेमं संकुलं लोकं प्रसादमुपनेष्यति।
उत्थितो ब्राह्मणो दीप्तः क्षयान्तकृदुदारधीः॥

(महा०, वन० १९०।९४—९६)

(विष्णुयशाके बालकके) चिन्तन करते ही उसके पास इच्छानुसार वाहन, अस्त्र-शस्त्र, योद्धा और कवच उपस्थित हो जायँगे। वह धर्मविजयी चक्रवर्ती राजा होगा। वह उदारबुद्धि, तेजस्वी ब्राह्मण दुःखसे व्याप्त हुए इस जगत्‌को आनन्द प्रदान करेगा। कलियुगका अन्त करनेके लिये ही उसका प्रादुर्भाव होगा।

भगवान् शंकर स्वयं कल्किभगवान्‌को शस्त्रास्त्रकी शिक्षा देंगे और भगवान् परशुराम उनके वेदोपदेष्टा होंगे।

वे देवदत्त नामक शीघ्रगामी अश्वपर आरूढ़ होकर राजाके वेषमें छिपकर रहनेवाले, पृथ्वीमें सर्वत्र फैले हुए दस्युओं एवं नीच स्वभाववाले सम्पूर्ण म्लेच्छोंका संहार कर डालेंगे। वे परम पुण्यमय भगवान् कल्कि भूमण्डलके सम्पूर्ण पातकियों, दुराचारियों एवं दुष्टोंका विनाश कर अश्वमेध नामक महान् यज्ञ करेंगे और उस यज्ञमें सम्पूर्ण पृथ्वी ब्राह्मणोंको दानमें दे देंगे।

भगवान् कल्कि दस्युवधमें सदा तत्पर रहेंगे। वे जिन-जिन देशोंपर विजय प्राप्त करेंगे, उन-उन देशोंमें काले मृगचर्म, शक्ति, त्रिशूल तथा अन्य अस्त्र-शस्त्रोंकी स्थापना करेंगे। वहाँ उत्तमोत्तम ब्राह्मण उनका श्रद्धा-भक्तिपूर्ण स्तवन करेंगे और प्रभु कल्कि उन ब्राह्मणोंका यथोचित सत्कार करेंगे।

वीरवर कल्किभगवान्‌के करकमलोंसे पृथ्वीके सम्पूर्ण दस्युओंका विनाश और अधर्मका नाश हो जायगा। फिर स्वाभाविक ही धर्मका उत्थान प्रारम्भ होगा।

स्थापयित्वा च मर्यादाः स्वयम्भुविहिताः शुभाः।
वनं पुण्ययशःकर्मा रमणीयं प्रवेक्ष्यति॥
तच्छीलमनुवर्त्स्यन्ति मनुष्या लोकवासिनः।

(महा०, वन० १९१।२-३)

'उनका यश तथा कर्म—सभी परम पावन होंगे। वे ब्रह्माजीकी चलायी हुई मङ्गलमयी मर्यादाओंकी स्थापना करके (तपस्याके लिये) रमणीय वनमें प्रवेश करेंगे। फिर इस जगत्‌के निवासी मनुष्य उनके शील-स्वभावका अनुकरण करेंगे।'

मङ्गलमय भगवान् कल्किके अङ्गरागको स्पर्शकर बहनेवाली वायु ग्राम, नगर, जनपद एवं देशकी सारी प्रजाके मनमें पवित्रताके भाव भर देगी। उनमें सहज सात्त्विकता उदित हो जायगी। फिर उनकी संतति पूर्ववत् हृष्ट-पुष्ट, दीर्घायु एवं धर्मपरायण होने लगेगी।

इस प्रकार सर्वभूतात्मा सर्वेश्वर भगवान् कल्किके अवतरित होनेपर पृथ्वीपर पुनः सत्ययुग प्रतिष्ठित होगा।

उन्हें आश्वासन दिया।

श्रीभगवान्‌ने बुद्धका रूप धारण किया। उनके हाथमें मार्जनी थी और वे मार्गको बुहारते हुए उसपर चरण रखते थे।

इस प्रकार भगवान् बुद्ध दैत्योंके समीप पहुँचे और उन्हें उपदेश दिया—'यज्ञ करना पाप है। यज्ञसे जीवहिंसा होती है। यज्ञकी प्रज्वलित अग्निमें ही कितने जीव भस्म हो जाते हैं। देखो, मैं जीवहिंसासे बचनेके लिये कितना प्रयत्नशील रहता हूँ। पहले झाड़ू लगाकर पथ स्वच्छ करता हूँ, तब उसपर पैर रखता हूँ।'

संन्यासी बुद्धदेवके उपदेशसे दैत्यगण प्रभावित हुए। उन्होंने यज्ञ एवं वैदिक आचरणका परित्याग कर दिया। परिणामत: कुछ ही दिनोंमें उनकी शक्ति क्षीण हो गयी।

फिर क्या था, देवताओंने उन दुर्बल एवं प्रतिरोधहीन दैत्योंपर आक्रमण कर दिया। असमर्थ दैत्य पराजित हुए और प्राणरक्षार्थ यत्र-तत्र भाग खड़े हुए। देवताओंका स्वर्गपर पुन: अधिकार हो गया।

इस प्रकार संन्यासीके वेषमें भगवान् बुद्धने त्रैलोक्यका मङ्गल किया।

~~~0~~~

(२४) भगवान् कल्कि

चराचरगुरोर्विष्णोरीश्वरस्याखिलात्मनः ।
धर्मत्राणाय साधूनां जन्म कर्मापनुत्तये॥

(श्रीमद्भा० १२।२।१७)

'सर्वव्यापक भगवान् विष्णु सर्वशक्तिमान् हैं। वे सर्वस्वरूप होनेपर भी चराचर जगत्‌के सच्चे शिक्षक—सद्गुरु हैं। वे साधु—सज्जन पुरुषोंके धर्मकी रक्षाके लिये, उनके कर्मका बन्धन काटकर उन्हें जन्म-मृत्युके चक्करसे छुड़ानेके लिये अवतार ग्रहण करते हैं।'

× × ×

अभी तो कलिका प्रथम चरण है। कलिके पाँच सहस्रसे कुछ ही अधिक वर्ष बीते हैं। इतने दिनोंमें मानवजातिका कितना मानसिक ह्रास एवं नैतिक पतन हो गया है, यह सर्वविदित है। यह स्थिति उत्तरोत्तर बढ़ती जायगी। ज्यों-ज्यों कलियुग आता जायगा, त्यों-त्यों धर्म, सत्य, पवित्रता, क्षमा, दया, आयु, बल और स्मरणशक्ति—सबका उत्तरोत्तर लोप होता जायगा। व्यावहारिक सत्य और ईमानदारी समाप्त हो जायँगे; छल-कपट-पटु व्यक्ति ही व्यवहारकुशल समझा जायगा। अर्थहीन व्यक्ति ही असाधु माने जायँगे। घोर दाम्भिक और पाखण्डी ही सत्पुरुष समझे जायँगे। धर्म, तीर्थ, माता-पिता और गुरुजन उपेक्षित और तिरस्कृत होंगे। मनुष्य-जीवनका सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ होगा—उदर-भरण। धर्मका सेवन यशके लिये किया जायगा। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंमें जो शक्तिसम्पन्न होगा, वही शासन करेगा। उस समयके नीच राजा अत्यन्त दुष्ट एवं निष्ठुर होंगे। लोभी तो वे इतने होंगे कि उनमें और लुटेरोंमें कोई अन्तर नहीं रह जायगा। उनसे भयभीत होकर प्रजा वनों और पर्वतोंमें छिपकर तरह-तरहके शाक, कंद-मूल, मांस, फल-फूल और बीज-गुठली आदिसे अपनी क्षुधा मिटायेगी। समयपर वृष्टि नहीं होगी, वृक्ष फल नहीं देंगे। भयानक सूखा, भयानक सर्दी और भयानक गर्मी पड़ेगी। तब भी शासक कर-पर-कर लगाते जायँगे। प्राणिमात्र धर्मकी मर्यादा त्यागकर स्वच्छन्द मार्गका अनुसरण करेंगे। मनुष्योंकी परमायु बीस वर्षकी हो जायगी।

कलिके प्रभावसे प्राणियोंके शरीर छोटे-छोटे, क्षीण और रोगग्रस्त होने लगेंगे। वेदमार्ग प्राय: मिट जायगा। राजा-महाराजा डाकू-लुटेरोंके समान हो जायँगे। वानप्रस्थी, संन्यासी आदि विरक्त-जीवन व्यतीत करनेवाले गृहस्थोंकी भाँति जीवन व्यतीत करने लगेंगे। मनुष्योंका स्वभाव गधों-जैसा दुस्सह, केवल गृहस्थीका भार ढोनेवाला हो
~~~

जायगा। लोग विषयी हो जायँगे। धर्म-कर्मका लेश भी नहीं रहेगा। लोग एक-दूसरेको लूटेंगे और मारेंगे। मनुष्य जपरहित, नास्तिक और चोर होंगे।

पुत्रः पितृवधं कृत्वा पिता पुत्रवधं तथा।
निरुद्वेगो बृहद्वादी न निन्दामुपलप्स्यते॥
म्लेच्छीभूतं जगत् सर्वं भविष्यति न संशयः।
हस्तो हस्तं परिमुषेद् युगान्ते समुपस्थिते॥

(महा०, वन० १९०। २८, ३८)

'पुत्र पिताका और पिता पुत्रका वध करके भी उद्विग्न नहीं होंगे। अपनी प्रशंसाके लिये लोग बड़ी-बड़ी बातें बनायेंगे, किंतु समाजमें उनकी निन्दा नहीं होगी। उस समय सारा जगत् म्लेच्छ हो जायगा—इसमें संशय नहीं। एक हाथ दूसरे हाथको लूटेगा—सगा भाई भी भाईके धनको हड़प लेगा।'

अधर्म बढ़ेगा, धर्म विदा हो जायगा। स्त्रियाँ अपने पतियोंकी सेवा छोड़ देंगी। वे कठोर स्वभाववाली और सदा कटुवादिनी होंगी। वे पतिकी आज्ञामें नहीं रहेंगी। पतिको माँगनेपर भी कहीं अन्न-जल या ठहरनेके लिये स्थान नहीं मिलेगा। सर्वत्र पाप-पीड़ा, दुःख-दारिद्र्य, क्लेश-अनीति, अनाचार और हाहाकार व्याप्त हो जायँगे।

उस समय सम्भलग्राममें विष्णुयशा नामक एक अत्यन्त पवित्र, सदाचारी एवं श्रेष्ठ ब्राह्मण होंगे। वे सरल एवं उदार होंगे। वे श्रीभगवान्‌के अत्यन्त अनुरागी भक्त होंगे। उन्हीं अत्यन्त भाग्यशाली ब्राह्मण विष्णुयशाके यहाँ समस्त सद्‌गुणोंके एकमात्र आश्रय, निखिल सृष्टिके सर्जक, पालक एवं संहारक परब्रह्म परमेश्वर भगवान् कल्किके रूपमें अवतरित होंगे। उनके रोम-रोमसे अद्भुत तेजोमयी किरणें छिटकती रहेंगी। वे महान् बुद्धि एवं पराक्रमसे सम्पन्न, महात्मा, सदाचारी तथा सम्पूर्ण प्रजाके शुभैषी होंगे।

मनसा तस्य सर्वाणि वाहनान्यायुधानि च॥
उपस्थास्यन्ति योधाश्च शस्त्राणि कवचानि च।
स धर्मविजयी राजा चक्रवर्ती भविष्यति॥
स चेमं संकुलं लोकं प्रसादमुपनेष्यति।
उत्थितो ब्राह्मणो दीप्तः क्षयान्तकृदुदारधीः॥

(महा०, वन० १९०। ९४—९६)

(विष्णुयशाके बालकके) चिन्तन करते ही उसके पास इच्छानुसार वाहन, अस्त्र-शस्त्र, योद्धा और कवच उपस्थित हो जायँगे। वह धर्मविजयी चक्रवर्ती राजा होगा। वह उदारबुद्धि, तेजस्वी ब्राह्मण दुःखसे व्याप्त हुए इस जगत्‌को आनन्द प्रदान करेगा। कलियुगका अन्त करनेके लिये ही उसका प्रादुर्भाव होगा।

भगवान् शंकर स्वयं कल्किभगवान्‌को शस्त्रास्त्रकी शिक्षा देंगे और भगवान् परशुराम उनके वेदोपदेष्टा होंगे।

वे देवदत्त नामक शीघ्रगामी अश्वपर आरूढ़ होकर राजाके वेषमें छिपकर रहनेवाले, पृथ्वीमें सर्वत्र फैले हुए दस्युओं एवं नीच स्वभाववाले सम्पूर्ण म्लेच्छोंका संहार कर डालेंगे। वे परम पुण्यमय भगवान् कल्कि भूमण्डलके सम्पूर्ण पातकियों, दुराचारियों एवं दुष्टोंका विनाश कर अश्वमेध नामक महान् यज्ञ करेंगे और उस यज्ञमें सम्पूर्ण पृथ्वी ब्राह्मणोंको दानमें दे देंगे।

भगवान् कल्कि दस्युवधमें सदा तत्पर रहेंगे। वे जिन-जिन देशोंपर विजय प्राप्त करेंगे, उन-उन देशोंमें काले मृगचर्म, शक्ति, त्रिशूल तथा अन्य अस्त्र-शस्त्रोंकी स्थापना करेंगे। वहाँ उत्तमोत्तम ब्राह्मण उनका श्रद्धा-भक्तिपूर्ण स्तवन करेंगे और प्रभु कल्कि उन ब्राह्मणोंका यथोचित सत्कार करेंगे।

वीरवर कल्किभगवान्‌के करकमलोंसे पृथ्वीके सम्पूर्ण दस्युओंका विनाश और अधर्मका नाश हो जायगा। फिर स्वाभाविक ही धर्मका उत्थान प्रारम्भ होगा।

स्थापयित्वा च मर्यादाः स्वयम्भुविहिताः शुभाः।
वनं पुण्ययशःकर्मा रमणीयं प्रवेक्ष्यति॥
तच्छीलमनुवर्त्स्यन्ति मनुष्या लोकवासिनः।

(महा०, वन० १९१। २-३)

'उनका यश तथा कर्म—सभी परम पावन होंगे। वे ब्रह्माजीकी चलायी हुई मङ्गलमयी मर्यादाओंकी स्थापना करके (तपस्याके लिये) रमणीय वनमें प्रवेश करेंगे। फिर इस जगत्‌के निवासी मनुष्य उनके शील-स्वभावका अनुकरण करेंगे।'

मङ्गलमय भगवान् कल्किके अङ्गरागको स्पर्शकर बहनेवाली वायु ग्राम, नगर, जनपद एवं देशकी सारी प्रजाके मनमें पवित्रताके भाव भर देगी। उनमें सहज सात्त्विकता उदित हो जायगी। फिर उनकी संतति पूर्ववत् हृष्ट-पुष्ट, दीर्घायु एवं धर्मपरायण होने लगेगी।

इस प्रकार सर्वभूतात्मा सर्वेश्वर भगवान् कल्किके अवतरित होनेपर पृथ्वीपर पुनः सत्ययुग प्रतिष्ठित होगा।

मत्स्यावतार—एक दृष्टि

(श्रीसुजीतकुमारजी सिंह)

भारतीय धार्मिक इतिहासमें अवतारवादके एक विशिष्ट सिद्धान्तने भारतीयोंको एक विशिष्ट जीवनी-शक्ति तथा आशावादिता भी प्रदान की, जिसके कारण वे विभिन्न संकटों तथा विपत्तियोंको यह विश्वास रखते हुए झेल सकें कि वर्तमान विपत्तिकी घड़ी कुछ ही कालके लिये है और उपयुक्त समयपर कोई दैवी-सत्ता उत्पन्न होनेवाली है। यह विश्वास प्रचलित है कि देश-कालकी विषम परिस्थितियोंमें लोक-मङ्गलहेतु, साधु-सज्जनों और ऋषियों-मुनियोंके परित्राणहेतु तथा धर्मके समुत्थानके लिये भगवान् विष्णु विभिन्न रूपोंमें अवतरित होते रहते हैं।

विभिन्न रूपोंमें अवतार लेकर भगवान् विष्णु जागतिक संकटोंको दूर करते हैं। धर्मशास्त्रोंमें विष्णुके चौबीस अवतारोंका परिगणन हुआ है। ऐसे ही जैनधर्ममें चौबीस तीर्थङ्करों तथा बौद्धधर्ममें चौबीस बोधिसत्त्वोंकी अवधारणा प्रकट हुई। अवतारवादको कतिपय भौतिक विकासवादी विद्वानोंने सृष्टिके विकासक्रमकी दृष्टिसे भी देखा है।

विष्णुके चौबीस अवतारोंमें मत्स्यावतारका विशेष महत्त्व है। मत्स्यका सम्बन्ध एक प्राचीन जल-प्लावनकी कथासे है, जो भारतीय ही नहीं, लगभग सभी प्राचीन आर्य तथा सेमेटिक देशोंके साहित्य (बाइबिल आदि)-में प्राप्त होती है। सम्भवतः यही एक ऐसी कथा है, जो आर्य तथा सेमेटिक—दोनों देशोंकी कथा-परम्पराओंमें प्रायः समान है। कुछ विद्वान् इस कथाका सेमेटिक उद्गम माननेके पक्षमें हैं, उनका कहना है कि आर्योंने इस कथाको बादमें आर्येतर जातियोंसे ग्रहण किया, किंतु इस धारणाका सशक्त शब्दोंमें खण्डन हुआ है कि बैबीलोनिया तथा इजराइलमें मिलनेवाले विवरण भारतीय साहित्यमें प्राप्य प्राचीनतम विवरण (शतपथब्राह्मण १।८।१।१—१९)-से परवर्ती हैं और दोनों देशोंकी कथाओंकी विभिन्न प्रकृति यह सिद्ध करती है कि दोनों स्वतन्त्र रूपसे अपने-अपने देशकी तत्कालीन भौगोलिक स्थिति तथा परम्पराओंके आधारपर विकसित हुई हैं।

शतपथब्राह्मणमें मत्स्यावतारकी कथा इस प्रकार है—एक दिन विवस्वान्‌के पुत्र वैवस्वत मनुके पास उनके सेवक आचमन करनेके लिये जल लाये। जब मनुने आचमनके लिये अञ्जलिमें जल लिया तो एक छोटा-सा मत्स्य उनके हाथमें आ गया। उसने कहा—'मेरा पोषण करो, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा।' 'कैसे मेरी रक्षा करोगे?' ऐसा मनुके पूछनेपर मत्स्य बोला—'थोड़े ही दिनोंमें एक भयङ्कर जल-प्लावन होगा, जो प्रजावर्गको नष्ट कर देगा, उससे मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा।' मनुने पुनः उससे पूछा—'तुम्हारी रक्षा कैसे हो सकती है?' उसने कहा—'जब तक हम छोटे रहते हैं, तबतक हमारे अनेक विनाशक होते हैं—बड़ा मत्स्य ही छोटे मत्स्यको खा जाता है। अभी तुम मुझे एक घड़ेमें रख दो, जब उससे बढ़ जाऊँ तो एक गड्ढेमें रख देना और उसके बाद मुझे समुद्रमें छोड़ देना, तब मेरा कोई विनाश नहीं कर सकेगा।' मनुने ऐसा ही किया और अन्तमें समुद्रमें छोड़े जानेपर वह मत्स्य मनुको जल-प्लावनका समय बताकर तथा उनको उस दिन एक नाव लेकर तैयार रहनेका आदेश देकर जलमें विलीन हो गया। जल-प्लावन होनेपर मनु नावमें चढ़ गये। वह मत्स्य एक सींगवाले विशालकाय महामत्स्यके रूपमें प्रकट हुआ। मनुने नावकी रस्सी उसके सींगमें बाँध दी। नाव लेकर वह महामत्स्य उत्तरपर्वत (हिमालय)-की ओर गया। उसने वहाँ नावको एक वृक्षसे बाँधनेका आदेश दिया और कहा कि जलके उतरनेपर नीचे आ जाना। जल-प्लावनसे सम्पूर्ण प्रजा नष्ट हो गयी, केवल मनु बचे रहे।*

जल घटनेपर मनु नीचे आये और उन्होंने घृत, दधि

* 'मनवे ह वै प्रातः। अवनेग्यमुदकमाजहुः।····तस्यावनेनिजानस्य मत्स्यः पाणीऽआपेदे॥ स हास्मै वाचमुवाद। बिभृहि मा पारयिष्यामि त्वेति कस्मान्मा पारयिष्यसीत्यौघ इमाः सर्वाः प्रजा निर्वोढा ततस्त्वा पारयितास्मीति कथं ते भृतिरिति॥ स होवाच। यावद्वै क्षुल्लका भवामो बह्वी वै नस्तावन्नाष्ट्रा भवत्युत मत्स्य एव मत्स्यं गिलति कुम्भ्यां माग्रे बिभरासि स यदा तामतिवर्धाऽअथ कर्षूं खात्वा तस्यां मा बिभरासि स यदा तामतिवर्धाऽअथ मा समुद्रमभ्यवहरासि तर्हि वाऽअतिनाष्ट्रो भवितास्मीति। शश्वद्ध झष आस। स हि ज्येष्ठं वर्धतेऽथेतिथीं समां तदौघ आगन्ता

आदिसे जलमें ही हवन किया। एक वर्ष बाद जलसे इडा नामक एक कन्या उत्पन्न हुई। उसने मनुसे कहा—'तुम मुझसे यज्ञ करो, इससे तुम्हें धन, पशु तथा अन्य अभीष्ट वस्तुएँ प्राप्त होंगी।' मनुने ऐसा ही किया और उसके द्वारा यह सारी प्रजा उत्पन्न की।

मत्स्यावतार-कथाका यही अंश सबसे प्राचीन तथा मुख्य है। मूल कथामें किसी भी देवताविशेषकी कोई भूमिका नहीं है। शतपथब्राह्मणके इस आख्यानको हिन्दी साहित्यके कविवर प्रसादने अपने अद्वितीय महाकाव्य कामायनीद्वारा अमर कर दिया है।

शतपथब्राह्मणके बाद यह कथा विविध पुराणों तथा महाभारत (वनपर्व, अ० १८७)-में प्राप्त होती है। महाभारतमें स्पष्ट कहा गया है कि यह मत्स्य प्रजापति या ब्रह्माका रूप था। ठीक भी है, प्रलयकालीन जलसे मानव जातिके आदि पूर्वज मनुकी रक्षा करके सृष्टिके अंकुरोंको सुरक्षित रखनेका प्रयास प्रजापतिके अतिरिक्त और कौन कर सकता है? और जल-प्लावनका पूर्वज्ञान, अतुलित विस्तारसे विवर्धन तथा समुद्रमें नौवाहन आदि अतिमानुषिक कार्य भी सर्वोच्च दैवीशक्ति प्रजापतिके द्वारा ही सम्भव है।

चीरिणी नदीके तटपर स्नान करते हुए वैवस्वत मनुके हाथोंमें एक छोटा-सा मत्स्य आ जाता है और दीनतापूर्वक मनुसे अपनी रक्षा करनेकी प्रार्थना करता है—

भगवन् क्षुद्रमत्स्योऽस्मि बलवद्भ्यो भयं मम।
मत्स्येभ्यो हि ततो मां त्वं त्रातुमर्हसि सुव्रत॥

(महाभारत, वनपर्व १८७।७)

भगवन्! मैं एक छोटा-सा मत्स्य हूँ। मुझे (अपनी जातिके) बलवान् मत्स्योंसे बराबर भय बना रहता है। अत: उत्तम व्रतका पालन करनेवाले महर्षे! आप उससे मेरी रक्षा करें।

मत्स्य पुन: बोला—मैं भयके महान् समुद्रमें डूब रहा हूँ, आप विशेष प्रयत्न करके मुझे बचानेका कष्ट करें, आपके इस उपकारके बदले मैं प्रत्युपकार करूँगा। मत्स्यकी यह बात सुनकर वैवस्वत मनुको बड़ी दया आयी और उन्होंने चन्द्रमाकी किरणोंके समान श्वेत रंगवाले उस मत्स्यको उठा लिया। तदनन्तर पानीसे बाहर लाकर उसे
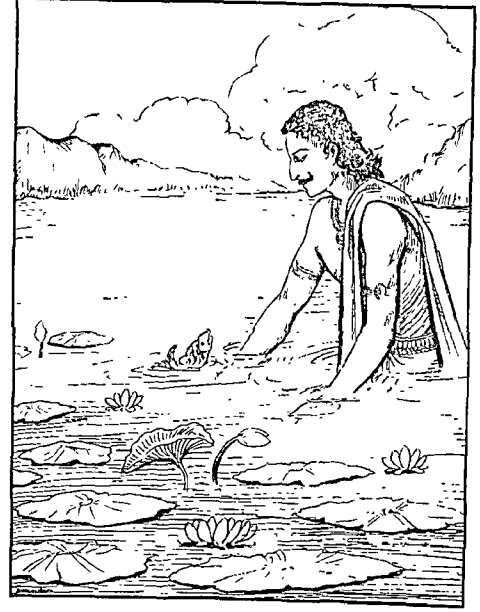
मटकेमें डाल दिया।

वह मत्स्य इतनी तेजीसे बढ़ने लगा कि क्रमश: घट, तालाब तथा नदी आदि भी उसके लिये छोटे पड़ गये। अन्तमें मनुने उसे समुद्रमें छोड़ दिया। वह महामत्स्य अपनी लीलासे उनके वहन करनेयोग्य हो गया। उस समय उस मुस्कराते हुए महामत्स्यने मनुसे कहा—

भगवन् हि कृता रक्षा त्वया सर्वा विशेषत:।
प्राप्तकालं तु यत् कार्यं त्वया तत् श्रूयतां मम॥
अचिराद् भगवन् भौममिदं स्थावरजङ्गमम्।
सर्वमेव महाभाग प्रलयं वै गमिष्यति॥

× × ×

त्रसानां स्थावराणां च यच्चेङ्गं यच्च नेङ्गति।
तस्य सर्वस्य सम्प्राप्त: काल: परमदारुण:॥

भगवन्! आपने विशेष मनोयोगके साथ सब प्रकारसे मेरी रक्षा की है, अब आपके लिये जिस कार्यका अवसर प्राप्त हुआ है, वह बताता हूँ, सुनिये—भगवन्! यह सारा-का-सारा चराचर पार्थिव जगत् शीघ्र ही नष्ट होनेवाला है।

तन्मा नावमुपकल्प्योपासासै स औघऽउत्थिते नावमापद्यासै ततस्त्वा पारयितास्मीति। तमेवं भृत्वा समुद्रमभ्यवजहार। स यतिथीं तत्समां परिदिदेश ततिथीꣳ समां नावमुपकल्प्योपासां चक्रे स औघऽउत्थिते नावमापेदे तꣳ स मत्स्य उपन्यापुप्लुवे तस्य शृङ्गे नाव: पाशं प्रतिमुमोच तेनैतमुत्तरं गिरिमतिदुद्राव॥ स होवाच। अपीपरं वै त्वा वृक्षे नावं प्रतिबध्नीष्व तं तु त्वा मा गिरौ सन्तमुदकमन्तश्छैत्सीद्यावदुदकꣳ समवायात्तावदन्ववसर्पासीति। ....औघो ह ता: सर्वा: प्रजा निरुवाहाथेह मनुरेवैक: परिशिशिषे॥ (श० ब्रा० १।८।१।१—६)

महाभाग! सम्पूर्ण जगतका प्रलय हो जायगा। सम्पूर्ण जङ्गमों तथा स्थावर पदार्थोंमें जो हिल-डुल सकते हैं और जो हिलने-डुलनेवाले नहीं हैं, उन सबके लिये अत्यन्त भयंकर समय आ पहुँचा है।

—यह सूचना देनेके पश्चात् उस मत्स्यने मनुसे एक दृढ़ नाव बनवानेके लिये कहा और बताया कि उसमें मजबूत रस्सी लगी हो, आप सम्पूर्ण ओषधियों एवं अन्नोंके बीजोंको लेकर सप्तर्षियोंके साथ उस नावमें बैठ जाना। मैं एक सींगवाले महामत्स्यके रूपमें आऊँगा और तुम्हें सुरक्षित स्थानपर ले जाऊँगा—

नौश्च कारयितव्या ते दृढा युक्तवटारका।
तत्र सप्तर्षिभिः सार्धमारुहेथा महामुने॥
× × ×
आगमिष्याम्यहं शृङ्गी विज्ञेयस्तेन तापस॥

कालान्तरमें ऐसा ही हुआ। उस दिन सागर अपनी मर्यादा भंग करके पृथ्वी-मण्डलको डुबाने लगा। मनुकी नाव प्रलय-जलमें तैरने लगी। मनु भगवान् मत्स्यका स्मरण करने लगे। स्मरण करते ही शृङ्गधारी भगवान् मत्स्य वहाँ आ पहुँचे। मनुने नावकी रस्सी उनके सींगमें

बाँध दी और भगवान् मत्स्य नाव खींचने लगे। वे नावको हिमालयतक ले गये और उन्होंने उन ऋषियोंसे पर्वतशिखरमें नावकी रस्सी बाँधनेके लिये कहा—

'अस्मिन् हिमवतः शृङ्गे नावं बध्नीत मा चिरम्।'

इसके पश्चात् भगवान् मत्स्यने अपना परिचय देते उन ऋषियोंसे कहा—मैं प्रजापति ब्रह्मा हूँ। मुझसे श्रेष्ठ और कोई नहीं है। मत्स्यरूपमें मैंने मनु तथा आपलोगों (सप्तर्षिगण)-की रक्षा की है; क्योंकि मनु ही (इस प्रलयके उपरान्त) देवता, असुर तथा मानवोंकी सृष्टि करेंगे। तपस्याके बलसे मनुकी प्रतिभा अत्यन्त विकसित हो जायगी और प्रजाकी सृष्टि करते समय इनकी बुद्धि मोहको प्राप्त नहीं होगी, सदा जागरूक रहेगी—

अहं प्रजापतिर्ब्रह्मा मत्परं नाधिगम्यते।
मत्स्यरूपेण यूयं च मयास्मान्मोक्षिता भयात्॥
मनुना च प्रजाः सर्वाः सदेवासुरमानुषाः।
स्रष्टव्याः सर्वलोकाश्च यच्चेङ्गं यच्च नेङ्गति॥
तपसा चापि तीव्रेण प्रतिभास्य भविष्यति।
मत्प्रसादात् प्रजासर्गे न च मोहं गमिष्यति॥

ऐसा कहकर भगवान् मत्स्य क्षणभरमें अदृश्य हो गये और मनुजी भी तपस्या करके सृष्टिकार्यमें प्रवृत्त हो गये।

मत्स्यपुराणमें यह कथा सम्पूर्ण पुराणकी आधार-भूमि है। मत्स्यरूपधारी भगवान् प्रलय-कालमें मनुको जिस पुराणका उपदेश देते हैं, वही 'मत्स्यपुराण' नामसे प्रसिद्ध है।

श्रीमद्भागवतमें यह कथा और अधिक क्रमबद्धरूपमें आयी है। कथाका प्रारम्भ श्रीमद्भागवतमहापुराणके मुख्य श्रोता राजा परीक्षित्‌के प्रश्नसे होता है कि भगवान् विष्णुने मत्स्य-जैसे तुच्छ एवं विगर्हित प्राणीका रूप क्यों धारण किया? श्रीशुकदेवजी उत्तर देते हैं कि राजन्! यों तो भगवान् सबके एकमात्र प्रभु हैं, फिर भी गो, ब्राह्मण, देवता, साधु, वेद, धर्म तथा अर्थकी रक्षाके लिये वे शरीर धारण किया करते हैं—

गोविप्रसुरसाधूनां छन्दसामपि चेश्वरः।
रक्षामिच्छंस्तनूर्धत्ते धर्मस्यार्थ तथैव हि॥
(श्रीमद्भा० ८।२४।५)

महाभारतमें प्रजापतिके मत्स्यरूपका कारण केवल मनु आदिकी रक्षा है, किंतु श्रीमद्भागवतमहापुराणमें हयग्रीव दैत्यसे वेदोंके उद्धारका महत्त्वपूर्ण कार्य भी इस अवतारके साथ जुड़ा है।

गो-ब्राह्मण-प्रतिपालक भगवान् परशुराम

(डॉ० श्रीदेवदत्तजी आचार्य, एम्०डी०)

अंसावसक्तपरशुं जटावल्कलधारिणम्॥
गौरमग्निशिखाकारं तेजसा भास्करोपमम्।

(हरिवंश २।३९।२१-२२)

महाभारतमें कहा गया है कि त्रेतायुग एवं द्वापरयुगके सन्धिकालमें वैशाख शुक्ल तृतीया (अक्षय तृतीया)-के शुभ दिन उत्तम नक्षत्र और उत्तम मुहूर्तमें भृगुकुलोत्पन्न महर्षि जमदग्नि एवं काशिराजसुता भगवती रेणुकाके माध्यमसे भगवान् विष्णुका भार्गवराम (परशुराम)-के रूपमें पृथ्वीपर अवतार हुआ।

श्रीमद्भगवद्गीता (४।७-८) कहती है कि 'जब-जब धर्मका ह्रास होता है और अधर्मकी अभिवृद्धि होती है, तब-तब साधु (सज्जनों)-की रक्षाहेतु और असाधु (दुराचारियों, पापाचारियों)-के विनाशहेतु, धर्मके संस्थापनार्थ भगवान्का पृथ्वीपर 'अवतार' होता है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

महर्षि जमदग्निका आश्रम रेवा—नर्मदानदीके तटपर था। वहाँपर भगवान् परशुरामका आविर्भाव हुआ था। उनके पितामह महातपस्वी ऋचीकका विवाह क्षत्रिय गाधिराजकी सुपुत्री (ऋषि विश्वामित्रकी बहिन) सत्यवतीके साथ हुआ था। उन दिनों विशेष कारणोंसे कुछ ब्राह्मण ऋषियोंके विवाह क्षत्रिय राजकन्याओंके साथ हुए हैं। ऐसे विवाहोंमें संतति ब्राह्मण ही मानी जाती है। महर्षि जमदग्नि एवं भगवती रेणुकाको पाँच पुत्र हुए—(१) रुमण्वान्, (२) सुषेण, (३) वसु, (४) विश्वावसु तथा (५) भार्गवराम (परशुराम)। परशुराम सबसे छोटे थे तथापि सबसे वीर एवं वेदज्ञ थे।* पाँच वर्षकी अवस्थामें उनका सविधि यज्ञोपवीत-संस्कार हुआ, तत्पश्चात् माता-पिताकी सम्मति लेकर वे शालग्रामक्षेत्रमें जाकर गुरु महर्षि कश्यपके समक्ष उपस्थित हुए और शास्त्र तथा शस्त्रका ज्ञान प्रदान करनेके लिये उनसे प्रार्थना की। गुरु महर्षि कश्यपने परशुरामको सविधि दीक्षा दी और शास्त्र एवं शस्त्रविद्या सिखाना प्रारम्भ किया। कुशाग्रबुद्धिसम्पन्न एवं अदम्य उत्साही होनेसे परशुराम अल्प समयमें ही चारों वेद और धनुर्विद्यामें निपुण हो गये। गुरुकी आज्ञा तथा आशीर्वाद लेकर परशुराम अपने माता-पिताके पास आये और उनका भी आशीर्वाद प्राप्त किया।

परशुराम अपने घरसे प्रस्थान कर गन्धमादनपर्वतपर गये और उत्कट तपस्याद्वारा उन्होंने भगवान् शंकरको प्रसन्न कर उनसे उच्चकोटिकी धनुर्विद्या प्राप्त की—**'शिवो भार्गवरामाय धनुर्विद्यामदात् पुरा।'** परशुरामने भगवान् शंकरसे ४१ अस्त्र भी प्राप्त किये, जो भयंकर तथा महाविनाशक थे, जैसे कि ब्रह्मास्त्र, रौद्रास्त्र, आग्नेयास्त्र, वायवास्त्र इत्यादि। इन महान् अस्त्रोंकी प्राप्तिसे परशुराम महाधनुर्धर एवं मन्त्रविशारद हुए। वाल्मीकिरामायण (बालकाण्ड ७४।१७—१९)-में वर्णन है कि परशुराम महापुरुष, भीमकाय, जटावल्कलधारी, अनाचारी-पापाचारी राजाओंके विनाशक, भार्गवकुलोत्पन्न महर्षि जमदग्निके वीरपुत्र थे, जिन्हें अयोध्यानरेश दशरथने देखा और पूज्यभावसे उनका वन्दन किया। परशुराम कैलासपर्वत-जैसे अपराजित थे, प्रलयाग्नि-जैसे दुःसह थे। उनकी देह तेजःपुञ्ज-सदृश होनेसे सामान्यजन उनके सामने दृष्टिक्षेप करनेमें भी असमर्थ होते थे। उनके एक स्कन्धपर बड़ा भारी अतितीक्ष्ण परशु (फरसा) रहता था और दूसरे स्कन्धपर विद्युत्-सा अमोघ धनुष रहता था। वे त्रिपुरघ्न—त्रिपुरके विध्वंसक महाबली शिवसदृश थे।

हरिवंश (२।३९।२१-२२)-में उनके विषयमें वर्णन है कि एक बार जब बलराम और श्रीकृष्णने दक्षिणापथकी यात्रा की तो सह्याचलकी पर्वतश्रेणियोंके समीप वे वेणा नदीके तटपर पहुँचे, वहाँ एक विशाल वरगदका वृक्ष था, उसी वृक्षके नीचे विराजमान भृगुनन्दन परशुरामजीको

* रामस्तेषां जघन्योऽभूदजघन्यैर्गुणैर्युतः। सर्वशस्त्रेषु कुशलः क्षत्रियान्तकरो वशी॥ (महा०आदि० ६६।४८)

उन्होंने देखा, जिनके एक कन्धेपर फरसा था और जो जटा और वल्कल धारण किये हुए थे। उनके शरीरका वर्ण गौर तथा अग्निशिखाके समान प्रकाशमान था। वे सूर्यके समान तेजस्वी दिखायी देते थे। क्षत्रियोंका अन्त करनेवाले परशुराम किसीसे क्षुब्ध होनेवाले नहीं थे। वे मूर्तिमान् समुद्रके समान गम्भीर प्रतीत होते थे। वे देवताओंके आदिगुरु बृहस्पतिके समान जान पड़ते थे और मन्दराचलके शिखरपर प्रकाशित होनेवाले सूर्यके समान चमक रहे थे।

प्रणामनिवेदन एवं कुशलक्षेमके अनन्तर मगधराज जरासंधके साथ किस प्रकार युद्ध किया जाय और विजय मिले, इस विषयमें श्रीकृष्णने महाबली परशुरामसे मार्गदर्शन प्राप्त किया था।

धर्मग्रन्थोंमें एक विशेष प्रसंग वर्णित है कि एक बार परशुरामकी माता रेणुका यज्ञकार्यार्थ समीपस्थ नदीसे जल लाने गयी थी। उस समय नदीमें गन्धर्व चित्ररथ स्वपत्नीके साथ जल-विहार कर रहा था। उस गन्धर्वका रूप एवं विलास देखकर रेणुकाका चित्त क्षुब्ध हुआ। वह कुछ अधिक समयपर्यन्त जलक्रीडा देखती रही। जब सचेत हुई तब जलभरा घट लेकर वह झटपट आश्रममें वापस आयी। अन्तर्ज्ञानी महर्षि जमदग्नि स्वपत्नी रेणुकाके चित्तकी विक्षिप्तता समझ गये। अतः इस घोर अपराधके लिये उसको मृत्युदण्ड देना चाहा। इस निर्णयको कार्यान्वित करनेके लिये महर्षि जमदग्निने अपने क्रमशः चार पुत्रोंको आज्ञा दी, किंतु मातृवध करनेको चारोंने अस्वीकार कर दिया। यह देखकर पिता जमदग्निने अपने पाँचवें सबसे छोटे, पितृभक्त वीरपुत्र परशुरामको मातृवध करनेके लिये आदेश किया। परशुरामने पिताकी आज्ञा शिरोधार्य करके अपनी माता रेणुकाका खड्गद्वारा शिरच्छेद कर दिया। आज्ञाधारक परशुरामपर पिता महर्षि जमदग्नि प्रसन्न हुए और वर माँगनेको कहा। परशुरामने पूज्य पिता जमदग्निसे कहा कि मेरी माता रेणुका पुनर्जीवित हों और उनको इस मातृवधका जघन्य-प्रसंग सदाके लिये विस्मृत हो। पितृभक्त परशुरामकी विनती सुनकर प्रसन्न होकर महर्षि जमदग्निने सञ्जीवनी-मन्त्रशक्तिके सामर्थ्यसे मृत रेणुकाको जीवित कर दिया।

उन दिनों रेवा (नर्मदा)-तटके उत्तरके प्रदेशमें हैहयवंशका प्रतापी राजा कार्तवीर्य राज्य करता था। वह भगवान् दत्तात्रेयका बड़ा भक्त था। गुरु दत्ताचार्यको प्रसन्न करके उसने उनसे हजार भुजाएँ तथा अपरिमित शक्ति प्राप्त की थी और भगवान्के अवतारसे ही अपनी मृत्यु होनेका वरदान माँगा था। हजार बाहुओंके प्राप्त होनेसे वह 'सहस्रबाहु' नामसे प्रसिद्ध हुआ। लोग उसको सहस्रार्जुन भी कहते थे। उसने रेवानदीके उद्गमस्थान (अमरकण्टक)-से लेकर हिमालयकी उपत्यकापर्यन्तके प्रदेशपर विजय प्राप्त की। इतने विशाल प्रदेशका शासक होनेपर वह अभिमानी और मदान्ध बन गया।

एक दिन राजा कार्तवीर्य महर्षि वसिष्ठके आश्रममें पहुँचा और उनके आश्रमको उसने जला दिया। यह देखकर महर्षि वसिष्ठने उसे शाप दिया कि भार्गवकुलोत्पन्न महाबली परशुराम तुम्हारी सहस्र बाहुओंका सामर्थ्य नष्ट कर देंगे और तुम्हारा वध करेंगे। महर्षि वसिष्ठका ऐसा शाप सुनकर राजा कार्तवीर्यने सोचा कि महाबली परशुरामके सामर्थ्यकी परीक्षा करनी चाहिये। तब एक बार मदोन्मत्त राजा कार्तवीर्य महर्षि जमदग्निके आश्रममें आया और आश्रमकी सवत्सा कामधेनुका उसने अपहरण कर लिया। उस समय महाबली परशुराम वनमें यज्ञकाष्ठ लेने गये थे। जब वे आश्रममें वापस आये तब उन्हें सब वृत्तान्त विदित हुआ। उन्होंने मदोन्मत्त राजा कार्तवीर्यका वध करनेकी भीषण प्रतिज्ञा कर ली। महर्षि जमदग्निको पुत्र परशुरामकी राजाके वधकी प्रतिज्ञा रुचिकर प्रतीत न हुई, किंतु परशुरामने निश्चय बदला नहीं।

तब महर्षि जमदग्निने परशुरामसे कहा कि 'तुम ब्रह्मदेवके पास जाकर उनकी आज्ञा ले आओ।' यह सुनकर परशुराम ब्रह्मलोकमें गये और ब्रह्मदेवको सब वृत्तान्त सुनाकर कार्तवीर्यवधकी आज्ञा माँगी। ब्रह्मदेवने उन्हें कैलासमें जाकर शिवजीकी आज्ञा लेनेको कहा। परशुराम वहाँसे प्रस्थान कर कैलासपर्वतपर पहुँचे और शिवजीको सारा वृत्तान्त सुनाया। शिवजीने प्रसन्न होकर परशुरामको पापाचारी राजा कार्तवीर्यका वध करनेकी आज्ञा दे डाली। तब परशुराम भगवान् शिवको प्रणामकर वहाँसे वापस लौटे। वे रेवातटस्थ हैहयपुरमें आये और

उन्होंने वहाँके राजा कार्तवीर्यका युद्धके लिये आह्वान किया। फिर तो दोनोंके बीच तुमुल द्वन्द्वयुद्ध हुआ। महाबली परशुरामने मदोन्मत्त सहस्रबाहु राजा कार्तवीर्यकी प्रचण्ड शक्तिको नष्ट करके उसको यमसदन पहुँचा दिया। यह देखकर राजाके कतिपय पुत्रोंने परशुरामपर आक्रमण कर दिया। महाबली परशुरामने उन लोगोंको भी मृत्युका ग्रास बना दिया। उन पुत्रोंमेंसे पाँच पुत्र भयसे आक्रान्त होकर हिमालयकी ओर पलायन कर गये।

युद्धमें विजय प्राप्त कर और अपनी अपहृत प्रिय सवत्सा कामधेनुको मुक्त करवाकर महाबली गोभक्त परशुराम अपने आश्रममें लौट आये। उन्हें देखकर पिता जमदग्निने उन्हें क्षत्रियवधके लिये दोषी ठहराया और पापके प्रायश्चित्तहेतु बारह वर्षपर्यन्त तीर्थाटन करनेकी आज्ञा की। पितृभक्त परशुरामने आज्ञाको स्वीकार किया और तीर्थाटन करते हुए महेन्द्रपर्वतपर जाकर उत्कट तपस्या प्रारम्भ की।

परशुराम सुदूरके महेन्द्रपर्वतपर तपस्यारत हैं, ऐसा समाचार मिलनेपर राजा कार्तवीर्यके पलायन हुए पाँच पुत्रोंने पितृवधका प्रतिशोध लेनेके लिये अपने राज्यमें वापस आकर जमदग्निके आश्रमपर आक्रमण किया और यज्ञशाला ध्वस्त कर ध्यानस्थ महर्षि जमदग्निका शिरच्छेद कर सिर (मुण्ड)-को लेकर वे दुष्ट राजपुत्र अपनी महिष्मती नगरीमें वापस चले आये।

महर्षि जमदग्निके शिरच्छेद होनेका अति जघन्य प्रसंग जब महेन्द्रपर्वतपर तपस्यारत परशुरामको विदित हुआ, तब वे क्षुब्ध हो उठे। वे तपस्या छोड़कर प्रलयानलकी तरह यथाशीघ्र अपने आश्रममें वापस आये। वहाँका क्रूर एवं अमानुषी दृश्य देखकर वे अतीव कुपित हुए। उन्होंने अपने मृत पिता महर्षि जमदग्निकी देहपर इक्कीस घाव देखे। उन्होंने उसी समय प्रतिज्ञा की कि ऐसी जघन्य ब्रह्महत्याके परिणामस्वरूप मैं आततायी हैहयवंशी क्षत्रियों और उनके दुष्ट समर्थकोंको मारकर इस पृथ्वीको इक्कीस बार निःक्षत्रिय करूँगा तथा उनके रक्तसे अपने महातपस्वी पिता महर्षि जमदग्निका तर्पण करूँगा।

तत्पश्चात् परशुरामने काँवड़के एक पलड़ेमें स्वपिता महर्षि जमदग्निका धड़ रखा तथा दूसरे पलड़ेमें विधवा माता रेणुकाको बैठाया, फिर काँवड़को अपने कन्धेपर उठाकर तीर्थाटनको चल पड़े और सह्याद्रिपर्वतपर माहुरगढ़ नामक तीर्थक्षेत्रमें पहुँचे। उस समय आकाशवाणी सुनायी पड़ी कि इस पवित्र क्षेत्रमें तुम अपने पिता महर्षि जमदग्निके धड़का अग्नि-संस्कार करो। तब परशुरामने वैसा ही किया। वहाँपर रेणुका स्वपतिकी देहके साथ अग्निमें प्रविष्ट होकर सती हुई, ऐसी कथा 'रेणुका-माहात्म्य' नामक मराठी भाषाके ग्रन्थमें वर्णित है। तत्पश्चात् महिष्मतीके हैहयवंशी दुष्ट राजपुत्रोंके साथ परशुरामने घोर युद्ध किया तथा स्वपितृशिर प्राप्तकर उसका सविधि अग्नि-संस्कार किया।

महाभारतमें आया है कि भगवान् परशुरामने इस पृथ्वीको इक्कीस बार क्षत्रियोंसे सूनी करके उनके रक्तसे समन्तपञ्चकक्षेत्रमें पाँच रुधिरकुण्ड भर दिये और रक्ताञ्जलिके द्वारा उन कुण्डोंमें पितरोंका तर्पण किया—

त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्षत्रियां प्रभुः।
समन्तपञ्चके पञ्च चकार रुधिरह्रदान्॥
स तेषु तर्पयामास भृगून् भृगुकुलोद्वहः।

(महा०वन० ११७।९-१०)

तर्पणके समय उन्होंने अपने पितामहका साक्षात् दर्शन किया। ऋचीक आदि पितृगण परशुरामजीके पास आकर बोले—महाभाग राम! तुम्हारी पितृभक्ति और पराक्रमसे हम बहुत प्रसन्न हैं, तुम्हें जिस वरकी अभिलाषा हो, माँग लो। इसपर परशुरामजीने कहा—पितृगणो! मैंने जो क्रोधवश क्षत्रियवंशका विध्वंस किया है, इस पापसे मैं मुक्त हो जाऊँ और मेरे बनाये ये सरोवर पृथ्वीमें प्रसिद्ध तीर्थ हो जायँ। ऐसा ही होगा—'**एवं भविष्यति**' (महा०आदि० २।१०) यह कहकर पितरोंने उन्हें वरदान दिया और इस घोर कर्मसे उन्हें रोका।

महाबली परशुरामने दुष्ट क्षत्रियोंकी जिस भूमिको हस्तगत किया था उस भूमिको अश्वमेधयज्ञके आचार्य महर्षि कश्यपको दानमें दे दिया। महाभारतमें आया है कि शक्तिशाली परशुरामजीने इस पृथ्वीको इक्कीस बार क्षत्रियोंसे हीन करके अश्वमेधयज्ञ किया और उसकी दक्षिणाके रूपमें यह सारी पृथ्वी महर्षि कश्यपको दे दी—

त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्षत्रियां प्रभुः ॥
दक्षिणामश्वमेधान्ते कश्यपायाददत् ततः ।

(महा०शान्ति० ४९ । ६३-६४)

'केरलोत्पत्ति' नामक ग्रन्थमें ऐसा वर्णन है कि परशुरामने अपना दिव्य अस्त्र मन्त्रोंसे पुष्टकर समुद्रमें फेंका और रत्नाकरके जलका शोषण करवाया। वह नूतन निर्मित भूमि कोंकण-प्रदेश कहलायी। वहाँपर उन्होंने ब्राह्मणोंको बसाया, अतः वे ब्राह्मण कोंकणस्थ ब्राह्मण कहलाये। ये भगवान् परशुरामको अपना आराध्य मानते हैं। वीर पेशवा लोग महाराष्ट्रके कोंकण-प्रदेशके ही ब्राह्मण थे।

मुम्बई-समीपका सोपारा नामक स्थान प्राचीन शूर्पारक कहा जाता है, जहाँपर महाबली परशुरामका निवासस्थान था। इसी स्थानपर शाक्यमुनि बुद्धदेवने तीन चातुर्मास किये थे, ऐसा बौद्धग्रन्थोंमें लिखा है।

महाभारतादि धर्मग्रन्थोंमें कथा वर्णित है कि एक बार भीष्मपितामहने अपने भाई विचित्रवीर्यके लिये काशिराजकी तीन कन्याओं—(१) अम्बा, (२) अम्बिका और (३) अम्बालिकाका स्वयंवरमें जाकर हरण किया था। उनमेंसे अम्बाने कहा कि उसे राजा शाल्वके साथ प्रेम है। ऐसा सुनकर भीष्मने उसे मुक्त कर दिया। अम्बा जब शाल्वके पास गयी तो उसने भीष्मद्वारा अपहृत हुई जानकर उसका त्याग कर दिया। इससे वह क्रुद्ध हुई और भीष्मको पाठ सिखानेके लिये महाबली परशुरामकी सहायता प्राप्त करनेहेतु जमदग्नि ऋषिके आश्रममें पहुँची। उसने सारा वृत्तान्त परशुरामजीको सुनाया और भीष्म उसे स्वीकार करें, ऐसा करनेकी विनती की। अम्बा काशिराजकी पुत्री थी और परशुरामकी माता रेणुका भी काशीसे सम्बन्धित थीं। इस घनिष्ठ सम्बन्धसे परशुरामजीने अम्बाको सहायता देनेका वचन दिया। फिर परशुरामने दूत भेजकर अपने शिष्य भीष्मको अपने पास बुलवाया और अम्बाको स्वीकार करनेको कहा। आजीवन ब्रह्मचर्यव्रतधारी भीष्मने गुरु परशुरामका प्रस्ताव अमान्य कर दिया। शिष्यकी अवज्ञा देखकर परशुराम क्रुद्ध हुए और युद्धके लिये आह्वान किया। गुरु-शिष्यका भीषण युद्ध तेईस दिनपर्यन्त चला, आखिर ब्रह्मचर्यव्रतकी प्रतिज्ञा पालन करनेवाले शिष्य भीष्मकी प्रशंसा करके गुरु परशुराम युद्धभूमिसे विदा हुए।

सप्त चिरञ्जीवी महापुरुषोंमें परशुरामकी गणना हुई है। भगवान् शिवसे इन्हें निष्पाप, अजेय तथा अजर-अमर होनेका वर प्राप्त था—

पापं च ते न भविता अजेयश्च भविष्यसि।
न ते प्रभविता मृत्युरजरश्च भविष्यसि॥

(महा०अनु० १८। १४)

भारतदेशकी दक्षिण दिशामें स्थित केरल प्रदेशमें परशुराम-शक वर्ष प्रचलित है। इस शकका वर्ष सौर होनेसे उसका वर्षारम्भ सिंह माससे होता है। इस वर्षका संवत्सर-चक्र सहस्रवर्षका होनेसे वर्तमान संवत्सरचक्रका क्रमाङ्क चार है। उस शकको कोल्लमशक कहते हैं।

केरल प्रदेशके धर्मग्रन्थमें लिखा है कि भगवान् विष्णुका एक अवतार भार्गवराम (परशुराम) नामसे है। अवतारके उस पुण्यकाल वैशाख शुक्ल तृतीया एवं पुनर्वसुनक्षत्रमें रात्रिके प्रथम प्रहरमें छः ग्रह उच्चके और राहु मिथुन राशिमें उच्चका था। इसलिये केरलमें अक्षय-तृतीयाकी रात्रिमें प्रथम प्रहरमें परशुराम-जयन्ती सोल्लास मनायी जाती है। भक्तजन दिनमें उपवास रखते हैं और रातमें भगवान् परशुरामकी सविधि पूजा करते हैं। वैदिक ब्राह्मणोंद्वारा विविध रंगवाले धान्यसे सर्वतोभद्रमण्डल बनवाकर वैदिक मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए उस मण्डलमें ब्रह्मादि देवताका आवाहन कर मण्डलके मध्यभागमें कलश-स्थापन कर उसके ढक्कनपर भगवान् परशुरामकी सुवर्ण या रजतकी मूर्ति स्थापित करवाते हैं। तत्पश्चात् वैदिक किंवा पौराणिक मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए षोडशोपचार पूजा-विधिसे मूर्तिकी पूजा करवाते हैं। यज्ञकुण्डमें अग्निस्थापन करवाकर प्रधान होम करनेके बाद गोघृतमिश्रित पायससे वेदमन्त्रोंका उच्चारण करते हुए १००८ आहुतियाँ यज्ञाग्निमें प्रदान करते हैं। यज्ञकी पूर्णाहुति हो जानेके बाद ब्रह्मभोजन, कुमार एवं कुमारिका-भोजन करवानेके बाद घरके लोग भोजन करते हैं। रात्रिमें भजन-कीर्तन होता है। इस प्रकारसे महाराष्ट्र प्रदेशमें भक्तजन परशुराम-जयन्ती मनाते हैं।

महाराष्ट्रमें सतारा जिलेके पासमें चिपलून नामक शहरके समीपके पहाड़पर भगवान् परशुरामका मन्दिर है, जिसका निर्माण पेशवा राजाओंने करवाया था। परशुराम

सप्त कोंकणके देव माने जाते हैं।

सह्याद्रि पर्वतके उत्तरभागमें साल्हर पहाड़ है, जहाँपर गढ़में भगवान् परशुरामका प्राचीन मन्दिर है। इस मन्दिरके समीप परशुरामके चरण-चिह्न शिलापर अंकित हैं।

दक्षिण भारतमें सह्याद्रि प्रदेशमें तिरुविताङ्कुर नामक जिलेमें महेन्द्रपर्वत है, जहाँपर परशुरामका तपस्यास्थल है। त्रिपुरारहस्य नामक ग्रन्थमें वर्णन है कि परशुरामने भगवान् दत्तात्रेयसे षोडशीमन्त्रकी दीक्षा ग्रहण कर साधनाहेतु महेन्द्रपर्वतपर जाकर भगवती त्रिपुरसुन्दरीदेवीकी सविधि आराधना की और उनसे चिरञ्जीवी पद प्राप्त किया था। भगवतीकी कृपासे वे सिद्ध पुरुष बन गये थे।

गुजरातमें नर्मदातटस्थ भृगुक्षेत्र (भडोच)-में तथा पंजाबके कांगड़ा जिलेमें, आसाममें डिब्रूगढ़के समीप, महाराष्ट्रके माहुरगढ़में परशुरामके निवासस्थान—मन्दिर हैं।

महाबली भगवान् परशुरामने अपने सामर्थ्यके विषयमें दुष्ट राजा कार्तवीर्यसे गर्जना करते हुए कहा था—

अग्रतश्चतुरो वेदः पृष्ठतः सशरं धनुः।
इदं ब्राह्मं इदं क्षात्रं शापादपि शरादपि॥

मेरे अग्रभागमें चारों वेदोंका दिव्य महातेज है और मेरे पृष्ठभागमें मन्त्रयुक्त महाशक्तिशाली शिवधनुष है, मैं वेदमन्त्रोंके शापसे भी और अमोघ बाणसे भी पृथ्वीको ध्वंस कर सकता हूँ।

ऐसे महाबली, भगवान्के अवतार एवं गो-ब्राह्मणरक्षक परशुरामको कोटिशः वन्दन है।

~~~ ○ ~~~

अवधूतश्रेष्ठ भगवान् श्रीदत्तात्रेय

(स्वामी श्रीदत्तपादाचार्य भिषगाचार्य)

अवतार शब्द '**अव**' उपसर्गपूर्वक '**तृ**' धातुसे बना है। अपने मूलस्थानसे नीचे (पृथ्वीपर) आना—अवतार शब्दका अर्थ है। इस शब्दका दूसरा अर्थ है— साधुजनोंको भवसागरसे तारनेके लिये (पार करनेहेतु) अवतीर्ण होना। वायुपुराण (९८)-में अवतारके दो भाग कहे गये हैं—(१) दिव्यसम्भूति जैसे—नारायण, नृसिंह आदि (२) मानवसम्भूति जैसे—दत्तात्रेय, परशुराम, दाशरथी राम, कृष्ण आदि। धर्मग्रन्थोंमें अवतारके कई प्रकार वर्णित हैं, जैसे—पूर्णावतार, विभवावतार, कलावतार, अंशावतार, आवेशावतार, अर्चावतार, हार्दावतार आदि।

श्रीमद्भागवत (२।७), मत्स्यपुराण (४७।२४२) इत्यादि धर्मग्रन्थोंमें विष्णुके अवतारोंमें 'दत्तात्रेय' को त्रेतायुगका अवतार कहा गया है।[1] ब्रह्मपुराणमें दत्तात्रेयको भार्गवरामसे पूर्वका अवतार कहा गया है। तन्त्रग्रन्थोंमें दत्तात्रेयको महेश्वरावतार कहा गया है। ब्रह्माण्डपुराण (२।३।८।८४)-में दत्तात्रेय-माहात्म्य वर्णित है।[2] दत्तात्रेय साक्षात् भगवान् हैं—'**दत्तस्तु भगवान् स्वयम्।**' वे पूर्णकलायुक्त परमेश्वर हैं। दत्तात्रेयको भगवान् कहा गया है; क्योंकि वे षडैश्वर्ययुक्त पूर्ण पुरुष हैं। ये ऐश्वर्य हैं—(१) पूर्ण ज्ञान, (२) पूर्ण वैराग्य, (३) पूर्ण यश, (४) पूर्ण श्री, (५) पूर्ण ऐश्वर्य और (६) पूर्ण वीर्य (धर्म)।

ब्रह्मपुराणमें भगवान् दत्तात्रेयके अवतारका प्रयोजन इस प्रकारसे वर्णित है—'सर्वभूतोंके अन्तरात्मा, विश्वव्यापी भगवान् विष्णु विश्वकल्याणहेतु पुनः अवतीर्ण हुए और दत्तात्रेय नामसे विख्यात हुए।' वहाँपर आगे कहा है कि जब वेद नष्टप्राय हो गये थे, सत्ययुग होनेपर भी कलियुगकी कला मानो आ गयी थी, चातुर्वर्ण्य संकीर्ण हो गये थे, अपने-अपने धर्म (कर्तव्यकर्म)-में शिथिलता आ गयी थी, अधर्मकी अभिवृद्धि एवं धर्मका ह्रास होने लगा था, ब्राह्मणोंने नित्य-नैमित्तिक कर्म, अध्ययन-अध्यापन, यज्ञ-यागादि छोड़ दिये थे, वैसे विषम समयमें वेदका पुनरुद्धार करनेहेतु एवं धर्मके पुनःस्थापन करनेहेतु भगवान्

---

१. दत्तात्रेयजीके नामसे एक उपपुराण 'दत्तपुराण' भी उपलब्ध है। इसमें भगवान् दत्तात्रेयके माहात्म्य-परिचयके साथ उनकी आराधना-विधि भी विस्तारसे वर्णित है। इस पुराणमें वैष्णवधर्म, योगसिद्धियाँ एवं उनके साधन, सप्तद्वीपोंका परिचय, भुवनकोश, सूर्य-चन्द्रवंशों एवं मन्वन्तरोंके वर्णन आदिकी कथाएँ हैं। वर्णाश्रमधर्म, गृहस्थोंके कर्तव्य, श्राद्धपद्धति, कर्मविपाक, दशावतारोंकी कथाएँ, प्रह्लादचरित्र, कार्तवीर्यचरित्र, परशुरामचरित्र तथा देवी मदालसा आदिके अनेक श्रेष्ठ उपाख्यान वर्णित हैं। ऋग्वेदकी भाँति यह पुराण भी अष्टक तथा काण्डोंमें विभक्त है। इस पुराणकी श्लोक-संख्या लगभग चार हजार है और इसमें वर्णित योगचर्या अत्यन्त महत्त्वकी है।

२. अत्रेः पुत्रं महात्मानं शान्तात्मानमकल्मषम्। दत्तात्रेयं तनुं विष्णोः पुराणज्ञाः प्रचक्षते॥
~~~

विष्णुने दत्तात्रेयरूपमें अवतार लिया। ब्रह्माके मानसपुत्र महर्षि अत्रि एवं प्रजापति कर्दमसुता महासती अनसूयाके माध्यमसे दत्तात्रेय पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए। उन्होंने श्रुतियोंका उद्धार किया, वैदिकधर्मकी स्थापना की, लोगोंको अपने-अपने कर्तव्यकर्मका उपदेश दिया, सामाजिक वैमनस्यका निवारण किया तथा भक्तोंको त्रितापसे मुक्तिका—सच्चे सुख-शान्तिका मार्ग दिखलाकर आवागमनसे मुक्त करवाया।

विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें ऐसा उल्लेख है कि विष्णु, महेश्वर और ब्रह्मा (त्रिदेव) महर्षि अत्रि एवं अनसूयाके पुत्ररूपमें दत्तात्रेय, दुर्वासा तथा चन्द्र (प्रजापति) नामसे अवतीर्ण हुए।

मार्कण्डेयपुराण (अध्याय १७)-में कहा गया है कि अत्रि-अनसूयाके पुत्रोंमें प्रथम पुत्र 'सोम' ब्रह्माजीके अवतार रजोगुणप्रधान थे, द्वितीय पुत्र 'दत्तात्रेय' विष्णुके अवतार सत्त्वगुणप्रधान थे और तृतीय पुत्र 'दुर्वासा' महेश्वरके अवतार तमोगुणप्रधान थे।

मत्स्यपुराणमें वर्णित भगवान्‌की बारह विभूतियोंमें दत्तात्रेयका समावेश है। उनके जन्मके विषयमें विस्तृत एवं संक्षिप्त वर्णन शिवपुराण, स्कन्दपुराण, भविष्यपुराण, मार्कण्डेयपुराण, श्रीमद्भागवत, वायुपुराण तथा विष्णुधर्मोत्तरपुराण आदिमें है।

भगवान् दत्तात्रेयके अवतार-स्थानके विषयमें स्कन्दपुराण (माहेश्वर खण्ड, अध्याय २२, श्लोक १७-१८) में ऐसा वर्णन आया है कि 'महर्षि अत्रि एवं महासती अनसूया' गुजरात-प्रदेशके स्तम्भतीर्थ (खंभात)-के समीपके महीसागर-संगम स्थानपर आश्रम बनवाकर दीर्घ कालतक तपस्या करते थे। उसी पवित्र स्थानमें भगवान् दत्तात्रेयका आविर्भाव हुआ। महर्षि अत्रिने वहाँपर अत्रीश्वर नामक शिवलिङ्गकी सविधि स्थापना की थी। स्कन्दपुराणमें ऐसा भी कहा गया है कि 'भृगुकच्छ (भडोच)-के समीपके रेवा-सागर सङ्गमके सन्निकटमें सुवर्णशिला-स्थानमें दत्तात्रेयका अवतार हुआ था।' गुजरातके नर्मदातटस्थ अनसूया-तीर्थको भी दत्तात्रेय-अवतार-स्थान माना जाता है। नारदपुराणके अनुसार महाराष्ट्र प्रदेशमें वर्धाके समीपस्थ माहुरगढ़ दत्तात्रेयजीका जन्मस्थान है। 'शुचिन्द्रम्-माहात्म्य' नामक धर्मग्रन्थमें केरल प्रदेशके त्रिवेन्द्रम्‌के समीपस्थ शुचिन्द्रम् तीर्थमें दत्तात्रेयका अवतार होनेका वृत्तान्त है। वहाँपर भगवान् दत्तात्रेयकी मूर्ति भव्य मन्दिरमें स्थापित है। मलयालम भाषामें त्रिमूर्ति दत्तात्रेयको 'थान्नूमल्लायम्' कहते हैं। उनके चमत्कारकी अनेक कथाएँ ग्रन्थोंमें वर्णित हैं।

रेवातटस्थ अनसूयातीर्थमें त्रिदेव (ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर)-ने भगवती अनसूयाके सतीत्वकी परीक्षा ली थी, फलतः अनसूयाने अपने पातिव्रत्यकी महाशक्तिसे त्रिदेवोंको शिशु बना दिया था।

विविध धर्मग्रन्थोंका अध्ययन करनेपर ऐसा प्रतीत होता है कि 'भगवान् दत्तात्रेयका अवतार सत्ययुगके प्रारम्भमें स्वायम्भुव मन्वन्तर' के मार्गशीर्ष पूर्णिमा सौम्यवासर, सायंकाल शुभ मुहूर्तमें हुआ था।

कुछ पुराणग्रन्थोंसे ऐसा भी प्रमाण मिलता है कि दत्तात्रेय अयोनिज संतान थे अर्थात् अनसूयागर्भसम्भूत नहीं थे। मराठी भाषाके प्रसिद्ध धर्मग्रन्थ 'श्रीगुरुचरित्र' में 'त्रिमूर्ति दत्तात्रेय' के विषयमें लिखा है कि सोम, दत्तात्रेय एवं दुर्वासाका यज्ञोपवीत-संस्कार होनेके बाद सोम और दुर्वासाने अपना स्वरूप तथा तेज दत्तात्रेयको प्रदानकर तपस्याहेतु अरण्यके लिये प्रस्थान किया। अतः दत्तात्रेय तीन स्वरूपवाले (त्रिमूर्ति) और तीन तेजोंसे युक्त (त्रिशक्तिसम्पन्न) हुए—

'त्रयमूर्ति एक्य होऊन, दत्तात्रेय राहिला आपण, दुर्वासा चन्द्र निरोप घेऊन, गेले स्वस्थाना अनुष्ठानासी॥'

श्रीगुरुचरित्रमें दत्तात्रेयजीके आविर्भाव (अवतार)-के समयका स्वरूप-वर्णन करते हुए कहा गया है कि वे त्रिगुणात्मक त्रिमूर्ति, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर—त्रिदेवका एकीभूतरूप थे। वे त्रिमुख, षड्भुज, मस्तकपर जटामुकुटसे युक्त भस्मभूषित अङ्गवाले, ग्रीवामें रुद्राक्ष-मालासे शोभित दाहिने हाथमें अक्षमाला तथा अन्य हाथोंमें डमरु, शङ्ख, त्रिशूल, कमण्डलु और चक्र धारण किये हुए हैं। योगमार्गके प्रवर्तक दत्तात्रेय शाम्भवीमुद्रामें शोभित हैं।

दत्तात्रेयके विषयमें वहाँ आगे कहा गया है—

भक्तानुग्रहकृन्नित्यः पापतापार्तिभञ्जनः।
बालोन्मत्तपिशाचाभः स्मर्तृगामी दयानिधिः॥

अर्थात् श्रीदत्तात्रेयजी भक्तोंपर नित्य अनुग्रह (कृपा) करनेकी प्रवृत्तिवाले, भक्तजनोंके पाप एवं त्रितापका निवारण करनेवाले, अंदरसे बालकके समान सरल एवं शुद्ध और बाहरसे उन्मत्त तथा पिशाच (भूत)-से दिखायी पड़नेवाले हैं, सच्चे हृदयसे उनका स्मरण करनेपर वे तुरंत प्रकट हो जानेवाले और दयाके सागर हैं।

दत्तात्रेयके त्रिमूर्तिस्वरूपके विषयमें कहा गया है कि

'एका मूर्तिस्त्रयो भागा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥'

दत्तात्रेयके त्रिमूर्तिस्वरूपकी प्रार्थनामें कहा गया है—

जगदुत्पत्तिकर्त्रे च स्थितिसंहारहेतवे।
भवपाशविमुक्ताय दत्तात्रेय नमोऽस्तु ते॥

कवि दासोपन्तलिखित ग्रन्थ 'दत्तात्रेयसर्वस्व' में दत्तात्रेयके त्रिमूर्तिस्वरूपके विषयमें लिखा है कि '**शीर्षत्रयेणसहितं शीर्षवेदत्रयस्य**''' सारांश यह है कि त्रिमूर्तिके तीन मस्तक तीन वेदका प्रतिपादन करते हैं।

महाकवि कालिदास कुमारसम्भव (२।४)-में त्रिमूर्ति दत्तात्रेयकी प्रार्थना करते हैं—

नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं प्राक् सृष्टेः केवलात्मने।
गुणत्रयविभागाय पश्चाद्भेदमुपेयुषे॥

सृष्टिकी उत्पत्तिसे पहले केवल '**एकमेव अद्वितीय**' परब्रह्म था, बादमें त्रिगुणात्मक-सृष्टिका निर्माण करनेके लिये सत्त्व, रज, तम—इन तीन गुणोंका भेद हुआ, तत्पश्चात् गुणानुभेदरूप ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर हुए। ऐसे त्रिमूर्तिस्वरूप दत्तात्रेय! आपको मेरा नमस्कार है।

कवि बाण, कवि शूद्रक, कवि मल्लिनाथ आदिने अपने-अपने ग्रन्थोंमें त्रिमूर्तिस्वरूप दत्तात्रेयके प्रति आदरभाव अभिव्यक्त किया है। मलयालम भाषाके ग्रन्थ 'शुचिन्द्रम्-माहात्म्य' में दत्तात्रेयके त्रिमूर्तिस्वरूपको प्रणव (ॐ)-का आद्यस्वरूप कहा है और अश्वत्थवृक्षमेंसे त्रिमुख दत्तात्रेयका स्वयंभू महाज्योतिर्लिङ्गरूपमें प्रकट होनेका वर्णन है। 'दत्तात्रेय-अवतार' के विषयमें ऐसा वृत्तान्त है कि जब त्रिदेव (ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर) महर्षि अत्रिके उत्कट तपसे तथा सती अनसूयाकी उच्चकोटिकी भक्तिसे अति प्रसन्न हुए तब उन्होंने '**वरं ब्रूहि**' (वर माँगो) ऐसा कहा। तब अत्रिने त्रिमूर्ति-स्वरूपके दर्शनकी इच्छा अभिव्यक्त की। अनसूयाने तो तीनों देवोंको अपने पुत्ररूपमें प्रकट होनेकी महेच्छा जतायी। त्रिदेवोंने अत्रि एवं अनसूयाकी इच्छा पूर्ण करनेको सहर्ष स्वीकार किया और वैसा ही किया। अत्रिको त्रिदेवके दर्शनसे उत्तम ज्ञानलाभ हुआ कि '**एको देवस्त्रिधा स्मृतः**' (तीन देव भिन्न-भिन्न होनेपर भी वस्तुतः वे एक ही हैं)। अनसूयाने त्रिदेवको अपने पुत्र (१) सोम, (२) दत्तात्रेय, (३) दुर्वासाके रूपमें प्राप्तकर मातृवात्सल्य प्राप्त किया, देवमाता एवं महासती बननेका दिव्य आनन्द-लाभ किया। इस कथाका तात्पर्य यह हुआ कि त्रिदेवके दिव्य दर्शनसे अत्रि महाज्ञानी हुए और देवी अनसूया पराभक्तिसम्पन्ना हुईं। वस्तुतः परमज्ञान एवं पराभक्ति अभिन्न ही है।

शिवपुराण (शतरुद्रसंहिता अध्याय १९), श्रीमद्भागवत (४।१)-में ऐसी कथा वर्णित है कि महर्षि अत्रि स्वपत्नी अनसूयाके साथ पिता ब्रह्माकी आज्ञा लेकर त्र्यक्षकुलपर्वत (चित्रकूट)-में सुपुत्रकी कामनासे उत्कट तपस्या करनेहेतु चल पड़े, 'जो एक अविकारी महाप्रभु हैं, परमेश्वर हैं, वे हमें पुत्ररूपमें प्राप्त हों।'—ऐसा महर्षि अत्रिका संकल्प था। अत्रिके दीर्घकालीन उत्कट तपसे त्रिदेव प्रसन्न हुए और उनके सम्मुख प्रकट हुए। अत्रिने शंका व्यक्त की कि मैंने तो एक अविकारी, निराकार ईश्वरके लिये तपस्या की थी, किंतु आप तीन अलग-अलग देव (ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर) साकाररूपमें मेरे समक्ष क्यों उपस्थित हुए हैं? यह सुनकर तीनों देवोंने कहा कि 'हम जगत्की सृष्टि, स्थिति एवं लयके तीन देव एक ही निर्गुण ब्रह्मके स्वरूप हैं।'

स्कन्दपुराणकी एक कथामें ऐसा वर्णन है कि एक बार अत्रि एवं अनसूया अपने आश्रममें बैठे थे, तब महातपस्वी अत्रिके चक्षुओंमेंसे भी तपका दिव्य तेज निकला और उसी समय महासती अनसूयाके चक्षुओंमेंसे भक्तिका दिव्य तेज निकला। दोनों तेज मिलकर घनीभूत हुआ और तेजस्वी दत्तात्रेयका प्राकट्य हुआ। अतः दत्तात्रेय अयोनिज संतान हैं।

'दत्तात्रेय-सर्वस्व' नामक ग्रन्थमें दत्तात्रेय-त्रिमूर्तिका आध्यात्मिक रहस्य इस प्रकारसे बताया गया है—भगवान् दत्तात्रेय प्रणव (ॐ)-स्वरूप हैं, उनके तीन मस्तक प्रणवकी तीन मात्राएँ (अ, उ, म्) हैं, जो उनका व्यक्तस्वरूप है। प्रणवकी अर्धमात्रा एवं विन्दु उनका अव्यक्तस्वरूप है। प्रणवकी विस्ताररूपा वेदमाता गायत्री गायके रूपमें दत्तात्रेयके समीप खड़ी हैं। गायत्रीसाधनासे प्राप्त (१) धर्म, (२) अर्थ, (३) काम, (४) मोक्ष—ये चार श्वान (कुत्ते) दत्तात्रेयके चरणोंके समीप रहते है। दत्तात्रेयके छः हाथ षडैश्वर्यके प्रतीक हैं और दो पैर श्रेय एवं प्रेयके द्योतक हैं। ऐसा दत्तात्रेयमूर्तिका गूढ़ रहस्य है।

आधिदैविक दृष्टिसे दत्तात्रेय भगवान् विष्णुके अवतार हैं, गाय पृथ्वी है और चार श्वान गुण-कर्महीन चार वर्ण हैं।

अत्रिका अर्थ है त्रिगुणातीत चैतन्य और अनसूयाका अर्थ है पराप्रकृति। इन दोनोंका सृजन है भगवान् दत्तात्रेयका प्रादुर्भाव। अतः श्रीदत्तात्रेय आदिगुरु एवं विश्वगुरु हैं।

अवधूत-उपनिषद्में दत्तात्रेयको अति वर्णाश्रमी, योगी

किंवा पञ्चमाश्रमी कहा गया है। उनको अवधूतश्रेष्ठ एवं अवधूतकुलशिरोमणि कहा गया है। अवधूत शब्दके चार अक्षरोंका अर्थ इस प्रकार है—(१) अ—'**अक्षरत्वात्**' अर्थात् अक्षरपरब्रह्मको प्राप्त अथवा कायासिद्धिप्राप्त, (२) व—'**वरेण्यत्वात्**' अर्थात् सबके द्वारा वरणीय (पूजनीय), (३) धू—'**धूतसंसारबन्धनात्**' अर्थात् जिनके सभी सांसारिक बन्धन अपने-आप छूट गये हैं तथा (४) त—'**तत्त्वमस्यादिलक्ष्यत्वात्**' अर्थात् जिनका लक्ष्य निरन्तर ही '**तत् त्वम् असि**' महावाक्य है। इन चारों अक्षरों (अ, व, धू, त)-के गुणोंसे युक्त महात्माको अवधूत कहते हैं। भगवान् दत्तात्रेयको तन्त्र-ग्रन्थोंमें परमावधूत कहा गया है। वे अवधूतकुलशिरोमणि हैं। दत्तात्रेय-तन्त्रमें कहा है कि—

कदा योगी कदा भोगी कदा नग्नपिशाचवत्।
दत्तात्रेयो हरिः साक्षाद् भुक्तिमुक्तिप्रदायकः॥

सारांश यह है कि दत्तात्रेय हरि (विष्णु)-के अवतार होनेसे साक्षात् हरि हैं और भक्तोंको भुक्ति (सांसारिक सुख) एवं मुक्ति (पारमार्थिक सुख) प्रदान करनेवाले हैं। आद्यशङ्कराचार्यने जीवन्मुक्तानन्दलहरी ग्रन्थमें दत्तात्रेयको त्रिभुवनजयी परमावधूत कहा है।

दत्तात्रेय-सर्वस्व नामक ग्रन्थमें दत्तात्रेयको यतिश्रेष्ठ, योगिराज, जगद्गुरु इत्यादि कहा गया है।

त्रिपुरारहस्यमें महामुनि दत्तात्रेयजीको भगवान् विष्णुका अंशावतार और योगीश्वर माना गया है, साथ ही तन्त्रमार्गका श्रेष्ठ पथिक भी कहा गया है—

श्रीविष्णोरंशयोगीशो दत्तात्रेयो महामुनिः।
गूढचर्यां चरँल्लोके भक्तवत्सल एधते॥

(त्रिपुरारहस्य मा०ख० ३)

विष्णुके रूपमें अवतरित होकर भगवान् दत्तने जगत्का बड़ा ही उपकार किया है। इनकी प्रकृति शान्त थी। इन्होंने चौबीस* गुरुओंसे दिव्य भावपूर्ण शिक्षा ग्रहण कर अन्तमें विरक्ति ली थी और कार्तिकेय, श्रीगणेश, प्रह्लाद, यदु, अलर्क, राजा पुरूरवा, आयु, परशुराम तथा हैहयाधिपति कार्तवीर्य आदिको योगविद्या एवं अध्यात्मविद्याका उपदेश दिया था। ये जीवन्मुक्त होकर यावज्जीवन सद्गुरुके रूपमें अपने भक्तोंको अनुगृहीत करते हुए विचरण करते रहे (भाग० २।७)। भगवान् शंकराचार्य, गोरक्षनाथ तथा सिद्धनागार्जुनादि इन्हींकी कृपापात्रताको प्राप्त हुए। ये परम भक्तवत्सल कहे गये हैं। भक्तके स्मरण करते ही ये तत्क्षण उनके पास पहुँच जाते हैं, इसीलिये इन्हें—'स्मृतिगामी' तथा 'स्मृतिमात्रानुगन्ता' कहा गया है।

पुराणोंमें इनका जो स्वरूप प्राप्त होता है, उससे यह निश्चित होता है कि ये अवधूत-विद्याके आद्य आचार्य थे। इनके अवधूत होनेका इससे प्रबल प्रमाण और क्या हो सकता है कि ये प्रातःकाल वाराणसीमें स्नान करते हैं, कोल्हापुरके देवी-मन्दिरमें जप-ध्यान करते हैं, माहुरीपुर (मातापुर)-में भिक्षा ग्रहण करते हैं तथा सह्याद्रिमें विश्राम करते हैं—

वाराणसीपुरस्नायी कोल्हापुरजपादरः।
माहुरीपुरभिक्षाशी सह्यशायी दिगम्बरः॥

(दत्तात्रेय-वज्रकवच ३)

पद्मपुराण-भूमिखण्डके वर्णनसे ज्ञात होता है कि दत्तात्रेयजीको भगवान् धर्मका साक्षात्कार हुआ था। इसीलिये ये 'धर्मविग्रही' भी कहलाते हैं। ये श्रीविद्याके परम आचार्य हैं। परशुरामजीको इन्होंने अधिकारी जानकर श्रीविद्याका उपदेश किया था। उनकी परा-विद्याका उपदेश त्रिपुरारहस्य-माहात्म्य-खण्डके नामसे प्रसिद्ध है। ये सिद्धोंके परम आचार्य कहे गये हैं। दासोपन्त, महानुभाव, गोसाईं तथा गुरुचरित्र इनके नामपर अनेक सम्प्रदाय हैं। इनका दत्त-सम्प्रदाय दक्षिण भारतमें विशेष प्रसिद्ध है। 'गिरनार' श्रीदत्तात्रेयजीका सिद्धपीठ है। त्रिपुरारहस्यके अनुसार इनका एक आश्रम गन्धमादनपर्वतपर भी है। इनकी गुरुचरण-पादुकाएँ वाराणसी तथा आबूपर्वत आदि कई स्थानोंमें हैं। इनका बीजमन्त्र 'द्राँ' है। चिरंजीवी होनेके कारण इनके दर्शन अब भी भक्तोंको होते हैं। ऐसे विष्णुके अवतार भगवान् दत्तात्रेयको कोटिशः वन्दन है।

~~~ ० ~~~

* इनके चौबीस गुरुओंके नाम भागवतमें इस प्रकार आये हैं—पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, कबूतर, अजगर, समुद्र, पतंग, भौंरा या मधुमक्खी, हाथी, शहद निकालनेवाला, हरिन, मछली, पिङ्गला वेश्या, कुरर पक्षी, बालक, कुँआरी कन्या, बाण बनानेवाला, सर्प, मकड़ी और भृङ्गी कीट (११।७।३३-३४)।
~~~

श्रीकृष्णावतार-मीमांसा

(डॉ० श्रीबीरेन्द्रकुमारजी चौधरी, एम्०ए० (संस्कृत), पी-एच्०डी०)

भक्तवत्सल भगवान् विष्णुके लीलावतारोंमें श्रीकृष्णावतारकी बड़ी महिमा है। भगवान् भक्तोंको अभय करनेवाले हैं। वे सर्वत्र सब रूपमें हैं, उन्हें कहीं आना-जाना नहीं पड़ता है, इसलिये वे वसुदेवजीके मनमें अपनी समस्त कलाओंके साथ प्रकट हो गये। उनमें विद्यमान रहनेपर भी भगवान्ने अपनेको अव्यक्तसे व्यक्त कर दिया। उनकी दिव्य ज्योतिको धारण करनेके कारण वसुदेवजी सूर्यके समान तेजस्वी हो गये। अब उन्हें कोई भी अपने बल, वाणी या प्रभावसे दबा नहीं सकता था—

भगवानपि विश्वात्मा भक्तानामभयङ्करः।
आविवेशांशभागेन मन आनकदुन्दुभेः॥
स बिभ्रत् पौरुषं धाम भ्राजमानो यथा रविः।
दुरासदोऽतिदुर्धर्षो भूतानां सम्बभूव ह॥

(श्रीमद्भा० १०।२।१६-१७)

भगवान् श्रीहरिके दिव्य ज्योतिर्मय अंशको जो जगत्का परम मङ्गल करनेवाला है, वसुदेवजीके द्वारा आधान किये जानेपर देवी देवकीने ग्रहण किया। जैसे पूर्व दिशा चन्द्रदेवको धारण करती है, वैसे ही शुद्धसत्त्वसे सम्पन्न देवी देवकीने विशुद्ध मनसे सर्वात्मा एवं आत्मस्वरूप भगवान् श्रीविष्णुको धारण किया—

ततो जगन्मङ्गलमच्युतांशं
समाहितं शूरसुतेन देवी।
दधार सर्वात्मकमात्मभूतं
काष्ठा यथाऽऽनन्दकरं मनस्तः॥

(श्रीमद्भा० १०।२।१८)

भगवान् सारे जगत्के निवासस्थान हैं, किंतु माता देवकी उनका भी निवासस्थान बन गयीं। भाद्रमासके कृष्णपक्षकी अष्टमीतिथिकी अर्धरात्रिमें जब रोहिणी नक्षत्र था और चारों ओर अन्धकारका साम्राज्य था, उसी समय सबके हृदयमें विराजमान रहनेवाले तथा जन्म-मृत्युके चक्रसे छुड़ानेवाले जनार्दन भगवान् विष्णु पूर्वदिशामें सोलहों कलाओंसे पूर्ण चन्द्रमाकी भाँति देवी देवकीके गर्भसे प्रकट हुए—

निशीथे तम उद्भूते जायमाने जनार्दने।
देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्वगुहाशयः।
आविरासीद् यथा प्राच्यां दिशीन्दुरिव पुष्कलः॥

(श्रीमद्भा० १०।३।८)

उस समय बालक श्रीकृष्णके नेत्र कमलके समान कोमल और विशाल थे। वे चार सुन्दर हाथोंमें शङ्ख, गदा, चक्र और कमल लिये हुए थे। उनके वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न था। गलेमें कौस्तुभमणि झिलमिला रही थी। वर्षाकालीन मेघके समान परम सुन्दर श्यामल शरीरपर मनोहर पीताम्बर फहरा रहा था। बहुमूल्य वैदूर्यमणिके किरीट और कुण्डलकी कान्तिसे उनके सुन्दर-सुन्दर घुँघराले बाल सूर्यकी किरणोंके समान चमक रहे थे। कमरमें चमचमाती करधनीकी लड़ियाँ लटक रही थीं। बाँहोंमें बाजूबंद और कलाइयोंमें कङ्कण शोभायमान हो रहे थे। इन सब आभूषणोंसे सुशोभित उनके अङ्ग-अङ्गसे अनोखी छटा छिटक रही थी—

तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं
चतुर्भुजं शङ्खगदार्युदायुधम्।
श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं
पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम्॥
महार्हवैदूर्यकिरीटकुण्डल-
त्विषा परिष्वक्तसहस्रकुन्तलम्।
उद्दामकाञ्च्यङ्गदकङ्कणादिभि-
र्विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत॥

(श्रीमद्भा० १०।३।९-१०)

विश्वात्मा भगवान् विष्णुने अनेक कारणोंसे श्रीकृष्णावतार लिया, जिनमें कुछका उल्लेख अवतार-रहस्योंके उद्घाटनके लिये समासतः अपेक्षित है। उदाहरणार्थ—

१-स्वायम्भुवमन्वन्तरमें जब माता देवकीका पहला जन्म हुआ था, उस समय उनका नाम पृश्नि था और वसुदेव सुतपा नामक प्रजापति थे। दोनोंके हृदय बड़े ही शुद्ध थे। दोनोंने संतान-प्राप्तिकी अभिलाषासे इन्द्रियोंका दमन करके उत्कृष्ट तपस्या की। दोनोंने वर्षा, वायु, धूप, उष्णता, शीत आदि कालके विभिन्न गुणोंको सहन किया और प्राणायामके द्वारा अपने मनके मल धो डाले। दोनों कभी सूखे पत्ते खाकर और कभी हवा पीकर ही रह जाते थे। दोनोंने भगवान् देवेश श्रीहरिमें अपना निर्मल चित्त लगाकर परम दुष्कर और घोर तप किया। ऐसा करते हुए दोनोंने देवताओंके बारह हजार

वर्ष व्यतीत कर दिये। उनकी परम तपस्या, श्रद्धा और प्रेममयी भक्तिसे प्रसन्न होकर विश्वरूप भगवान् श्रीविष्णु उनकी अभीष्ट अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये उनके सामने प्रकट हुए। जब भगवान्‌ने उन दोनोंसे कहा कि 'तुम्हारी जो इच्छा हो माँग लो' तब उन दोनोंने महामायापतिकी मायासे मोहित होकर भगवान् श्रीहरि-जैसा पुत्र माँगा। कृपानिधान भगवान् श्रीविष्णु उन्हें मनोवाञ्छित वर देकर अन्तर्धान हो गये। इधर, भगवान्‌ने संसारमें शील, स्वभाव, उदारता तथा अन्य गुणोंमें अपने-जैसा दूसरे किसीको नहीं देखा। ऐसी स्थितिमें भगवान्‌ने विचार किया कि मैंने उनको वर तो यह दे दिया कि मेरे-सदृश पुत्र होगा, परंतु इसको मैं पूरा नहीं कर सकता; क्योंकि संसारमें वैसा कोई है ही नहीं। किसीको कोई वस्तु देनेकी प्रतिज्ञा करके पूरी न कर सके तो उसके समान तिगुनी वस्तु देनी चाहिये। मेरे सदृश पदार्थके समान मैं ही हूँ। ऐसा विचार कर भगवान्‌ने स्वयं उन दोनोंके पुत्रके रूपमें तीन बार अवतार लेनेका निर्णय लिया। इसलिये भगवान् जब प्रथम बार उन दोनोंके पुत्र हुए, उस समय वे पृश्निगर्भके नामसे जाने गये। फिर दूसरे जन्ममें माता पृश्नि 'अदिति' हुईं और सुतपा 'कश्यप' हुए। उस समय भी भगवान् श्रीहरि उनके पुत्रके रूपमें प्रकट हुए। उस समय भगवान्‌का नाम उपेन्द्र था। शरीर छोटा होनेके कारण लोग उन्हें 'वामन' भी कहते थे। फिर द्वापरमें उन दोनोंका तीसरा जन्म हुआ। इस जन्ममें वही अदिति 'देवकी' हुईं और कश्यप 'वसुदेवजी' हुए। अपनी वाणीको सत्य करनेके लिये उन दोनोंके पुत्रके रूपमें भगवान् लक्ष्मीपतिने द्वापरमें श्रीकृष्णावतार लिया।

२-भगवान् श्रीविष्णुके जय और विजय नामक दो द्वारपाल थे। वे दोनों वैकुण्ठधाममें अपने उत्तरदायित्वके निर्वहणमें लगे हुए थे। एक दिन ब्रह्माके मानस पुत्र सनकादि ऋषि तीनों लोकोंमें स्वच्छन्द विचरण करते हुए वैकुण्ठधाममें जा पहुँचे। वे सनकादि ऋषि पाँच-छः वर्षके बच्चे प्रतीत हो रहे थे। वे वस्त्र भी नहीं पहने हुए थे। उन्हें साधारण बालक समझकर दोनों द्वारपालोंने उन्हें भीतर जानेसे रोक दिया। इसपर वे क्रोधित-से हो गये और उन्होंने उन दोनों द्वारपालोंको यह शाप दिया कि 'मूर्खो! भगवान् विष्णुके चरण तो रजोगुण और तमोगुणसे रहित हैं। तुम दोनों इनके समीप निवास करनेयोग्य नहीं हो। इसलिये शीघ्र ही तुम दोनों यहाँसे पापमयी असुरयोनिमें जाओ।' उनके इस प्रकार शाप देते ही जब वे दोनों वैकुण्ठसे नीचे गिरने लगे तब उन कृपालु महात्माओंने कहा—'अच्छा, तीन जन्मोंमें इस शापको भोगकर तुम दोनों फिर इसी वैकुण्ठमें आ जाना। तदनन्तर वे दोनों दितिके गर्भसे उत्पन्न हुए। उनमें बड़ेका नाम हिरण्यकशिपु था और उससे छोटेका हिरण्याक्ष। उन दोनों भाइयोंने ब्राह्मण सनकादि ऋषिके शापसे असुरोंका तामसी शरीर पाया। देवराज इन्द्रके गर्वको छुड़ानेवाले वे दोनों सारे जगत्‌में प्रसिद्ध हुए—

बिप्र श्राप तें दूनउ भाई। तामस असुर देह तिन्ह पाई॥
कनककसिपु अरु हाटकलोचन। जगत बिदित सुरपति मद मोचन॥

(रा०च०मा० १।१२२।५-६)

भगवान् विष्णुने नरसिंहावतार लेकर हिरण्यकशिपुको और वराहावतार ग्रहण करके पृथ्वीका उद्धार करनेके समय हिरण्याक्षको मारा—

हतो हिरण्यकशिपुर्हरिणा सिंहरूपिणा।
हिरण्याक्षो धरोद्धारे बिभ्रता सौकरं वपुः॥

(श्रीमद्भा० ७।१।४०)

भगवान्‌के द्वारा मारे जानेपर भी वे हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष इसलिये मुक्त नहीं हुए कि ब्राह्मणके शापका प्रमाण तीन जन्मके लिये था—

मुकुत न भए हते भगवाना। तीनि जनम द्विज बचन प्रवाना॥

(रा०च०मा० १।१२३।१)

अतः वे ही दोनों असुर त्रेतामें विश्रवा मुनिके द्वारा केशिनी (कैकसी)-के गर्भसे पुनः राक्षसोंके रूपमें पैदा हुए, उनमें बड़ेका नाम रावण था और उससे छोटेका कुम्भकर्ण। वे दोनों भाई देवताओंको जीतनेवाले, बड़े बलवान् और महावीर योद्धा थे। उनके उत्पातोंसे सब लोकोंमें आग-सी लग गयी थी। भक्तप्रेमी भगवान् श्रीहरिने उन दोनों भाइयोंके कल्याणके लिये फिर श्रीरामावतार ग्रहण कर उनका वध किया—

'तत्रापि राघवो भूत्वा न्यहनच्छापमुक्तये।'

(श्रीमद्भा० ७।१।४४)

एक बार तिन्ह के हित लागी। धरेउ सरीर भगत अनुरागी॥

(रा०च०मा०१।१२३।२)

फिर वे ही रावण और कुम्भकर्ण द्वापरमें युधिष्ठिरकी मौसीके पुत्र बनकर शिशुपाल और दंतवक्त्रके रूपमें उत्पन्न हुए। भगवान् श्रीहरिने उन दोनोंके कल्याणके लिये श्रीकृष्णावतार ग्रहण किया। भगवान् श्रीकृष्णके चक्रका स्पर्श प्राप्त हो

जानेसे उनके सारे पाप नष्ट हो गये और वे सनकादि ऋषियोंके शापसे मुक्त हो गये। वैरभावके कारण निरंतर ही वे भगवान् श्रीकृष्णका चिन्तन किया करते थे। उसी तीव्र तन्मयताके फलस्वरूप वे भगवान्‌को प्राप्त हो गये और पुनः उनके पार्षद होकर उन्हींके समीप चले गये—

वैरानुबन्धतीव्रेण ध्यानेनाच्युतसात्मताम्।
नीतौ पुनर्हरेः पार्श्वं जग्मतुर्विष्णुपार्षदौ॥

(श्रीमद्भा० ७।१।४६)

३-द्वापरमें लाखों असुरोंके दलने अपने पापभारसे पृथ्वीको आक्रान्त कर रखा था। उनके अत्याचारसे माता पृथ्वी बहुत दुःखी और कातर हो गयी थीं। उनसे त्राण पानेके लिये वह ब्रह्माजीकी शरणमें गयीं। पृथ्वीने उस समय गौका रूप धारण कर रखा था। उसके नेत्रोंसे आँसू बह-बहकर मुँहपर आ रहे थे। उसका मन तो खिन्न था ही, शरीर भी बहुत कृश हो गया था। वह बड़े करुण स्वरमें रँभा रही थी। ब्रह्माजीके पास जाकर उसने उन्हें अपनी पूरी कष्ट-कहानी सुनायी—

गौर्भूत्वाश्रुमुखी खिन्ना क्रन्दन्ती करुणं विभोः।
उपस्थितान्तिके तस्मै व्यसनं स्वमवोचत॥

(श्रीमद्भा० १०।१।१८)

तदनन्तर ब्रह्माजी भगवान् शंकर और अन्यान्य प्रमुख देवताओं तथा गौरूपमें आयी हुई पृथ्वीको अपने साथ लेकर समस्याके निदानके लिये क्षीरसागरके तटपर गये। वहाँ ब्रह्मादि देवताओंने पुरुषसूक्तके द्वारा परमपुरुष सर्वान्तर्यामी प्रभुकी स्तुति की। पृथ्वी और देवताओंकी करुण पुकारपर जगन्निवास जगदाधार भगवान् श्रीविष्णुने पृथ्वी और साधुजनोंके कष्टको दूर करनेके लिये तथा विविध लीलाओंद्वारा धर्मकी संस्थापना करनेके लिये श्रीकृष्णावतार लिया।

४-राजा बलिकी कन्या थी रत्नमाला। जब भगवान् श्रीहरिने वामन-अवतार लिया, उस समय राजा बलिकी यज्ञशालामें भगवान् वामनके दिव्य रूपको देखकर रत्नमालाके हृदयमें उनके प्रति पुत्रस्नेहका भाव उदय हो आया। वह मन-ही-मन ऐसे बालकको स्तन पिलानेकी अभिलाषा करने लगी। भगवान् वामनने उसके इस मनोरथका मन-ही-मन अनुमोदन किया। वही रत्नमाला द्वापरमें पूतना हुई। उसकी लालसा पूर्ण करनेके लिये द्वापरमें विश्वात्मा भगवान् विष्णुने श्रीकृष्णावतार लिया।

५-कंस अत्याचारी और महापापी था। प्रलम्बासुर, बकासुर, चाणूर, तृणावर्त, अघासुर, मुष्टिक, अरिष्टासुर, पूतना, केशी और धेनुक कंसके साथी थे। ये सारे असुर किसी-न-किसी शापसे ग्रसित थे। भगवान् तो कृपासागर हैं। वे देवताओं और असुरोंके प्रति समान कृपाभाव रखते हैं। उन्होंने इन सारे दुष्ट असुरोंका उद्धार करनेके लिये श्रीकृष्णावतार लिया। भगवान् श्रीकृष्णने इन असुरोंको मारकर इनका ही कल्याण किया। कंस नित्य-निरंतर बड़ी घबड़ाहटके साथ श्रीकृष्णका ही चिन्तन करता रहता था। वह खाते-पीते, सोते-चलते, बोलते और साँस लेते—सब समय अपने सामने चक्रधर भगवान् श्रीकृष्णको ही देखता रहता था। इस नित्य चिन्तनके फलस्वरूप उसे सारूप्य मुक्ति मिल गयी, जिसकी प्राप्ति बड़े-बड़े तपस्वी योगियोंके लिये भी कठिन है—

स नित्यदोद्विग्नधिया तमीश्वरं
पिबन् वदन् वा विचरन् स्वपञ्छ्वसन्।
ददर्श चक्रायुधमग्रतो यत-
स्तदेव रूपं दुरवापमाप॥

(श्रीमद्भा० १०।४४।३९)

जैसे भृङ्गी कीड़ेको लाकर भीतपर अपने छिद्रमें बंद कर देता है, वह भय और उद्वेगसे भृङ्गीका चिन्तन करते-करते उसके जैसा ही हो जाता है, वैसे ही ये असुरादि भगवान् श्रीकृष्णसे वैर करके उनका चिन्तन करते-करते उनमें तन्मय हो गये और लीलावश उनसे युद्धके क्रममें उनके करकमलोंके पावनस्पर्शसे पापरहित होकर उन्हींको प्राप्त हो गये—

कीटः पेशस्कृता रुद्धः कुड्यायां तमनुस्मरन्।
संरम्भभययोगेन विन्दते तत्सरूपताम्॥
एवं कृष्णे भगवति मायामनुज ईश्वरे।
वैरेण पूतपाप्मानस्तमापुरनुचिन्तया॥

(श्रीमद्भा० ७।१।२७-२८)

गोपियाँ प्रेमसे, कंसादि राक्षस भयसे, शिशुपाल-दंतवक्त्र आदि राजा द्वेषसे, यदुवंशी परिवारके सम्बन्धसे, पाण्डव स्नेहसे और नारद आदि भक्त भक्तिसे अपने मनको भगवान् श्रीकृष्णमें लगाकर उन्हींको प्राप्त हो गये—

गोप्यः कामाद् भयात्कंसो द्वेषाच्चैद्यादयो नृपाः।
सम्बन्धाद् वृष्णयः स्नेहाद्यूयं भक्त्या वयं विभो॥

(श्रीमद्भा० ७।१।३०)

कृपासिन्धु भगवान् श्रीकृष्ण सच्चिदानन्दघन पूर्णब्रह्म

परमेश्वर हैं। वे ही सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, सर्वलोकमहेश्वर, सर्वातीत, सर्वमय, निर्गुण-सगुण, निराकार-साकार, सौन्दर्य-माधुर्य और ऐश्वर्यके समुद्र एवं परम प्रेमस्वरूप हैं।

भगवान् श्रीकृष्णका जन्म और मरण कभी नहीं होता है। वे अपनी योगमायासे नाना प्रकारके रूप धारण करके लोगोंके सम्मुख प्रकट होते हैं। भगवान्‌की यह योगमाया उनकी अत्यन्त प्रभावशालिनी ऐश्वर्यमयी शक्ति है। भगवान्‌का अवतार जीवोंके जन्मकी भाँति नहीं होता है। वे अपने भक्तोंपर अनुग्रह करके उन्हें अपनी शरण प्रदान करनेके लिये तथा अनेक दिव्य लीला-कार्य करनेके लिये अपनी योगमायासे जन्म-धारणकी केवल लीलामात्र करते हैं। जब भगवान् अवतार लेते हैं तब उनके अवतारतत्त्वको न समझनेवाले अज्ञानीलोग उनका जन्म हुआ मानते हैं और जब वे अन्तर्धान हो जाते हैं, उस समय उनका विनाश समझ लेते हैं। भगवान्‌का अवतारी शरीर प्राणियोंके शरीरकी भाँति प्राकृत उपादानोंसे बना हुआ नहीं होता है। उनका शरीर दिव्य, चिन्मय, प्रकाशमान, शुद्ध और अलौकिक होता है। मनुष्य भगवान्‌के जन्म-कर्मोंकी दिव्यताको जिस समय पूर्णतया समझ लेता है, उसी समयसे वह आसक्ति, अभिमान, अहंकार और समस्त कामनाओं तथा राग-द्वेषादि समस्त दुर्गुणोंका त्याग करके समभाव, अनन्यभाव और निष्कामभावसे भगवान्‌की भक्ति करने लगता है और मरनेके बाद उसका पुनर्जन्म नहीं होता, वह भगवान्‌के परमधामको चला जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

(गीता ४।९)

बुद्धावतार

(साहित्यवाचस्पति डॉ० श्रीरंजनसूरिदेवजी)

श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्धके तृतीय अध्यायमें भगवान्‌के अवतारोंका विशद वर्णन हुआ है, जिसमें बुद्धावतारका भी उल्लेख हुआ है। तदनुसार कलियुगका आरम्भ होनेपर कीकटोंकी भूमिपर (बिहारके मगधदेशमें) देवद्वेषियोंको विमोहित करनेके लिये मायादेवीके गर्भसे अजनसुत—बुद्धभगवान्‌के अवतारकी चर्चा है, जो भगवान् विष्णुके इक्कीसवें अवतारके रूपमें पूजित हुए—

ततः कलौ सम्प्रवृत्ते सम्मोहाय सुरद्विषाम्।
बुद्धो नाम्नाजनसुतः कीकटेषु भविष्यति॥

(श्रीमद्भा० १।३।२४)

भगवान् विष्णु स्वयं बुद्धके अवतार हुए, इसीलिये उन्हें बुद्ध भी कहा गया है—

'नमो बुद्धाय शुद्धाय दैत्यदानवमोहिने।'

(श्रीमद्भा० १०।४०।२२)

अर्थात् हे भगवन्! दैत्य-दानवोंको विमोहित करनेवाले, शुद्ध अहिंसामार्गके प्रवर्तक आप बुद्धरूपको नमस्कार है।

भागवतपुराणके अनुसार किसी देवताका मनुष्य आदि अथवा संसारी प्राणियोंके रूपमें शरीर धारण करना ही अवतार है। पुराणानुसार विष्णुके चौबीस अवतार हैं, जिनमें दस अवतार प्रमुख हैं। वे हैं—मत्स्य, कच्छप, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि। आचार्य क्षेमेन्द्रने भी इन्हीं दस अवतारोंपर महाकाव्यकी रचना की है।

आचार्य क्षेमेन्द्र (११वीं शती)-के परवर्ती जयदेव कवि (१२वीं शती)-ने क्षेमेन्द्रके ही अनुसार भगवान् विष्णुके दस अवतारोंमें बुद्धावतारकी परिगणना की है, जिनकी मालवराग और रूपकतालमें आबद्ध अष्टपति छन्दमें प्रार्थना करते हुए वे कहते हैं—

निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातम्।
सदयहृदयदर्शितपशुघातम्।
केशव धृतबुद्धशरीर जय जगदीश हरे॥

(दशावतारस्तोत्र ९)

अर्थात् हे केशव! आपने अपने दयापूर्ण और कोमल हृदयके कारण पशुहिंसावाले यज्ञोंकी निन्दा की है। हे बुद्धशरीरधारी जगदीश! आपकी जय हो।

कवि जयदेवने विष्णुके दशावतारके गुणवैशिष्ट्यका आकलन करते हुए लिखा है—

वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते
दैत्यान् दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते
म्लेच्छान्मूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः॥

अर्थात् दस अवतार धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है, जिन्होंने मत्स्यावतारमें वेदोंका उद्धार किया,

कच्छपरूप धारण कर पृथ्वीका वहन किया, वराहरूप लेकर समस्त भूगोलका उद्धार किया—समुद्रमें मग्न समग्र पृथ्वीको जलसे बाहर निकाला, नृसिंहरूप धारण कर हिरण्यकशिपु दैत्यका हृदयविदारण किया, वामनरूप धरकर बलिको छलनेके ब्याजसे उसके अहंकारको दूर किया, परशुरामका अवतार लेकर दुष्ट क्षत्रियोंका क्षय किया, रामावतारमें रावणका वध किया, बलरामका रूप लेकर हलास्त्रसे लोकभयका विनाश किया, बुद्धरूपमें अवतार लेकर कारुण्य—जीवदयाका विस्तार किया और वही आप अब कल्कि-अवतारमें म्लेच्छोंका क्षय करनेवाले हैं।

संस्कृतके महाकाव्योंकी परम्परामें आचार्य क्षेमेन्द्रके दशावतारचरित महाकाव्यका बहुत महत्त्व है। यों तो समग्र पौराणिक वाङ्मय ही दशावतारकी स्तुतियोंसे मुखरित है।

नवें बुद्धावतारके विषयमें आचार्य क्षेमेन्द्रने लिखा है कि अन्तमें भगवान् बुद्धने भी विष्णुत्वको प्राप्त किया था—

अथ स भगवान्कृत्वा सर्वं जगज्जिनभास्कर-
स्तिमिररहितं ज्ञानालोकैः क्रमाद् गुणिबान्धवः।
जनकरुणया सद्धर्माख्यं निधाय परं वपु-
स्तरणशरणं संसाराब्धावभूत् पुनरच्युतः॥

अर्थात् भगवान् बुद्धने सूर्यकी तरह अपने ज्ञानके प्रकाशसे सभी जीवोंके अज्ञानान्धकारको दूर कर दिया और उन्हें दुःख, दैन्य, पाप आदिसे मुक्त कर दिया। वे भगवान् भवसागरमें मग्न मनुष्योंके प्रति करुणाकी भावनासे सद्धर्म नामक उद्धारक शरीर धारण करके अन्तमें विष्णुस्वरूप हो गये।

आचार्य क्षेमेन्द्रने बुद्धावतारके हेतुका निर्देश करते हुए लिखा है—

काले प्रयाते कलिविप्लवेन
राजग्रहोग्रे भगवान् भवाब्धौ।
मज्जत्सु सम्मोहजले जनेषु
जगन्निवासः करुणान्वितोऽभूत्॥

अर्थात् कुछ समय बीत जानेपर कलियुगका उत्साह बढ़ गया। संसारसागरमें रागका घड़ियाल और अज्ञानका जल उमड़ आया, जिसमें लोग डूबने लगे। सर्वव्यापक भगवान्‌को यह दुःस्थिति देखकर दया आ गयी।

दयाद्रवित होकर सर्वहितकारी दयापरायण भगवान् विशाल शाक्यवंशमें उत्पन्न राजश्रेष्ठ शुद्धोदनकी रानी (मायादेवी)-के गर्भसे अवतीर्ण हुए—

स सर्वसत्त्वोपकृतिप्रयत्नः
कृपाकुलः शाक्यकुले विशाले।
शुद्धोदनाख्यस्य नराधिपेन्दो-
र्धन्यस्य गर्भेऽवततार पत्न्याः॥

आचार्य शंकरने भगवान् बुद्धकी स्तुति दशावतारस्तुतिके क्रममें इस प्रकार की है—

धराबद्धपद्मासनस्थाङ्घ्रियष्टि-
र्नियम्यानिलं न्यस्तनासाग्रदृष्टिः।
य आस्ते कलौ योगिनां चक्रवर्ती
स बुद्धः प्रबुद्धोऽस्तु सच्चित्तवर्ती॥

अर्थात् भगवान् बुद्ध कलियुगमें योगियोंके चक्रवर्ती सदृश हैं। विधिवत् पद्मासनमें बैठकर प्राणवायुको संयत कर और नासिकाके अग्रभागपर दृष्टिको स्थिरकर तपोलीन वे (बुद्ध) हमारे चित्तमें प्रकाशित रहें।

इस प्रकार आदिशंकराचार्यने भगवान् बुद्धका योगस्थ महायोगीके रूपमें स्तवन किया है। आचार्य लक्ष्मणदेशिकेन्द्रने नगरवासी राक्षसोंको जीतनेके लिये चीवर धारण करनेवाले बुद्धरूपधारी विष्णुको प्रणाम किया है—

पुरा पुराणामसुरान् विजेतुं
सम्भावयन् चीवरचिह्नवेषम्।
चकार यः शास्त्रममोघकल्पं
तं मूलभूतं प्रणतोऽस्मि बुद्धम्॥

(शारदातिलक)

अर्थात् प्राचीन कालमें राक्षसोंपर विजय प्राप्त करनेके लिये चीवर धारण करनेवाले एवं अमोघ शास्त्रकी रचना करनेवाले मूलस्वरूप बुद्धरूपधारी विष्णुको नमस्कार है।

देवीभागवतमें पशुहिंसापरक दोषपूर्ण यज्ञके विघातकके रूपमें बुद्धका स्मरण किया गया है—

दुष्टयज्ञविघाताय पशुहिंसानिवृत्तये।
बौद्धरूपं दधौ योऽसौ तस्मै देवाय ते नमः॥

(देवीभागवत)

पुनः कल्किपुराणमें जिस दशावतारकी स्तुति की गयी है, उसमें बुद्धकी स्तुति सबसे भिन्न रूपमें की गयी है—

पुनरिह विधिकृतवेदधर्मानुष्ठानविहितनानादर्शन-संघृणः संसारकर्मत्यागविधिना ब्रह्माभासविलासचातुरीं प्रकृतिविमाननामसम्पादयन् बुद्धावतारस्त्वमसि।

अर्थात् एक बार फिर इस धरतीपर विधिविहित वैदिक धर्मानुष्ठानमें विविध जीवोंकी हत्या देखकर करुणासे आर्द्र एवं जो वस्तुतः ब्रह्मका स्वरूप नहीं है, उसी स्वरूपको

विलासमय चतुराईसे ब्रह्म मानकर, जिस ब्रह्मकी स्वाभाविक रूपमें अवमानना की गयी है, उसका खण्डन सांसारिक कर्मके परित्यागकी विधिसे करनेमें सदा तत्पर बुद्धके रूपमें अवतार लेनेवाले आप (भगवान् विष्णु) ही हैं।

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने भी विनय-पत्रिकामें दशावतारकी स्तुतिके क्रममें भगवान् बुद्धकी पशुवधमूलक यज्ञहिंसाके निन्दकके रूपमें स्तुति की है—

प्रबल पाखंड महि-मंडलाकुल देखि,
निंद्यकृत अखिल मख कर्म-जालं।
शुद्ध बोधैकघन, ज्ञान-गुणधाम, अज
बौद्ध-अवतार वंदे कृपालं॥

(विनय-पत्रिका ५२।८)

अर्थात् हे देव! समस्त पृथ्वीको प्रबल पाखण्ड (बलिके रूपमें निरीह पशुओंके वध)-से जकड़ी हुई देखकर यज्ञ-प्रक्रियाकी आपने निन्दा की। बुद्धावतारके रूपमें आप शुद्ध रूप, ज्ञान-गुणके आश्रय, अजन्मा एवं करुणाके सागर हैं। मैं आपकी वन्दना करता हूँ।

बारहवीं शतीके वीरगाथाकालीन कवि चन्दबरदाईने भी अपने प्रसिद्ध महाकाव्य 'पृथ्वीराजरासो' में भगवान् बुद्धको अवतारकी श्रेणीमें परिगणित किया है। उनके द्वारा उपस्थापित दशावतारका क्रम इस प्रकार है—

मच्छ कच्छ वाराह प्रनम्मिय।
नारसिंह वामन फरसम्मिय॥[1]
सुअ दसरथ्थ हलद्धर नम्मिय।
बुद्ध कलंक[2] नमो दह नम्मिय॥

ज्योतिषशास्त्रके प्रसिद्ध ग्रन्थ बृहत्पाराशरहोराशास्त्रके द्वितीय अवतारक्रम-वर्णनाध्यायमें विष्णुके दस अवतारोंके साथ ग्रहोंके तादात्म्य स्थापित करनेके क्रममें बुद्धको बुधग्रहका अवतार कहा गया है—

रामोऽवतारः सूर्यस्य चन्द्रस्य यदुनायकः।
नृसिंहो भूमिपुत्रस्य बुद्धः सोमसुतस्य च॥

अठारहवीं शतीके पण्डित काशीनाथोपाध्यायद्वारा प्रणीत धर्मसिन्धुके दशावतारजयन्तीनिर्णयप्रकरणमें आश्विनशुक्ल दशमी तिथिको सन्ध्यामें बुद्धावतार होनेकी बात लिखी गयी है—**'आश्विनशुक्लदशम्यां सायं बुद्धोऽभूत्।'**

उपर्युक्त विवरणसे यह स्पष्ट है कि भगवान् बुद्ध सनातन-धर्मके अवतारी देवोंमें ही एक थे। वे कृपा और करुणाके अवतार थे। धर्मकी संस्थापनाके लिये जैसे भगवान् विष्णु राम और कृष्ण बनकर अवतरित हुए, वैसे ही पशुहिंसाको रोकनेके लिये वे बुद्धका अवतार लेकर आये। उनकी पूजा-वन्दनामें बौद्ध-वाङ्मयके बोधिचर्यावतार, दिव्यावदान, ललितविस्तर एवं बुद्धचरित-जैसे ग्रन्थ मुखर हैं।

कल्कि-अवतार

(डॉ० श्रीभानुशंकरजी मेहता)

[कल्कि-अवतारकी पारम्परिक शास्त्रीय व्याख्यासे अलग विद्वान् लेखककी अपनी दृष्टि आधुनिक सन्दर्भोंमें यहाँ व्यक्त की गयी है। लेखको उसी परिप्रेक्ष्यमें पढ़ा जाना चाहिये—सम्पादक]

भारतीय इतिहास-पुराणकालके दस या चौबीस अवतारोंकी कथा पूरी होनेको है और उसमें केवल 'कल्कि-अवतार'-का अवतरण शेष है।

यह अवतार कब होगा कोई नहीं जानता, पर प्रतीक्षा सबको है। भगवान्का वचन है कि जब धर्मकी ग्लानि होती है, तब 'अवतार' होता है। अपना युग देखें तो धर्मकी अपार ग्लानि हो चुकी है, अस्तु शीघ्र ही अवतार होना चाहिये!

देखें, अन्य धर्मावलम्बी तथा विद्वान् क्या कहते हैं? एक साहित्यकार हैं—गोरे विडाल और उन्होंने एक उपन्यास लिखा है 'कल्कि'। भारतीय पुराणसे प्रेरित हो लिखे इस उपन्यासमें एक वैज्ञानिक अपनेको कल्कि-अवतार घोषित करता है और असाध्य जीवाणुओंकी वर्षा करके समस्त प्राणिजगत्का विनाश कर देता है। केवल उसके कुछ साथी बच जाते हैं, जो क्रमशः मर जाते हैं। पृथ्वी जीवविहीन हो जाती है। यहाँ दुष्टदलनकी बात नहीं है—प्राणिमात्रके विनाशकी कल्पना की गयी है। वैज्ञानिक लेखक एच्०जी० वेल्स कुछ अधिक कृपालु हैं। वे अपने उपन्यास 'शेप ऑफ थिंग्स टु कम' में त्वरित मृत्युकारक रोगकी कल्पना करते हैं और जो बच जाते हैं, वे नयी दुनिया बसाते हैं। दार्शनिक लेखक ऑल्डस हक्सले परमाणु युद्धके बादकी विभीषिकाका वर्णन करता है

१. फरसम्मिय—परशुराम; २. कलंक—कल्कि।

और नये सुखद युगकी—'ब्रेव न्यू वर्ल्ड' की कल्पना करता है। यहाँ अवतारकी बात नहीं है। मुझे याद है एक बार मुम्बईके प्रसिद्ध निदेशक स्व० बासु भट्टाचार्यसे 'अवतार'-की चर्चा हो रही थी, तब सहसा भावी अवतारकी बात आयी और समस्या बनी कि यह अवतार कैसा होगा? प्रलयपयोधिमें मत्स्यावतार हुआ, भूखण्डको आधार देने कच्छपभगवान् पधारे। जलसे धरतीको निकालनेका काम वाराहने किया। पुनः विचार आया कि आज पीताम्बरधारी, धनुर्धर या हलधरभगवान् शायद स्वीकार नहीं होंगे। न गेरुआ चीवरधारी बुद्ध ही। तब भगवान् कैसे होंगे? एक समस्या यह भी है कि आज दुनिया छोटी हो गयी है और उसमें सैकड़ों भाषाएँ बोली जाती हैं, अस्तु संस्कृत, पाली या हिन्दीसे काम नहीं चलेगा। तब क्या वे कम्प्यूटर या टी०वी० पर प्रकट होंगे तथा सर्वभाषामें सुन पड़ेंगे? अवतार तो होना है, पर कैसे?

एक बात और ध्यानमें आयी कि पुराण अपने युगके दस या चौबीस अवतारोंकी चर्चा करते हैं, पर अर्वाचीन युगमें अनेक बार धर्मकी ग्लानि हुई और अवतार हुए या कहें महापुरुष आये, जिन्होंने नये युगकी स्थापना की। इनकी सूची बड़ी लम्बी है, फिर भी कुछ नाम देखें। हज़रत मूसा आये और मिस्री शासकके अत्याचारसे जनताको मुक्त कराया तथा दस धर्मादेश दिये। आगे हज़रत ईसा आये और यहूदी पुरोहितोंके अत्याचारसे मुक्ति दिलानेहेतु आत्म-बलिदान किया। हज़रत मोहम्मदने अरबके पुरोहितोंके अनाचारसे लोगोंको मुक्त कराया, एक धर्मग्रन्थ दिया और भाईचारेका नया युग आरम्भ किया।

मुग़ल-साम्राज्य जड़ जमा चुका था और सम्राट् अकबरने 'दीन-इलाही' की स्थापना की और शायद इस समन्वयवादी धर्ममें वैदिक धर्म लुप्त हो जाता, पर ऐसे संक्रमण कालमें तुलसीका आविर्भाव हुआ और सनातन-धर्म बच गया। आज भी श्रीरामचरितमानस सनातनी लोगोंकी आधारशिला बना हुआ है। यही नहीं, तुलसीने देखा भारतवासी दुर्बल हो रहे हैं, अस्तु, अखाड़ोंकी स्थापना की, जहाँ बजरंगबलीकी पूजा होती है। एक बात ध्यान देनेकी है कि तुलसी सम्प्रदायवादी नहीं हैं—वे मसीतमें सोनेको तत्पर हैं। उनका रामद्रोही रावण भी वास्तवमें विष्णुभक्त है, वे सगुण-निर्गुणका समन्वय करते हैं।

जब देशमें धर्म-परिवर्तनकी आँधी चल रही थी, धर्म-परिवर्तित लोगोंके स्वधर्ममें लौटनेका मार्ग बन्द था, तब 'दयानन्द' का आगमन हुआ। वैदिक धर्मकी पुनः स्थापना हुई। ऐसे ही श्रीरामकृष्णदेव, स्वामी विवेकानन्दप्रभृति संत पधारे। भक्त-संतोंकी पूरी परम्परा है और उसमें अद्वैत वेदान्त-प्रवर्तक आदिशंकरसे लेकर रामानुज, मध्वाचार्य, निम्बार्क, वल्लभाचार्य, चैतन्यतक सभी अवतार ही तो थे। मीरा, सूर, कबीर और अष्टछापके कवि अवतारपुरुष ही हैं।

मुग़ल-साम्राज्यके पतनके बाद देश अराजकतासे जूझ रहा था—तब व्यापार करने कुटिल अंग्रेज आये और देशके राजा बन बैठे। बँटे हुए देशमें शस्त्र-युद्ध व्यर्थ सिद्ध हुआ, तब गांधीका आगमन हुआ। वे आये सुदर्शन चक्रके स्थानपर 'चरखा' लेकर, वे आये तलवारके बदले 'अहिंसा' का अमोघ अस्त्र लेकर। भारत आजाद हुआ, पर चमत्कार यह कि 'अहिंसा' के प्रभावसे संसारके अनेक पराधीन राष्ट्र मुक्त हो गये।

अवतार देवभूमि भारतमें ही हो—ऐसा कुछ जरूरी नहीं है। हमने रूसका मुक्ति-संग्राम देखा है। चीनमें माओत्से तुंगका स्वतन्त्रता-संग्राम देखा है और देखी है होचीमिन्हकी लड़ाई। पर सबसे अद्भुत थी अमेरिकामें मार्टिन लूथर किंग जूनियरकी अहिंसक लड़ाई, जिसका अश्वेत ज़ातियोंकी मुक्तिमें अद्भुत योगदान है।

संक्षेपमें यह कि युग विकृत होता है। धर्मका क्षय होता है, तो पुनः धर्मसंस्थापनाहेतु अवतार होता है। संत-महापुरुष आते हैं, नेतृत्व करनेवाले आते हैं, बलिदानी वीर आते हैं और पुनः धरती चैनकी साँस लेती है।

आज जब धरती काँप रही है, समुद्र उद्विग्न है, आदमी भगवान् बननेकी कुचेष्टा कर रहा है। उन्नत विज्ञान उसे जड़ और निष्क्रिय बना रहा है, तब असंयमित कीट-पतंगों-सी बढ़ती आबादीको संयमित करनेहेतु अवतारकी प्रतीक्षा है।

पैगम्बर मोहम्मद साहबने कहा था '१४०० वर्ष बाद क़यामत आ जायगी। एक नया मसीहा आयेगा।' ईसाई धर्म कहता है—डूम्सडे होगा और तब नयी व्यवस्था स्थापित करने प्रभु ईसा पुनः पधारेंगे। सनातनधर्म कहता है कि कलियुग अपना समय पूरा कर लेगा, पापका घड़ा भर जायगा, तब महाविनाश होगा और उसके बाद पुनः सत्ययुग आयेगा। भाषाएँ भिन्न हैं, पर बात एक ही है। वह श्वेत अश्वपर बैठा 'कल्कि' आ रहा है—**'विनाशाय च दुष्कृताम्'** धरतीका भार हरण करने और नवयुग स्थापित करने। वर्तमानके घटनाक्रमका अध्ययन करनेपर लगता है कि वह समय आ गया है। शीघ्र ही कुछ होगा। ऐसेमें इष्टदेवचिन्तन, प्रभुकी कृपाकी याचना, सदाचरण ही रक्षा करेगा।

बहुधा मुझे लगता है, पूर्वाकाशमें सूर्योदयके साथ ही नवोदयका संदेश लेकर 'कल्कि' भगवान् आ रहे हैं, प्रणिपात करें।

श्रीहरिके कलावतार भगवान् वेदव्यास

(डॉ० श्रीवेदप्रकाशजी शास्त्री, एम्०ए०, पी-एच्०डी०, डी०लिट्०, डी०एस्-सी०)

पाराशर्यं परमपुरुषं विश्ववेदैकयोनिं
विद्याधारं विमलमनसं वेदवेदान्तवेद्यम्।
शश्वच्छान्तं शमितविषयं शुद्धबुद्धिं विशालं
वेदव्यासं विमलयशसं सर्वदाहं नमामि॥

(पद्म०, उ० २१९।४२)

महर्षि पराशरके पुत्र, परम पुरुष, सम्पूर्ण वैदिक शाखाओंके उत्पत्तिस्थान, सम्पूर्ण विद्याओंके आधार, निर्मल मनवाले, वेदवेदान्तोंके द्वारा परिज्ञेय, सदा शान्त, रागशून्य, विशाल, विशुद्ध-बुद्धि तथा निर्मल यशवाले महात्मा वेदव्यासजीको मैं सर्वदा नमस्कार करता हूँ।

भगवान् वेदव्यास भारतीय ज्ञानगङ्गाके भगीरथ माने जाते हैं। इन्होंने राजर्षि भगीरथकी ही भाँति भारतीय लोकसाहित्यके आदि युगमें हिमालयके बदरिकाश्रममें अखण्डसमाधि लगाकर अध्यात्म, धर्मनीति और पुराणकी त्रिपथयात्राका पहले स्वयं साक्षात्कार कर फिर साहित्य-साधनाद्वारा देशके आर्ष वाङ्मयको पवित्र बनाया एवं लोकसाहित्यको गति प्रदान की। अनन्तके अंशावतार भगवान् वेदव्यासजीकी साहित्य-साधनाने उन्हें भारतीय ज्ञानराशिका अनन्त महिमान्वित प्रतीक बना दिया है। उनके प्रणयनकी प्रचुरता उन्हें अलौकिक प्रतिभासम्पन्न महापुरुष सिद्ध करती है। विद्वानोंकी परीक्षाभूमि श्रीमद्भागवत-महापुराण[1] तथा समुज्ज्वल भावरत्नोंकी निधि महाभारत, ब्रह्मसूत्र, अष्टादश पुराण आदि उनकी उपर्युक्त महत्ताके प्रबल समर्थक हैं।[2] भगवान् व्यासकी गरिमाकी स्तुतिमें कहा गया है कि जीवनके धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—चतुर्विध पुरुषार्थोंसे सम्बन्ध रखनेवाला जो कुछ ज्ञान महाभारतमें है, वही अन्यत्र है, जो यहाँ नहीं है, कहीं और भी नहीं है—

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्॥

(महा०, आदि० ६२।५३)

हिमालयके रम्य शिखरपर जहाँ नर-नारायण नामके दो पर्वत हैं। भागीरथीके समीप विशाला बदरी नामक स्थानमें भगवान् व्यासजीका आश्रम था। यहीं आकाशगङ्गाके निकट भगवान् व्यासके चंक्रमणका स्थान था। इस स्थानकी पवित्रताका अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि आज भी यहाँ पहुँचकर भावुक जनके मनमें सात्त्विक भाव जाग उठते हैं। यहाँ भगवान् व्यासने वेदसंहिताको चार भागोंमें विभक्त कर अपने प्रमुख शिष्योंको उन संहिताओंका अध्ययन कराया था। वेदोंके इस विभाजनके कारण ही वे वेदव्यास नामसे प्रसिद्ध हुए।[3] पैलने ऋग्वेद, वैशम्पायनने यजुर्वेद, जैमिनिने सामवेद तथा सुमन्तुने अथर्ववेदसंहिताका सर्वप्रथम पारायण किया था।[4] इसी आश्रममें महाभारतयुद्धके पश्चात् तीन वर्षके उत्कृष्ट अध्यवसायसे श्रेष्ठ काव्यात्मक इतिहास—महाभारतकी रचना हुई।[5] इसे पञ्चमवेद कहलानेका

---

१. इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम्। उत्तमश्लोकचरितं चकार भगवानृषिः॥ (श्रीमद्भा० १।३।४०)

२. यथा समुद्रो भगवान् यथा मेरुर्महागिरिः। उभौ ख्यातौ रत्ननिधी तथा भारतमुच्यते॥ (महा०, आदि० ६२।४८)

३. विव्यास वेदान् यस्मात् स तस्माद् व्यास इति स्मृतः॥ (महा०, आदि० ६३।८८)

४. वेदानध्यापयामास महाभारतपञ्चमान्। सुमन्तुं जैमिनिं पैलं शुकं चैव स्वमात्मजम्॥
प्रभुर्वरिष्ठो वरदो वैशम्पायनमेव च। संहितास्तैः पृथक्त्वेन भारतस्य प्रकाशिताः॥ (महा०,आदि० ६३।८९-९०)

५. त्रिभिर्वर्षैः सदोत्थायी कृष्णद्वैपायनो मुनिः। महाभारतमाख्यानं कृतवानिदमद्भुतम्॥ (महा०,आदि० ६२।५२)

वेदव्यासजीने कलिकालीन मानवको अल्पबुद्धि, अल्पायु तथा कर्मविपाकमें लिप्त देखकर उसके सार्वकालिक कल्याणके लिये वेदोंका विभाजन चार शाखाओंमें किया था। (श्रीमद्भा० १।४।१५—२२) तथा महाभारतके व्याजसे वेदोंका रहस्य सर्वसाधारणके लिये अनावृत किया था—'भारतव्यपदेशेन ह्याम्नायार्थश्च दर्शितः।' (श्रीमद्भा० १।४।२९)
दुर्भगांश्च जनान् वीक्ष्य मुनिर्दिव्येन चक्षुषा। सर्ववर्णाश्रमाणां यद्दध्यौ हितममोघदृक्॥
ऋग्यजुःसामाथर्वाख्या वेदाश्चत्वार उद्धृताः। इतिहासपुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते॥
स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा। कर्मश्रेयसि मूढानां श्रेय एवं भवेदिह।
'इति भारतमाख्यानं कृपया मुनिना कृतम्॥' (श्रीमद्भा० १।४। १८, २०, २५)

गौरव प्राप्त है। इसे उन्होंने अपने पाँचवें शिष्य लोमहर्षणको पढ़ाया था। इस ग्रन्थरत्नकी विलक्षणताको लक्षित कर कहा गया है—

'दशार्था सर्ववेदेषु भारतं तु शतार्थकम्'

अर्थात् वेदकी प्रत्येक ऋचाके दस अर्थ हैं, परंतु महाभारतके प्रत्येक श्लोकके सौ अर्थ हैं।

भगवान् व्यासका वास्तविक नाम कृष्ण था। महाभारतकालीन दो कृष्ण प्रसिद्ध हुए हैं—वासुदेव कृष्ण और द्वैपायन कृष्ण। दोनों ही चन्द्रवंशके भूषण थे। इनकी माताका नाम सत्यवती था, जो चेदिराज वसु उपरिचरके वीर्यसे यमुनाके किसी द्वीपमें उत्पन्न हुई थीं। उनका लालन-पालन यमुनातीरवासी दाशराजने किया था। ये ही सत्यवती कालान्तरमें पराशरमुनिके संयोगसे भगवान् व्यासकी माता बनीं। व्यासजी श्रीहरिके कलावतारके रूपमें हैं। श्रीमद्भागवत-महापुराणमें इस सम्बन्धमें स्पष्ट उल्लेख है।[1]

व्यासजीका जन्म भी यमुनाके ही किसी द्वीपमें हुआ था। इसीलिये इन्हें द्वैपायन, कृष्णवर्ण शरीरके कारण कृष्ण या कृष्णद्वैपायन, बदरीवनमें निवासके कारण बादरायण तथा वेदोंका विस्तार करनेके कारण वेदव्यास कहा जाता है। ये अतीव कर्मठ, तत्त्वज्ञ एवं प्रतिभाशाली थे।[2] इनकी असीम प्रभविष्णुताके कारण महाभारतमें इन्हें त्रिदेवोंका समन्वित रूप प्रतिपादित किया गया है।[3] भागवतकारके रूपमें इनका उल्लेख करते हुए जयाशीके लिये इनका अभिवादन आवश्यक माना गया है।[4] महाभारत-कर्तृत्वके कारण इन्हें 'विशालबुद्धि' प्रतिपादित किया गया है।[5] इस पुराणपुरुषकी परम्परा ब्रह्मासे आरम्भ होती है और फिर क्रमशः वसिष्ठ, शक्ति, पराशर और व्यासका नाम आता है।[6] इस परम्पराके अनुसार ये महर्षि वसिष्ठके प्रपौत्र, महर्षि शक्तिके पौत्र, पराशरमुनिके पुत्र तथा महामुनि श्रीशुकदेवके जनक थे। ये अतीव पुण्यशील, निष्पाप एवं तपोनिधि थे।

व्यासजीकी माता सत्यवती ही कालान्तरमें राजा शान्तनुकी पत्नी और गाङ्गेय भीष्मकी माँ (विमाता) बनीं। अतएव भगवान् व्यास और पितामह भीष्मका सम्बन्ध अत्यन्त निकटका था।

सत्यवतीके पुत्र विचित्रवीर्यकी निःसंतान-मृत्यु हो जानेपर जब कुरुवंश अनपत्यताके कारण समाप्तिके कगारपर जा पहुँचा था, तब माता सत्यवतीकी आज्ञासे भगवान् व्यासने अपनी दिव्यशक्तिसे विचित्रवीर्यकी पत्नियोंसे धृतराष्ट्र और पाण्डुको तथा उनकी दासीसे विदुरको उत्पन्न कर कुरुकुलकी वंशबेलको बचाया था। आम्बिकेय—धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनादि सौ कौरव तथा पाण्डुके युधिष्ठिरादि पाँच पाण्डव हुए। कुरुकुलके अभिवर्धक भगवान् व्यास आजीवन हस्तिनापुरके राजनीतिक उतार-चढ़ावसे घनिष्ठरूपसे सम्बद्ध रहे।

धृतराष्ट्र, पाण्डु आदिके जन्मके पश्चात् भगवान् व्यास हस्तिनापुरसे नातिदूर (यमुनानगर, हरियाणाके निकट) सरस्वती-तटपर आश्रम बनाकर रहने लगे। वहाँसे वे प्रायः हस्तिनापुर आते रहते थे। पाण्डुके विविध संस्कार-सम्पादनके समय वे पाण्डवोंके साथ हस्तिनापुरमें विद्यमान रहे। पाण्डुकी और्ध्वदैहिक क्रियाके समय उन्होंने दुःखी माता सत्यवतीको हस्तिनापुरका परित्यागकर काशी जाकर

---

१. (क) द्वापरे समनुप्राप्ते तृतीये युगपर्यये। जातः पराशराद्योगी वासव्यां कलया हरेः॥ (श्रीमद्भा० १।४।१४)
अर्थात् इस वर्तमान चतुर्युगीके तीसरे युग द्वापरमें महर्षि पराशरके द्वारा वसुकन्या सत्यवतीके गर्भसे भगवान्के कलावतार योगिराज व्यासजीका जन्म हुआ।
(ख) कालेन मीलितधियामवमृश्य नृणां स्तोकायुषां स्वनिगमो बत दूरपारः।
आविर्हितस्त्वनुयुगं स हि सत्यवत्यां वेदद्रुमं विटपशो विभजिष्यति स्म॥ (श्रीमद्भा० २।७।३६)
अर्थात् समयके फेरसे लोगोंकी समझ कम हो जाती है, आयु भी कम होने लगती है। उस समय भगवान् जब देखते हैं कि अब ये लोग मेरे तत्त्वको बतलानेवाली वेदवाणीको समझनेमें असमर्थ होते जा रहे हैं, तब प्रत्येक कल्पमें सत्यवतीके गर्भसे व्यासके रूपमें प्रकट होकर वे वेदरूपी वृक्षका विभिन्न शाखाओंके रूपमें विभाजन कर देते हैं।

२. जयति पराशरसूनुः सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यासः। यस्यास्यकमलगलितं वाङ्मयममृतं जगत् पिबति॥ (वायुपु० १।१।२)

३. अचतुर्वदनो ब्रह्मा द्विबाहुरपरो हरिः। अभाललोचनः शम्भुर्भगवान् बादरायणः॥

४. नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्। देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥ (श्रीमद्भा० १।२।४)

५. नमोऽस्तु ते व्यास विशालबुद्धे फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र। येन त्वया भारततैलपूर्णः प्रज्वालितो ज्ञानमयः प्रदीपः॥ (ब्रह्मपु० २४५।११)

६. वन्दे वसिष्ठनप्तारं शक्तेः पौत्रमकल्मषम्। पराशरात्मजं वन्दे शुकतातं तपोनिधिम्॥

योगमें चित्त लगानेका परामर्श दिया था। कौरव-पाण्डवोंकी अस्त्रपरीक्षाके समय भी व्यासजी हस्तिनापुरमें थे। वनवासके समय पाण्डवोंको एकचक्रानगरीमें आयोजित द्रौपदी-स्वयंवरमें भाग लेनेकी प्रेरणा व्यासजीने ही दी थी। पाण्डवोंकी प्रत्येक विपदामें व्यास और उनका अमोघ मन्त्र पाण्डवोंके साथ रहा। राज्य-प्राप्ति हो जानेपर व्यासजीने ही पाण्डवोंको राजसूययज्ञ करनेके लिये प्रेरित किया था। इस यज्ञमें ईर्ष्या, द्वेष और व्यंग्योंसे ऐसा वानक बना कि महाभारतयुद्ध अवश्यम्भावी हो गया। स्थितिकी विषमताको देखकर, व्यासजी युधिष्ठिरको क्षत्रियोंके भावी विनाशकी सूचना दे, कैलासयात्रापर चले गये।[1] कुछ समय बाद पाण्डवोंकी दशामें पुन: परिवर्तन आया, उन्हें द्यूतमें सर्वस्व हारकर वनकी राह लेनी पड़ी। व्यासजीने समाचार पाते ही शीघ्र आकर धृतराष्ट्रको पाण्डवोंके साथ न्याय करनेके लिये समझाया और स्वयं द्वैतवनमें जाकर पाण्डवोंसे भेंट की। वहाँ उन्होंने युधिष्ठिरको प्रतिस्मृति नामक सिद्ध विद्या देकर अन्यत्र रहनेकी सम्मति दी। परामर्शानुसार पाण्डवोंने सरस्वतीतटवर्ती काम्यक वनमें अपना आवास बनाया। पाण्डवोंके वनवासके बारह वर्ष समाप्त होनेके पश्चात् व्यासजीने पुन: एक बार उनके पास आकर धर्म और नीतिसे परिपूर्ण आत्मसंयमका उपदेश दिया, जिसके कारण वे अज्ञातवासका तेरहवाँ वर्ष विषम स्थितियोंमें रहकर भी सफलतापूर्वक बिता सके। तेरहवें वर्षके बाद जब युधिष्ठिरने अपना राज्य वापस माँगा, तब व्यासजीने फिर धृतराष्ट्रको समझाया, परंतु बली-क्रूर कालके सामने मनीषी व्यास और वयोवृद्ध प्रज्ञाचक्षु धृतराष्ट्रकी एक न चली। त्रिकालज्ञ व्यास कालकी महिमासे सुपरिचित थे। कालकी सत्तामें विश्वास उनके दर्शनका अभिन्न अङ्ग था, जिसे उन्होंने अनेकश: महाभारतमें प्रकट किया है—'काल सबका मूल है, काल संसारके उत्थानका बीज है, काल ही अपने वशमें करके उसे हड़प लेता है। यही काल समय आनेपर बलवान् बनकर पुन: दुर्बल बन जाता है।'[2] कुरुक्षेत्रके सर्वक्षत्रियक्षयकारी युद्धको स्वयं देखकर भगवान् व्यासने कालकी अमित महिमाके ध्यानसे अपने चित्तको धैर्य बँधाया। जिस समय कुरुक्षेत्रमें दोनों ओरसे कौरव-पाण्डवोंकी सेनाएँ उपस्थित हुईं, तब भी व्यासजीने धृतराष्ट्रको समझाकर युद्ध रोकनेका प्रयत्न किया, पर उनकी एक न चली। युद्धकालमें भी वे सदैव स्थितिको सँभालते रहे और युद्धके अन्तमें शोकमग्न धृतराष्ट्रको तथा करुणाविगलित युधिष्ठिरको समझा-बुझाकर धैर्य बँधाया; शोकसन्तप्त, तप:काम युधिष्ठिरको राज्यके लिये तैयारकर धर्म और अध्यात्मकी शिक्षाके लिये पितामह भीष्मके पास भेजा और अश्वमेध करनेकी प्रेरणा दी। युद्धके सोलह वर्ष पश्चात् पुन: धृतराष्ट्रसे हिमालयपर जाकर भेंट की और उनके राग-द्वेषाभिभूत मनको अपनी सुधासिक्त वाणीसे आप्लावित कर तपस्याभिमुखी बनाया। जब सरस्वती तीरवासी आभीरोंने वृष्णिवंशकी स्त्रियोंको अर्जुनके देखते-देखते लूट लिया, तब शोक और अपमानसे भग्नहृदय अर्जुन अन्तिम बार भगवान् वेदव्यासके दर्शनके लिये गये। व्यासजीने उन्हें कालचक्रके उत्थान और पतनका उपदेश देकर विदा किया।

जन्म और कार्यस्थल—भगवान् वेदव्यासके जन्म और कार्यस्थलके सम्बन्धमें यद्यपि विभिन्न किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं तथापि श्रीमद्भागवत, महाभारत और देवीभागवतके अनुसार यमुनाके अज्ञात द्वीपको महर्षि व्यासका जन्मस्थान मानकर उनका आश्रम प्रमुखत: सरस्वतीतटवर्ती बदरीवनको ही विद्वानोंने माना है। इस मान्यताका आधार व्यासकृत श्रीमद्भागवतादि रचनाएँ ही हैं। श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्धमें इस बातका प्रबल प्रमाण विद्यमान है कि भगवान् व्यासने अपना साधनारत जीवन सरस्वती-तटपर ही विताया और देवर्षि नारदकी प्रेरणासे वहीं श्रीमद्भागवतकी रचना कर आत्मतोष प्राप्त किया।[3] यह स्थान कहाँ, किस स्थितिमें है, इसका यत्किञ्चित् परिचय यहाँ देना असंगत न होगा—

---

१. स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि कैलासं पर्वतं प्रति। अप्रमत्त: स्थिरो दान्त: पृथिवीं परिपालय॥ (महा०, सभा० ४६।१७)

२. कालमूलमिदं सर्वं जगद्बीजं धनंजय॥
काल एव समादत्ते पुनरेव यदृच्छया। स एव बलवान् भूत्वा पुनर्भवति दुर्बल:॥ (महा०, मौसल० ८।३३।३४)

३. स कदाचित्सरस्वत्या उपस्पृश्य जलं शुचि। विविक्तदेश आसीन उदिते रविमण्डले॥ (श्रीमद्भा० १।४।१५)

व्यासपुरमें सरस्वतीतटपर व्यासाश्रम—हरियाणा-प्रान्तके अम्बाला मण्डलवर्ती जगाधरी (यमुनानगर) नामक स्थानसे लगभग पचीस किलोमीटर उत्तरमें बिलासपुर नामक समृद्ध गाँव है। इसीका प्राचीन नाम व्यासपुर है। राजकीय अभिलेखोंके अनुसार यह छः सौ वर्षसे निरन्तर बसा हुआ है। इसी ग्रामके दक्षिणमें व्याससरोवर है, जिसे यहाँकी जनता परम्परागत रूपमें भगवान् व्यासका आश्रमस्थल मानती आ रही है। इस स्थानसे लगभग दो फर्लांग दूर द्वादशमासप्रवाहिणी नदीके रूपमें ब्रह्मनदी सरस्वतीके दर्शन होते हैं। इसी व्यासाश्रम अथवा व्याससरोवरके उत्तरमें एक कोसकी दूरीपर तीर्थराज कपालमोचन तथा ऋणमोचन नामक दो सरोवर हैं, जहाँ प्रतिवर्ष कार्तिक पूर्णिमापर विशाल मेला लगता है। यहाँसे लगभग पचीस किलोमीटर उत्तरमें आदिबदरी नामक प्राचीनतम देवमन्दिर पर्वतशिखरपर विद्यमान है। यहीं नगाधिराज हिमालयकी यात्रा पूर्ण कर ब्रह्मनदी सरस्वती मैदानी क्षेत्रमें उतरकर पूर्वोक्त व्यासाश्रमके पार्श्वमें प्रवाहित होती हुई कुरुक्षेत्रमें पहुँचती है। यहाँ सरस्वतीनदीके तटपर ही अगस्त्याश्रम, मुद्गलाश्रम आदि ऋषियोंके स्थान हैं, जहाँ आज भी अनेकानेक साधक तपस्वी साधनारत दीख पड़ते हैं।[१]

व्यासपुर एवं इस समस्त क्षेत्रकी जनता सनातन परम्परासे ही व्याससरोवरको भगवान् वेदव्यासका आश्रम मानती आ रही है।

राजकीय अभिलेखोंमें व्यासाश्रम—आंग्ल-शासन-कालके प्रारम्भिक अभिलेख (सन् १८८७-८८), जो भारतीय भू-संरक्षणका आदिम अभिलेख माना जाता है, में स्पष्ट लिखा है—हिन्दूधर्मके सर्वश्रेष्ठ महर्षि, वेदोंके सम्पादक श्रीवेदव्यासका आश्रम यही बिलासपुरका दक्षिणदिगस्थ व्याससरोवर है। इसी व्याससरोवरके नामपर यह गाँव पहले व्यासपुरके नामसे बसा था और फिर प्रयोगादिवश बिगड़कर उच्चारणमें बिलासपुर हो गया है।

स्कन्दपुराण, हिमाद्रिखण्ड, आदिबदरीक्षेत्र-माहात्म्यमें भी व्याससरोवरका स्पष्ट उल्लेख है।[२] कुछ लोग उत्तराञ्चलीय बदरीनारायण-धामकी ओर बदरीवन मानते हैं। यद्यपि शास्त्र और लोकमान्यताके अनुसार यह भी बदरीवन ही है, परंतु जहाँ व्यासाश्रमकी स्थिति स्वीकार की गयी है, वह बदरीवन नहीं है। वह बदरीवन तो व्याससरोवरका पार्श्ववर्ती क्षेत्र ही है।

इतना होनेपर भी व्यासजीके अनेक आश्रमोंका परिचय आज प्राप्त होता है, जो विभिन्न प्रान्तोंमें स्थित हैं। बिलासपुरके व्यासाश्रमके अतिरिक्त विभिन्न स्थानोंमें स्थित उनके आश्रमोंका अद्यतन विवरण इस प्रकार है—

१. **व्यासाश्रम**—भावुक जनोंका आस्थाकेन्द्र—यह आश्रम 'माना' ग्राममें बदरीनारायणसे दो मील आगे, भारतकी उत्तरी सीमाके अन्तिम ग्राममें स्थित है।

२. **व्यासगुफा**—भढ़ौचके निकट विद्यमान इस गुफाको भगवान् व्यासकी तपस्थली मानकर भावुक जन इसके दर्शनार्थ प्रायः यहाँ आया करते हैं।

३. **व्यासटीला**—नैमिषारण्यमें विद्यमान यह टीला श्रद्धालु यात्रियोंके लिये विशेष आकर्षणका केन्द्र है। प्रतिवर्ष गुरुपूर्णिमाको यहाँ उत्सव भी मनाया जाता है। यहाँ व्यासगद्दी भी है, जहाँ शौनकादि अट्ठासी हजार ऋषि-मुनियोंद्वारा पुराणपारायण हुआ था।

४. **बासम**—व्यासाश्रमका अपभ्रंशरूप यह स्थान आन्ध्रप्रदेशमें नान्देड़से पहले धर्मानादके निकट है। यहाँ गोदावरीतटपर प्राचीन सरस्वती और शिवके मन्दिर हैं। इस स्थानको व्यासजीकी तपोभूमि माना जाता है। यहाँके शिवमन्दिरको व्यासजीद्वारा स्थापित और विशेष चमत्कारयुक्त माना जाता है।

५. **वेदव्यास वारासेय**—रामपुरमें यह स्थान नगरसे बाहर चबूतरेके रूपमें है। सिद्धपीठके रूपमें मान्यताप्राप्त यह स्थान श्रद्धालुओंका पूजास्थान है।

६. **व्यासस्थली**—हरियाणाप्रान्तके करनाल मण्डलके अन्तर्गत यह स्थल कौल ग्रामके निकट विद्यमान है और विकृत होकर बस्तली बन चुका है। यहाँसे थोड़ी दूरपर सरस्वतीनदी भी विद्यमान है। कहते हैं कभी यहाँके ह्रदमें नीलोत्पल हुआ करते थे।

७. **व्यासाश्रम**-गुजरातमें अहमदावादके निकट मातृगया

१. आदिबदरी, व्यासपुर आदि जानेके लिये यमुनानगरसे सदैव बस, तांगा आदि सवारियाँ सुलभ रहती हैं।

२. व्यासाश्रम इति ख्यातो नाम्ना व्याससरोवरः। (स्कन्दपुराण)

सिद्धपुरके पार्श्वस्थ ग्राममें भी व्यासाश्रम बताया जाता है।

८. मथुरा-आगराके मध्य, महाकवि सूरके साधनास्थल रुणकतागाँवसे ६ मील दूर वेदव्यासजीका आश्रम है, जहाँ उनका मन्दिर भी बना हुआ है।

इस प्रकार विभिन्न दिशाओं, क्षेत्रों और प्रान्तोंसे उपलब्ध व्यासाश्रमोंके आधारपर कहा जा सकता है कि श्रीवेदव्यासजीका क्षेत्र सम्पूर्ण भारतवर्ष था।

भारतीय पारम्परिक मान्यता उन्हें अजरामर मानती है। आज भी वर्षगाँठके अवसरपर जिन सप्त चिरञ्जीवियोंका स्मरण किया जाता है, उनमें व्यासजी भी प्रमुख घटक हैं।*

महाभारत-जैसे वृहद् व्यापक इतिहास, अष्टादश पुराण, ब्रह्मसूत्रादि ग्रन्थरत्नोंके प्रदाता भगवान् वेदव्यासजीका लोगोंपर महान् अनुग्रह हैं। आज भी योगीराज, नारायणांशभूत वेदव्यास अनन्तरूपमें विश्वमें विद्यमान हैं।

इस प्रकार साक्षात् नारायण ही अपने अंशके रूपमें वेदव्यासजीके नामसे आविर्भूत हुए। इनके आविर्भावके विषयमें महाभारत (आदि० ६०।३, ५)-में कहा गया है कि ये जन्मते ही बढ़कर युवा हो गये, स्वतः बिना किसीके द्वारा पढ़ाये ही समस्त अङ्गोंसहित वेदादिशास्त्रमें तथा परमात्मतत्त्वके ज्ञानमें निष्णात हो गये तथा प्रकट होते ही वेदपाठ करने लगे—

जातमात्रश्च यः सद्य इष्ट्या देहमवीवृधत्।
वेदांश्चाधिजगे साङ्गान् सेतिहासान् महायशाः॥
परावरज्ञो ब्रह्मर्षिः कविः सत्यव्रतः शुचिः॥

वेदव्यासजीका अवतार ही ज्ञानमूर्तिके रूपमें हुआ। लोकमें वेदज्ञानकी प्रतिष्ठा करना तथा पुराण और इतिहास (महाभारत)-के माध्यमसे उसे जन-जनमें स्थापित करना इनके अवतरणका मुख्य उद्देश्य रहा है। लोग सदाचारी बनें धर्माचरण करें, अपने-अपने वर्णाश्रमका परिपालन करें तथा सदा भावचिन्तनमें निमग्न रहें, इसके लिये उन्होंने महत्त्वपूर्ण बातें बतायी हैं जो श्रीमद्भागवतादि पुराणों तथा व्यासस्मृति आदिमें उल्लिखित हैं। व्यासजी सदाचारकी प्रतिष्ठामें मातृ-पितृभक्तिको मुख्य मानते हैं। वे बताते हैं कि माता सर्वतीर्थमयी है, पिता सम्पूर्ण देवताओंका स्वरूप है, इसलिये सब प्रकारसे यत्नपूर्वक माता-पिताका पूजन करना चाहिये—

सर्वतीर्थमयी माता सर्वदेवमयः पिता।
मातरं पितरं तस्मात् सर्वयत्नेन पूजयेत्॥

(पद्म०, सृष्टि० ४७।११)

वेदव्यासजी बताते हैं कि गङ्गाजीके नामके स्मरणमात्रसे पातक, कीर्तनसे अतिपातक और दर्शनसे भारी पाप (महापातक) भी नष्ट हो जाते हैं—

गङ्गेति स्मरणादेव क्षयं याति च पातकम्।
कीर्तनादतिपापानि दर्शनाद् गुरुकल्मषम्॥

(पद्म०, सृष्टि० ६०।५)

संयत एवं सत्य वाणीकी महिमामें व्यासजी कहते हैं—सत्यसे पवित्र हुई वाणी बोले तथा मनसे भी जो पवित्र जान पड़े, उसीका आचरण करे—

'सत्यपूतां वदेद् वाणीं मनःपूतं समाचरेत्।'

(पद्म०, स्वर्ग० ५९।२०)

अपनी प्रशंसा न करे तथा दूसरेकी निन्दाका त्याग कर दे। वेदनिन्दा और देवनिन्दाका यत्नपूर्वक त्याग करे—

न चात्मानं प्रशंसेद्वा परनिन्दां च वर्जयेत्॥
वेदनिन्दां देवनिन्दां प्रयत्नेन विवर्जयेत्।

(पद्म०, स्वर्ग० ५५।३५-३६)

भगवान् वेदव्यास लोगोंको शिक्षा देते हुए अपने एक महत्त्वपूर्ण उपदेशमें बताते हैं कि मनुष्यकी तपस्या, वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान, स्वाध्याय, ज्ञान और दानका एकमात्र प्रयोजन यही है कि पुण्यकीर्ति श्रीकृष्णके गुणों और लीलाओंका वर्णन किया जाय—

इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य वा
स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः।
अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो
यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम्॥

(श्रीमद्भा० १।५।२२)

युग-युगमें आविर्भूत होनेवाले भगवान् वेदव्यासजीको नमस्कार है।

* अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनूमांश्च विभीषणः। कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः॥

भगवान् सदाशिवके विविध अवतार

[भगवान् सदाशिवका लीला-विलास ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंमें विराजमान है। लीलाभिनयके लिये प्रभु जब इस जगत्‌की सृष्टि करते हैं तो अन्तर्यामीरूपसे स्वयं भी इसमें प्रविष्ट हो जाते हैं—व्याप्त हो जाते हैं—'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्' और जब आवश्यकता समझते हैं तो स्वयं भी व्यक्तरूपसे प्रकट हो जाते हैं। वेदोंमें भगवान् शिवकी महिमा और उनकी करुणाका विशेष गान हुआ है। रुद्र, शिव, मृड, भव आदि ये सभी उन्हींके नाम हैं। उनका घोर तथा अघोर—दो रूपोंमें विशेष वर्णन आया है। भगवान् शिवकी संहारलीलाकी मूर्ति घोर एवं रक्षण तथा पालन-पोषणकी मूर्ति अघोर कहलाती है। वेदोंमें जहाँ एक रुद्रकी चर्चा है, वहीं 'असंख्यातरुद्र' पदसे अनन्तानन्त रुद्रोंका निर्वचन किया गया है। एकादश रुद्र तो प्रसिद्ध हैं ही, ऐसे ही भगवान् शिव सृष्टिके मूलतत्त्व लिङ्गके रूपमें प्रकट हैं और पूजित होते हैं। द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग, बाणलिङ्ग, स्वयम्भूलिङ्ग आदि भगवान् शिवके लिङ्गरूपमें प्राकट्यके द्योतक हैं। ऐसे ही अष्टमूर्तियोंके रूपमें भी उनकी उपासना होती है। सद्योजात, वामदेव, तत्पुरुष आदि उनके पञ्च स्वरूप प्राप्त होते हैं। पुराणोंमें तो भक्तोंके कल्याणके लिये भगवान् शिवके विभिन्न रूपोंमें अवतरणका वर्णन प्राप्त होता है। महाकाल, भैरव, यक्ष, दुर्वासा, हनुमान्, पिप्पलाद, हंस आदि लीलावतारोंकी कथाएँ अत्यन्त कल्याणकारिणी हैं। उनका अर्धनारीश्वर तथा हरिहरके रूपमें अवतरण विश्वको शिक्षा देनेके लिये ही हुआ। ऐसे ही प्रणवके रूपमें उनका ही अवतरण होता है। मृत्युञ्जय, दक्षिणामूर्ति, नटराज, भिक्षुक, महाकाल, पञ्चमुख, नीलकण्ठ, पशुपति, त्र्यम्बक तथा योगेश्वरावतार आदि अनेक नाम-रूपोंमें प्रकट होकर भगवान्‌ने विविध लीलाएँ की हैं, जो भक्तोंके लिये अतीव मङ्गलदायिनी हैं। यहाँ संक्षेपमें भगवान् सदाशिवकी कुछ अवतार-कथाओंको प्रस्तुत किया जा रहा है—सम्पादक]

महादेवका नन्दीश्वरावतार

(आचार्य पं० श्रीरामदत्तजी शास्त्री)

वन्दे महानन्दमनन्तलीलं
महेश्वरं सर्वविभुं महान्तम्।
गौरीप्रियं कार्तिकविघ्नराज-
समुद्भवं शङ्करमादिदेवम्॥

'जो परमानन्दमय हैं, जिनकी लीलाएँ अनन्त हैं, जो ईश्वरोंके भी ईश्वर, सर्वव्यापक, महान्, गौरीके प्रियतम तथा कार्तिकेय और विघ्नराज गणेशको उत्पन्न करनेवाले हैं, उन आदिदेव शङ्करकी मैं वन्दना करता हूँ।'

प्राचीन कालमें एक बार सनत्कुमारजीने नन्दीश्वरजीसे पूछा कि हे नन्दीश्वर! आप महादेवके अंशसे कैसे उत्पन्न हुए तथा आपने शिवत्व कैसे प्राप्त किया? यह सब मैं सुनना चाहता हूँ, आप कहिये—

नन्दीश्वर बोले—हे सनत्कुमार! शिलाद नामके एक ऋषि थे। पितरोंके उद्धारकी इच्छासे उन्होंने इन्द्रके उद्देश्यसे बहुत समयतक कठोर तप किया। तपसे संतुष्ट होकर इन्द्र उनको वर देनेको गये। इन्द्रने शिलादसे कहा—मैं प्रसन्न हूँ, तुम वर माँगो। तब इन्द्रको प्रणामकर आदरपूर्वक स्तोत्रोंसे स्तुतिकर शिलाद हाथ जोड़कर बोले—हे देवेश! आप प्रसन्न हों तो मुझे मृत्युहीन अयोनिज पुत्रकी प्राप्ति हो। इन्द्र बोले—हे मुने! मैं तुमको मृत्युहीन अयोनिज पुत्र नहीं दे सकता; क्योंकि विष्णुभगवान्‌से ब्रह्मातक सब मृत्युवाले हैं औरकी तो बात ही क्या है! यदि भगवान् शिव प्रसन्न हो जायँ तो वह तुम्हारे लिये मृत्युहीन अयोनिज पुत्र प्रदान कर सकते हैं, अतः आप शिवजीको प्रसन्न करें। इतना कहकर इन्द्र अपने लोकको चले गये।

इन्द्रके जानेके बाद शिलादने दिव्य सहस्रवर्षतक महादेवजीकी आराधना की। उनकी आराधनासे प्रसन्न होकर भगवान् शिव प्रकट हुए तथा शिलादसे कहा—हे शिलाद! मैं तुम्हें वर देने आया हूँ। भगवान् शिवके ध्यानमें मग्न और समाधिमें लीन शिलादमुनिने शिवकी वाणीको नहीं सुना। तब शिवने उन मुनिका हाथसे स्पर्श किया, जिससे उनकी समाधि छूट गयी और अपने नेत्रोंके सम्मुख अपने आराध्य उमासहित भगवान् शम्भुको देखकर वे मुनि आनन्दपूर्वक उनके चरणोंमें गिर पड़े।

बड़े हर्षसे गद्गदवाणीमें वे शिवजीकी स्तुति करने लगे। तब देवदेवेश भगवान् शिवजीने शिलादसे कहा कि हे तपोधन! मैं तुम्हें वर देने आया हूँ। शिवजीके ऐसे वचन सुनकर शिलाद बोले—हे महेश्वर! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो आप मुझको अपने समान मृत्युहीन अयोनिज पुत्र प्रदान करें।

शिवजी बोले—हे विप्र! मैं स्वयं ही तुम्हारे यहाँ नन्दी नामक अयोनिज पुत्ररूपसे प्रकट होऊँगा। हे मुने! तुम मुझ लोकत्रयीके पिताके भी पिता होनेका सौभाग्य प्राप्त करोगे। इस प्रकार शिलादको वर देकर शिव पार्वतीसहित अन्तर्धान हो गये। शिलादमुनिने अपने आश्रमपर आकर यह सारा वृत्तान्त अन्य मुनियोंसे कहा तो सभी मुनि अत्यन्त प्रसन्न हुए।

हे सनत्कुमार! कुछ समय बीतनेपर एक दिन शिलाद यज्ञ करनेके निमित्त यज्ञक्षेत्रको जोत रहे थे। मैं उसी समय उन शिवकी आज्ञासे उनका पुत्ररूप होकर प्रलयाग्निके समान देदीप्यमानरूपमें प्रकट हुआ। उस समय देवताओंने फूल बरसाये तथा ऋषिगण भी चारों तरफसे पुष्पवृष्टि करने लगे। हे मुने! उस समय मेरा स्वरूप प्रलयकालके सूर्य और अग्निके समान प्रकाशित तथा त्रिनेत्र, चतुर्भुज और जटामुकुटधारी था। साथ ही वह त्रिशूल आदि शस्त्रोंको धारण किये हुए था। मेरा ऐसा स्वरूप देखकर मेरे पिताने मुझे प्रणाम किया और बोले—हे सुरेश्वर! तुमने मुझे महान् आनन्द दिया है, इस कारण तुम्हारा नाम 'नन्दी' हुआ। तदनन्तर मेरे पिता मुझे अपनी पर्णकुटीमें ले गये। पर्णकुटीमें पहुँचकर मैंने अपना वह रूप त्यागकर मनुष्यशरीर धारण कर लिया।

हे सनत्कुमार! मुझपर अत्यधिक स्नेह करनेवाले उन शालंकायनके पुत्र शिलादने मेरे सम्पूर्ण जातकर्म आदि संस्कार किये। पाँच वर्षकी अवस्थामें ही मेरे पिताने मुझे साङ्गोपाङ्ग वेदोंको और शास्त्रोंको पढ़ाया। सातवें वर्षमें मित्रावरुणसंज्ञक दो मुनि शिवजीकी आज्ञासे मुझे देखनेको आये, तब मेरे पितासे सत्कारको प्राप्त होकर वे मुनि अच्छी प्रकार बैठे और मुझे बारम्बार देखकर वे महात्मा बोले कि हे तात! सम्पूर्ण शास्त्रोंमें पारगामी ऐसा बालक हमने नहीं देखा, परंतु यह तुम्हारा पुत्र नन्दी थोड़ी अवस्थावाला है। इसकी : एक वर्षकी ही और होगी। उन ब्राह्मणोंके ऐसा कह मेरे पिता शिलाद उच्च स्वरमें रोने लगे। मैंने उ पिताको रोते हुए देखकर कहा—हे पिता! आप रोते हैं, यह मैं तत्त्वपूर्वक जानना चाहता हूँ? f बोले—हे पुत्र! मैं तुम्हारी अल्पमृत्युके दुःखसे दुःखी मैंने कहा—हे पिता! देवता, दानव, यमराज, काल त मनुष्य भी मुझे मारें तो भी मेरी अल्पमृत्यु नहीं हो इस कारण आप दुःखी मत होइये। हे पिता! यह आपसे सत्य कहता हूँ, आपकी शपथ खाता हूँ। f बोले—हे पुत्र! तुम्हारी अल्पमृत्युको कौन दूर करेग तब मैंने कहा—हे तात! मै तपसे अथवा विद्यासे मृत्यु दूर न करूँगा, केवल महादेवजीके भजनसे मैं इ मृत्युको जीतूँगा, इसमें संदेह नहीं है। नन्दीश्वर बोले- हे मुने! इस प्रकार कहकर पिताके चरणोंमें सिर प्रणामकर और उनकी प्रदक्षिणा करके मैं श्रेष्ठ वनव चला गया।

नन्दिकेश्वर बोले—हे मुने! वनमें जाकर मैं एकान्तस्थल स्थित होकर अति कठिन तथा श्रेष्ठ मुनियोंके लिये भ दुष्कर तप करने लगा। मैं पञ्चमुख सदाशिवके परम ध्यानमें मग्न हो पवित्र नदीके उत्तर भागमें एकाग्रचित्तसे सावधान हो रुद्रमन्त्र जपने लगा। तब प्रसन्न होकर सदाशिव पार्वतीसहित प्रकट होकर बोले—हे शिलादनन्दन! तुम्हारे तपसे मैं संतुष्ट हूँ, तुम अभीष्ट वर माँगो। सामने शिव-पार्वतीको देखकर अपने सिरको उनके चरणोंमें झुकाकर मैं उनकी स्तुति करने लगा। तब उन परमेश वृषभध्वजने दोनों हाथोंसे मुझे पकड़कर स्पर्श किया तथा बोले—हे वत्स! हे महाप्राज्ञ! तुम्हें मृत्युसे भय कहाँ? उन दोनों ब्राह्मणोंको मैंने ही भेजा था, तुम मेरे ही समान हो, इसमें कुछ संशय नहीं है। तुम पिता और सुहृज्जनोंसहित अजर, अमर, दुःखरहित, अविनाशी, अक्षय और मेरे प्रिय होगे। इस प्रकार कहकर उन्होंने अपनी कमलोंसे बनी शिरोमाला उतारकर शीघ्र मेरे कण्ठमें डाल दी। हे मुने!

उस सुन्दर मालाको कण्ठमें पहनते ही तीन नेत्र, दस

भुजाओंवाला मानो मैं दूसरा शिव ही हो गया। परमेश्वरने कहा और क्या श्रेष्ठ वर दूँ? इतना कहकर वृषभध्वजने अपनी जटाओंसे हारके समान निर्मल जल ग्रहणकर 'नदी हो' ऐसा कहकर उसको मेरे ऊपर छिड़का। उस जलसे पाँच शुभ नदियाँ—१-जटोदका, २-त्रिस्रोता, ३-वृषध्वनि, ४-स्वर्णोदका और ५-जम्बूनदी उत्पन्न होकर बहने लगीं। यह पञ्चनद नामक परम पवित्र शिवका पृष्ठदेश जपेश्वरके समीप वर्तमान है। शिवजी पार्वतीजीसे बोले कि मैं नन्दीको गणेश्वरपदमें अभिषिक्त करता हूँ, तुम्हारी इसमें क्या सम्मति है? पार्वतीजी बोलीं—हे देवेश! यह शिलादपुत्र नन्दी आजसे मेरा महाप्रिय पुत्र हुआ।

तदनन्तर शिवजीने अपने सभी गणोंको बुलाकर कहा कि यह नन्दीश्वर मेरा पुत्र, सब गणोंका अधिपति तथा प्रियगणोंमें मुख्य हुआ, सभीको मेरे इस वचनका पालन करना चाहिये। तुम सब प्रीतिपूर्वक नन्दीको स्नान कराओ और आजसे यह नन्दी तुम सबका स्वामी हुआ। शिवजीके ऐसा कहनेपर सम्पूर्ण गणपति 'बहुत अच्छा' कहकर सब अभिषेककी सामग्री ले आये। तदनन्तर इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता तथा नारायण, सम्पूर्ण मुनि प्रसन्न हो सब लोकोंसे आये। शिवके नियोगसे ब्रह्माजीने सावधान हो नन्दीका अभिषेक किया, तब विष्णुने फिर इन्द्रने इसके पश्चात् लोकपालोंने अभिषेक किया। तब सभीने नन्दीश्वरजीकी स्तुति की।

नन्दीश्वरने कहा—हे विप्र! इस प्रकार गणाध्यक्षपदपर अभिषिक्त होनेके उपरान्त मुझ नन्दीने ब्रह्माजीकी आज्ञासे सुयशा नामवाली मरुत्‌की परम मनोहर कन्यासे विवाह किया। विवाहके समय जब मैं उस रूपवती सुन्दरी सुयशाके साथ मनोहर सिंहासनपर बैठा तब महालक्ष्मीने मुझे मुकुटसे सजाया, देवीने अपने कण्ठका दिव्य हार मुझे दिया। श्वेत वृषभ, हाथी तथा सिंहकी ध्वजा, सुवर्णका हार इत्यादि वस्तुएँ मुझे मिलीं। विवाहके पश्चात् मैंने ब्रह्माजी, विष्णुजीके चरणोंमें नमस्कार किया, तभी शिवजीने मुझे सपत्नीक देख परम प्रीतिसे कहा—हे सत्पुत्र! तुम पति और यह सुयशा तुम्हारी पत्नी है। मैं तुमको वही वर दूँगा, जो तुम्हारे मनमें है। तुम मेरे सदा प्रिय होगे; तुम अजेय, महाबली होकर पूजनीय होगे। जहाँ मैं रहूँगा वहाँ तुम होगे, जहाँ तुम होगे वहाँ मैं रहूँगा। इस प्रकार कहकर शिवजी उमासहित कैलासको चले गये। नन्दीश्वर बोले—हे सनत्कुमार! जिस प्रकार मैंने शिवत्व प्राप्त किया, वह कथा मैंने आपको सुना दी। (**शिवपुराण**)

~~ o ~~

'पूर्ण शिवं धीमहि'

यो धत्ते भुवनानि सप्त गुणवान् स्रष्टा रजःसंश्रयः संहर्ता तमसान्वितो गुणवतीं मायामतीत्य स्थितः।
सत्यानन्दमनन्तबोधममलं ब्रह्मादिसंज्ञास्पदं नित्यं सत्त्वसमन्वयादधिगतं पूर्णं शिवं धीमहि॥

जो रजोगुणका आश्रय लेकर संसारकी सृष्टि करते हैं, सत्त्वगुणसे सम्पन्न हो सातों भुवनोंका धारण-पोषण करते हैं, तमोगुणसे युक्त हो सबका संहार करते हैं तथा त्रिगुणमयी मायाको लाँघकर अपने शुद्ध स्वरूपमें स्थित रहते हैं, उन सत्यानन्दस्वरूप, अनन्त बोधमय, निर्मल एवं पूर्णब्रह्म शिवका हम ध्यान करते हैं। वे ही सृष्टिकालमें ब्रह्मा, पालनके समय विष्णु और संहारकालमें रुद्र नाम धारण करते हैं तथा सदैव सात्त्विकभावको अपनानेसे ही प्राप्त होते हैं।

~~ o ~~

शङ्करके पूर्णावतार—कालभैरव

(डॉ० श्रीमुकुन्दपतिजी त्रिपाठी 'रत्नमालीय')

देवराजसेव्यमानपावनाङ्घ्रिपङ्कजं
व्यालयज्ञसूत्रमिन्दुशेखरं कृपाकरम्।
नारदादियोगिवृन्दवन्दितं दिगम्बरं
काशिकापुराधिनाथकालभैरवं भजे॥
भानुकोटिभास्वरं भवाब्धितारकं परं
नीलकण्ठमीप्सितार्थदायकं त्रिलोचनम्।
कालकालमम्बुजाक्षमक्षशूलमक्षरं
काशिकापुराधिनाथकालभैरवं भजे॥

देवराज इन्द्र जिनके पावन चरणकमलोंकी भक्तिपूर्वक निरन्तर सेवा करते हैं, जो व्यालरूपी विकराल यज्ञसूत्र धारण करनेवाले हैं, जिनके ललाटपर चन्द्रमा शोभायमान है, जो दिगम्बरस्वरूपधारी हैं, कृपाकी मूर्ति हैं, नारदादि सिद्ध योगिवृन्द जिनकी सेवामें लगे रहते हैं, उन काशीपुरीके अभिरक्षक स्वामी कालभैरवकी मैं चरण-वन्दना करता हूँ। जो करोड़ों सूर्यके समान दीप्तिमान् हैं, जो भयावह भवसागर पार करानेवाले परम समर्थ प्रभु हैं, जो नीले कण्ठवाले, अभीष्ट वस्तुको देनेवाले और तीन नेत्रोंवाले हैं, जो कालके भी काल, कमलके समान सुन्दर नयनोंवाले, अक्षमाला और त्रिशूल धारण करनेवाले अक्षरपुरुष हैं, उन काशीपुरीके प्रभु कालभैरवकी मैं आराधना करता हूँ।

अधर्ममार्गको अवरुद्ध कर, धर्म-सेतुकी प्रतिष्ठापना करनेवाले, स्वभक्तोंको अभीष्ट सिद्धि प्रदान करनेवाले, कालको भी कँपा देनेवाले, प्रचण्ड तेजोमूर्ति, अघटितघटन-सुघट-विघटन-पटु, कालभैरवजी भगवान् शङ्करके पूर्णावतार* हैं, जिनका अवतरण ही पञ्चानन ब्रह्मा एवं विष्णुके गर्वापहरणके लिये हुआ था। भैरवी-यातना-चक्रमें तपा-तपाकर पापियोंके अनन्तानन्त पापोंको नष्ट कर देनेकी विलक्षण क्षमता उन्हें प्राप्त है। देवमण्डलीसहित देवराज इन्द्र और ऋषिमण्डलीसहित देवर्षि नारद उनकी स्तुति कर अपनेको धन्य मानते हैं। उनकी महिमा अद्भुत है। उनकी लीलाएँ विस्मयकारिणी हैं। उन महामहिमावान्के चरणोंमें शीश नवाते हुए यहाँ उनका संक्षिप्त आख्यान शिवपुराणके आधारपर प्रस्तुत किया जा रहा है—

अति प्राचीन कालमें एक बार सुमेरुपर्वतके मनोरम शिखरपर ब्रह्मा और शिवजी बैठे हुए थे। उसी कालमें परम-तत्त्वकी जिज्ञासासे प्रेरित होकर समस्त देव और ऋषिगण वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने श्रद्धा-विनयपूर्वक शीश झुकाकर, हाथ जोड़कर ब्रह्माजीसे निवेदन किया—'हे देवाधिदेव! प्रजापति! लोकपिता! लोकपालक! कृपाकर हमें परम अविनाशी तत्त्वका उपदेश दें। हमारे मनमें उस परम-तत्त्वको जाननेकी प्रबल अभिलाषा है।'

भगवान् शङ्करकी विश्वविमोहिनी मायाके प्रभावसे मोहग्रस्त हो ब्रह्माजी यथार्थ तत्त्वबोध न कराकर आत्मप्रशंसामें प्रवृत्त हो गये। वे कहने लगे—

जगद्योनिरहं धाता स्वयम्भूरज ईश्वरः।
अनादिभागहं ब्रह्म ह्येक आत्मा निरञ्जनः॥
प्रवर्तको हि जगतामहमेव निवर्तकः।
संवर्तको मदधिको नान्यः कश्चित् सुरोत्तमाः॥

(शिवपुराण, शतरुद्रसंहिता ८। १३-१४)

हे समुपस्थित देव एवं ऋषिगण! आदरपूर्वक सुनें—मैं ही जगच्चक्रका प्रवर्तक, संवर्तक और निवर्तक हूँ। मैं धाता, स्वयम्भू, अज, अनादि ब्रह्म तथा एक निरञ्जन आत्मा हूँ। मुझसे श्रेष्ठ कोई नहीं है।

सभामें विद्यमान भगवान् विष्णुको उनकी आत्मश्लाघा नहीं रुची। अपनी अवहेलना किसे अच्छी लगती है? अमर्षभरे स्वरमें उन्होंने प्रतिवाद किया—हे धाता! आप कैसी मोहभरी बातें कर रहे हैं? मेरी आज्ञासे ही तो आप सृष्टिकार्यमें प्रवृत्त हैं। मेरे आदेशकी अवहेलना कर किसीकी प्राणरक्षा सम्भव नहीं। कदापि सम्भव नहीं—

* 'भैरवः पूर्णरूपो हि शङ्करस्य परात्मनः।' (शिवपुराण, शतरुद्र० ८। २)

ममाज्ञया त्वया ब्रह्मन् सृष्टिरेषा विधीयते।
जगतां जीवनं नैव मामनादृत्य चेश्वरम्॥

(शिवपुराण, शतरुद्रसंहिता ८।१८)

पारस्परिक विवाद-क्रममें आरोप-प्रत्यारोपका स्वर उत्तरोत्तर तीखा होता गया। विवाद-समापन-क्रममें जब वेदोंका साक्ष्य माँगा गया तो उन्होंने शिवको परमतत्त्व अभिहित किया। मायाविमोहित ब्रह्मा तथा विष्णु—किसीको भी वेद-साक्ष्य रास नहीं आया। वे बोल पड़े—अरे वेदो! तुम्हारा ज्ञान नष्ट हो गया है क्या? भला अशुभ वेशधारी, धूलिधूसर, पीतवर्ण, दिगम्बर, रात-दिन शिवाके साथ रमण करनेवाले शिव कभी परमतत्त्व कैसे हो सकते हैं? वाद-विवादके कटुत्वको समाप्त करने हेतु प्रणवने मूर्तरूप धारणकर भगवान् शिवकी महिमा प्रकट करते हुए कहा—लीलारूपधारी भगवान् शिव अपनी शक्तिके बिना कभी रमण नहीं कर सकते। वे परमेश्वर शिवजी स्वयं सनातन ज्योतिस्वरूप हैं और उनकी आनन्दमयी यह 'शिवा' नामक शक्ति आगन्तुकी न होकर शाश्वत है। अतः आप दोनों अपने भ्रमका परित्याग करें। ॐकारके निर्भ्रान्त वचनोंको सुनकर भी प्रबल भवितव्यताविवश ब्रह्मा एवं विष्णुका मोह दूर नहीं हुआ तो उस स्थलपर एक दिव्य ज्योति प्रकट हुई, जो भूमण्डलसे लेकर आकाशतक परिव्याप्त हो गयी। उसके मध्यमें दोनोंने एक ज्योतिर्मय पुरुषको देखा। उस समय ब्रह्माके पाँचवें मुखने कहा—'हम दोनोंके बीचमें यह तीसरा कौन है जो पुरुषरूप धारण किये है?' विस्मयको और अधिक सघन करते हुए उस ज्योतिपुरुषने त्रिशूलधारी, नीललोहित स्वरूप धारण कर लिया। ललाटपर चन्द्रमासे विभूषित उस दिव्य स्वरूपको देखकर भी ब्रह्माजीका अहङ्कार पूर्ववत् रहा। पहलेकी तरह ही वे बोल पड़े—

'आओ, आओ वत्स चन्द्रशेखर, आओ। डरो मत। मैं तुम्हें जानता हूँ। पहले तुम मेरे मस्तकसे पैदा हुए थे। रोनेके कारण मैंने तुम्हारा नाम 'रुद्र' रखा है। मेरी शरणमें आ जाओ। मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा।'

ब्रह्माजीकी गर्वमयी बातें सुनकर भगवान् शिव कुपित हुए और उन्होंने भयङ्कर क्रोधमें आकर 'भैरव' नामक पुरुषको पैदा किया, जिन्हें ब्रह्माको दण्डित करनेका प्रथम कार्य सौंपा गया—

'प्राक्च पङ्कजजन्मासौ शास्यस्ते कालभैरव।'

(शिवपुराण, शतरुद्रसंहिता ८।४६)

उनका नामकरण करते हुए भगवान् शिवने व्यवस्था दी—**'त्वत्तो भेष्यति कालोऽपि ततस्त्वं कालभैरवः।'** (शिवपुराण, शतरुद्रसंहिता ८।४७)

हे महाभाग! काल भी तुमसे डरेगा, इसलिये तुम्हारा विख्यात नाम 'कालभैरव' होगा। उसके अपर नामोंका उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा—हे वत्स! तुम कालके समान शोभायमान हो, इसलिये तुम्हारा नाम 'कालराज' रहेगा। तुम कुपित होकर दुष्टोंका मर्दन करोगे, इसलिये तुम्हारा नाम 'आमर्दक' होगा। भक्तोंके पापोंका तत्काल भक्षण करनेकी सामर्थ्यसे युक्त होनेके कारण तुम्हारा नाम 'पापभक्षण' होगा। तदनन्तर भगवान् शिवने उसी क्षण उन्हें काशीपुरीका आधिपत्य भी सौंप दिया और कहा—मेरी जो मुक्तिदायिनी काशीनगरी है, वह सभी नगरियोंसे श्रेष्ठ है, हे कालराज! आजसे वहाँ तुम्हारा सदा ही आधिपत्य रहेगा—

या मे मुक्तिपुरी काशी सर्वाभ्योऽहि गरीयसी।
आधिपत्यं च तस्यास्ते कालराज सदैव हि॥

(शिवपुराण, शतरुद्रसंहिता ८।५०)

भगवान् शिवसे इस प्रकार वरदान प्राप्त कर कालभैरवने अपनी बायीं उँगलीके नखसे शिवनिन्दामें प्रवृत्त ब्रह्माजीके पाँचवें मुखको काट दिया, यह विचार कर कि पापी अङ्गका ही शासन अभीष्ट है।

'यदङ्गमपराध्नोति कार्यं तस्यैव शासनम्।'

वह पाँचवाँ मुख (कपाल) उनके हाथमें आ चिपका। इस घटनासे भयभीत विष्णु और ब्रह्माजी शतरुद्रीका पाठ कर भगवान् शिवसे कृपायाचना करने लगे। दोनोंका अभिमान नष्ट हो गया। उन्हें यह भलीभाँति ज्ञात हो गया कि साक्षात् शिव ही सच्चिदानन्द परमेश्वर गुणातीत परब्रह्म हैं। उनकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर शिवजीने भैरवजीको ब्रह्मा-विष्णुके प्रति कृपालु होनेकी सलाह दी—

'त्वया मान्यो विष्णुरसौ तथा शतधृतिः स्वयम्।'

(शिवपुराण, शतरुद्रसंहिता ८।६१)

हे नीललोहित! तुम ब्रह्मा और विष्णुका सतत सम्मान करना। ब्रह्माजीको दण्ड देनेके क्रममें हे भैरव! तुम्हारे द्वारा उन्हें कष्ट पहुँचा है, अतः लोकशिक्षार्थ तुम प्रायश्चित्तस्वरूप ब्रह्महत्यानिवारक कापालिकव्रतका आचरण कर भिक्षावृत्ति धारण करो—

'चर त्वं सततं भिक्षां कपालव्रतमाश्रितः।'

(शिवपुराण, शतरुद्रसंहिता ८।६२)

भगवान् भैरव प्रायश्चित्ताचरण-लीलामें तत्काल प्रवृत्त हो गये। ब्रह्महत्या विकराल स्त्रीरूप धारणकर उनका अनुगमन करने लगी।

त्रैलोक्यभ्रमण करते हुए जब भगवान् भैरव वैकुण्ठ पहुँचे तो भगवान् विष्णुने उनका स्वागत-सत्कार करते हुए भगवती लक्ष्मीसे उन्हें भिक्षा दिलवायी।

तदनन्तर भिक्षाटन करते हुए भगवान् भैरव वाराणसीपुरीके 'कपालमोचन' नामक तीर्थपर पहुँचे, जहाँ आते ही उनके हाथमें संसक्त कपाल छूटकर गिर गया और वह ब्रह्महत्या पातालमें प्रविष्ट हो गयी। अपना प्रायश्चित्त पूरा कर वे वाराणसीपुरीकी पूर्ण सुरक्षाका दायित्व सँभालने लगे। बटुकभैरव, आसभैरव, आनन्दभैरव आदि उनके विविध अंश-स्वरूप हैं। उनकी महिमा वर्णनातीत है। वे भगवान् शिवके आदेश—**'तत्र (वाराणस्यां) ये पातकिनरास्तेषां शास्ता त्वमेव हि।'** का अनुपालन कर रहे हैं। उनकी महिमाके विषयमें भगवान् विष्णु कहते हैं—

अयं धाता विधाता च लोकानां प्रभुरीश्वरः।
अनादिः शरणः शान्तः पुरः षड्विंशसम्मितः॥
सर्वज्ञः सर्वयोगीशः सर्वभूतैकनायकः।
सर्वभूतान्तरात्मायं सर्वेषां सर्वदः सदा॥

(शिवपुराण, शतरुद्रसंहिता ९।११-१२)

ये धाता, विधाता, लोकोंके स्वामी और ईश्वर हैं। ये अनादि, सबके शरणदाता, शान्त तथा छब्बीस तत्त्वोंसे युक्त हैं। ये सर्वज्ञ, सब योगियोंके स्वामी, सभी जीवोंके नायक, सभी भूतोंकी अन्तरात्मा और सबको सब कुछ देनेवाले हैं।

भगवान् भैरवका अवतरण अगहन मासकी अष्टमी तिथि (कृष्णपक्ष)-को हुआ था, अतः उक्त तिथिको उनकी जयन्ती धूम-धामपूर्वक मनायी जाती है—

कृष्णाष्टम्यां तु मार्गस्य मासस्य परमेश्वरः।
आविर्बभूव सल्लीलो भैरवात्मा सतां प्रियः॥

(शिवपुराण, शतरुद्रसंहिता ९।६३)

उपर्युक्त मास तथा तिथिको भक्तिभावपूर्वक उनकी पूजा करनेसे जन्म-जन्मान्तरके पाप नष्ट हो जाते हैं। स्वयं भगवान् शिवने भैरव-उपासनाकी महिमा बताते हुए पार्वतीजीसे कहा है—हे देवि! भैरवका स्मरण पुण्यदायक है। यह स्मरण समस्त विपत्तियोंका नाशक, समस्त कामनाओंकी पूर्ति करनेवाला तथा साधकोंको सुखी रखनेवाला है, साथ ही लम्बी आयु प्रदान करता है और यशस्वी भी बनाता है।

मंगलवारयुक्त अष्टमी और चतुर्दशीको कालभैरवके दर्शनका विशेष महत्त्व है। वाराणसीपुरीकी अष्ट दिशाओंमें स्थापित अष्टभैरवों—रुरुभैरव, चण्डभैरव, असिताङ्गभैरव, कपालभैरव, क्रोधभैरव, उन्मत्तभैरव तथा संहारभैरवका दर्शन-आराधन अभीष्ट फलप्रद है। रोली, सिन्दूर, रक्तचन्दनका चूर्ण, लाल फूल, गुड़, उड़दका बड़ा, धानका लावा, ईखका रस, तिलका तेल, लोहबान, लाल वस्त्र, भुना केला, सरसोंका तेल—ये भैरवजीकी प्रिय वस्तुएँ हैं, अतः इन्हें भक्तिपूर्वक समर्पित करना चाहिये।

भगवान् भैरव शाक्त साधकोंके भी परमाराध्य हैं। ये ही भक्तोंकी प्रार्थना भगवती दुर्गाके पास पहुँचाते हैं। देवीके प्रसिद्ध ५१ पीठोंकी रक्षामें ये भिन्न-भिन्न नाम-रूप धारण कर अहर्निश साधकोंकी सहायतामें तत्पर रहते हैं। प्रतिदिन भैरवजीकी आठ बार प्रदक्षिणा करनेसे मनुष्योंके सर्वविध पाप विनष्ट हो जाते हैं—

अष्टौ प्रदक्षिणीकृत्य प्रत्यहं पापभक्षणम्।
नरो न पापैर्लिप्येत मनोवाक्कायसम्भवैः॥

(काशीखण्ड ३१।१५१)

ऐसे महाप्रभु भैरव समस्त जनोंके पाप-तापका शमन करें।

~~~ ० ~~~
~~~

यक्षावतार

भगवान् शिवने यक्षरूपसे अवतार धारण किया था। भगवान्‌का यह यक्षावतार अभिमानियोंके अभिमानको दूर करनेवाला तथा साधु पुरुषोंके लिये भक्तिको बढ़ानेवाला है। एक बारकी बात है, समुद्र-मन्थनके बाद जब अमृत निकला तो उसका पानकर देवताओंने असुरोंपर विजय प्राप्त कर ली और इस खुशीमें वे उन्मत्त हो उठे तथा शिवाराधनाको भूल बैठे। उन्हें यह अभिमान हो आया कि हम ही सर्वशक्तिमान् हैं। भक्तको अपनी भक्तिका—साधनाका मिथ्याभिमान हो जाय तो भगवान्‌को भला कैसे सहन हो! यह तो पतनका ही मार्ग ठहरा, अतः उन्होंने देवताओंके मिथ्या गर्वको दूर करनेके लिये 'यक्ष' नामक अवतार धारण किया और वे लीला करनेके लिये इसी यक्षरूपसे देवताओंके समीप जा पहुँचे। वहाँ भगवान्‌ने पूछा कि आप सब लोग एकत्र होकर यहाँ क्या कर रहे हैं, तो सभी देवता समुद्र-मन्थनके संदर्भमें अपना-अपना पराक्रम बढ़-चढ़कर सुनाने लगे और कहने लगे कि हमारी ही शक्तिसे असुर पराजित होकर भाग गये।

देवताओंके उन अभिमान-भरे वचनोंको सुनकर यक्षरूपी महादेवने कहा—'देवताओ! आपको गर्व करना ठीक नहीं; कर्ता-हर्ता तो कोई दूसरा ही देव है, आप लोग उन महेश्वरको भूलकर व्यर्थ ही अपने बलका अभिमान कर रहे हैं। यदि आप अपनेको महान् बली समझते हों तो यह एक 'तृण' है, इसे आप तोड़कर दिखायें, ऐसा कहकर यक्षावतारी शिवने लीला करते हुए अपने तेजसे सम्पन्न एक तृण (तिनका) उनके पास फेंका और उसे तोड़नेके लिये कहा।

इन्द्रादि सभी देवताओंने प्रथम तो पृथक्-पृथक् और फिर मिलकर अनेक अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोग कर अपनी पूरी शक्ति लगा दी, पर उस रुद्रतेज-सम्पन्न तृणको तोड़नेमें वे समर्थ न हो सके। भला, जब स्वयं शिव ही लीला कर रहे थे तो उस लीलाको उनकी कृपाके बिना कौन समझ सके? देवता हतप्रभ हो गये।

उसी समय आकाशवाणी हुई, जिसे सुनकर देवताओंको बड़ा विस्मय हुआ। आकाशवाणीमें कहा गया—'अरे देवो! भगवान् शंकर ही परम शक्तिमान् हैं, वे ईश्वरोंके भी ईश्वर हैं। उनके बलसे ही सभी बलवान् हैं, उनकी लीला अपरम्पार है, उनकी लीलासे ही आप लोग मोहित हैं, आप सभी उन्हींकी शरण ग्रहण करें।' यह सुनकर देवता लोग यक्षावतारी शिवको पहचान सके और अनेक प्रकारसे उनकी स्तुति करने लगे। तब भगवान् शिवने अपने यक्षरूपका परित्याग करके शिव-रूप धारण किया, जिसका दर्शनकर देवताओंको बड़ा आनन्द हुआ। **(शिवपुराण)**

दुर्वासावतार

महातपस्वी तथा धर्मात्मा महर्षि दुर्वासा भगवान् शंकरके ही अवतार-रूप हैं। श्रेष्ठ धर्मका प्रवर्तन करने, भक्तोंकी धर्मपरीक्षा करने तथा भक्तिकी अभिवृद्धि करनेके लिये साक्षात् भगवान् शंकरने ही दुर्वासामुनिके रूपमें अवतार धारणकर अनेक प्रकारकी लीलाएँ की हैं। इस अवतारकी संक्षिप्त कथा इस प्रकार है—

ब्रह्मज्ञानी अत्रि ब्रह्माजीके पुत्र थे। वे ब्रह्माजीके मानसपुत्र कहलाते हैं। इनकी अनसूया नामकी सती-साध्वी धर्मपत्नी थीं। अनसूयाका पातिव्रत-धर्म विश्व-विश्रुत ही है। पुत्रकी आकांक्षासे महर्षि अत्रि तथा देवी अनसूयाने ऋक्षकुल नामक पर्वतपर जाकर निर्विन्ध्या नदीके पावन तटपर सौ वर्षतक दुष्कर तप किया। उनके तपका ऐसा प्रभाव हुआ कि एक उज्ज्वल अग्निमयी ज्वाला प्रकट हुई, जिसने तीनों लोकोंको व्याप्त कर लिया। देवता, ऋषि, मुनि सभी चिन्तित हो उठे। तब ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर—ये तीनों देव उस स्थानपर गये, जहाँ महामहर्षि अत्रि तथा देवी अनसूया तप कर रहे थे। तदनन्तर प्रसन्न होकर तीनों देवोंने उन्हें अपने-अपने अंशसे एक-एक पुत्र (इस प्रकार तीन पुत्र) प्राप्त करनेका वर प्रदान किया।

वरदानके प्रभावसे ब्रह्माजीके अंशसे चन्द्रमा, विष्णुके अंशसे दत्तात्रेय तथा भगवान् शंकरके अंशसे मुनिश्रेष्ठ दुर्वासाका आविर्भाव हुआ। ये तीनों अत्रि और अनसूयाके पुत्र कहलाये। दुर्वासाके रूपमें अवतार लेकर भगवान् शंकरने अनेक लीलाएँ कीं हैं, जो अति प्रसिद्ध हैं। भगवान् शंकरके रुद्ररूपसे महर्षि दुर्वासा प्रकट हुए थे, इसीलिये उनका रूप अति रौद्र था, इसी कारण वे अति क्रोधी भी थे, किंतु महर्षि दुर्वासा दयालुताकी मूर्ति हैं, अत्यन्त करुणासम्पन्न हैं। भक्तोंका दु:ख दूर करना तथा रौद्ररूप धारणकर दुष्टोंका दमन करना ही उनका स्वभाव रहा हैं। शिवपुराणमें कथा आयी है कि एक बार नदीमें स्नान करते समय महर्षि दुर्वासाका वस्त्र नदीके प्रवाहमें प्रवाहित हो गया। कुछ दूरीपर देवी द्रौपदी भी स्नान कर रही थीं, उस समय द्रौपदीने अपने अंचलका एक टुकड़ा फाड़कर उन्हें प्रदान किया, इससे प्रसन्न होकर शंकरावतार महर्षि दुर्वासाने उन्हें वर दिया कि यह वस्त्रखण्ड वृद्धिको प्राप्तकर तुम्हारी लज्जाका निवारण करेगा और तुम सदा पाण्डवोंको प्रसन्न रखोगी। इसी वरका प्रभाव था कि जब कौरवसभामें दु:शासनके द्वारा द्रौपदीकी साड़ी खींची जाने लगी तो वह बढ़ती ही गयी। वरके प्रभावसे द्रौपदीकी लाज बच गयी। इसी प्रकारसे इनके द्वारा अनेक भक्तोंकी रक्षा हुई।
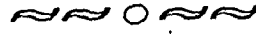
पिप्पलादावतार

जहाँ महान् त्याग, तपस्या, दान, परोपकार एवं लोककल्याणके लिये आत्मदानकी बात आयेगी, वहाँ महर्षि दधीचिका नाम बड़े ही आदरसे लिया जायगा। महर्षि दधीचि भृगुवंशमें उत्पन्न हैं। वेदोंमें दध्यङ्ङाथर्वण भी इनका नाम आया है। भगवान् शिवमें इनकी अनन्य निष्ठा रही है। इसीलिये ये महाशैव भी कहलाते हैं। शिवजीके आशीर्वादसे ही इनकी अस्थियाँ वज्रके समान कठोर हुई थीं। इनकी पत्नीका नाम सुवर्चा था, ये सदाचार-सम्पन्न, महान् साध्वी, पतिव्रता तथा भगवान् शिवमें विशेष भक्तिसम्पन्न थीं। इन दोनोंकी शिवभक्तिसे ही प्रसन्न होकर भगवान् शिवने महासाध्वी सुवर्चाके गर्भसे 'पिप्पलाद' नामसे अवतार धारणकर जगत्का कल्याण किया और अनेक लीलाएँ कीं—

तस्मात् तस्यां महादेवो नानालीलाविशारदः।
प्रादुर्बभूव तेजस्वी पिप्पलादेति नामतः॥

(शिवपु०, शतरुद्रसं० २४।५)

भगवान् शिवके पिप्पलादावतार धारण करनेकी बड़ी ही रोचक कथा पुराणोंमें मिलती है, जिसका संक्षिप्त सार इस प्रकार है—

देवकार्यकी सिद्धि तथा वृत्रासुर आदि दैत्योंसे जगत्की रक्षाके लिये महर्षि दधीचिद्वारा अपनी अस्थियोंके दान तथा शिवकृपासे उनके लोककी प्राप्तिकी बात सर्वविश्रुत ही है। हुआ यों कि जब इन्द्र, बृहस्पति आदि देवता दधीचिसे उनकी अस्थियोंकी याचना करनेके लिये उनके आश्रमपर पहुँचे तो वहाँ देवोंको महर्षि दधीचि और सुवर्चाके दर्शन हुए। देवताओंने अत्यन्त विनम्रतासे उन्हें प्रणाम किया। महर्षि दधीचि सर्वज्ञ थे। वे अपने पास आये हुए देवताओंका अभिप्राय समझ गये। तब उन्होंने अपनी धर्मपत्नी देवी सुवर्चाको किसी कार्यके बहाने दूसरे आश्रममें भेज दिया। देवी सुवर्चा उस समय गर्भवती थीं।

देवताओंने देखा कि देवी सुवर्चा चली गयी हैं तो उन्होंने प्रार्थना करते हुए महर्षिसे कहा—'महामुने! आप सब कुछ जानते ही हैं कि हम क्यों आये हैं तथापि प्रभो! आप महान् शिवभक्त हैं, दाता हैं तथा शरणागतरक्षक हैं; वृत्र आदि दैत्योंने महान् उपद्रव मचा रखा है, सारी सृष्टि पीडित है, हमलोग भी अपने स्थानोंसे च्युत हो गये हैं, इस समय आप ही रक्षा करनेमें समर्थ हैं, आपकी अस्थियोंमें शिव-तेज तथा हमारे अस्त्र-शस्त्रोंकी दिव्य शक्ति समाहित है, अतः आप अपनी अस्थियोंका हमें दान कर दें, इनसे वज्रका निर्माण करके वृत्रासुर आदि दैत्योंका नाश करनेमें हम सक्षम हो पायेंगे।

अन्य किसी अस्त्र-शस्त्रमें ऐसी शक्ति नहीं है कि वह दैत्योंका नाश कर सके; क्योंकि वरदानके प्रभावसे वृत्रासुर इस समय अजेय हो गया है।' ऐसा कहकर देवता क़ातर-दृष्टिसे मुनिकी ओर देखने लगे।

महर्षि दधीचि देवताओंके आगमनको समझ ही रहे थे। दानका मौका आये, फिर महात्मा दधीचि कैसे चूक सकते थे। आज तो सारे ब्रह्माण्डकी रक्षा करनी है, फिर इसके लिये एक शरीर तो क्या कई जन्मोंतक शरीर-त्याग करना पड़ता तब भी महर्षिके लिये कम ही बात थी। संत तो थे ही, परहितके लिये उन्होंने प्राणोंके उत्सर्गको कम ही समझा। देवताओंकी याचनाको उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

दधीचिमुनिने अपने आराध्य भगवान् शंकरका ध्यान किया और ध्यान-समाधिसे अपने प्राणोंको खींचते हुए शिवतेजमें समाहित कर लिया। महर्षिका प्राणहीन शरीर पार्थिवकी तरह स्थित हो गया। आकाशसे पुष्पवृष्टि होने लगी। उसी समय इन्द्रने सुरभि गौको बुलाया और महर्षिके शरीरको चटवाया। तब उनकी अस्थियोंसे विश्वकर्माने वज्रादि अन्यान्य अस्त्र-शस्त्रोंको बनाया। देवराज इन्द्रद्वारा वज्रके प्रयोगसे वृत्रासुर मारा गया और देवता विजयी हुए। संसारमें सुख-शान्तिका साम्राज्य छा गया।

देवताओंके आश्रम-प्रदेशसे जानेपर जब महर्षिपत्नी सुवर्चा आश्रममें वापस आयीं तो देवताओंकी नीति उन्हें समझमें आ गयी। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि उनके परोक्षमें देवताओंने उनके प्राणाराध्यसे अस्थियोंकी याचना की और महामतिने अपनी अस्थियोंका दानकर अपने प्राणोंका उत्सर्ग कर दिया। वे कुपित हो उठीं और उन्होंने देवताओंको पुत्रहीन होनेका शाप दे डाला तथा उसी समय अत्यन्त क्रोधाविष्ट हो उन्होंने लकड़ियाँ एकत्रकर एक चिताका निर्माण किया और पतिका ध्यान करते हुए वे ज्यों ही चितापर आरूढ होनेको उद्यत हुईं; उसी समय लीलाधारी भगवान् शंकरकी प्रेरणासे आकाशवाणी हुई—

'हे देवि! तुम इस प्रकारका साहस न करो; क्योंकि तुम्हारे गर्भमें महर्षि दधीचिका ब्रह्मतेज है, जो भगवान् शंकरका अवतार-रूप है। उसकी रक्षा आवश्यक है। सगर्भाके लिये देह-त्याग करना शास्त्रविरुद्ध है'—

'सगर्भा न दहेद् गात्रमिति ब्रह्मनिदेशनम्।'

(शिवपु० शतरुद्रसं० २४।४३)

आकाशवाणी सुनकर सुवर्चाको अत्यन्त विस्मय हुआ और वे पास ही स्थित एक पीपलके वृक्षके नीचे बैठ गयीं। वहीं उन्होंने एक दिव्य बालकको जन्म दिया, जो साक्षात् शिवका अवतार ही था। उस समय उसके दिव्य तेजसे दसों दिशाएँ आलोकित हो उठीं। देवी सुवर्चाने उसे साक्षात् रुद्रावतार समझकर प्रणाम किया और रुद्रस्तवसे उसकी स्तुति की और कहा—'हे परमेशान! तुम इस पीपल (अश्वत्थ)-वृक्षके निकट चिरकालतक स्थित रहो। महाभाग! तुम समस्त प्राणियोंके लिये सुखदाता और अनेक प्रकारकी लीला करनेमें समर्थ होओ। अब इस समय पतिलोकमें जानेकी मुझे आज्ञा प्रदान करो।' ऐसा कहकर अपने पुत्रको वहीं पीपलके समीप छोड़कर पतिका ध्यान करती हुई सुवर्चा सती हो गयीं और उन्होंने पतिके साथ शिवलोक प्राप्त किया।

इसी समय सभी देवता तथा ऋषि-महर्षि वहाँ आये और दधीचि एवं सुवर्चाके उस पुत्रको साक्षात् रुद्रावतार जानकर अनेक स्तुतियोंसे उनकी प्रार्थना करने लगे तथा इसे भगवान् शिवकी ही कोई लीला समझकर आनन्दित हो गये। वहाँपर देवताओंने महान् उत्सव किया। आकाशसे पुष्पवृष्टि भी होने लगी। विष्णु आदि देवताओंने उस दिव्य बालकके सभी संस्कार कराये। ब्रह्माने प्रसन्न होकर उस बालकका 'पिप्पलाद' यह नाम रखा—

'पिप्पलादेति तन्नाम चक्रे ब्रह्मा प्रसन्नधीः।'

(शिवपु०, शतरुद्रसं० २४।६१)

चूँकि शिवावतार वह बालक पीपलके वृक्षके नीचे आविर्भूत हुआ था और माताकी आज्ञासे पीपल-वृक्षके समीप रहा तथा उसने पीपलके मुलायम पत्तोंका भक्षण भी किया, इसलिये उसका पिप्पलाद यह नाम सार्थक ही हुआ। कुछ समय वाद देवता तथा ऋषि-महर्षि सव अपने स्थानोंको चले गये। पिप्पलाद उसी पीपल-वृक्षके मूलमें स्थित रहकर

हुए उन्हें बहुत समय व्यतीत हो गया।

एक दिन पिप्पलाद मुनि पुष्पभद्रा नामक नदीमें स्नान करनेके लिये गये। वहाँ उन्हें राजा अनरण्यकी कन्या राजकुमारी पद्मा दिखलायी दी। वह पार्वतीके अंशसे प्रादुर्भूत हुई थी तथा दिव्य रूप एवं गुणोंसे सम्पन्न थी। उसे प्राप्त करनेकी आकांक्षासे महात्मा पिप्पलाद उसके पिता अनरण्यके पास गये और विवाहके लिये कन्याकी याचना की। प्रथम तो राजा अनरण्य महर्षिकी वृद्धावस्था और जर्जर शरीरको देखकर चिन्तित हुए, किंतु फिर उन्होंने उनके अलौकिक तेज और प्रभावको समझते हुए अपनी कन्या उन्हें सौंप दी।

पद्मा अपने वृद्ध पति महात्मा पिप्पलादकी अनन्य मनसे सेवा करने लगी। वह महान् पातिव्रत्य-गुणसे सम्पन्न थी।

एक बार पद्मा नदीमें स्नान करने गयी हुई थी, उसी समय उसके पातिव्रत्य-धर्मकी परीक्षा करनेके लिये साक्षात् धर्मदेवता दिव्य रूप एवं रमणीय दिव्याभरणोंको धारणकर पद्माके पास आये और पिप्पलादकी जरावस्थाका ध्यान दिलाते हुए अपनेको वरण करनेके लिये बार-बार आग्रह करने लगे; परंतु पद्मा तनिक भी डिगी नहीं। महात्मा पिप्पलाद उसके प्राणाधार भी थे। मन-वाणी तथा कर्मसे उसकी पतिमें अनन्य भक्ति थी। उसने धर्मदेवकी बड़ी भर्त्सना की और उसे क्षीण हो जानेका शाप दे दिया। धर्मदेव भयभीत हो अपने वास्तविक रूपमें प्रकट हो हाथ जोड़कर खड़े हो गये और बोले—'देवि! मैं साक्षात् धर्म हूँ। तुम्हारी पतिभक्ति देखकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ; किंतु तुम्हारे शापसे मैं भयभीत हूँ।' देवी पद्मा बोली—'धर्मदेव! मैंने अज्ञानमें ही यह सब किया है, किंतु शाप तो मिथ्या हो नहीं सकता, इसलिये तीनों युगोंमें चतुष्पाद धर्मके एक-एक पाद क्षीण रहेंगे। सत्ययुगमें तुम चारों पादोंसे स्थित रहोगे, त्रेतामें तीन पादोंसे रहोगे, द्वापरमें दो पादोंसे स्थित रहोगे तथा कलियुगमें केवल एक पादसे स्थित रहोगे। इस तरह प्रत्येक चतुर्युगीमें ऐसी ही व्यवस्था रहेगी। इसके साथ ही शापका परिहार बताकर पद्मा पुनः पतिसेवामें जानेको उद्यत हुई। तब प्रसन्न हुए धर्मदेवने वृद्ध महात्मा पिप्पलादको रूपवान्, गुणवान्, स्थिर यौवनसे युक्त पूर्ण युवा हो जानेका वर प्रदान किया और पद्माको भी चिरयौवना होकर अखण्ड सुख-सौभाग्य प्राप्त करनेका वर दिया।

वरदानके प्रभावसे पिप्पलाद तथा देवी पद्माने बहुत समयतक धर्माचरणपूर्वक गृहस्थ-जीवनका आचरण किया। इस प्रकार महाप्रभु शंकरके लीलावतार पिप्पलादने अनेक प्रकारकी लीलाएँ कीं—

एवं लीलावतारो हि शंकरस्य महाप्रभोः।
पिप्पलादो मुनिवरो नानालीलाकरः प्रभुः॥

(शिवपु०, शतरुद्रसं० २५।१४)

जब महात्मा पिप्पलादका अवतार हुआ था, उस समय उन्होंने देवताओंसे प्रश्न किया था कि 'हे देवगणो! क्या कारण है कि मेरे जन्मसे पूर्व ही पिता (दधीचि) मुझे छोड़कर चले गये और जन्म होते ही माता भी सती हो गयीं?' तब देवताओंने बताया कि शनिग्रहकी दृष्टिके कारण ही ऐसा कुयोग बना। इसपर क्रुद्ध हो पिप्पलादने शनिको नक्षत्र-मण्डलसे गिरनेका शाप दिया। तत्क्षण ही शनि आकाशसे गिर पड़े। पुनः देवताओंकी प्रार्थनापर पिप्पलादने उन्हें पूर्ववत् स्थिर हो जानेकी आज्ञा दे दी। इसीलिये महर्षि पिप्पलादके नाम-स्मरण तथा पीपल (जो भगवान् शंकरका ही रूप है)-के पूजनसे शनिकी पीडा दूर हो जाती है। महामुनि गाधि, कौशिक तथा पिप्पलाद—इन तीनोंका नाम-स्मरण करनेसे शनिग्रहकृत पीडा नष्ट हो जाती है। शंकरावतार महामुनि पिप्पलाद तथा देवी पद्माके चरित्रका श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक पाठ अथवा श्रवण शनिग्रहद्वारा किये गये अनिष्ट—पीडा आदिको दूर करनेके लिये श्रेष्ठतम उपाय है—

गाधिश्च कौशिकश्चैव पिप्पलादो महामुनिः।
शनैश्चरकृतां पीडां नाशयन्ति स्मृतास्त्रयः॥
पिप्पलादस्य चरितं पद्माचरितसंयुतम्।
यः पठेच्छृणुयाद् वापि सुभक्त्या भुवि मानवः॥
शनिपीडाविनाशार्थमेतच्चरितमुत्तमम्।

(शिवपु० शतरुद्रसं० २५।२०—२२)

द्विजेश्वरावतार

प्राचीन कालमें भद्रायु नामक एक महाप्रतापी राजा थे, वे शिवके परम भक्त थे। देवी कीर्तिमालिनी भद्रायुकी साध्वी पत्नी थीं। अपने स्वामीके समान ही कीर्तिमालिनीकी भी शिवमें परम श्रद्धा एवं निष्ठा थी। एक बार वसन्तकालमें राजा-रानी दोनों वन-विहारके लिये वनमें गये। भगवान् शिवने उनकी भक्ति तथा धर्मकी परीक्षा करनेके लिये द्विज-दम्पतीका रूप धारणकर लीला करनेकी इच्छा प्रकट की, उस समय वे स्वयं द्विज-रूपमें हो गये तथा माँ पार्वती ब्राह्मणी बन गयीं। द्विज-दम्पती उस वनमें उसी स्थानपर आये, जहाँ राजा भद्रायु और रानी कीर्तिमालिनी सुखपूर्वक बैठे हुए थे। भगवान् शंकरने अपनी लीलासे वहाँ एक मायामय व्याघ्रकी भी रचना कर ली—

अथ तद्धर्मदृढतां परीक्षन् परमेश्वरः।
लीलां चकार तत्रैव शिवया सह शंकरः॥
शिवा शिवश्च भूत्वोभौ तद्वने द्विजदम्पती।
व्याघ्रं मायामयं कृत्वाविर्भूतौ निजलीलया॥

(शिवपु०, शतरुद्रसं० २७।८-९)

अब भगवान् शंकरने लीला दिखानी प्रारम्भ की। भगवान् शंकर तथा पार्वती द्विज-दम्पतीके रूपमें व्याघ्रके भयसे भाग रहे थे और उनके पीछे व्याघ्र भयंकर गर्जना करते हुए आ रहा था। वे दोनों 'अरे कोई है, बचाओ-बचाओ'—इस प्रकार चिल्लाते-चिल्लाते, रोते-रोते वहाँ पहुँचे जहाँ राजा भद्रायु स्थित थे। वे दोनों राजासे अपने प्राणोंकी रक्षाकी प्रार्थना करने लगे। उनके आर्त स्वरको सुनकर तथा भयंकर व्याघ्रको उनके पीछे आते देखकर जबतक राजा धनुषपर बाण चढ़ाते, उतने ही समयमें उस तीक्ष्ण दाँतोंवाले व्याघ्रने ब्राह्मणी (पार्वती)-को दबोच लिया। ब्राह्मणी रोती-चिल्लाती रह गयी। राजाने अनेक अस्त्रोंसे व्याघ्रपर प्रहार किया, किंतु उसे कुछ भी असर नहीं हुआ। होता भी कैसे, उसे तो लीलाधारी भगवान्ने अपनी मायासे लीलाके लिये ही बनाया था। वह व्याघ्र ब्राह्मणीको दूरतक घसीटता चला गया। राजाके सभी अस्त्र-शस्त्र व्यर्थ साबित हुए।

ब्राह्मण राजाके क्षत्रियत्वको बहुत प्रकारसे धिक्कारने लगा कि उनके रहते उनकी पत्नीको व्याघ्र हर ले गया। 'जो शरणागतकी रक्षा न कर सके उसका जीना व्यर्थ है।' यह सुनकर राजाके मनमें अत्यन्त ग्लानि हुई। उन्हें अपना जीवन व्यर्थ लगने लगा। अतः उन्होंने प्राणोंके उत्सर्गका निश्चय किया और वृद्ध ब्राह्मणके चरणोंमें गिरकर वे क्षमा-याचना करते हुए कहने लगे—'ब्रह्मन्! अब मेरा जीवन बेकार ही है। मेरा बल, पराक्रम सब व्यर्थ गया। मैं देवी ब्राह्मणीको छुड़ा नहीं सका, अतः अब मुझे राज्य तथा समस्त वैभव आदिसे कोई प्रयोजन नहीं है, इसलिये उसे आप स्वीकारकर मुझे क्षमा करें।'

इसपर लीलारूप वृद्ध ब्राह्मणने कहा—'अरे राजन्! मेरी प्रिया ब्राह्मणी नहीं रही, इसलिये मेरे लिये सारा सुखोपभोग व्यर्थ ही है, यह तो वैसा ही है जैसे अंधेके लिये दर्पण निष्प्रयोजन ही होता है। यदि आपको देना ही है तो मेरी स्त्री नहीं रही, इसलिये आप अपनी स्त्री मुझे प्रदान करें। अन्यथा मेरे प्राण शरीरमें नहीं रह सकते।'

वृद्ध ब्राह्मणकी बात सुनकर पहले तो राजा भद्रायु बड़े ही संकटमें पड़ गये। उन्हें महान् आश्चर्य हुआ। वे कुछ निर्णय करनेमें समर्थ नहीं हुए; किंतु दूसरे ही क्षण उन्होंने निश्चय किया कि ब्राह्मणके प्राणोंकी रक्षा न करनेसे महान् पाप होगा। अतः उन्होंने पत्नीका दान करके अग्निमें प्रवेश कर जानेका निर्णय लिया। ऐसा निश्चय करके उन्होंने लकड़ियाँ एकत्र कीं तथा अग्नि प्रज्वलितकर ब्राह्मणको बुलाकर अपनी पत्नी उन्हें दे दी और फिर भगवान् शिवका स्मरण-ध्यान करके ज्यों ही राजा भद्रायु अग्निमें प्रविष्ट होनेके लिये उद्यत हुए, त्यों ही लीलाधारी भगवान् शंकर जो द्विजरूपमें थे, वे साक्षात् शिवरूपमें सामने प्रकट हो गये। उनके पाँच मुख थे, मस्तकपर चन्द्रकला सुशोभित थी, जटाएँ लटकी हुई थीं। वे हाथोंमें त्रिशूल, खट्वाङ्ग, ढाल, कुठार, पिनाक तथा वरद और अभय-मुद्रा धारण किये थे। वे वृषभपर आरूढ थे। उनका मुखमण्डल अद्भुत दिव्य प्रकाशको

आभासे प्रकाशित हो रहा था। उनका वह रूप अत्यन्त मनोरम तथा सुखदायी था।

अपने आराध्य लीलाधारी भगवान् शिवको अपने सामने पाकर राजा भद्रायुके आनन्दकी सीमा न रही। वे बार-बार प्रणाम करते हुए अनेक प्रकारसे उनकी स्तुति करने लगे। उस समय आकाशसे पुष्पवृष्टि होने लगी। देवी उमा भी वहाँ प्रकट हो गयीं।

राजाके महान् त्याग और दृढ़भक्तिसे प्रसन्न होकर शिवने भद्रायुको लीलाका रहस्य समझाते हुए कहा—'राजन्! मैं ही तुम्हारे शिव-भावकी परीक्षा लेनेके लिये द्विजरूपमें अवतरित हुआ था और वह वृद्ध ब्राह्मणी भी और कोई नहीं मेरी प्रिया ये देवी पार्वती ही थीं। वह व्याघ्र भी मैंने लीलासे ही रचा था। तुम्हारे धैर्यको देखनेके लिये ही मैंने तुम्हारी पत्नीको माँगा था। तुम्हारी पत्नी कीर्तिमालिनी और तुम्हारी भक्तिसे हम प्रसन्न हैं, कोई वर माँगो!' फिर शिवभक्तिका वरदान प्राप्तकर अन्तमें राजा भद्रायु तथा कीर्तिमालिनीने शिवसायुज्य प्राप्त किया। भद्रायुने अपने माता-पिता एवं कुल-परम्परा और कीर्तिमालिनीने भी अपने माता-पिता एवं कुल-परम्पराको शिव-भक्त होनेका वरदान प्राप्त किया।

इस प्रकार भगवान् शिवने अपने भक्तके कल्याणके लिये द्विजरूप होकर लीला की और वे द्विजेश्वर कहलाये।

~~ ० ~~

भगवान् शिवका यतिनाथ एवं हंसावतार

(श्रीआनन्दीलालजी यादव)

प्राचीन समयमें अर्बुदाचल नामक पर्वतके पास [आ]हुक नामका एक भील रहता था। उसकी पत्नीका नाम [आ]हुका था। पति-पत्नी दोनों ही शिवभक्त थे। वे दोनों [अ]पने गृहस्थधर्मका पालन करते हुए अपनी दिनचर्याका [अ]धिकांश समय शिवोपासनामें ही व्यतीत करते थे। उस [भी]ल-दम्पतीका जीवन भोलेभण्डारी शिवकी पूजा-अर्चनाके [लि]ये पूर्णतया समर्पित था।

एक दिन सन्ध्याके समय जब भगवान् भास्कर [अ]स्ताचलकी ओर बढ़ रहे थे, उस समय भगवान् शंकर [भी]लकी शिवभक्तिकी परीक्षाके लिये संन्यासीका वेष धारण [क]र उसकी कुटियापर पहुँचे। उस समय केवल आहुका ही [व]हाँ थी, उसने संन्यासीको प्रणाम करके उनका स्वागत किया। आहुक आहारकी खोजमें वनमें गया हुआ था, लेकिन थोड़ी ही देरमें वह भी कुटियापर पहुँच गया और उसने भी घर आये संन्यासीको प्रणाम किया।

संन्यासी बोले—'भील! मुझे आजकी रात बितानेके लिये जगह दे दो। मैं कल प्रातःकाल यहाँसे चला जाऊँगा।' आहुकने कहा—'यतिनाथ! हमारी यह झोपड़ी छोटी है। इसमें केवल दो व्यक्ति ही रातमें ठहर सकते हैं। अभी सूर्यास्त नहीं हुआ है और कुछ रोशनी है। अतः आप रात बितानेके लिये किसी अन्य स्थानकी तलाश कर लें।'

इस बातको सुनकर आहुका बोली—'प्राणनाथ! देखिये, ये यतिनाथ हमारे अतिथि हैं। हम गृहस्थ हैं। गृहस्थ-धर्मानुसार हमें इनकी सेवा करनी चाहिये। इन्हें किसी अन्य स्थानपर जानेके लिये नहीं कहना चाहिये। अतः रातमें आप दोनों झोपड़ीमें अंदर रहियेगा और मैं शस्त्र लेकर बाहर पहरा दूँगी।'

पत्नीकी बातें सुनकर आहुकने कहा—'तुम ठीक कहती हो कि हमें घर आये अतिथिका सत्कार करना चाहिये। अतः आज रात यति महाराज हमारे यहाँ रहेंगे। मेरे होते हुए तुम्हें बाहर पहरा देनेकी जरूरत नहीं है। आप दोनों झोपड़ीमें अंदर रहना और मैं शस्त्र लेकर बाहर पहरा देते हुए आपलोगोंकी रक्षा करूँगा।'

भोजन करनेके बाद यतिनाथ और भीलकी पत्नी तो कुटियामें अंदर सो गये तथा आहुक शस्त्र लेकर बाहर पहरा देने लगा।

रातके समय जंगली हिंसक पशुओंने आहुकको आहार बनानेका यत्न शुरू कर दिया। वह अपनी शक्तिके अनुसार पशुओंसे अपना बचाव करता रहा, लेकिन प्रारब्धानुसार जंगली पशु उसे मारकर खा गये। प्रातःकाल

आहुकाने कुटियासे बाहर निकलकर अपने पतिको मृत देखा। वह बहुत दु:खी हुई। यति भी जब कुटियासे बाहर निकले तो आहुकको मृत देखकर उन्होंने भीलनीसे कहा कि यह सब उसके कारण हुआ है।

भीलनी आहुका बोली—'यतिनाथ! आप दु:खी मत होइये। मेरे पतिकी मृत्युका प्रारब्धवश ऐसा ही विधान था। गृहस्थधर्मका पालन करते हुए इन्होंने प्राण त्याग दिये हैं। इनका कल्याण ही हुआ है। आप मेरे लिये एक चिता तैयार कर दें, जिससे मैं पत्नीधर्मका पालन करते हुए अपने पतिका अनुसरण कर सकूँ।'

आहुकाकी बातें सुनकर संन्यासीने उसके लिये एक

चिता तैयार कर दी। आहुकाने ज्यों ही चितामें प्रवेश किया, त्यों ही भगवान् शिव साक्षात् अपने रूपमें उसके समक्ष प्रकट हो गये और उसकी प्रशंसा करते हुए बोले—'तुम धन्य हो। मैं तुमपर अति प्रसन्न हूँ। तुम इच्छानुसार वर माँगो। तुम्हारे लिये मुझे कुछ भी अदेय नहीं है।'

भगवान् शंकरको अपने सामने प्रत्यक्ष देखकर और उनकी वाणी सुनकर आहुका आत्मविभोर हो गयी। उसके मुखसे वचन नहीं निकले। उसकी उस स्थितिको देखकर देवाधिदेव महादेव अतिप्रसन्न होकर बोले—'मेरा जो यह यतिरूप है, यह भविष्यमें हंसरूपमें प्रकट होगा। मेरे कारण तुम पति-पत्नीका बिछोह हुआ है। मेरा हंसस्वरूप तुम दोनोंका मिलन करायेगा। तुम्हारा पति निषधदेशमें राजा वीरसेनका पुत्र 'नल' होगा और तुम विदर्भनगरमें भीमराजकी पुत्री 'दमयन्ती' होओगी। मैं हंसावतार लेकर तुम दोनोंका विवाह कराऊँगा। तुम दोनों राजभोग भोगनेके पश्चात् वह मोक्षपद प्राप्त करोगे, जो बड़े-बड़े योगेश्वरोंके लिये भी दुर्लभ है'—इतना कहकर भगवान् शिव अन्तर्धान हो गये और भीलनी आहुकाने अपने पतिके मार्गका अनुसरण किया।

कालान्तरमें आहुक नामक भील निषधदेशके राजा वीरसेनका पुत्र 'नल' हुआ और निषधदेशका राजा बना। उस समय नलके समान सुन्दर और गुणवान् व्यक्ति पृथ्वीपर नहीं था। आहुका भीलनी विदर्भके राजा भीमकी पुत्री 'दमयन्ती' हुई। उस समय दमयन्तीके समान पृथ्वीपर सुन्दरी और गुणवती स्त्री नहीं थी। दोनोंके रूप और गुणोंकी चर्चा सर्वत्र होती थी।

नल और दमयन्तीके पूर्वजन्मके अतिथि-सत्कारजनित पुण्य एवं शिवाराधनासे प्रसन्न होकर यतिनाथ भगवान् शिव अपने वचनोंको सत्य प्रमाणित करनेके लिये हंसरूपमें प्रकट हुए। हंसावतारधारी शिव मानववाणीमें कुशलतासे बातें करने एवं संदेश पहुँचानेमें निपुण थे।

भगवान् शंकरने हंसरूपमें दमयन्तीको नलके और नलको दमयन्तीके रूप और गुणोंको बताकर उन्हें विवाह करनेकी प्रेरणा दी। विदर्भराजने दमयन्तीके विवाहके लिये स्वयंवर आयोजित किया। स्वयंवरमें दमयन्तीने नलके गलेमें वर-माला पहना दी और दोनोंका विवाह हो गया।

भगवान् शिव ही यतिनाथके वेषमें आहुक और आहुकाकी परीक्षा लेने गये थे। उनके कारण ही उनका बिछोह हुआ था और उन्होंने ही उन्हें फिर मिला दिया। भोलेभण्डारी महादेव शीघ्र ही प्रसन्न होकर अपने भक्तोंको वर देनेके लिये प्रसिद्ध हैं। शिवकी सर्वत्र पूजा-उपासना होती है। सर्वत्र शिवालय प्रतिष्ठित हैं। जहाँ 'हर-हर महादेव'की ध्वनि गूँजती है। कल्याणकारी भगवान् शिव सबका भला ही करते हैं। (शिवपुराण)

अर्धनारीश्वर भगवान् शिव

(सुश्री उषारानी शर्मा)

सकलभुवनभूतभावनाभ्यां
जननविनाशविहीनविग्रहाभ्याम्।
नरवरयुवतीवपुर्धराभ्यां
सततमहं प्रणतोऽस्मि शङ्कराभ्याम्॥

अर्थात् जो समस्त भुवनोंके प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाले हैं, जिनका विग्रह जन्म और मृत्युसे रहित है तथा जो श्रेष्ठ नर और सुन्दर नारी (अर्धनारीश्वर) रूपमें एक ही शरीर धारण करके स्थित हैं, उन कल्याणकारी भगवान् शिव और शिवाको मैं प्रणाम करता हूँ।

भगवान् शिवका अर्धनारीश्वररूप परम परात्पर जगत्पिता और दयामयी जगन्माताके आदि सम्बन्धभावका द्योतक है। सृष्टिके समय परम पुरुष अपने ही अर्द्धाङ्गसे प्रकृतिको निकालकर उसमें समस्त सृष्टिकी उत्पत्ति करते हैं—

द्विधा कृतात्मनो देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत्।
अर्द्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत्प्रभुः॥

ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप है। ईश्वरका सत्स्वरूप उनका मातृस्वरूप है और चित्स्वरूप पितृस्वरूप है। उनका तीसरा आनन्दरूप वह स्वरूप है, जिसमें मातृभाव और पितृभाव दोनोंका पूर्णरूपेण सामंजस्य हो जाता है, वही शिव और शक्तिका संयुक्त रूप अर्धनारीश्वररूप है। सत्-चित् दो रूपोंके साथ-साथ तीसरे आनन्दरूपके दर्शन अर्धनारीश्वररूपमें ही होते हैं, जो शिवका सम्भवतः सर्वोत्तम रूप कहा जा सकता है।

सत्-चित् और आनन्द—ईश्वरके इन तीन रूपोंमें आनन्दरूप अर्थात् साम्यावस्था या अक्षुब्धभाव भगवान् शिवका है। मनुष्य भी ईश्वरसे उत्पन्न उसीका अंश है, अतः उसके अंदर भी ये तीनों रूप विद्यमान हैं। इसमेंसे स्थूल शरीर उसका सदंश है तथा बाह्य चेतना चिदंश है। जब ये दोनों मिलकर परमात्माके स्वरूपकी पूर्ण उपलब्धि कराते हैं, तब उसके आनन्दांशकी अभिव्यक्ति होती है। इस प्रकार मनुष्यमें भी सत्-चित्की प्रतिष्ठासे आनन्दकी उत्पत्ति होती है।

स्त्री और पुरुष दोनों ईश्वरकी प्रतिकृति हैं। स्त्री उनका सद्रूप है और पुरुष चिद्रूप, परंतु आनन्दके दर्शन तब होते हैं, जब ये दोनों मिलकर पूर्ण रूपसे एक हो जाते हैं। शिव गृहस्थोंके ईश्वर हैं, विवाहित दम्पतीके उपास्य देव हैं। शिव स्त्री और पुरुषकी पूर्ण एकताकी अभिव्यक्ति हैं, इसीसे विवाहित स्त्रियाँ शिवकी पूजा करती हैं।

भगवान् शिवके अर्धनारीश्वर-अवतारकी कथा— पुराणोंके अनुसार लोकपितामह ब्रह्माजीने पहले मानसिक सृष्टि उत्पन्न की थी। उन्होंने सनक-सनन्दनादि अपने मानसपुत्रोंका सृजन इस इच्छासे किया था कि ये मानसी सृष्टिको ही बढ़ायें, परंतु उन्हें सफलता नहीं मिली। उनके मानसपुत्रोंमें प्रजाकी वृद्धिकी ओर प्रवृत्ति ही नहीं होती थी। अपनी मानसी सृष्टिकी वृद्धि न होते देखकर ब्रह्माजी भगवान् त्र्यम्बक सदाशिव और उनकी परमा शक्तिका हृदयमें चिन्तन करते हुए महान् तपस्यामें संलग्न हो गये। उनकी इस तीव्र तपस्यासे भगवान् महादेव शीघ्र ही प्रसन्न हो गये और अपने अनिर्वचनीय अंशसे अर्धनारीश्वरमूर्ति धारण कर वे ब्रह्माजीके पास गये—

तया परमया शक्त्या भगवन्तं त्रियम्बकम्।
सञ्चिन्त्य हृदये ब्रह्मा तताप परमं तपः॥
तीव्रेण तपसा तस्य युक्तस्य परमेष्ठिनः।
अचिरेणैव कालेन पिता सम्प्रतुतोष ह॥

ततः केन चिदंशेन मूर्तिमाविश्य कामपि।
अर्धनारीश्वरो भूत्वा ययौ देवस्स्वयं हरः॥

(शिवपुराण, वायवीय संहिता, पूर्वार्द्ध १५।७—९)

ब्रह्माजीने भगवान् सदाशिवको अर्धनारीश्वररूपमें देखकर विनीत भावसे उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया और उनकी स्तुति की। इसपर भगवान् महादेवने प्रसन्न होकर कहा—हे ब्रह्मन्! आपने प्रजाजनोंकी वृद्धिके लिये तपस्या की है, आपकी इस तपस्यासे मैं बहुत संतुष्ट हूँ और आपको अभीष्ट वर देता हूँ। यह कहकर उन देवाधिदेव ने अपने वामभागसे अपनी शक्ति भगवती रुद्राणीको प्रकट किया। उन्हें अपने समक्ष प्रकट देखकर ब्रह्माजीने उनकी स्तुति की और उनसे कहा—हे सर्वजगन्मयि देवि! मेरी मानसिक सृष्टिसे उत्पन्न देवता आदि सभी प्राणी बारंबार सृष्टि करनेपर भी बढ़ नहीं रहे हैं। मैथुनी सृष्टिहेतु नारीकुलकी सृष्टि करनेकी मुझमें शक्ति नहीं है, अतः हे देवि! अपने एक अंशसे इस चराचर जगत्की वृद्धिहेतु आप मेरे पुत्र दक्षकी कन्या बन जायँ।

ब्रह्माजीद्वारा इस प्रकार याचना किये जानेपर देवी रुद्राणीने अपनी भौंहोंके मध्य भागसे अपने ही समान एक कान्तिमती शक्ति उत्पन्न की, वही शक्ति भगवान् शिवकी आज्ञासे दक्षकी पुत्री हो गयी और देवी रुद्राणी पुनः महादेवजीके शरीरमें ही प्रविष्ट हो गयीं।

इस प्रकार भगवान् सदाशिवके अर्धनारीश्वररूपसे ही सृष्टिकी उत्पत्ति हुई। उनका यह रूप यह संदेश देता है कि समस्त पुरुष भगवान् सदाशिवके अंश और समस्त नारियाँ भगवती शिवाकी अंशभूता हैं, उन्हीं भगवान् अर्धनारीश्वरसे यह सम्पूर्ण चराचर जगत् व्याप्त है—

पुँल्लिङ्गं सर्वमीशानं स्त्रीलिङ्गं विद्धि चाप्युमाम्।
द्वाभ्यां तनुभ्यां व्याप्तं हि चराचरमिदं जगत्॥

देवाधिदेव महादेव—नटराज शिव

(डॉ० सुश्री कृष्णाजी गुप्ता)

हिन्दूधर्मके त्रिदेवोंमें शिवका स्थान महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि शिव संहारक तथा प्रलयकर्ता माने गये हैं, परंतु उनके अनन्य उपासक उन्हें ब्रह्मा एवं विष्णुसे सम्बन्धित कार्य—सृष्टि एवं स्थितिके कर्ता भी मानते हैं। शिवको अनुग्रह, प्रसाद एवं तिरोभाव करनेवाला माना गया है। शिवके ये सम्पूर्ण कृत्य पञ्चकृत्यके परिचायक हैं। संसारके लय, विलय, संरक्षण, अनुग्रह, प्रसाद, तिरोभाव आदि कृत्योंसे उनके पञ्चकृत्योंका उद्भव होता है। शिवके विविध रूप ही उनके विविध कृत्योंके परिचायक हैं। भारतीय संस्कृतिके लगभग प्रत्येक अङ्गपर शिवमहिमाकी छाप है। दर्शन, कला, नृत्य एवं साहित्यमें शिवकी व्यापकता द्रष्टव्य है। विभिन्न शास्त्रोंमें शिवके रहस्यात्मक स्वरूप चर्चाके विषय रहे हैं तथा उन्हें अनेक नामोंसे विभूषित किया गया है।

शास्त्रोंमें जितना अधिक शिवके स्वरूपोंका वर्णन है, उतना ही शिल्पियोंने उनके स्वरूपोंकी प्रतिमाएँ शिल्पित की हैं। कलाकी दृष्टिसे शिवको तीन प्रमुख रूपोंमें प्रस्तुत किया गया है—प्रतीक रूपमें (शिवलिङ्ग), वृषरूपमें (नन्दीप्रतिमा) तथा मानवीय स्वरूपमें (उग्र एवं सौम्य)। उग्र स्वरूपमें शिवको भैरव, घोर, रुद्र, पशुपति, वीरभद्र, विरूपाक्ष तथा कंकाल मूर्तियोंमें दर्शाया गया है। शिवकथानकोंमें इस स्वरूपका अङ्कन संहारमूर्तियोंके रूपमें मिलता है। शैवागमोंमें शिवकी सौम्य मूर्तियोंका वर्णन चन्द्रशेखर, वृषवाहन, उमामहेश्वर, सोम, स्कन्द

आदि रूपोंमें किया गया है। शिवका विशुद्ध स्वरूप महेश, सदाशिव और पञ्चमुखी प्रतिमा—सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष तथा ईशानके माध्यमसे निरूपित किया गया है। शिवकी स्वतन्त्र अभिव्यक्ति तो शिल्पमें बहुत अङ्कित की गयी है; साथ ही शैव, शाक्त, वैष्णव एवं सौर आदि सम्प्रदायोंका समन्वय संहारमूर्तियोंद्वारा प्रस्तुत किया गया है। दक्षिण भारतके देवालयोंमें शिवके अनुग्रह-रूपकी गङ्गाधर तथा कल्याणसुन्दर (शिव-पार्वतीपरिणय) मूर्तियाँ अत्यन्त रोचक भंगिमाओंमें शास्त्रानुरूप प्रस्तुत की गयी हैं।

शिवका एक अन्य अत्यन्त लोकप्रिय रूप 'नटराज' दक्षिणमें चोलकालीन मंदिरोंकी कांस्य-प्रतिमाओंमें प्रकट होता है। शिवको संगीत, नृत्य, नाट्ययोग, व्याख्यान आदि विद्याओंमें पारङ्गत कहा गया है।

प्रतिमाविज्ञानकी दृष्टिसे शिवका अङ्कन सश्वास है, सजीव है तथा शिल्पीकी तूलिकाका उन्मीलन देवाधिदेव महादेवके उन्मेषकारी रूपोंमें मुखर हुआ है।

हिन्दू देवताओंमें शिव ही ऐसे एकमात्र देव हैं, जो सभी नृत्योंमें पारङ्गत माने गये हैं। भरतमुनिने अपने नाट्यशास्त्रमें नृत्यकी १०८ मुद्राओंका वर्णन किया है। शैवागमोंमें शिवको १०१ मुद्राओंसे भी अधिक मुद्राओंमें नृत्य करते हुए वर्णित किया गया है। चिदम्बरम्‌के नटराज मन्दिरके गोपुरके दोनों ओर १०८ मुद्राओंमें शिवके नृत्यका अङ्कन है और प्रत्येक मुद्राको शिल्पीने भरतमुनिके नाट्यशास्त्रके अनुसार प्रस्तरपर उत्कीर्ण किया है। गोपुरमें प्रत्येकके नीचे नाट्यशास्त्रके श्लोक लिखे हुए हैं।

शिवका नटराज-स्वरूप सम्पूर्ण भारतमें लोकप्रिय रहा है, परंतु इस स्वरूपमें शिल्पकी दृष्टिसे उत्तर एवं दक्षिण भारतमें कुछ अंतर है। दक्षिण भारतके नटराज अपनी बायीं भुजामें अग्नि लिये हुए रहते हैं एवं उनके पैरोंके समीप झुका हुआ अपस्मार पुरुष मुयलक रहता है, परंतु उत्तर भारतमें ललितमुद्रामें बहुभुजी नटराजके पैरोंके समीप नन्दी अथवा नर्तनका अनुसरण करता सहचर रहता है। दक्षिण भारतमें नटराज शिवकी कांस्य प्रतिमाएँ बहुतायतसे मिलती हैं। ये प्रतिमाएँ अधिकांशतः १४-१५वीं सदी तथा उसके बादकी हैं। चोल शैलीमें नटराज शिव, विशाल प्रभामण्डलमें अंधकारके प्रतीक अपस्मार-पुरुषपर चरण रखकर नृत्य कर रहे हैं। नृत्यमें शिवकी पाँचों क्रियाओं—सृष्टि, निर्माण, स्थिति, संहार एवं तिरोभवका समावेश है।

विभिन्न पुराणोंमें नटराज शिवका उल्लेख मिलता है। विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें उल्लेख है कि जिस प्रकार प्रजापति, शतक्रतु, धन्वन्तरि, मही, संकर्षण एवं रुद्र क्रमशः इतिहास, धनुर्वेद, आयुर्वेद, फलवेद, पञ्चरात्र, पाशुपतमतके प्रवर्तक हैं, उसी प्रकार महेश्वर शिव नृत्यविज्ञानके प्रवर्तक हैं। इसीमें उल्लेख है—**'यथा चित्रे तथा नृत्ये त्रैलोक्यानुकृतिं स्मृता।'** इसमें नृत्यके विभिन्न करणके विभिन्न सुझाव दिये गये हैं। मत्स्यपुराण (२५९।१०-११)-में नटराज शिवकी दशभुजी मूर्तिका विवरण इस प्रकार आया है—

वैशाखस्थानकं कृत्वा नृत्याभिनयसंस्थितः॥
नृत्यन् दशभुजः कार्यो गजचर्मधरस्तथा।

अर्थात् दस भुजाओंवाली शिवकी नटराज-मूर्तिको विशाखस्थान मुद्रा (नृत्य या युद्धमें खड़े होनेकी वह मुद्रा जिसमें दोनों पैरोंके बीच एक हाथ जगह खाली रहती है)-में बनाया जाना चाहिये। वह नाचती हुई तथा गजचर्म धारण किये हुए हो।

शिवकी नृत्यप्रतिमाएँ भारतके विभिन्न क्षेत्रों—एलोरा, एलीफेण्टा, बादामी, काञ्चीवरम्, भुवनेश्वरके लिङ्गराज एवं खजुराहो तथा मध्यक्षेत्रमें पूरे वैभवके साथ अङ्कित हैं, परंतु इनके सुन्दर स्वरूप दक्षिण भारतकी कांस्यप्रतिमाओंमें मिलते हैं। इन प्रतिमाओंमें नटराज शिवमें विशेष प्रकारकी उन्नति हुई है, जो कलाके क्षेत्रमें उत्कृष्ट देन है। दक्षिण भारतके शिल्पियोंने शिवको विश्वनर्तकके रूपमें व्यक्त किया है।

शिवका ताण्डव-नृत्य मात्र नृत्य ही नहीं सम्पूर्ण शैवदर्शन है। श्रीमद्भागवत (१०।६२।४)-में वर्णित है कि एक बार बाणासुरने अपनी हजार भुजाओंसे वाद्य बजाकर ताण्डव-नृत्य करते शिवको प्रसन्न किया था—

'सहस्रबाहुर्वाद्येन ताण्डवेऽतोषयन्मृडम्॥'

ताण्डव-नृत्यमें शिवकी बिखरी हुई जटाएँ ब्रह्माण्ड हैं, फुफकारता हुआ सर्प वासना है, गङ्गा ज्ञान है, चन्द्र ज्योति है तथा तीसरा नेत्र अग्नि है, मुण्डमाला संसारकी निस्सारता है, पैरोंके नीचे अपस्मार-पुरुष अज्ञानका प्रतीक है। ताण्डव श्मशानका नृत्य है, भैरव या वीरभद्रकी रूपसज्जा इस नृत्यहेतु की जाती है। ताण्डवके पाँच रूप हैं—सृष्टि, (जन्म), स्थिति (सुरक्षा), तिरोभाव (माया), अनुग्रह (क्षमा) एवं संहार (विनाश), जो क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, सदाशिव एवं रुद्रके कार्य हैं और जिन्हें महादेव शिव ताण्डव-नृत्यमें क्रियान्वित करते हैं। कभी-कभी उनके साथ नन्दी, श‍ृङ्गी, ऋषि, गणेश, कार्तिकेय एवं समस्त परिवार भी नृत्य करता है। उनकी जटाएँ फैली हुई होती हैं और जटाके बायीं ओर गङ्गा तथा दायीं ओर चन्द्रमा विराजमान रहता है—**'सुधामयूखलेखया विराजमानशेखरम्'** शिव संसारके क्रमबद्ध जीवनके प्रतिपादनके लिये नृत्य करते हैं। उनका नृत्य पञ्चाक्षर 'न म शि व य' (पाँच अक्षरों)-का समुदाय है। उनके पगमें 'न', मध्यभाग (नाभि)-में 'म', स्कन्धमें 'शि', मुखमें 'व' एवं मस्तकमें 'य' है। शिवके चार हाथोंमें डमरुसे निर्माणका उदय होता है। आशाके हाथसे (अभय) रक्षा प्रवृत्त होती है, अग्निलिये हाथसे विध्वंस प्रवृत्त होता है, चौथा हाथ जो पैरकी ओर उठा हुआ रहता है, आत्माका शरणस्थल है तथा ऊपरकी ओर उठा हुआ पैर मुक्ति प्रदान करता है। तमिलसाहित्यमें 'उन्मैय-विलक्रम्' में शिवके नृत्यकी अलौकिक व्याख्या की गयी है।

यद्यपि शिव महान् नर्तकके रूपमें बहुत पहलेसे साहित्यमें वर्णित किये गये हैं तथापि उनका प्रतिमासम्बन्धी वर्णन केवल शैवागमोंमें ही मिलता है। एक सर्वोच्च नर्तकके रूपमें शिव कई स्वरूप ग्रहण करते हैं और उनकी विभिन्न मुद्राएँ नृत्यके विभिन्न स्वरूपोंको दर्शाती हैं। प्रत्येक नृत्यमें जीव-निकायके आत्यन्तिक कल्याणका लाक्षणिक अर्थ समाहित रहता है।

भगवान् शिवका राधावतार और भगवती महाकालीका कृष्णावतार

(सुश्री निशीजी द्विवेदी, एम०ए०)

[यह कथा 'महाभागवत (देवीपुराण)' से ली गयी है। विभिन्न पुराणोंमें कथाओंमें भिन्नता मिलती है। इन कथाओंकी सार्थकता कल्पभेदके अनुसार मानी जाती है अर्थात् एक कथा एक कल्पकी तथा दूसरी कथा दूसरे कल्पकी है—सम्पादक]

एक बारकी बात है देवर्षि नारदजीने भगवान् शिवजीसे निवेदन किया—प्रभो! अनेक तत्त्वज्ञानी लोग बताते हैं कि परात्पर विद्यास्वरूपिणी भगवती काली हैं। उन्होंने ही स्वयं पृथ्वीपर श्रीकृष्णरूपमें अवतार ग्रहणकर कंसादि दुष्टोंका संहार कर पृथ्वीका भार दूर किया, अतः आप बतानेकी कृपा करें कि महेश्वरीने पुरुषरूपमें क्यों अवतार धारण किया—

वदन्त्यनेकतत्त्वज्ञाः काली विद्या परात्परा।
या सैव कृष्णरूपेण क्षितावववातरत्स्वयम्॥
अभवच्छ्रोतुमिच्छामि कस्माद्देवी महेश्वरी।
पुंरूपेणावतीर्णाभूत्क्षितौ तन्मे वद प्रभो॥

(महाभागवतपुराण ४९। १. ३)

इसपर भगवान् महादेवजीने नारदजीकी जिज्ञासाको शान्त करनेके लिये उनके द्वारा पूछे गये प्रश्नका उत्तर देते हुए कहा—

वत्स! एक समयकी बात है—कौतुकी भगवान् शिव कैलासशिखरपर मन्दिरमें पार्वतीके साथ एकान्तमें विहार कर रहे थे। भगवती पार्वतीकी अचिन्त्य सुन्दरता देखकर शम्भु सोचने लगे कि 'नारी जन्म तो अत्यन्त शोभन है'—

'चेतसा चिन्तयामास नारीजन्मातिशोभनम्॥'

तदनन्तर उन्होंने पार्वतीजीसे अनुरोध किया कि मेरी इच्छा है कि पृथ्वीपर आप पुरुषरूपसे एवं मैं आपकी पत्नीके रूपमें अवतीर्ण होऊँ—

यदि मे त्वं प्रसन्नासि तदा पुंस्त्वमवाप्नुहि।
कुत्रचित्पृथिवीपृष्ठे यास्येऽहं स्त्रीस्वरूपताम्॥

(महाभागवतपुराण ४९।१६)

भगवती पार्वतीजीने भगवान् शिवजीसे कहा कि हे महादेव! मैं आपकी प्रसन्नताके लिये पृथ्वीपर वसुदेवके घरमें पुरुषरूपमें श्रीकृष्ण होकर अवश्य जन्म लूँगी और हे त्रिलोचन! मेरी प्रसन्नताके लिये आप भी स्त्रीरूपमें जन्म ग्रहण करें—

भविष्येऽहं त्वत्प्रियार्थं निश्चितं धरणीतले॥
पुंरूपेण महादेव वसुदेवगृहे प्रभो।
कृष्णोऽहं मत्प्रियार्थं स्त्री भव त्वं हि त्रिलोचन॥

इसपर श्रीशिवजीने कहा—हे शिवे! आपके पुरुषरूपसे श्रीकृष्णके रूपमें अवतरित होनेपर मैं आपकी प्राणसदृश वृषभानुपुत्री राधारूप होकर आपके साथ विहार करूँगा। साथ ही मेरी आठ मूर्तियाँ भी रुक्मिणी, सत्यभामा आदि पटरानियोंके रूपमें मृत्युलोकमें अवतरित होंगी—

पुंरूपेण जगद्धात्रि प्राप्तायां कृष्णतां त्वयि।
वृषभानोः सुता राधास्वरूपाहं स्वयं शिवे॥
तव प्राणसमा भूत्वा विहरिष्ये त्वया सह।
मूर्तयोऽष्टौ तथा मर्त्ये भविष्यन्त्युत योषितः॥

देवीने यह भी कहा कि मेरी दो सखियाँ—विजया एवं जया उस समय श्रीदाम एवं वसुदामके नामसे पुरुषरूपमें जन्म लेंगी। पूर्वकालमें विष्णुजीके साथ की गयी अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार मेरे कृष्ण होनेपर श्रीविष्णु मेरे अग्रज बलरामके रूपमें अवतार ग्रहण करेंगे। पूर्वकालमें भगवती एवं विष्णुजीने युद्धमें जिन राक्षसोंका संहार किया था; वे कंस, दुर्योधन आदिके रूपमें जन्म लेंगे। पूर्वकालमें जो महान् राक्षस मारे गये थे, वे राजाके रूपमें जन्म ग्रहण करेंगे। मेरी भद्रकालीकी मूर्ति वसुदेवके घरमें पुरुषरूपमें 'श्याम' के नामसे अवतार लेगी—

किंतु मे भद्रकाली या मूर्तिर्नवघनद्युतिः।
वसुदेवगृहे ब्रह्मन् पुंरूपेण भविष्यति॥

भगवान् विष्णु भी अपने अंशरूपसे पाण्डुपुत्र अर्जुनके रूपमें, धर्मराज अपने अंशरूपसे युधिष्ठिरके रूपमें, पवनदेव अपने अंशसे भीमसेनके रूपमें, अश्विनीकुमार अपने अंशसे माद्रीपुत्र नकुल-सहदेवके रूपमें जन्म लेंगे एवं मेरे अंशसे कृष्णा—द्रौपदीका जन्म होगा। मैं पाण्डुपुत्रोंकी विशेष सहायता करके युद्धके लिये उत्सुक रहूँगी। मैं युद्धमें महान् माया फैलाकर समरक्षेत्रमें सम्मुख उपस्थित होकर परस्पर मारनेकी इच्छावाले वीरोंका संहार करूँगी। मेरी ही मायासे मोहित होकर दुष्ट राजा एक-दूसरेको मार डालेंगे। इस युद्धमें धर्मनिष्ठ पाँच पाण्डव, बालक एवं वृद्धमात्र शेष रह जायँगे। मैं पृथ्वीको भारसे मुक्त करके पुनः यहाँ लौट आऊँगी—

'निर्भारां वसुधां कृत्वा पुनरेष्यामि चात्र तु॥'

(महाभागवतपुराण ४९।६२)

ब्रह्माजीकी प्रार्थनापर साक्षात् भगवती ही देवकार्यसिद्ध्यर्थ अपने अंशसे वसुदेवपुत्र श्रीकृष्णके रूपमें तथा भगवान् विष्णु वसुदेवके घर बलराम एवं पाण्डुपुत्र अर्जुनके रूपमें अवतीर्ण हुए—

विधिना प्रार्थिता देवी वसुदेवसुतः स्वयम्।
निजांशेनाभवत्कृष्णो देवानां कार्यसिद्धये॥
विष्णुश्चापि द्विधा भूत्वा जन्म लेभे महीतले।
वसुदेवगृहे रामो महाबलपराक्रमः॥
तथापरः पाण्डुसुतो धन्विश्रेष्ठो धनञ्जयः।

(महाभागवतपुराण ५०।१—३)

~~ ○ ~~

कस न दीनपर द्रवहु उमाबर। दारुन बिपति हरन करुनाकर॥
बेद-पुरान कहत उदार हर। हमरि बेर कस भयेहु कृपिनतर॥
कवनि भगति कीन्ही गुननिधि द्विज। होइ प्रसन्न दीन्हेहु सिव पद निज॥
जो गति अगम महामुनि गावहिं। तव पुर कीट पतंगहु पावहिं॥
देहु काम-रिपु! राम-चरन-रति। तुलसिदास प्रभु! हरहु भेद-मति॥

(विनय-पत्रिका)

~~ ○ ~~

यदि मे त्वं प्रसन्नासि तदा पुंस्त्वमवाप्नुहि।
कुत्रचित्पृथिवीपृष्ठे यास्येऽहं स्त्रीस्वरूपताम्॥

(महाभागवतपुराण ४९।१६)

भगवती पार्वतीजीने भगवान् शिवजीसे कहा कि हे महादेव! मैं आपकी प्रसन्नताके लिये पृथ्वीपर वसुदेवके घरमें पुरुषरूपमें श्रीकृष्ण होकर अवश्य जन्म लूँगी और हे त्रिलोचन! मेरी प्रसन्नताके लिये आप भी स्त्रीरूपमें जन्म ग्रहण करें—

भविष्येऽहं त्वत्प्रियार्थं निश्चितं धरणीतले॥
पुंरूपेण महादेव वसुदेवगृहे प्रभो।
कृष्णोऽहं मत्प्रियार्थं स्त्री भव त्वं हि त्रिलोचन॥

इसपर श्रीशिवजीने कहा—हे शिवे! आपके पुरुषरूपसे श्रीकृष्णके रूपमें अवतरित होनेपर मैं आपकी प्राणसदृश वृषभानुपुत्री राधारूप होकर आपके साथ विहार करूँगा। साथ ही मेरी आठ मूर्तियाँ भी रुक्मिणी, सत्यभामा आदि पटरानियोंके रूपमें मृत्युलोकमें अवतरित होंगी—

पुंरूपेण जगद्धात्रि प्राप्तायां कृष्णतां त्वयि।
वृषभानोः सुता राधास्वरूपाहं स्वयं शिवे॥
तव प्राणसमा भूत्वा विहरिष्ये त्वया सह।
मूर्तयोऽष्टौ तथा मर्त्ये भविष्यन्त्युत योषितः॥

देवीने यह भी कहा कि मेरी दो सखियाँ—विजया एवं जया उस समय श्रीदाम एवं वसुदामके नामसे पुरुषरूपमें जन्म लेंगी। पूर्वकालमें विष्णुजीके साथ की गयी अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार मेरे कृष्ण होनेपर श्रीविष्णु मेरे अग्रज बलरामके रूपमें अवतार ग्रहण करेंगे। पूर्वकालमें भगवती एवं विष्णुजीने युद्धमें जिन राक्षसोंका संहार किया था; वे कंस, दुर्योधन आदिके रूपमें जन्म लेंगे। पूर्वकालमें जो महान् राक्षस मारे गये थे, वे राजाके रूपमें जन्म ग्रहण करेंगे। मेरी भद्रकालीकी मूर्ति वसुदेवके घरमें पुरुषरूपमें 'श्याम' के नामसे अवतार लेगी—

किंतु मे भद्रकाली या मूर्तिर्नवघनद्युतिः।
वसुदेवगृहे ब्रह्मन् पुंरूपेण भविष्यति॥

भगवान् विष्णु भी अपने अंशरूपसे पाण्डुपुत्र अर्जुनके रूपमें, धर्मराज अपने अंशरूपसे युधिष्ठिरके रूपमें, पवनदेव अपने अंशसे भीमसेनके रूपमें, अश्विनीकुमार अपने अंशसे माद्रीपुत्र नकुल-सहदेवके रूपमें जन्म लेंगे एवं मेरे अंशसे कृष्णा—द्रौपदीका जन्म होगा। मैं पाण्डुपुत्रोंकी विशेष सहायता करके युद्धके लिये उत्सुक रहूँगी। मैं युद्धमें महान् माया फैलाकर समरक्षेत्रमें सम्मुख उपस्थित होकर परस्पर मारनेकी इच्छावाले वीरोंका संहार करूँगी। मेरी ही मायासे मोहित होकर दुष्ट राजा एक-दूसरेको मार डालेंगे। इस युद्धमें धर्मनिष्ठ पाँच पाण्डव, बालक एवं वृद्धमात्र शेष रह जायँगे। मैं पृथ्वीको भारसे मुक्त करके पुनः यहाँ लौट आऊँगी—

'निर्भारां वसुधां कृत्वा पुनरेष्यामि चात्र तु॥'

(महाभागवतपुराण ४९।६२)

ब्रह्माजीकी प्रार्थनापर साक्षात् भगवती ही देवकार्यसिद्ध्यर्थ अपने अंशसे वसुदेवपुत्र श्रीकृष्णके रूपमें तथा भगवान् विष्णु वसुदेवके घर बलराम एवं पाण्डुपुत्र अर्जुनके रूपमें अवतीर्ण हुए—

विधिना प्रार्थिता देवी वसुदेवसुतः स्वयम्।
निजांशेनाभवत्कृष्णो देवानां कार्यसिद्धये॥
विष्णुश्चापि द्विधा भूत्वा जन्म लेभे महीतले।
वसुदेवगृहे रामो महाबलपराक्रमः॥
तथापरः पाण्डुसुतो धन्विश्रेष्ठो धनञ्जयः।

(महाभागवतपुराण ५०।१—३)

~~~ ० ~~~

कस न दीनपर द्रवहु उमाबर। दारुन बिपति हरन करुनाकर॥
बेद-पुरान कहत उदार हर। हमरि बेर कस भयेहु कृपिनतर॥
कवनि भगति कीन्ही गुननिधि द्विज। होइ प्रसन्न दीन्हेहु सिव पद निज॥
जो गति अगम महामुनि गावहिं। तव पुर कीट पतंगहु पावहिं॥
देहु काम-रिपु! राम-चरन-रति। तुलसिदास प्रभु! हरहु भेद-मति॥

(विनय-पत्रिका)

~~~ ० ~~~

रुद्रावतार श्रीहनुमान्

(श्रीवासुदेवजी त्रिपाठी 'हिन्दू')

महाबीर बिनवउँ हनुमाना। राम जासु जस आप बखाना॥
कनक भूधराकार सरीरा। समर भयंकर अतिबल बीरा॥

(रा०च०मा० १।१७।१०, ५।१६।८)

सृष्टिके संहारक भगवान् रुद्र ही अपने प्रिय श्रीहरिकी सेवाका पर्याप्त अवसर प्राप्त करने तथा कठिन कलिकालमें भक्तोंकी रक्षाकी इच्छासे ही पवनदेवके औरस पुत्र और वानरराज केसरीके क्षेत्रज पुत्र हनुमान्‌के रूपमें अवतरित हुए—

जेहि सरीर रति राम सों सोइ आदरहिं सुजान।
रुद्रदेह तजि नेहबस बानर भे हनुमान॥

(दोहावली १

फिर उनके बल, बुद्धि, पराक्रम तथा भक्ति आ गुणोंका पार पा ही कौन सकता है?

असीम बल एवं पराक्रमके निधान रुद्रावतार केसरी बाललीला करते हुए उदयकालीन सूर्यको फल समझ भक्षण करनेके लिये शून्यमें छलाँग लगा दी, जिससे स लोकोंमें हाहाकार मच गया तब देवराज इन्द्रने आवे आकर वज्रसे इनपर प्रहार कर दिया, जिससे इनकी ट टेढ़ी हो गयी और ये बड़े वेगसे पृथ्वीपर गिरकर अ हो गये, जिससे कुपित होकर पवनदेवने सम्पूर्ण ब्रह्माण अपना संचरण रोककर त्राहि-त्राहि मचा दी।

तब पवनदेवको प्रसन्न करनेके लिये ब्रह्मादि समस्त देवोंने हनुमान्‌को समस्त दिव्य अस्त्र-शस्त्रोंके प्रभावसे मुक्तकर इच्छामृत्युका वरदान दिया—

प्रसादिते च पवने ब्रह्मा तुभ्यं वरं ददौ।
अशस्त्रवध्यतां तात समरे सत्यविक्रम॥
वज्रस्य च निपातेन विरुजं त्वां समीक्ष्य च।
सहस्रनेत्रः प्रीतात्मा ददौ ते वरमुत्तमम्॥
स्वच्छन्दतश्च मरणं तव स्यादिति वै प्रभो।

(वा०रा० ४।६६।२७—२९)

तत्पश्चात् विद्याध्ययनके लिये कपिवर हनुमान्‌जीने सूर्यदेवको अपना गुरु मानकर जिस आश्चर्यपूर्ण तरीकेसे विद्याग्रहण किया, वह तो समस्त लोकोंको चकित कर देनेवाला है—

भानुसों पढ़न हनुमान गये भानु मन-
अनुमानि सिसुकेलि कियो फेर-फारसो।
पाछिले पगनि गम गगन मगन-मन,
क्रमको न भ्रम, कपि बालक-बिहार सो॥
कौतुक बिलोकि लोकपाल हरि हर बिधि,
लोचननि चकाचौंधी चित्तनि खभार सो।
बल कैधौं बीररस, धीरज कै, साहस कै,
तुलसी सरीर धरे सबनिको सार सो॥

तदनन्तर भक्तिरसका पूर्ण आनन्द लेनेके लिये तथा अपने अवतारका यथेच्छ लाभ उठानेके लिये शङ्करावतार हनुमान्‌जी एक साधारण वानरकी भाँति अज्ञ बनकर भगवान्‌के चरणकमलोंमें गिर पड़े और अतिसंक्षिप्त शब्दोंसे ही उन्होंने पूरी बात कह दी—

सेवक सुत पति मातु भरोसें। रहइ असोच बनइ प्रभु पोसें॥

(रा०च०मा० ४।३।४)

अपने प्रेमके वशीभूत कर उन्होंने भगवान् श्रीरामको नरलीला छोड़ अपना स्वरूप प्रकट करनेपर विवश कर दिया। हनुमान्‌जीके हृदयमें वह प्रेम देखकर जिसके वशमें वे सदा रहते हैं, प्रभु श्रीराम बोल ही पड़े—

सुनु कपि जियँ मानसि जनि ऊना। तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना॥
समदरसी मोहि कह सब कोऊ। सेवक प्रिय अनन्यगति सोऊ॥

(रा०च०मा० ४।३।७-८)

इसी प्रकार समुद्र लाँघते समय मैनाकपर्वतद्वारा विश्रामकी प्रार्थना करनेपर हनुमान्‌जीने जो शब्द कहे, वे उनके कठोर सेवकत्वको भलीभाँति दर्शाते हैं—

हनूमान तेहि परसा कर पुनि कीन्ह प्रनाम।
राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम॥

(रा०च०मा० ५।१)'

श्रीरामजीकी दास्यभक्तिके रसमें कपिवर हनुमान्‌जी इस तरह डूबे रहते हैं कि उन्हें अपने अस्तित्व, बल, स्वरूपका किञ्चित् भी बोध नहीं रहता; जैसा कि समुद्रतटपर वानरोंके विचार-मन्थनके समय द्रष्टव्य है और वे जब भी अपने स्वरूपके विषयमें सोचते तो केवल भगवान् श्रीरामके दासके रूपमें।

भगवद्भक्त विभीषणसे मिलनेपर उन्होंने अपना नाम बताकर शेष परिचय इस प्रकार दिया—

सुनहु बिभीषन प्रभु कै रीती। करहिं सदा सेवक पर प्रीती॥
कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबहीं बिधि हीना॥
प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा॥
अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर॥

(रा०च०मा० ५।७।६—८, दो० ७)

उनकी प्रगाढ़ दास्यभक्तिके कारण स्वयं भगवान् श्रीराम हनुमान्‌जीके इस प्रकार कृतज्ञ हो गये कि स्वयंको उनका आजीवन ऋणी मान लिया—

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी॥
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मन माहीं॥
सुनि प्रभु बचन बिलोकि मुख गात हरषि हनुमंत।
चरन परेउ प्रेमाकुल त्राहि त्राहि भगवंत॥
बार बार प्रभु चहइ उठावा। प्रेम मगन तेहि उठब न भावा॥
प्रभु कर पंकज कपि कें सीसा। सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा॥

(रा०च०मा० ५।३२।५—७, दो० ३२, ३३।१-२)

और कुछ सावधान होनेपर शङ्करजीके मुखसे निकल ही पड़ा—

यत्पादपद्मयुगलं तुलसीदलाद्यैः
सम्पूज्य विष्णुपदवीमतुलां प्रयान्ति।
तेनैव किं पुनरसौ परिरब्धमूर्ती
रामेण वायुतनयः कृतपुण्यपुञ्जः॥

(अध्यात्मरा० ५।५।६४)

अर्थात् हे पार्वति! जिनके चरणारविन्दयुगलका तुलसीदल आदिसे पूजन कर भक्तजन अतुलनीय विष्णुपदको प्राप्त कर लेते हैं, उन्हीं श्रीरामने जिनके शरीरका आलिङ्गन किया, उन पवित्र कर्म करनेवाले पवनपुत्रके विषयमें क्या कहा जाय?

कपिकेसरीकी उपाधिसे विभूषित हनुमान्‌जी श्रीरामके भक्त तो हैं ही, साथ ही अतुलित बलके धाम भी हैं।

वाल्मीकिरामायण (किष्किन्धाकाण्ड, सर्ग ६७)-में हनुमान्‌जीके उस स्वरूपका विस्तारके साथ बहुत प्रभावशाली चित्रण किया गया है, जिसका भाव इस प्रकार है—

जैसे पर्वतकी विस्तृत कन्दरामें सिंह अँगड़ाई लेता है, उसी प्रकार वायुदेवताके औरस पुत्रने उस समय अपने शरीरको अँगड़ाई ले-लेकर बढ़ाया। वे वानरोंके बीचसे उठकर खड़े हो गये। उनके सम्पूर्ण शरीरमें रोमाञ्च हो आया। इस अवस्थामें हनुमान्‌जीने बड़े-बूढ़े वानरोंको प्रणाम करके इस प्रकार कहा—

श्रेष्ठ वानरो! उदयाचलसे चलकर अपने तेजसे प्रज्वलित होते हुए सूर्यदेवको मैं अस्त होनेसे पहले ही छू सकता हूँ

वाल्मीकीय रामायण (७।३६।४४)-में स्पष्ट कहा गया है—

पराक्रमोत्साहमतिप्रताप-
सौशील्यमाधुर्यनयानयैश्च ।
गाम्भीर्यचातुर्यसुवीर्यधैर्यै-
र्हनूमतः कोऽप्यधिकोऽस्ति लोके॥

अर्थात् संसारमें ऐसा कौन है जो पराक्रम, उत्साह, बुद्धि, प्रताप, सुशीलता, मधुरता, नीति-अनीतिके विवेक, गम्भीरता, चातुर्य, उत्तम बल और धैर्यमें हनुमान्‌जीसे बढ़कर हो।

अपने इन्हीं गुणोंके कारण भक्तराज हनुमान्‌जी श्रीरामजीके सर्वाधिक प्रिय रहे एवं अन्त समयतक अपने साथ रखनेके पश्चात् भगवान् श्रीरामने इन्हें धर्म एवं भक्तोंके रक्षार्थ सदेह पृथ्वीपर रुकनेके लिये कहा—

मत्कथाः प्रचरिष्यन्ति यावल्लोके हरीश्वर॥
तावद् रमस्व सुप्रीतो मद्वाक्यमनुपालयन्।

(वा०रा० ७।१०८।३३-३४)

अर्थात् हरीश्वर! जबतक संसारमें मेरी कथाका प्रचलन रहे, तबतक तुम भी मेरी आज्ञाका पालन करते हुए प्रसन्नतापूर्वक विचरते रहो।

तभीसे रुद्रावतार हनुमान्‌जी सर्वव्यापक रूपसे पृथ्वीपर विराजमान रहते हुए भक्तोंका कल्याण करते हैं—

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं
तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्।
वाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं
मारुतिं नमत राक्षसान्तकम्॥

श्रीमद्भागवतमें वेदव्यासजीने बताया है कि किम्पुरुषवर्षमें रहते हुए श्रीहनुमान्‌जी अपने आराध्य श्रीरामके मन्त्रका जप करते हुए भक्तोंके कल्याणके लिये सदा ही तत्पर रहते हैं।

कलियुगमें आज भी पवनकुमारकी कृपासे अनेक भक्त सर्वस्वतन्त्र एवं निर्भीक रहते हैं। तन्त्रग्रन्थोंमें हनुमान्‌जीके पञ्चमुखी, सप्तमुखी एवं एकादशमुखी स्वरूपका भी वर्णन है तथा उसकी साधना-सामग्रीसे तन्त्रशास्त्रोंका एक बृहद् भाग भरा हुआ है।

हनुमान्‌जीकी कृपा होनेपर समस्त व्याधियोंसे छुटकारा प्राप्त होता है एवं असम्भव कार्य भी सुगम होते देखे जाते हैं। भयंकर-से-भयंकर तन्त्र, मन्त्र, यन्त्र, भूत-प्रेतादि भी हनुमान्‌जीके आनके सम्मुख टिक नहीं पाते—

भूत पिसाच निकट नहिं आवै। महाबीर जब नाम सुनावै॥
दुर्गम काज जगत के जेते। सुगम अनुग्रह तुम्हरे तेते॥

इस कलियुगमें समस्त सिद्धियोंके दाता हनुमान्‌जी ही हैं। अपने भक्तोंके रक्षक हनुमान्‌जीकी शरण प्राप्त कर लेनेपर संसारकी कोई भी व्याधि तथा कर्मसिद्धान्तका जाल आड़े नहीं आता।

प्रलयकालमें जिनके कोपसे सम्पूर्ण सृष्टि नष्ट हो जाती है, जिनकी क्रोधाग्नि त्रैलोक्यको दग्ध कर देती है, ऐसे रुद्रके अवतार उन हनुमान्‌जीसे बढ़कर हो ही कौन सकता है?

जाके गति है हनुमानकी।
ताकी पैज पूजि आई, यह रेखा कुलिस पषानकी॥

ताकिहै तमकि ताकी ओर को।
जाको है सब भाँति भरोसो कपि केसरी-किसोरको॥

[illegible]

श्रीहनुमदवतारमें सेवा, चरित्र और प्रेमका आदर्श

(पं० श्रीविष्णुदत्तरामचन्द्रजी दुबे)

श्रीहनुमान्‌जी रुद्रावतार हैं। गोस्वामीजीने दोहावली (दोहा १४२)-में लिखा है—

जेहि सरीर रति राम सों सोइ आदरहिं सुजान।
रुद्रदेह तजि नेहबस बानर भे हनुमान॥

अर्थात् चतुर लोग उसी शरीरका आदर करते हैं, जिस शरीरसे श्रीरामजीमें प्रेम होता है। इस प्रेमके कारण ही श्रीशंकरजी अपने रुद्रदेहको त्यागकर वानररूप हनुमान् बन गये।

चैत्र शुक्ल १५, मंगलवार शुभ मुहूर्तमें भगवान् शिव अपने अंश ग्यारहवें रुद्रसे माता अञ्जनीके गर्भसे पवनपुत्र हनुमान्‌के रूपमें इस धरापर अवतरित हुए। अञ्जनी केसरी नामक वानरकी पत्नी थीं। कुछ लोग इनका प्राकट्यकाल कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी और कुछ चैत्र शुक्ल पूर्णिमा मानते हैं। कल्पभेदसे एवं भक्तकी भावनासे सब सत्य है।

श्रीहनुमान्‌जी नवधा-भक्तिमें दास्यभक्तिके आचार्य माने जाते हैं। स्वामीकी आज्ञाका पालन कर उन्हें सुख पहुँचाना सेवकका परम धर्म है। उसीके आदर्श हैं श्रीहनुमान्‌जी।

कहते हैं साधनाके द्वारा सभी सिद्धियाँ इनके वशमें हैं तथा ये *'अष्ट सिद्धि नौ निधि के दाता'* भी हैं। ये ज्ञानियोंमें अग्रगण्य तथा चारों वेदोंके ज्ञाता हैं।

हनुमान्‌जीकी माता परम तपस्विनी सद्गुणोंसे युक्त एवं सदाचारिणी थीं। दिनमें वे पूजनके पश्चात् एवं रात्रिमें शयनके पूर्व हनुमान्‌जीको पुराणोंकी कथाएँ एवं महापुरुषोंके चरित्र सुनातीं और बार-बार बालक हनुमान्‌जीसे पूछतीं। रामकथा सुनते-सुनते हनुमान्‌जी भावविभोर हो जाते और उनके नेत्रोंसे प्रेमाश्रुओंकी धारा बहने लगती। प्रभु श्रीरामका ध्यान करनेके लिये वे कभी अरण्य, पर्वतकी गुफा, नदी-तटपर चले जाते। ये बचपनमें ही सूर्यको निगल गये—*'बाल समय रबि भक्षि लियो।'*

हनुमान्‌जीके गुणोंके सम्बन्धमें श्रीराम महर्षि अगस्त्यजीसे कहते हैं—

शौर्यं दाक्ष्यं बलं धैर्यं प्राज्ञता नयसाधनम्।
विक्रमश्च प्रभावश्च हनूमति कृतालयाः॥
(वा०रा० ७।३५।३)

शूरता, दक्षता, बल, धैर्य, बुद्धिमत्ता, नीति, पराक्रम तथा प्रभुत्व—इन सभी सद्गुणोंने श्रीहनुमान्‌जीके भीतर घर कर रखा है।

इसीका समर्थन करते हुए महर्षि अगस्त्य कहते हैं—संसारमें ऐसा कौन है जो पराक्रम, उत्साह, बुद्धि, प्रताप, सुशीलता, मधुरता, नीति-अनीतिके विवेक, गम्भीरता, चतुरता, उत्तम बल और धैर्यमें हनुमान्‌जीसे बढ़कर हो?

युद्धभूमिमें जब रामानुज लक्ष्मणको अमोघ शक्ति लगी तब हनुमान्‌जी लङ्कासे सुषेण वैद्यको उनके भवनसहित ले आये, पुनः उनकी आज्ञासे द्रोणपर्वतके सहित सञ्जीवनी बूटी ले आये जिसे सुँघानेसे लक्ष्मणजीकी मूर्च्छा दूर हुई। यह हनुमान्‌जीके अतुलित बलका द्योतक है।

रावणके कहनेसे अहिरावण श्रीराम-लक्ष्मणको लेकर देवीके सम्मुख बलि चढ़ानेके लिये पातालालोक चला गया, जब यह बात हनुमान्‌जीको ज्ञात हुई, वे उसी क्षण पातालमें पहुँचे और अहिरावणका वधकर राम-लक्ष्मणको लेकर वानर-भालुओंकी सभाके बीच उपस्थित हो गये। यह हनुमान्‌जीका अपने स्वामीके प्रति अनन्य प्रेम एवं कर्तव्यनिष्ठा थी।

समुद्र पारकर जब हनुमान्‌जीने लङ्कामें प्रवेश किया, उस समय अतिलघुरूप धारण कर अशोकवाटिकामें अशोकवृक्षके पत्तोंमें छिपकर जगज्जननी सीताजीके दर्शन किये और अपने इष्ट श्रीरामका सारा वृत्तान्त सुनाकर मुद्रिका उन्हें दी। सीताजीने भक्तप्रवर हनुमान्‌जीको अजर-अमर, गुणनिधान होने तथा प्रभुकी प्रसन्नताप्राप्तिके अनेक आशीर्वाद दिये। तत्पश्चात् बृहदाकार रूप धारण कर उन्होंने सारी सोनेकी लङ्का जलाकर भस्म कर दी, किंतु विभीषणके भवन एवं सीताजीपर आँचतक नहीं आयी।

उन्होंने भगवान् श्रीराम एवं सुग्रीवकी प्रत्येक आज्ञाका पालन किया। श्रीरामकी सेवामें प्रधानरूपसे सहायता की और अनेक राक्षसोंका संहार किया।

श्रीरामके अभिषेकके लिये ये चारों समुद्रों और पाँच सौ नदियोंसे जल ले आये थे। यह इनकी असाधारण

ही भाग जाते हैं। '*भूत पिसाच निकट नहि आवै। महाबीर जब नाम सुनावै॥*' भयंकर विष तथा व्याधि, भय या गृहसंकटके अवसरपर हनुमद्विग्रहके सम्मुख दीपदानका विधान है। उनके स्मरणमात्रसे अनेक रोगोंका प्रशमन होता है। व्याधिनाशके लिये तथा दुष्ट ग्रहोंकी दृष्टिसे रक्षाके लिये चौराहेपर भी दीपदानकी परम्परा है।

जो सदा स्नेहपूर्वक श्रीरामनाम जप करते हैं उनके ऊपर हनुमान्‌जी विशेष कृपा करते हैं। उनके लिये वे कल्पवृक्ष बनकर उनके सभी मनोरथोंको सफल करते रहते हैं। उन्होंने स्वयं कहा है—

ये जपन्ति सदा स्नेहान्नाम माङ्गल्यकारणम्।
श्रीमतो रामचन्द्रस्य कृपालोर्मम स्वामिनः॥
तेषामर्थे सदा विप्र प्रदाताहं प्रयत्नतः।
ददामि वाञ्छितं नित्यं सर्वदा सौख्यमुत्तमम्॥

विप्रवर! जो मानव मेरे स्वामी दयासागर श्रीमान् रामचन्द्रजीके मङ्गलकारी नामका प्रेमपूर्वक सदा जप करते हैं, उनके लिये मैं सदा प्रयत्नपूर्वक प्रदाता बना रहता हूँ। नित्य उनकी अभिलाषापूर्ति करते हुए उन्हें उत्तम सुख ता रहता हूँ। इस प्रकार श्रीहनुमान्‌जी स्वयं तो नाम-ीर्तनमें सदा निरत रहते ही हैं, अन्य कीर्तन-प्रेमियोंकी भी दा सहायता करते रहते हैं।

हनुमान्‌जीके निम्नलिखित बारह नामोंका जो रात्रिमें निके समय या प्रातःकाल उठनेपर अथवा यात्रारम्भके मय पाठ करता है, उस व्यक्तिके समस्त भय दूर हो जाते हैं, वह व्यक्ति युद्धके मैदानमें, राजदरबारमें या भीषण संकटमें—जहाँ कहीं भी हो, उसे कोई भय नहीं होता। इसलिये हनुमान्‌जीको संकटमोचन कहा जाता है।

हनुमानञ्जनीसूनुर्वायुपुत्रो महाबलः।
रामेष्टः फाल्गुनसखः पिङ्गाक्षोऽमितविक्रमः॥
उदधिक्रमणश्चैव सीताशोकविनाशनः।
लक्ष्मणप्राणदाता च दशग्रीवस्य दर्पहा॥

(आनन्दरामायण ८। १३। ८-९)

किम्पुरुषवर्ष एवं साकेतमें इनका नित्य निवास है।

प्रभु श्रीरामकी आज्ञासे पुष्पकविमान जब काञ्चनगिरिपर हनुमान्‌जीकी माँ अञ्जनीके दर्शनार्थ उतरा, सभीने अञ्जनीके चरणोंमें प्रणाम किया। माता अञ्जनीको अपने भाग्यपर गर्व हुआ कि जगदीश्वर प्रभु श्रीराम और जगदम्बा सीता माँको मेरा पुत्र हनुमान् मेरे द्वारपर ले आया, मैं ही यथार्थ पुत्रवती हूँ। फिर उन्होंने हनुमान्‌जीसे कहा—बेटा, कहते हैं कि पुत्र मातासे कभी उऋण नहीं हो पाता, किंतु तू मुझसे उऋण हो गया, तूने अपना जीवन और जन्म सफल कर लिया।

प्रत्येक मंगलवार और शनिवारको श्रीहनुमान्‌जीके दर्शन करने तथा हनुमानचालीसाका पाठ करनेसे साधकका परम कल्याण होता है। श्रीहनुमान्‌जीको शुद्ध घृतमिश्रित सिन्दूरके अनुलेपनकी और चोला चढ़ानेकी परम्परा है। रामभक्त श्रीपवनकुमारको प्रणाम है—

प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यानघन।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर॥

भगवान् शिवके 'कृष्णदर्शन' अवतारकी कथा

महाराज नभग श्राद्धदेव मनुके पुत्र और परम वैष्णव जर्षि अम्बरीषके पितामह थे। ये बड़े विद्वान् और ातेन्द्रिय थे। इन्हीं महाराज नभगको सनातन ब्रह्मतत्त्वका न देनेके लिये भगवान् सदाशिवने 'कृष्णदर्शन' नामक वतार लिया। यह कथा शिवपुराणमें प्राप्त होती है, जो इस कार है—

नभग जब विद्याध्ययन करते हुए गुरुकुलमें निवास र रहे थे, तब इक्ष्वाकु आदि उनके भाइयोंने उन्हें नैष्ठिक ह्मचारी मानकर उनको पैतृक सम्पत्तिमें भाग न देकर मस्त सम्पत्ति आपसमें बाँट ली और अपना-अपना भाग लेकर वे उत्तम रीतिसे राज्य करने लगे। गुरुकुलसे वेदोंका साङ्गोपाङ्ग अध्ययन करके वापस लौटनेपर नभगने भाइयोंसे अपना हिस्सा माँगा तो भाइयोंने कहा कि बँटवारेके समय हम तुम्हारा हिस्सा लगाना भूल गये हैं, अतः तुम पिताजीको ही अपने हिस्सेमें ले लो।

नभगने हिस्सेके विषयमें भाइयोंद्वारा कही बात पितासे कही तो श्राद्धदेव मनुने कहा—'बेटा! भाइयोंने तुम्हें यह बात ठगनेके लिये कही है, मैं तुम्हारे लिये भोगसाधक उत्तम दाय नहीं बन सकता, तथापि मैं तुम्हारी जीविकाका एक उपाय बताता हूँ, सुनो। इन समय

प्रकार है—

पाण्डवोंके वनवास-कालकी बात है। अर्जुन शस्त्रास्त्रोंकी प्राप्तिके लिये इन्द्रकीलपर्वतपर भगवान् शंकरकी तपस्या कर रहे थे। वे भगवान् सदाशिवके पञ्चाक्षर मन्त्रका जप करते हुए तपमें सन्नद्ध थे। उनकी घोर तपस्या तथा अपना हितकारी उद्देश्य देखकर देवताओंने भगवान् शंकरसे उन्हें वर देनेकी प्रार्थना की। उधर जब दुर्योधनको अर्जुनकी तपस्याकी बात ज्ञात हुई, तो उस दुरात्माने मूक नामक एक मायावी राक्षसको उनका वध करनेके लिये भेजा।

वह दुष्ट असुर शूकरका वेश धारण कर अर्जुनके समीप पहुँचा और वहाँके पर्वतशिखरों और वृक्षोंको ढहाने लगा। उसकी भयंकर गुर्राहटसे दसों दिशाएँ गूँज रही थीं। यह देखकर भक्तहितकारी भगवान् शंकर किरातवेश धारणकर प्रकट हुए।

शूकरको अपनी ओर आते देखकर अर्जुनने उसपर शर-संधान किया, ठीक उसी समय किरातवेशधारी भगवान् शंकरने भी अपने भक्त अर्जुनकी रक्षाहेतु उस शूकररूपधारी दानव मूकपर अपना बाण चलाया। दोनों बाण एक ही साथ उस शूकरके शरीरमें प्रविष्ट हो गये और वह वहीं गिरकर मर गया। उसे मारकर अर्जुनने अपने आराध्य भगवान् शंकरका ध्यान किया और अपने बाणको उठानेके लिये उस शूकरके पास पहुँचे। इतनेमें ही किरातवेशधारी शिवका एक गण भी वनेचरके रूपमें बाण लेनेके लिये आ पहुँचा और अर्जुनको बाण उठानेसे रोककर कहने लगा कि यह मेरे स्वामीका बाण है, जिसे उन्होंने तुम्हारी रक्षाके लिये चलाया था, परंतु तुम तो इतने कृतघ्न हो कि उपकार माननेकी बजाय उनके बाणको ही चुराये ले रहे हो। यदि तुझे बाणकी ही आवश्यकता है तो मेरे स्वामीसे माँग ले, वे ऐसे बहुतसे बाण तुझे दे सकते हैं।

अर्जुनने कहा—यह मेरा बाण है, इसपर मेरा नाम अंकित है। इस बाणको मैं तुझे ले जाने देकर अपने कुलकी कीर्तिमें दाग नहीं लगवा सकता। भगवान् शंकरकी कृपासे मैं स्वयं अपनी रक्षा करनेमें समर्थ हूँ। अगर तेरे स्वामीमें बल है तो वे आकर मुझसे युद्ध करें।

दूतने अर्जुनकी कही हुई सारी बातें जाकर अपने स्वामीसे विशेषरूपसे निवेदन कर दीं, जिसे सुनकर किरातवेशधारी भगवान् शिव अपने भीलरूपी गणोंकी महान् सेना लेकर अर्जुनके सम्मुख आ गये। उन्हें आया हुआ देखकर अर्जुनने भगवान् शिवका ध्यानकर अत्यन्त

भीषण संग्राम छेड़ दिया। उस घोर युद्धमें अर्जुनने शिवजीका ध्यान किया, जिससे उनका बल बढ़ गया। तदनन्तर उन्होंने किरातवेशधारी शिवके दोनों पैर पकड़कर उन्हें घुमाना शुरू कर दिया। लीलास्वरूपधारी लीलामय भगवान् शिव भक्तपराधीन होनेके कारण हँसते रहे। तत्पश्चात् उन्होंने अपना वह सौम्य एवं अद्भुत रूप प्रकट किया, जिसका अर्जुन चिन्तन करते थे।

किरातके उस सुन्दर रूपको देखकर अर्जुनको महान् विस्मय हुआ। वे लज्जित होकर पश्चात्ताप करने लगे। उन्होंने मस्तक झुकाकर भगवान् शिवको प्रणाम किया और खिन्नमन हो अपनेको धिक्कारने लगे। उन्हें पश्चात्ताप करते देखकर भक्तवत्सल भगवान् महेश्वरका चित्त प्रसन्न हो गया। उन्होंने कहा—पार्थ! तुम तो मेरे परम भक्त हो, यह तो मैंने तुम्हारी परीक्षा लेनेके लिये ऐसी लीला रची थी। उन्होंने प्रेमपूर्वक अर्जुनको

भगवान् शंकरके 'गृहपति' नामक अग्न्यवतारकी कथा

पूर्वकालकी बात है, नर्मदाके रमणीय तटपर अवस्थित नर्मपुर नामक नगरमें विश्वानर नामक एक जितेन्द्रिय, पुण्यात्मा और शिवभक्त ब्राह्मण निवास करते थे। एक दिन उनकी पतिव्रता भार्याने उनसे महेश्वर-सदृश पुत्रकी याचना की। पत्नीकी इच्छाको भगवान् शिवकी प्रेरणा मानकर वे ब्राह्मणश्रेष्ठ विश्वानर उसे आश्वासन देकर अपने आराध्य भगवान् विश्वनाथकी नगरी काशीपुरीके लिये चल दिये। वहाँ पहुँचकर वे वीरेश लिङ्गकी त्रिकाल अर्चना करते हुए तप करने लगे। इस प्रकार एक वर्ष व्यतीत होनेपर एक दिन वे जब गङ्गाजीसे स्नानकर वापस आये तो उन्हें उस वीरेश लिङ्गके समीपमें एक अष्टवर्षीय बालक दिखायी दिया। उसके शरीरपर भस्म लगी हुई थी तथा सिरपर पीले रंगकी सुन्दर जटा थी। वह लीलापूर्वक हँसता हुआ श्रुति-सूक्तोंका पाठ कर रहा था। उसे देखकर विश्वानरके हृदयमें रोमाञ्च हो आया। उन्होंने उसे साक्षात् परमेश्वर शिव जानकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया और उसकी स्तुति की।

तब बालरूपधारी शिवने कहा—हे विप्रश्रेष्ठ विश्वानर! मैं तुम्हारी तपस्यासे बहुत प्रसन्न हूँ, तुम अपना अभिलषित वर माँग लो।

विश्वानरने कहा- अन्तर्यामी हैं, अतः मेरे हृदयकी अभिलाषा जानते हुए आपकी जैसी इच्छा हो, वैसा कीजिये। पावनव्रती विश्वानरकी यह बात सुनकर बालरूपधारी महादेवने हँसते हुए कहा—हे शुचे! मैं तुम्हारी पत्नी शुचिष्मतीके गर्भसे तुम्हारे पुत्रके रूपमें प्रकट होऊँगा, मेरा नाम 'गृहपति' होगा—

> **तव पुत्रत्वमेष्यामि शुचिष्मत्यां महामते।**
> **ख्यातो गृहपतिर्नाम्ना शुचिस्सर्वामरप्रियः॥**
>
> (*शिवपुराण, शतरुद्रसंहिता १३।५७*)

तदनन्तर तारागणोंके अनुकूल होनेपर, जब बृहस्पति केन्द्रवर्ती हुए और शुभ ग्रहोंका योग आया, तब शुभ लग्नमें भगवान् शंकर शुचिष्मतीके गर्भसे विश्वानरके पुत्रके रूपमें प्रकट हुए। भगवान् शिवके इस अवतारकी बात जानकर ब्रह्माजीसहित सभी देवगण उनका दर्शन करने आये। ब्रह्माजीने उनका 'गृहपति' नामकरण करते हुए चारों वेदोंके आशीर्वादात्मक मन्त्रोंसे अभिनन्दन कर सबके साथ प्रस्थान किया।

विश्वानरने समय-समयपर बालक गृहपतिके सभी संस्कार सम्पन्न कराकर वेदाध्ययन कराया। जब गृहपति नौ वर्षके हुए तो एक दिन देवर्षि नारद उन गृहपतिरूपधारी परमेश्वरका दर्शन करने आये। गृहपतिने माता-पितासहित नारदजीको प्रणाम किया। नारदजीने बालक गृहपतिकी हस्तरेखा और लक्षणोंको देखकर कहा—'विश्वानर! तुम्हारा यह पुत्र सर्वगुणसम्पन्न, समस्त शुभ लक्षणोंसे समन्वित है, परंतु इसके बारहवें वर्षमें इसे अग्नि और विद्युत्से भय है।' यों कहकर नारदजी जैसे आये थे, वैसे ही देवलोकको चले गये।

नारदजीका कथन सुनकर विश्वानर-दम्पतीपर मानो वज्रपात हो गया। वे शोकसे मूर्च्छित हो गये। तब माता-पिताको इस प्रकार शोकग्रस्त देखकर भगवान् शंकरका अंशावतार वह बालक गृहपति बोला—आपलोग क्यों चिन्तित हैं? मैं भगवान् मृत्युञ्जयकी आराधना करके कालको भी जीत लूँगा, फिर मृत्यु क्या चीज है!

गृहपतिके ऐसे वचन सुनकर शोकसंतप्त विप्र दम्पतीको राहत मिली। उन्होंने कहा—बेटा! तू उन शिवकी

शरणमें जा, जो ब्रह्मा आदिके भी कर्ता और विश्वकी रक्षा करनेवाले हैं।

माता-पिताकी आज्ञा पाकर गृहपतिने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। उन्हें बहुत तरहसे आश्वासन देकर वे काशीपुरी चले आये और शिवलिङ्गकी स्थापना कर उसे १०८ कलशोंके जलसे अभिषिक्तकर नियमपूर्वक पूजन-अर्चनमें संलग्न हो गये। जब जन्मसे बारहवाँ वर्ष आया तो वज्रधारी इन्द्र उनके पास पधारे और उनसे वर माँगनेको कहा। इसपर गृहपतिने कहा कि मैं भगवान् शिवके अतिरिक्त अन्य किसी देवसे प्रार्थना नहीं करना चाहता।

गृहपतिकी बात सुनकर इन्द्र क्रोधसे लाल हो गये, उन्होंने अपना भयङ्कर वज्र उठाया। विद्युत्-ज्वालाओंसे व्याप्त वज्रको देखकर गृहपति भयसे व्याकुल हो गये। उसे भयभीत होते देखकर गिरिजासहित भगवान् शंकर प्रकट हो गये। उन्होंने कहा—वत्स! तुम भयभीत न हो, मेरे भक्तपर इन्द्र या वज्र कोई प्रभाव नहीं डाल सकता। मैंने ही इन्द्रका रूप धारणकर तुम्हारी परीक्षा ली थी। मैं तुम्हें वर देता हूँ—आजसे तुम अग्निपदके भागी होगे। तुम समस्त प्राणियोंके अन्दर जठराग्निरूपसे विचरण करोगे। तुम्हारेद्वारा स्थापित यह शिवलिङ्ग 'अग्नीश्वर' नामसे प्रसिद्ध होगा।

इस प्रकार परमात्मा भगवान् शंकरका गृहपति नामक अग्न्यवतार हुआ, जो दुष्टोंको पीड़ित करनेवाला है—

इत्थमग्न्यवतारस्ते वर्णितो मे जनार्दनः।
नाम्ना गृहपतिस्तात शङ्करस्य परात्मनः॥

(शिवपुराण, शतरुद्रसंहिता [illegible])

~~○~~

भगवान् शिवके सद्योजात, वामदेव, तत्पुरुष, अघोर और ईशान अवतार

पञ्चकृत्यमिदं वोढुं ममास्ति मुखपञ्चकम्।
चतुर्दिक्षु चतुर्वक्त्रं तन्मध्ये पञ्चमं मुखम्॥

भगवान् शिवका जो पञ्चाननस्वरूप है, उसमें पश्चिम दिशाका मुख 'सद्योजात' है। '**ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि०**' यह उनकी आराधनाका वैदिक मन्त्र है। उत्तर दिशाका मुख 'वामदेव' है, उसका मन्त्र '**वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः०**' है। दक्षिण मुख 'अघोर' है, उसका मन्त्र '**ॐ अघोरेभ्यो०**' इत्यादि है। भगवान् शिवके पूर्वमुखका नाम 'तत्पुरुष' है, उसका वैदिक मन्त्र '**ॐ तत्पुरुषाय विद्महे०**' इत्यादि है। ऊर्ध्वमुख 'ईशान' नामवाला है, इनकी आराधनाका वैदिक मन्त्र '**ॐ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः०**' इत्यादि है।

पञ्चमुख सदाशिवका एक ध्यान-स्वरूप इस प्रकार वर्णित है—

मुक्तापीतपयोदमौक्तिकजवावर्णैर्मुखैः पञ्चभिः
त्र्यक्षैरञ्चितमीशमिन्दुमुकुटं पूर्णेन्दुकोटिप्रभम्।
शूलं टङ्ककृपाणवज्रदहनान् नागेन्द्रघण्टाङ्कुशान्
पाशं भीतिहरं दधानममिताकल्पोज्ज्वलं चिन्तयेत्॥

अर्थात् जिन भगवान् शंकरके पाँच मुखोंमें क्रमशः ऊर्ध्वमुख गजमुक्ताके समान हलके लाल रंगका, पूर्वमुख पीतवर्णका, दक्षिणमुख सजल मेघके समान नीलवर्णका, पश्चिममुख मुक्ताके समान कुछ भूरे रंगका और उत्तरमुख जवापुष्पके समान प्रगाढ़ रक्तवर्णका है, जिनकी तीन आँखें हैं और सभी मुख-मण्डलोंमें नीलवर्णके मुकुटके साथ चन्द्रमा सुशोभित हो रहे हैं, जिनके मुखमण्डलकी आभा करोड़ों पूर्ण चन्द्रमाके तुल्य आह्लादित करनेवाली है, जो अपने हाथोंमें क्रमशः त्रिशूल, टङ्क (परशु), तलवार, वज्र, अग्नि, नागराज, घण्टा, अंकुश, पाश तथा अभयमुद्रा धारण किये हुए हैं एवं जो अनन्त कल्पवृक्षके समान कल्याणकारी हैं, उन सर्वेश्वर भगवान् शंकरका ध्यान करना चाहिये।

~~ o ~~

भगवान् शिवके एकादश रुद्रावतार

पूर्वकालकी बात है, एक बार इन्द्र आदि समस्त देवता दैत्योंसे पराजित और भयभीत होकर अमरावतीपुरीसे भागकर अपने पिता महर्षि कश्यपके आश्रममें आये। वहाँ उन्होंने अपनी कष्ट-कथा कश्यपजीको सुनायी। भगवान् सदाशिवमें आसक्त-बुद्धिवाले कश्यपजीने देवताओंको आश्वासन दिया और स्वयं परम हर्षपूर्वक भगवान् विश्वनाथकी नगरी काशीपुरीकी ओर चल दिये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने गङ्गाजीमें स्नान किया और अपना नित्य-नियम पूरा किया। तदनन्तर शम्भुदर्शनके उद्देश्यसे एक शिवलिङ्गकी स्थापना करके वे भगवान् शिवके चरणकमलोंका ध्यान करते हुए प्रसन्नतापूर्वक तप करने लगे। जब कश्यपजीको इस प्रकार तप करते हुए बहुत अधिक समय व्यतीत हो गया तो सत्पुरुषोंके गतिस्वरूप दीनबन्धु भगवान् शंकर उनके समक्ष प्रकट हुए।

भक्तवत्सल भगवान् शिव परम प्रसन्न तो थे ही, अतः वे अपने भक्त कश्यपजीसे बोले—मुने! मैं प्रसन्न हूँ, वर माँगो। भगवान् महेश्वरको देखते ही कश्यपजी हर्षमग्न हो गये, फिर विविध प्रकारसे उन देवाधिदेवकी स्तुति कर उन्होंने कहा—हे नाथ! महाबली दैत्योंने देवताओं और यक्षोंको पराजित कर दिया है, इसलिये शम्भो! आप मेरे पुत्ररूपसे प्रकट होकर देवताओंके लिये आनन्ददाता बनिये—

भूत्वा मम सुतो नाथ देवा यक्षाः पराजिताः।
दैत्यैर्महाबलैश्शम्भो सुरानन्दप्रदो भव॥

(शिवपुराण, शतरुद्रसंहिता १८। २०)

कश्यपजीके ऐसा कहनेपर सर्वेश्वर भगवान् शंकर 'तथास्तु' कहकर वहीं अन्तर्धान हो गये। तब कश्यपजी भी प्रसन्नतापूर्वक अपने आश्रममें वापस लौट आये। वहाँ उन्होंने सारा वृत्तान्त देवताओंसे कह सुनाया। भगवान् शंकरके अवतार लेनेकी बात जानकर देवताओंका मन प्रसन्नतासे भर गया। वे उन अशरणशरण दीनबन्धु भक्तवत्सल भगवान् शिवके अवतार-धारणकी प्रसन्नतापूर्वक प्रतीक्षा करने लगे।

तदनन्तर भगवान् शंकर ने अपना वचन सत्य करनेके लिये कश्यपद्वारा सुरभीके गर्भसे ग्यारह रुद्रोंके रूपमें अवतार धारण किया। भगवान्के इन रुद्रावतारोंसे

यह ज्ञात हुआ कि कुमाररूपधारी ये वामदेव शिव हैं तो उन्होंने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया। तत्पश्चात् उनके विरजा, विवाह, विशोक और विश्वभावन नामके चार पुत्र उत्पन्न हुए, जो सभी लाल वस्त्र धारण किये हुए थे। तदनन्तर उन वामदेवरूपधारी सदाशिवने परम प्रसन्न होकर ब्रह्माजीको ज्ञान तथा सृष्टि-रचनाकी शक्ति दी।

३-तत्पुरुष—भगवान् शिव का 'तत्पुरुष' नामक तीसरा अवतार पीतवासा नामक इक्कीसवें कल्पमें हुआ। उस कल्पमें महाभाग ब्रह्माजी पीतवस्त्रधारी हुए। जब वे पुत्रकी कामनासे ध्यान कर रहे थे, उस समय उनसे एक महातेजस्वी कुमार उत्पन्न हुआ। उस कुमारकी भुजाएँ विशाल थीं और उसके शरीरपर पीताम्बर झलमला रहा था। उसे देखकर ब्रह्माजीने अपने बुद्धिबलसे यह जान लिया कि ये परब्रह्म परमात्मा शिव ही 'तत्पुरुष' रूपमें उत्पन्न हुए हैं। तब उन्होंने ध्यानयुक्त चित्तसे शाङ्करी गायत्रीका जप करते हुए उन्हें नमस्कार किया। तदनन्तर उनके पार्श्वभागसे पीतवस्त्रधारी दिव्य कुमार प्रकट हुए, वे सब-के-सब योगमार्गके प्रवर्तक हुए।

४-अघोर—'शिव' नामक कल्पमें भगवान् शिवका 'अघोर' नामक चौथा अवतार हुआ। उस अवतारकी कथा इस प्रकार है—जब एकार्णवकी स्थितिमें एक सहस्र दिव्य वर्ष व्यतीत हो गये, तब ब्रह्माजी प्रजाओंकी सृष्टि करनेकी इच्छासे दुःखी हो विचार करने लगे। उस समय ब्रह्माजीके समक्ष एक कुमार प्रकट हुआ। उस कुमारके शरीरका रंग काला था, वह अपने ही तेजसे उद्दीप्त हो रहा था तथा काला वस्त्र, काली पगड़ी और काला यज्ञोपवीत धारण किये हुए था। उसका मुकुट भी काला था और स्नानके पश्चात् अनुलेपन-चन्दन भी काले रंगका ही था। उन महाभयङ्कर, पराक्रमी, महामनस्वी, देवदेवेश्वर, अलौकिक, कृष्णपिङ्गल-वर्णवाले 'अघोर' को देखकर ब्रह्माजीने उनकी वन्दना की। तत्पश्चात् उनके पार्श्वभागसे कृष्णवर्णवाले काले रंगका अनुलेपन धारण किये हुए चार महामनस्वी कुमार उत्पन्न हुए। वे सब-के-सब परम तेजस्वी, अव्यक्तनामा तथा शिव-सरीखे रूपवाले थे। उनके नाम थे—कृष्ण, कृष्णशिख, कृष्णास्य और कृष्णकण्ठधृक्। इस प्रकार उत्पन्न होकर इन महात्माओंने ब्रह्माजीकी सृष्टि-रचनाके निमित्त महान् अद्भुत 'घोर' नामक योगका प्रचार

५-ईशान—ब्रह्माजीके विश्वरूप नामक भगवान् शिवका 'ईशान' नामक पाँचवाँ अवता[र] इस अवतारकी कथा इस प्रकार है—ब्रह्माजी कामनासे मन-ही-मन शिवजीका ध्यान कर उसी समय महान् सिंहनाद करनेवाली विश्वरूपा प्रकट हुईं तथा उसी प्रकार परमेश्वर भगवान् प्रादुर्भूत हुए, जिनका वर्ण शुद्ध स्फटिकके समान था और जो समस्त आभूषणोंसे विभूषित थे। उन सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी, सब कुछ प्रदान कर सर्वस्वरूप, सुन्दर रूपवाले तथा अरूप ईशानको ब्रह्माजीने उन्हें प्रणाम किया। तब शक्तिसहित ईशानने भी ब्रह्माको सन्मार्गका उपदेश देकर चार बालकोंकी कल्पना की। उनके नाम थे—जटी, शिखण्डी और अर्धमुण्ड। वे योगानुसार सद्धर्मका करके योगगतिको प्राप्त हो गये।

इस प्रकार जगत्के माङ्गल्यकी कामनासे सदाशिवके ये अवतार विभिन्न कल्पोंमें हुए हैं। कल्याण मनुष्योंको भगवान् शंकरके इन स्वरूपोंकी सदा प्रयत्न वन्दना करनी चाहिये; क्योंकि ये श्रेयःप्राप्तिमें एकमा[त्र] हैं। जो मनुष्य इन सद्योजातादि अवतारोंके प्राक[ट्य] कथाको पढ़ता अथवा सुनता है, वह जगत्में समस्त भोगोंका उपभोग करके अन्तमें परमगतिको प्राप्त होता

इमे स्वरूपाः शम्भोर्हि वन्दनीयाः प्रयत्नतः।
श्रेयोर्थिभिर्नरैर्नित्यं श्रेयसामेकहेतवः॥
यः पठेच्छृणुयाद्वापि सद्यादीनां समुद्भवम्।
स भुक्त्वा सकलान्कामान् प्रयाति परमां गतिम्॥

(शिवपुराण, शतरुद्रसंहिता १।४१-

भगवान् शिवके स्थिति, पालन, संहार, निग्रह (तिरो[भाव]) और अनुग्रह—ये पञ्चकृत्य सभी आगमोंमें प्रसिद्ध हैं। पाँचोंमें पूर्वके जो चार कृत्य हैं—सृष्टि, पालन, संहा[र] तिरोभाव—वे संसारका विस्तार करनेवाले हैं और [...] पाँचवाँ कृत्य अनुग्रह है, जो मोक्षका हेतु है, वह सर्वा[...] स्थिर रहता है। भगवान् शिव स्वयं कहते हैं कि ये [...] कृत्य मेरे पाँच मुखोंद्वारा धारित हैं, चारों दिशाओंमें [...] मुख और पाँचवाँ मुख मध्यमें है—

पञ्चकृत्यमिदं वोढुं ममास्ति मुखपञ्चकम्।
चतुर्दिक्षु चतुर्वक्त्रं तन्मध्ये पञ्चमं मुखम्॥

भगवान् शिवका जो पञ्चाननस्वरूप है, उसमें पश्चिम दिशाका मुख 'सद्योजात' है। '**ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि०**' यह उनकी आराधनाका वैदिक मन्त्र है। उत्तर दिशाका मुख 'वामदेव' है, उसका मन्त्र '**वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः०**' है। दक्षिण मुख 'अघोर' है, उसका मन्त्र '**ॐ अघोरेभ्यो०**' इत्यादि है। भगवान् शिवके पूर्वमुखका नाम 'तत्पुरुष' है, उसका वैदिक मन्त्र '**ॐ तत्पुरुषाय विद्महे०**' इत्यादि है। ऊर्ध्वमुख 'ईशान' नामवाला है, इनकी आराधनाका वैदिक मन्त्र '**ॐ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः०**' इत्यादि है।

पञ्चमुख सदाशिवका एक ध्यान-स्वरूप इस प्रकार वर्णित है—

मुक्तापीतपयोदमौक्तिकजवावर्णैर्मुखैः पञ्चभि-
स्त्र्यक्षैरञ्चितमीशमिन्दुमुकुटं पूर्णेन्दुकोटिप्रभम्।
शूलं टङ्ककृपाणवज्रदहनान् नागेन्द्रघण्टाङ्कुशान्
पाशं भीतिहरं दधानममिताकल्पोज्ज्वलं चिन्तयेत्॥

अर्थात् जिन भगवान् शंकरके पाँच मुखोंमें क्रमशः ऊर्ध्वमुख गजमुक्ताके समान हलके लाल रंगका, पूर्वमुख पीतवर्णका, दक्षिणमुख सजल मेघके समान नीलवर्णका, पश्चिममुख मुक्ताके समान कुछ भूरे रंगका और उत्तरमुख जवापुष्पके समान प्रगाढ़ रक्तवर्णका है, जिनकी तीन आँखें हैं और सभी मुख-मण्डलोंमें नीलवर्णके मुकुटके साथ चन्द्रमा सुशोभित हो रहे हैं, जिनके मुखमण्डलकी आभा करोड़ों पूर्ण चन्द्रमाके तुल्य आह्लादित करनेवाली है, जो अपने हाथोंमें क्रमशः त्रिशूल, टङ्क (परशु), तलवार, वज्र, अग्नि, नागराज, घण्टा, अंकुश, पाश तथा अभयमुद्रा धारण किये हुए हैं एवं जो अनन्त कल्पवृक्षके समान कल्याणकारी हैं, उन सर्वेश्वर भगवान् शंकरका ध्यान करना चाहिये।

~~ 0 ~~

भगवान् शिवके एकादश रुद्रावतार

पूर्वकालकी बात है, एक बार इन्द्र आदि समस्त देवता दैत्योंसे पराजित और भयभीत होकर अमरावतीपुरीसे भागकर अपने पिता महर्षि कश्यपके आश्रममें आये। वहाँ उन्होंने अपनी कष्ट-कथा कश्यपजीको सुनायी। भगवान् सदाशिवमें आसक्त-बुद्धिवाले कश्यपजीने देवताओंको आश्वासन दिया और स्वयं परम हर्षपूर्वक भगवान् विश्वनाथकी नगरी काशीपुरीकी ओर चल दिये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने गङ्गाजीमें स्नान किया और अपना नित्य-नियम पूरा किया। तदनन्तर शम्भुदर्शनके उद्देश्यसे एक शिवलिङ्गकी स्थापना करके वे भगवान् शिवके चरणकमलोंका ध्यान करते हुए प्रसन्नतापूर्वक तप करने लगे। जब कश्यपजीको इस प्रकार तप करते हुए बहुत अधिक समय व्यतीत हो गया तो सत्पुरुषोंके गतिस्वरूप दीनबन्धु भगवान् शंकर उनके समक्ष प्रकट हुए।

भक्तवत्सल भगवान् शिव परम प्रसन्न तो थे ही, अतः वे अपने भक्त कश्यपजीसे बोले—मुने! मैं प्रसन्न हूँ, वर माँगो। भगवान् महेश्वरको देखते ही कश्यपजी हर्षमग्न हो गये, फिर विविध प्रकारसे उन देवाधिदेवकी स्तुति कर उन्होंने कहा—हे नाथ! महाबली दैत्योंने देवताओं और यक्षोंको पराजित कर दिया है, इसलिये शम्भो! आप मेरे पुत्ररूपसे प्रकट होकर देवताओंके लिये आनन्ददाता बनिये—

भूत्वा मम सुतो नाथ देवा यक्षाः पराजिताः।
दैत्यैर्महाबलैश्शम्भो सुरानन्दप्रदो भव॥

(शिवपुराण, शतरुद्रसंहिता १८।२०)

कश्यपजीके ऐसा कहनेपर सर्वेश्वर भगवान् शंकर 'तथास्तु' कहकर वहीं अन्तर्धान हो गये। तब कश्यपजी भी प्रसन्नतापूर्वक अपने आश्रममें वापस लौट आये। वहाँ उन्होंने सारा वृत्तान्त देवताओंसे कह सुनाया। भगवान् शंकरके अवतार लेनेकी बात जानकर देवताओंका मन प्रसन्नतासे भर गया। वे उन अशरणशरण दीनबन्धु भक्तवत्सल भगवान् शिवके अवतार-धारणकी प्रसन्नतापूर्वक प्रतीक्षा करने लगे।

तदनन्तर भगवान् शंकर ने अपना वचन सत्य करनेके लिये कश्यपद्वारा सुरभीके गर्भसे ग्यारह रुद्रोंके रूपमें अवतार धारण किया। भगवान्के इन रुद्रावतारोंसे

सारा जगत् शिवमय हो गया। कश्यपमुनिके साथ-साथ सभी देवता हर्षविभोर हो गये। उन एकादश रुद्रोंके नाम हैं—कपाली, पिङ्गल, भीम, विरूपाक्ष, विलोहित, शास्ता, अजपाद, अहिर्बुध्न्य, शम्भु, चण्ड तथा भव। ये एकादश रुद्र सुरभीके पुत्र कहलाते हैं। ये सुखके आवास-स्थान हैं तथा देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिये शिवरूपसे उत्पन्न हुए हैं—

एकादशैते रुद्रास्तु सुरभीतनयाः स्मृताः।
देवकार्यार्थमुत्पन्नाश्शिवरूपास्सुखास्पदम् ॥

(शिवपुराण, शतरुद्रसंहिता १८। २७)

कश्यपके पुत्ररूपमें उत्पन्न ये एकादश रुद्र महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न थे, इन्होंने संग्राममें दैत्योंका संहारकर इन्द्रको पुनः स्वर्गका अधिपति बना दिया। ये शिवरूपधारी एकादश रुद्र अब भी देवताओंकी रक्षाके लिये स्वर्गमें विराजमान रहते हैं।

भगवान् रुद्र मूलतः तो एक ही हैं तथापि जगत्के कल्याणके हेतु अनेक नाम-रूपोंमें अवतरित होते हैं। मुख्य रूपसे ग्यारह रुद्र हैं। विभिन्न पुराणोंमें इनके नाममें भी अन्तर मिलता है। रुद्रोंके साथ रुद्राणियोंका भी वर्णन आता है। श्रीमद्भागवत (३। १२। १२)-में ग्यारह रुद्रोंके नाम इस प्रकार आये हैं—

१-मन्यु, २-मनु, ३-महिनस, ४-महान्, ५-शिव, ६-ऋतध्वज, ७-उग्ररेता, ८-भव, ९-काल, १०-वामदेव और ११-धृतव्रत।

भगवान् शिवके योगेश्वरावतार

प्रत्येक मन्वन्तरके प्रत्येक द्वापरयुगमें भगवान् नारायण स्वयं वेदव्यासके रूपमें अवतार लेकर मनुष्योंके हितके लिये वेदोंका विभाजन करते हैं, उसी प्रकार भगवान् सदाशिव प्रत्येक कलियुगमें योगेश्वरावतारके रूपमें अवतार लेते हैं। ये अवतार कलियुगके मनुष्योंको ध्यानयोगकी शिक्षा देनेके लिये होते हैं; क्योंकि उस समय मनुष्य ध्यानके अतिरिक्त दान, धर्म आदि कर्महेतुक साधनोंद्वारा उन भगवान् सदाशिवका दर्शन नहीं पा सकता। प्रत्येक योगेश्वरावतारके साथ उनके चार अविनाशी शिष्य भी होते हैं, जो महान् शिवभक्त और योगमार्गकी वृद्धि करनेवाले होते हैं। इनके शरीरपर भस्म रमी रहती है, ललाट त्रिपुण्ड्से सुशोभित रहता है, रुद्राक्षकी माला ही उनका आभूषण होता है। ये सभी शिष्य धर्मपरायण, वेद-वेदाङ्गके पारगामी विद्वान् और लिङ्गार्चनमें तत्पर रहनेवाले होते हैं। ये शिवजीमें भक्ति रखकर योगपूर्वक ध्यानमें निष्ठा रखते हैं।

वाराहकल्पके सातवें मन्वन्तरमें भगवान् शिवद्वारा लिये गये अट्ठाईस योगेश्वरावतारों और उनके शिष्योंकी नामावली इस प्रकार है—

क्र०	चतुर्युगी	योगेश्वरावतार	शिष्य
१.	पहली	महामुनि श्वेत	श्वेत, श्वेतशिख, श्वेताश्व और श्वेतलोहित
२.	दूसरी	सुतार	दुन्दुभि, शतरूप, हृषीक तथा केतुमान्
३.	तीसरी	दमन	विशोक, विशेष, विपाप और पापनाशन
४.	चौथी	सुहोत्र	सुमुख, दुर्मुख, दुर्दम और दुरतिक्रम
५.	पाँचवीं	कङ्क	सनक, सनातन, सनन्दन और सनत्कुमार
६.	छठीं	लोकाक्षि	सुधामा, विरजा, संजय तथा विजय
७.	सातवीं	जैगीषव्य	सारस्वत, योगीश, मेघवाह और सुवाहन
८.	आठवीं	दधिवाहन	कपिल, आसुरि, पञ्चशिख और शाल्वल
९.	नौवीं	ऋषभ	पराशर, गर्ग, भार्गव तथा गिरिश
१०.	दसवीं	उग्र*	भृङ्ग, बलबन्धु, नरामित्र और केतुशृङ्ग
११.	ग्यारहवीं	तप	लम्बोदर, लम्बाक्ष, केशलम्ब और प्रलम्बक
१२.	बारहवीं	अत्रि	सर्वज्ञ, समबुद्धि [illegible]

* लिङ्गपुराण ७। ३२

क्र०	चतुर्युगी	योगेश्वरावतार	शिष्य
१३.	तेरहवीं	महामुनि बलि	सुधामा, काश्यप, वसिष्ठ और विरजा
१४.	चौदहवीं	गौतम	अत्रि, वशद, श्रवण और श्नविष्कट
१५.	पंद्रहवीं	वेदशिरा	कुणि, कुणिबाहु, कुशरीर और कुनेत्रक
१६.	सोलहवीं	गोकर्ण	काश्यप, उशना, च्यवन और बृहस्पति
१७.	सत्रहवीं	गुहावासी	उतथ्य, वामदेव, महायोग और महाबल
१८.	अट्ठारहवीं	शिखण्डी	वाचःश्रवा, रुचीक, श्यावास्य और यतीश्वर
१९.	उन्नीसवीं	माली	हिरण्यनामा, कौसल्य, लोकाक्षि और प्रधिमि
२०.	बीसवीं	अट्टहास	सुमन्तु, वर्वरि, कम्बन्ध और कुलिकन्धर
२१.	इक्कीसवीं	दारुक	प्लक्ष, दार्भायणि, केतुमान् तथा गौतम
२२.	बाईसवीं	लाङ्गली भीम	भल्लवी, मधु, पिङ्ग और श्वेतकेतु
२३.	तेईसवीं	श्वेत	उशिक, बृहदश्व, देवल और कवि
२४.	चौबीसवीं	शूली	शालिहोत्र, अग्निवेश, युवनाश्व और शरद्वसु
२५.	पच्चीसवीं	मुण्डीश्वर	छगल, कुण्डकर्ण, कुम्भाण्ड और प्रवाहक
२६.	छब्बीसवीं	सहिष्णु	उलूक, विद्युत्, शम्बूक और आश्वलायन
२७.	सत्ताईसवीं	सोमशर्मा	अक्षपाद, कुमार, उलूक और वत्स
२८.	अट्ठाईसवीं	लकुली	कुशिक, गर्ग, मित्र और तौरुष्य

इस प्रकार भगवान् सदाशिव प्रत्येक चतुर्युगीके कलियुगमें अवतार लेकर योगमार्गका प्रवर्तन, व्यासजीका सहयोग और संसार-सागरसे भक्तोंका उद्धार करते हैं। कलियुगके प्रवृत्त होनेपर जब निवृत्तिमार्गका लोप होने लगता है, उस समय भगवान् शिव इन योगेश्वरावतारोंके द्वारा निवृत्तिमार्गको सुदृढ़ करते हैं।

भगवान् शिवके महाकाल आदि दस अवतार

परब्रह्म परमात्मा भगवान् सदाशिव और उनकी शक्ति भगवती शिवाने भक्तोंके कल्याण और उनको भोग-मोक्ष प्रदान करनेके लिये दस अवतार धारण किये हैं। यद्यपि भगवान् शिव तथा भगवती शिवा अभिन्न हैं, परंतु भक्तोंकी मनोवाञ्छापूर्तिके लिये वे अवतार ग्रहण करते हैं। जिस रूपमें भगवान् शिवका प्राकट्य होता है, उसी रूपसे उनकी शक्ति भगवती शिवा भी प्रकट होती हैं। तन्त्र-ग्रन्थोंमें तथा पुराणोंमें भगवती शिवाके काली, तारा आदि दस महाविद्यारूपोंका वर्णन आया है, उसी प्रकार भगवान् शिवके भी महाकाल आदि दस रूप हैं। शिवपुराणमें प्राप्त इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

भगवान् सदाशिवका पहला अवतार 'महाकाल' है, इस अवतारकी शक्ति 'महाकाली' हैं। दूसरा 'तार' नामक अवतार हुआ, जिनकी शक्ति 'तारादेवी' हैं। 'बाल भुवनेश' नामक भगवान्का तीसरा अवतार हुआ, जिनकी शक्ति 'बाला भुवनेशी' हुईं। चौथा अवतार 'षोडश श्रीविद्येश' हुआ, जिनकी शक्ति 'षोडशी श्रीविद्या' हुईं। भगवान् शिवका पाँचवाँ अवतार 'भैरव' नामसे प्रसिद्ध हुआ, इस अवतारकी शक्तिका नाम 'भैरवी गिरिजा' है। छठा शिवावतार 'छिन्नमस्तक' नामसे जाना जाता है, इनकी शक्ति 'छिन्नमस्ता' हैं। सम्पूर्ण मनोरथोंके दाता शम्भुका सातवाँ अवतार 'धूमवान्' नामसे विख्यात हुआ, उनकी शक्ति 'धूमावती' हैं। शिवजीका आठवाँ अवतार 'बगलामुख' है, उनकी शक्ति 'बगलामुखी' नामसे विख्यात हुईं। नवाँ शिवावतार 'मातङ्ग' नामसे प्रसिद्ध है, इनकी शक्ति 'मातङ्गी' हैं। भगवान् शिवके दसवें अवतारका नाम 'कमल' है, इनकी शक्ति 'कमला' हैं।

शिवजीके ये दसों अवतार भक्तों तथा सत्पुरुषोंके लिये सुखदायक तथा भोग-मोक्षको देनेवाले हैं।

शिवकी अष्टमूर्तियाँ

(श्री के०पी० मिश्र)

'एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुः०।'

(श्वेताश्वतरोपनिषद् ३।२)

केवल एक रुद्र ही तो है अर्थात् जगत्का नियमन करनेवाली शक्तियाँ अनेक होनेपर भी वे सभी रुद्रकी शक्ति हैं। यही कारण है कि ब्रह्मज्ञानी किसी दूसरेका आश्रय नहीं लेते। यह भी निश्चित किया गया है कि एक परमात्मा ही इस जगत्के मूल कारण हैं। वे प्रभु ही इन समस्त लोकोंकी रचना करके रक्षा करते हैं तथा प्रलयकालमें अपनेमें समेट लेते हैं। श्रुति कहती है—

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं
तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्
विदाम देवं भुवनेशमीड्यम्॥

(श्वेताश्वतरोपनिषद् ६।७)

ईश्वरोंके परम महान् ईश्वर, देवताओंके परमदेव, पतियोंके परमपति, अव्यक्तादि परसे पर तथा विश्वके अधिपति उस स्तवनीय देवको हम जानते हैं।

भगवान्की पराशक्ति तीन भागोंमें विभक्त है। सत्-अंशको सन्धिनी, चित्-अंशको संवित् और आनन्द-अंशको ह्लादिनी कहते हैं। इसी कारण भगवान् सच्चिदानन्द कहलाते हैं। इन शक्तियोंमें हर शक्तिका विलास-वैचित्र्य अनन्त है। जब तीनों शक्तियाँ समरूपमें हो जाती हैं तो मूर्ति कहलाती हैं। भगवान् एवं उनके परिकरका विग्रह इसी अवस्थामें प्रकाशित होता है।

यह जगत् पञ्चमहाभूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश)-से संगठित है। इसके अतिरिक्त चन्द्रमा, सूर्य और जीवात्मा कुल मिलाकर आठ मूर्तियोंद्वारा समस्त चराचर जगत् व्याप्त है। शिवका एक नाम 'अष्टमूर्ति' भी है।

शिवपुराणके अन्तर्गत ब्रह्माजीद्वारा शिवकी स्तुति इस प्रकार की गयी है। वस्तुतः यह शिवकी आठ मूर्तियोंकी स्तुति है—

नमस्ते भगवन् रुद्र भास्करामिततेजसे।
नमो भवाय देवाय रसायाम्बुमयात्मने॥
शर्वाय क्षितिरूपाय नन्दीसुरभये नमः।
ईशाय वसवे तुभ्यं नमः स्पर्शमयात्मने॥
पशूनां पतये चैव पावकायातितेजसे।
भीमाय व्योमरूपाय शब्दमात्राय ते नमः॥
उग्रायोग्रस्वरूपाय यजमानात्मने नमः।
महाशिवाय सोमाय नमस्त्वमृतमूर्तये॥

(शिवपुराण, वायवीयसंहिता, पू०खं० १२।४१—४४)

हे भगवन्! रुद्र! आपका तेज असंख्य सूर्योंके समान अनन्त है। आपको नमस्कार है। रसस्वरूप और जलमय विग्रहवाले आप भवदेवताको नमस्कार है। नन्दी और सुरभि (कामधेनु) ये दोनों आपके स्वरूप हैं। आप पृथ्वीरूपधारी शर्वको नमस्कार है। स्पर्शमय वायुरूपवाले आपको नमस्कार है। आप ही वसुरूपधारी ईश हैं। आपको नमस्कार है। अत्यन्त तेजस्वी अग्निरूप आप पशुपतिको नमस्कार है। शब्द तन्मात्रासे युक्त आकाशरूपधारी आप भीमदेवको नमस्कार है। उग्ररूपवाले यजमानमूर्ति आपको नमस्कार है। सोमरूप आप अमृतमूर्ति महादेवजीको नमस्कार है।

शर्वो भवस्तथा रुद्र उग्रो भीमः पशोः पतिः।
ईशानश्च महादेवो मूर्तयश्चाष्टविश्रुताः॥

(शिवपुराण, शतरुद्रसंहिता २।३)

भगवान् शिवकी इन अष्टमूर्तियोंका नाम शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, महादेव और ईशान है।

शास्त्रोंने ऐसा निश्चय किया है कि कल्याणकर्ता शिवके विश्वात्मक रूपने ही चराचर जगत्को धारण किया है। ये ही शर्व आदि अष्टमूर्तियाँ क्रमशः पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, जीवात्मा, सूर्य और चन्द्रमाको अधिष्ठित किये हुए हैं। किसी एक मूर्तिकी पूजा-अर्चनासे सभी मूर्तियोंकी पूजा-अर्चनाका फल मिल जाता है।

श्रीवेदव्यासजीका कथन है—

यथा तरोर्मूलनिषेचनेन तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः।
प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या॥

(श्रीमद्भा० ४।३१।१४)

भाव यह है कि जिस प्रकार वृक्षकी जड़ सींचनेसे उसके तने, शाखा, उपशाखा आदि सभीका पोषण हो जाता है और जैसे भोजन करनेवालेको प्रत्येक ग्रासके साथ तृप्ति मिलती है, शरीर पुष्ट होता है और क्षुधाकी निवृत्ति होती है, वैसे ही भक्तको भगवत्तत्त्वका अनुभव, भगवान्‌की भक्ति तथा विषयोंसे वैराग्य—ये तीनों एक साथ ही प्राप्त हो जाते हैं।

'अष्टमूर्तियों' की आराधना इन मन्त्रोंसे की जाती है—

ॐ शर्वाय क्षितिमूर्तये नमः। ॐ भवाय जलमूर्तये नमः। ॐ रुद्राय अग्निमूर्तये नमः। ॐ उग्राय वायुमूर्तये नमः। ॐ भीमाय आकाशमूर्तये नमः। ॐ पशुपतये यजमानमूर्तये नमः। ॐ महादेवाय सोममूर्तये नमः। ॐ ईशानाय सूर्यमूर्तये नमः।

यह जीवात्मा ही क्षेत्रज्ञ है। यही यजमानरूपसे यज्ञकर्ता है। इस कारण ही यह यजमान कहलाता है। मायाके पाशसे बँधे जीव ही पशु हैं। जीवके पति (रक्षक) होनेके कारण ही शिवको पशुपति कहते हैं।

ब्रह्माद्याः स्थावरान्ताश्च देवदेवस्य शूलिनः।
पशवः परिकीर्त्यन्ते संसारवशवर्तिनः॥
तेषां पतित्वाद्देवेशः शिवः पशुपतिः स्मृतः।
मलमायादिभिः पाशैः स बध्नाति पशून् पतिः॥
स एव मोचकस्तेषां भक्त्या सम्यगुपासितः।

(शिवपुराण,वायवीय सं०उत्तरभाग २।११—१३)

अर्थात् ब्रह्मासे लेकर स्थावर-जङ्गमतक जितने भी जीव हैं, सभी देवाधिदेव शूलपाणि शिवके पशु कहे जाते हैं। उनके पति होनेके कारण वे पशुपति कहे जाते हैं। वे ही ब्रह्मा आदि सभी पशुओंको मल, माया आदि अविद्याके पाशमें जकड़कर रखते हैं तथा भक्तोंद्वारा उपासित होनेपर वे ही उन पाशोंसे मुक्त भी करते हैं।

सभी प्राणियोंके प्रति अनुग्रह, सबकी सेवा, सभी प्राणियोंसे प्रेम—यही शिवकी आराधना है। यदि कोई किसी जीवको कष्ट देता है तो वस्तुतः वह शिवकी अष्टमूर्तियोंको ही कष्ट देता है।

अष्टमूर्तियोंके तीर्थ—

१-सूर्य—सूर्य ही दृश्यमान प्रत्यक्ष देवता हैं—

आदित्यं च शिवं विद्याच्छिवमादित्यरूपिणम्।
उभयोरन्तरं नास्ति ह्यादित्यस्य शिवस्य च॥

सूर्य और शिवमें कोई अन्तर नहीं है। सभी सूर्यमन्दिर वस्तुतः शिवमन्दिर ही हैं। फिर भी काशीस्थ गभस्तीश्वर लिङ्ग सूर्यरूप शिवका स्वरूप है।

२-चन्द्र—सोमनाथका मन्दिर।

३-यजमान—नेपालका पशुपतिनाथ मन्दिर।

४-क्षितिलिङ्ग—तमिलनाडुके शिवकाञ्चीमें स्थित आम्रकेश्वर।

५-जललिङ्ग—तमिलनाडुके त्रिचिरापल्लीमें जम्बुकेश्वर मन्दिर।

६-तेजोलिङ्ग—अरुणाचलपर्वतपर।

७-वायुलिङ्ग—आन्ध्रप्रदेशके अरकाट जिलेमें कालहस्तीश्वर वायुलिङ्ग है।

८-आकाशलिङ्ग—तमिलनाडुके चिदम्बरम्‌में स्थित।

शिवकी अष्टमूर्तियोंमें पहली 'रुद्र' नामक मूर्ति आँखोंमें प्रकाशरूप है, जिससे प्राणी देखता है। दूसरी 'भव' नामक मूर्ति अन्न-पान करके शरीरकी वृद्धि करती है। यह स्वधा कहलाती है। तीसरी 'शर्व' नामक मूर्ति अस्थिरूपसे आधारभूता है। यह आधारशक्ति ही गणेश कहलाती है। चौथी 'ईशानशक्ति' प्राणापान-वृत्तिसे प्राणियोंमें जीवनीशक्ति है। पाँचवीं 'पशुपति' मूर्ति उदरमें रहकर अशित-पीतको पचाती है, जिसे जठराग्नि कहा जाता है। छठी 'भीमामूर्ति' देहमें छिद्रोंका कारण है। सातवीं 'उग्र' नामक मूर्ति जीवात्माके ऐश्वर्यरूपमें रहती है। आठवीं 'महादेवमूर्ति' संकल्परूपसे प्राणियोंके मनमें रहती है। इस संकल्परूप चन्द्रमाके लिये '**नवो नवो भवति जायमानः**' कहा गया है अर्थात् संकल्पोंके नये-नये रूप वदलते हैं।

द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंकी अवतरण-मीमांसा

(आचार्य डॉ० श्रीनरेन्द्रनाथजी ठाकुर, एम्०ए० (गोल्ड मैडलिस्ट), पी-एच्०डी० (संस्कृत))

अखिल विश्वब्रह्माण्डमें भूलोक, भूलोकमें भी जम्बू, प्लक्ष तथा क्रौञ्च आदि द्वीपोंमें जम्बूद्वीप; पुनः जम्बू-द्वीपान्तर्गत किम्पुरुष, कुरुमाल आदि वर्षोंमें भारतवर्ष श्रेष्ठ माना जाता है। भारतवर्षका माहात्म्य यहाँकी सभ्यता, संस्कृति और संस्कृतको लेकर है। यही वह भूमि है, जहाँ भगवान्के समस्त अवतार हुए। अंशावतार, कलावतार एवं पूर्णावतार इत्यादि अवतार धारण कर भगवान् अपने आर्त भक्तोंका भवसागरसे उद्धार करते हैं, कभी राम-कृष्णरूपसे तो कभी शिवरूपसे। वे भगवान् अनन्त गुणराशिसे युक्त अनन्तानन्त वैभवादिसे विलसित अनन्तस्वरूप हैं, इसलिये भगवती श्रुतिने भी 'नेति'-'नेति' शब्दोंके द्वारा अन्योंसे भगवत्तत्त्वकी पृथक्ता बतलायी है।

भगवान्का अवतरण आप्तकाम पुरुषोंको निःश्रेयस-प्रदानार्थ ही हुआ करता है। अण्ड-पिण्ड-सिद्धान्तानुसार जो अण्डमें है, वही पिण्डमें भी है अर्थात् सर्वज्ञ भगवान् विराट् पुरुषरूप होकर अनन्त ब्रह्माण्डोंके स्वामी बन जाते हैं तथा वे ही पुनः एक शिवलिङ्गमें भी समाहित हो जाते हैं।

'ज्योति' शब्द प्रकाशका वाचक है एवं 'लिङ्ग' शब्द चिह्नका।

'लीनं प्रच्छन्नस्वरूपं प्रकटयति यत् तत् लिङ्गम्।'

अर्थात् जो चिह्न परब्रह्म परमात्माके स्वरूपका अवबोधन करा दे, वह लिङ्ग है। ब्रह्मसूत्र—वेदान्तदर्शन (१।१।२४)-में **'ज्योतिश्चरणाभिधानात्॥'** सूत्रद्वारा 'ज्योति' शब्दको परब्रह्मका अभिव्यञ्जक माना गया है; क्योंकि छान्दोग्योपनिषद्में उस ज्योतिर्मय ब्रह्मके चार पाद बतलाये गये हैं।

न्यायशास्त्रने तो **'लिङ्गात् लिङ्गिनो ज्ञानम् अनुमानम्'** के द्वारा अनुमान प्रमाणके लिये लिङ्गका होना ही आवश्यक बतलाया है। यहाँ लिङ्ग हुआ चिह्न एवं लिङ्गी हुए परब्रह्म परमात्मा, जिसे तैत्तिरीयोपनिषद्में **'रसो वै सः'** इत्यादि महावाक्योंद्वारा सङ्केतित किया गया है। ध्यातव्य हो कि नैयायिकोंने अनुमान प्रमाणके द्वारा ही ईश्वरसिद्धि की है। इसके प्रमाण न्यायकुसुमाञ्जलिकार उदयनाचार्यप्रभृति विद्वान् हैं। लिङ्गपुराणमें तो **'लिङ्गे सर्वं प्रतिष्ठितम्'** कहकर चराचर जगत्की प्रतिष्ठा लिङ्गमें ही बतलायी है। तर्कसंग्रहादि ग्रन्थोंमें लिङ्गकी त्रिविधता कही गयी है—(१) अन्वयव्यतिरेकि, (२) केवलान्वयि तथा (३) केवलव्यतिरेकि।

व्याकरणके अनुसार लिङ्ग शब्दमें 'अच्' प्रत्ययके योगसे 'लिङ्गम्' शब्द बना है। 'द्वादश' शब्द बारह संख्याका वाचक है एवं 'ज्योतिः' शब्द सूर्यका। **'सूर्यो ज्योतिः स्वाहा'**—इस वचनसे ज्योतिका प्रादुर्भाव सूर्यसे माना जाता है और सूर्य द्वादश आदित्यके रूपमें शास्त्रविश्रुत हैं। अतः द्वादश आदित्यके रहनेके कारण उनकी ज्योति भी तदनुसार बारह ही हुई, इस कारण ज्योतिर्लिङ्ग भी बारह ही माने गये। इन द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंका प्रमाण शिवपुराण, पद्मपुराण, मत्स्यपुराणादिमें विस्तृतरूपमें है एवं प्रस्थानत्रयी-भाष्यकार आद्य जगद्गुरु भगवान् शङ्कराचार्यने अपने 'द्वादशज्योतिर्लिङ्गस्तोत्रम्' में देश, दिशा एवं स्थानादिके प्रमाणोंद्वारा इसे प्रमाणित किया है।

श्रीशिवमहापुराणमें द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंका प्रमाण उपलब्ध होता है—

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम्।
उज्जयिन्यां महाकालमोङ्कारे परमेश्वरम्॥
केदारं हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशङ्करम्।
वाराणस्यां च विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे॥
वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं दारुकावने।
सेतुबन्धे च रामेशं घुश्मेशं तु शिवालये॥

(कोटिरुद्रसंहिता १।२१—[illegible])

अर्थात् सौराष्ट्रमें सोमनाथ, श्रीशैलमें मल्लिकार्जुन, उज्जैनमें महाकाल, ओङ्कारमें परमेश्वर, हिमवत्पृष्ठमें केदार[illegible]

डाकिनीमें भीमशङ्कर, वाराणसीमें विश्वनाथ, गौतमीतटपर त्र्यम्बकनाथ, चिताभूमिमें वैद्यनाथ, दारुकावनमें नागेश, सेतुबन्धमें रामेश्वर एवं शिवालयमें घुश्मेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग विराजमान हैं।

श्रीशिवमहापुराणकी ही शतरुद्रसंहिता (४२।५)-में इन बारह अवतारोंको परमात्मा शिवका 'अवतारद्वादशक' कहा गया है और इनके दर्शन तथा स्पर्शसे सब प्रकारके आनन्दप्राप्तिकी बात बतलायी गयी है—

अवतारद्वादशकमेतच्छम्भोः परमात्मनः।
सर्वानन्दकरं पुंसान्दर्शनात्स्पर्शनान्मुने॥

शिवपुराणकी कोटिरुद्रसंहिता (१।९-१०)-में सम्पूर्ण जगत्‌को ही लिङ्गभूत माना गया है—

सर्वं लिङ्गमयी भूमिः सर्वलिङ्गमयं जगत्॥
लिङ्गमयानि तीर्थानि सर्वं लिङ्गे प्रतिष्ठितम्।

द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंका विवरण

द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंका परिचयात्मक विवरण संक्षेपमें इस प्रकार दिया जा रहा है—

१-सोमनाथ—आद्य जगद्गुरु शङ्कराचार्यने 'द्वादश-ज्योतिर्लिङ्गस्तोत्र' में सोमनाथ ज्योतिर्लिङ्गकी स्तुति इस प्रकार की है—

सौराष्ट्रदेशे विशदेऽतिरम्ये
ज्योतिर्मयं चन्द्रकलावतंसम्।
भक्तिप्रदानाय कृपावतीर्णं
तं सोमनाथं शरणं प्रपद्ये॥

अर्थात् जो अपनी भक्ति प्रदान करनेके लिये अत्यन्त रमणीय तथा निर्मल सौराष्ट्र प्रदेश (काठियावाड़)-में दयापूर्वक अवतीर्ण हुए हैं, चन्द्रमा जिनके मस्तकका आभूषण है, उन ज्योतिर्लिङ्गस्वरूप भगवान् सोमनाथकी शरणमें मैं जाता हूँ।

महात्मा प्रजापति दक्षने अपनी सत्ताईस कन्याओंको चन्द्रमाके लिये दान किया। उन पत्नियोंमें रोहिणी नामकी पत्नी चन्द्रमाको विशेष प्रिय थी। शेष कन्याओंने अपनी वेदना प्रजापति दक्षको सुनायी, किंतु शिवमायासे विमोहित चन्द्रने उनकी बातोंपर तनिक भी ध्यान न दिया। फलस्वरूप प्रजापति दक्षने उसे क्षयी होनेका शाप दे दिया। चन्द्रमाकी क्षीणतासे हाहाकार मच गया। सभी देवता ब्रह्माकी शरणमें गये। ब्रह्माजीने प्रभासक्षेत्रमें जाकर शिवाराधनाकी बात कही। चन्द्रदेव प्रभासक्षेत्रमें जाकर शिवार्चन करने लगे। भगवान् शङ्कर प्रसन्न हो गये तथा उन्होंने वर माँगनेको कहा। चन्द्रमाने अपना मनोभिलषित क्षयनाशक वर माँगा। भगवान् आशुतोषने चन्द्रमाको एक पक्षमें प्रतिदिन बढ़नेका वर दिया। पुनः चन्द्रमाने कहा कि प्रभो! आप गिरिजासहित यहाँ स्थित रहें। इस क्षेत्रकी महिमा

बढ़ानेके लिये तथा चन्द्रमाके यशके लिये भगवान् शिव वहाँ सोमेश्वर (सोमनाथ)-के नामसे विख्यात हुए। वर्तमानमें यह काठियावाड़ प्रदेशके अन्तर्गत प्रभासक्षेत्रमें विराजमान है।

२-मल्लिकार्जुन—भगवत्पाद शङ्कराचार्यने इनकी वन्दना इस प्रकार की है—

श्रीशैलशृङ्गे विबुधातिसङ्गे
तुलाद्रितुङ्गेऽपि मुदा वसन्तम्।
तमर्जुनं मल्लिकपूर्वमेकं
नमामि संसारसमुद्रसेतुम्॥

अर्थात् जो ऊँचाईके आदर्शभूत पर्वतोंसे भी बढ़कर ऊँचे श्रीशैलके शिखरपर, जहाँ देवताओंका अत्यन्त समागम होता रहता है, प्रसन्नतापूर्वक निवास करते हैं तथा जो

संसारसागरसे पार करानेके लिये पुलके समान हैं, उन एकमात्र प्रभु मल्लिकार्जुनको मैं नमस्कार करता हूँ।

श्रीशिवमहापुराणमें ऐसा प्रसंग आया है कि पार्वतीपुत्र कुमार कार्तिकेय जब पृथ्वीकी परिक्रमा कर कैलासपर आये और नारदजीने गणेशके विवाहादिका वृत्तान्त उन्हें सुनाया, तो वे क्रुद्ध होकर क्रौञ्चपर्वतपर चले गये। भगवान् शिव और भगवती पार्वती स्नेहसहित कुमार कार्तिकेयके पास गये, किंतु उस स्थानमें अपने पुत्रके न मिलनेपर पुत्रस्नेहसे व्याकुल होकर उन्होंने वहाँ अपनी ज्योति स्थापित कर दी तथा वहाँसे अपने पुत्रको देखनेके लिये वे अन्य पर्वतोंपर जाने लगे, परंतु अमावास्याके दिन शिवजी तथा पूर्णिमाके दिन माता पार्वती वहाँ निश्चय ही जाती रहती हैं। इसी दिनसे मल्लिकार्जुनमें शिवजीका ज्योतिर्लिङ्ग प्रसिद्ध हुआ। सम्प्रति यह ज्योतिर्लिङ्ग मद्रास प्रान्तके कृष्णा जिलेमें कृष्णानदीके तटपर श्रीशैल (पर्वत)-पर है। इसे दक्षिणका कैलास भी कहते हैं।

३-महाकाल—श्रीशङ्कराचार्य महाराजने उक्त ज्योतिर्लिङ्गकी वन्दना करते हुए कहा है—

अवन्तिकायां विहितावतारं
मुक्तिप्रदानाय च सज्जनानाम्।
अकालमृत्योः परिरक्षणार्थं
वन्दे महाकालमहासुरेशम्॥

अर्थात् संतजनोंको मोक्ष देनेके लिये जिन्होंने अवन्तिपुरी (उज्जैन)-में अवतार धारण किया है, उन महाकाल नामसे विख्यात महादेवजीको मैं अकाल-मृत्युसे बचनेके लिये नमस्कार करता हूँ।

अवन्ति (अवन्ती-अवन्तिका) नामक शिवजीकी एक प्रिय नगरी है, जो बड़ी ही पवित्र और संसारको पवित्र करनेवाली है। उस नगरीमें एक वेदपाठी श्रेष्ठ ब्राह्मण निवास करता था। उसके चार पुत्र थे— देवप्रिय, प्रियमेधा, सुकृत और सुव्रत। उस समय रत्नमाल पर्वतपर दूषण नामक दैत्योंका एक महाबली राजा रहता था। वह वैदिक धर्मका विरोधी था। कालक्रमानुसार दैत्योंने उस नगरीको घेर लिया। ब्राह्मणोंने कोई अन्य उपाय न देखकर शिवजीकी शरण ली और उनका पार्थिव लिङ्ग बनाकर पूजन प्रारम्भ किया। इसी समय दूषण नामक दैत्य ससैन्य उनपर टूट पड़ा, किंतु उन ब्राह्मणोंने दैत्योंका वचन सुना ही नहीं; क्योंकि वे महादेवके ध्यानमें मग्न थे। ज्योंही वह दुष्टात्मा दूषण उन ब्राह्मणोंको मारने चला, त्योंही उस पार्थिव मूर्तिके स्थानमें एक भयानक शब्द करके गड्ढा हो गया और उसी गर्तसे विकटरूपधारी महाकाल नामक शिव प्रकट

हुए और उन्होंने अपने हुङ्कारमात्रसे सेनासहित दूषणको तत्काल भस्म कर दिया।

प्रकृत लिङ्ग मालवाप्रदेशमें शिप्रानदीके तटपर उज्जैन नगरमें विराजमान है, जो अवन्तिकापुरीके नामसे विख्यात है। यह राजा भोज, उदयन, विक्रमादित्य, भर्तृहरि एवं महाकवि कालिदासकी साधना-स्थली रही है।

४-ओङ्कारेश्वर—भगवान् शङ्कराचार्य कहते हैं—

कावेरिकानर्मदयोः पवित्रे
समागमे सज्जनतारणाय।
सदैव मान्धातृपुरे वसन्त-
मोङ्कारमीशं शिवमेकमीडे॥

अर्थात् जो सत्पुरुषोंको संसार-सागरसे पार उतारनेके लिये कावेरी और नर्मदाके पवित्र संगमके निकट मान्धाता-पुरमें सदा निवास करते हैं, उन अद्वितीय कल्याणमय भगवान् ओङ्कारेश्वरका मैं स्तवन करता हूँ।

श्रीशिवमहापुराणमें ऐसा प्रसंग आया है कि [illegible]

समय देवर्षि नारदजीने गोकर्णतीर्थमें जाकर वहाँ उन गोकर्ण नामक शिवजीकी बड़ी पूजा की तथा पुनः विन्ध्याचलपर्वतपर उनकी आराधना की। तब विन्ध्यपर्वतको यह अहङ्कार हो गया कि मुझमें सब कुछ है तथा किसी भी प्रकारकी न्यूनता नहीं है। इससे विन्ध्यपर्वत नारदजीके समक्ष आकर खड़ा हो गया तथा उसने मनुष्यरूपमें अपनी अहंमन्यता प्रकट की, तब उसके ऐसे भावको देखकर नारदजीने कहा—तुम अवश्य ही सभी गुणोंके आकर हो, परंतु सुमेरुपर्वत सबसे ऊँचा है, यह सुनकर विन्ध्याचल दुःखी हुआ एवं बड़े प्रेमसे ॐकार नामक शिवकी पार्थिव मूर्ति बनाकर पूजा करने लगा। शिवजी प्रसन्न होकर प्रकट हुए और उससे वर माँगनेको

कहा। भगवान् शिवको प्रकट हुआ देखकर ऋषियों, मुनियों और देवताओंने उनसे वहीं निवास करनेकी प्रार्थना की। फलस्वरूप भगवान् शिव वहाँ ओङ्कारेश्वर नामसे प्रसिद्ध हुए। यह स्थान आजकल मालवाप्रान्तमें नर्मदानदीके तटपर स्थित है। यहाँ ओङ्कारेश्वर और अमलेश्वर (अमरेश्वर)-के दो पृथक्-पृथक् लिङ्ग हैं, परंतु ये एक ही लिङ्गके दो स्वरूप हैं।

५-केदारेश्वर—शिवपुराणके अनुसार धर्मपुत्र नर-नारायण जब बदरिकाश्रममें जाकर पार्थिव पूजन करने लगे तो उनसे प्रार्थित शिवजी वहाँ प्रकट हुए। कुछ समय पश्चात् एक दिन शिवजीने प्रसन्न होकर उनसे वर

माँगनेको कहा तो लोककल्याणार्थ नर-नारायणने उनसे प्रार्थना की कि हे देवेश! यदि आप हमसे प्रसन्न हैं तो स्वयं अपने रूपसे पूजाके निमित्त सर्वदा यहाँ स्थित रहें। तब उन दोनोंके ऐसा कहनेपर हिमाश्रित केदार नामक स्थानमें साक्षात् महेश्वर ज्योतिःस्वरूप हो स्वयं स्थित हुए। उनका वहाँ केदारेश्वर नाम पड़ा। वर्तमान समयमें श्रीकेदारनाथ हिमालयके केदार नामक शृङ्गपर स्थित हैं।

६-भीमशङ्कर—श्रीशिवमहापुराणमें ऐसी कथा है कि पूर्व समयमें भीम नामक एक बड़ा ही वीर राक्षस था। वह कुम्भकर्ण और कर्कटी नामक राक्षसीसे उत्पन्न हुआ था। वह श्रीहरि विष्णुका विरोधी था; क्योंकि उसके पिता कुम्भकर्णका वध श्रीरामने किया था। अतएव वह श्रीहरिको पीड़ा देनेके निमित्त उग्र तप करने लगा। ब्रह्माजीसे वर पाकर उसने समस्त पृथ्वीको अपने अधीन कर लिया। समस्त देवता शिवजीकी शरणमें गये एवं अपनी वेदना प्रकट की। उधर राक्षस भीमने कामरूप देशके राजा सुदक्षिणपर आक्रमण किया। कामरूपेश्वर सुदक्षिणका शिवमें पूर्ण विश्वास था। उन्होंने भगवान् सदाशिवकी शरण ली और पार्थिव लिङ्ग बनाकर उसका पूजन प्रारम्भ किया। उस राक्षस भीमने कामरूपेश्वरपर प्रहार करना चाहा, परंतु उसकी तलवार पार्थिव लिङ्गतक पहुँची भी न थी कि उस लिङ्गसे साक्षात्

शिव प्रकट हो गये और उन्होंने हुङ्कारमात्रसे राक्षस भीमका सेनासहित संहार कर दिया। वे वहाँ भीमशङ्कर नामक ज्योतिर्लिङ्गके रूपमें प्रतिष्ठित हुए। सम्प्रति यह स्थान मुम्बईसे पूर्व और पूनासे उत्तर भीमानदीके किनारे सह्यपर्वतपर है। कुछ लोग इसे आसाममें बतलाते हैं। श्रीशङ्कराचार्यजीने इनकी स्तुति करते हुए कहा है—

यं डाकिनीशाकिनिकासमाजे
निषेव्यमाणं पिशिताशनैश्च।
सदैव भीमादिपदप्रसिद्धं
तं शङ्करं भक्तहितं नमामि॥

अर्थात् जो डाकिनी और शाकिनीवृन्दमें प्रेतोंद्वारा सदैव सेवित होते हैं, उन भक्तहितकारी भगवान् भीमशङ्करको मैं प्रणाम करता हूँ।

७-विश्वेश्वर—सभी देवताओंकी साधना-स्थली है काशी। आद्य भगवत्पाद श्रीशङ्कराचार्यजीने भगवान् विश्वेश्वरकी स्तुतिमें कहा है—

सानन्दमानन्दवने वसन्त-
मानन्दकन्दं हतपापवृन्दम्।
वाराणसीनाथमनाथनाथं
श्रीविश्वनाथं शरणं प्रपद्ये॥

अर्थात् जो स्वयं आनन्दकन्द हैं और आनन्दपूर्वक आनन्दवन (काशीक्षेत्र)-में वास करते हैं, जो पापसमूहका नाश करनेवाले हैं, उन अनाथोंके नाथ काशीपति श्रीविश्वनाथकी शरणमें मैं जाता हूँ।

भगवान् शिवने अपनी प्रेरणासे समस्त तेजोंके सारस्वरूप पाँच कोशका एक सुन्दर नगर निर्माण किया। जहाँपर भगवान् विष्णुने सृष्टि रचनेकी इच्छासे शिवजीका चिरकालतक ध्यान किया, किंतु शून्य छोड़ उन्हें कुछ भी भान न हुआ। इस अद्भुत दृश्यको देखकर उन्होंने अपने शरीरको जोरसे हिलाया तो उनके कर्णसे एक मणि गिरी, जिससे उस स्थानका नाम 'मणिकर्णिका' तीर्थ पड़ा। फिर मणिकर्णिकाके उस पञ्चक्रोश विस्तारवाले सम्पूर्ण मण्डलको शिवजीने अपने त्रिशूलपर धारण किया। उन्होंने इस पञ्चक्रोशीको ब्रह्माण्डमण्डलसे पृथक् रखा। यहींपर उन्होंने अपने मुक्तिदायक विश्वेश्वर नामक ज्योतिर्लिङ्गको स्वयं स्थापित किया है। सम्प्रति यह स्थान उत्तरप्रदेशमें वाराणसी (काशी)-में स्थित है।

८-त्र्यम्बकेश्वर—एक समय जब गौतमऋषिने अपने शिष्योंको जल लानेके लिये भेजा तब वे पात्र लेकर गर्तपर गये। उसी समय जल लेनेके लिये आयी हुई ऋषिपत्नियोंने उन शिष्योंको देखकर जल लेनेका विरोध किया और कहा कि पहले हमलोग भर लेंगी, तब तुम दूरसे भरना। तव उन शिष्योंने लौटकर सारा हाल ऋषिपत्नीसे कहा। ऋषिपत्नी शिष्योंको समझाकर स्वयं उनके साथ जल लेनेको गयीं और गौतमऋषिको दिया। ऋषि-पत्नियोंने क्रोधवशात् उपर्युक्त सम्पूर्ण वृत्तान्त असत्य रूपमें अपने-अपने पतियोंसे कहा। फलस्वरूप ऋषियोंने गणेशार्चन कर गौतमऋषिको आश्रमसे बहिष्कृत करनेका वर माँगा। भक्तपराधीन गणेशजीको उनकी बात माननी पड़ी। गौतमजी इस वृत्तान्तसे अज्ञात थे। गणेशजीने केदारतीर्थपर जौ-भक्षण करनेके लिये एक दुर्बल गौका रूप धारण किया। गौतमजीने एक तृणके स्तम्भसे उस गायका निवारण किया, जिससे वह गाय मृत्युको प्राप्त हुई। फलस्वरूप गोहत्याका आरोप लगाकर उन ऋषियोंने सपरिवार गौतममुनिको वहाँसे बहिष्कृत किया। गोहत्या-निवारणार्थ अन्य ऋषियोंने गङ्गाजीको लाकर स्नान करने एवं कोटि संख्यामें पार्थिव लिङ्ग बनाकर शिवार्चन करनेकी वात कही। उक्त क्रिया करनेपर शिवजी वहाँ प्रकट हुए, तव गौतमने पापनिवारणार्थ गङ्गाजीको महादेवजीसे वहाँ निवास करनेका आग्रह किया। त

सुनकर शिवजी तथा गङ्गाजी वहाँ स्थित हुए। गङ्गाजी 'गौतमी' नामसे तथा शिवजीका लिङ्ग 'त्र्यम्बक' नामसे विख्यात हुआ। सम्प्रति यह ज्योतिर्लिङ्ग महाराष्ट्र प्रान्तके नासिक जिलेमें ब्रह्मगिरिके निकट गोदावरीनदीके तटपर है। श्रीशङ्कराचार्यजीने त्र्यम्बकेश्वरकी स्तुति करते हुए कहा है—

सह्याद्रिशीर्षे विमले वसन्तं
गोदावरीतीरपवित्रदेशे ।
यद्दर्शनात्पातकमाशु नाशं
प्रयाति तं त्र्यम्बकमीशमीडे॥

जो गोदावरीतटके पवित्र देशमें सह्यपर्वतके विमल शिखरपर वास करते हैं, जिनके दर्शनसे तुरंत ही पातक नष्ट हो जाता है, उन श्रीत्र्यम्बकेश्वरका मैं स्तवन करता हूँ।

९-वैद्यनाथ—हार्दपीठ वैद्यनाथधाम तो द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंमें सर्वश्रेष्ठ माना गया है। पद्मपुराणमें कहा गया है—

'हार्दपीठस्य सदृशो नास्ति ब्रह्माण्डमण्डले।'

आद्य जगद्गुरु शङ्कराचार्यजीने वैद्यनाथ ज्योतिर्लिङ्गकी स्तुति करते हुए कहा है—

पूर्वोत्तरे प्रज्वलिकानिधाने
सदा वसन्तं गिरिजासमेतम्।
सुरासुराराधितपादपद्मं
श्रीवैद्यनाथं तमहं नमामि॥

अर्थात् जो पूर्वोत्तर दिशामें चिताभूमि (वैद्यनाथधाम)-के भीतर सदा ही गिरिजाके साथ वास करते हैं, देवता और असुर जिनके चरणकमलोंकी आराधना करते हैं, उन श्रीवैद्यनाथको मैं प्रणाम करता हूँ।

ऐसा प्रसङ्ग आया है कि राक्षसाधिप रावणने कैलास-पर्वतपर जाकर शिवजीकी आराधना की और शीतकालमें आकण्ठ जलमें तथा ग्रीष्मकालमें पञ्चाग्निके बीच कठोर तप करना प्रारम्भ किया। रावणने शिवजीको प्रसन्न करनेके लिये अपने एक-एक कर नौ सिर काट डाले, जब एक सिर बचा रहा, तब शिवजी प्रसन्न हो गये। शिवजीको प्रसन्न हुआ जानकर रावणने उनसे यह प्रार्थना की कि हे प्रभो! मैं आपको अपनी नगरी लङ्कामें ले चलना चाहता हूँ। मैं आपकी शरणमें हूँ। भगवान् शिवने कहा—अच्छा, तुम्हारी यही इच्छा है तो तुम मेरे लिङ्गको परम भक्तिके साथ अपने साथ ले चलो, पर यह ध्यान रखना कि यदि तुम कहीं बीचमें इसे पृथ्वीपर रख दोगे तो यह वहीं स्थिर हो जायगा। तदनन्तर जब रावण ज्योतिर्लिङ्ग लेकर लङ्काके लिये चला तो वह प्रबल लघुशङ्काके वेगसे पीड़ित होने लगा। एक गोप बालकको महालिङ्ग देकर वह लघुशङ्का करने लगा, परंतु उस बालकने भी अधिक देरतक लिङ्गका भार न सह सकनेके कारण उसे पृथ्वीपर रख दिया और उसी समयसे वह लिङ्ग वैद्यनाथ ज्योतिर्लिङ्ग नामसे विख्यात हुआ। सम्प्रति यह महालिङ्ग झारखण्ड प्रान्तके संथाल परगनामें स्थित है, यहींपर भवानी सतीका हृदय भी गिरा है, अतः यह ५१ शक्तिपीठोंमें एक है। संसारमें किसी मन्दिरके ऊपरमें पञ्चशूल विराजमान नहीं है, लेकिन यहाँ यह विशेषता पायी जाती है। यहाँ ज्योतिका वाचक चन्द्रकान्तमणि आज भी विद्यमान है।

१०-नागेश—पश्चिम समुद्रतटपर स्थित एक वनमें दारुक नामका एक बलवान् राक्षस अपनी पत्नी दारुका तथा अन्य राक्षसोंके साथ रहता था। एक बार बहुत-सी नावें उधर आ निकलीं, जो मनुष्योंसे भरी थीं। राक्षसोंने उनमें बैठे हुए सब लोगोंको पकड़ लिया और बेड़ियोंसे बाँधकर कारागारमें डाल दिया। उनमें सुप्रिय नामसे प्रसिद्ध एक वैश्य था, जो उस दलका

रुद्राक्षधारी तथा भगवान् शिवका परम भक्त था। एक समय दारुक राक्षसके सेवकने उस वैश्यके आगे शिवजीका सुन्दर रूप देखा तो दौड़कर उसने सब चरित्र अपने स्वामीको सुनाया। वृत्तान्त सुनकर दारुक वैश्यसे समाचार पूछने लगा और कहने लगा कि सत्य-सत्य बतलाओ नहीं तो मैं तुझे मार डालूँगा। वैश्यने कहा—मैं कुछ नहीं जानता। इसपर क्रुद्ध होकर दारुकने उसे मारनेकी आज्ञा दी। वैश्य शिवजीका स्मरण कर उनके नामको रटने लगा, उससे प्रसन्न हो सदाशिव पाशुपत अस्त्रसे स्वयं राक्षसोंको मारने लगे। दारुककी सेना मारी गयी। इस प्रकार राक्षसोंको मारकर शिवजीने उस वनमें चारों वर्णोंको रहनेका अधिकार दिया और यह भी कहा कि यहाँ राक्षस न रहें। यह देखकर दारुका नामवाली राक्षसीने वंश-रक्षार्थ माँ भवानीकी वन्दना की, पुनः पार्वतीजीने शिवजीसे आग्रह किया तो शिवजीने भी सहमति प्रकट की। फिर उन्होंने शिवजीसे कहा—इस युगके

अन्ततक तामसिक सृष्टि रहेगी। दारुका राक्षसी मेरी शक्ति है। यह राक्षसोंमें वरिष्ठ होकर राज्य करेगी। इस प्रकार शिव-पार्वती परस्पर वार्तालाप करते हुए वहीं स्थित हो गये, भगवान्‌का वहाँ 'नागेश्वर' नाम पड़ा। वर्तमानमें यह स्थान बड़ौदा राज्यान्तर्गत गोमती द्वारकासे ईशानकोणमें बारह-तेरह मीलकी दूरीपर है। कोई-कोई निजाम हैदराबाद राज्यान्तर्गत औढ़ा ग्राममें स्थित लिङ्गको ही 'नागेश्वर' ज्योतिर्लिङ्ग मानते हैं। कुछ लोगोंके मतसे अल्मोड़ासे १७ मील उत्तर-पूर्वमें स्थित यागेश (जागेश्वर) शिवलिङ्ग ही नागेश ज्योतिर्लिङ्ग है।

११-रामेश्वर—त्रेतायुगमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजी सीताहरणके पश्चात् सीताकी खोज करनेके क्रममें सुग्रीव-हनुमानादिके सहयोगसे लङ्कापर चढ़ाई करनेके पूर्व वानरी सेना लेकर समुद्रके किनारे पहुँचे। उसी समय उन्हें प्यास लगी। उन्होंने अनुज लक्ष्मणसे जल माँगा। लक्ष्मणने वानरोंको जल लानेकी आज्ञा दी। वानर जल लेकर आये। श्रीरामने ज्यों ही जल पीना चाहा, त्यों ही उन्हें स्मरण हो आया कि मैंने अभीतक शिवार्चन नहीं किया है फिर उन्होंने पार्थिव लिङ्ग बनाकर षोडशोपचारविधिसे शिवपूजन किया। शिवजी प्रसन्न हुए एवं वर माँगनेको कहा। श्रीरामने

लोककल्याणार्थ शिवजीको इस स्थानपर निवास करनेके लिये कहा। तब वहाँ शिवजी 'रामेश्वर' नामसे विख्यात हुए। वर्तमान समयमें यह ज्योतिर्लिङ्ग तमिलनाडु (मद्रास) प्रान्तके रामनद जिलेमें है। श्रीशङ्कराचार्यजीने रामेश्वर ज्योतिर्लिङ्गकी स्तुतिमें कहा है—

सुताम्रपर्णीजलराशियोगे
निबध्य सेतुं विशिखैरसंख्यैः।
श्रीरामचन्द्रेण समर्पितं तं
रामेश्वराख्यं नियतं नमामि॥

अर्थात् जो भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा ताम्रपर्णी और सागरके संगममें अनेक बाणोंद्वारा पुल बाँधकर समर्पित किये गये हैं, उन श्रीरामेश्वरको मैं नियमसे प्रणाम करता हूँ।

१२-घुश्मेश्वर (घृष्णेश्वर)—दक्षिण दिशामें देव नामक पर्वत है। उसपर सुधर्मा नामक वेदज्ञ ब्राह्मण सपत्नीक निवास करते थे। दुर्भाग्यवश उनकी प्रथम पत्नी सुदेहासे उनको कोई पुत्र न हुआ। कालक्रमानुसार घुश्मासे विवाह कर उन्हें पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई। सुदेहा दु:खित रहने लगी। कुछ समय बाद सुदेहाने पुत्रमारणरूप पैशाचिक कर्म किया, किंतु शिवभक्ता घुश्माने शोक रहनेपर भी नित्य पार्थिव पूजन नहीं त्यागा। पूजनके पश्चात् जब वह पार्थिव लिङ्गका विसर्जन करने तालाबपर गयी तो शिवकृपासे उसका पुत्र जीवित मिला। भगवान् शिवने घुश्माके इस भक्तिभावसे प्रसन्न होकर कहा—हे घुश्मे! वर माँगो। किंतु नतमस्तक, करबद्ध घुश्माने कहा—हे देवेश! सुदेहा मेरी बहन है, अत: आप उसकी रक्षा करें। यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो आप यहाँ लोककल्याणार्थ सर्वदा निवास करें। इसपर वहाँ भगवान् शिव 'घुश्मेश्वर' के नामसे प्रख्यात हुए। सम्प्रति यह ज्योतिर्लिङ्ग दौलताबादसे बारह मील दूर बेरूल नामक ग्रामके पास है। श्रीशङ्कराचार्यजीने इनकी स्तुतिमें कहा है—

इलापुरे रम्यविशालकेऽस्मिन्
समुल्लसन्तं च जगद्वरेण्यम्।

वन्दे महोदारतरस्वभावं
घृष्णेश्वराख्यं शरणं प्रपद्ये॥

अर्थात् जो इलापुरके सुरम्य मन्दिरमें विराजमान होकर समस्त जगत्के आराधनीय हो रहे हैं, जिनका स्वभाव बड़ा ही उदार है, उन घृष्णेश्वर नामक ज्योतिर्मय भगवान् शिवकी शरणमें मैं जाता हूँ।

~~ ० ~~

रुद्राष्टक

नमामीशमीशान निर्वाणरूपं। विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं॥
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं। चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं॥
निराकारमोंकारमूलं तुरीयं। गिरा ग्यान गोतीतमीशं गिरीशं॥
करालं महाकाल कालं कृपालं। गुणागार संसारपारं नतोऽहं॥
तुषाराद्रि संकाश गौरं गभीरं। मनोभूत कोटि प्रभा श्री शरीरं॥
स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी चारु गंगा। लसद्भालबालेन्दु कंठे भुजंगा॥
चलत्कुण्डलं भ्रू सुनेत्रं विशालं। प्रसन्नाननं नीलकंठं दयालं॥
मृगाधीशचर्माम्बरं मुण्डमालं। प्रियं शंकरं सर्वनाथं भजामि॥
प्रचंडं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं। अखंडं अजं भानुकोटिप्रकाशं॥
त्रय: शूल निर्मूलनं शूलपाणिं। भजेऽहं भवानीपतिं भावगम्यं॥
कलातीत कल्याण कल्पान्तकारी। सदा सज्जनानन्ददाता पुरारी॥
चिदानंद संदोह मोहापहारी। प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी॥
न यावद् उमानाथ पादारविन्दं। भजंतीह लोके परे वा नराणां॥
न तावत्सुखं शान्ति सन्तापनाशं। प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिवासं॥
न जानामि योगं जपं नैव पूजां। नतोऽहं सदा सर्वदा शंभु तुभ्यं॥
जरा जन्म दु:खौघ तातप्यमानं। प्रभो पाहि आपन्नमामीश शंभो॥
रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये। ये पठन्ति नरा भक्त्या तेषां शम्भु: प्रसीदति॥

~~ ० ~~

आदिशक्ति श्रीजगदम्बाके विविध लीलावतार

या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥

जो देवी सभी प्राणियोंमें शक्तिरूपसे स्थित हैं, उन्हें बार-बार नमस्कार है।

[यह सम्पूर्ण जगत् सच्चिदानन्दमयी आदिशक्ति पराम्बा भगवतीका ही लीला-विलास है। वे ही इसे अपनी लीलासे उद्भूत करती हैं, इसकी रक्षा करती हैं, पालन-पोषण करती हैं और अन्तमें पुनः लीलाका संवरण कर सब कुछ अपनेमें लीन कर लेती हैं। सृष्टि और तिरोधानका यह क्रम अनन्त काल से इसी प्रकार चलता आया है और आगे भी चलता रहेगा। पराम्बा श्रीजगदम्बा भक्तोंके कल्याणके लिये अनेक नाम-रूपोंमें अवतार धारण करती हैं और दुष्टोंसे जगत्की रक्षा करती हैं। उनका स्वयंका कहना है—'इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति। तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम्॥' भगवतीकी महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती आदि तीन अवतार-लीलाएँ तो अतिप्रसिद्ध ही हैं; साथ ही वे कभी सती बन जाती हैं और जीवके अहंकारका विनाश करती हैं। कभी वे पार्वती बनकर भगवान् शिवकी अर्धाङ्गिनी बनकर कृपाशक्तिका विस्तार करती हैं। एक बार घोर अकाल पड़ गया, सर्वत्र हाहाकार छा गया, तब भक्तोंका दुःख दूर करनेके लिये उन्होंने अपनी सौ आँखें बना लीं और वे 'शताक्षी' कहलायीं। उन आँखोंसे करुणाकी अजस्र धारा प्रवाहित होने लगी। एक बार उन्होंने शाककी वर्षा करके अकाल दूर किया और वे 'शाकम्भरी' कहलायीं। ऐसे ही अरुण नामक असुरसे छुटकारा दिलानेके लिये वे 'भ्रामरी' बन गयीं। देवताओंको अपने बलका बड़ा अभिमान था। उसी अभिमानको दूर करनेके लिये उन्होंने ज्योतिरूपमें अवतार धारण किया। 'रक्तदन्तिका' और 'भीमा' भी उन्हींके लीलाविग्रह हैं; काली, तारा आदि दस महाविद्याओंके रूपमें देवीका ही प्राकट्य हुआ है। नवदुर्गा, नवगौरी तथा मातृकाओंके रूपमें देवीने ही अवतार लिया है। उनकी अवतार-कथाएँ अत्यन्त मनोरम, करुणासे परिपूर्ण तथा श्रवण करनेसे कल्याण करनेवाली हैं। यहाँ संक्षेपमें भगवतीके कुछ लीला-चरित्र प्रस्तुत हैं—सम्पादक]

(१) अद्भुत उपकर्त्री सती

(श्रीलालबिहारीजी मिश्र)

आदिशक्ति 'सद्'-रूप, 'ज्ञान'-रूप और 'आनन्द'-रूप हैं। जैसे अन्धकार सूर्यपर कभी कोई प्रभाव नहीं डाल सकता, वैसे ही आदिशक्तिमें अणुमात्र भी अज्ञान सम्भव नहीं है, फिर भी दयामयी आदिशक्तिने जीवोंको भगवान् और उनके प्रेमकी ओर उन्मुख करनेके लिये सती-अवतारमें अज्ञताका अभिनय किया। उन्होंने वह लीला विश्वको 'श्रीरामचरितमानस' प्रदान करने और ब्रह्मकी प्रमुखता दिखलानेके लिये की है। इसीके लिये उन्होंने सती-अवतारमें लाञ्छन सहा, प्रताड़ना सही और शरीरको त्यागकर प्रियतमका असह्य बिछोह भी सहन किया। यह है माताकी बच्चोंके प्रति दयालुता, ममता और वत्सलता।

दक्षप्रजापति ब्रह्माके मानस पुत्र थे। वे पिताकी आज्ञासे सृष्टिके क्रमको बढ़ानेमें व्यस्त रहते थे। इसी बीच उन्हें पिताकी दूसरी आज्ञा मिली कि वे शक्तिके अवतारके लिये तप करें। दक्षने ब्रह्माकी इस आज्ञाको भी शिरोधार्य किया। वे कठिन तपमें संलग्न हो गये—कभी सूखा पत्ता चबा लेते, कभी जल पी लेते और कभी हवा पीकर ही रह जाते। प्रत्येक परिस्थितिमें जगदम्बाकी पूजा निरन्तर चलती रहती थी। तीन हजार दिव्य वर्ष बीतनेपर आदिशक्तिने दक्षको दर्शन दिया।

वे सिंहपर बैठी थीं और उनके शरीरकी कान्ति श्याम थी। उनके चार भुजाएँ थीं। उनका श्रीमुख अत्यन्त मनोरम था। वे आह्लादक प्रकाशसे प्रकाशित हो रही थीं। उस समय कण-कण आह्लादसे थिरक रहा था। अद्भुत छटा थी।

जगदम्बाका दर्शन पाकर दक्षने अपनेको धन्य माना और भलीभाँति प्रणाम कर उनकी स्तुति की। जगदम्बाने कहा—'दक्ष! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम जो चाहे माँग लो।' दक्षने कहा—'देवि! मेरे स्वामी शंकर हैं। वे रुद्ररूपसे अवतार ले चुके हैं। आप उनकी शक्ति हैं, अतः अवतार ग्रहण कर अपने रूप-लावण्यसे उन्हें मोहित करें।' आदिशक्तिने कहा—'मैं तुम्हारी पत्नीके गर्भसे पुत्रीके रूपमें अवतार लूँगी; किंतु एक शर्त है, जिसे तुम ध्यानमें रखना। वह यह है कि जब मेरे प्रति तुम्हारा आदर घट जायगा, तब मैं अपना शरीर त्याग दूँगी।' इतना कहकर वे अन्तर्धान हो गयीं।

जब आदिशक्ति दक्षप्रजापतिकी पत्नीके गर्भमें आयीं, तब उनके शरीरसे पुण्यमय आभा निकलने लगी और चित्तमें निरन्तर प्रसन्नता-ही-प्रसन्नता छायी रहती थी। वीरणीमें आदिशक्तिका आवास जानकर वहाँ ब्रह्मा और विष्णु आये। उनके साथ सम्पूर्ण देव और ऋषि-मुनि भी थे। सभीने प्रेमार्द्र-वाणीसे भगवती शक्तिकी स्तुति की और उन्हें प्रणाम किया। उन लोगोंने दक्ष और वीरणीकी भी भूरि-भूरि प्रशंसा की। जब गुणोंसे युक्त सुहावना समय आया, तब शक्तिने अपनेको प्रकट किया। उस समय दिशाएँ प्रसन्न हो गयीं, शीतल-मन्द-सुगन्ध हवा बहने लगी, आकाश स्वच्छ हो गया और पुष्पवृष्टि होने लगी। सब जगह सुख-शान्ति छा गयी। दक्षने शक्तिका वही रूप देखा, जिसे वरदानके समय देखा था। उन्होंने हाथ जोड़कर देवीको प्रणाम किया और स्तुति की।

तब स्तुतिसे प्रसन्न हो भगवती शक्ति इस प्रकार बोलीं—'प्रजापति दक्ष! तुमने मेरे अवतारके लिये तप किया था, अतः मैं तुम्हारी पुत्रीके रूपमें अवतीर्ण हो गयी हूँ। अब तुम तपस्याके फलको ग्रहण करो।' ऐसा कहकर शक्ति नवजात शिशु बनकर रोने लगीं। शिशुका रोना सुनकर चारों ओर हर्ष छा गया। स्त्रियाँ दौड़ी आयीं। बच्चीका लुभावना रूप देखकर सब ठगी-सी रह गयीं। जय-जयकारकी ध्वनिसे सारा नगर गूँजने लगा। बाजे बजने लगे। कलकण्ठोंकी स्वर-लहरियाँ वातावरणमें तैरने लगीं। दक्षने कुलोचित वैदिक आचरण सम्पन्न किया। गौ, घोड़े, हाथी, सोना, वस्त्र आदिका दान दिया गया।

दक्षने कन्याका नाम 'सती' रखा। लोगोंने अपनी-अपनी रुचिके अनुसार उसके अलग-अलग नाम रखे। जो देखता, उसके मनमें अपनापन जाग उठता। वह शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी कलाकी तरह बढ़ती हुई सबके चित्तको आह्लादित करने लगी। जैसे-जैसे बच्ची बढ़ती गयी, वैसे-वैसे शिवके प्रति उसका अनुराग भी बढ़ता गया। सखियोंके बीच भी वह छिपाये न छिपा। उसके ओठोंपर शंकरके नाम थे, तो अन्तरमें उनकी करुण पुकार थी। शिवके प्रेममें डूबी हुई वह; कभी रोती तो कभी हँसती। सखियाँ उसपर श्रद्धा रखने लगीं। इतना प्यार करने लगीं कि वे अपने शरीरको भुलाकर सतीके शरीरको ही अपना शरीर मानने लगीं।

एक दिन ब्रह्माजी नारदके साथ प्रजापति दक्षके घर पधारे। उस समय सती विनम्र-भावसे पिताके पास ही खड़ी थीं। उनके उत्कट सौन्दर्यसे वहाँका वातावरण उद्भासित हो रहा था। वे तीनों लोकोंके सौन्दर्यका सार प्रतीत हो रही थीं। जब आदर-सत्कारके पश्चात् ब्रह्मा और नारद बैठ गये, तब उन्होंने सतीसे कहा कि 'तुम शंकर भगवान्‌को चाहती ही हो, अतः उन्हींको पति बनाओ। भगवान् शंकर भी तुम्हारे सिवा और किसीको कभी पत्नी नहीं बना सकते।'

यह सुनकर सतीकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। दक्ष भी प्रसन्न हुए, परंतु उन्हें यह चिन्ता व्याप्त हो गयी कि शंकरको ढूँढ़ा कहाँ जाय, वे कहाँ मिल सकेंगे? मिलनेपर भी उन्हें विवाहके लिये राजी कर सकना कठिन था। वे इसी उधेड़-बुनमें पड़े रहते। इसी बीच एक दिन सतीने पितासे शंकरकी प्राप्तिके लिये तपस्याकी आज्ञा माँगी।

आदिशक्ति श्रीजगदम्बाके विविध लीलावतार

या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥

जो देवी सभी प्राणियोंमें शक्तिरूपसे स्थित हैं, उन्हें बार-बार नमस्कार है।

[यह सम्पूर्ण जगत् सच्चिदानन्दमयी आदिशक्ति पराम्बा भगवतीका ही लीला-विलास है। वे ही इसे अपनी लीलासे उद्भूत करती हैं, इसकी रक्षा करती हैं, पालन-पोषण करती हैं और अन्तमें पुनः लीलाका संवरण कर सब कुछ अपनेमें लीन कर लेती हैं। सृष्टि और तिरोधानका यह क्रम अनन्त काल से इसी प्रकार चलता आया है और आगे भी चलता रहेगा। पराम्बा श्रीजगदम्बा भक्तोंके कल्याणके लिये अनेक नाम-रूपोंमें अवतार धारण करती हैं और दुष्टोंसे जगत्‌की रक्षा करती हैं। उनका स्वयंका कहना है—'इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति। तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम्॥' भगवतीकी महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती आदि तीन अवतार-लीलाएँ तो अतिप्रसिद्ध ही हैं; साथ ही वे कभी सती बन जाती हैं और जीवके अहंकारका विनाश करती हैं। कभी वे पार्वती बनकर भगवान् शिवकी अर्धाङ्गिनी बनकर कृपाशक्तिका विस्तार करती हैं। एक बार घोर अकाल पड़ गया, सर्वत्र हाहाकार छा गया, तब भक्तोंका दुःख दूर करनेके लिये उन्होंने अपनी सौ आँखें बना लीं और वे 'शताक्षी' कहलायीं। उन आँखोंसे करुणाकी अजस्र धारा प्रवाहित होने लगी। एक बार उन्होंने शाककी वर्षा करके अकाल दूर किया और वे 'शाकम्भरी' कहलायीं। ऐसे ही अरुण नामक असुरसे छुटकारा दिलानेके लिये वे 'भ्रामरी' बन गयीं। देवताओंको अपने बलका बड़ा अभिमान था। उसी अभिमानको दूर करनेके लिये उन्होंने ज्योतिरूपमें अवतार धारण किया। 'रक्तदन्तिका' और 'भीमा' भी उन्हींके लीलाविग्रह हैं; काली, तारा आदि दस महाविद्याओंके रूपमें देवीका ही प्राकट्य हुआ है। नवदुर्गा, नवगौरी तथा मातृकाओंके रूपमें देवीने ही अवतार लिया है। उनकी अवतार-कथाएँ अत्यन्त मनोरम, करुणासे परिपूर्ण तथा श्रवण करनेसे कल्याण करनेवाली हैं। यहाँ संक्षेपमें भगवतीके कुछ लीला-चरित्र प्रस्तुत हैं—सम्पादक]

(१) अद्भुत उपकर्त्री सती

(श्रीलालबिहारीजी मिश्र)

आदिशक्ति 'सद्'-रूप, 'ज्ञान'-रूप और 'आनन्द'-रूप हैं। जैसे अन्धकार सूर्यपर कभी कोई प्रभाव नहीं डाल सकता, वैसे ही आदिशक्तिमें अणुमात्र भी अज्ञान सम्भव नहीं है, फिर भी दयामयी आदिशक्तिने जीवोंको भगवान् और उनके प्रेमकी ओर उन्मुख करनेके लिये सती-अवतारमें अज्ञताका अभिनय किया। उन्होंने वह लीला विश्वको 'श्रीरामचरितमानस' प्रदान करने और ब्रह्मकी प्रमुखता दिखलानेके लिये की है। इसीके लिये उन्होंने सती-अवतारमें लाञ्छन सहा, प्रताड़ना सही और शरीरको त्यागकर प्रियतमका असह्य बिछोह भी सहन किया। यह है माताकी बच्चोंके प्रति दयालुता, ममता और वत्सलता।

दक्षप्रजापति ब्रह्माके मानस पुत्र थे। वे पिताकी आज्ञासे सृष्टिके क्रमको बढ़ानेमें व्यस्त रहते थे। इसी बीच उन्हें पिताकी दूसरी आज्ञा मिली कि वे शक्तिके अवतारके लिये तप करें। दक्षने ब्रह्माकी इस आज्ञाको भी शिरोधार्य किया। वे कठिन तपमें संलग्न हो गये—कभी सूखा पत्ता चबा लेते, कभी जल पी लेते और कभी हवा पीकर ही रह जाते। प्रत्येक परिस्थितिमें जगदम्बाकी पूजा निरन्तर चलती रहती थी। तीन हजार दिव्य वर्ष बीतनेपर आदिशक्तिने दक्षको दर्शन दिया।

वे सिंहपर बैठी थीं और उनके शरीरकी कान्ति श्याम थी। उनके चार भुजाएँ थीं। उनका श्रीमुख अत्यन्त मनोरम था। वे आह्लादक प्रकाशसे प्रकाशित हो रही थीं। उस समय कण-कण आह्लादसे थिरक रहा था। अद्भुत छटा थी।

जगदम्बाका दर्शन पाकर दक्षने अपनेको धन्य माना और भलीभाँति प्रणाम कर उनकी स्तुति की। जगदम्बाने कहा—'दक्ष! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम जो चाहे माँग लो।' दक्षने कहा—'देवि! मेरे स्वामी शंकर हैं। वे रुद्ररूपसे अवतार ले चुके हैं। आप उनकी शक्ति हैं, अत: अवतार ग्रहण कर अपने रूप-लावण्यसे उन्हें मोहित करें।' आदिशक्तिने कहा—'मैं तुम्हारी पत्नीके गर्भसे पुत्रीके रूपमें अवतार लूँगी; किंतु एक शर्त है, जिसे तुम ध्यानमें रखना। वह यह है कि जब मेरे प्रति तुम्हारा आदर घट जायगा, तब मैं अपना शरीर त्याग दूँगी।' इतना कहकर वे अन्तर्धान हो गयीं।

जब आदिशक्ति दक्षप्रजापतिकी पत्नीके गर्भमें आयीं, तब उनके शरीरसे पुण्यमय आभा निकलने लगी और चित्तमें निरन्तर प्रसन्नता-ही-प्रसन्नता छायी रहती थी। वीरणीमें आदिशक्तिका आवास जानकर वहाँ ब्रह्मा और विष्णु आये। उनके साथ सम्पूर्ण देव और ऋषि-मुनि भी थे। सभीने प्रेमार्द्र-वाणीसे भगवती शक्तिकी स्तुति की और उन्हें प्रणाम किया। उन लोगोंने दक्ष और वीरणीकी भी भूरि-भूरि प्रशंसा की। जब गुणोंसे युक्त सुहावना समय आया, तब शक्तिने अपनेको प्रकट किया। उस समय दिशाएँ प्रसन्न हो गयीं, शीतल-मन्द-सुगन्ध हवा बहने लगी, आकाश स्वच्छ हो गया और पुष्पवृष्टि होने लगी। सब जगह सुख-शान्ति छा गयी। दक्षने शक्तिका वही रूप देखा, जिसे वरदानके समय देखा था। उन्होंने हाथ जोड़कर देवीको प्रणाम किया और स्तुति की।

तब स्तुतिसे प्रसन्न हो भगवती शक्ति इस प्रकार बोलीं—'प्रजापति दक्ष! तुमने मेरे अवतारके लिये तप किया था, अत: मैं तुम्हारी पुत्रीके रूपमें अवतीर्ण हो गयी हूँ। अब तुम तपस्याके फलको ग्रहण करो।' ऐसा कहकर शक्ति नवजात शिशु बनकर रोने लगीं। शिशुका रोना सुनकर चारों ओर हर्ष छा गया। स्त्रियाँ दौड़ी आयीं। बच्चीका लुभावना रूप देखकर सब ठगी-सी रह गयीं। जय-जयकारकी ध्वनिसे सारा नगर गूँजने लगा। बाजे बजने लगे। कलकण्ठोंकी स्वर-लहरियाँ वातावरणमें तैरने लगीं। दक्षने कुलोचित वैदिक आचरण सम्पन्न किया। गौ, घोड़े, हाथी, सोना, वस्त्र आदिका दान दिया गया।

दक्षने कन्याका नाम 'सती' रखा। लोगोंने अपनी-अपनी रुचिके अनुसार उसके अलग-अलग नाम रखे। जो देखता, उसके मनमें अपनापन जाग उठता। वह शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी कलाकी तरह बढ़ती हुई सबके चित्तको आह्लादित करने लगी। जैसे-जैसे बच्ची बढ़ती गयी, वैसे-वैसे शिवके प्रति उसका अनुराग भी बढ़ता गया। सखियोंके बीच भी वह छिपाये न छिपा। उसके ओठोंपर शंकरके नाम थे, तो अन्तरमें उनकी करुण पुकार थी। शिवके प्रेममें डूबी हुई वह; कभी रोती तो कभी हँसती। सखियाँ उसपर श्रद्धा रखने लगीं। इतना प्यार करने लगीं कि वे अपने शरीरको भुलाकर सतीके शरीरको ही अपना शरीर मानने लगीं।

एक दिन ब्रह्माजी नारदके साथ प्रजापति दक्षके घर पधारे। उस समय सती विनम्र-भावसे पिताके पास ही खड़ी थीं। उनके उत्कट सौन्दर्यसे वहाँका वातावरण उद्भासित हो रहा था। वे तीनों लोकोंके सौन्दर्यका सार प्रतीत हो रही थीं। जब आदर-सत्कारके पश्चात् ब्रह्मा और नारद बैठ गये, तब उन्होंने सतीसे कहा कि 'तुम शंकर भगवान्‌को चाहती ही हो, अत: उन्हींको पति बनाओ। भगवान् शंकर भी तुम्हारे सिवा और किसीको कभी पत्नी नहीं बना सकते।'

यह सुनकर सतीकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। दक्ष भी प्रसन्न हुए, परंतु उन्हें यह चिन्ता व्याप्त हो गयी कि शंकरको ढूँढ़ा कहाँ जाय, वे कहाँ मिल सकेंगे? मिलनेपर भी उन्हें विवाहके लिये राजी कर सकना कठिन था! वे इसी उधेड़-बुनमें पड़े रहते। इसी बीच एक दिन सतीने पितासे शंकरकी प्राप्तिके लिये तपस्याकी आज्ञा माँगी।

सतीका अनुराग अब मीठी वेदना बनकर उन्हें बेचैन करने लगा था। वे प्रतिक्षण शंकरका सांनिध्य चाहने लगी थीं। तपस्यासे मानसिक सांनिध्य तो मिल ही सकता था, साथ ही शारीरिक सांनिध्य भी सम्भव था। जिनके लिये तिल-तिलकर जला जा रहा था, वे औढरदानी कबतक उदासीन बने रह सकते थे?

माता-पिता स्वयं चिन्तित तो थे ही। कोई अन्य मार्ग न देखकर उन्होंने अपनी लाडली बेटीको तपस्याके कठोर मार्गपर चलनेकी आज्ञा दे दी। घरपर ही सारी सामग्री जुटा दी गयी। अब सती संसारसे दूर हो गयी थीं, केवल वे थीं और थीं उनकी सखियाँ। उन्होंने नन्दाव्रतका प्रारम्भ कर दिया। अब पूज्य था, पूजा थी और पुजारिन थी। सखियाँ तो पुजारिनकी ही अङ्ग थीं। वे अनुरागके बहावमें पूजाका क्रम सँभालती थीं। नन्दाव्रतके समाप्त होते-होते त्रिपुटी भी समाप्त हो गयी। अब न पूजा थी और न पुजारिन; बस, पूज्य-ही-पूज्य रह गया था। सती आराध्यके ध्यानमें सब कुछ भुला बैठी थीं। वे निष्कम्प दीपकी लौकी भाँति प्रदीप्त हो रही थीं। पल बीता, घड़ी बीती, दिन बीता, रात बीती, मास बीते, वर्ष बीते; किंतु सती निश्चल बैठी रहीं। काल उनके लिये सापेक्ष हो गया था।

यह पवित्र चर्चा तीनों लोकोंमें फैल चुकी थी। सभी देवता एवं ऋषि विष्णु और ब्रह्माको आगे कर इस अद्भुत कर्मको देखनेके लिये सतीके पास पहुँचे। देवताओं और ऋषियोंने हाथ जोड़कर सतीकी स्तुति की। विष्णु और ब्रह्माके हृदयमें प्रीति उमड़ आयी। सभी आश्चर्यचकित थे तथा सतीका सहयोग करना चाहते थे। वे सतीको माथा टेककर जैसे आये थे, वैसे लौट गये और भगवान् शंकरके पास पहुँचे। सतीने न तो उनका आना जाना और न जाना। वे वैसे ही निश्चेष्ट बैठी रहीं। उनके अङ्ग-अङ्गसे प्रेमका प्रभावक रस वैसे ही झर रहा था।

देवता और ऋषि जब शंकरके पास पहुँचे, तब उनके आगे लक्ष्मीके साथ विष्णु और सरस्वतीके साथ ब्रह्मा थे। वहाँ सामूहिक स्तुति की गयी। लक्ष्मी और सरस्वतीको

आगे देख शंकरने सबको यथोचित सम्मान दिया और आनेका कारण पूछा। विष्णुका निर्देश पाकर ब्रह्माने कहा—'आप, विष्णु और मैं वस्तुतः एक ही हैं। सदाशिवने कार्यके भेदसे हमें तीन रूपोंमें व्यक्त किया है। यदि कार्यके भेदोंको हम निष्पन्न न करेंगे तो हमारे रूपके भेद भी व्यर्थ हो जायँगे। अतः लोक-हितका एक ऐसा कार्य आ पड़ा है, जिसकी सिद्धिके लिये आप भी तदनुरूप कन्याके साथ विवाह कर लें। विष्णु भी सपत्नीक हैं और मैं भी। विश्वके हितके लिये आप भी सशक्तिक हो जायँ।'

ब्रह्माकी बात सुनकर भगवान् शिवके मुखपर मुसकराहट बिखर गयी और वे बोले—'तुम दोनों मेरे बहुत ही प्रिय हो, किंतु मेरे लिये विवाह उपयुक्त नहीं है; क्योंकि मैं निवृत्ति-मार्गपर चल रहा हूँ। इसीलिये मैंने अपवित्र और अमङ्गल वेष भी बना रखा है। ऐसी स्थितिमें विवाह कैसे उपयुक्त हो सकता है? फिर भी तुम्हारी बात तो रखनी ही पड़ेगी। इसके लिये मैं कुछ शर्तें रख रहा हूँ, जिससे मेरी आत्मारामता भी चलती रहे और वैवाहिक जीवनका भी उपभोग हो। पहली शर्त यह है कि कन्या मेरी ही तरह निवृत्तिमार्गकी पथिक हो, योगिनी हो, आत्माराम हो। विश्वके हितके लिये विवाहका उपयोग करनेवाली हो। दूसरी शर्त यह है कि इस कन्याका जब मुझपर या मेरे वचनपर अविश्वास हो जायगा; तब मैं उसे त्याग दूँगा।'

शर्तें सुनकर विष्णु और ब्रह्माको प्रसन्नता हुई; क्योंकि सती इन शर्तोंके अनुकूल थीं। वे अन्तरङ्गा शक्तिका अवतार थीं, बहिरङ्गा-जैसी शक्ति उनका स्पर्श भी नहीं कर सकती थी। सूर्यके सामने अन्धकार कभी नहीं आ सकता। तब ब्रह्माने बतलाया कि 'उनकी शर्तके अनुकूल कन्या उन्होंने खोज रखी है। परब्रह्मकी पराशक्ति उमाका सतीके रूपमें अवतार हो गया है और वे आपके साथ विवाह करनेके लिये घोर तप कर रही हैं। अब आवश्यकता यह है कि आप उन्हें वरदान दे आयें; क्योंकि तप पराकाष्ठापर पहुँच चुका है।'

शंकरसे आश्वासन पाकर सभी लोग प्रसन्नताके साथ अपने-अपने लोकमें पधारे। भगवान् शंकरने सतीको प्रत्यक्ष दर्शन दिया। वे अपने इष्टदेवको सामने पाकर प्रेमसे विह्वल हो गयीं। सतीने अनुभव किया कि उनमें सैकड़ों चन्द्रमाओंसे बढ़कर आह्लादकता और करोड़ों कामदेवोंसे बढ़कर सुन्दरता है। भगवान्ने वर माँगनेको कहा, किंतु लज्जाने उन्हें बोलने न दिया। उनका मुख ऊपर उठ नहीं रहा था, किंतु भगवान् सतीकी बोली सुनना चाहते थे, अत: वे फिर बोले—'सती! मैं तुम्हारे व्रतसे प्रसन्न हूँ। अब तुम इच्छानुसार वर माँग लो।' भगवान् बार-बार अपने वचन दोहरा रहे थे। उन्हें सुन-सुनकर सतीमें प्रेम-विह्वलता अत्यधिक बढ़ती जा रही थी। उनका मुँह खुल नहीं रहा था। इधर सतीके वचन सुने बिना भगवान्को भी कल नहीं पड़ रही थी। वे बोले—'सती! कुछ तो बोलो।' तब सती यह सोचकर घबरा गयीं कि अब कुछ न बोलना, उनका अनादर करना है। पर लाजवश अभिलषित वर माँग न सकीं। वे इतना ही बोलीं—'प्रभो! ऐसा वर दीजिये, जो टल न सके।' वे बार-बार इसे ही दोहराती रहीं। इस शालीनतासे भगवान् और रीझ गये। उनकी विह्वलता अब भगवान्पर ही आरूढ़ होती जा रही थी। वे बोले—'सती! तुम मेरी भार्या बन जाओ।' भगवान्ने सतीका अन्तर्द्वन्द्व मिटा दिया था, अत: अभिलषित वर पाकर उनका हृदय आनन्दके उल्लाससे भर गया। तब वे बोलीं—'प्रभो! आपने महती अनुकम्पा की है, किंतु मेरे पिताजीसे कहकर शास्त्रीय विधिके अनुसार मेरा पाणिग्रहण करनेकी कृपा करें।' शिवने प्रेमभरी दृष्टिसे सतीको देखा और कहा—'प्रिये! ऐसा ही होगा।'

भगवान् शंकर जब आश्रममें लौटे, तब अपनेको अनमना पाया। वे सतीके प्रेम-पाशमें बँध चुके थे, अत: सतीका वियोग उन्हें पीड़ित कर रहा था, विवाह व्यवधान-सा प्रतीत होने लगा था। उन्होंने ब्रह्माका स्मरण किया। तत्क्षण सरस्वतीके साथ ब्रह्मा आ उपस्थित हुए। भगवान्ने कहा—'ऐसा प्रयत्न करो कि विवाह शीघ्रतासे सम्पन्न हो जाय।'

ब्रह्माने कहा—'सब काम पहलेसे ही तैयार है। दक्ष तो कन्यादानके लिये तैयार ही बैठे हैं, फिर भी आपकी ओरसे उन्हें सूचित कर देता हूँ।' इधर दक्ष सतीकी सफलता सुनकर आनन्द और चिन्ता दोनोंके झूलेमें झूल रहे थे। चिन्ता यह थी कि शंकरको ढूँढ़ा कहाँ जाय और कैसे उन्हें प्रसन्न किया जाय। इसी बीच ब्रह्मा दक्षके पास पहुँचे। डूबतेको सहारा मिल गया। ब्रह्माने बतलाया कि 'जिस तरह सती शंकरकी आराधना कर रही थीं, वैसे ही शंकर भी सतीकी आराधना करते रहे हैं। इसलिये शीघ्र ही विवाहका शुभ कार्य सम्पन्न कर लिया जाय।'

चैत्रमासके शुक्लपक्षकी त्रयोदशी रविवारको पूर्वा-फाल्गुनी नक्षत्रमें विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र एवं समस्त देवताओं तथा ऋषियोंके साथ भगवान् शंकरने विवाहके लिये यात्रा की। उस समय भगवान् शंकरकी इच्छासे वृषभ, व्याघ्र, सर्प आदि तरह-तरहके अलंकार बन गये। उनकी छटा निराली थी। देवताओं और प्रमथगणोंने रास्तेमें उत्सवोंका ताँता लगा दिया। प्रजापति दक्षने उत्साह और हर्षके साथ बारातकी आगवानी की। स्वयं ब्रह्माने विवाह कराया। जब दक्षने सतीका हाथ भगवान्के हाथमें दिया तो सारा वातावरण उत्फुल्ल हो उठा। नृत्यों और गीतोंकी अटूट परम्परा चल पड़ी। आनन्द-ही-आनन्द बरसने लगा। सारा विश्व मङ्गलका निकेतन बन गया।

विदाईके समय दक्षने विनय-विनम्र होकर भगवान्की स्तुति की। सतीके

रह गये। कैलास लौटकर भगवान् शंकरने बारातियोंको सम्मानके साथ बिदा किया। अबतक शक्ति अलग थी और शक्तिमान् भी। माता सतीका लोक-कल्याणके लिये ही अवतार हुआ था। दाम्पत्यजीवनका आदर्श प्रस्तुत कर उन्होंने ज्ञान-विज्ञानसे विश्वको आलोकित करना चाहा। एक दिन सती बोलीं—'अब मैं परमतत्त्वका ज्ञान प्राप्त करना चाहती हूँ, अत: आप जिससे जीवका परम हित हो, वह बतलाइये।'

भगवान् शंकरने ज्ञान, विज्ञान, नवधा भक्ति, भक्तकी महिमा आदि विषयोंका प्रतिपादन किया। इस तरह सतीने तन्त्र, मन्त्र, योग आदि साधनोंको जीवोंके लिये सुलभ करा दिया; किंतु उनके अवतारका मुख्य उद्देश्य अभी पूरा नहीं हुआ था। उन दिनों सतीके पिता दक्ष तथा भृगु आदि महर्षि यागको ही प्रमुख स्थान देते थे। याग वैदिक कर्म है, अत: आवश्यक है। इस तरह ज्ञानकाण्ड भी वैदिक है, अत: वह भी आवश्यक है। प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्ग—दोनों वेदोक्त हैं। अधिकार-विशेषसे दोनों आवश्यक हैं। वर्णधर्ममें दोनोंकी उपयोगिता है। पर प्रवृत्तिमार्गको ही मार्ग मानना और निवृत्तिमार्गपर रोक लगाना बुरा है। दक्ष आदि एकदेशी विचारके हो गये थे। वे वेदके दूसरे अङ्गोंपर कुठाराघात कर रहे थे। नारदने उनके कुछ अधिकारी पुत्रोंको निवृत्तिमार्गपर लगा दिया था। दक्ष इस बातको सहन न कर सके और उन्होंने देवर्षिको शापतक दे डाला। सबसे बड़ी बात थी भगवत्प्रेमकी उपेक्षा। भगवान् प्रेमस्वरूप हैं और इसी प्रेमके लिये वे सृष्टिकी रचना करते हैं, सगुण बनते हैं, अवतार लेते हैं। इस तथ्यको समझानेके लिये सतीका अवतार हुआ था। आत्मदान देकर और दूसरा जन्म धारणकर उन्होंने यह प्रकाश हमें दिया। धन्य है उनकी दयालुता! वे इसके लिये इतना अज्ञ बन गयीं, उन्होंने जडताका इतने नीचे स्तरका अभिनय किया, जो कोई करुणामयी माँ ही कर सकती है।

शिवपुराणमें वह घटना इस प्रकार है। भगवान् शंकर सतीके साथ देशाटन कर रहे थे। विश्वके हितके लिये सतीके प्रश्न और शंकरभगवान्के द्वारा उनका उत्तर सतत चलता जा रहा था। दण्डकारण्य पहुँचनेपर एक नया दृश्य सामने आया। रावणद्वारा हरी गयी सीताके वियोगमें भगवान् राम शोकविह्वल हो गये थे। उनकी आँखोंसे आँसूकी अजस्र धाराएँ बह रही थीं। वे पेड़-पौधोंसे सीताका पता पूछ रहे थे। लक्ष्मण भी श्रीरामके दु:खमें साथ दे रहे थे। दोनों ही शोककी मूर्ति बने हुए थे। भगवान् शंकरने जब श्रीरामको देखा, तब उनके हृदयमें इतना आनन्द उमड़ा कि वह रोके रुक न रहा था। उनकी आँखोंमें प्रेमाश्रु भर आये थे और रोम-रोम पुलकित हो उठा था। चाल डगमगा रही थी। उन्होंने 'सच्चिदानन्दकी जय हो' कहकर श्रीरामको प्रणाम किया;

किंतु अनवसर जानकर जान-पहचान नहीं की और दूसरी ओर चल दिये। श्रीरामके दर्शनका आनन्द अब भी उमड़ता ही जा रहा था।

आदिशक्तिका स्वरूप ही 'ज्ञान' है, फिर इनमें अज्ञान कैसे आ सकता है? पर उन्होंने हम जीवोंपर दया कर हमारी-जैसी अज्ञताका अभिनय किया। उधर 'आनन्द'-रूप श्रीराम 'शोक' का अभिनय कर रहे थे तो इधर हमारी चरितनायिका 'ज्ञानरूपा' होकर 'अज्ञान' का अभिनय करने लगीं। वे ऐसी 'अज्ञ' बन गयीं, जैसे कोई निकृष्ट जीव हो। उन्होंने घोर संशयालु बनकर पूछा—'नाथ! आप तो सबके लिये प्रणम्य हैं, सबसे ऊँचे हैं, पूर्ण परब्रह्म हैं? फिर आपने इस मनुष्यको प्रणाम क्यों किया और इसे सच्चिदानन्द

कैसे कहा? सेव्य सेवकको प्रणाम करे, यह उचित नहीं है। इसी तरह किसी मनुष्यको 'सच्चिदानन्द' कहना अनुचित जान पड़ता है?'

भगवान् शंकरने कहा—'देवि! ये दोनों दशरथके पुत्र हैं। छोटेका नाम लक्ष्मण और श्याम रंगवाले भाईका नाम श्रीराम है। ये साक्षात् परब्रह्मके अवतार हैं। उपद्रव इनसे दूर रहते हैं। ये केवल लीला कर रहे हैं। हमलोगोंके कल्याणके लिये इनका अवतार हुआ है।'

सती भगवान् शंकरके प्रत्येक वचनको ब्रह्मवाक्य मानती थीं, परंतु आज तो अभिनय करना था, अतः उन्होंने उनके कथनपर विश्वास नहीं किया। तब भगवान्‌को कहना पड़ा कि 'यदि विश्वास न होता हो तो जाकर परीक्षा कर लो।' सती सीताका रूप धारण कर श्रीरामके पास पहुँचीं। उन्हें देखते ही श्रीरामने प्रणाम किया और पूछा—'सतीजी!

इस समय शिवजी कहाँ हैं, आप अकेले इस वनमें कैसे घूम रही हैं? अपना रूप छोड़कर यह रूप क्यों धारण कर रखा है?' यह सुनते ही सतीजी पानी-पानी हो गयीं और बोलीं—'मैं आपकी प्रभुता देखना चाहती थी।' श्रीरामने सतीजीका बहुत सम्मान किया और उनकी आज्ञा लेकर वे पुनः अपने अभिनयमें लग गये। दोनों अभिनय ही तो कर रहे थे।

लौटते समय सती चिन्तित थीं और सोच रही थीं कि 'मैंने आज अपने स्वामीके वचनपर अविश्वास कैसे किया?' वे अप्रसन्न-मनसे भगवान् शंकरके पास पहुँचीं। शोकने उन्हें व्याकुल बना दिया था। भगवान्‌ने पूछा—'सती! तुमने किस प्रकार परीक्षा ली थी?' सती मस्तक झुकाये उनके पास खड़ी हो गयीं। वे शोक और विषादसे भर गयी थीं। भगवान् शंकरने ध्यान लगाकर सारी बातें जान लीं। उन्हें दुःख तो हुआ; परंतु पूर्व-प्रतिज्ञाके अनुसार उन्होंने सतीका मनसे त्याग कर दिया; किंतु सतीको दुःख होगा, इसलिये त्यागवाली बात उन्हें बतलायी नहीं। उनका पहले-जैसा मीठा व्यवहार बना रहा। इतनेमें आकाशवाणी हुई—'परमेश्वर! तुम धन्य हो और तुम्हारी प्रतिज्ञा भी धन्य है!'

आकाशवाणी सुनकर सतीकी कान्ति मलिन हो गयी। उन्होंने पूछा—'मेरे स्वामी! आपने कौन-सी प्रतिज्ञा की है? बतलाइये।' भगवान् अप्रिय वचन कहकर सतीको दुःखित करना नहीं चाहते थे, अतः उन्होंने कहा—'देवि! इसे मत पूछो।' किंतु सतीने ध्यानसे सब बातें जान लीं। वे सिसकने और लम्बी-लम्बी साँसें खींचने लगीं। भगवान् शंकरने उन्हें ढाड़स बँधाया तथा विभिन्न कथाओंद्वारा उनका मनबहलाव किया। कैलास पहुँचकर भगवान् ध्याननिष्ठ हो गये। जब ध्यान टूटा, तब सतीको सामने प्रणाम करते पाया। भगवान्‌ने सतीको प्रेमसे आसन देकर सामने बैठाया और मनोरम कथाएँ

सुनायीं। उन्होंने इतना अच्छा व्यवहार किया कि सतीका सारा

एक बार दक्ष सभी प्रजापतियोंके पति एवं समस्त ब्राह्मणोंके अधिपति बनाये गये थे। उन्हें बहुत बड़ा पद मिला था। वे तेजस्वी तो थे ही। सब थे, पर वे आत्मज्ञानी न थे। जो आत्माको ही न जानेगा, वह परमात्माको कैसे जान सकेगा? फलत: वे घोर अंहकारी बन गये थे। एक बार मुनियोंने प्रयागमें महान् यज्ञ किया था। इसमें ब्रह्माजी भी उपस्थित थे। भगवान् शिव भी यहाँ आ पहुँचे। उनके साथ सती भी थीं। ब्रह्मा आदिने उठकर उन्हें प्रणाम किया और उनकी स्तुति की। भगवान् शंकरका दर्शन पाकर सब लोगोंने अपनेको धन्य माना। वहाँ प्रजापतियोंके पति दक्ष भी आ पहुँचे। सबने उठकर उनका अभ्युत्थान किया। वे ब्रह्माको प्रणाम कर बैठ गये, किंतु शंकरको देखकर क्रूरतासे भर गये। अभिमानके कारण उनकी बुद्धि मारी गयी थी। अपनी कन्याके विवाहके अवसरपर उन्होंने भगवान् शंकरको प्रणाम किया था, स्तुति की थी, अपना प्रभु माना था, किंतु अहंकारवश वे इस बार पुरानी बातें भूल गये। उन्होंने भगवान् शंकरको बहुत ही बुरा-भला कहा और शापतक दे डाला कि 'आजसे तुम देवताओंके साथ भाग नहीं पाओगे।'

भृगु आदि कुछ महर्षि, जो ब्रह्माके स्थानपर कर्मकाण्डके निमित्त बैठाये गये थे, दक्षकी हाँ-में-हाँ मिलाकर भगवान् शंकरकी निन्दा करने लगे। इधर नन्दीका क्रोध अपने स्वामीके अपमानसे भड़क उठा; उन्होंने भी शाप देते हुए

कहा कि 'दक्ष! तुम्हारा सिर नष्ट हो जाय, कर्म भ्रष्ट हो जाय और तुम बकरेका मुख प्राप्त करो।' इस घटनाके बाद दक्ष शंकरके कट्टर द्रोही हो गये। वे शिवके विरुद्ध सदा रोषमें भरे रहते थे।

एक बार दक्षने यज्ञ किया। उसमें विश्वकर्माने अत्यन्त दीप्तिमान्, विशाल और बहुमूल्य भवन बनाया था। यह यज्ञ कनखलमें हुआ था। सभी देवता, ऋषि, मुनि वहाँ आये थे। सभी बुलाये गये थे; किंतु दक्षने भगवान् शंकरको नहीं बुलाया था। श्रीमद्भागवत-कल्पमें विष्णु और ब्रह्मा बुलानेपर भी नहीं गये थे; क्योंकि वे दोनों उसकी दुर्बुद्धिताका असहयोग कर रहे थे। महान् शिव-भक्त दधीचने जब देखा कि इस यज्ञमें भगवान् शंकर उपस्थित नहीं हैं, तब उन्होंने पूछा कि 'यहाँ भगवान् शंकर क्यों नहीं आये हैं? शास्त्रका कहना है कि सभी मङ्गलकार्य भगवान् शंकरकी कृपा-दृष्टिसे ही सम्पन्न होते हैं। जिनके स्वीकार करनेपर अमङ्गल भी मङ्गल हो जाता है, उनका पदार्पण इस यज्ञमें आवश्यक है। आदिशक्ति सती भी यहाँ नहीं दीखतीं। उन्हें भी साथ ही बुलाना चाहिये। यदि ये नहीं आये तो यज्ञ कैसे पूरा होगा?'

यह सुनकर दक्षने भगवान् शंकरके सम्बन्धमें कुत्सित शब्दोंका प्रयोग करते हुए कहा—'ब्रह्माके कहनेसे मैंने अपनी कन्या उसे दी। नहीं तो उस अकुलीन, माता-पितासे रहित, भूत-प्रेतोंके स्वामी, अभिमानी और कपालीको कौन पूछता? वह यज्ञ-कर्मके अयोग्य है। इसलिये उसे नहीं बुलाया और आगे भी नहीं बुलायेंगे। अत: दधीचजी! आप फिर कभी ऐसी बात मत कहियेगा। आपलोग इस यज्ञको सफल बनावें।'

दधीचने कहा—'दक्ष! शिवके विना यह यज्ञ ही अयज्ञ हो गया। तुम चेत जाओ, नहीं तो इससे तुम्हारा विनाश हो जायगा।' ऐसा कहकर वे अकेले ही यज्ञशालासे बाहर निकल गये। भगवान् शंकरके तत्त्वको जाननेवाले अन्य लोग भी धीरे-धीरे यज्ञशालासे खिसक गये। दक्षने उनका उपहास किया और कहा कि 'अच्छा हुआ कि ये लोग चले गये। मैं इन बहिष्कृतोंको अपने यज्ञमें चाहता ही नहीं था।'

सती प्रिय सखियोंके साथ गन्धमादनपर्वतपर भागगृहमें

स्नान कर रही थीं। उन्होंने चन्द्रमाको रोहिणीके साथ कहीं जाते देखा। तब उन्होंने विजयासे पुछवाया कि वे लोग कहाँ जा रहे हैं? चन्द्रमाने विजयाको आदरके साथ बताया कि वे दक्षके यज्ञमें जा रहे हैं। सतीको विजयाके मुखसे अपने पिताके यहाँ होते हुए यज्ञका समाचार सुनकर बहुत विस्मय हुआ। वे सोचने लगीं कि अपने यहाँ आमन्त्रण क्यों नहीं आया? उन्होंने भगवान् शंकरसे सब समाचार कह सुनाया और प्रार्थना भी की कि हमें वहाँ चलना चाहिये; क्योंकि सम्बन्धियोंका धर्म है कि वे अपने सम्बन्धियोंसे मिलते-जुलते रहें। इससे परस्पर प्रेम बढ़ता है।

भगवान् शंकरने मधुर वाणीसे कहा—'देवि! तुम्हारे पिता मेरे द्रोही बन गये हैं। अत: वहाँ जानेसे सम्बन्ध और बिगड़ सकता है। उन्हींकी तरह जो अनात्मज्ञ ऋषि-मुनि हैं, वे तुम्हारे पिताके यज्ञमें गये हैं।' पिताकी दुष्टता सुनकर सतीको रोष हो आया। उन्होंने कहा—'जिनके जानेसे यज्ञ सफल होता है, उन्हीं आपको मेरे पिताने नहीं बुलाया है। मैं दुरात्मा पिता और ऋषियोंके मनोभावोंका पता लगाना चाहती हूँ। मुझे जानेकी आज्ञा दे दें।' भगवान्ने प्यारसे कहा—'देवि! यदि तुम्हारी रुचि हो ही गयी है तो जाओ, किंतु रानीकी तरह सज-धजकर जाना।' ऐसा कहकर भगवान्ने स्वयं सतीको आभूषण, छत्र, चामर आदि राजोचित वस्तुएँ प्रदान कीं और साठ हजार रुद्रगणोंको साथ कर दिया।

सती उस स्थानपर जा पहुँचीं, जहाँ प्रकाशयुक्त यज्ञ हो रहा था। वह यज्ञमण्डप आश्चर्यजनक वस्तुओं, देवताओं और ऋषियोंसे भरा हुआ था। माता एवं बहनोंने तो सतीका उचित आदर-सत्कार किया; किंतु दक्षने कुछ भी आदर नहीं किया, अपितु उपेक्षा की। दक्षके डरसे अन्य किसीने भी सतीका कोई सम्मान नहीं किया। सब लोगोंके द्वारा तिरस्कृत होनेसे वे विस्मित हुईं। फिर भी उन्होंने माता-पिताके चरणोंमें मस्तक झुकाया, किंतु वे हृदयसे दु:खी थीं; क्योंकि वहाँ भी देवताओंके भाग तो दीख पड़े, किंतु भगवान् शंकरका भाग नहीं दिखायी दिया। तब उन्हें रोष हो आया और वे पूछ बैठीं—'पिताजी! आपने यज्ञमें मङ्गलकारी भगवान् शिवको क्यों नहीं बुलाया? जो स्वयं यज्ञ, यज्ञके अङ्ग, यज्ञकी दक्षिणा और यजमानस्वरूप हैं, उनके बिना यज्ञकी सिद्धि कैसे होगी? क्या आपने भगवान् शिवको सामान्य देवता समझ रखा है?' इसके बाद उन्होंने यज्ञमें सम्मिलित देवताओं और ऋषियोंको फटकारा। वे सभी चुप रह गये।

दक्षने कहा—'तुम यहाँ आयी ही क्यों? इस समय यहाँ तुम्हारा कोई काम नहीं है। तुम्हारे पति अमङ्गलस्वरूप हैं, वेदसे बहिष्कृत हैं। वे शास्त्रका अर्थ नहीं जानते, उद्दण्ड और दुरात्मा हैं। मैंने ब्रह्माके बहकावेमें आकर मूर्खतावश तुम्हारा विवाह उनके साथ कर दिया था।' सतीने कहा—'जो महादेवकी निन्दा करता या सुनता है, वे दोनों नरकमें जाते हैं। अत: पिताजी! अब मैं इस शरीरको त्याग दूँगी। जो शिव साक्षात् परमेश्वर हैं, उन्हें कर्मकाण्डी क्या जानेगा? ये स्वार्थी देवता और कर्मवादी मुनि शिवकी निन्दा सुनकर भी चुप हैं। इसका फल इन्हें भोगना पड़ेगा।'

तदनन्तर सती शान्त हो गयीं और प्राणवल्लभ पतिका स्मरण करने लगीं। उन्होंने उत्तरकी ओर भूमिपर बैठकर आचमन किया और वस्त्र ओढ़ लिया तथा पतिका चिन्तन करते हुए प्राणायामके द्वारा प्राण और अपानको एकमें मिलाकर नाभिचक्रमें स्थित किया, फिर बुद्धिके साथ हृदयमें स्थापित किया, पुनः कण्ठस्थित वायुको भृकुटियोंके बीच ले जाकर केवल पतिका स्मरण करते हुए चित्तको योगमार्गमें स्थित कर दिया। इस प्रकार

योगाग्निसे

हाहाकार करने लगे। शिवके कुछ पार्षद तो इतने दु:खी हुऐ कि वे अपने ही ऊपर हथियार चलाकर मर मिटे। उनकी संख्या बीस हजार थी। वे सतीके दु:खसे अत्यन्त कातर हो गये थे। कुछ रुद्रगण शस्त्र उठाकर दक्षपर टूट पड़े। यह देखकर भृगुने रक्षोघ्न-मन्त्रसे दक्षिणाग्निमें आहुति दी। आहुति देते ही हजारोंकी संख्यामें महान् बलशाली ऋभुदेवता प्रकट हो गये। उन्होंने प्रमथगणोंको मार भगाया।

इसी बीच चेतावनीसे भरी हुई आकाशवाणी हुई—'दुर्बल ज्ञानवाले दक्ष! तुम्हें घमण्ड हो गया है, जिससे तुम्हारी बुद्धि मोहसे ढक गयी है। सती आदिशक्तिकी अवतार हैं। वे परात्पर शक्ति हैं; सृष्टि, स्थिति एवं लय करनेवाली परमेश्वरी हैं। ऐसी सती जिनकी धर्मपत्नी हैं, उन शंकरको तुमने यज्ञमें भाग नहीं दिया? तुम मूढ़ और कुविचारी हो। तुम्हारा गर्व दूर हो जायगा। जो तुम्हारी सहायता करेगा, वह भी नष्ट हो जायगा। सभी देवता, नाग और मुनि यज्ञमण्डपसे निकल जायँ; नहीं तो सबका विनाश हो जायगा।'

उधर भृगुके मन्त्रबलसे प्रताड़ित प्रमथगण भगवान् शिवके पास पहुँचे। उन्होंने सारी दुर्घटनाएँ कह सुनायीं। भगवान् शंकरने नारदका स्मरण किया, जिससे वे सत्य समाचार विस्तारपूर्वक सुना सकें। नारदसे सारी घटनाएँ सुनकर रुद्रने भयानक क्रोध प्रकट किया। उन्होंने एक जटा उखाड़कर उसे शिलापर पटक दिया। उसके दो टुकड़े हो गये। उस समय महाप्रलयके समान भीषण

शब्द हुआ। एक भागसे प्रलयाग्निके समान दहकते हुए वीरभद्र प्रकट हुए और दूसरे भागसे महाकाली प्रकट हुईं। रुद्रके नि:श्वाससे सौ प्रकारके ज्वर पैदा हुए। सबने भगवान् शिवको प्रणाम किया। वीरभद्रको भगवान्‌ने आज्ञा दी कि 'दक्षके यज्ञका विध्वंस कर दो। जो वहाँ ठहरे हुए हैं, उन्हें भी भस्म कर डालना। किसीकी स्तुति मत सुनना।'

वीरभद्र जब दक्षके यज्ञका विध्वंस करनेके लिये प्रस्थित हुए तब भगवान् शंकरने करोड़ों गणोंको उनके साथ कर दिया। वीरभद्रका रथ बहुत लम्बा-चौड़ा और ऊँचा था। उसे दस हजार सिंह खींच रहे थे। काली, कात्यायनी आदि शक्तियाँ भी उनके साथ थीं। वीरभद्र जब यज्ञमण्डपमें पहुँचे, तब अहंकारी देवता इन्द्रको आगे कर उनसे भिड़ गये। वीरभद्रने कुछ ही क्षणमें सब देवताओंको भगा दिया। यज्ञ मृगका रूप धारणकर भाग खड़ा हुआ। वीरभद्रने उसका सिर काट डाला। मणिभद्रने भृगुको पटककर छातीपर पैर रखकर उनकी दाढ़ी उखाड़ ली। चण्डने पूषाके दाँत उखाड़ लिये; क्योंकि शिवके अपमानके समय वे हँसे थे। दक्ष वेदीके भीतर जा छिपे थे। वीरभद्रने उनका सिर मरोड़कर तोड़ डाला और अग्निकुण्डमें डाल दिया। इस तरह दक्षका यज्ञ विध्वंस

कर वीरभद्र सेनाके साथ कैलास लौटे। ब्रह्माको जब पता चला कि दक्ष मार डाला गया, तब वे बहुत क्षुब्ध हुए। वे चाहते थे कि दक्ष जीवित हो जाय और उसका यज्ञ भी पूरा हो जाय। उस समय भगवान् विष्णुने राय दी कि सभी देवता भगवान् शंकरकी शरण ग्रहण करें। यदि वे प्रसन्न न होंगे तो प्रलय हो जायगा। देवताओंने शंकरकी स्तुति की और वे उनके चरणोंमें लेट गये। भगवान् शंकरने सभीको क्षमा प्रदान किया। इसके बाद तीनों देव दक्षकी यज्ञशालामें आये। वहाँ स्वाहा, स्वधा, पूषा, तुष्टि, धृति, ऋषि, पितर, गन्धर्व आदि पड़े हुए थे। स्वामीका आदेश पाकर वीरभद्र दक्षके मृत शरीरको वहाँ ले आये। यज्ञनिमित्तक बकरेका सिर लेकर भगवान् शंकरने दक्षके धड़पर जोड़ दिया और ज्यों ही उनकी ओर कृपादृष्टिसे देखा, त्यों ही वे जीवित हो गये। अब दक्षकी बुद्धि स्वस्थ हो गयी थी। उन्होंने शिवजीकी स्तुति की। उसके बाद इन्द्र आदि दिक्पालोंने भी स्तवन किया। इस प्रकार शिवजीकी कृपासे उनका यज्ञ पूर्ण हुआ।

~~ ० ~~

(२) माता पार्वतीके अवतार-कार्य

[तारक-वध और मानस-प्रचार]

(१)

कर्मकाण्डका अबाधित महत्त्व है। इससे अभ्युदय तो होता है, किंतु यह ब्रह्मका स्थान ग्रहण नहीं कर सकता। प्रकृति ब्रह्मकी बहिरङ्गा शक्ति है। वह जब स्वयं ब्रह्मके सम्मुख नहीं जा सकती, तब अपने उपासकोंको ब्रह्मके सम्मुख कैसे पहुँचा सकती है? उन दिनों भृगु आदि ऋषि वेदके कर्मकाण्ड-भागसे सर्वात्मना प्रभावित होकर 'ब्रह्मवाद'को भूल बैठे थे। शिवपुराण-कल्पमें त्रिदेवोंमें भगवान् शंकर परमात्माके अवतार थे, उस पदपर कोई जीव न था। वे सगुण ब्रह्म थे। फिर भी उन दिनों अधिकांश लोग न तो उन्हें ब्रह्म और न उनके निस्त्रैगुण्य मार्गको सन्मार्ग ही समझ रहे थे। सतीने आत्मोत्सर्ग कर इस अन्धकारको हटाया। यह इनके प्रथम अवतारका एक प्रयोजन था। दूसरा प्रयोजन था—प्रेमरूप सगुण ब्रह्मसे प्रेम करना, जिसका सूत्रपात तो उन्होंने सती-अवतारमें किया; किंतु इसकी पूर्णता पार्वती-अवतारमें हुई। इसकी पूर्तिके लिये उन्हें फिर आना था।

विष्णु, ब्रह्मा और नारद आदि इसकी भूमिका तैयार करनेमें तत्पर थे। वे हिमालयके पास पहुँचे। सभी देवता और ऋषि उनके साथ थे। अपने द्वारपर समस्त देवों और ऋषियोंको आया देख हिमालयको महान् हर्ष हुआ। वे अपने भाग्यकी सराहना करते हुए उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम कर गद्गद वाणीसे बोले—'मैं आप लोगोंका सेवक हूँ, आज्ञा प्रदान करें, कौन-सी सेवा करूँ?'

देवोंकी ओरसे ब्रह्माने कहा—'महाभाग! महासती सतीके सम्बन्धमें तुम जानते ही हो। वे आदिशक्तिकी अवतार थीं। पितासे अनादृत होकर अपने धाम चली गयी हैं। यदि वे शक्ति तुम्हारे घर पुत्रीके रूपमें प्रकट हो जायँ, तो विश्वका कल्याण हो जाय।'

यह सुनकर हिमालयका हर्ष अत्यधिक बढ़ गया। वे बोले—'इससे बढ़कर सौभाग्यकी बात और क्या होगी? एतदर्थ जो कुछ करना हो, उसे मैं प्राणपणसे करूँगा।'

देवताओंने उन्हें तपस्याकी विधि बतला दी और ढाड़स दिया कि 'तुम तो तप करो ही, हमलोग भी मिलकर भगवतीसे प्रार्थना करेंगे कि वे तुम्हारे यहाँ पुत्रीके रूपमें अवतार लें।'

देवताओंने अपने वचनको पूर्ण किया। वे एकजुट होकर आदिशक्तिको पुकारने लगे। विष्णुकी पुकार थी, ब्रह्माकी पुकार थी और नारद आदि संतोंकी पुकार थी, इसलिये शक्तिको प्रकट होना ही पड़ा। उनका श्रीविग्रह करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशित हो रहा था। उस प्रकाशमें आह्लादकता थी। उनके रूप-लावण्यकी कोई तुलना नहीं थी। अद्भुत मनलोभनी झाँकी थी। [illegible]

प्रणाम और स्तुतिके बाद देवताओंने कहा—'आपने सतीका अवतार लेकर विश्वका कल्याण किया था। अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार दक्षसे अनादृत होकर आप अदृश्य हो गयीं। हमलोग पुन: आपका अवतार चाहते हैं; क्योंकि एक तो भगवान् शंकर आपके वियोगसे व्यथित रहते हैं, दूसरे विश्वका कल्याण अवरुद्ध हो गया है। आप माँ हैं, बालकोंपर कृपा करें।'

शक्तिने कहा—'मैं अपने बालकोंके हितार्थ अवश्य अवतार लूँगी। मैं यह भी जानती हूँ कि जबसे मैंने शरीरका त्याग किया है, तबसे भगवान् शंकर मेरी स्मृतिमें निमग्न रहते हैं। दिगम्बरतक बन गये हैं। हिमालय मेरे लिये तपस्या कर रहे हैं, मैं उन्हींके यहाँ अवतार लूँगी। आपलोग निश्चिन्त रहें।'

(२)

समय आनेपर आदिशक्तिने अपना वचन पूरा किया, वे मेनाके गर्भमें आ गयीं। जबसे वे गर्भमें आयीं, तबसे मेना दिव्य तेजसे घिरी रहने लगीं। सभी देवता मेनाके यहाँ उपस्थित हुए। बड़े उत्साहके साथ उन्होंने शक्तिकी स्तुति करके उन्हें प्रणाम किया। नवाँ महीना बीतनेपर शक्तिका प्राकट्य हुआ। उस समय उनका अपना ही स्वरूप था। सभी देवताओंने प्रत्यक्ष दर्शन किया। वे हर्षोत्फुल्ल होकर स्तुति करने लगे। माता मेनाको भी प्रत्यक्ष दर्शन हुए। वे आनन्दसे विह्वल हो उठीं। तत्पश्चात् शक्तिने शिशुका रूप धारण कर लिया। मेनाने जब शिशुको गोदमें लिया, तब उससे प्रसृत किरणोंसे वे खिल उठीं। जिस तरह शुक्लपक्षमें चन्द्रमाकी कला और उसकी चाँदनी दिन-दिन बढ़ती जाती है, उसी तरह पार्वती बढ़ रही थीं और उनका सौन्दर्य भी स्फुट हो रहा था। पार्वतीने जब पढ़ना-लिखना प्रारम्भ किया, तब सभी विद्याएँ उन्हें अपने-आप स्मरण हो आयीं।

एक दिन देवर्षि नारद हिमालयके घर आये। पार्वती पिताके पास ही बैठी थीं। नारदने भविष्यवाणी की—'यह कन्या अपने प्रेमसे शिवके आधे अङ्गकी स्वामिनी बन जायगी।' देवर्षि नारदके इस वचनने

हिमालयको बहुत कुछ निश्चिन्त कर दिया। उन्होंने दूसरा वर खोजना ही छोड़ दिया। बालिका वयस्क हो चुकी थी। इसी बीच भगवान् शंकर हिमालयके गङ्गोत्तरी तीर्थमें तपस्या करने लगे थे। सतीसे वियुक्त होनेपर वे सब विषयोंका परित्याग कर निरन्तर ब्रह्मानन्दमें लीन हो लम्बी-लम्बी समाधि लगाये रहते। प्रमथगण चारों ओर बैठकर पहरा देते थे। उनमेंसे भी कुछ समाधि लगाते, शेष पहरा देते।

हिमालयको जब पता चला कि भगवान् शंकर गङ्गोत्तरीमें आये हैं, तब अवसर देखकर पुत्रीके साथ

बहुमूल्य पूजाकी सामग्री लेकर वे वहाँ जा पहुँचे और

विधि-विधानसे उनकी पूजा की तथा पुत्रीको आदेश दिया कि सखियोंके साथ निरन्तर भगवान्‌की सेवामें उपस्थित रहो। पार्वती फूल चुनकर कुश और जल लाकर, वेदीको अच्छी तरह धो-पोंछकर तत्परतासे भगवान्‌की सेवा करने लगीं।

इधर तारकासुरसे त्रस्त देवताओंको पता था कि उसका संहार भगवान् शंकरके वीर्यसे उत्पन्न पुत्रसे ही सम्भव है। अतः वे पहलेसे ही इस प्रयत्नमें लगे थे कि शंकरका विवाह शीघ्र-से-शीघ्र हो जाय। पार्वतीको सेवा करते देख उन्हें अपने प्रयत्नकी सफलतापर विश्वास हो

गया। देवताओंने कामदेवको समझाया कि तुम ऐसा उपाय करो कि शंकरके मनमें पार्वतीके प्रति प्रेम उत्पन्न हो जाय।

कामदेव इस कार्यमें तत्परतासे जुट गया। वह वसन्तके साथ भगवान्‌के स्थानपर आ धमका। अनवसर ही वसन्त पूरे वैभवके साथ वहाँ शोभित होने लगा। इधर कामदेवने पूरी शक्ति लगाकर अपनी माया फैला रखी थी। अवसर पाते ही उसने भगवान् शंकरपर अपने पञ्चकुसुम-बाण चला दिये। भगवान्‌के मनमें पार्वतीके प्रति आकर्षण होने लगा। वे झट समझ गये कि यहाँ कोई विघ्न करनेवाला आ गया है। इधर-उधर दृष्टि दौड़ानेपर उन्हें कामदेव दीख पड़ा। उसका वह अमोघ बाण मोघ हो गया। उसकी दुश्चेष्टासे भगवान्‌को रोष हो

आया और उनके तीसरे नेत्रसे निकली लपटसे कामदेव तुरंत जलकर भस्म हो गया। कामपत्नी रति मूर्च्छित हो गयी। देवता हाहाकार करने लगे। वे भगवान्‌की स्तुति करते हुए बोले—'कामने तारकासुरके वधके लिये और समस्त देवताओंके कष्ट मिटानेके लिये ही यह कार्य किया है, क्षुद्रबुद्धिसे नहीं; अतः इसे क्षमा कर दें। रति भी संज्ञाशून्य हो रही है, उसे सान्त्वना दें।'

भगवान् शंकर तो आशुतोष ठहरे। उन्होंने रतिको यह कहकर शम्बरासुरके नगरमें भेज दिया कि वहाँ कामदेव 'प्रद्युम्न' बनकर उससे सदेह मिलेगा। पार्वती हतप्रभ हो गयीं। एक तो यह भयानक घटना उनके सामने घटी थी, दूसरे देखते-देखते उनके प्रियतम अदृश्य हो गये थे। वे विवश हो रोती हुई घर लौटीं। प्रियतमके विरहसे वे बहुत ही व्याकुल हो उठी थीं। उन्हें कहीं न तो सुख मिल रहा था, न शान्ति। हृदयमें हाहाकार उठ रहा था। समझानेपर समझ न पाती थीं। वे अपने रूप, जन्म और कर्मको कोसतीं। भगवान् शंकरकी प्रत्येक चेष्टा उन्हें स्मरण हो आती और उनके हृदयको मथ देती। वे बार-बार मूर्च्छित हो जाया करतीं।

(३)

इस विषम परिस्थितिमें आशाकी किरण बनकर देवर्षि नारद उनके निकट पधारे और समझाने लगे—'तुमने शंकरकी सेवा तो अवश्य की; किंतु उसमें त्रुटियाँ रह गयीं। तुम्हें गर्व न करना था। उसे नष्ट कर भगवान्‌ने तुमपर दया ही दिखलायी है। प्रेममें गर्व कैसा? अब तुम

तपस्या करो। सब ठीक हो जायगा। मैं उसका प्रकार बतला देता हूँ।'

गङ्गोत्तरीके शृङ्गितीर्थमें पार्वतीने घोर तपस्या प्रारम्भ कर दी। पहला वर्ष तो उन्होंने फलाहारपर बिताया, फिर वे केवल पत्ता चबाकर रहने लगीं। इसके बाद उन्होंने पत्ता खाना भी छोड़ दिया। वे निरन्तर शिवका चिन्तन करती

रहतीं। इस प्रकार तीन हजार वर्ष बीत गये। पार्वतीकी तपस्या मुनियोंके लिये भी दुष्कर थी। हिमालय और मैना अत्यन्त उद्विग्न हो गये। सभी पर्वत इकट्ठे हुए और पार्वतीको तपस्यासे विरत करने लगे। पार्वतीने बड़ी ही नम्रतासे उन्हें लौटाया। वे अपनी तपस्याको उग्र-से-उग्रतर और उग्रतर-से-उग्रतम बनाती चली गयीं। फलतः उस तपस्यासे सारा विश्व संतप्त हो उठा। सभी प्राणी बेचैन हो गये। तब विष्णु और ब्रह्मा अन्य देवों एवं ऋषियोंके साथ भगवान् शंकरके पास पहुँचे, किंतु वे समाधिमें लीन थे। तब नन्दिकेश्वरकी सहायता ली गयी। उन्होंने प्रभुसे बहुत धीरे-धीरे विश्वको संतापसे बचानेकी प्रार्थना की। प्रभुकी समाधि टूटी। भगवान्‌ने देवोंसे पूछा—'आपलोग कैसे आये हैं?' देवोंके बहुत अनुनय-विनय करनेपर भगवान् शंकर विवाहके लिये तैयार हुए।

तदनन्तर परीक्षाओंका दौर चल पड़ा। सप्तर्षियोंको पार्वतीकी परीक्षाके लिये भेजा गया। तत्पश्चात् स्वयं भगवान् शंकरने जटिल ब्रह्मचारी बनकर उनकी कठोर परीक्षा ली। पार्वतीकी परीक्षा हो जानेके बाद उनके माता-पिताकी परीक्षा वैष्णव ब्राह्मणके वेषमें ली गयी। पार्वती तो परीक्षामें उत्तीर्ण होती गयीं, किंतु माता और पितापर उस परीक्षाने गहरा असर डाला। विवाहमें भयानक विघ्न उपस्थित हुआ था। सप्तर्षियोंके प्रभावसे वह विघ्न टल गया।

(४)

मङ्गलाचार आरम्भ हो गया। विश्वकर्माने दिव्य मण्डप और देवताओंको ठहरानेके लिये दिव्य अद्भुत भवनोंका निर्माण किया। मङ्गलपत्रिका पाकर भगवान् शंकरने देवर्षि नारदका स्मरण किया। देवर्षिने देवताओंको आमन्त्रित किया। समग्र ऐश्वर्यके साथ देवता आ उपस्थित हुए। ऋषि-मुनि, नाग, यक्ष, गन्धर्व सभी सजधज कर आये। शुभ मुहूर्तमें मङ्गलाचार एवं ग्रहपूजनके साथ बारातका प्रस्थान हुआ। विश्वका कल्याण करनेवाले बाबा विश्वनाथका वह विवाह धूमधामसे सम्पन्न हुआ। आज भी प्रत्येक हिन्दू प्रतिवर्ष इस विवाहके उपलक्ष्यमें व्रत रहते हैं और उत्सव मनाते हैं।

बहुत दिनोंके बाद शिव और शिवाका मिलन हुआ। पार्वतीसे छः मुखवाले कार्तिकेयजीका जन्म हुआ। कृत्तिका नामकी छः स्त्रियोंके द्वारा पाले जानेसे उनकी संतुष्टिके लिये उन्होंने छः मुख धारण किये और अपना नाम 'कार्तिकेय' (कृत्तिकाके पुत्र) रखा। इन्होंने देवताओंद्वारा अवध्य तारकासुरका उद्धार किया। पार्वतीके दूसरे पुत्र गणेश हैं। उबटन लगानेसे जो मैल गिरा, उसे हाथमें लेकर पार्वतीने एक बालककी प्रतिमा बनायी। बालक बड़ा सुन्दर बना था। देवीने उसमें प्राणका संचार कर दिया। वही प्रथम पूजनीय 'गणेश' हुए। पराम्बाने कार्तिकेयके द्वारा देवताओंके संकट दूर किये तथा गणाधीशके पदपर गणेशको नियुक्त कर दिया।

(५)

पार्वतीजीके अवतारका मुख्य प्रयोजन अभी पूरा नहीं हुआ था। सती-जन्ममें आत्मदान कर इन्होंने भगवान् शंकरसे 'श्रीरामचरितमानस' का निर्माण करा लिया था। 'लोमश' आदि विशिष्ट लोगोंको परम्परया [illegible]

चुका था। अभी उसका व्यापक प्रचार न हो पाया था। अब उसे सबको सुलभ कराना शेष था; क्योंकि अवतारवादका रहस्य उनके दो जन्मोंके अवतार और प्रश्नोत्तरद्वारा इसी ग्रन्थसे स्पष्ट होता है।-

अत: सती-जन्मवाला अज्ञताका अभिनय पार्वतीने भी प्रारम्भ कर दिया। वे अवसर पाकर बोलीं—'नाथ! कल्प-वृक्षकी छायामें जो रहता है, वह दरिद्र नहीं रह जाता। आप ज्ञानके कल्पवृक्ष हैं और आपकी छायामें मैं रहती हूँ। मैं ज्ञानकी दरिद्रा हूँ। गरीबी मुझे सता रही है। उसे दूर कर दीजिये। मैं पृथ्वीपर माथा टेककर आपको प्रणाम कर रही हूँ और हाथ जोड़कर विनती कर रही हूँ। पहले जन्मसे ही मैं आर्त हूँ और उस भ्रमसे आज भी आर्त हूँ। नाथ! मेरी इस आर्तिको दूर कीजिये। मैं आपकी दासी हूँ, मेरी अज्ञतापर क्रोध न कीजियेगा।'

'आपने बतलाया था कि दशरथनन्दन श्रीराम 'ब्रह्म' हैं। मैंने परीक्षा कर उन्हें ब्रह्म ही पाया; किंतु कुछ ऐसे प्रश्न हैं, जिनसे बुद्धिको संतोष नहीं होता। जैसे—

(क) ब्रह्मको अज (अजन्मा) कहा जाता है; किंतु दशरथनन्दन श्रीरामका तो पितासे जन्म हुआ था, फिर वे 'अज' कैसे हुए?

(ख) ब्रह्मको 'ज्ञानरूप' कहा जाता है; किंतु दशरथनन्दन श्रीरामको यह भी ज्ञान नहीं था कि पेड़-पौधे उनके प्रश्नका उत्तर दे सकेंगे या नहीं?

(ग) ब्रह्मको निराकार कहा जाता है, किंतु दशरथनन्दन श्रीराम हाड़-मांस-चामके बने हुए स्पष्ट दिखलायी देते थे।

(घ) ब्रह्म 'अमर' होता है, किंतु दशरथनन्दन श्रीराम तब पृथ्वीपर थे; किंतु आज तो नहीं हैं?

(ङ) ब्रह्म 'व्यापक' माना जाता है; किंतु वे प्राय: एक जगह ही रहते थे; आँखसे ओझल होते ही फिर न दिखलायी पड़े तो उन्हें व्यापक कैसे कहा जाय? यदि व्यापक होते तो दशरथको उनके वियोगमें मरना नहीं चाहिये था?

भगवतीने 'अज्ञता'का ऐसा सच्चा अभिनय किया कि लाख हाथ जोड़नेपर भी भगवान् शंकरको इनकी अज्ञतापर तरस आ ही गया। उन्होंने मीठी फटकार सुना ही दी—

एक बात नहिं मोहि सोहानी। जदपि मोह बस कहेहु भवानी॥
तुम्ह जो कहा राम कोउ आना। जेहि श्रुति गाव धरहिं मुनि ध्याना॥
कहहिं सुनहिं अस अधम नर ग्रसे जे मोह पिसाच।
पाषंडी हरि पद बिमुख जानहिं झूठ न साच॥

(रा०च०मा० १।११४।७-८; ११४)

इन्हीं प्रश्नोंका उत्तर 'श्रीरामचरितमानस' है, जिन्हें बड़ी तपस्यासे भगवतीने प्राप्त किया। (ला०बि०मि०)

(३) महाकालीका अवतार

स्वारोचिष मन्वन्तरके समयकी बात है। चैत्रवंशमें सुरथ नामके एक वीर राजा हुए थे, जो विरथके पुत्र थे। वे दानी, धार्मिक और सत्यवादी थे। पिताकी मृत्युके बाद राज्यके शासनकी बागडोर उनके हाथोंमें आयी। वे योग्यतापूर्वक प्रजाका पालन और राज्यका संचालन करने लगे। एक बार नौ राजाओंने पूरी तैयारीके साथ सुरथकी राजधानी कोलापुरीको चारों ओरसे घेर लिया। राजाने बड़ी वीरतासे शत्रुका सामना किया; किंतु उनकी संख्या न्यून होनेपर भी संयोगवश इन्हें पराजित होना पड़ा। शत्रुओंने सुरथके राज्यको अपने अधिकारमें लेकर उन्हें कोलापुरीसे निकाल दिया। राजा अपने दूसरे नगरमें शत्रुओंको खदेड़नेके लिये सेनाका संगठन करने लगे; किंतु इनके मन्त्री आदिने इनके साथ विश्वासघात किया। वे क्षुद्र स्वार्थकी पूर्तिके लिये शत्रुओंसे जा मिले। शत्रुओंने यहाँ भी आक्रमण कर राजाको भगा दिया। विवश होकर सुरथको वनकी शरण लेनी पड़ी। वनमें उन्होंने मेधा मुनिका आश्रम देखा। मुनिके तपके प्रभावसे वहाँके हिंसक जीव अपनी हिंसा-वृत्तिको छोड़कर परस्पर भाईचारेके भावसे रहते थे। मुनिके सुशासित शिष्य आश्रमकी शोभामें चार चाँद लगा रहे थे। राजा सुरथको वह आश्रम बहुत अच्छा जान पड़ा; अत: वे उस आश्रममें चले गये। मुनिवर मेधाने मीठे वचन, आसन, जल और भोजनसे

राजाका सुन्दर आतिथ्य किया। वे वहाँ कुछ दिन रह गये।

एक दिन वे अपने दौर्भाग्यपर दुःखी हो चिन्ता कर रहे थे। उस समय वे मोहसे आविष्ट होकर बहुत दुःखी हो रहे थे। ठीक उसी समय उनके पास समाधि नामक एक वैश्य पहुँचा, जो बहुत उदास था। राजाने उससे पूछा—'भाई! तुम कौन हो? बहुत ही दुःखी दिखायी देते हो। अपने दुःखका कारण तो बताओ।' वैश्यने कहा—

'राजन्! मैं धनाढ्य-कुलमें उत्पन्न समाधि नामका वैश्य हूँ। अपने ही पुत्रों और स्त्री आदिने धनके लोभसे मुझे घरसे निकाल दिया है। विवश होकर मैं यहाँ चला आया हूँ; किंतु यहाँ आनेपर भी पुत्र आदिका स्नेह मुझे पीड़ित कर रहा है। सोचता हूँ कि वे किस तरह रहते होंगे? इच्छा होती है कि कोई कह देता कि वे सब सकुशल हैं। उनका कुशल समाचार न पानेसे मुझे रुलाई आ रही है।'

राजाने पूछा—'जिन लोगोंने शत्रुताका व्यवहार किया, धन छीन लिया और घरसे बाहर निकाल दिया, उनके प्रति तुम्हारा इतना स्नेह क्यों हो रहा है?' वैश्यने उत्तर दिया—'आपके इस प्रश्नका उत्तर मेरे पास नहीं है। आपका कहना यथार्थ है कि जो मेरे प्रति शत्रुता कर रहे हैं, उनके प्रति मुझे स्नेह नहीं करना चाहिये। उनकी आसक्ति त्यागकर भगवान्‌की ओर लगना चाहिये; किंतु उलटे मेरा चित्त उधर ही लगा हुआ है, इसका क्या कारण है, यह मैं नहीं जानता। साथ ही यह भी जाननेकी इच्छा है कि उधरसे मेरा मन किस प्रकार हट जाय, इसके लिये क्या करूँ?'

इस प्रश्नका उत्तर न राजाके पास था और न वैश्यके पास। अतः दोनों मुनिके समीप उपस्थित हुए। दोनोंकी

समस्या एक ही थी। दोनों स्वजनोंद्वारा उपेक्षित थे, फिर भी दोनों उन्हींकी ममतासे दुःख पा रहे थे। मुनिने कहा—'भगवान् विष्णुकी योगनिद्रारूपी जो महामाया हैं, उन्हींके द्वारा यह सारा संसार मोहित हो रहा है। वे ज्ञानियोंके चित्तको भी बलपूर्वक खींचकर मोहमें डाल दिया करती हैं; किंतु विद्यारूपसे वे ही मुक्ति भी प्रदान करती हैं। उनकी शरणमें जानेसे ही मोहसे छुटकारा मिल सकता है।' राजाने पूछा—'ये महामाया कौन हैं? उनका आविर्भाव कैसे हुआ? उनके चरित कौन-कौन हैं?'

मुनि बोले—'प्रलयका समय था। एकार्णवके जलमें सब कुछ डूबा हुआ था। शेषशय्यापर भगवान् विष्णु योगनिद्राका आश्रय लेकर शयन कर रहे थे। उस समय उनके कानोंके मैलसे मधु और कैटभ नामके दो असुर उत्पन्न हुए। वे दोनों ब्रह्माजीको मारनेके लिये तैयार हो गये। ब्रह्माजीने देखा कि भगवान् तो सो रहे हैं, मुझे बचाने

कौन? वे झट उस शक्तिकी स्तुति करने लगे, जो विष्णुभगवान्‌को सुला रही थी। उन्होंने माता शक्तिसे विष्णुभगवान्‌को जगाने और असुरोंको मोहित करनेके लिये प्रार्थना की। ब्रह्माजीकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर महामाया प्रकट हो गयीं। ये ही महामाया महाकाली नामसे प्रसिद्ध हैं। ये भगवान् विष्णुकी योगनिद्रा हैं। ये तमोगुणकी अधिष्ठात्री देवी हैं। इनका आविर्भाव भगवान् विष्णुके नेत्र, मुख, नासिका, बाहु, हृदय और वक्षःस्थलसे हुआ था। योगनिद्रासे मुक्त होते ही भगवान् विष्णु शय्यासे उठ बैठे। उनकी दृष्टि दोनों असुरोंपर पड़ी। वे दोनों ब्रह्माजीको खानेके लिये तैयार थे। भगवान् विष्णुने उन्हें रोका। फिर तो उनके साथ पाँच हजार वर्षतक युद्ध होता रहा; किंतु वे हारते नहीं दीखते थे। तब महामायाने उन्हें मोहित कर दिया। उनकी बुद्धि बदल गयी। वे सोचने लगे कि 'हम दोनों मिलकर जी-जानसे लड़ रहे हैं और यह अकेला है, फिर भी हार नहीं रहा है।' इस तरह उन दोनोंकी बुद्धिमें प्रतिस्पर्धाके बदले विष्णुके प्रति 'श्रद्धा' उत्पन्न हो गयी। तब उन्होंने विष्णुसे कहा—'हम दोनों तुम्हारे पराक्रमसे प्रसन्न हैं। अब तुम उचित वर माँग लो।' भगवान् विष्णुने कहा—'यदि तुम वर देना चाहते हो तो यह वर दो कि तुम दोनों मेरे हाथों मारे जाओ।' दैत्योंको अब अपनी भूल मालूम पड़ी; किंतु उन्होंने चालाकीसे काम लिया। उन्होंने देखा कि यहाँ कहीं स्थल तो है नहीं। सब जगह पानी-ही-पानी है। अतः कहा—'तुम हमें ऐसी जगहपर मारो, जहाँ जल न हो।' उन्होंने सोचा था कि यहाँ कहीं पृथ्वी है ही नहीं, ये मारेंगे कैसे? तबतक इन्हें हम दोनों ही दबोच लेंगे। भगवती महामाया शक्ति तो 'श्रद्धा'के साथ-साथ 'बुद्धि' रूपमें भी स्थित हैं। वे भगवान् विष्णुकी बुद्धिमें स्थित हो गयीं, जिससे उन्होंने उन्हें अपनी विशाल जाँघोंपर पटककर उनके मस्तक काट गिराये। जाँघें तो जल

नहीं थीं। इस तरह ब्रह्माजीकी स्तुतिसे संतुष्ट हुई महाकाली, जो तमोगुणकी अधिष्ठात्री देवी योगनिद्रारूपा हैं, प्रकट हुई थीं। (ला०वि०मि०)

(४) महालक्ष्मीका अवतार

महामुनि मेधाने राजा सुरथसे कहा—'राजन्! आदिशक्ति निर्विकार और निराकार हैं, फिर भी अपने दुःखी पुत्रोंका दुःख दूर करनेके लिये अवतार लिया करती हैं। उनके भक्तजन उनकी लीलाओंका गान करते रहते हैं।'

प्राचीनकालमें महिष नामक एक महापराक्रमी असुर उत्पन्न हुआ था, जो रम्भ नामक असुरका पुत्र था। वह दैत्योंका सम्राट् था। उसने युद्धमें सभी देवताओंको हराकर इन्द्रके सिंहासनपर अधिकार कर लिया। वह वहाँसे तीनों लोकोंपर शासन करने लगा। पराजित देवता ब्रह्माकी शरणमें गये। ब्रह्माजी उन सभीको साथ लेकर वहाँ गये, जहाँ विष्णु और शंकर उपस्थित थे। उन्होंने महिषके अत्याचारोंको कह सुनाया, जिसे सुनकर विष्णु और शंकर दैत्योंपर अत्यन्त क्रुद्ध हो गये। क्रोधमें भरे विष्णुके मुखसे महान् तेज उत्पन्न हुआ। इसी प्रकार शंकर, ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवोंके शरीरोंसे भी तेज प्रकट हुआ। वह सब तेज मिलकर एकीभूत हो गया। उससे सारी दिशाएँ प्रकाशित हो उठीं। अन्तमें वह एक नारीके रूपमें परिणत हो गया।

वह नारी साक्षात् महिषमर्दिनी थीं। देवताओंने प्रसन्न होकर

उनकी स्तुति की और उन्हें आभूषण तथा अस्त्र-शस्त्र प्रदान किये। इसके बाद देवीने अट्टहासपूर्वक गर्जना की। इस गर्जनासे सम्पूर्ण आकाश प्रतिध्वनित हो उठा, तीनों लोकोंमें हलचल मच गयी, पृथ्वी काँप उठी और समुद्र उछलने लगे। देवताओंने देवीके जयकारका नारा लगाते हुए गद्गद वाणीसे उनकी स्तुति की।

उस अद्भुत शब्दको सुनकर दैत्योंने अपने-अपने हथियार उठा लिये। महिषासुर सभी दैत्योंको साथ लेकर उस शब्दको लक्ष्य करके दौड़ा। वहाँ पहुँचकर दैत्योंने देवीको इस रूपमें देखा कि उनके चरणोंके भारसे पृथ्वी दब रही है और उनके प्रकाशसे तीनों लोक प्रकाशित हो रहे हैं। फिर तो दैत्योंने युद्ध छेड़ दिया। महिषासुरका सेनापति चिक्षुर देवीपर टूट पड़ा। उधर चतुरङ्गिणी सेना लेकर चामर भी चढ़ आया। उदग्र, महाहनु, बाष्कल और असिलोमा—ये सभी रथी सैनिकोंके अग्रणी थे। इनमें असिलोमाका प्रत्येक रोम तलवारके समान तीखा था। ये सभी युद्धस्थलमें आकर लोहा लेने लगे। इस तरह हाथीसवार और घुड़सवार सैनिक भी देवीपर चारों ओरसे अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे। देवीने खेल-खेलमें ही सभी अस्त्र-शस्त्रोंको काट गिराया। उस समय देवीके निःश्वास गण बनकर दैत्योंपर चढ़ धाये। तदनन्तर देवीने त्रिशूल, गदा और शक्तिकी वर्षा कर बहुत-से महादैत्योंका संहार कर डाला। दैत्योंकी सेनामें हाथी, घोड़े और असुरोंके शरीरसे इतना रक्त गिरा कि कई कुण्ड बन गये। जैसे आग तिनकेके ढेरको जला देती है, वैसे ही देवीने थोड़ी ही देरमें सारी दैत्य-सेनाका सफाया कर दिया। देवगण हर्षित होकर पुष्पोंकी वृष्टि करने लगे।

अपनी सेनाका विनाश देखकर सेनापति चिक्षुर क्रोधसे तिलमिला उठा। फिर तो वह देवीपर बाणोंकी वर्षा करने लगा। देवीने अपने बाणोंसे उसके बाणोंको काटकर उसके रथके घोड़ों और सारथियोंको भी मार गिराया। साथ ही उसके धनुष और ध्वजाको भी काट दिया। चिक्षुरने तलवारसे देवीपर प्रहार किया; किंतु देवीके पास पहुँचते ही उस तलवारके टुकड़े-टुकड़े हो गये। चिक्षुरको अपने शूलपर बड़ा गर्व था। उसने उसे देवीपर चला दिया। वह आकाशमें प्रज्वलित हो उठा; किंतु देवीने अपने शूलके प्रहारसे उसके सैकड़ों टुकड़े

कर दिये और चिक्षुरको भी यमलोकका पथिक बना दिया। देवीके शस्त्रप्रहारसे चामर और उदग्र भी धराशायी हो गये।

अब महिषासुर भैंसेका रूप धारण कर देवीके श्वाससे उत्पन्न हुए गणोंको त्रास देने लगा। तत्पश्चात् वह सिंहपर भी झपटा। यह देखकर देवीका क्रोध बढ़ गया।

महिषासुर उग्रसे उग्रतर होता जा रहा था। वह खुरोंसे पृथ्वीको खोद रहा था और सींगोंसे पहाड़ोंको उखाड़-उखाड़कर देवीकी ओर फेंक रहा था, साथ-ही-साथ गरज भी रहा था। उसके वेगसे पृथ्वीमें दरारें पड़ने लगीं और सींगोंके झटकेसे बादलोंके टुकड़े-टुकड़े हो गये। उसने बड़े वेगसे देवीपर आक्रमण किया। देवीने उसे पाशसे बाँध लिया। बँध जानेपर उसने भैंसेका रूप त्याग कर सिंहका रूप धारण कर लिया। जब परमेश्वरीने उसका मस्तक काटना चाहा, तब वह तलवार लिये हुए पुरुषके रूपमें दौड़ा। देवीने बाण-वृष्टि कर पाशसे उसे बाँध लिया। तब वह हाथीका रूप धारण कर भगवतीके सिंहको पकड़कर खींचने लगा। भगवतीने उसकी सूँड़ काट डाली। तब उस दैत्यने पुनः भैंसेका रूप धारण कर लिया। उसे पहलेकी तरह पैंतरेबाजी करते देख सारा जगत् त्रस्त हो गया। देवी देवताओंको भयभीत देखकर उछलीं और उस महिषासुरपर चढ़ गयीं तथा उसे पैरसे दबाकर उसके कण्ठपर शूलसे आघात किया। महिषासुर पुनः दूसरा रूप धारण कर आधा निकला ही था कि देवीने उसका आगे निकलना रोक दिया। जब वह उस दशामें भी पैंतरे बदलने लगा, तब देवीने उसका मस्तक

तलवारसे काट गिराया। बची सेना सिरपर पैर रखकर भाग खड़ी हुई।

इस प्रकार देवताओंको संताप देनेवाला महिषासुर नष्ट हो गया। देवगण स्तुति करने लगे। गन्धर्व जयगान गाने लगे। अप्सराएँ प्रसन्नतासे नाचने लगीं। सबने चन्दन, अक्षत, दिव्य पुष्प और धूप आदिसे प्रेमपूर्वक देवीकी पूजा की। तदनन्तर देवताओंको वरदान देकर जगदम्बा अन्तर्धान हो गयीं। (ला०बि०मि०)

(५) महासरस्वतीका अवतार

महामुनि मेधाने राजा सुरथ और समाधि वैश्यको महासरस्वतीका चरित्र इस प्रकार सुनाया—

प्राचीनकालमें शुम्भ और निशुम्भ नामक दो परम पराक्रमी दैत्य उत्पन्न हुए थे। तीनों लोकोंमें उनका भय व्याप्त हो गया था। उनके अत्याचारोंसे प्रजा त्राहि-त्राहि कर रही थी। उन दोनों भाइयोंने इन्द्रके राज्यको तो हथिया ही लिया था, यज्ञ-भागका भी अपहरण कर लिया था; सूर्य, चन्द्र, कुबेर, यम और वरुणके अधिकार भी छीन लिये थे तथा देवताओंको अपमानित कर स्वर्गसे निकाल दिया था। तब देवताओंने भगवतीकी शरण ली। हिमालयपर जाकर उन्होंने रुँधे कण्ठसे भगवतीकी स्तुति की। उनकी स्तुतिसे पार्वतीदेवी प्रसन्न हो गयीं और बोलीं—'आपलोग किसकी

स्तुति कर रहे हैं?' इसी बीच उनके शरीरसे सुन्दर कुमारी प्रकट हो गयीं। वे बोलीं—'माँ! ये लोग मेरी ही प्रार्थना कर रहे हैं। ये शुम्भ और निशुम्भ दैत्योंसे अतिशय प्रताड़ित और अपमानित हैं, अतः अपनी रक्षा चाह रहे हैं।'

पार्वतीके शरीरकोशसे वे कुमारी निकली थीं, इसलिये उनका नाम कौशिकी पड़ गया। ये ही शुम्भ और निशुम्भका नाश करनेवाली महासरस्वती हैं। इन्हींके अन्य नाम उग्रतारा और महेन्द्रतारा भी हैं। माता पार्वतीके शरीरसे उत्पन्न होनेके कारण उनका नाम मातङ्गी भी है। उन्होंने समग्र देवताओंसे प्यारभरे शब्दोंमें कहा—'तुमलोग निर्भय हो जाओ। मैं स्वतन्त्र हूँ। अतः किसीका सहारा लिये बिना ही तुम लोगोंका कार्य कर दूँगी। तुमलोग अब निश्चिन्त हो जाओ।' इतना कहकर देवी अन्तर्धान हो गयीं।

एक दिन शुम्भ और निशुम्भके विश्वस्त सेवक चण्ड और मुण्डने कुमारी देवीको देखा। इतनी सुन्दरता उन्होंने इसके पहले कभी नहीं देखी थी। वे मोहित और आनन्दके कारण चेतनाहीन हो गये। चेतना आनेपर उन्होंने शुम्भ और निशुम्भसे कहा—'महाराज! हम दोनोंने एक कुमारीको देखा है। वह सिंहपर सवारी करती है और अकेले रहती है। उसमें इतना अधिक सौन्दर्य है, जो आजतक कहीं नहीं देखा गया; वह तो नारीरत्न ही है।'

यह सुनकर शुम्भने सुग्रीव नामक असुरको दूत बनाकर देवीके पास भेजा। वह कुशल संदेशवाहक था। देवीके पास पहुँचकर उसने कहा—'देवि! शुम्भासुरका नाम विश्वमें विख्यात है। उन्हें कौन नहीं जानता? सम्पूर्ण विश्व आज उनके चरणोंमें है। उन्होंने जो संदेश भेजा है, उसे आप सुननेका कष्ट करें। उन्होंने कहा है—'मैं जानता हूँ कि तुम नारियोंमें रत्न हो और मैं रत्नोंकी खोजमें रहता हूँ। इसलिये तुम मुझे या मेरे भाईको अपना पति बना लो।'

देवी बोलीं—दूत! तुम्हारा कथन सत्य है, किंतु विवाहके सम्बन्धमें मेरी एक प्रतिज्ञा है। पहले उसे तुम सुन लो—'युद्धमें जो मुझे जीत ले, जो मेरे अभिमानको चूर कर दे, उसीको मैं पति बनाऊँगी।' तुम मेरी इस प्रतिज्ञाको उन्हें सुना दो। फिर इस विषयमें वे जैसा उचित समझें, करें। अच्छा तो यह होगा कि वे स्वयं यहाँ पधारें और मुझे जीतकर मेरा पाणिग्रहण कर लें।

सुग्रीवने कहा—'देवि! मालूम पड़ता है, तुम्हारा गर्व तुम्हारी बुद्धिपर आरूढ़ हो गया है। भला, जिससे इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता हार गये; दानव, मानव, नाग हार गये; उससे तुम सुकुमारी अकेले कैसे लड़ सकोगी? जरा बुद्धिपर बल देकर सोचो। मैं तुम्हारे हितकी बात कह रहा हूँ। तुम मेरे साथ चली चलो। अपना अपमान मत कराओ।'

देवीने कहा—'दूत! तुमने अपनी समझसे मेरे हितकी बात कही है; परंतु इस बातपर भी तो विचार करो कि प्रतिज्ञा कैसे तोड़ी जाय? यद्यपि यह प्रतिज्ञा मैंने बिना सोचे-समझे की है, तथापि दूत! प्रतिज्ञा प्रतिज्ञा होती है। अतः तुम लौट जाओ और आदरपूर्वक मेरा संदेश उन्हें सुना दो।'

असुर सुग्रीव देवीकी वक्तृत्व-शक्तिसे अत्यन्त विस्मयमें पड़ गया। फिर भी उसे 'छोटे मुँह बड़ी बात' समझकर अमर्ष हो आया और लौटकर उसने दैत्यराजसे सब बातें कह सुनायीं। दैत्यराज तो अमर्षका पुतला था ही। वह देवीका संदेश सुनकर एँड़ीसे चोटीतक क्रोधके मारे काँप

उठा और सेनापतिसे बोला—'धूम्रलोचन! तुम शीघ्र जाओ और उस दुष्टाको केश पकड़कर घसीटते हुए यहाँ ले आओ। वह संसारमें रहकर मेरा गौरव नहीं जानती। इसका यही दण्ड है। मालूम पड़ता है, वह कुछ देवताओंपर भरोसा कर बैठी है, अतः उसको मार-पीटकर शीघ्र

लाओ।' धूम्रलोचन साठ हजार सेनाके साथ वहाँ पहुँचा और सुकुमार अङ्गोंवाली उस कुमारीको देखकर उसके बचपनेसे चिढ़कर बोला—'अरी! शुम्भके पास प्रसन्न मनसे चली चल, नहीं तो मैं झोंटा पकड़कर घसीटकर ले जाऊँगा, फिर आगे क्षमा न करूँगा।' देवी बोलीं—'सेनापति! तुम बलवान् हो, तुम्हारे पास सेना भी है। यदि तुम बलपूर्वक ले जाओगे, तो मैं क्या कर सकती हूँ।'

धूम्रलोचन आग-बबूला होकर झपटा, किंतु देवीके हुंकारते ही वह जलकर भस्म हो गया। सेनाका सफाया

सिंहने कर डाला। यह समाचार पाकर दैत्यराजकी क्रोधाग्नि भभक उठी। उसने चण्ड और मुण्डको देवीको लानेके लिये भेजा। वहाँ पहुँचकर उन दैत्योंने देवीको मुसकराती हुई पाया। फिर तो चारों ओरसे आक्रमण कर दिया गया। यह देखकर भयंकर क्रोधके कारण भगवतीका रंग काला हो गया और उनकी भृकुटीसे महाकाली प्रकट हो गयीं। वे चीतेके चर्मकी साड़ी और नरमुण्डोंकी माला पहने थीं। उनका शरीर हड्डियोंका ढाँचामात्र था। इस तरह वे बहुत ही भयानक दीख रही थीं। उन्हें देखकर दैत्योंके रोंगटे खड़े हो गये। वे दैत्योंपर टूट पड़ीं। दैत्य-सेनामें भगदड़ मच गयी। वे घोड़ा-हाथीसहित योद्धाओंको मुखमें डालने लगीं, सभी अस्त्र-शस्त्रोंको चबाने लगीं तथा तलवारकी एक चोटसे सेनाकी पंक्तियोंका सफाया करने लगीं। इस प्रकार क्षणभरमें सारी सेना समाप्त हो गयी। उसके बाद उन्होंने चण्डको तलवारके एक ही आघातसे काट गिराया। मुण्ड भी उनके

रोषका शिकार हुआ। शेष सेना भयसे भाग खड़ी हुई। तत्पश्चात् महाकाली चण्ड और मुण्डके कटे मस्तकको हाथमें लेकर भगवतीके पास आयीं और विकट अट्टहास करती हुई बोलीं—'चण्ड-मुण्डको तो मैंने मार गिराया, अब शुम्भ-निशुम्भका वध तुम करोगी।' भगवतीने कहा—'तुमने चण्ड और मुण्डका संहार किया है, अतः तुम्हारा नाम 'चामुण्डा' भी होगा।'

चण्ड और मुण्डके मारे जानेपर शुम्भके क्रोधका ठिकाना न रहा। उसने उदायुध नामक छिआसी सेनापतियों, कम्बु नामवाले दैत्योंके चौरासी सेनापतियों, कोटिवीर्य कुलके पचास और धौम्रकुलके सौ सेनापतियोंको अपनी-अपनी सैनिक-टुकड़ियोंके साथ भेजा। कालक, दौर्हद, मौर्य और कालकेय भी भेजे गये। असंख्य सेनाओंद्वारा देवी चारों ओरसे घेर ली गयीं। तब देवीने माहेश्वरी, वैष्णवी, कार्तिकेयी, ऐन्द्री आदि शक्तियोंको अपने-अपने विशेष अस्त्र-शस्त्रोंके साथ प्रकट कर सेनाके संहारमें लगा दिया। थोड़ी ही देरमें सेनाका सफाया हो गया। शेष दैत्य प्राण लेकर भाग खड़े हुए। तब अद्भुत पराक्रमी रक्तबीज युद्धके लिये आया, उसमें यह विशेषता थी कि उसके शरीरसे रक्तकी जितनी बूँदें गिरतीं, उतने नये रक्तबीज उत्पन्न हो जाते थे। वह अपनेको अजेय समझता था, अतः बड़े गर्वके साथ आकर युद्ध करने लगा। ऐन्द्रीके वज्र-प्रहार और वैष्णवीके चक्र-प्रहारसे उसके शरीरसे बहुत

अधिक मात्रामें रक्त पृथ्वीपर गिरा, जिससे सारा जगत् रक्तबीजोंसे भर गया। वे सब-के-सब मातृगणोंसे जूझ रहे थे। जितने मारे जाते थे, उससे कई गुने बढ़ रहे थे। यह दृश्य देखकर देवतालोग घबरा गये। देवताओंको घबराया देखकर देवीने कालीसे कहा—'चामुण्डे! तुम गिरते हुए इनके रक्तकणोंको चाटती जाओ और रक्तबीजोंको उदरस्थ करती जाओ।' चामुण्डाने थोड़ी ही देरमें रक्तबीजोंको समाप्त कर दिया। अन्तमें देवीने रक्तबीजको मारा और चामुण्डाने उसके सारे रक्तको पृथ्वीपर गिरनेसे पहले ही मुखमें डाल लिया।

कालीके मुँहमें भी बहुत-से रक्तबीज उत्पन्न हुए; परंतु माँ सबको चबा गयीं। इस तरह उस दुष्टकी सारी क्रियाएँ व्यर्थ सिद्ध हुईं और वह मारा गया। इधर मातृगणोंका उद्धत नृत्य होने लगा।

निशुम्भ यह दृश्य देखकर क्रोधसे तिलमिला उठा। मातृगणोंसे युद्ध करते हुए उसने देवीको अपना लक्ष्य बनाया। शुम्भने भी निशुम्भका साथ दिया। दोनों मिलकर देवीपर चढ़ आये। निशुम्भने तीक्ष्ण तलवारसे देवीके वाहन सिंहके मस्तकपर प्रहार किया। देवीने क्षुरप्रसे उसकी तलवार और ढालको काट दिया। इसके बाद निशुम्भने शूल, गदा और शक्ति नामक हथियार चलाये; किंतु देवीने सबको काट गिराया। अन्तमें निशुम्भ फरसा लेकर दौड़ा। देवीने बाणोंसे मारकर उसे धराशायी कर दिया।

भाईको गिरते देख शुम्भ क्रोधसे विह्वल हो गया। उसने अपने आठों हाथोंमें आठ दिव्यास्त्र लेकर देवीपर आक्रमण किया। देवीने शङ्ख और घंटा बजाये। इनके शब्दने दैत्योंके तेजको हर लिया। सिंहकी दहाड़ भी दैत्योंको दहला रही थी। उधर महाकालीने आकाशमें उछलकर पृथ्वीपर दोनों हाथोंसे चोट की। इससे इतना भयानक शब्द हुआ कि दैत्य थर्रा उठे। शिवदूतीने घोर अट्टहास करके उस शब्दको और भी भयावना बना दिया।

शुम्भ इन कार्यकलापोंसे और क्षुब्ध हो उठा। उसने पूरी शक्ति लगाकर देवीपर शक्तिसे प्रहार किया। देवीने उसे उल्कासे शान्त कर दिया। पुनः देवीके चलाये बाणोंको शुम्भने और शुम्भके चलाये बाणोंको देवीने टुकड़े-टुकड़े कर दिये। तदुपरान्त देवीने एक प्रचण्ड शूलसे शुम्भपर आघात किया, जिससे वह मूर्छित होकर गिर पड़ा।

इस बीच निशुम्भ होशमें आ चुका था। उसने दस हजार हाथ उत्पन्न कर उनसे एक साथ दस हजार चक्र चलाये। उस समय देवी चक्रोंसे ढक-सी गयीं। क्षणमात्रमें ही उन्होंने सभी चक्रोंको बाणोंसे काटकर धूलमें मिला दिया। इसी तरह उसकी गदाएँ और तलवारें भी काट डाली गयीं। अब निशुम्भने शूल लेकर देवीपर धावा किया। देवीने झट अपने शूलसे उसे बींध दिया और वह पछाड़ खाकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। शीघ्र ही उसकी छातीसे दूसरा महाकाय दैत्य 'खड़ी रह, खड़ी रह' कहते हुए निकला। देवी ठहाका मारकर हँस पड़ीं और तलवारके एक ही वारसे उसके दो टुकड़े कर दिये।✓

निशुम्भके मरनेसे शुम्भको महान् दु:ख हुआ; क्योंकि वह उसका प्राणसे बढ़कर प्यारा भाई था। तत्पश्चात् वह अत्यन्त कुपित होकर बोला—'तू घमण्ड मत कर। तेरा अपना कोई बल नहीं है। तूने तो दूसरोंका सहारा ले रखा है।' जगदम्बाने कहा—'मैं तो एक ही हूँ। मुझसे भिन्न दूसरी कौन है? ये जो और दिखायी दे रही हैं, वे मेरी ही भिन्न-भिन्न शक्तियाँ हैं। देखो, मैं अपनी शक्तियोंको समेट रही हूँ।' इसके

बाद सब शक्तियाँ भगवतीमें लीन हो गयीं। उस समय केवल देवी ही रह गयीं। तदनन्तर पुन: दोनोंमें युद्ध प्रारम्भ हो गया।

शुम्भने बहुत-से अस्त्र-शस्त्र चलाये; किंतु उन्हें खेल-खेलमें ही देवीने नष्ट कर दिया। देवीके द्वारा छोड़े गये अस्त्रोंको शुम्भने भी काट डाला। फिर शुम्भने बाणोंकी झड़ी लगा दी। देवीने उन्हें काटकर उसके धनुषको भी काट दिया। तब वह शक्ति लेकर दौड़ा। भगवतीने उसकी शक्तिको भी नष्ट कर दिया। पुन: वह ढाल और तलवार लेकर दौड़ा। देवीने बाणोंसे उन दोनोंके टुकड़े-टुकड़े कर दिये और उसके घोड़े और रथको भी ध्वस्त कर दिया। अब उसने मुद्गर लेकर धावा किया। देवीने झट मुद्गरको काटकर चूर-चूर कर दिया। तब शुम्भने झपटकर देवीकी छातीमें मुक्का मारा। बदलेमें देवीने उसे ऐसा थपेड़ा जमाया कि वह भूतलपर जा गिरा। थोड़ी देर बाद वह फिर उछलकर देवीको आकाशमें उठा ले गया। फिर तो दोनों निराधार आकाशमें ही लड़ने लगे। अन्तमें देवीने शुम्भको पकड़कर चारों ओर घुमाकर बड़े वेगसे पृथ्वीपर पटक दिया। वह पुन: उठकर देवीको मारने दौड़ा। तबतक देवीने शूलसे ऐसा वार किया कि उसके आघातसे उसके प्राणपखेरू उड़ गये। उसके मरते ही चारों ओर प्रसन्नता छा

गयी। पहले जो उत्पातसूचक उल्कापात आदि हो रहे थे, वे सब शान्त हो गये। देवगण हर्षित होकर पुष्प-वृष्टि करने लगे, गन्धर्व बाजे बजाने लगे और अप्सराएँ नाचने लगीं।

मेधामुनिने राजा सुरथ और समाधि वैश्यको शक्तिके अवतारके ये तीन चरित सुनाये तथा अन्तमें बतलाया कि वे देवी नित्य, अज, अमर और व्यापक हैं, फिर भी अवतार लेकर विश्वका त्राण करती रहती हैं। वे ही सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति और संहार करती हैं तथा विश्वको मोहित भी करती हैं; किंतु पूजा करनेपर धन, पुत्र, बुद्धि देती हैं और मोहको दूर करती हैं। तुम दोनों उन्हींकी शरणमें जाओ।

तब दोनोंने मुनिको प्रणाम किया और वे तपस्याके लिये तत्पर हो गये। एक नदीके तटपर जाकर दोनों महानुभावोंने भगवतीके दर्शनार्थ तपस्या प्रारम्भ कर दी। साथ ही मिट्टीकी मूर्ति बनाकर वे षोडशोपचार पूजा भी करने लगे। वे पहले भोजनकी मात्रा कम करते गये। फिर निराहार रहकर ही आराधना करने लगे। तीन वर्षोंके बाद भगवतीने दर्शन दिया और उन्हें मुँहमाँगा वरदान प्रदान किया। उसके प्रभावसे सुरथने अपना राज्य प्राप्त किया और मरणोपरान्त वही सावर्णि मनु हुए। वैश्य समाधिको ज्ञान प्राप्त हुआ, जिससे उनकी मुक्ति हो गयी। [illegible]

~~○~~

(६) ज्योति-अवतार

एक बार देवताओं और दैत्योंमें युद्ध छिड़ गया। इस युद्धमें देवता विजयी हुए। देवताओंके हृदयमें अहंकार उत्पन्न हो गया। प्रत्येक कहता कि 'यह विजय मेरे कारण हुई है। यदि मैं न होता तो विजय नहीं हो सकती थी।' माता बड़ी दयालु हैं। वे समझ गयीं कि यह अहंकार देवताओंको देवता न रहने देगा। इसी अहंकारके कारण असुर असुर कहलाते हैं और वही अहंकार इनमें जड़ जमा रहा है। इसके कारण विश्वको फिर कष्टका सामना करना पड़ेगा। इसलिये वे एक तेजःपुञ्जके रूपमें उनके सामने प्रकट हो गयीं। वैसा तेज आजतक किसीने देखा न था। सबका हक्का-बक्का बंद हो गया। वे रुँधे गलेसे एक-दूसरेसे पूछने लगे—'यह क्या है?' देवराज इन्द्रकी भी बुद्धि भ्रममें पड़ गयी थी।

इन्द्रने वायुको भेजा कि तुम जाकर उस तेजःपुञ्जका पता लगाओ। वायुदेवता भी तो घमण्डसे भरे हुए थे। वे तेजःपुञ्जके पास गये। तेजने पूछा—'तुम कौन हो?' वायुने अभिमानके साथ कहा—'मैं वायुदेवता हूँ, प्राणस्वरूप हूँ। सम्पूर्ण जगत्का संचालन करता हूँ?' तेजने वायुदेवताके सामने एक तिनका रख दिया और कहा कि 'यदि तुम सब कुछ संचालन कर सकते हो तो इस तिनकेको चलाओ।' वायुदेवताने अपनी सारी शक्ति लगा दी; किंतु तिनका टस-से-मस न हुआ। वे लजाकर इन्द्रके पास लौट आये और कहने लगे कि 'यह कोई अद्भुत शक्ति है, इसके सामने त मैं एक तिनका भी न उड़ा सका?' फिर अग्नि भेजे गये। त भी उस तिनकेको जला न सके और पराजित होकर लौ आये। तब इन्द्र स्वयं उस तेजके पास पहुँचे। इन्द्रके पहुँचत ही वह तेज लुप्त हो गया। यह देखकर इन्द्र अत्यन्त लज्जित हो गये। उनका गर्व गल गया। फिर वे इसी तथ्यका ध्यान करने लगे और उस शक्तिकी शरणमें गये, तब महाशक्तिने अपना स्वरूप अभिव्यक्त किया। वे अद्भुत सुन्दरी थीं, लाल साड़ी पहने थीं। उनके अङ्ग-अङ्गसे नवयौवन फूट रहा था। करोड़ों चन्द्रमाओंसे बढ़कर उनमें आह्लादकता थी। करोड़ों कामदेव उनके सौन्दर्यपर निछावर हो रहे थे। श्रुतियाँ उनकी सेवा कर रही थीं।

देवी बोलीं—'वत्स! मैं ही परब्रह्म हूँ, मैं ही परम ज्योति हूँ, मैं ही प्रणवरूपिणी हूँ, मैं ही युगलरूपिणी हूँ। मेरी ही कृपा और शक्तिसे तुमलोगोंने असुरोंपर विजय पायी है। मेरी शक्तिसे ही वायुदेवता बहा करते हैं और अग्निदेव जलाया करते हैं। तुमलोग अहंकार छोड़कर सत्यको ग्रहण करो।' इस प्रकार देवता असुर होनेसे बच गये। उन्हें अपनी भूल मालूम हो गयी। तब उन्होंने प्रार्थना की कि 'माँ! क्षमा करें, प्रसन्न हो जायँ और ऐसी कृपा करें; जिससे हममें अहंकार न आवे। आपके प्रति हमारा प्रेम बना रहे।' (ला०वि०मि०)

~~~ ० ~~~

तव च का किल न स्तुतिरम्बिके! सकलशब्दमयी किल ते तनुः।
निखिलमूर्तिषु मे भवदन्वयो मनसिजासु बहिःप्रसरासु च॥
इति विचिन्त्य शिवे! शमिताशिवे! जगति जातमयत्नवशादिदम्।
स्तुतिजपार्चनचिन्तनवर्जिता न खलु काचन कालकलास्ति मे॥

'हे जगदम्बिके! संसारमें कौन-सा वाङ्मय ऐसा है, जो तुम्हारी स्तुति नहीं है; क्योंकि तुम्हारा शरीर तो सकलशब्दमय है। हे देवि! अब मेरे मनमें संकल्पविकल्पात्मक रूपसे उदित होनेवाली एवं संसारमें दृश्यरूपसे सामने आनेवाली सम्पूर्ण आकृतियोंमें आपके स्वरूपका दर्शन होने लगा है। हे समस्त अमङ्गलध्वंसकारिणि कल्याणस्वरूपे शिवे! इस बातको सोचकर अब बिना किसी प्रयत्नके ही सम्पूर्ण चराचर जगत्में मेरी यह स्थिति हो गयी है कि मेरे समयका क्षुद्रतम अंश भी तुम्हारी स्तुति, जप, पूजा अथवा ध्यानसे रहित नहीं है। अर्थात् मेरे सम्पूर्ण जागतिक आचार-व्यवहार तुम्हारे ही भिन्न-भिन्न रूपोंके प्रति यथोचित रूपसे व्यवहृत होनेके कारण तुम्हारी पूजाके रूपमें परिणत हो गये हैं।' [आचार्य अभिनवगुप्त]

~~~ ० ~~~

स्वादिष्ट फल देवताओं तथा अन्य सभीको अपने हाथसे बाँटे तथा खानेके लिये दिये और भाँति-भाँतिके अन्न सामने उपस्थित कर दिये। उन्होंने गौओंके लिये सुन्दर हरी-हरी घास और दूसरे प्राणियोंके लिये उनके योग्य भोजन दिया।

अपने शरीरसे उत्पन्न हुए शाकों (भोज्य-सामग्रियों)-द्वारा उस समय देवीने समस्त लोकोंका भरण-पोषण किया, इसलिये देवीका 'शाकम्भरी' यह नाम विख्यात हुआ।

देवी शाकम्भरीकी कृपासे देवता, ब्राह्मण और मनुष्योंसहित सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड संतुष्ट हो गया। सबकी भूख-प्यास मिट गयी, उन सभीको अपनी माताके दर्शन हो गये। जीवलोक हर्षमें भर गया।

उस समय देवीने पूछा—'देवताओ! अब तुम्हारा कौन-सा कार्य मैं सिद्ध करूँ।' सभी देवता समवेत स्वरमें बोले—'देवि! आपने सब लोगोंको संतुष्ट कर दिया है। अब कृपा करके दुर्गमासुरके द्वारा अपहृत वेद लाकर हमें दे दीजिये।'

देवीने 'तथास्तु' कहकर कहा—'देवताओ! आपलोग अपने-अपने स्थानको जायँ, मैं शीघ्र ही उस दुर्गम दैत्यका वधकर वेदोंको ले आऊँगी।'

यह सुनकर देवता बड़े प्रसन्न हुए और वे देवीको प्रणामकर अपने-अपने स्थानोंको चले गये। सब ओरसे जय-जयकारकी ध्वनि होने लगी। तीनों लोकोंमें महान् कोलाहल मच गया। इधर अपने दूतोंसे दुर्गम दैत्यने सारी स्थितिको समझ लिया। उसके विपक्षी देवता फिर सुखी हो गये हैं, यह देखकर उस दैत्यने सेना लेकर न केवल स्वर्गलोकको बल्कि पृथ्वीलोक तथा अन्तरिक्षलोकको भी घेर लिया। एक बार पुनः देवता संकटमें पड़ गये। उन्होंने पुनः मातासे रक्षाकी गुहार लगायी। माँ तो सब देख ही रही थीं, वे इसी अवसरकी प्रतीक्षामें थीं।

शीघ्र ही भगवतीने अपने दिव्य तेजोमण्डलसे तीनों लोकोंको व्याप्तकर एक घेरा बना डाला और देवता, मनुष्य आदि उस घेरेमें सुरक्षित हो गये। स्वयं देवी घेरेसे बाहर आकर दुर्गमके सामने खड़ी हो गयीं। दुर्गम भी अपनी सेनाके साथ युद्धके लिये संनद्ध था। क्षणभरमें ही लड़ाई ठन गयी। दोनों ओरसे दिव्य बाणोंकी वर्षा होने लगी। इसी बीच देवीके श्रीविग्रहसे काली, तारा, छिन्नमस्ता, श्रीविद्या, भुवनेश्वरी, भैरवी, बगला, धूम्रा, त्रिपुरसुन्दरी तथा मातङ्गी नामवाली दस महाविद्याएँ उत्पन्न हुईं, जो अस्त्र-शस्त्र लिये हुई थीं। तत्पश्चात् दिव्य मूर्तिवाली असंख्य मातृकाएँ उत्पन्न हुईं। उन सबने अपने मस्तकपर चन्द्रमाका मुकुट धारण कर रखा था तथा वे दिव्य आयुधोंसे सुसज्जित थीं। उन मातृगणोंके साथ दैत्योंका भयंकर युद्ध हुआ। मातृकाओंने दुर्गम दैत्यकी सेनाको तहस-नहस कर दिया। दस दिन यह युद्ध चलता रहा। दैत्य-सेनाका विनाश देखकर ग्यारहवें दिन स्वयं दुर्गम सामने आ डटा। वह लाल रंगकी माला और लाल वस्त्र धारण किये हुए था। एक विशाल रथमें बैठकर वह महाबली दैत्य क्रोधके वशीभूत हो देवीपर बाणोंकी बौछार करने लगा। इधर देवी भी रथपर आरूढ़ हो गयीं। उन्होंने भी बाणोंका कौशल दिखाना प्रारम्भ किया। युद्ध तो भयंकर हुआ, किंतु भगवती कालरात्रिके सामने दुर्गम कबतक टिका रहता? देवीने एक ही साथ पंद्रह बाण छोड़े। चार बाणोंसे रथके चारों घोड़े गिर पड़े। एक बाणने सारथीका प्राण ले लिया। दो बाणोंने दुर्गमके दोनों नेत्रोंको तथा दो बाणोंने उसकी भुजाओंको बींध डाला।

एक बाणने रथकी ध्वजाको काट डाला। शेष पाँच तीक्ष्ण बाण दुर्गमकी छातीमें जाकर धँस गये। रक्त वमन करता हुआ वह दैत्य परमेश्वरीके सामने ही [illegible]

प्राणोंसे हाथ धो बैठा। उसके शरीरसे एक दिव्य तेज निकला जो भगवतीके शरीरमें प्रविष्ट हो गया। देवीके हाथसे उसका उद्धार हो गया। देवी भुवनेश्वरीने दुर्गम दैत्यका वध किया था, इसीलिये वे 'दुर्गा' इस नामसे प्रसिद्ध हो गयीं।

उन्होंने वेदोंको पुनः देवताओं तथा ब्राह्मणोंको समर्पित कर दिया। उस दैत्यके मर जानेपर त्रिलोकीका संकट दूर हो गया। सब ओर प्रसन्नता छा गयी।

~~०~~

(८) देवी रक्तदन्तिकाकी लीला-कथा

देवी भुवनेश्वरीने विविध प्रकारकी अवतार-लीलाओंके द्वारा दुष्ट दैत्योंका वध करके संसारको विनाशसे बचाया। वे देवी आर्तजनोंका कष्ट दूर करनेवाली हैं। शुम्भ आदि महान् दैत्योंसे त्राण पानेके बाद देवता लोग भगवती कात्यायनीकी स्तुति करते हुए कहने लगे—हे देवि! तुम्हीं इस जगत्का एकमात्र आधार हो। सम्पूर्ण विद्याएँ तुम्हारे ही भिन्न-भिन्न रूप हैं। तुमने ही इस विश्वको व्याप्त कर रखा है। नारायणि! तुम सब प्रकारका मङ्गल प्रदान करनेवाली मङ्गलमयी हो, कल्याणदायिनी शिवा हो। सब पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाली, शरणागतवत्सला, तीन नेत्रोंवाली एवं गौरी हो, तुम्हें नमस्कार है—

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते॥

(श्रीदुर्गासप्तशती ११। १०)

हे जगन्मातः! हे अम्बिके! तुम अपने रूपको अनेक भागोंमें विभक्त कर नाना प्रकारके लीला-रूप धारण करती हो, वैसा क्या अन्य कोई कर सकता है?

रूपैरनेकैर्बहुधाऽऽत्ममूर्तिं कृत्वाम्बिके तत्प्रकरोति कान्या॥

(श्रीदुर्गासप्तशती ११। ३०)

इसलिये हे परमेश्वरि! आप सबके लिये वरदान देनेवाली होओ—

'लोकानां वरदा भव॥'

(श्रीदुर्गासप्तशती ११। ३५)

स्तुतिसे प्रसन्न होकर देवीने अनेक लीला-रूपोंमें आविर्भूत होकर दुष्टोंसे त्राण दिलानेका वर देवताओंको प्रदान किया। उस समय देवीने अपने रक्तदन्तिका नामक लीला-अवतारके विषयमें बताया—

अत्यन्त भयंकर-रूपसे पृथ्वीपर अवतार लेकर मैं वैप्रचित्त नामवाले दानवोंका वध करूँगी। उन भयंकर महादैत्योंको भक्षण करते समय मेरे दाँत दाडिम (अनार)-के फूलकी भाँति लाल हो जायँगे, तब स्वर्गमें देवता और मर्त्यलोकमें मनुष्य सदा मेरी स्तुति करते हुए मुझे 'रक्तदन्तिका' कहेंगे—

स्तुवन्तो व्याहरिष्यन्ति सततं रक्तदन्तिकाम्॥

(श्रीदुर्गासप्तशती ११। ४५)

देवी रक्तदन्तिकाका स्वरूप यद्यपि बहुत भयंकर है, किंतु वह केवल दुष्टोंके लिये ही है। भक्तोंके लिये तो उनका सौम्य, शान्त एवं मनोरम लीला-रूप ही प्रकट होता है। वे सब प्रकारके भयोंको दूर करनेवाली हैं। वे लाल रंगके वस्त्र धारण करती हैं। उनके शरीरका रंग भी लाल ही है और अङ्गोंके समस्त आभूषण भी लाल रंगके हैं। उनके अस्त्र-शस्त्र, नेत्र, सिरके बाल, तीखे नख और दाँत—सभी रक्तवर्णके हैं। इसीलिये उन्हें रक्ताम्बरा, रक्तवर्णा, रक्तकेशा, रक्तायुधा, रक्तनेत्रा, रक्तदशना तथा रक्तदन्तिका आदि नामोंसे कहा जाता है।

~~०~~

(९) देवी भीमाका आख्यान

देवी भगवतीने हिमालयपर रहनेवाले मुनियोंकी रक्षा करनेके लिये अपना 'भीम' नामक लीला-रूप धारण किया और राक्षसोंका वध किया। उस समय मुनियोंने भक्तिपूर्वक बड़े ही विनम्र-भावसे देवीकी स्तुति की। 'भीम'-रूप धारण करनेके कारण देवीका वह लीला-विग्रह 'भीमा' इस नामसे प्रसिद्ध हुआ। अपने लीला-रूपके विषयमें देवीने देवताओंसे कहा—

पुनश्चाहं यदा भीमं रूपं कृत्वा हिमाचले॥
रक्षांसि भक्षयिष्यामि मुनीनां त्राणकारणात्।
तदा मां मुनयः सर्वे स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्तयः॥
भीमा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति।

(श्रीदुर्गासप्तशती ११।५०—५२)

भीमादेवीका वर्ण नीला है। उनकी दाढ़ें और दाँत चमकते रहते हैं। उनके नेत्र बड़े-बड़े हैं। वे अपने हाथोंमें चन्द्रहास नामक खड्ग, डमरु, मस्तक और पानपात्र धारण करती हैं, वे ही एकवीरा, कालरात्रि तथा कामदा भी कहलाती हैं।

~~ ० ~~

(१०) भगवती भ्रामरीदेवीकी लीला-कथा

पूर्व समयकी बात है, अरुण नामका एक पराक्रमी दैत्य था। देवताओंसे द्वेष रखनेवाला वह दानव पातालमें रहता था। उसके मनमें देवताओंको जीतनेकी इच्छा उत्पन्न हो गयी, अतः वह हिमालयपर जाकर ब्रह्माको प्रसन्न करनेके लिये कठोर तप करने लगा। कठिन नियमोंका पालन करते हुए उसे हजारों वर्ष व्यतीत हो गये। तपस्याके प्रभावसे उसके शरीरसे प्रचण्ड अग्निकी ज्वालाएँ निकलने लगीं, जिससे देवलोकके देवता भी घबरा उठे। वे समझ ही न सके कि यह अकस्मात् क्या हो गया! सभी देवता ब्रह्माजीके पास गये और सारा वृत्तान्त उन्हें निवेदित किया। देवताओंकी बात सुनकर ब्रह्माजी गायत्री देवीको साथ ले हंसपर बैठे और उस स्थानपर गये जहाँ दानव अरुण तपमें स्थित था। उसकी गायत्री-उपासना बड़ी तीव्र थी। उसकी तपस्यासे प्रसन्न हो ब्रह्माजीने वर माँगनेके लिये कहा। देवी गायत्री तथा ब्रह्माजीका आकाशमण्डलमें दर्शन करके दानव अरुण अत्यन्त प्रसन्न हो गया। वह वहीं भूमिपर गिरकर दण्डवत् प्रणाम करने लगा—

उसने अनेक प्रकारसे स्तुति की और अमर होनेका वर माँगा। परंतु ब्रह्माजीने कहा—'वत्स! संसारमें जन्म लेनेवाला अवश्य मृत्युको प्राप्त होगा, अतः तुम कोई दूसरा वर माँगो।' तब अरुण बोला—'प्रभो! यदि ऐसी बात है तो मुझे यह वर देनेकी कृपा करें कि—'मैं न युद्धमें मरूँ, न किसी अस्त्र-शस्त्रसे मरूँ, न किसी भी स्त्री या पुरुषसे ही मेरी मृत्यु हो और दो पैर तथा चार पैरोंवाला कोई भी प्राणी मुझे न मार सके। साथ ही मुझे ऐसा बल दीजिये कि मैं देवताओंपर विजय प्राप्त कर सकूँ।'

'तथास्तु' कहकर ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये और इधर अरुण दानव विलक्षण वर प्राप्तकर उन्मत्त हो गया। उसने पातालसे सभी दानवोंको बुलाकर विशाल सेना तैयार कर ली और स्वर्गलोकपर चढ़ाई कर दी। वरके प्रभावसे देवता पराजित हो गये। देवलोकपर दानव अरुणका अधिकार हो गया। वह अपनी मायासे अनेक प्रकारके रूप बना लेता था। उसने तपस्याके प्रभावसे इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा, यम, अग्नि आदि देवताओंका पृथक्-पृथक् रूप बना लिया और सबपर शासन करने लगा।

देवता भागकर अशरणशरण आशुतोष भगवान् शंकरकी शरणमें गये और अपना कष्ट उन्हें निवेदित किया। उस समय भगवान् शंकर बड़े विचारमें पड़ गये। वे सोचने लगे कि ब्रह्माजीके द्वारा प्राप्त विचित्र वरदानसे यह दानव अजेय-सा हो गया है, यह न तो युद्धमें मर सकता है न किसी अस्त्र-शस्त्रसे, न तो इसे कोई दो पैरवाला मार सकता है न कोई चार पैरवाला, यह न स्त्रीसे मर सकता है और न किसी पुरुषसे। वे बड़ी चिन्तामें पड़ गये और उसके वधका उपाय सोचने लगे।

उसी समय आकाशवाणी हुई—'देवताओ! तुम लोग भगवती भुवनेश्वरीकी उपासना करो, वे ही तुम लोगोंका कार्य करनेमें समर्थ हैं। यदि दानवराज अरुण नित्यकी गायत्री-उपासना तथा गायत्री-जपसे विरत हो जाय तो शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो जायगी।'

आकाशवाणी सुनकर सभी देवता आश्वस्त हो गये। उन्होंने देवगुरु बृहस्पतिजीको अरुणके पास भेजा ताकि वे उसकी बुद्धिको मोहित कर सकें। बृहस्पतिजीके जानेके बाद देवता भगवती भुवनेश्वरीकी आराधना करने लगे।

इधर भगवती भुवनेश्वरीकी प्रेरणा तथा बृहस्पतिजीके उद्योगसे अरुणने गायत्री-जप करना छोड़ दिया। गायत्री-जपके परित्याग करते ही उसका शरीर निस्तेज हो गया। अपना कार्य सफल हुआ जान बृहस्पति अमरावती लौट आये और इन्द्रादि देवताओंको सारा समाचार बताया। पुनः सभी देवता देवीकी स्तुति करने लगे।

उनकी आराधनासे आदिशक्ति जगन्माता प्रसन्न हो गयीं और विलक्षण लीला-विग्रह धारणकर देवताओंके समक्ष प्रकट हो गयीं। उनके श्रीविग्रहसे करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाश फैल रहा था। असंख्य कामदेवोंसे भी सुन्दर उनका सौन्दर्य था। उन्होंने रमणीय वस्त्राभूषणोंको धारण कर रखा था और वे नाना प्रकारके भ्रमरोंसे युक्त पुष्पोंकी मालासे शोभायमान थीं। वे चारों ओरसे असंख्य भ्रमरोंसे घिरी हुई थीं। भ्रमर 'ह्रीं' इस शब्दको गुनगुना रहे थे। उनकी मुट्ठी भ्रमरोंसे भरी हुई थी।

उन देवीका दर्शनकर देवता पुनः स्तुति करते हुए कहने लगे—सृष्टि, स्थिति और संहार करनेवाली भगवती महाविद्ये! आपको नमस्कार है। भगवती दुर्गे! आप ज्योतिःस्वरूपिणी एवं भक्तिसे प्राप्य हैं, आपको हमारा नमस्कार है। हे नीलसरस्वती देवि! उग्रतारा, त्रिपुरसुन्दरी, पीताम्बरा, भैरवी, मातंगी, शाकम्भरी, शिवा, गायत्री, सरस्वती तथा स्वाहा-स्वधा—ये सब आपके ही नाम हैं। हे दयास्वरूपिणी देवि! आपने शुम्भ-निशुम्भका दलन किया है, रक्तबीज और वृत्रासुर तथा धूम्रलोचन आदि राक्षसोंको मारकर संसारको विनाशसे बचाया है। हे दयामूर्ते! धर्ममूर्ते! आपको हमारा नमस्कार है। हे देवि! भ्रमरोंसे वेष्टित होनेके कारण आपने 'भ्रामरी' नामसे यह लीला-विग्रह धारण किया है, हे भ्रामरीदेवि! आपके इस लीलारूपको हम नित्य प्रणाम करते हैं—

भ्रमरैर्वेष्टिता यस्माद् भ्रामरी या ततः स्मृता॥
तस्यै देव्यै नमो नित्यं नित्यमेव नमो नमः॥

(श्रीमद्देवीभागवत १०।१३।९९)

इस प्रकार बार-बार प्रणाम करते हुए देवताओंने ब्रह्माजीके वरसे अजेय बने हुए अरुण दैत्यसे प्राप्त पीड़ासे छुटकारा दिलानेकी भ्रामरीदेवीसे प्रार्थना की।

करुणामयी माँ भ्रामरीदेवी बोलीं—'देवताओ! आप सभी निर्भय हो जायँ। ब्रह्माजीके वरदानकी रक्षा करनेके लिये मैंने यह भ्रामरी-रूप धारण किया है। अरुण दानवने वर माँगा है कि मैं न तो दो पैरवालोंसे मरूँ और न चार पैरवालोंसे, मेरा यह भ्रमररूप छः पैरोंवाला है, इसीलिये भ्रमर षट्पद भी कहलाता है। उसने वर माँगा है कि मैं न युद्धमें मरूँ और न किसी अस्त्र-शस्त्रसे। इसीलिये मेरा यह भ्रमररूप उससे न तो युद्ध करेगा और न अस्त्र-शस्त्रका प्रयोग करेगा। साथ ही उसने मनुष्य, देवता आदि किसीसे भी न मरनेका वर माँगा है, मेरा यह भ्रमररूप न तो मनुष्य है और न देवता ही। देवगणो! इसीलिये मैंने यह भ्रामरी-रूप धारण किया है। अब आप लोग मेरी लीला देखिये।' ऐसा कहकर भ्रामरीदेवीने अपने हस्तगत भ्रमरोंको तथा अपने चारों ओर स्थित भ्रमरोंको भी प्रेरित किया, असंख्य भ्रमर 'ह्रीं-ह्रीं' करते उस दिशामें चल पड़े जहाँ अरुण दानव स्थित था।

उन भ्रमरोंसे त्रैलोक्य व्

श्रृंग, वृक्ष, वन जहाँ-तहाँ भ्रमर-ही-भ्रमर दृष्टिगोचर होने लगे। भ्रमरोंके कारण सूर्य छिप गया। चारों ओर अन्धकार-ही-अन्धकार छा गया। यह भ्रामरीदेवीकी विचित्र लीला थी। बड़े ही वेगसे उड़नेवाले उन भ्रमरोंने दैत्योंकी छाती छेद डाली। वे दैत्योंके शरीरमें चिपक गये और उन्हें काटने लगे। तीव्र वेदनासे दैत्य छटपटाने लगे। किसी भी अस्त्र-शस्त्रसे भ्रमरोंका निवारण करना सम्भव नहीं था। अरुण दैत्यने बहुत प्रयत्न किया, किंतु वह भी असमर्थ ही रहा। थोड़े ही समयमें जो दैत्य जहाँ था, वहीं भ्रमरोंके काटनेसे मरकर गिर पड़ा। अरुण दानवका भी यही हाल रहा। उसके सभी अस्त्र-शस्त्र विफल रहे। देवीने भ्रामरी-रूप धारणकर ऐसी लीला दिखायी कि ब्रह्माजीके वरदानकी भी रक्षा हो गयी और अरुण दैत्य तथा उसकी समूची दानवी सेनाका संहार भी हो गया।

~~ ० ~~

(११) देवी नन्दा (विन्ध्यवासिनी)-की लीला-कथा

श्रीमद्भागवतमें वर्णित है कि कंसके भयसे त्रस्त वसुदेवजी भगवान् श्रीकृष्णको लेकर नन्दगोपके घरमें गये। वहाँ बालकको यशोदाके समीप सुलाकर देवी यशोदाकी कोखसे आविर्भूत कन्याको लेकर मथुरामें चले आये और पूर्व-प्रतिज्ञानुसार कंसको सौंप दिया। उस समय क्रूर कंस उस कन्याको जब मारनेके लिये उद्यत हुआ, तब वह दिव्य कन्या उसके हाथसे छूटकर आकाशमें विराट्रूपमें स्थित हो गयी। विराट्रूपा उन देवी योगमायाने दिव्य वस्त्रालंकारोंको धारण कर रखा था। उनके आभूषण रत्नोंसे जटित थे। उनकी आठ भुजाएँ थीं, जिनमें वे धनुष, बाण, त्रिशूल, ढाल, तलवार, शंख, चक्र तथा गदा धारण की हुई थीं। आकाशमें वे एक दिव्य तेजोमण्डलसे

व्याप्त थीं, जिससे सभी दिशाएँ प्रकाशमान हो रही थीं। समस्त देवता, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर एवं ऋषि-महर्षि उनकी स्तुति करते हुए उनपर पुष्पवृष्टि कर रहे थे। उनका वह विराट्रूप वसुदेव-देवकीके लिये तो अत्यन्त सौम्य तथा वरद था, किंतु कंसको वे साक्षात् कालरूपा ही दिखलायी पड़ रही थीं।

उन योगमायाने आकाशवाणीमें कहा—'अरे मूर्ख कंस! तू मुझे क्या मारेगा? तुझे मारनेवाला तो दूसरी जगह पैदा हो गया है, अपना भला चाहता है तो भगवान्की शरण ले और अब निर्दोष बालकोंकी हत्या न किया कर।' यह कहकर वे देवी अन्तर्धान हो गयीं और विन्ध्यपर्वतपर जाकर स्थित हो गयीं।

भगवती नन्दा अथवा विन्ध्यवासिनीदेवी भक्तोंका सब प्रकारसे कल्याण करनेवाली हैं, इन्हें 'कृष्णानुजा' भी कहा गया है। वस्तुतः ये भगवान्की साक्षात् योगमाया हैं। सम्पूर्ण योगैश्वर्योंसे सम्पन्न हैं। इनकी करुणाकी कोई सीमा नहीं है। इनका वाहन सिंह समग्र धर्मका ही विग्रह-रूप है।

अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायिका राजराजेश्वरी भगवती विन्ध्यवासिनीका स्थान विन्ध्यपर्वतपर है। यह देवीका जाग्रत् शक्तिपीठ है। यहाँ देवी अपने समग्र रूपमें प्रतिष्ठित हैं और महाकाली, महालक्ष्मी तथा महासरस्वतीके त्रिकोणके रूपमें पूजित होती हैं। इनकी भक्तिपूर्वक स्तुति और पूजा करनेवालोंके अधीन तीनों लोक हो जाते हैं, ऐसी कृपामयी देवी नन्दाको बार-बार नमन है—

नन्दा भगवती नाम या भविष्यति नन्दजा।
स्तुता सा पूजिता भक्त्या वशीकुर्याज्जगत्त्रयम्॥

~~ ० ~~

(१२) भगवती सरस्वतीकी अवतार-कथा

पूर्वकालमें भगवान् नारायणकी तीन पत्नियाँ थीं—लक्ष्मी, गङ्गा और सरस्वती। तीनों ही बड़े प्रेमसे रहतीं और अनन्यभावसे भगवान्‌का पूजन किया करती थीं। एक दिन भगवान्‌की ही इच्छासे ऐसी घटना हो गयी, जिससे लक्ष्मी, गंगा और सरस्वतीको भगवान्‌के चरणोंसे कुछ कालके लिये दूर हट जाना पड़ा। भगवान् जब अन्त:पुरमें पधारे, उस समय तीनों देवियाँ एक ही स्थानपर बैठी हुई परस्पर प्रेमालाप कर रही थीं, भगवान्‌को आया देखकर तीनों उनके स्वागतके लिये खड़ी हो गयीं। उस समय गङ्गाने विशेष प्रेमपूर्ण दृष्टिसे भगवान्‌की ओर देखा। भगवान्‌ने भी उनकी दृष्टिका उत्तर वैसी ही स्नेहपूर्ण दृष्टिमें हँसकर दिया, फिर वे किसी आवश्यकतावश अन्त:पुरसे बाहर निकल गये। तब देवी सरस्वतीने गंगाके उस बर्तावको अनुचित बताकर उनके प्रति आक्षेप किया। गंगाने भी कठोर शब्दोंमें उनका प्रतिवाद किया। उनका विवाद बढ़ता देख लक्ष्मीजीने दोनोंको शान्त करनेकी चेष्टा की। सरस्वतीने लक्ष्मीके इस बर्तावको गंगाजीके प्रति पक्षपात माना और उन्हें शाप दे दिया, 'तुम वृक्ष और नदीके रूपमें परिणत हो जाओगी।' यह देख गंगाने भी सरस्वतीको शाप दिया, 'तुम भी नदी हो जाओगी।' यही शाप सरस्वतीकी ओरसे गंगाको भी मिला। इतनेहीमें भगवान् पुन: अन्त:पुरमें लौट आये। अब देवियाँ प्रकृतिस्थ हो चुकी थीं। उन्हें अपनी भूल मालूम हुई तथा भगवान्‌के चरणोंसे विलग होनेके भयसे दुखी होकर रोने लगीं।

इस प्रकार उनका सब हाल सुनकर भगवान्‌को खेद हुआ। उनकी आकुलता देखकर वे दयासे द्रवीभूत हो उठे। उन्होंने कहा—'तुम सब लोग एक अंशसे ही नदी होओगी, अन्य अंशोंसे तुम्हारा निवास मेरे ही पास रहेगा। सरस्वती एक अंशसे नदी होंगी। एक अंशसे इन्हें ब्रह्माजीकी सेवामें रहना पड़ेगा तथा शेष अंशोंसे ये मेरे ही पास निवास करेंगी। कलियुगके पाँच हजार वर्ष बीतनेके बाद तुम सबके शापका उद्धार हो जायगा। इसके अनुसार सरस्वती भारतभूमिमें अंशत: अवतीर्ण होकर 'भारती' कहलायीं। उसी शरीरसे ब्रह्माजीकी प्रियतमा पत्नी होनेके कारण उनकी 'ब्राह्मी' नामसे प्रसिद्धि हुई। किसी-किसी कल्पमें सरस्वती ब्रह्माजीकी कन्याके रूपमें अवतीर्ण होती हैं और आजीवन कुमारीव्रतका पालन करती हुई उनकी सेवामें रहती हैं।

एक बार ब्रह्माजीने यह विचार किया कि इस पृथ्वीपर सभी देवताओंके तीर्थ हैं, केवल मेरा ही तीर्थ नहीं है। ऐसा सोचकर उन्होंने अपने नामसे एक तीर्थ स्थापित करनेका निश्चय किया और इसी उद्देश्यसे एक रत्नमयी शिला पृथ्वीपर गिरायी। वह शिला चमत्कारपुरके समीप गिरी, अत: ब्रह्माजीने उसी क्षेत्रमें अपना तीर्थ स्थापित किया। एकार्णवमें शयन करनेवाले भगवान् विष्णुकी नाभिसे जो कमल निकला, जिससे ब्रह्माजीका प्राकट्य हुआ, वह स्थान भी वही माना गया है। वही पुष्करतीर्थके नामसे विख्यात हुआ। पुराणोंमें उसकी बड़ी महिमा गायी गयी है। तीर्थ स्थापित होनेके बाद ब्रह्माजीने वहाँ पवित्र जलसे पूर्ण एक सरोवर बनानेका विचार किया। इसके लिये उन्होंने सरस्वतीदेवीका स्मरण किया। सरस्वतीदेवी नदीरूपमें परिणत होकर भी पापीजनोंके स्पर्शके भयसे छिपी-छिपी पातालमें बहती थीं। ब्रह्माजीके स्मरण करनेपर वे भूतल और पूर्वोक्त शिलाको भी भेदकर वहाँ प्रकट हुईं। उन्हें देखकर ब्रह्माजीने कहा—'तुम सदा यहाँ मेरे समीप ही रहो, मैं प्रतिदिन तुम्हारे जलमें तर्पण करूँगा।'

ब्रह्माजीका यह आदेश सुनकर सरस्वतीको बड़ा

भय हुआ। वे हाथ जोड़कर बोलीं—'भगवन्! मैं जन-सम्पर्कके भयसे पातालमें रहती हूँ। कभी प्रकट नहीं होती, किंतु आपकी आज्ञाका उल्लङ्घन करना भी मेरी शक्तिके बाहर है; अतः आप इस विषयपर भलीभाँति सोच-विचारकर जो उचित हो, वैसी व्यवस्था कीजिये।' तब ब्रह्माजीने सरस्वतीके निवासके लिये वहाँ एक विशाल सरोवर खुदवाया। सरस्वतीने उसी सरोवरमें आश्रय लिया। तत्पश्चात् ब्रह्माजीने बड़े-बड़े भयानक सर्पोंको बुलाकर कहा—'तुम लोग सावधानीके साथ सब ओरसे इस सरोवरकी रक्षा करते रहना; जिससे कोई भी सरस्वतीके शरीरका स्पर्श न कर सके।'

एक बार भगवान् विष्णुने सरस्वतीको यह आदेश दिया कि 'तुम बडवानलको अपने प्रवाहमें ले जाकर समुद्रमें छोड़ दो।' सरस्वतीने इसके लिये ब्रह्माजीकी भी अनुमति चाही। लोकहितका विचार करके ब्रह्माजीने भी उन्हें उस कार्यके लिये सम्मति दे दी। तब सरस्वतीने कहा—'भगवन्! यदि मैं भूतलपर नदीरूपमें प्रकट होती हूँ, तो पापीजनोंके सम्पर्कका भय है और यदि पातालमार्गसे इस अग्निको ले जाती हूँ तो स्वयं अपने शरीरके जलनेका डर है।' ब्रह्माजीने कहा—'तुम्हें जैसे सुगमता हो, उसी प्रकार कर लो। यदि पापियोंके सम्पर्कसे बचना चाहो तो पातालके ही मार्गसे जाओ; भूतलपर प्रकट न होना, साथ ही जहाँ तुम्हें बडवानलका ताप असह्य हो जाय, वहाँ पृथ्वीपर नदीरूपमें प्रकट भी हो जाना। इससे तुम्हें शरीरपर उसके तापका प्रभाव नहीं पड़ेगा।'

ब्रह्माजीका यह उत्तर पाकर सरस्वती अपनी सखियों—गायत्री, सावित्री और यमुना आदिसे मिलकर हिमालयपर्वतपर चली गयीं और वहाँसे नदीरूप होकर धरतीपर प्रवाहित हुईं। उनकी जलराशिमें कच्छप और ग्राह आदि जल-जन्तु भी प्रकट हो गये। बडवानलको लेकर वे सागरकी ओर प्रस्थित हुईं। जाते समय वे धरतीको भेदकर पाताल मार्गसे ही यात्रा करने लगीं। जब वे अग्निके तापसे संतप्त हो जातीं तो कहीं-कहीं भूतलपर प्रकट भी हो जाया करती थीं। इस प्रकार जाते-जाते वे प्रभासक्षेत्रमें पहुँचीं। वहाँ चार तपस्वी मुनि कठोर तपस्यामें लगे थे। इन्होंने पृथक्-पृथक् अपने-अपने आश्रमके पास सरस्वतीको बुलाया। इसी समय समुद्रने भी प्रकट होकर सरस्वतीका आवाहन किया। सरस्वतीको समुद्रतक तो जाना ही था, ऋषियोंकी अवहेलना करनेसे भी शापका भय था; अतः उन्होंने अपनी पाँच धाराएँ कर लीं। एकसे तो वे सीधे समुद्रकी ओर चलीं और चारसे पूर्वोक्त चारों ऋषियोंको स्नानकी सुविधा देती गयीं। इस प्रकार वे 'पञ्चस्रोता' सरस्वतीके नामसे प्रसिद्ध हुईं और मार्गके अन्य विघ्नोंको दूर करती हुई अन्तमें समुद्रसे जा मिलीं।

एक समयकी बात है, ब्रह्माजीने सरस्वतीसे कहा—'तुम किसी योग्य पुरुषके मुखमें कवित्वशक्ति होकर निवास करो।' ब्रह्माजीकी आज्ञा मानकर सरस्वती योग्य पात्रकी खोजमें बाहर निकलीं। उन्होंने ऊपरके सत्यादि लोकोंमें भ्रमण करके देवताओंमें पता लगाया तथा नीचेके सातों पातालोंमें घूमकर वहाँके निवासियोंमें खोज की; किंतु कहीं भी उनको सुयोग्य पात्र नहीं मिला। इसी अनुसंधानमें पूरा एक सत्ययुग बीत गया। तदनन्तर त्रेतायुगके आरम्भमें सरस्वतीदेवी भारतवर्षमें भ्रमण करने लगीं। घूमते-घूमते वे तमसानदीके तीरपर पहुँचीं। वहाँ महातपस्वी महर्षि वाल्मीकि अपने शिष्योंके साथ रहते थे। वाल्मीकि उस समय अपने आश्रमके इधर-उधर घूम रहे थे। इतनेमें ही उनकी दृष्टि एक क्रौञ्च पक्षीपर पड़ी, जो तत्काल ही एक व्याधके बाणसे घायल हो पंख फड़फड़ाता हुआ गिरा था। पक्षीका सारा शरीर लहूलुहान हो गया था। वह पीड़ासे तड़प रहा था और उसकी पत्नी क्रौञ्ची उसके पास ही गिरकर बड़े आर्तस्वरमें 'चें-चें' कर रही थी। पक्षीके उस जोड़ेकी यह दयनीय दशा देखकर दयालु महर्षि अपनी सहज करुणासे द्रवीभूत हो उठे। उनके मुखसे तुरन्त ही एक श्लोक निकल पड़ा; जो इस प्रकार है—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

यह श्लोक सरस्वतीकी ही कृपाका प्रसाद था। उन्होंने महर्षिको देखते ही उनकी असाधारण [illegible] और प्रतिभाका परिचय पा लिया था; [illegible]

भय हुआ । वे हाथ जोड़कर बोलीं—'भगवन्! मैं जन-सम्पर्कके भयसे पातालमें रहती हूँ। कभी प्रकट नहीं होती, किंतु आपकी आज्ञाका उल्लङ्घन करना भी मेरी शक्तिके बाहर है; अतः आप इस विषयपर भलीभाँति सोच-विचारकर जो उचित हो, वैसी व्यवस्था कीजिये।' तब ब्रह्माजीने सरस्वतीके निवासके लिये वहाँ एक विशाल सरोवर खुदवाया। सरस्वतीने उसी सरोवरमें आश्रय लिया। तत्पश्चात् ब्रह्माजीने बड़े-बड़े भयानक सर्पोंको बुलाकर कहा—'तुम लोग सावधानीके साथ सब ओरसे इस सरोवरकी रक्षा करते रहना; जिससे कोई भी सरस्वतीके शरीरका स्पर्श न कर सके।'

एक बार भगवान् विष्णुने सरस्वतीको यह आदेश दिया कि 'तुम बडवानलको अपने प्रवाहमें ले जाकर समुद्रमें छोड़ दो।' सरस्वतीने इसके लिये ब्रह्माजीकी भी अनुमति चाही। लोकहितका विचार करके ब्रह्माजीने भी उन्हें उस कार्यके लिये सम्मति दे दी। तब सरस्वतीने कहा—'भगवन्! यदि मैं भूतलपर नदीरूपमें प्रकट होती हूँ, तो पापीजनोंके सम्पर्कका भय है और यदि पातालमार्गसे इस अग्निको ले जाती हूँ तो स्वयं अपने शरीरके जलनेका डर है।' ब्रह्माजीने कहा—'तुम्हें जैसे सुगमता हो, उसी प्रकार कर लो। यदि पापियोंके सम्पर्कसे बचना चाहो तो पातालके ही मार्गसे जाओ; भूतलपर प्रकट न होना, साथ ही जहाँ तुम्हें बडवानलका ताप असह्य हो जाय, वहाँ पृथ्वीपर नदीरूपमें प्रकट भी हो जाना। इससे तुम्हें शरीरपर उसके तापका प्रभाव नहीं पड़ेगा।'

ब्रह्माजीका यह उत्तर पाकर सरस्वती अपनी सखियों—गायत्री, सावित्री और यमुना आदिसे मिलकर हिमालयपर्वतपर चली गयीं और वहाँसे नदीरूप होकर धरतीपर प्रवाहित हुईं। उनकी जलराशिमें कच्छप और ग्राह आदि जल-जन्तु भी प्रकट हो गये। बडवानलको लेकर वे सागरकी ओर प्रस्थित हुईं। जाते समय वे धरतीको भेदकर पाताल मार्गसे ही यात्रा करने लगीं। जब वे अग्निके तापसे संतप्त हो जातीं तो कहीं-कहीं भूतलपर प्रकट भी हो जाया करती थीं। इस प्रकार जाते-जाते वे प्रभासक्षेत्रमें पहुँचीं। वहाँ चार तपस्वी मुनि कठोर तपस्यामें लगे थे। इन्होंने पृथक्-पृथक् अपने-अपने आश्रमके पास सरस्वतीको बुलाया। इसी समय समुद्रने भी प्रकट होकर सरस्वतीका आवाहन किया। सरस्वतीको समुद्रतक तो जाना ही था, ऋषियोंकी अवहेलना करनेसे भी शापका भय था; अतः उन्होंने अपनी पाँच धाराएँ कर लीं। एकसे तो वे सीधे समुद्रकी ओर चलीं और चारसे पूर्वोक्त चारों ऋषियोंको स्नानकी सुविधा देती गयीं। इस प्रकार वे 'पञ्चस्रोता' सरस्वतीके नामसे प्रसिद्ध हुईं और मार्गके अन्य विघ्नोंको दूर करती हुई अन्तमें समुद्रसे जा मिलीं।

एक समयकी बात है, ब्रह्माजीने सरस्वतीसे कहा—'तुम किसी योग्य पुरुषके मुखमें कवित्वशक्ति होकर निवास करो।' ब्रह्माजीकी आज्ञा मानकर सरस्वती योग्य पात्रकी खोजमें बाहर निकलीं। उन्होंने ऊपरके सत्यादि लोकोंमें भ्रमण करके देवताओंमें पता लगाया तथा नीचेके सातों पातालोंमें घूमकर वहाँके निवासियोंमें खोज की; किंतु कहीं भी उनको सुयोग्य पात्र नहीं मिला। इसी अनुसंधानमें पूरा एक सत्ययुग बीत गया। तदनन्तर त्रेतायुगके आरम्भमें सरस्वतीदेवी भारतवर्षमें भ्रमण करने लगीं। घूमते-घूमते वे तमसानदीके तीरपर पहुँचीं। वहाँ महातपस्वी महर्षि वाल्मीकि अपने शिष्योंके साथ रहते थे। वाल्मीकि उस समय अपने आश्रमके इधर-उधर घूम रहे थे। इतनेमें ही उनकी दृष्टि एक क्रौञ्च पक्षीपर पड़ी, जो तत्काल ही एक व्याधके बाणसे घायल हो पंख फड़फड़ाता हुआ गिरा था। पक्षीका सारा शरीर लहूलुहान हो गया था। वह पीड़ासे तड़प रहा था और उसकी पत्नी क्रौञ्ची उसके पास ही गिरकर बड़े आर्तस्वरमें 'चें-चें' कर रही थी। पक्षीके उस जोड़ेकी यह दयनीय दशा देखकर दयालु महर्षि अपनी सहज करुणासे द्रवीभूत हो उठे। उनके मुखसे तुरन्त ही एक श्लोक निकल पड़ा; जो इस प्रकार है—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

यह श्लोक सरस्वतीकी ही कृपाका प्रसाद था। उन्होंने महर्षिको देखते ही उनकी असाधारण योग्यता और प्रतिभाका परिचय पा लिया था; उन्हींके मुखमें

उन्होंने सर्वप्रथम प्रवेश किया। कवित्वशक्तिमयी सरस्वतीकी प्रेरणासे ही उनके मुखकी वह वाणी, जो उन्होंने क्रौञ्चीकी सान्त्वनाके लिये कही थी, छन्दोमयी बन गयी। उनके हृदयका शोक ही श्लोक बनकर निकला था—'**शोकः श्लोकत्वमागतः**।' सरस्वतीके कृपापात्र होकर महर्षि वाल्मीकि ही 'आदिकवि' के नामसे संसारमें विख्यात हुए।

इस तरह सरस्वतीदेवी अनेक प्रकारकी लीलाओंसे जगत्‌का कल्याण करती हैं। बुद्धि, ज्ञान और विद्यारूपसे सारा जगत् इनकी कृपा-लीलाका अनुभव करता है। ये मूलतः भगवान् नारायणकी पत्नी हैं तथा अंशतः नदी और ब्राह्मीरूपमें रहती हैं। ये ही गौरीके शरीरसे प्रकट होकर 'कौशिकी' नामसे प्रसिद्ध हुईं और शुम्भ-निशुम्भ आदिका वध करके इन्होंने संसारमें सुख-शान्तिकी स्थापना की। तन्त्र और पुराण आदिमें इनकी महिमाका विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है।

(१३) जगज्जननी लक्ष्मीका अवतरण

पद्मालयां पद्मकरां पद्मपत्रनिभेक्षणाम्।
वन्दे पद्ममुखीं देवीं पद्मनाभप्रियामहम्॥

देवीकी जितनी शक्तियाँ मानी गयी हैं, उन सबका मूल महालक्ष्मी ही हैं। ये ही सर्वोत्कृष्ट पराशक्ति हैं। ये ही समस्त विकृतियोंकी प्रधान प्रकृति हैं। सारा विश्वप्रपञ्च महालक्ष्मीसे ही प्रकट हुआ है। चिन्मयी लक्ष्मी समस्त पतिव्रताओंकी शिरोमणि हैं। एक बार उन्होंने भृगुकी पुत्रीरूपमें अवतार लिया था; इसलिये इन्हें 'भार्गवी' कहते हैं। समुद्र-मन्थनके समय ये ही क्षीरसागरसे प्रकट हुई थीं, इसलिये इनका नाम 'क्षीरोदतनया' अथवा 'क्षीरसागर-कन्या' हुआ। भगवान् जब-जब अवतार लेते हैं, तब-तब उनके साथ लक्ष्मीदेवी भी अवतीर्ण हो उनकी सेवा करती और उनकी प्रत्येक लीलामें योग देती हैं। इनके आविर्भावकी कथा इस प्रकार है—

महर्षि भृगुकी पत्नी ख्यातिके गर्भसे एक त्रिलोकसुन्दरी भुवनमोहिनी कन्या उत्पन्न हुई। वह समस्त शुभ लक्षणोंसे सुशोभित थी; इसलिये उसका नाम लक्ष्मी रखा गया। अथवा साक्षात् लक्ष्मी ही उस कन्याके रूपमें अवतीर्ण हुई थीं, इसलिये वह लक्ष्मी कहलायी, धीरे-धीरे बड़ी होनेपर लक्ष्मीने भगवान् नारायणके गुण और प्रभावका वर्णन सुना। इससे उनका हृदय भगवान्‌में अनुरक्त हो गया। वे उन्हें पतिरूपमें प्राप्त करनेकी इच्छासे समुद्रके तटपर जाकर घोर तपस्या करने लगीं। तपस्या करते-करते एक हजार वर्ष बीत गये। तब इन्द्र भगवान् विष्णुका रूप धारण करके लक्ष्मीदेवीके समीप आये और वर माँगनेको कहा। लक्ष्मीने कहा—'आप अपने विश्वरूपका मुझे दर्शन कराइये।' इन्द्र इसके लिये असमर्थ थे, अतः लज्जित होकर वहाँसे लौट गये। इसके बाद और कई देवता पधारे, परंतु विश्वरूप दिखानेकी शक्ति न होनेके कारण उनकी भी कलई खुल गयी।

यह समाचार पाकर साक्षात् भगवान् नारायण वहाँ देवीको दर्शन देने और उन्हें कृतार्थ करनेके लिये आये। भगवान्‌ने देवीसे कहा—'वर माँगो।' यह आदेश सुनकर देवीने भगवान्‌का गौरव बढ़ानेके लिये ही कहा—'देवदेव! यदि आप साक्षात् भगवान् नारायण हैं तो अपने विश्वरूपका दर्शन देकर मेरा संदेह दूर कर दीजिये।' भगवान्‌ने विश्वरूपका दर्शन कराया और लक्ष्मीजीकी इच्छाके अनुसार उन्हें पत्नीरूपमें ग्रहण किया। इसके बाद वे बोले—'देवि! ब्रह्मचर्य ही सब धर्मोंका मूल तथा सर्वोत्तम तपस्या है। तुमने ब्रह्मचर्य-पालनपूर्वक इस स्थानपर कठोर तपस्या की है, इसलिये मैं यहाँ 'मूलश्रीपति' के नामसे विख्यात होकर रहूँगा तथा तुम भी ब्रह्मचर्यरूपिणी 'मूलश्री' के नामसे यहाँ प्रसिद्धि प्राप्त करोगी।'

लक्ष्मीजीके प्रकट होनेका दूसरा इतिहास इस प्रकार है—एक बार भगवान् शंकरके अंशभूत महर्षि दुर्वासा भूतलपर विचर रहे थे। घूमते-घूमते वे एक मनोहर वनमें गये। वहाँ एक विद्याधर-सुन्दरी हाथमें पारिजात-पुष्पोंकी

माला लिये खड़ी थी, वह माला दिव्य पुष्पोंकी बनी थी। उसकी दिव्य गन्धसे समस्त वन-प्रान्त सुवासित हो रहा था। दुर्वासाने विद्याधरीसे वह मनोहर माला माँगी। विद्याधरीने उन्हें आदरपूर्वक प्रणाम करके वह माला दे दी। माला लेकर उन्मत्त वेषधारी मुनिने अपने मस्तकपर डाल ली और पुनः पृथ्वीपर भ्रमण करने लगे।

इसी समय मुनिको देवराज इन्द्र दिखायी दिये, जो मतवाले ऐरावतपर चढ़कर आ रहे थे। उनके साथ बहुत-से देवता भी थे। मुनिने अपने मस्तकपर पड़ी माला उतारकर हाथमें ले ली। उसके ऊपर भौंरे गुंजार कर रहे थे। जब देवराज समीप आये तो दुर्वासाने पागलोंकी तरह वह माला उनके ऊपर फेंक दी। देवराजने उसे लेकर ऐरावतके मस्तकपर डाल दिया। ऐरावतने उसकी तीव्र गन्धसे आकर्षित हो सूँड़से माला उतार ली और सूँघकर पृथ्वीपर फेंक दी। यह देख दुर्वासा क्रोधसे जल उठे और देवराज इन्द्रसे इस प्रकार बोले—'अरे इन्द्र! ऐश्वर्यके घमण्डसे तुम्हारा हृदय दूषित हो गया है। तुमपर जडता छा रही है, तभी तो मेरी दी हुई मालाका तुमने आदर नहीं किया है। वह माला नहीं, लक्ष्मीका धाम थी। माला लेकर तुमने प्रणामतक नहीं किया। इसलिये तुम्हारे अधिकारमें स्थित तीनों लोकोंकी लक्ष्मी शीघ्र ही अदृश्य हो जायगी।' यह शाप सुनकर देवराज इन्द्र घबरा गये और तुरंत ही ऐरावतसे उतरकर मुनिके चरणोंमें पड़ गये। उन्होंने दुर्वासाको प्रसन्न करनेकी लाख चेष्टाएँ कीं, किंतु वे महर्षि टस-से-मस न हुए। उलटे इन्द्रको फटकारकर वहाँसे चल दिये। इन्द्र भी ऐरावतपर सवार हो अमरावतीको लौट गये। तब तीनों लोकोंकी लक्ष्मी नष्ट हो गयी।

इस प्रकार त्रिलोकीके श्रीहीन एवं सत्त्वरहित हो जानेपर दानवोंने देवताओंपर चढ़ाई कर दी। देवताओंमें अब उत्साह कहाँ रह गया था? सबने हार मान ली। फिर सभी देवता ब्रह्माजीकी शरणमें गये। ब्रह्माजीने उन्हें भगवान् विष्णुकी शरणमें जानेकी सलाह दी तथा सबके साथ वे स्वयं भी क्षीरसागरके उत्तर तटपर गये। वहाँ पहुँचकर ब्रह्मा आदि देवताओंने बड़ी भक्तिसे भगवान् विष्णुका स्तवन किया। भगवान् प्रसन्न होकर देवताओंके सम्मुख प्रकट हुए। उनका अनुपम तेजस्वी मङ्गलमय विग्रह देखकर देवताओंने पुनः स्तवन किया, तत्पश्चात् भगवान्ने उन्हें क्षीरसागरको मथनेकी सलाह दी और कहा—'इससे अमृत प्रकट होगा। उसके पान करनेसे तुम सब लोग अजर-अमर हो जाओगे; किंतु यह कार्य है बहुत दुष्कर, अतः तुम्हें दैत्योंको भी अपना साथी बना लेना चाहिये। मैं तो तुम्हारी सहायता करूँगा ही।'

भगवान्की आज्ञा पाकर देवगण दैत्योंसे सन्धि करके अमृत-प्राप्तिके लिये यत्न करने लगे। वे भाँति-भाँतिकी ओषधियाँ लाये और उन्हें क्षीरसागरमें छोड़ दिया; फिर मन्दराचलको मथानी और वासुकिको नेती (रस्सी) बनाकर बड़े वेगसे समुद्रमन्थनका कार्य आरम्भ किया। भगवान्ने वासुकिकी पूँछकी ओर देवताओंको और मुखकी ओर दैत्योंको लगाया। मन्थन करते समय वासुकिकी निःश्वासाग्निसे झुलसकर सभी दैत्य निस्तेज हो गये और उसी निःश्वासवायुसे विक्षिप्त होकर बादल वासुकिकी पूँछकी ओर बरसते थे; जिससे देवताओंकी शक्ति बढ़ती गयी। भक्तवत्सल भगवान् विष्णु स्वयं कच्छपरूप धारण कर क्षीरसागरमें घूमते हुए मन्दराचलके आधार बने हुए थे। वे ही एक रूपसे देवताओंमें और एक रूपसे दैत्योंमें मिलकर नागराजको खींचनेमें भी सहायता देते थे तथा एक अन्य विशाल रूपसे, जो देवताओं और दैत्योंको दिखायी नहीं देता था, उन्होंने मन्दराचलको ऊपरसे दबा रखा था। इसके साथ ही वे नागराज वासुकिमें भी बलका संचार करते थे और देवताओंकी भी शक्ति बढ़ा रहे थे।

इस प्रकार मन्थन करनेपर क्षीरसागरसे क्रमशः कामधेनु, वारुणीदेवी, कल्पवृक्ष और अप्सराएँ प्रकट हुईं। इसके बाद चन्द्रमा निकले, जिन्हें महादेवजीने मस्तकपर धारण किया। फिर विष प्रकट हुआ, जिसे नागोंने चाट लिया। तदनन्तर अमृतका कलश हाथमें लिये धन्वन्तरिका प्रादुर्भाव हुआ। इससे देवताओं और दानवोंको भी बड़ी प्रसन्नता हुई। सबके अन्तमें क्षीरसमुद्रसे भगवती लक्ष्मीदेवी प्रकट हुईं। वे खिले हुए

कमलके आसनपर विराजमान थीं। उनके श्रीअङ्गोंकी दिव्य कान्ति सब ओर प्रकाशित हो रही थी। उनके हाथमें कमल शोभा पा रहा था। उनका दर्शन करके देवता और महर्षिगण प्रसन्न हो गये। उन्होंने वैदिक श्रीसूक्तका पाठ करके लक्ष्मीदेवीका स्तवन किया। फिर देवताओंने उनको स्नानादि कराकर दिव्य वस्त्राभूषण अर्पण किये। वे उन दिव्य वस्त्राभूषणोंसे विभूषित होकर सबके देखते-देखते अपने सनातन स्वामी श्रीविष्णुभगवान्‌के वक्ष:स्थलमें चली गयीं। भगवान्‌को लक्ष्मीजीके साथ देखकर देवता प्रसन्न हो गये। दैत्योंको बड़ी निराशा हुई। उन्होंने धन्वन्तरिके हाथसे अमृतका कलश छीन लिया, किंतु भगवान्‌ने मोहिनी स्त्रीके रूपसे उन्हें अपनी मायाद्वारा मोहित करके सारा अमृत देवताओंको ही पिला दिया। तदनन्तर इन्द्रने बड़ी विनय और भक्तिके साथ श्रीलक्ष्मीदेवीका स्तवन किया। उससे प्रसन्न होकर लक्ष्मीने देवताओंको मनोवाञ्छित वरदान दिया। इस प्रकार ये लक्ष्मीजी भगवान् विष्णुकी अनन्य प्रिया हैं। भगवान्‌के साथ प्रत्येक अवतारमें ये साथ रहती हैं। जब श्रीहरि विष्णु नामक आदित्यके रूपमें स्थित हुए तब ये कमलोद्भवा 'पद्मा' के नामसे विख्यात हुईं। ये ही श्रीरामके साथ 'सीता' और श्रीकृष्णके साथ 'रुक्मिणी' होकर अवतीर्ण हुई थीं। भगवान्‌के साथ इनकी आराधना करनेसे अभ्युदय और नि:श्रेयस दोनोंकी सिद्धि होती है।

(१४) दस महाविद्याओंके आविर्भावकी कथा

आद्यशक्ति भगवती जगदम्बा 'विद्या' और 'अविद्या'— दोनों ही रूपोंमें विद्यमान हैं। अविद्यारूपमें वे प्राणियोंके मोहकी कारण हैं तो विद्यारूपमें मुक्तिकी। भगवती जगदम्बा विद्या या महाविद्याके रूपमें प्रतिष्ठित हैं और भगवान् सदाशिव विद्यापतिके रूपमें।

दस महाविद्याओंका सम्बन्ध मूलरूपसे देवी सती, शिवा और पार्वतीसे है। ये ही अन्यत्र नवदुर्गा, चामुण्डा तथा विष्णुप्रिया आदि नामोंसे पूजित और अर्चित होती हैं। दस महाविद्याओंका अवतरण क्यों हुआ और कैसे हुआ, इस सम्बन्धमें महाभागवत (देवीपुराण)-में एक रोचक कथा प्राप्त होती है, जो संक्षेपमें इस प्रकार है—

पूर्वकालकी बात है प्रजापति दक्षने एक विशाल यज्ञ-महोत्सवका आयोजन किया, जिसमें सभी देवता, ऋषिगण निमन्त्रित थे, किंतु भगवान् शिवसे द्वेष हो जानेके कारण दक्षने न तो उन्हें आमन्त्रित किया और न अपनी पुत्री सतीको ही बुलाया। देवर्षि नारदजीने देवी सतीको बताया कि तुम्हारी सब बहनें यज्ञमें आमन्त्रित हैं, अत: तुम्हें भी वहाँ जाना चाहिये। पहले तो सतीने मनमें कुछ देर विचार किया, किंतु फिर वहाँ जानेका निश्चय किया। जब सतीने भगवान् शिवसे उस यज्ञमें जानेकी अनुमति माँगी तो भगवान् शिवने वहाँ जाना अनुचित बताकर उन्हें जानेसे रोका, पर सती अपने निश्चय पर अटल रहीं। वे बोलीं—मैं प्रजापतिके यज्ञमें अवश्य जाऊँगी और वहाँ या तो अपने प्राणेश्वर देवाधिदेवके लिये यज्ञभाग प्राप्त करूँगी या यज्ञको ही नष्ट कर दूँगी—

'प्राप्स्यामि यज्ञभागं वा नाशयिष्यामि वा मखम्॥'

(महाभागवतपुराण ८।४२)

—ऐसा कहते हुए सतीके नेत्र लाल हो गये। उनके अधर फड़कने लगे, वर्ण कृष्ण हो गया। क्रोधाग्निसे उद्दीप्त शरीर महाभयानक एवं उग्र दीखने लगा। उस समय महामायाका विग्रह प्रचण्ड तेजसे तमतमा रहा था। शरीर वृद्धावस्थाको सम्प्राप्त-सा हो गया। उनकी केशराशि बिखरी हुई थी, चार भुजाओंसे सुशोभित वे महादेवी पराक्रमकी वर्षा करती-सी प्रतीत हो रही थीं। कालाग्निके समान महाभयानक रूपमें देवी मुण्डमाला पहने हुई थीं और उनकी भयानक जिह्वा बाहर निकली हुई थी, सिरपर अर्धचन्द्र सुशोभित था और उनका सम्पूर्ण विग्रह विकराल लग रहा था। वे बार-बार भीषण हुंकार कर रही थीं। इस प्रकार अपने तेजसे देदीप्यमान एवं भयानक रूप धारणकर महादेवी सती घोर गर्जनाके साथ अट्टहास करती हुई भगवान् शिवके समक्ष खड़ी हो गयीं। देवीका यह भीषण स्वरूप साक्षात् महादेवके लिये भी असह्य हो गया। भगवान् शिवका धैर्य जाता रहा। वे भयभीत होकर सभी दिशाओंमें इधर-उधर भागने लगे। देवीने 'मत डरो', 'मत डरो' कई बार कहा, किंतु शिव एक क्षण भी वहाँ नहीं रुके। इस प्रकार अपने स्वामीको भयाक्रान्त देखकर दयावती भगवती सतीने उन्हें रोकनेकी इच्छासे क्षण भरमें अपने ही शरीरसे अपनी अङ्गभूता दस देवियोंको प्रकट कर दिया, जो दसों दिशाओंमें उनके समक्ष स्थित हो गयीं। भगवान् शिव जिस-जिस दिशामें जाते थे, भगवतीका एक-एक विग्रह उनका मार्ग अवरुद्ध कर देता था।

देवीकी ये स्वरूपा शक्तियाँ ही दस महाविद्याएँ हैं, इनके नाम हैं—काली, तारा, कमला, भुवनेश्वरी, छिन्नमस्ता, षोडशी, त्रिपुरसुन्दरी, बगलामुखी, धूमावती तथा मातङ्गी।

जब भगवान् शिवने इन महाविद्याओंका परिचय पूछा तो देवी बोलीं—

येयं ते पुरतः कृष्णा सा काली भीमलोचना।
श्यामवर्णा च या देवी स्वयमूर्ध्वं व्यवस्थिता॥
सेयं तारा महाविद्या महाकालस्वरूपिणी।
सव्येतरेयं या देवी विशीर्षातिभयप्रदा॥
इयं देवी छिन्नमस्ता महाविद्या महामते।
वामे तवेयं या देवी सा शम्भो भुवनेश्वरी॥
पृष्ठतस्तव या देवी बगला शत्रुसूदिनी।
वह्निकोणे तवेयं या विधवारूपधारिणी॥
सेयं धूमावती देवी महाविद्या महेश्वरी।
नैर्ऋत्यां तव या देवी सेयं त्रिपुरसुन्दरी॥
वायौ यत्ते महाविद्या सेयं मातङ्गकन्यका।
ऐशान्यां षोडशी देवी महाविद्या महेश्वरी॥
अहं तु भैरवी भीमा शम्भो मा त्वं भयं कुरु।
एताः सर्वाः प्रकृष्टास्तु मूर्तयो बहुमूर्तिषु॥
भक्त्या सम्भजतां नित्यं चतुर्वर्गफलप्रदाः।
सर्वाभीष्टप्रदायिन्यः साधकानां महेश्वर॥

(महाभागवतपुराण ८। ६५—७२)

कृष्णवर्णा तथा भयानक नेत्रोंवाली ये जो देवी आपके सामने स्थित हैं, वे भगवती '**काली**' हैं और जो ये श्यामवर्णवाली देवी आपके ऊर्ध्वभागमें विराजमान हैं, वे साक्षात् महाकालस्वरूपिणी महाविद्या '**तारा**' हैं। महामते! आपके दाहिनी ओर ये जो भयदायिनी तथा मस्तकविहीन देवी विराजमान हैं, वे महाविद्यास्वरूपिणी भगवती '**छिन्नमस्ता**' हैं। शम्भो! आपके बायीं ओर ये जो देवी हैं, वे भगवती '**भुवनेश्वरी**' हैं। जो देवी आपके पीछे स्थित हैं, वे शत्रुनाशिनी भगवती '**बगला**' हैं। विधवाका रूप धारण की हुई ये जो देवी आपके अग्निकोणमें विराजमान हैं, वे महाविद्यास्वरूपिणी महेश्वरी '**धूमावती**' हैं और आपके नैर्ऋत्यकोणमें ये जो देवी हैं, वे भगवती '**त्रिपुरसुन्दरी**' हैं। आपके वायव्यकोणमें जो देवी हैं, वे मातङ्गकन्या महाविद्या '**मातङ्गी**' हैं और आपके ईशानकोणमें जो देवी स्थित हैं, वे महाविद्यास्वरूपिणी महेश्वरी '**षोडशी**' हैं। मैं तो भयंकर रूपवाली '**भैरवी**' हूँ। शम्भो! आप भय मत कीजिये। ये सभी रूप भगवतीके अन्य समस्त रूपोंसे उत्कृष्ट हों। महेश्वर! ये देवियाँ नित्य भक्तिपूर्वक उपासना करनेवाले साधक पुरुषोंको चारों प्रकारके पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) तथा समस्त वाञ्छित फल प्रदान करती हैं।

~~~ 0 ~~~
~~~

भगवान् सूर्य और उनके लीलावतार

[भुवनभास्कर भगवान् सूर्यनारायण प्रत्यक्ष देवता हैं—प्रकाशस्वरूप हैं। छान्दोग्योपनिषद् (३ । ३ । १)-में उन्हें ब्रह्म कहा गया है—'आदित्यो ब्रह्मेति।' ये ब्रह्म लीलाभिनयके लिये देवमाता अदितिके पुत्र बनते हैं और अदितिके पुत्र होनेसे आदित्य भी कहलाते हैं। भगवान् सूर्य नित्य प्रातः उदित होते हैं और नित्य सायं अस्ताचलमें तिरोहित हो जाते हैं—अदृश्य हो जाते हैं—'देवो याति भुवनानि पश्यन्' (ऋग्वेद १ । ३५ । २)। अन्य देवता तो यथासमय आवश्यकतानुसार प्रकट होते हैं और कार्य पूर्ण होनेपर लीला-संवरण कर लेते हैं, किंतु भगवान् सूर्यनारायण नित्य ही अवतरित होते हैं और जीवोंके शुभाशुभ कर्मोंके साक्षी बनते हैं। सन्ध्योपासना और भगवान् सूर्यका अभेद सम्बन्ध है। सूर्यरश्मियोंमें प्राणशक्ति है, जीवनीशक्ति है, उसीके आश्रयसे इस चराचर जगत्की सत्ता बनी हुई है, कदाचित् भगवान् सूर्य नित्य अवतरित होकर प्रकाश न फैलाते तो सर्वत्र अन्धकार-ही-अन्धकार छा जाता, इससे बड़ी उनकी कृपा और क्या हो सकती है ? भगवान् सूर्य आरोग्यके अधिष्ठाता देव हैं। भगवान् सूर्यके लीलापरिकर-परिच्छदोंका विस्तार बहुत है। राज्ञी (संज्ञा) और निक्षुभा (छाया)—ये उनकी शक्तिरूपा दो पत्नियाँ हैं। गरुडके छोटे भाई अरुण उनके रथके सारथि हैं। सूर्यलोकमें भगवान् सूर्यके समक्ष इन्द्रादि देवगण तथा ऋषिगण उपस्थित रहते हैं। उनका रथ सप्त छन्दोमय अश्वोंसे युक्त है। भगवान् सूर्यके साथ पिङ्गल नामक लेखक, दण्डनायक नामके द्वाररक्षक तथा कल्माष नामके दो पक्षी उनके द्वारपर खड़े रहते हैं। दिण्डि उनके मुख्य सेवक हैं, जो उनके सामने खड़े रहते हैं। भगवान् सूर्यकी दस संतानें हैं। संज्ञा नामक पत्नीसे वैवस्वत मनु, यम, यमी (यमुना), अश्विनीकुमार और रेवन्त तथा छाया नामक पत्नीसे शनि, तपती, विष्टि (भद्रा) और सावर्णि मनु हुए। भगवान् सूर्यकी अवतरण-लीलाएँ बड़ी ही मनोरम तथा कल्याणप्रद हैं। अदितिके पुत्रके रूपमें द्वादश आदित्योंके अवतरणकी कथा प्रसिद्ध ही है। वेदमें जो ३३ मुख्य देवता बताये गये हैं, उनमें द्वादशादित्य परिगणित हैं। पुराणोंमें सूर्यरथके वर्णन-प्रकरणमें बारह महीनोंमें बारह आदित्य ही बारह नामोंसे अभिहित किये गये हैं—धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, पर्जन्य, अंश, भग, त्वष्टा तथा विष्णु—ये इनके नाम हैं। कहीं-कहीं इन नामोंमें अन्तर भी मिलता है। काशीमें भी द्वादश आदित्य प्रतिष्ठित हैं, जिनके नाम हैं—लोलार्क, उत्तरार्क, साम्बादित्य, द्रौपदादित्य, मयूखादित्य, खखोल्कादित्य, अरुणादित्य, वृद्धादित्य, केशवादित्य, विमलादित्य, गङ्गादित्य तथा यमादित्य। ये सभी अवतार भक्तोंके कल्याणके लिये भगवान्ने धारण किये थे। कभी द्रौपदीपर कृपा करनेके लिये उन्होंने अवतरित होकर उन्हें अक्षयपात्र प्रदान किया तो कभी वे हनुमान्जीके गुरु बन गये। ग्रहोंके रूपमें प्रतिष्ठित होकर वे आत्मतत्त्वका प्रतिनिधित्व करते हैं। सूर्यार्घ्यदान, सूर्योपस्थान तथा सूर्य-नमस्कारके रूपमें वे पूजकके समक्ष रहते हैं। इस प्रकार भगवान् सूर्यनारायण नित्य नूतन लीलाएँ करते रहते हैं। यहाँ आगे संक्षेपमें उनके कुछ लीलास्वरूपोंका दिग्दर्शन प्रस्तुत है—सम्पादक]

द्वादशादित्य-अवतरणमीमांसा

(पं० श्रीगौतमकुमारजी राजहंस)

'अवतार' शब्द 'अव' उपसर्गपूर्वक 'तृ' धातुमें 'घञ्' प्रत्ययके संयोगसे निष्पन्न हुआ है, जिसका शाब्दिक अर्थ है—अपनी स्थितिसे नीचे उतरना। इसके विभिन्न अर्थ भी हैं, जैसे—उतार, उदय, प्रारम्भ, प्रकट होना इत्यादि। जैसे कोई अध्यापक किसी छात्रको पढ़ाता है तो वह अध्यापक उस छात्रकी स्थितिमें ही आकर पढ़ाता है, तो यह छात्रके प्रति शिक्षकका अवतार हुआ। इसी प्रकार भगवान् मनुष्योंको शिक्षा-दीक्षा, सत्-असत् एवं मोक्षादिके ज्ञानके लिये, उनकी रक्षाके लिये अवतार लेते हैं। उनका अवतार मानवावतारसे भिन्न होता है। वे केवल लीला करते हैं अर्थात् मनुष्योंकी तरह माँके गर्भमें आते हैं। गीतामें भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि मैं अजन्मा और अविनाशी स्वरूपवाला होते हुए भी एवं समस्त प्राणियोंका ईश्वर होते हुए भी अपनी प्रकृतिको अधीन करके अपनी योगमायासे प्रकट होता हूँ।

आदिगुरु शंकराचार्य भी कहते हैं कि जब संसारको

क्षुब्ध कर देनेवाली धर्मकी ग्लानि होती है, उस समय जो लोकमर्यादाकी रक्षा करनेवाले लोकेश्वर, संतप्रतिपालक, वेदवर्णित, शुद्ध एवं अजन्मा भगवान् उनकी रक्षाके लिये शरीर धारण करते हैं; वे ही शरणागतवत्सल, निखिल भुवनेश्वर व्रजराज श्रीकृष्णचन्द्र मेरे नेत्रोंके विषय हों—

यदा धर्मग्लानिर्भवति जगतां क्षोभकरणी
तदा लोकस्वामी प्रकटितवपुः सेतुधृगजः।
सतां धाता स्वच्छो निगमगणगीतो व्रजपतिः
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः॥

(कृष्णाष्टक ८)

नित्य उदीयमान भगवान् भुवनभास्कर तो पोषणी शक्तिसे सम्पृक्त होकर नित्य ही जीवनमें प्राणोंका संचार करते हैं और अन्धकारसे प्रकाशकी ओर चलनेकी प्रेरणा देते हैं। भगवान् सूर्य तो प्रत्यक्ष अवतार हैं। इसीलिये सन्ध्योपासनामें मूलरूपसे भगवान् सविताकी ही उपासना होती है। भगवान् सूर्यको ब्रह्मका साकार रूप कहा गया है—'**ॐ असावादित्यो ब्रह्म।**' (सूर्योपनिषद्)। ये ही प्रत्यक्ष अवतार सवितादेव स्थावर-जङ्गम सम्पूर्ण भूतोंकी आत्मा हैं—'**सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।**' सृष्टिके आदिदेव तथा आदि अवतार भगवान् सूर्य ही हैं। सूर्यसे ही वृष्टि होती है, वृष्टिसे अन्न उत्पन्न होता है और अन्न ही प्राणियोंका जीवनाधार है—

'**आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः।**'

(मनुस्मृति ३।७६)

इस प्रकार नित्य अवतरित होनेवाले भगवान् सूर्य सारी सृष्टिका पालन करते हैं।

जब सृष्टिक्रममें जगत्के समस्त प्राणी उस विराट् पुरुषसे उत्पन्न हुए, उसी क्रममें उनके नेत्रोंसे भगवान् सूर्यका प्रादुर्भाव हुआ—

'**चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।**'

(शु०यजु० ३१।४२)

यहाँपर एक प्रश्न उठता है कि भगवान् सूर्यका प्रादुर्भाव नेत्रसे ही क्यों हुआ, किसी और अङ्गसे क्यों नहीं हुआ?

कारण यह है कि वैशेषिक दर्शनानुसार तेजका लक्षण '**उष्णस्पर्शवत्तेजः**' बतलाया गया है और यह दो प्रकारका होता है—नित्य एवं अनित्य। परमाणुरूपसे तेज नित्य है और कार्यरूपसे अनित्य। पुनः कार्यरूपसे शरीर, इन्द्रिय और विषयके भेदसे तीन प्रकारका है। तैजस शरीर सूर्यलोकमें है। रूपका प्रत्यक्ष ज्ञान करानेवाली चक्षु इन्द्रिय नेत्रके अंदर काली पुतलीके अग्रभागमें रहती है अर्थात् उसमें तेज रहता है, इसीलिये भगवान् सूर्यका प्रादुर्भाव विराट् पुरुषके नेत्रोंसे हुआ। व्याकरणशास्त्रने 'आदित्य' शब्दकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की है—'**अदितेः अपत्यं पुमान्—आदित्यः**'। यह बारह आदित्यों (सूर्यका भाग)-का समुदायवाचक नाम है। ये बारह आदित्य केवल प्रलयकालमें एक साथ उदित होते हैं। कलियुगका प्रलय इन्हीं बारह आदित्योंके उदयसे होगा—

'**दग्धुं विश्वं दहनकिरणैर्नोदिता द्वादशार्काः।**'

(वेणी० ३।६)

सूर्यका प्रादुर्भाव विराट् पुरुषके नेत्रोंसे होनेके बाद लोकमर्यादाकी रक्षाके लिये उन्होंने अदितिके गर्भसे जन्म लिया। ब्रह्मपुराणसे उद्धृत इनकी कथा संक्षिप्तरूपमें दी जा रही है—

प्रजापति दक्षकी साठ कन्याएँ हुईं जो श्रेष्ठ और सुन्दरी भी थीं। उनके नाम अदिति, दिति, दनु और विनता आदि थे। उनमेंसे तेरह कन्याओंका विवाह दक्षने कश्यपजीके साथ किया था। अदितिने तीनों लोकोंके स्वामी देवताओंको जन्म दिया। दितिसे दैत्य और दनुसे बलाभिमानी दानव उत्पन्न हुए। विनता आदि अन्य स्त्रियोंने भी स्थावर-जङ्गम भूतोंको जन्म दिया। कश्यपके पुत्रोंमें देवता प्रधान हैं, वे सात्त्विक हैं। इनके अतिरिक्त दैत्य आदि राजस और तामस हैं। देवताओंको यज्ञका भागी बनाया गया, किंतु दैत्य और दानव उनसे शत्रुता रखते थे। उन सबने मिलकर देवताओंको राज्य सत्तासे और उनके राज्यादि नष्ट कर दिये। तब अदिति भगवान् सूर्यकी आराधना करने लगीं। भगवान् सूर्यने उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर दर्शन दिया और कहा—देवि!

आपकी जो इच्छाएँ हों, उनके अनुसार एक वर माँग लो। अदिति बोलीं—देव! अधिक बलवान् दैत्योंने मेरे पुत्रोंके हाथसे त्रिलोकीका राज्य छीन लिया है। गोपते! उन्हींके लिये आप मेरे ऊपर कृपा करें। अपने अंशसे मेरे पुत्रोंके भाई होकर आप उनके शत्रुओंका नाश करें। भगवान् बोले—देवि! मैं अपने हजारवें अंशसे तुम्हारे गर्भका बालक होकर प्रकट होऊँगा और तुम्हारे पुत्रोंके शत्रुओंका नाश करूँगा।

—यों कहकर भगवान् भास्कर अन्तर्हित हो गये और देवी अदिति भी अपना समस्त मनोरथ सिद्ध हो जानेके कारण तपस्यासे निवृत्त हो गयीं।

वर्षके अन्तमें भगवान् सूर्यने अदितिके गर्भसे जन्म लिया और अपनी दृष्टिमात्रसे समस्त दैत्योंका नाश किया। फिर तो देवताओंके हर्षकी सीमा न रही। भगवान् सूर्य भी अपने स्थानपर अधिष्ठित होकर जीवोंका आप्यायन करने लगे। ग्रह और नक्षत्रोंके अधिपति भगवान् सूर्य अपने ताप और प्रकाशसे तीनों लोकोंको प्रकाशित करते रहते हैं। ये ज्योतिश्चक्रके अधिपति हैं और ग्रहाधिपतिके रूपमें प्रतिष्ठित हैं। भगवान् सूर्य अपने सात अश्वोंसे सुशोभित एक चक्रवाले रथपर आरूढ़ होकर सातों द्वीपों तथा सातों समुद्रोंसमेत निखिल पृथ्वीमण्डलपर भ्रमण करते हैं। अरुण इनका सारथि है। इनके रथके आगे बालखिल्यादि साठ हजार ऋषि इनकी स्तुति करते रहते हैं। भगवान् सूर्यका रथ प्रतिमास भिन्न-भिन्न आदित्य, ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष आदि गणोंसे अधिष्ठित रहता है। धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, पर्जन्य, अंश, भग, त्वष्टा तथा विष्णु—ये द्वादश आदित्योंके नाम हैं। यहाँपर प्रत्येकका विवरण संक्षिप्त रूपमें दिया जा रहा है—

१-चैत्रमासमें सूर्यके रथपर '**धाता**' नामक आदित्य निवास करते हैं।

२-वैशाखमासमें '**अर्यमा**' नामक आदित्य सूर्यके रथपर निवास करते हैं।

३-ज्येष्ठमासमें '**मित्र**' नामक आदित्य सूर्यके रथपर रहते हैं।

४-आषाढ़मासमें '**वरुण**' नामक आदित्य भगवान् भास्करके रथपर वास करते हैं।

५-श्रावणमासमें '**इन्द्र**' नामक आदित्य भगवान् सूर्यके रथपर वास करते हैं।

६-भाद्रपदमासमें '**विवस्वान्**' नामक आदित्य सूर्यके रथपर निवास करते हैं।

७-आश्विनमासमें '**पूषा**' नामक आदित्य सूर्यके रथपर निवास करते हैं।

८-कार्तिकमासमें '**पर्जन्य**' नामक आदित्य सूर्यके रथपर वास करते हैं।

९-मार्गशीर्षमासमें '**अंश**' नामक आदित्यका सूर्यरथमें वास होता है।

१०-पौषमासमें '**भग**' नामक आदित्य उनके रथपर निवास करते हैं।

११-माघमासमें '**त्वष्टा**' नामक आदित्य उनके रथपर निवास करते हैं।

१२-फाल्गुनमासमें उनके रथपर '**विष्णु**' नामक आदित्य निवास करते हैं और ये ही आदित्य अपने-अपने समयपर उपस्थित होकर वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा तथा शरद् आदि षड् ऋतुओं के कारण बनते हैं।

चराचरके आत्मा—भगवान् सूर्य

(डॉ० श्रीओ३म् प्रकाशजी द्विवेदी)

भगवान् सूर्यकी स्तुतिमें भक्त प्रात:काल प्रार्थना करते हुए कहता है कि हे भगवान् सूर्य! मैं आपके उस श्रेष्ठ रूपका स्मरण करता हूँ, जिसका मण्डल ऋग्वेद है, तनु यजुर्वेद है, किरणें सामवेद हैं तथा जो ब्रह्मा और शंकरका रूप है, जगत्की उत्पत्ति, रक्षा और नाशका कारण है तथा अलक्ष्य और अचिन्त्य है। आप ब्रह्मा, इन्द्रादि देवताओंसे स्तुत और पूजित हैं, वृष्टिके कारण एवं अवृष्टिके हेतु, तीनों लोकोंके पालनमें तत्पर और सत्त्व आदि त्रिगुणरूप धारण करनेवाले तथा गौओंके कण्ठ-बन्धनको छुड़ानेवाले हैं, ऐसे अनन्त शक्तिसम्पन्न आदिदेव सविताको मैं प्रात:काल प्रणाम करता हूँ।

भगवान् सूर्यनारायण! आप प्रत्यक्ष देव हैं। आप तीनों लोकों तथा चौदहों भुवनोंके स्वामी हैं। चारों युगोंमें आपकी महिमा, गरिमा, प्रताप विश्वविदित है। '**सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च**' वेदवचनसे आपकी प्रसिद्धि है। आप चराचरकी आत्मा हैं। आप अन्धकारका नाश करनेवाले, राक्षसोंका नाश करनेवाले, दु:खों एवं रोगोंसे छुटकारा दिलानेवाले, नेत्रज्योतिको बढ़ानेवाले तथा आयुकी वृद्धि करनेवाले हैं। आप हृदयरोग, क्षयरोग एवं पीलिया आदि रोगोंको दूर करनेवाले हैं। रोगोंका नाश करनेवाले भगवान् सूर्यका ऋग्वेद (१।५०।११)-में मन्त्र है—

उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम्।
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय॥

अर्थात् हे हितकारी तेजवाले सूर्य! आप आज उदित होते हुए तथा ऊँचे आकाशमें जाते समय मेरे हृदयके रोग तथा पाण्डुरोगको नष्ट कीजिये। आरोग्यकी कामना भगवान् सूर्यसे करनी चाहिये—'**आरोग्यं भास्करादिच्छेत्**' यह मत्स्यपुराणका वचन सर्वविदित है। '**नमस्कारप्रियो भानुर्जलधाराप्रियः शिवः**' भगवान् सूर्य नमस्कारप्रिय हैं। भगवान् शिवका जलधाराप्रिय होना प्रसिद्ध ही है।

सन्ध्या-गायत्रीका जप नित्य किया जाता है। गायत्रीमन्त्र मूलरूपसे सूर्यभगवान्की ही उपासना है। गायत्री वेदोंकी माता हैं, पापनाशिनी हैं। गायत्री सर्वदेवमयी एवं सर्ववेदमयी हैं।

भगवान् सूर्यकी उपासनाके बहुत-से मन्त्र प्रसिद्ध हैं। सूर्यके १२ नाम, २१ नाम, १०८ नाम और सहस्रनामका जप, चाक्षुषोपनिषद्का पाठ तथा अष्टाक्षर-मन्त्र इत्यादि अनेक मन्त्र शास्त्रोंमें प्रसिद्ध हैं। गायत्रीमन्त्रसे संध्या करते समय सूर्यको अर्घ्य देनेका विधान है, लेकिन जो गायत्रीसे जलार्घ देनेके अधिकारी नहीं हैं, वे इस मन्त्रसे जल दे सकते हैं—'**सूर्याय नमः, आदित्याय नमः, भास्कराय नमः।**' आदित्यहृदयस्तोत्रका पाठ भी प्रसिद्ध है। किसी भी प्रकारसे भगवान् सूर्यकी उपासना मनोवाञ्छित फल प्रदान करनेवाली है, परम कल्याणप्रद है। भगवान् रामने आदित्यहृदयका पाठ कर रावणपर विजय प्राप्त की। आदित्यहृदयमें कहा गया है कि भगवान् सूर्य ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव, महेन्द्र, वरुण, काल, यम, सोम आदि अनेक रूपोंमें प्रतिष्ठित हैं। इनकी अर्चना-प्रार्थना अवश्य करनी चाहिये, इससे मङ्गल होता है।

भगवान् सूर्य उदित होते ही मृतप्राय अचेतन जगत्को चेतन बना देते हैं। वे इष्टकी प्राप्ति तथा अनिष्टकी निवृत्तिके उपायोंको प्रकाशित करनेवाले हैं। '*आत्मानं विद्धि*' अपनेको जानो—यह वेदका आदर्श है। सूर्यकी उपासना आत्माकी उपासना है। देवोपासककी अपेक्षा आत्मोपासक श्रेष्ठ कहा गया है। (शत०ब्रा०) सूर्योपासक ज्योतिष्मान् होता है।

संध्यामें प्रार्थना की जाती है—'**पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्।**' इसमें सूर्यनारायणसे दीर्घ आयुके लिये प्रार्थना की गयी है तथा इन्द्रियोंको सत्प्रेरणा देनेकी प्रार्थना की गयी है। भगवान् सूर्य ऊष्माके भण्डार हैं। अगर सूर्य न होते तो सारा जगत् ठण्डसे सिकुड़ जाता, चारों ओर बर्फ-ही-बर्फ हो जाती। अन्न, जलका अभाव हो जाता और प्राणी जीवित न रहते।

सूर्य निष्कामभावसे कर्म करते हुए स्थावर-जङ्गम

सृष्टिका बिना भेदभावके मित्रके रूपमें प्रकाशित एवं पालन-पोषण करते हैं। सूर्यसे बढ़कर कोई मित्र नहीं है। देहस्थित हमारी आत्माके विकासका मूल स्रोत अथवा उद्गम-स्थान सूर्यमण्डल ही है। बच्चा जब जन्म लेता है तो उसे सूर्यदर्शन कराया जाता है ताकि उसके शरीरका ताप नियन्त्रित रहे और उसकी बाह्यज्योति तथा अन्तर्ज्योति ठीक रहे। यह हमारा संस्कार है। सूर्य-उपासनासे तेज, बल एवं बुद्धि सुरक्षित रहते हैं।

भगवान् सूर्यसे प्रेरित होकर हमें निष्काम कर्म करते हुए ही जीवनयापन करना चाहिये।

मनुष्यका जीवन श्वासपर निर्भर है। इसीलिये संध्यामें प्राणायामका विशेष महत्त्व है। प्रात: सूर्यरश्मियोंसे भावित शुद्ध प्राणवायु हमारे तेज-बलकी वृद्धि करता है, हमें रोगरहित बनाता है।

प्रात:काल सूर्यरश्मियोंका सेवन करना चाहिये। इससे इच्छाशक्ति बलवती होती है। हमें भगवान् सूर्यके सम्मुख प्रार्थना करनी चाहिये कि हे भगवन्! हम आपकी कृपासे स्वस्थ हो रहे हैं, शक्ति प्राप्त कर रहे हैं। आपकी कृपासे हम सदा पूर्ण स्वस्थ रहेंगे। इससे हमारे हृदयमें शुभ शिवसंकल्प जागेगा, शुभ तरङ्गें हृदयमें उठेंगी, हमारा जीवन सुन्दर बनेगा। मनोविज्ञानका नियम है—जैसा हम सोचते हैं, तरङ्गोंके प्रभावसे वैसा ही बन जाते हैं। जो विचार हम करते हैं, वे ही विचार लौटकर हमारे पास आते हैं। अत: शुभप्रेरणादायी मङ्गल विचार ही समाजमें वितरित करने चाहिये। शाश्वत नियम है कि जैसा बीज हम बोते हैं, वे वैसा ही फल देते हैं। अन्तरके शुभ विचार हमें जाग्रत् एवं चैतन्य बना देंगे। हमें सत्, चित्, आनन्दका अनुभव होगा। वर्तमानको सुधारेंगे तो लोकमें सुयश और परलोकमें सद्गतिकी प्राप्ति होगी। हमारा आचरण दिव्य बनेगा। हमारा संकल्प दृढ़ होगा। भगवान् सूर्यनारायण! आप नित्य अवतरित होकर अमृतका दान देनेवाले हैं। आपको कोटिश: नमस्कार है, प्रणाम है। प्रार्थना है—'**असतो मा सद् गमय।**' '**तमसो मा ज्योतिर्गमय।**' '**मृत्योर्मा अमृतं गमय।**'

~~ o ~~

प्रत्यक्ष अवतार—भुवनभास्कर

(आचार्य पं० श्रीबालकृष्णजी कौशिक, पंचाधिस्नातक, धर्मशास्त्राचार्य, एम्०ए० (संस्कृत, हिन्दी), एम्०कॉम०, एम्०एड्०)

शुक्लयजुर्वेद (७।४२)-में प्रत्यक्ष देव भगवान् भुवनभास्करकी महिमाके विषयमें कहा गया है—

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्ने:।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥

अर्थात् जो तेजोमयी किरणोंके पुञ्ज हैं; मित्र, वरुण, अग्नि आदि देवताओं एवं समस्त जगत्के प्राणियोंके नेत्र हैं और स्थावर तथा जङ्गम—सबके अन्तर्यामी आत्मा हैं, वे भगवान् सूर्य आकाश, पृथ्वी और अन्तरिक्षलोकको अपने प्रकाशसे प्रकाशित करते हुए आश्चर्यरूपसे उदित हो रहे हैं।

भगवान् सूर्यनारायण सम्पूर्ण विश्वमें प्रत्यक्ष देवता हैं। सूर्यदेवसे ही इस सृष्टिके भूत-प्राणी उत्पन्न होते हैं और उन्हींसे प्राणिमात्र अपनी जीवन-प्रक्रियाको गतिशील रखते हैं।*

ऋषियोंकी यज्ञ-प्रक्रियाके अनुशास्ता सूर्यदेव ही हैं। सूर्यसे यज्ञ, यज्ञसे मेघ, मेघोंसे वर्षा, वर्षासे अन्न-फल-जल तथा औषधि आदि उत्पन्न होते हैं। अन्नसे अन्नमयकोश, बल-वीर्य एवं चेतना, आत्माका आविर्भाव होता है। विना सूर्यके सृष्टिचक्र, जीवचक्र (जीवन-मरण), ऋतुचक्र, दैनिक चक्र, वनस्पति, औषधि, पेड़-पौधे, अन्न, फल, फूल आदिकी कल्पना करना भी सम्भव नहीं है। माता अदितिके पुत्र ही आदित्य कहे गये हैं—'**अदितिपुत्र: आदित्य:**।' आदित्यसे वायु, भूमि, जल, प्रकाश-ज्योति, दिशाएँ, अन्तरिक्ष, देव, वेद आदि उत्पन्न होते हैं।

* 'सूर्याद्वै खल्विमानि भूतानि जायन्ते। सूर्याद्यज्ञ: पर्जन्योऽन्नमात्मा'''। आदित्याद्वायुर्जायते। आदित्याद्भूमिर्जायते। आदित्यादापो जायन्ते। आदित्याज्ज्योतिर्जायते। आदित्याद् व्योम दिशो जायन्ते। आदित्याद्देवा जायन्ते। आदित्याद्वेदा जायन्ते। आदित्यो वा एष एतन्मण्डलं तपति।' (सूर्योपनिषद्)

भगवान् भास्कर तमसाच्छन्न अन्धकारमय भूमण्डलपर अमृतमय किरणोंसे प्रकाश करते हुए देदीप्यमान स्वर्णिम रथपर आरूढ़ होकर चौदह भुवनोंको देखनेके लिये आते हैं—

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥

(यजु० ३३। ४३)

ऋषिलोग सूर्योदय, सूर्यास्त तथा मध्याह्नके समय त्रिकाल-सन्ध्याद्वारा सूर्यदेवताकी सतत उपासना करते रहे हैं। गायत्रीमन्त्र वस्तुतः सूर्यदेवकी ही आराधना है। सविता देवताकी उपासना ही इसमें मुख्य है।

सूर्यगायत्री-मन्त्रमें भी सहस्त्ररश्मिप्रवाहक सूर्यदेवसे कल्याणकी प्रार्थना की गयी है—

आदित्याय विद्महे सहस्त्रकिरणाय धीमहि। तन्नः सूर्यः प्रचोदयात्॥

ऋषिगण दीर्घायुष्य-प्राप्ति, दृष्टि, श्रवणशक्ति, वाक्-शक्ति और धन-धान्यकी सम्पन्नताके लिये भी सूर्यदेवसे ही प्रार्थना करते हैं—

ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥

(यजु० ३६। २४)

पञ्चदेव-उपासनामें भी सूर्यदेवकी आराधना होती है। सूर्यनारायणकी अमृतमय किरणें आरोग्यदायक, जीवाणु-कीटाणु-विषाणु आदिकी नाशक हैं। आजकल वैज्ञानिक भी सूर्य-किरणोंसे विटामिन-डी प्राप्त होना स्वीकारते हैं। आयुर्वेदमें सूर्यस्नान या धूपस्नान, सूर्यकिरणस्नान प्रशस्त है। सूर्य-किरणोंसे रंग-चिकित्सा भी की जाती है।

भगवान् सूर्यनारायणके एक ध्यान-स्वरूपमें बताया गया है कि सविता-मण्डलके मध्यमें स्थित रहनेवाले भगवान् सूर्यनारायण कमलासनपर विराजमान हैं। वे केयूर, मकराकृत कुण्डल, किरीट तथा हार धारण किये हैं। उनका शरीर स्वर्णिम कान्तिसे सम्पन्न है और वे हाथोंमें शङ्ख तथा चक्र धारण किये हुए हैं—

ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती
नारायणः सरसिजासनसंनिविष्टः।
केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी
हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः॥

मनुष्यमात्रको सूर्यनारायणदेवकी नित्य आराधना करनी चाहिये। सूर्यदेवको प्रातः जलार्घ्य या दुग्धार्घ्य लाल पुष्प, लाल चन्दन एवं अक्षतसे देना चाहिये। आदित्यहृदयस्तोत्र-पाठ, रविवारका व्रत एवं सन्ध्योपासना सूर्यदेवताको अत्यन्त प्रिय हैं। अर्घ्य प्रदान करनेका एक मन्त्र इस प्रकार है—

एहि सूर्य सहस्त्रांशो तेजोराशे जगत्पते।
अनुकम्पय मां भक्त्या गृहाणार्घ्यं दिवाकर॥

अर्थात् सहस्त्र किरणोंवाले, तेजकी अनन्तराशिरूप जगत्के स्वामी हे सूर्यदेव! आप मेरे समक्ष आइये। हे दिवाकर! मुझपर कृपा कीजिये और मेरे द्वारा भक्तिपूर्वक प्रदत्त इस अर्घ्यको स्वीकार कीजिये।

सूर्यदेवको भगवान्ने अपना स्वरूप बताया है। अदितिपुत्र आदित्य सूर्यदेवके नामसे नवग्रहोंके अधिपति हैं। प्रकृतिविज्ञान, खगोलविज्ञान, ज्योतिषविज्ञानमें सूर्य प्रमुख ग्रह है। ज्योतिषमें सूर्यको आत्मकारक, आत्मबलदायक ग्रह माना गया है। द्वादश राशियोंमें प्रथम मेष राशि ही इनकी उच्च राशि तथा सिंह राशि स्वगृही होती है। आजकल ज्योतिषविज्ञानमें लग्नकुण्डली एवं चन्द्रकुण्डलीकी तरह सुदर्शन-चक्रमें सूर्य-कुण्डली भी बनायी जाती है। माणिक इनका प्रिय रत्न है। उत्तरायण सूर्यका विशेष महत्त्व है। भीष्म आदिने इच्छामृत्युके लिये इसे ही ध्यानमें रखा। सूर्यग्रहण एवं संक्रान्तिपर्वका धर्मशास्त्रीय व्रतोत्सवपर्वोंमें स्नान-दान-कर्महेतु विशेष महत्त्व है। मकरसंक्रान्ति तो मुख्य धार्मिक पर्व है। भगवान् सूर्यदेवको एक प्रार्थनामें कहा गया है—

ॐ विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्न आ सुव॥ (ऋक्० ५। ८२। ५, शु०य० ३०। ३)

भाव यह है कि समस्त संसारको उत्पन्न करनेवाले, सृष्टि, पालन, संहार करनेवाले किंवा विश्वमें सर्वाधिक देदीप्यमान एवं जगत्को शुभ कर्मोंमें प्रवृत्त करनेवाले हे परब्रह्मस्वरूप सवितादेव! आप हमारे आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक दुरितोंको हमसे बहुत दूर ले जायँ—दूर करें। जो कल्याण है, श्रेय है, मङ्गलमय है उसे विश्वके समस्त प्राणियोंके लिये चारों ओरसे सम्यक् प्रकारसे ले आयें।

अवतार-दर्शन

(एकराट् पं० श्रीश्यामजीतजी दुबे 'आथर्वण')

जिसका अवतार होता है, वह क्या है ? अवतारसे पूर्व क्या होता है ? अवतार क्या है ? अवतारका कारक क्या है ? इन सब बातोंपर विचार करनेके लिये हम वेदोंकी ऋचाओंपर दृष्टिपात करते हैं। ऋग्वेद (१०।१२९।१)-में कहा गया है—

'नासदासीन्नो सदासीत् तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।'

अर्थात् अवतार या सृष्टिके पूर्व न असत् था, न सत् था, न रज था, इनसे परे जो था, उसका कोई माप नहीं था। (व्योम=वि+ओम=मापहीन=अनादि एवं अनन्त=आकाश)

'न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः।'

उस समय न मृत्यु थी, न अमृत (जीवन) था, न रात्रि थी, न दिन था तथा न कोई ठौर (प्रकेत) ही था।

'को अद्धा वेद क इह प्र वोचत्
कुत इयं विसृष्टिः।'

का भक्षण कर अपने पास रखे हुए तानेवाला भी तो कोई नहीं था। यह या किसने इसे उत्पन्न किया? इसे नहीं था।

परमे व्योमन् त्सो अङ्ग वेद यदि वा

वह इसके कौन कहे? ...

भी होगा। इस मन्त्रसे प्रकट है कि असत्से सत् होता है। अर्थात् अव्यक्त मूलप्रकृति, जिसमें तीनों गुण साम्यावस्थामें होते हैं, उससे व्यक्त प्रकृति—गुणोंकी विकृति होती है। यह सृष्टिका आरम्भ है या अव्यक्तका व्यक्तमें अवतरण है। प्रकृति (असत्)-का प्रथम अवतार महत्तत्त्व (सत्) है। सृष्टिका अभाव असत् है। अभावसे भावकी उत्पत्ति है। सृष्टिका भाव सत् है। उपनिषद्का उद्घोष है—

'असद् वा इदमग्र आसीत्। ततो वै सदजायत।'

(तैत्तिरीयोपनिषद् २।७।१) सृष्टिके पूर्व यह असत् तत्त्व ही था। इसीसे सत् उत्पन्न हुआ। असत्का अर्थ अन्धकार भी है। असत्से सत् हुआ, इसका अर्थ है—अन्धकारसे प्रकाशकी उत्पत्ति हुई। यह प्रकट सत्य है—रात्रिके गर्भसे प्रकाश (सूर्योदय) होता है। महाकाशमेंसे एक साथ असंख्य ज्योतियाँ अनेक रूपोंमें प्रकट हुईं। यह ज्योतिर्मय ब्रह्मका प्रथम अवतार है। इसे हिरण्यगर्भ कहते हैं। यह सूर्य ही हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) है। असंख्य हिरण्यगर्भ हैं। ये ही भगवान् हैं। 'भा', भाति—चमकता है तथा 'गम्' गच्छति—चलता है, इससे मतुप् प्रत्यय लगानेपर भगवत् शब्द बनता है। भगवत्+सु=भगवान्—जो चलता हुआ चमकता है अथवा चमकता हुआ चलता है। भगवान्में इच्छा हुई। मन्त्र है—

'सोऽकामयत्। बहु स्यां प्रजायेयेति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा। इदꣳ सर्वमसृजत यदिदं किं च। तत् सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशत्।' (तैत्ति०उप० २।६।४)

है—'**ॐ नमो मूलप्रकृतये अजिताय महात्मने।**' इससे प्रकृति-पुरुषका ऐक्य या ब्रह्मत्व सिद्ध होता है। सबसे पहले कामका अवतार हुआ। '**कामः तदग्रे समवर्तत**' (ऋक्० १०।१२९।४)। भगवान् विष्णुके सहस्रनामोंमेंसे एक नाम है—काम। यह भगवान्का अमूर्तरूप है। यह हृदयगत भाव है।

ज्योतिर्मय ब्रह्मने अपनेको ग्रहोंके रूपमें व्यक्त किया। पृथ्वी, चन्द्र, भौम, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि—ये सूर्यके पार्थिव (विकृत) रूप हैं। ये तो दृश्य ग्रह हैं। ऐसे अनेक अदृश्य ग्रह हैं। इस परिवारको सौरमण्डल कहते हैं। ऐसे असंख्य सौरमण्डल हैं। प्रत्येकमें एक-एक पृथ्वी है। पृथ्वीपति परमात्मा सूर्य है, जो पृथ्वीपर नाना जीवोंके रूपमें प्रकट (अवतरित) होता रहता है।

प्रकृतिके विकार या विकासका नाम भी अवतार है। अवतारका सरल एवं सुस्पष्ट अर्थ है—आगमन, प्राकट्य, इन्द्रियगम्य होना। अगुण अकिञ्चन पुरुषने अपनेको प्रधान बनाया। प्रधानसे अहङ्कार उत्पन्न हुआ। अहङ्कारके सात्त्विक-रूपसे मन, राजसरूपसे पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ एवं पाँच कर्मेन्द्रियाँ, तामसरूपसे पाँच ज्ञानेन्द्रियोंके विषय—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धका प्राकट्य हुआ। पाँच विषय पाँच तन्मात्र कहलाते हैं। इन तन्मात्रोंसे पाँच महाभूत उत्पन्न हुए। शब्दसे आकाश, स्पर्शसे वायु, रूपसे तेज, रससे जल, गन्धसे पृथ्वीका उद्भव हुआ। ये २४ प्रकृतियाँ (१ प्रधान+१ अहङ्कार+१ मन+१महत्तत्त्व+५ ज्ञानेन्द्रियाँ+५ कर्मेन्द्रियाँ+५ तन्मात्रा+५ भूत) ही परमात्माके २४ अवतार हैं। यह भगवान्का प्राकृतिक अवतार है। ये अवतार नित्य हैं, सूक्ष्म हैं। अवतारक पुरुषको हमारा प्रणाम।

चौदह प्रकारकी प्राणिसृष्टि है। इसे १४ भुवनके नामसे जाना जाता है। '**चतुर्दशविधो भूतसर्गः**' (सांख्यसूत्र १८)। चौदह प्रकारकी प्राणिसृष्टिमें आठ प्रकारकी दैवीसृष्टि है, पाँच प्रकारकी तिर्यक् योनियोंकी सृष्टि है तथा एक प्रकारकी मानुषसृष्टि है। संक्षेपमें यही भौतिक सृष्टि है। कथन है—

अष्टविकल्पो दैवस्तैर्यग्योनिश्च पञ्चधा भवति।
मानुष्यश्चैकविधः समासतो भौतिकः सर्गः॥

(सांख्यकारिका ५३)

ब्राह्म, प्राजापत्य, ऐन्द्र, दैव, गान्धर्व, पित्र्य, विदेह और प्रकृतिलय—ये आठ दैव-सर्ग हैं। यह सत्त्वप्रधान सृष्टि है और सबसे ऊपर है। नौवाँ मानुष-सर्ग है, जो रजोगुण प्रधान है। इसकी मध्य-स्थिति है। मनुष्यसे नीचे पशु, पक्षी, सरीसृप, कीट तथा स्थावर (वृक्षादि)—यह पाँच प्रकारका तिर्यक्-सर्ग है। मनुष्य-सर्ग एवं तिर्यक्-सर्ग तो प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हैं, किंतु दैव-सर्ग सूक्ष्म होनेके कारण इन्द्रियगोचर नहीं है। इसे देखनेके लिये दिव्य नेत्र चाहिये।

जितनी भी योनियाँ हैं, वे भगवान्की हैं। उनमें भगवान् गर्भस्थापन (जीवरचनाका कार्य) करते हैं, जिससे प्राणी उत्पन्न होते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनके प्रति यही कहते हैं—

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत॥

(गीता १४।३)

शास्त्रानुसार योनियाँ ८४ लाख हैं। बृहद् विष्णुपुराणके मतसे ९ लाख जलज, २० लाख स्थावर, १० लाख पक्षी, ३० लाख पशु, ११ लाख कृमिकीट तथा ४ लाख मनुष्य हैं। ये योनियोंके प्रकार, भेद या जातियाँ हैं। कर्मविपाकके अनुसार ३० लाख प्रकारके स्थावर, ९ लाख प्रकारके जलज, १० लाख प्रकारके कृमि, ११ लाख प्रकारके पक्षी, २० लाख प्रकारके पशु तथा ४ लाख प्रकारके मनुष्य हैं। इन चौरासी लाख प्रकारकी योनियोंके माध्यमसे भगवान् ही आविर्भूत हो रहे हैं। एक साथ इतने अवतार धारण करनेवाले ईशको हमारा प्रणाम।

८४ लाख योनियोंका संक्षेपीकरण किया जाय तो ८+४=१२=१+२=३ योनियाँ हैं। ये योनियाँ हैं—तमोगुणी राक्षस, रजोगुणी मनुष्य तथा सात्त्विक देवता। ज्योतिष-शास्त्रकी इन तीन योनियोंमें परमात्मा सर्वत्र वर्त रहा है—**त्रियोनये परमात्मने नमः**।

भगवान्का लिङ्गावतार लोकमान्य है। द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंके रूपमें कौन इनकी अर्चना नहीं करता? १२ राशियाँ—मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ तथा मीन ही १२ ज्योतिर्लिङ्ग हैं। पूर्वी क्षितिजपर लग्नके रूपमें इनका उदय होता रहता है। इन ज्योतिर्लिङ्गोंका प्रभाव मासके रूपमें दिखायी पड़ता है। ये १२ ज्योतिर्लिङ्ग विष्णुके स्वरूप हैं। इनका कभी नाश नहीं होता। वचन है—

'द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य।'

(अथर्व० ९।९।१३)

परमात्मा अपनी प्रकृति (माया)-का आश्रय लेकर नाना रूपों (अवतारों)-की सृष्टि करता है। श्रुतिवाक्य है—

'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते' (बृह०उप० २।५।१९)—इसी बातको गीतामें इस प्रकार कहा गया है—

'मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।'
(९।१०)

भगवान्‌की अध्यक्षतामें प्रकृति स्वयं चराचर विश्वका सृजन करती है अर्थात् अवतारोंकी कारक यह प्रकृति है। प्रकृतिका आश्रय लेकर परमात्मा शरीर धारण करता है, नाना योनियोंके रूपमें आविर्भूत होता है।

भगवान्‌की शाश्वत योनि आकाश (शून्य) है। भगवान्‌का स्वरूप आकाश है। भगवान्‌के माता-पिता, बन्धु, सखा, सन्तति—सब कुछ यह आकाश है। भगवान् इस आकाशमेंसे अपनेको प्रकट करते रहते हैं। आकाशगङ्गाएँ, नीहारिकाएँ, नक्षत्रमण्डल, धूमकेतु, ग्रहगण आदि भगवान्‌के रूप हैं। इस प्रकार भगवान् अगुणसे सगुण, अरूपसे सरूप तथा शून्यसे अशून्य बनते हैं। यह भगवान्‌की लीला (माया) है। इस मायाको हमारा नमस्कार।

परमात्मा समस्त विरोधाभासोंका आश्रय है, अस्ति-नास्तिमय है, अग्नीषोमात्मक है, अर्धनारीश्वर है। इसलिये वह पूर्ण है। पूर्ण परमात्माके समस्त अवतार पूर्ण हैं। अजायमान ईश्वर नाना प्रकारसे जायमान होता है—अपने अप्रकट रूपको प्रकट करता है—अवतार लेता है। मन्त्र है—**'अजायमानो बहुधा वि जायते'** (यजु० ३१।१९)। जो ईश भीतर है, वही बाहर है, जो बाहर है, वही भीतर है। मन्त्र है—**'यदन्तरं तद् बाह्यं यद् बाह्यं तदन्तरम्।'** (अथर्व० २।३०।४) परोक्ष परमात्मा ही प्रत्यक्ष परमेश है। जीवको समाधिमें इसकी अनुभूति होती है। **'योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्।'** (यजु० ४०।१७) सूर्यमण्डलमें जो ईश्वर विद्यमान है, वही मैं हूँ।

भगवान् अवतार लेनेके लिये हर क्षण सन्नद्ध रहते हैं। भगवान्‌का एक अवतार है—यज्ञरूप। प्रज्वलित अग्निमें आहुतियोंको स्वाहायुक्त मन्त्रोंसे डालना यज्ञ है—**'यज्ञो वै स्वाहाकारः'** (शतपथब्राह्मण ३।१।३।२७)। काष्ठको मथकर उसमेंसे अग्निको प्रज्वलित करना ही भगवान्‌को प्रकट करना है। प्रज्वलित अग्नि साक्षात् परमदेव है। पार्थिव अग्नि, पार्थिव भगवान् है। दिव्य अग्निका यह अवतार है। दिव्य अग्नि धूमरहित है, पार्थिव अग्नि सधूम होती है। जो अन्तर निर्गुण एवं सगुण ईश्वरमें या अशरीरी एवं शरीरधारी भगवान्‌में है, वही अन्तर दिव्याग्नि (सूर्य) एवं पार्थिवाग्नि (यज्ञ)-में है। अग्नि पवित्र करनेवाला होनेसे पावक है, पवित्र होनेसे शुचि है, प्रकाशसे युक्त होनेके कारण शुक्र है, पापनाशक होनेसे शोचि है, अविनाशी होनेसे अमर्त्य है। यह अग्नि राक्षसोंसे हमारी रक्षा करता है। इसलिये यह स्तुत्य, ईड्य है। मन्त्र है—

'अग्नी रक्षांसि सेधति शुक्रशोचिरमर्त्यः। शुचिः पावक ईड्यः॥' (अथर्व० ८।३।२६)

यह अग्निरूपी भगवान्‌की कथा है। इससे दुर्बुद्धिका नाश होता है, सद्बुद्धिकी प्राप्ति होती है, जीवन चमकता है, अभय होता है, आनन्दका आगम होता है—जन्म सार्थक होता है।

वेदादि धर्मग्रन्थोंमें अवतार-रहस्य

(दण्डी स्वामी श्रीमद्दत्तयोगेश्वरदेवतीर्थजी महाराज)

अव उपसर्गपूर्वक तॄ धातुसे 'अवतार' शब्द बना है। उच्च स्थानसे नीचे स्थानपर उतरना—इसे 'अवतार' कहते हैं। अवतार किसका? कब? और किसलिये होता है? इन प्रश्नोंके प्रत्युत्तर भगवान् श्रीकृष्णने भगवद्गीता (४।७-८)-में इस प्रकार दिये हैं—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

हे अर्जुन! जब-जब धर्मकी ग्लानि (हानि) होती है और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब-तब मैं जन्म (अवतार) धारण करता हूँ। साधुजन (सत्पुरुषों)-के रक्षणहेतु, दुर्जनोंके विनाशार्थ तथा धर्मकी स्थापनाके लिये मैं (भगवान्) युग-युगमें अवतीर्ण (प्रकट) होता हूँ।

इससे स्पष्ट होता है कि भगवान्‌के अवतारका प्रथम प्रयोजन साधुस्वभावके सत्पुरुषोंका परित्राण (रक्षण) करना ही है।

भगवान् श्रीकृष्ण आगे कहते हैं कि—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

(गीता ४।९)

हे अर्जुन! मेरे दिव्य जन्म एवं कर्मको जो व्यक्ति तत्त्वतः जानता है, वह देहत्याग करनेके बाद पुनर्जन्मको प्राप्त नहीं होता, अपितु मुझे ही प्राप्त होता है।

वेदादि धर्मग्रन्थोंमें प्रतिपादित अवतारतत्त्व हिन्दूधर्मका एक प्रमुख तत्त्व है। वैकुण्ठधाम छोड़कर अपने विशेष कार्य पूर्ण करनेके लिये भगवान्‌के भूलोकमें पधारनेको 'अवतार' कहा जाता है। भगवान् जब प्राणीका अथवा मनुष्यका देह धारण कर कुछ समयपर्यन्त अथवा जीवनपर्यन्त उस देहमें निवास करते हैं, तब उस देहधारणको अवतार कहते हैं।

उत्पत्ति, स्थिति एवं लय—ये सृष्टिके स्वभावधर्म हैं और ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर—ये तीन देव धर्मके कारक माने गये हैं। उनमें सृष्टिपालनका उत्तरदायित्व विष्णुपर है। अतः जब-जब सृष्टिमें उपद्रव प्रारम्भ होता है और विनाशकी प्रक्रिया वृद्धि करने लगती है, मानव-समाजमें धर्मकी हानि होती है, तब-तब धर्मसंस्थापनहेतु भगवान् विष्णु युग-युगमें अवतार लेते हैं। ऐसी धारणा भारतीय श्रद्धावन्तोंकी है। सनातनमतके सभी धर्मग्रन्थ इस धारणाको परिपुष्ट करते हैं।

मनुष्यका जन्म होता है, जबकि भगवान्‌का अवतार होता है। मनुष्य अपना जन्म लेनेमें परतन्त्र है, जबकि भगवान् अपना अवतार लेनेमें स्वतन्त्र हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता (४।६)-में स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने कहा है कि—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

हे अर्जुन! मैं अज (अजन्मा) हूँ, अव्यय (अविनाशी) हूँ, समस्त प्राणियोंका ईश्वर हूँ तथापि मैं अपनी प्रकृतिको अधीन करके अपनी मायाद्वारा जन्मता हूँ। मैं जन्म लेनेमें स्वतन्त्र हूँ।

वेदोंमें अवतारतत्त्वके जो बीज प्राप्त होते हैं, पुराणोंमें उनका उपबृंहण कर आख्यानरूपमें विस्तार हुआ है। वैदिक वाङ्मयमें अवतारोंका जो मूल प्राप्त होता है, उसका संक्षेपमें कुछ वर्णन यहाँ प्रस्तुत है—

(१) शतपथब्राह्मण (१।८।१।१—६)-में कथा आयी है कि प्रलयकालमें मनुने अपनी नौकाकी रस्सी एक महामत्स्यके शृंगके साथ बाँधी थी। उस मत्स्यराजने महाप्रलयसे मनुका रक्षण किया था। शतपथब्राह्मणकी इस सूक्ष्म कथासे आगे मत्स्यावतारकथाका विस्तार हुआ।

(२) तैत्तिरीय आरण्यकमें कथा है कि प्रजापतिका शरीर कूर्मरूपमें जलमें फिरता था, वही '**सहस्रशीर्षा पुरुषः**' इस स्वरूपमें प्रजापतिके समक्ष प्रकट हुआ। तब प्रजापतिने उन्हें विश्वनिर्माण करनेके लिये कहा। उसने प्रत्येक दिशामें जल फेंककर आदित्यादि सृष्टिका निर्माण किया। तैत्तिरीय ब्राह्मण (१।१।३।६)-में कथा है कि प्रजापतिने वराहरूप धारणकर समुद्रतलमेंसे पृथ्वीको जलसे बाहर निकाला। यह कथा वराह-अवतारकी सूचक है।

(३) ऋग्वेद (८।१४।१३)-में कथा है कि नमुचि दैत्यका मस्तक इन्द्रने जलका फेन फेंककर उड़ाया था। इस कथासे नृसिंह-अवतारकी कथा विकसित हुई। नृसिंहका प्रथम उल्लेख तैत्तिरीय आरण्यकमें आया है।

(४) ऋग्वेद (१।२२।१७)-में है कि '**इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्।**'

इस विश्वको तीन पाद (चरण) रखकर विष्णुने आक्रान्त किया।

इससे वामनने बलिराजके पास जाकर त्रिपादभूमि माँगकर आखिरमें त्रिभुवन व्याप्त किया, ऐसी वामन-अवतारकी कथाकी सूचना है।

शतपथब्राह्मण (१।२।५।५)-में कहा है कि विष्णु ही प्रथम वामन (ठिंगु) था—'**वामनो ह विष्णुरास।**' विष्णुका अर्थ यज्ञ भी है। इसके योगसे देवोंने अर्चा और श्रम करके सम्पूर्ण पृथ्वी प्राप्त कर डाली।

(५) अथर्ववेद (५।१९।१-११)-में कथा है कि 'सृञ्जय वैतहव्य' नामक राजा भृगु एवं ब्राह्मणोंकी हिंसा करनेपर पराभूत हुए। इस कथासे परशुराम अवतारकी कथा सूचित होती है।

(६) छान्दोग्योपनिषद् (३।१७।६)-में देवकीपुत्र कृष्णका उल्लेख मिलता है।

द्वापरयुगमें यदुनन्दन श्रीकृष्णको भगवान् विष्णुका अवतार कहा गया है—'**कृष्णास्तु भगवान् स्वयम्॥**'

श्रीकृष्णका बालचरित्र गोकुल और वृन्दावनमें गोप-गोपियोंके साथ व्यतीत हुआ। उन्होंने बालपनमें उन्होंने

संहार किया, कालियदमन एवं कंसका वध किया इत्यादि। वे बड़े होकर वृष्णियोंके राजा माने गये, यद्यपि वे मूलतः यादवों और सात्वतोंके देवके रूपमें प्रसिद्ध थे।

(७) रामायणादि धर्मग्रन्थोंके अनुसार रामावतार त्रेतायुगके अन्तमें हुआ। महर्षि वाल्मीकिकृत रामायणद्वारा राम (दाशरथी राम) लोकविश्रुत हुए। वे सत्यवादी, निर्भीक, दृढ़प्रतिज्ञ, पितृभक्त, बन्धुवत्सल, महापराक्रमी होनेसे अगणित लोकोंमें आदरणीय हुए।

रामभक्तिसाहित्यमें अध्यात्मरामायण तथा श्रीरामचरितमानसका उच्च स्थान है। वैष्णव-सम्प्रदायमें विष्णुकी अपेक्षा उनके अवतार राम एवं कृष्ण किंवा अन्य अवतारको विशेष महत्त्व देकर पूजा की जाती है। विष्णुके अनन्त अवतार हैं। विविध ग्रन्थोंमें विविध नाम-रूपोंमें अवतारका वर्णन हुआ है।

महाभारत शान्तिपर्व (अ० ३३९)-में नारायणी-उपाख्यानमें मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, भार्गवराम (परशुराम), दाशरथी राम एवं वासुदेव कृष्ण—इन छः अवतारोंकी चर्चा है, आगे हंस और कल्कि आदि अवतार लेकर दस अवतारोंका उल्लेख है। कहीं-कहीं यह संख्या बारह है। श्रीमद्भागवत (६। २। ७)-में २४ अवतारोंका निर्देश हुआ है।

ये सभी अवतार लीलावतार नामसे प्रसिद्ध हैं। इनमें भी दस अवतार प्रसिद्ध हैं, जो इस प्रकार हैं—

१. मत्स्य, २. कूर्म, ३. वराह, ४. नृसिंह, ५. वामन, ६. परशुराम, ७. दाशरथी राम, ८. कृष्ण, ९. बुद्ध और १०. कल्कि।

बौद्ध साहित्यमें बुद्धको दाशरथी रामका अवतार माना गया है। हिन्दुओंके अवतार-सिद्धान्तको बौद्धोंके महायान-पन्थने स्वीकार किया और उसको अपने पन्थमें प्रविष्ट किया। बोधिसत्त्वको बुद्धका अवतार माना गया। महायानपन्थने ऐसा घोषित किया कि बुद्ध निर्वाण-प्राप्तिके बाद भी पुनः अवतार लेनेकी क्षमता रखते हैं। भविष्यमें वे (बुद्ध) मैत्रेय बुद्धरूपमें पुनः अवतार ग्रहण करनेवाले हैं।

धर्मग्रन्थोंमें अवतारके दो प्रकार कहे गये हैं—(१) अंशावतार (२) पूर्णावतार। थोड़े-थोड़े उपद्रवोंकी शान्तिके लिये उतने समयपर्यन्त भगवान् अवतार लेते हैं और अपना वह कार्य समाप्त कर वे अन्तर्धान हो जाते हैं। इस प्रकारके अवतारको अंशावतार कहते हैं। नीतिधर्मका उच्छेद करनेवाले एवं भूमिके भारभूत होनेवाले रावण, कंसादि विरोधी विग्रहोंके निर्दलनके लिये भगवान् जब अपने शक्तिसमूहसहित अवतार लेते हैं और वह कार्य पूर्ण हो जानेके बाद भी कुछ समयपर्यन्त इस पृथ्वीपर रहते हैं, ऐसे अवतारको पूर्णावतार कहते हैं। इस दृष्टिसे राम-कृष्णादिको पूर्णावतार कहा गया है। रामके लघु बन्धु लक्ष्मणको तथा कृष्णके ज्येष्ठ बन्धु बलरामको शेषावतार माना गया है, रुक्मिणीको लक्ष्मीका अवतार तथा गोप-गोपियोंको देव-देवियोंका अवतार कहा गया है।

किन-किन देवोंने कौन-कौन अंशावतार लिये, इस विषयमें महाभारत आदिपर्व (अध्याय ५४—६४)-में कहा गया है। उसमें कतिपय अवतार इस प्रकार वर्णित हैं— नित्यावतार, गुणावतार, विभवावतार, तत्त्वावतार, अर्चावतार, अन्तर्यामी-अवतार, लीलावतार, मन्वन्तरावतार, युगावतार, आवेशावतार आदि।

अवतारका मुख्य सिद्धान्त इस प्रकार है—

(१) परमेश्वरका एक रूपमें नित्य-लोकमें नित्य-विहार होता है और दूसरे रूपमें जगत्प्रवृत्ति होती है।

(२) परमेश्वर एक होनेपर भी स्वतःको अनेक रूपमें प्रकट कर सकता है।

(३) अवतार नित्य रूप है, मायिक नहीं।

(४) सभी अवतार सच्चिदानन्दविग्रह हैं।

(५) कतिपय अवतार मनुष्यरूपमें होते हैं तो कुछ परिस्थितिवश एवं कुछ अवतार भक्तकी इच्छावश होते हैं।

(६) अवतारका मानुषतन ही दिव्य होता है और उसमें दिव्य शक्तिका निवास होता है।

(७) प्रत्येक अवतारकी विशिष्ट देहलीला होती है और विशिष्ट लोक भी होता है।

(८) परमेश्वर अवताररूपमें पृथ्वीपर आनेपर भी अपने दिव्य एवं पूर्णरूपमें निजधाममें विराजमान रहते हैं।

विष्णुकी तरह ही भगवान् शिवने भी विविध प्रसंगमें अनेक अवतार लेकर साधुपरित्राण और दुष्टविनाश किया। इस विषयमें शिवपुराणमें वर्णन है। कालभैरव, शरभ, यज्ञेश्वर, महाकाल, एकादश रुद्र, हनुमान्, नर्तक नट (नटराज), अवधूतेश्वर, वृषेश आदि। शिवकी प्रथम भार्या दक्षकन्या सती ही बादमें हिमालय-सुताके रूपमें अवतरित होकर 'पार्वती' नामसे शिवकी अर्धाङ्गिनी हुईं। पार्वतीको आदिमाया किंवा आदिशक्ति भी कहते हैं। उन्होंने भी असुरमर्दनके लिये अनेक

अवतार लिये हैं। मुख्य देवताके कुछ परिवार देवता भी होते हैं। वे भी अपने स्वामीकी अनुज्ञासे किंवा विशिष्ट कार्योंके लिये मानव-अवतार धारण करते हैं। गणपतिके भी युग-युगमें गणेश, विघ्नेश, मयूरेश, सिद्धिविनायक इत्यादि अनेक अवतार धारण करनेके वृत्तान्त गणेश तथा मुद्गलपुराणमें हैं। दत्तात्रेय मूलतः विष्णुके हीं अवतार हैं, इनके अवतार श्रीपादवल्लभ नृसिंह सरस्वतीकी लीला-कथा 'श्रीगुरुचरित्र' नामक ग्रन्थमें सविस्तृत वर्णित है। दक्षिण भारतके १२ आलवार विष्णुके आयुधोंके अवतार माने गये हैं। महाराष्ट्र प्रदेशके भागवत-सम्प्रदायमें ज्ञानदेव (ज्ञानेश्वर)-को विष्णुका अवतार, नामदेवको उद्धवका अवतार मानते हैं। मध्यकालके सभी सम्प्रदायोंमें अवतारोंकी चर्चा वर्णित है।

महाभारत, शान्तिपर्व (३४६।१०।११, ३४८।६।८)-में नारायणीय धर्मका विवेचन है। इस धर्मको सर्वप्रथम भगवान्‌ने अर्जुनसे कहा है, बादमें नारदजीको भी उपदेश दिया है। नारदजीने आगे जाकर नारायणीयधर्मके अन्तर्गत व्यूह-सिद्धान्त स्थापित किया है। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—ये चार मिलकर चतुर्व्यूह होता है। इस व्यूहमें वासुदेवको परमात्मा तथा सम्पूर्ण सृष्टिका कर्ता माना गया है। संकर्षण उनका दूसरा रूप है। वे प्राणिमात्रके प्रतिनिधि माने गये हैं। संकर्षणसे प्रद्युम्नकी उत्पत्ति हुई। प्रद्युम्न माने मन, उनसे अनिरुद्ध हुए। वे अहंकारके प्रतिनिधि हैं। ये चारों ही नारायणकी मूर्तियाँ हैं। उनमेंसे आगे महाभूत और उसके गुण उत्पन्न होते हैं। उसी समय ब्रह्माकी भी उत्पत्ति होती है और तत्त्वोंकी सामग्रीसे वे भूतसृष्टिकी रचना करते हैं।

नारायणीय-आख्यानमें व्यूहवादके अनुषंगमें भगवान्‌के अवतारकी चर्चा आयी है। उसमें भगवान्‌के केवल छः अवतारोंका उल्लेख है।

वैदिक साहित्यमें मित्र, वरुण, अग्नि, इन्द्र इत्यादि देवताको एक ही देवाधिदेवका भिन्न-भिन्न स्वरूप माना गया है। इस प्रकार नारायणीय-उपाख्यानमें कथित मूल भागवत किंवा एकान्तिकधर्म आगे वैष्णवधर्ममें परिणत हुआ। व्यूहवादमें नारायणके केवल सृष्टिकारक गुणोंको ही प्राधान्य दिया गया है, तो अवतारवादमें भगवान्‌के षड्गुणैश्वर्य एवं उनकी अनन्त लीलाको महत्त्व प्राप्त हुआ है। राम, कृष्णादि अवतार विशेषतः पूजनीय, भजनीय हुए।

इस प्रकार वेद तथा अन्य धर्मग्रन्थोंमें अवताररहस्यका विस्तृत वर्णन हुआ है।

अवतार-सिद्धान्तके वैदिक निर्देश

(प्रो० डॉ० श्रीश्रीकिशोरजी मिश्र, वेदाचार्य)

अवतार-सिद्धान्त भारतीय सनातन धर्मकी मूलभूत विशिष्टताओंमें अन्यतम है। भगवान् घट-घटमें व्याप्त हैं, पर अन्तर्हित होनेके कारण योगियोंकी ही योगदृष्टिसे गम्य हैं। स्थूलदृष्टिसे उन्हें नहीं देख सकते, परंतु वे दुष्टोंके शासन और भक्तोंके दुःखनाशके लिये स्थूलदृष्टि पुरुषोंके दृष्टिगम्य सांसारिक पाञ्चभौतिक शरीरसे इस जगतीतलपर आविर्भूत होते हैं। इसी आविर्भावको अवतार कहते हैं।

वेदमें भगवान्‌के अवतार-सिद्धान्तका बोधक मन्त्र इस प्रकार है—

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा वि जायते।
तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा॥

(यजु०, मा०सं० ३१।१९, शब्दान्तरके साथ अथर्व १०।८।१३)

इसका अर्थ है कि (**'प्रजापतिः'**) विश्वकी प्रजाके पालक जगदीश्वर, पुरुषोत्तम (**'अन्तः'**) मध्यमें (**'चरति'**) विचरते हैं अर्थात् सकल प्राणीमात्रके मध्यमें वर्तमान हैं। (**गर्भे**) गर्भमें (**'अजायमानः'**) नहीं होते हुए भी अर्थात् अजन्मा होते हुए भी (**'बहुधा'**) बहुत प्रकारसे राम, कृष्ण आदि अनेक रूपोंसे (**'वि जायते'**) उत्पन्न होते हैं। (**'तस्य'**) अवतारोंके लीला-विग्रहमें उस प्रजापतिकी (**'योनिम्'**) मूल ब्रह्मरूपताको (**'धीराः'**) धीर तत्त्वदर्शी भक्त ही (**'परिपश्यन्ति'**) देखते हैं। (**'तस्मिन् ह'**) उस प्रजापतिमें ही सम्पूर्ण (**'भुवनानि'**) लोक (**'तस्थुः'**) अवस्थित हैं।

गीता (४।६)-में इसी भावको स्पष्ट किया गया है—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

अजन्मा, अविनाशी तथा सब भूतोंका स्वामी होता हुआ भी मैं आत्ममायासे उत्पन्न होता हूँ।

यही तथ्य श्रीतुलसीदासजीने भी श्रीरामचरितमानसमें

संहार किया, कालियदमन एवं कंसका वध किया इत्यादि। वे बड़े होकर वृष्णियोंके राजा माने गये, यद्यपि वे मूलत: यादवों और सात्वतोंके देवके रूपमें प्रसिद्ध थे।

(७) रामायणादि धर्मग्रन्थोंके अनुसार रामावतार त्रेतायुगके अन्तमें हुआ। महर्षि वाल्मीकिकृत रामायणद्वारा राम (दाशरथी राम) लोकविश्रुत हुए। वे सत्यवादी, निर्भीक, दृढ़प्रतिज्ञ, पितृभक्त, बन्धुवत्सल, महापराक्रमी होनेसे अगणित लोकोंमें आदरणीय हुए।

रामभक्तिसाहित्यमें अध्यात्मरामायण तथा श्रीरामचरितमानसका उच्च स्थान है। वैष्णव-सम्प्रदायमें विष्णुकी अपेक्षा उनके अवतार राम एवं कृष्ण किंवा अन्य अवतारको विशेष महत्त्व देकर पूजा की जाती है। विष्णुके अनन्त अवतार हैं। विविध ग्रन्थोंमें विविध नाम-रूपोंमें अवतारका वर्णन हुआ है।

महाभारत शान्तिपर्व (अ० ३३९)-में नारायणी-उपाख्यानमें मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, भार्गवराम (परशुराम), दाशरथी राम एवं वासुदेव कृष्ण—इन छ: अवतारोंकी चर्चा है, आगे हंस और कल्कि आदि अवतार लेकर दस अवतारोंका उल्लेख है। कहीं-कहीं यह संख्या बारह है। श्रीमद्भागवत (६।२।७)-में २४ अवतारोंका निर्देश हुआ है।

ये सभी अवतार लीलावतार नामसे प्रसिद्ध हैं। इनमें भी दस अवतार प्रसिद्ध हैं, जो इस प्रकार हैं—

१. मत्स्य, २. कूर्म, ३. वराह, ४. नृसिंह, ५. वामन, ६. परशुराम, ७. दाशरथी राम, ८. कृष्ण, ९. बुद्ध और १०. कल्कि।

बौद्ध साहित्यमें बुद्धको दाशरथी रामका अवतार माना गया है। हिन्दुओंके अवतार-सिद्धान्तको बौद्धोंके महायान-पन्थने स्वीकार किया और उसको अपने पन्थमें प्रविष्ट किया। बोधिसत्त्वको बुद्धका अवतार माना गया। महायानपन्थने ऐसा घोषित किया कि बुद्ध निर्वाण-प्राप्तिके बाद भी पुन: अवतार लेनेकी क्षमता रखते हैं। भविष्यमें वे (बुद्ध) मैत्रेय बुद्धरूपमें पुन: अवतार ग्रहण करनेवाले हैं।

धर्मग्रन्थोंमें अवतारके दो प्रकार कहे गये हैं—(१) अंशावतार (२) पूर्णावतार। थोड़े-थोड़े उपद्रवोंकी शान्तिके लिये उतने समयपर्यन्त भगवान् अवतार लेते हैं और अपना वह कार्य समाप्त कर वे अन्तर्धान हो जाते हैं। इस प्रकारके अवतारको अंशावतार कहते हैं। नीतिधर्मका उच्छेद करनेवाले एवं भूमिके भारभूत होनेवाले रावण, कंसादि वि विग्रहोंके निर्दलनके लिये भगवान् जब अपने शक्तिसमूहस अवतार लेते हैं और वह कार्य पूर्ण हो जानेके बाद भी समयपर्यन्त इस पृथ्वीपर रहते हैं, ऐसे अवतारको पूर्णाव कहते हैं। इस दृष्टिसे राम-कृष्णादिको पूर्णावतार कहा है। रामके लघु बन्धु लक्ष्मणको तथा कृष्णके ज्येष्ठ ब बलरामको शेषावतार माना गया है, रुक्मिणीको लक्ष्मीका अव तथा गोप-गोपियोंको देव-देवियोंका अवतार कहा गया

किन-किन देवोंने कौन-कौन अंशावतार लिये, विषयमें महाभारत आदिपर्व (अध्याय ५४—६४)-में व गया है। उसमें कतिपय अवतार इस प्रकार वर्णित हैं नित्यावतार, गुणावतार, विभवावतार, तत्त्वावतार, अर्चावत अन्तर्यामी-अवतार, लीलावतार, मन्वन्तरावतार, युगावत आवेशावतार आदि।

अवतारका मुख्य सिद्धान्त इस प्रकार है—

(१) परमेश्वरका एक रूपमें नित्य-लोकमें नित्य विहार होता है और दूसरे रूपमें जगत्प्रवृत्ति होती है।

(२) परमेश्वर एक होनेपर भी स्वत:को अनेक रूप प्रकट कर सकता है।

(३) अवतार नित्य रूप है, मायिक नहीं।

(४) सभी अवतार सच्चिदानन्दविग्रह हैं।

(५) कतिपय अवतार मनुष्यरूपमें होते हैं तो कुछ परिस्थितिवश एवं कुछ अवतार भक्तकी इच्छावश होते हैं

(६) अवतारका मानुषतन ही दिव्य होता है और उसमें दिव्य शक्तिका निवास होता है।

(७) प्रत्येक अवतारकी विशिष्ट देहलीला होती है और विशिष्ट लोक भी होता है।

(८) परमेश्वर अवताररूपमें पृथ्वीपर आनेपर भी अपने दिव्य एवं पूर्णरूपमें निजधाममें विराजमान रहते हैं।

विष्णुकी तरह ही भगवान् शिवने भी विविध प्रसंगमें अनेक अवतार लेकर साधुपरित्राण और दुष्टविनाश किया। इस विषयमें शिवपुराणमें वर्णन है। कालभैरव, शरभ, यज्ञेश्वर, महाकाल, एकादश रुद्र, हनुमान्, नर्तक नट (नटराज), अवधूतेश्वर, वृषेश आदि। शिवकी प्रथम भार्या दक्षकन्या सती ही बादमें हिमालय-सुताके रूपमें अवतरित होकर 'पार्वती' नामसे शिवकी अर्धाङ्गिनी हुईं। पार्वतीको आदिमाया किंवा आदिशक्ति भी कहते हैं। उन्होंने भी असुरमर्दनके लिये अनेक

भगवान्‌के अवतारका प्रयोजन

(शास्त्रार्थपञ्चानन श्रीप्रेमाचार्यजी शास्त्री)

यद्यपि अकारणकरुण करुणावरुणालय अनन्तरूप श्रीभगवान्‌ने समय-समयपर अनन्त अवतार धारण किये हैं, जिनके प्रयोजन भी अनन्त ही हैं और फिर उनमेंसे एक-एक प्रयोजनके अभिप्राय भी असीम हैं, अनन्त हैं, उनकी इयत्ताका निर्धारण करना सर्वथा असम्भव है—

हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थं कहि जाइ न सोई॥

(रा०च०मा० १।१२१।२)

तथापि भगवदवतारके कुछ प्रयोजन अतीव हृदयावर्जक हैं और उनकी अपार करुणाके परिचायक हैं। उनमेंसे कुछेकका यहाँ दिग्दर्शन कराया जा रहा है।

उपनिषदोंके अनुसार आँख, कान, नासिका, जिह्वा आदि समस्त ज्ञानेन्द्रियोंको श्रीभगवान्‌ने बहिर्मुख बनाया है अर्थात् आँखें बाहरका ही सब कुछ देखती हैं, कान बाहरके ही शब्द सुन पाते हैं और जिह्वा भी बाहरके ही पदार्थोंका रसास्वादन कर पाती है, किंतु श्रीभगवान्? वे सर्वसमर्थ स्वयम्भू पुरुष तो समस्त प्राणियोंके शरीरमें भीतर—अन्तःकरणमें ही विराजमान रहते हैं। फलतः ज्ञानेन्द्रियाँ श्रीभगवान्‌के अतीव सन्निकट होते हुए भी उनके दिव्य दर्शन आदि लोकोत्तर आनन्दको प्राप्त करनेसे सर्वदा वञ्चित ही रह जाती हैं। कभी लाखोंमें कोई एक बिरला धीर पुरुष ही अन्तर्मुख होकर भीतर सुप्रतिष्ठित उस अमृत-तत्त्वका साक्षात्कार कर पाता है—

पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयंभू-
स्तस्मात् पराङ्पश्यति नान्तरात्मन्।
कश्चिद् धीरः प्रत्यगात्मानमैक्ष-
दावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन् ॥

(कठोपनिषद् २।१।१)

इसलिये अपनी इस दुस्सह व्यथासे उपतप्त होकर ज्ञानेन्द्रियोंने श्रीभगवान्‌को उपालम्भ देने प्रारम्भ किये और कहा कि हे भगवन्! दूसरे जीवोंके ऊपर सम्भव है आपने करुणा की होगी, परंतु हमें तो आपने बहिर्मुख बनाकर एवं अपने दर्शनोंसे भी वञ्चित करके एक प्रकारसे मार ही डाला है। जब कोई बिरला धीर पुरुष ही **'आवृत्तचक्षुः'** (अन्तर्मुख) होकर आपके दिव्य दर्शन प्राप्त कर सकेगा, तब आपके **'सर्वसौलभ्य'** अर्थात् सभीके लिये सर्वदा सुलभ रहनेवाले गुणका क्या होगा? उसकी सार्थकता किस प्रकार होगी? क्या आपका यह महनीय गुण वन्ध्य नहीं हो जायगा? अतएव हे नाथ! आप हमारे लिये भी सुलभ हो जाइये।

ज्ञानेन्द्रियोंकी इस उपालम्भपूर्ण प्रार्थनासे श्रीभगवान् द्रवित हो उठे तथा करुणार्द्र होकर उनके सम्यक् परितोषके लिये एवं ***'सब मम प्रिय सब मम उपजाए'*** अपने इस वचनकी सार्थकताके लिये अनुपम सौन्दर्य-शौर्यादि गुणगणोंसे सम्पन्न लोकोत्तर दिव्य कलेवरसे वे अवतार धारण करने लगे।

उक्त उपनिषद् मन्त्रमें **'व्यतृणत्'** क्रिया-पद अत्यन्त साभिप्राय है, जो व्याकरणकी **'तृहू हिसी हिंसायाम्'** धातुसे निष्पन्न हुआ है और इसका अर्थ है—हत्या कर दी अथवा मार डाला। श्रीभगवान्‌के द्रवित होनेमें इस क्रियापदने महत्त्वपूर्ण भूमिका निबाही है।

इस औपनिषद-प्रसङ्गके परिप्रेक्ष्यमें कतिपय अभिज्ञोंकी मान्यता है कि श्रीभगवान् अपने सौशील्य, औदार्य, वात्सल्य आदि गुणगणोंकी चरितार्थताके लिये इस मर्त्यलोकमें अवतीर्ण होते हैं। यदि ऐसा न हो तो उनके क्षमाशीलता, पतितपावनत्वादि गुणगण निरर्थक एवं वन्ध्य हो जायँगे। इस संदर्भमें श्रीशुकदेवजीका कथन अत्यन्त सारगर्भित है। वे कहते हैं कि अव्यय, अप्रमेय, निर्गुण, निराकार, निर्विकार एवं निखिल गुणागार श्रीभगवान् साधारण जनोंके कल्याणके लिये अवतार धारण किया करते हैं—

नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप।
अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः॥

(श्रीमद्भा० १०।२९।१४)

उक्त कथनका स्वारस्य यही है कि अपने महनीय गुणोंके कारण असाधारण माने जानेवाले श्रीभगवान्‌का सर्वसाधारणके कल्याणार्थ, साधारण बन जाना ही उनका अवतार धारण करना है। इसीलिये भगवदीय गुणोंके चरम विकासके अनेक मनोरम-स्थल हमें यत्र-तत्र देखनेको मिलते हैं। विभीषण-शरणागतिके समय श्रीभगवान्‌के शरणागतवात्सल्यको देखकर कौन आनन्दसे गद्गद नहीं हो जाता है? ***'रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड'*** कहकर जिन्हें अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायकके रूपमें सुप्रतिष्ठित

किया गया हो, उनका अपने समस्त ऐश्वर्यको भुलाकर वानरोंको अपना अन्तरङ्ग, सुहृद् बनाना सौशील्यगुणकी पराकाष्ठा है। तभी तो गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने भगवद्गुणसे मुग्ध होकर कहा है—

प्रभु तरु तर कपि डार पर ते किए आपु समान।
तुलसी कहूँ न राम से साहिब सील निधान॥

(दोहावली ५०)

आलवन्दारस्तोत्रमें श्रीयामुनाचार्यस्वामी कहते हैं कि हे प्रभो! मेरे लिये तो आपके अतिरिक्त अन्य कोई दयालु नहीं है। इसलिये दीन और दयालुका यह अद्भुत संयोग विधाताने उपस्थित कर दिया है। कृपया इसे छोड़िये मत। इस सम्बन्धका निर्वाह करते हुए मेरा उद्धार कीजिये—

तदहं त्वदृते न नाथवान्
मदृते त्वं दयनीयवान्न च।
विधिनिर्मितमेतदन्वयं
भगवन् पालय मा स्म जीहपः॥

वेदादि शास्त्र जिन्हें सर्वदा अजित अर्थात् कभी न हारनेवाले कहते हों, उन्हींका खेलमें हार जानेपर श्रीदामाको अपने कन्धेपर बिठाना—'**उवाह भगवान् कृष्णः श्रीदामानं पराजितः**' छछियाभर छाछके लिये गोपाङ्गनाओंको नाचकर दिखाना—'**गोधूलिधूसराङ्गो नृत्यति वेदान्तसिद्धान्तः**', रावणवधके अनन्तर उसके और्ध्वदैहिक संस्कारके लिये विभीषणको प्रेरित करना—'**क्रियतामस्य संस्कारस्तवाप्येष यथा मम**', निकृष्ट समझे जानेवाले वनचर कोल, भील, किरातोंको मित्रकी भाँति गले लगाना इत्यादि कुछ ऐसे कार्य हैं जो अवतार धारण करके ही सम्पन्न किये जा सकते थे। वैकुण्ठ, साकेत, गोलोक आदि दिव्य लोकोंमें तो इन कार्योंका किया जाना सर्वथा असम्भव ही था।

अवतारके मूलमें करुणा होती है, वही श्रीभगवान्‌को अज्ञानावच्छिन्न सामान्यजनोंके उद्धारके लिये प्रेरित करती है। गुरुदेव श्रीरवीन्द्रनाथठाकुरके एक पूजागीतमें इसी आशयकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

'ताइ तोमार आनन्द आमार पर। तुमि ताइ एसेछ नीचे। अमाय नइले त्रिभुवनेश्वर! तोमार प्रेम हत ये मिछे।'

हे त्रिलोकीनाथ! तू (अवतार लेकर) नीचे उतरता है, क्योंकि तेरा आनन्द हमपर ही निर्भर है। यदि हम न होते तो तुम्हें प्रेमका अनुभव कहाँसे होता? (तुम किसके साथ हिल-मिलकर बातें करते, खेलते, खाते-पीते?)

श्रीभगवान्‌की क्षमाशीलताको लक्ष्य करके किसी क्षुद्रजनका यह कथन भी कम मनोरञ्जक नहीं है कि हे भगवन्! यदि हमारे-जैसे अहर्निश पाप करनेवाले लोग न हों तो आप क्षमा किसे करेंगे? आपकी क्षमाशीलता वन्ध्य न हो जायगी? आपकी अदालत हमारे कारण ही तो चल रही है—

गुनाहों की होती न आदत हमारी
तो सूनी ही रहती अदालत तुम्हारी।

अन्तमें भगवती कुन्तीकी एक अतिशय महत्त्वपूर्ण उक्तिपर भी दृष्टिपात कर लें, जिसमें भगवदवतारके एक विलक्षण प्रयोजनकी ओर संकेत किया गया है। अखण्ड सच्चिदानन्द परमात्मा श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए वे कहती हैं—

तथा परमहंसानां मुनीनाममलात्मनाम्।
भक्तियोगविधानार्थं कथं पश्येम हि स्त्रियः॥

(श्रीमद्भा० १।८।२०)

अमलात्मा परमहंस महामुनीन्द्रोंको भक्तियोगका विधान करनेके लिये श्रीभगवान्‌का अवतार होता है।

इस कथनका ललित निष्कर्ष यह है कि ब्रह्माद्वैत-भावनामें निष्ठा रखनेवाले अथ च निर्विकल्प समाधिके द्वारा ब्रह्मसाक्षात्कार सुखानुभूति प्राप्त करनेवाले परमहंस महात्माओंको भक्तियोगद्वारा सरस बनानेके प्रयोजनसे श्रीभगवान् अवतार धारण करते हैं। वास्तवमें अद्वैततत्त्व तो अव्यवहार्य होनेसे व्यवहारमें अनुपादेय ही है। व्यावहारिक सत्य तो द्वैतमें ही परिनिष्ठित है। नैष्कर्म्यविधिसे समुत्पन्न उत्तमोत्तम ज्ञानकी भी भगवद्भक्तिके बिना कोई शोभा नहीं है। वह सर्वथा शुष्क है। उसमें सरसता भक्तिके संस्पर्शसे ही आती है—

नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं
न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम्।

(श्रीमद्भा० १।५।१२)

इतना ही नहीं, भक्तिके माहात्म्यमें यहाँतक कहा गया है कि जो महानुभाव निखिल कल्याणामृतनिष्यन्दिनी भगवद्भक्तिकी उपेक्षा करके केवल शुष्क ज्ञानकी उपलब्धिमें ही श्रमशील रहते हैं और काय-क्लेश अनुभव किया करते हैं, उनका यह प्रयास चावलकी आशामें भूसीको पीटते रहनेकी तरह सर्वथा व्यर्थ ही है। अन्तमें केवल क्लेश ही उनके हाथ लगा करता है, चावल नहीं—

श्रेयःस्रुतिं भक्तिमुदस्य ते विभो
क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते
नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम्॥
(श्रीमद्भा० १०।१४।४)

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीभगवान्‌के अवतारधारणका प्रयोजन अपने निर्गुण-निराकार स्वरूपका परित्याग करके सगुण-साकार विग्रहमें अनन्तकन्दर्पदर्पदमनशील, परम सुन्दर स्वरूपसे प्रकट होकर एक ओर परमहंस योगीन्द्र-मुनीन्द्रोंके शुष्क ज्ञानसे भरे जीवनमें भक्तियोगकी सरसता उत्पन्न करना है तो दूसरी ओर ज्ञानेन्द्रियोंसे लेकर साधारण-जनोंतकके लिये सुलभ होकर अपने सौशील्य, शरणागत-वात्सल्य, औदार्य, पतितपावनत्वादि सद्गुणोंका संसारमें विस्तार करना है।

भगवान्‌के अवतारका रहस्य

(श्रीरवीन्द्रनाथजी गुरु)

या लीला गोकुलान्तर्मधुपुरिरचिता याः कृता द्वारवत्यां
क्षित्यां नित्यावतारैः प्रतियुगमुचिताः सूचिताः प्राङ्मुनीन्द्रै-
स्तास्ता विस्तारयन्यो वसति शितिगिरौ वेदवेद्योऽवतारी
नित्ये धाम्नि स्वनाम्नि स्फुरतु मुररिपुः सोऽयमन्तः सदा नः॥

वृन्दावन, मथुरा एवं द्वारकापुरीमें जो-जो अवतार-लीलाएँ हुई हैं तथा प्राचीन मुनि-ऋषियोंके द्वारा सूचित प्रतियुगोचित जो-जो लीलावतारसमूह इस धरतीपर हुए हैं, उनके विस्तार-प्रसारपूर्वक जो वेदवेद्य अवतारी भगवान् अपने नित्यधाम श्रीपुरुषोत्तमपुरी-क्षेत्रमें समुपविष्ट हैं, वे ही श्रीनीलाचलविहारी मुरारि सदैव हमारे अन्तःकरणमें स्फुरित हों।

अखण्ड, सत्-चित्-आनन्द, इन्द्रियोंसे अग्राह्य एवं एक अद्वितीय, त्रिगुणातीत, निराकार, परब्रह्म, परमात्मा ही सत्पुरुषोंकी रक्षा तथा दुष्ट जनोंका संहार करनेके निमित्त युग-युगान्तरसे सगुण-साकारस्वरूपमें अवतारग्रहणपूर्वक सनातन धर्मका संस्थापन करते आ रहे हैं। भगवान्‌के अवतारका प्रयोजन भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सदाचारपूर्ण दिव्य लीलाओंसे अपने भक्तोंको अपनी ओर आकृष्ट करके उनको अनुप्राणित करना और संसारसागरसे उनका समुद्धार करना है।

भगवान्‌की अवतार-कथाओंके तत्त्व-रहस्यको जानना, समझना केवल भगवत्कृपासे ही साध्य है। जब संसारके लोग विषयोंके मोहमें पड़कर भगवान्‌को भूल जाते हैं और उनकी स्वाभाविक विषमताके कारण पाप-तापसे झुलसने लगते हैं तब उन्हें दुःखसे बचानेके लिये, अनन्त शान्ति देनेके लिये और उनका महान् अज्ञान मिटाकर अपने स्वरूपका बोध कराने एवं अपनेमें मिला लेनेके लिये स्वयं भगवान् आते हैं और अपने आचरणों, उपदेशों तथा अपने दर्शन, स्पर्श आदिसे जगत्‌के लोगोंको मुक्तहस्तसे कल्याणका दान करते हैं। यदि वे स्वयं आकर जीवोंकी रक्षा-दीक्षाकी व्यवस्था नहीं करते, जीवोंको अपनी बुद्धिके बलपर सत्य-असत्यका निर्णय करना होता और अपने निश्चयके बलपर चलकर उद्धार करना होता तो ये करोड़ों कल्पोंमें भी अपना उद्धार कर सकते या नहीं, इसमें संदेह है; परंतु भगवान् अपने इन नन्हें-नन्हें शिशुओंको कभी ऐसी अवस्थामें नहीं छोड़ते, जब वे भटककर गड्ढेमें गिर जायँ। जब कभी ये अपने हाथमें कुछ जिम्मेदारीका काम लेना चाहते हैं और इसके लिये उनसे प्रार्थना करते हैं, तब बहुत समझा-बुझाकर सृष्टिका रहस्य स्पष्ट करके उन्हें अपने सामने कुछ काम दे देते हैं।

भगवान्‌के जन्म-कर्मकी दिव्य अलौकिक अवतार-लीला-कथाओंको जो तत्त्वतः जानता है अथवा भगवत्-स्मरणपूर्वक इस संसारमें पद्मपत्रकी भाँति रहता है, वह अन्ततः भगवान्‌को ही प्राप्त होता है।

यह स्थूल जगत् भगवदीय बहिरङ्गलीलाका एक रूप है। उनकी अन्तरङ्ग अवतार-लीलाएँ भी उसमें निहित हैं, जो दिव्यातिदिव्य एवं गुह्यतम भी हैं। अपने परिकरोंके साथ भगवान् नित्य लीला-विहार करते हैं, भगवान्‌के अनन्य भक्त ही भगवदीय अन्तरङ्ग-अवतार-कथाओंको जानते हैं।

भगवान्‌की नित्य अवतार-लीला अब भी चल रही है, उसका कहीं विराम नहीं होता। वैकुण्ठ, साकेत, गोलोक तथा कैलास आदि परमधामोंमें उनकी मधुरातिमधुर अवतार-कथाओंका रसास्वादन उनके अनन्य भक्तोंको सुलभ होता रहता है। भगवत्कथा-चिन्तन, अवतारोंका निदिध्यासन ही भगवत्प्राप्तिका अमोघ साधन है।

सचराचर विश्व-ब्रह्माण्डके स्वामी श्रीभगवान्‌की

त्रिगुणात्मिका अवतार-कथा अपरम्पार है। तत्त्वत: सृष्टिके प्रत्येक कणमें अनुक्षण उनकी अवतार-लीला चल रही है। भगवान्‌की योगमायाका यह जादू है कि जो हमें प्रतिक्षण नचा रहा है और हम समझते हैं कि अपनी प्रसन्नता और स्वानन्दके लिये हम स्वयं नृत्यरत हैं। सृष्टिके प्रशस्त रङ्गमञ्चपर सर्वत्र ही विस्मयोत्पादक-लीला चल रही है।

श्रीरामायण, महाभारत, पुराणादि सर्वशास्त्रोंने यह प्रमाणित किया है कि भगवान् अधर्मकी अभिवृद्धि होनेपर धराभारनिवारणार्थ मनुष्यलोकमें अवतार-ग्रहणपूर्वक अधर्मका नाश करते हैं।

आज हिंसा-प्रतिहिंसा, अधर्म-अत्याचार, छल-कपटाचार तथा प्राणियोंमें परस्पर वैर-विरोधसे पृथ्वीदेवी भयाक्रान्त हो रही हैं। अधर्माचार, कलह, विद्वेषाग्नि, युद्ध और भोग-तृष्णाकी पैशाचिक-ताण्डवलीलासे सारा संसार विनाशकी ओर गति कर रहा है। अत: इस समय भगवान्‌की अवतार-कथाओंका प्रचार-प्रसार अपरिहार्य है। सच्चिदानन्द ईश्वर ही जगत्‌के अहर्निश रक्षक हैं एवं उनकी अवतार-कथा ही कलियुगके समस्त पापोंका विध्वंस करनेवाली है—

अवति योऽनिशं विश्वं सच्चिदानन्द ईश्वरः।
अवतारकथा तस्य कलिकल्मषनाशिनी॥

जो मानव दुस्तर संसार-सागरसे पार जाना चाहते हैं, उनके निमित्त भगवान्‌की अवतार-कथाके रसास्वादनको छोड़कर अन्य कोई अवलम्ब नहीं।

एक बार देवोंने दानवोंपर विजय पा ली। विजय तो भगवान्‌की ही थी, परंतु अभिमानवश देवोंने उसे स्वीय विजय समझा। अत: भगवान्‌के अवतारका प्रयोजन आवश्यक था। श्रीभगवान्‌ने यक्षरूपसे देवोंके समक्ष प्रकट होकर देवताओंके विजय-अभिमानको चूर्ण किया। यह जगत् भी भगवान्‌का आद्य अवतार है। द्वापरयुगमें सती द्रौपदीके लज्जानिवारणार्थ भगवान्‌की वस्त्रावतार-कथा प्रसिद्ध है। सृष्टिसृजनमें चतु:सन, वराह, देवर्षि नारद, नर-नारायण, कपिल, दत्तात्रेय, यज्ञपुरुष, ऋषभदेव, हंस, पृथु, मत्स्य, कूर्म, धन्वन्तरि, मोहिनी, नृसिंह, वामन, व्यास, हयग्रीव, हरि, परशुराम, राम, बलराम, कृष्ण, बुद्ध तथा कल्कि आदि अनेक अवतार हुए हैं।

श्रीभगवान्‌की इन अवतार-कथाओंका कीर्तन, श्रवण एवं स्मरण करके हृदयको शुद्ध करना चाहिये। अन्त:स्थित परमपिता परमात्माको शीघ्र पहचानकर परस्पर प्रेम और विमल मैत्रीका सम्पादन करना ही परम श्रेयस्कर है। वस्तुत: हमारे हित-साधनके निमित्त ही भगवान् आप्तकाम होते हुए भी अवतार धारण करते हैं—

'नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप।'

(श्रीमद्भा० १०। २९। १४)

अवतार-कथाएँ हमें भगवान्‌की ओर उन्मुख कराती हैं तथा हमारा सर्वविध कल्याण करनेमें समर्थ हैं।

~~~ o ~~~

जीवोंपर अनुग्रह करना ही श्रीभगवान्‌के अवतारका हेतु है

(श्रीशिवरतनजी मोरोलिया, शास्त्री)

अवतारका अर्थ है—उतरना। सच्चिदानन्दस्थितिसे जब परमात्मा भक्तवात्सल्यके कारण मायाके क्षेत्रमें उतर आते हैं तब इसे 'अवतार' कहते हैं। भगवान्‌का अवतार महान् ज्ञानीमें रसोल्लास लानेके लिये, अद्वैतनिष्ठके ब्रह्मानन्दमें उल्लास लानेके लिये तथा परमहंसोंको श्रीपरमहंस बनानेके लिये हुआ करता है।

जगत्‌में धर्मकी स्थापना, ज्ञानके संरक्षण, भक्तोंके परित्राण तथा आततायी असुरोंके दलन एवं प्रेमी भक्तोंकी प्रेमोत्कण्ठा पूर्ण करनेके लिये प्रभु बार-बार अवतीर्ण होते हैं। ईश्वरका अवतरण इस तथ्यका स्मरण कराता है कि आसुरी शक्तियाँ सृष्टिमें व्याप्त देवत्व तथा सारभूत अच्छाइयोंपर विजय नहीं प्राप्त कर सकतीं। इसलिये जब धर्मकी अवनति और अधर्मकी उन्नति होती है, तब दुष्टोंका नाश करने, सज्जनोंकी रक्षा करने तथा न्याय (धर्म)-की स्थापनाके लिये ईश्वर धरतीपर आते हैं।

जब धार्मिक एवं ईश्वरप्रेमी सदाचारी पुरुषों तथा निरपराध एवं निर्बल प्राणियोंपर बलवान् और दुराचारी मनुष्योंका अत्याचार बढ़ जाता है तथा उसके कारण लोगोंमें सद्‌गुण और सदाचारका अत्यन्त ह्रास होकर दुर्गुण तथा अनाचार अधिक फैल जाता है, तब यह धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धिका स्वरूप कहलाता है। ऐसी अवस्थामें परम दयालु भगवान् अपने प्रेमी भक्तोंका उद्धार करने,
~~~

उनकी इच्छाके अनुसार उन्हें परम आनन्दित करने तथा अपने दिव्य गुण, प्रभाव, नाम, रूप, लीला, धाम, तत्त्व और रहस्यका विस्तार करनेके लिये लीलाविग्रह धारण करते हैं। इसके साथ ही मनुष्योंके अन्त:करणमें वेद, शास्त्र, धर्म और परलोकके प्रति श्रद्धा उत्पन्न कराकर संसार-सागरसे उनका उद्धार करनेके लिये अनेक स्वरूपोंमें प्रकट होते हैं।

भगवान्के निर्गुण, सगुण—दोनों ही रूप नित्य और दिव्य हैं। अपनी अत्यन्त दयालुता और शरणागतवत्सलताके कारण जगत्के प्राणियोंको अपनी शरणागतिका सहारा देनेके लिये ही भगवान् अपने अजन्मा, अविनाशी और महेश्वर-स्वभाव तथा सामर्थ्यके सहित ही नाना रूपोंमें प्रकट होते हैं और अपनी अलौकिक लीलाओंसे जगत्के प्राणियोंको परमानन्दके महासागरमें निमग्न कर देते हैं।

जब सत्त्वगुणसम्पन्न जीव साधनामें उन्नति करते-करते इस दशापर पहुँच जाते हैं कि भगवद्दर्शनके बिना उन्हें चैन नहीं मिलता, तब श्रीभगवान् अपने दिव्य धामसे अवतीर्ण होकर उन्हें कृतार्थ करते हैं। जीवोंपर अनुग्रह प्रदर्शित करना ही श्रीभगवान्के अवतारका मुख्य हेतु है। इसी अनुग्रहप्रदर्शनको गीतामें 'साधु-परित्राण' कहा गया है। संतोंपर अनुग्रह प्रदर्शित करते समय श्रीभगवान् कभी-कभी संतोंके विरोधी और विपक्षियोंका निग्रह भी करते हैं। जैसे कि गजेन्द्रके उद्धारके साथ ही उन्होंने ग्राहका निग्रह भी किया। गीतामें इस निग्रहको 'दुष्कृतोंका विनाश' कहा गया है।

भगवान् तो सर्वशक्तिमान् हैं, वे बिना अवतार लिये भी सब काम कर सकते हैं, लेकिन लोगोंपर विशेष दया करके अपने दर्शन और स्पर्श तथा भाषणादिके द्वारा सुगमतासे उन्हें उद्धारका शुभ अवसर देनेके लिये तथा अपने प्रेमी भक्तोंको अपनी लीलादिका आस्वादन करानेके लिये साकाररूपसे प्रकट होते हैं; क्योंकि यह काम बिना अवतारके नहीं हो सकता। भगवान् सृष्टि-रचना और अवतारलीलादि जितने भी कर्म करते हैं, उनमें उनका किञ्चिन्मात्र भी स्वार्थका सम्बन्ध नहीं है, केवल लोगोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही वे मनुष्यादि अवतारोंमें नाना प्रकारके कर्म करते हैं। जीवमात्रका परम हित-साधन ही परमात्माका स्वार्थ है।

भगवान्के अवतारका कोई निश्चित समय नहीं होता कि अमुक युगमें, अमुक वर्षमें, अमुक महीनेमें और अमुक दिन ही भगवान् प्रकट होंगे। जिस समय भगवान् प्रकट होना आवश्यक समझते हैं, उसी समय प्रकट हो जाते हैं। जिस प्रकार किसी एक अक्षय जलाशयसे असंख्य छोटे-छोटे जलप्रवाह निकलकर चारों ओर प्रवाहित होते हैं, उसी प्रकार सत्त्वनिधि परमेश्वरसे विविध अवतारोंका प्राकट्य होता है। अवतारके पुरुषावतार, गुणावतार, कल्पावतार, युगावतार, पूर्णावतार, अंशावतार, कलावतार, आवेशावतार आदि अनेक भेद हैं। श्रीमद्भागवत तथा अन्य पुराणग्रन्थोंमें सर्वसमर्थ, कल्याणविग्रह प्रभुके मुख्य दस तथा चौबीस अवतारोंका विशेष वर्णन है। जिस प्रकार परतत्त्व भगवान् विष्णु समय-समयपर अवतार लिया करते हैं, उसी प्रकार उनकी लीला-सहचरी भगवती लक्ष्मीजी भी अवतार लिया करती हैं। यों तो श्री और विष्णु एक ही हैं, तथापि भक्तोंके अनुग्रहार्थ वे दो रूपोंमें प्रकाशित होते हैं। उदाहरणके लिये श्रीमन्नारायण जब रघुकुलमें श्रीरामजीके रूपमें अवतीर्ण हुए तब लक्ष्मीजी भी जनकनन्दिनी श्रीसीताके रूपमें आयीं।

चौबीस अवतारोंका हेतु—पहला अवतार सनत्कुमारोंका है, वह ब्रह्मचर्यका प्रतीक है। सब धर्मोंमें ब्रह्मचर्य पहले आता है। इससे मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार पवित्र होते हैं। दूसरा अवतार वराहका है, वह संतोषका प्रतीक है। तीसरा अवतार नारदजीका है, ये भक्तिके अवतार हैं, नाम-संकीर्तनके अवतार हैं। जो ब्रह्मचर्यपालन करे और प्राप्तस्थितिमें संतोष माने, उसे नारद अर्थात् भक्ति मिलेगी। चौथा अवतार नर-नारायणका है, भक्ति मिले तो उससे भगवान्का साक्षात्कार होता है। भक्तिद्वारा भगवान् मिलते हैं। भगवान् नर-नारायणका अवतार तपस्यारूप धर्मकी प्रतिष्ठाके लिये हुआ। पाँचवाँ अवतार कपिलदेवजीका है, जो ज्ञान-वैराग्यस्वरूप है। ज्ञान और वैराग्यके साथ भक्ति आयेगी तो भक्ति सदाके लिये दृढ़ रहेगी। छठा अवतार दत्तात्रेयजीका है, जो सद्गुरुस्वरूपकी प्रतिष्ठाके लिये हुआ।

ऊपर बताये गये पाँच गुण—ब्रह्मचर्य, संतोष, भक्ति, ज्ञान और वैराग्य आयेंगे तो आप गुणातीत होंगे, भगवान

आपके यहाँ आयेंगे। सातवाँ अवतार यज्ञका है। यज्ञके माध्यमसे धर्मका प्रचार करनेके लिये आदिपुरुष भगवान् यज्ञके रूपमें अवतरित हुए। भगवान्‌का आठवाँ अवतार ऋषभदेवके रूपमें हुआ। यह अवतार रजोगुणसे भरे हुए लोगोंको मोक्षमार्गकी शिक्षा देनेके लिये ही हुआ था। नवाँ अवतार पृथुमहाराजका है, ये धर्मपरायण थे तथा इन्हींके नामसे भूमिका नाम 'पृथ्वी' पड़ा। दसवाँ अवतार मत्स्य-नारायणका है, इस अवतारमें भगवान्‌ने वैवस्वत मनु तथा सप्तर्षियोंको अत्यन्त दिव्य तथा लोककल्याणकारी उपदेश दिया। ग्यारहवाँ अवतार कूर्मका है, जो अमृतप्राप्तिके लिये हुआ। बारहवाँ अवतार धन्वन्तरिका है, इन्होंने लोककल्याणार्थ अवतार ग्रहण किया। आरोग्यदेवके रूपमें इनकी पूजा की जाती है। तेरहवाँ अवतार मोहिनीका है, भगवान्‌ने इस अवतारमें सिद्ध किया कि सम्पूर्ण सृष्टि मायापति भगवान्‌की माया है, कामके वशीभूत सभी प्रभुके उस मायारूपपर आकृष्ट हैं। इस अवतारसे प्रभुने यह संदेश दिया है कि आसुरभावसे अमरता प्रदान करनेवाला अमृत प्राप्त होना सम्भव नहीं; वह तो करुणामय प्रभुकी चरणसेवासे ही सम्भव है। चौदहवाँ अवतार नरसिंह स्वामीका है। नरसिंह अवतार पुष्टि-अवतार है, यह अवतार भक्त प्रह्लादपर कृपा करनेके लिये हुआ है, सच्चे भक्तके विश्वासकी रक्षा करनेके लिये हुआ है। प्रह्लादजीने अपनी आस्थाके बलसे खम्भेसे भगवान्‌को प्रकट कर दिया। ईश्वर सर्वत्र है, सर्वव्यापक है—ऐसा बोलो नहीं, उसका अनुभव करो, यह शिक्षा इस अवतारसे प्राप्त होती है। पंद्रहवाँ अवतार भगवान् वामनका है, जो पूर्ण निष्काम है। उसके ऊपर भक्तिका, नीतिका छत्र है; जिसने धर्मका कवच पहना, उसे भगवान् भी नहीं मार सकेंगे, राजा बलिकी तरह। यह वामन-चरित्रका रहस्य है, परमात्मा बड़े हैं, तब भी बलिके आगे वामन अर्थात् छोटे बनते हैं। भगवान् भक्तको अपनेसे बड़ा मानते हैं, यह इस अवतारकी शिक्षा है। सोलहवाँ अवतार हयग्रीवका है, इसमें भगवान्‌ने दैत्योंसे वेदोंकी पुनः प्राप्ति की। भगवान् विष्णु शास्त्र, भक्त एवं धर्मके त्राण तथा अधर्मका नाश करनेके लिये हयग्रीवरूपमें प्रकट हुए। शास्त्रकी रक्षा भगवान् स्वयं करते हैं। इसीलिये उन्होंने शास्त्रप्रमाणको सर्वोपरि बताते हुए कर्मोंका नियामक बताया है। भगवद्वाणी है—**'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ। ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥'** (गीता १६। २४) सत्रहवाँ अवतार हरिका हुआ। इस अवतारमें भगवान्‌ने गजेन्द्रका उद्धार कर उसे अपना पार्षद बनाया। इससे यह ज्ञात होता है कि भगवान् भक्तको अपने धाममें बुला लेते हैं। अठारहवाँ अवतार श्रीपरशुरामजीका हुआ। ये श्रीविष्णुके आवेशावतार माने गये हैं। इन्होंने इक्कीस बार क्षत्रियोंका संहार किया। उन्नीसवाँ अवतार श्रीव्यासभगवान्‌का हुआ। ये भगवान् नारायणके कलावतार थे। महर्षि व्यास मूर्तिमान् धर्म थे। वे दया, धर्म, ज्ञान एवं तपकी परमोज्ज्वल मूर्ति थे। ये ज्ञानके अवतार थे। बीसवाँ अवतार भगवान् हंसका हुआ। इसमें भगवान् हरिने हंसरूप धारणकर सनत्कुमारादि मुनियोंको ज्ञानमार्ग तथा आत्मतत्त्वका रहस्यमय सूक्ष्म उपदेश दिया। इक्कीसवाँ अवतार श्रीरामजीका हुआ। यह अवतार मर्यादापुरुषोत्तमका है। बाईसवाँ अवतार श्रीकृष्णका हुआ, जो लीलापुरुषोत्तम कहलाते हैं—ये दोनों अवतार पूर्ण अवतार हैं। तेईसवाँ अवतार बुद्ध अवतार है, भगवान् बुद्धने अहिंसाको परम धर्म माना था। कलियुगके अन्तमें भगवान् कल्किरूपमें अवतार लेंगे—ऐसी बात श्रीमद्भागवतमें कही गयी है। यह भगवान्‌का चौबीसवाँ अवतार होगा।

जिस प्रकार कोई राजा अपने राज्यमें सज्जनोंको पुरस्कारद्वारा प्रोत्साहित करके, दुर्जनोंको तिरस्कारद्वारा निरुत्साहित करके प्रजामें अभ्युदयशील सामञ्जस्य स्थापित करता है, उसी प्रकार भगवान् भी यथासमय अवतीर्ण होकर यथायोग्य निग्रहानुग्रह प्रदर्शित करते हुए सृष्टिमें धर्मकी स्थापना किया करते हैं। समस्त धर्मोंका पर्यवसान श्रीभगवत्साक्षात्कारमें ही है। भगवत्साक्षात्कार तभी हो सकता है जब भगवान्‌में निष्ठा हो, निष्ठा तभी होती है जब अनुराग हो, अनुराग उसीमें होता है, जिसकी ओर आकर्षण होता है। अतएव जीवमात्रको अपनी ओर आकृष्ट करनेके लिये ही श्रीभगवान् अवताररूपमें ऐसी-ऐसी मोहिनी क्रीडाएँ करते हैं, जिनका आस्वादन कर भक्तोंका मन उनमें हठात् आसक्त हो जाता है। यही ईश्वरकी असीम अनुकम्पा है।

भक्तकी अतीव प्रियता—अवतारका प्रमुख कारण

(श्रीरघुराजसिंहजी बुन्देला 'ब्रजभान')

व्यक्ति जिससे प्रेम करता है, उसका सामीप्य चाहता है; अपने प्रेमीके वियोगमें वह नहीं रह सकता। प्रेमी-प्रेमास्पदका यह रिश्ता सनातन है।

भक्त और भगवान् सनातन प्रेमी हैं। भक्त भगवान्के बिना नहीं रह सकता और भगवान् भक्तके बिना नहीं रह सकते। भक्त और भगवान्के बीच एकमात्र प्रेमका रिश्ता होता है। प्रेमके सिवाय किसी अन्य उपायसे भगवान्को प्राप्त नहीं किया जा सकता। यद्यपि कृपा और करुणाके कारण भी भगवान् प्रकट होते हैं तथापि कृपा और करुणा प्रेमकी ही कनिष्ठ विभूतियाँ हैं। पुरुषोत्तम भगवान् केवल प्रेमसे ही प्रकट होते हैं—*'प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥'* प्रेम सदा निष्काम होता है, जिसे गोपीभाव अर्थात् गुप्त महाभाव भी कहा जाता है।

भगवान् सबके प्रेमास्पद होते हैं। उनके पास इस प्रकारके रूप, गुण, स्वभाव और लीलाकर्तृत्व होते हैं, जो सबको आकर्षित करते हैं। सबको आकर्षित करना उनका सहज स्वभाव है। इसी कारण उन्हें 'कृष्ण' कहा जाता है।

किंतु भगवान्को आकर्षित करनेका स्वभाव भक्तके पास सहज नहीं होता। उसे इस स्वभावका अर्जन करना होता है। वह स्वभाव क्या है, जिससे भक्त भगवान्को आकर्षित करे तथा जिसके कारण भगवान् भक्तको खोजते फिरें, उसका पता पूछते फिरें और उससे मिलनेको रोते फिरें।

वह स्वभाव, जिसके कारण भक्त भगवान्को अतिशय प्रिय लगने लगता है, स्वयं भगवान्ने ही श्रीमद्भगवद्गीतामें अर्जुनको इस विषयमें बताया है। उन्होंने भक्तकी अतीव प्रियताके लक्षण इस प्रकार कहे हैं—

(१) अद्वेष्टा सर्वभूतानाम्—जो सम्पूर्ण भूत प्राणियोंसे द्वेष नहीं करता अर्थात् जो द्वेषभावसे रहित है।

(२) मैत्रः—जो सबका मित्र होता है, जिसका कोई भी शत्रु नहीं होता, जो अजातशत्रु और विश्वमित्र होता है।

(३) करुण एव च—जो अपनेसे दीन-हीन व्यक्तियोंसे, पशु-पक्षियोंसे, वनस्पतियोंसे तथा दरिद्रों, अज्ञानियों, रोगियों और अश्रद्धालुओंके प्रति द्वेष-रोष न करके करुणासे व्यवहार करता हुआ उनकी पारमार्थिक सेवा करता रहता है।

(४) निर्ममः—जो निर्मम है अर्थात् जो ममतासे रहित है, जो 'न मम' भाववाला है। जो परतासे मुक्त है अर्थात् जिसके लिये पराया कोई नहीं है, जो अपने-परायेकी ममता-परतावाली भेद-बुद्धिसे ऊपर उठ गया है

(५) निरहङ्कारः—जिसका अहंभाव सदाके लिये समाप्त हो गया है अर्थात् जो अहंकार और कर्तृत्वाभिमानसे रहित है और दूसरोंके साथ आत्मवत् व्यवहार करता है।

(६) समदुःखसुखः—जो सुख-दुःखमें सम है। अर्थात् दुःखोंसे दुःखी नहीं होता और सुखोंसे सुखी नहीं होता। जो दुःखोंसे डरकर भागता नहीं है और सुखोंसे आकर्षित नहीं होता। सुख आये चाहे दुःख आये, दोनों परिस्थितियोंमें जो एकसमान रहता है।

(७) क्षमी—जो क्षमाशील है अर्थात् अपराध करनेवालेको दण्ड-सक्षम होते हुए भी क्षमा कर देता है।

(८) सन्तुष्टः—जो सन्तुष्ट है अर्थात् जो प्रारब्धप्रदत्त प्रत्येक परिस्थितिमें सन्तुष्ट रहता है। जो घोर विपत्तिकालको भी अपनी साधना बना लेता है। विपरीत परिस्थितियोंको जो अपने परिष्कारका हेतु मानता है और संतोषपूर्ण जीवन व्यतीत करता है।

(९) सततं योगी—जो सतत योगी है। इस संसारके मरणधर्मी और पतनधर्मी स्वभावमें रहता हुआ जो निरन्तर योगाभ्यास, ध्यान-स्मरण और निष्काम कर्तव्यके द्वारा सतत रूपसे भगवान्से जुड़ा रहता है, जिसका योग एक बार उपलब्ध होकर फिर अस्त नहीं होता, जो संसारकी उपेक्षा कर भगवान्से सतत-योगके द्वारा सतत रूपसे जुड़ा रहता है।

(१०) यतात्मा—जो यतात्मा है अर्थात् जो एक बार भगवान्से युक्त हो जाता है और फिर वियुक्त न होनेके लिये अपना शमन करता रहता है। जो एक बार भगवद्भावभावित होकर अपने आत्मोद्धारके प्रति सावधान रहता है। जो परमस्मृतिको प्राप्त करके पुनर्विस्मृतिके प्रति सतर्क रहता हुआ निरन्तर आत्मनियन्त्रण, अन्तर्विनियमन और भगवत्स्मरण नामक योगयत्न करता रहता है।

(११) दृढनिश्चयः—जो दृढ़निश्चयी है अर्थात् जिसने अपना परम गन्तव्य अर्थात् मेरी प्राप्तिका दृढ़तापूर्वक निश्चय कर लिया है। जो निर्विकल्प रूपसे मेरी और चल

दिया है।

(१२) मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः—जिसने अपने मन और बुद्धिको मेरे अर्पण कर दिया है, जिसकी बुद्धि मेरे अतिरिक्त अन्यका निर्णय नहीं करती, जिसकी बुद्धि मेरा निश्चय करके अन्तिमरूपसे निर्विकल्प हो गयी है—ऐसा मेरा भक्त मुझे प्रिय होता है।

(१३) यस्मान्नोद्विजते लोकः—जिससे लोक उद्विग्न नहीं होता अर्थात् जिससे सम्पूर्ण जगत् अनुद्विग्न रहता है, जो संसारके किसी भी प्राणीके सहज जीवनमें हस्तक्षेप नहीं करता।

(१४) लोकान्नोद्विजते च यः—और न ही जो संसारसे उद्विग्न होता है अर्थात् संसारके किसी भी व्यक्ति, प्राणी अथवा परिस्थितिसे जो प्रभावित नहीं होता। जो हर परिस्थितिमें अपनी सहज शान्ति भङ्ग नहीं करता है।

(१५) हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः—जो हर्षमुक्त है अर्थात् जो उपलब्धियोंमें प्रसन्न नहीं होता, जो अमर्षमुक्त है अर्थात् जो अनुपलब्धियोंसे, असफलताओंसे अप्रसन्न नहीं होता, जिसे अन्यकी सफलतापर ईर्ष्या नहीं होती। जो भयमुक्त है अर्थात् जिसे मुझपर अटल विश्वास है और जो उद्वेगमुक्त है अर्थात् जो मानसिक रूपसे तनावमुक्त है, जिसमें स्वीकारभाव निर्विकल्प हो गया है; जो सहज, सरल और प्रशान्त हो गया है—ऐसा भक्त मुझे प्रिय है।

(१६) अनपेक्षः—जो सम्पूर्ण अपेक्षाओंसे रहित है, जो एकदम सबसे निरपेक्ष हो गया है, जो किसीकी आशा नहीं करता।

(१७) शुचिर्दक्षः—जो शुचिर्दक्ष है अर्थात् जो इन्द्रिय, मन, बुद्धि और हृदयकी पवित्रता बनाये रखता है; जिसका शरीर निरोग, इन्द्रियाँ स्वस्थ, मन निर्मल, बुद्धि स्थिर और हृदय मद्भावसे परिपूर्ण तथा विशुद्ध है और जो सब प्रकारसे कुशल है।

(१८) उदासीनः—जो उदासीन है अर्थात् जो किसी भी प्रकारके आग्रह और अनाग्रहसे रहित है, जो एकदम आत्मस्थ है और निर्विशेष स्वभावको प्राप्त हो चुका है।

(१९) गतव्यथः—जो सम्पूर्ण व्यथाओंसे ऊपर उठ गया है। जो संसारके सम्पूर्ण द्वैत-द्वन्द्व अर्थात् परस्परविरोधी द्वन्द्वात्मकतामें तथा उनसे प्राप्त हर्ष-शोक और सुख-दुःख आदि समस्त व्यथाओंसे परे हो गया है।

(२०) सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः—जो सर्वारम्भपरित्यागी है अर्थात् जिसने अपनी ओरसे सम्पूर्ण कर्मारम्भोंका पूरी तरह त्याग कर दिया है, जो यथाप्राप्त परिस्थितियोंसे अनुपस्थितकी भाँति वर्तता है। वर्तनेवाले संसारका जो मात्र अनुवर्तन करता है तथा अहङ्कार और कर्तृत्वाभिमानजनक कोई भी कर्म नहीं करता है, वह मुझे अतीव प्रिय है।

(२१) यो न हृष्यति न द्वेष्टि—प्रारब्धप्रदत्त अनुकूल परिस्थितियाँ आनेपर जिसे हर्ष उत्पन्न नहीं होता और प्रतिकूल परिस्थितियाँ आनेपर जो उनसे द्वेष नहीं करता अर्थात् विपरीत परिस्थितियोंसे जो भागनेका प्रयत्न नहीं करता।

(२२) न शोचति न काङ्क्षति—प्रारब्धप्रदत्त विपत्तियाँ भोगते रहनेपर भी अथवा कर्तव्यगत विपत्तियाँ भोगते रहनेपर भी जो उनके लिये शोक नहीं करता और न ही किसी प्रकारकी आकाङ्क्षा करता है अर्थात् जो अनुकूलताकी भी कामना नहीं करता।

(२३) शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः—जो शुभाशुभपरित्यागी है अर्थात् जो शुभमें शुभबुद्धि नहीं रखता और अशुभमें अशुभबुद्धि नहीं रखता, जो शुभ कर्म शुभबुद्धिसे नहीं करता और अशुभ कर्म अशुभबुद्धिसे नहीं छोड़ता, जिसकी शुभमें गुणबुद्धि और अशुभमें दोषबुद्धि समाप्त हो गयी है—इस प्रकार जो शुभाशुभके द्वैतभावसे सर्वथा मुक्त हो गया है—ऐसा भक्तिमान् मुझे प्रिय है।

(२४) समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः—जो व्यक्ति शत्रुके सामीप्यमें और हितैषी मित्रके सामीप्यमें रोष-रागादि मनोविकारोंसे असमान मनःस्थिति नहीं बनाता। जो शत्रुके द्वारा अपमानित और शुभचिन्तकोंद्वारा सम्मानित होनेपर अपने चिन्तनमें प्रतिकार या सत्कार-भावनाको जन्म नहीं देता। अर्थात् जो मान और अपमानमें एकसमान रहता है।

(२५) शीतोष्णसुखदुःखेषु समः—जो शीत और उष्णमें तथा सुख और दुःखमें सम रहता है। प्रारब्धप्रदत्त देश-काल और परिस्थितियोंमें जो क्षोभरहित होता है, जिसमें स्वीकार-तिरस्कारकी हेयोपादेय बुद्धि नहीं होती, जो समस्त परिस्थितियोंमें समबुद्धि है।

(२६) सङ्गविवर्जितः—जो सङ्गवर्जित है अर्थात्

जो सङ्गभावनासे रहित है; जिसका वर्तन, मनन, चयन और चिन्तन संसार और संसारके विषयोंके कामजनक सङ्गसे रहित है, जो सततरूपसे संसारसङ्गको दृढ़तापूर्वक असङ्गशस्त्रसे काटता रहता है अर्थात् जो शम, दम और यम-नियमका स्वाभाविक रूपसे पालन करता हुआ परमचिन्तन और परमवर्तन करता रहता है।

(२७) **तुल्यनिन्दास्तुतिः**—जो अपनी निन्दा-स्तुतिको एकसमान समझता है, जो यह जानता है कि निन्दासे अपने चित्तमें जिस प्रकार प्रतिकारभाव बढ़ जाता है, उसी प्रकार स्तुतिसे सत्कारभाव बढ़ जाता है। दोनों ही अवस्थाओंमें केवल अहङ्कारकी ही बुद्धि होती है। ऐसा जानकर जो निन्दा और स्तुतिके प्रभावसे मुक्त हो जाता है, वह इन दोनों ही परिस्थितियोंमें अपने समत्वमें रहता है।

(२८) **मौनी**—जो मौनी है अर्थात् जिसके सम्पूर्ण प्रश्न समाप्त हो गये हैं, जो परम उत्तरको प्राप्त हो गया है, जिसके विचार समाप्त हो चुके हैं, जिसका चिन्तन अचिन्त्य हो गया है, जिसकी बहिर्वाणी और अन्तर्वाणी प्रशान्त हो गयी है, जो चरम-परम-निस्तब्ध हो गया है, जो शब्दसे अतीत हो गया है। जिसकी वाणी नादब्रह्मसे एकात्म हो गयी है।

(२९) **सन्तुष्टो येन केनचित्**—जो किसी भी परिस्थितिमें सदा परितृप्त ही रहता है; जैसे-तैसे भी खाते-पीते, सोते-जागते, चलते-फिरते और पहनते-ओढ़ते हुए सदैव तृप्त और संतुष्ट रहता है।

(३०) **अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः**—जो अनिकेत और स्थिरमति है अर्थात् जो शरीरसे तो भ्रमणशील है, किंतु मतिसे स्थिर रहता है, जो किसी एक देशका नहीं होता। जो सार्वभौम हो जाता है, जो वैश्विक हो जाता है, जो सबका हो जाता है, जो निरन्तर विचरणशील रहता है, किंतु जिसकी मति कहीं नहीं विचरती। जिसके मन, बुद्धि और चित्त निस्पन्द हो जाते हैं, जिसकी चेतना विकल्परहित, विषयरहित और द्वन्द्वरहित हो जाती है, ऐसा विचरणशील और स्थिरमतिवाला भक्तिमान् पुरुष मुझे प्रिय है।

यथोक्त धर्ममय अमृतकी पर्युपासना करनेवाले, मुझमें श्रद्धा रखनेवाले और मेरे परायण रहनेवाले भक्त मुझे अतीव प्रिय होते हैं। इस प्रकार भक्तके ये गुण भगवान्‌को अतिप्रिय होते हैं, ऐसे ही विशेष प्रिय भक्तोंको दर्शन देने तथा उनपर विशेष कृपा करनेके लिये भगवान् अवतरित होते रहते हैं।

शक्तितत्त्व और अवतारवाद

(डॉ० श्रीश्यामाकान्तजी द्विवेदी, एम्०ए०, एम्०एड्०, पी-एच्०डी०, डी०लिट्०)

अवतार और उसका उद्देश्य

जब भगवान् किसी विश्वव्यापी एवं दुर्निवार्य आपदासे मानवजातिको मुक्त करनेके लिये साकार विग्रह ग्रहण करते हैं तो उस विग्रहको ही अवतार कहते हैं। यथा—मत्स्यावतार, कच्छपावतार (कूर्मावतार), नृसिंहावतार, वराहावतार, रामावतार, कृष्णावतार आदि।

अवतारके उद्देश्यपर प्रकाश डालते हुए भगवान् श्रीकृष्ण (गीता ४।७-८)-में कहते हैं—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

इस प्रकार सामान्य रूपसे अवतारके चार उद्देश्य होते हैं। यथा—१-धर्मह्रासकी स्थितिमें उसका अभ्युत्थान, २-सज्जनों एवं पुण्यात्माओंकी आपदाओंसे रक्षा, ३-दुष्टों एवं अत्याचारियोंका संहार ४-धर्मकी संस्थापना।

रूपातीत शक्तिका रूपात्मक विश्वावतार

रूपातीत पराशक्ति ही सिसृक्षाके वशीभूत होकर विश्वके रूपमें आकार ग्रहण कर लेती है। '**सैव क्रियाविमर्शः स्वस्था क्षुभिता च विश्वविस्तारः**' (महार्थमञ्जरी गाथा-११) आत्मशक्तिके विषयमें भी यही कहा गया है। **आत्मा खलु विश्वमूलं तत्र प्रमाणं न कोऽप्यर्थयते।** (महार्थमञ्जरी) सारी सृष्टि कुण्डलिनीशक्तिकी ही अभिव्यक्ति है—'**सृष्टिस्तु कुण्डली ख्याता।**'

'देवी ह्येकाग्र आसीत् सैव जगदण्डमसृजत्। कामकलेति विज्ञायते। शृङ्गारकलेति विज्ञायते।' (बह्वृचोपनिषद्)

एकमात्र देवी ही सृष्टिसे पूर्व थीं, उन्हींने ब्रह्माण्डकी सृष्टि की। वे कामकलाके नामसे विख्यात हैं, वे ही शृङ्गारकला कहलाती हैं।

एकका बहुत हो जाना ही तो जगत् है—'**एकोऽहं बहु स्याम्।**'

जगत् भगवान्‌का आदि अवतार है—'**आद्योऽवतारः पुरुषः परस्य।**'

'**स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमून्मीलयति।**'

(प्रत्यभिज्ञाहृदयम् सूत्र २)

चिद्रूपा भगवती स्वतन्त्ररूपसे, निर्विकाररूपसे अनन्त विश्वोंके रूपमें स्फुरित होती हैं—

'**चिदेव भगवती स्वच्छस्वतन्त्ररूपा तत्तदनन्त-जगदात्मना स्फुरति।**' (प्रत्यभिज्ञाहृदयम् सूत्र २)।

चिदात्मा स्वयं ही 'अहम्' होकर भी 'इदम्' रूपसे प्रकट हो जाती हैं।

शक्तितत्त्वकी परात्परता—

शक्तितत्त्वसे बढ़कर कोई भी नहीं है। शक्तिमान् भी तभीतक शक्तिसम्पन्न हैं, जबतक शक्तिसे सम्बद्ध हैं। शिव शब्दके 'श' में 'इकार'की मात्रा ही शक्ति है, यदि इकार निकाल दिया जाय तो शिव शवमात्र रह जायँगे। शक्तिके बिना शिव हिल भी नहीं सकते—

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।

(सौन्दर्यलहरी)

परमात्मा भी शक्तिसे रहित होनेपर सृष्टि, स्थिति तथा लय आदिमें अशक्त रहता है, किंतु जब वह शक्तिसे युक्त हो जाता है; तब शक्त—समर्थ हो जाता है—

परोऽपि शक्तिरहितः शक्त्या युक्तो भवेद्यदि।
सृष्टिस्थितिलयान् कर्तुमशक्तः शक्त एव हि॥

(वामकेश्वरतन्त्र)

शिवसूत्रकारकी दृष्टि—त्रिकदर्शनके मूल प्रवर्तक आचार्य वसुगुप्त कहते हैं कि शक्ति (क्रियाशक्ति)-का स्फुरणरूप विकास ही विश्व है—

स्वशक्तिप्रचयोऽस्य विश्वम्।

(शिवसूत्र ३।३०)

शिवका विश्व उनकी अपनी शक्तिसे निर्मित है। संविदात्मा शिवकी शक्तिका जो प्रचय या क्रियाशक्तिरूप स्फुरण या विकास है, वही विश्व है—

'**शिवस्य विश्वं स्वशक्तिमयं तथा अस्यापि स्वस्याः संविदात्मनः शक्तेः प्रचयः क्रियाशक्तिस्फुरणरूपो विकासो विश्वम्।**' (शिवसूत्रविमर्शिनी ३।३०)

आचार्य भास्कररायकी दृष्टि—आचार्य भास्करराय कहते हैं कि शिवमें विश्वकी सृष्टि, पालन एवं संहारकी क्षमता केवल शक्तिके कारण है। उसी शक्तिका ही परिणाम चारों सृष्टियाँ—अर्थमयी, शब्दमयी, चक्रमयी एवं देहमयी हैं।

नैसर्गिकी स्फुरत्ता विमर्शरूपास्य वर्तते शक्तिः।
तद्योगादेव शिवो जगदुत्पादयति पाति संहरति॥

(वरिवस्यारहस्यम्)

'**सावश्यं विज्ञेया यत्परिणामादभूदेषा। अर्थमयी शब्दमयी चक्रमयी देहमय्यपि च सृष्टिः॥**' (वरिवस्यारहस्यम् ५)

भगवती सीताका स्वस्वरूप

भगवती सीता जनककी पुत्री एक मानवी संततिमात्र नहीं थीं, प्रत्युत शक्तिका अवतार थीं।

१-मूल प्रकृति होनेके कारण वे प्रकृति कहलाती हैं—'**मूलप्रकृतिरूपत्वात् सा सीता प्रकृतिः स्मृता।**'

(सीतोपनिषद्)

२-प्रणवकी प्रकृति होनेके कारण भी भगवती सीता प्रकृति हैं—'**प्रणवप्रकृतिरूपत्वात् सा सीता प्रकृतिरुच्यते॥**'

३-भगवती सीता महामाया हैं, योगमाया हैं—'**सीता इति त्रिवर्णात्मा साक्षान्मायामयी भवेत्।**'

४-'**ई**'—सीता शब्दमें स्थित ईकार प्रपञ्चका बीज माया है। उनके नाममें 'ई' स्वर इसीको संकेतित करता है कि वे प्रपञ्चनिर्मात्री 'ईकार' या माया हैं—'**विष्णुः प्रपञ्चबीजं च माया ईकार उच्यते।**'

५-'**स**'—सीता शब्दमें स्थित सकार=सत्य एवं अमृतकी प्राप्ति और सोम है—'**सकारः सत्यममृतं प्राप्तिः सोमश्च कीर्त्यते।**'

६-'**त**'—सीता शब्दमें स्थित तकार महालक्ष्मीरूप है। प्रकाशमय विस्तार करनेवाली महालक्ष्मी ही तकार हैं—'**तकारस्तारलक्ष्म्या च वैराजः प्रस्तरः स्मृतः।**'

७-सीता समस्त प्राणियोंकी जन्मदात्री, पालिका एवं संहारिका शक्ति हैं—'**उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणीं सर्व-देहिनाम्।**'

८-सीता ब्रह्म हैं—'**अथातो ब्रह्मजिज्ञासेति च।**'

९-सीताजी सर्वरूपा हैं—सीताजी सर्ववेदमयी, सर्वदेवमयी, सर्वाधारा, कार्य-कारणमयी, सर्वलोकमयी, सर्वकीर्तिमयी, सर्वधर्ममयी, चेतनाचेतनात्मिका, ब्रह्मस्थावरात्मा, देवर्षि-मनुष्य-गन्धर्वरूपा, असुरराक्षसभूत-प्रेत-पिशाच-भूत-शरीररूपा, भूतेन्द्रियमन:प्राणरूपा भी हैं।

१०-सीताजी मुख्यत: तीन शक्तियोंके रूपमें स्थित हैं—क-इच्छाशक्ति, ख-क्रियाशक्ति, ग-साक्षात् शक्ति—

क-इच्छाशक्तिस्वरूपा भगवती सीता श्रीदेवी (चन्द्र), भूदेवी (सूर्य), नीलादेवी (अग्निरूपा), योगशक्ति, भोगशक्ति तथा वीरशक्ति हैं।

ख-क्रियाशक्तिस्वरूपा भगवती सीता श्रीहरिका मुख हैं और नादरूपमें व्यक्त हैं।

साक्षात् शक्तिस्वरूपा सीता नाद-बिन्दु और ओंकाररूप हैं।

ग-साक्षात् शक्ति ही ज्ञानशक्ति है।

महालक्ष्मीरूपा भगवती सीता अष्टदलकमलपर स्थित दिव्य सिंहासनपर आसीन हैं।

मूल प्रकृति और उनका महाविद्यात्मक अवतार

मूल प्रकृति और सती—साक्षात् परब्रह्म, शुद्धा, सनातनी, जगदम्बा, त्रिदेवोंकी आराध्या देवी भगवती मूल प्रकृति ही पूर्णा प्रकृति एवं सती हैं।[1] उन्हींका अवतार १-लक्ष्मी, २-सावित्री, ३-सरस्वती, ४-काली, ५-पार्वती, ६-माया, ७-परम शक्ति, ८-पराविद्या, ९-गङ्गा, १०-दुर्गा, ११-दस महाविद्या[2]—काली, तारा, लोकेश्वरी कमला, भुवनेश्वरी, छिन्नमस्ता, षोडशी, त्रिपुरसुन्दरी, बगलामुखी, धूमावती एवं मातङ्गी हैं।

अपने पिता दक्षके यज्ञमें जानेकी इच्छापर अटल सतीके हठपर भगवान् शिवने कहा—

'यथारुचि कुरु त्वं च ममाज्ञां किं प्रतीक्षसे।'

(महाभागवतपुराण ८।४४)

इसे सुनते ही दाक्षायणी सतीने कालीका स्वरूप धारण कर लिया। उनके भयानक स्वरूपसे भयभीत होकर शिव भाग चले। सतीने शिवको भागनेसे रोकनेके लिये दसों दिशाओंमें अपने पृथक्-पृथक् स्वरूपोंको (दस महाविद्याओंके रूपमें) खड़ा कर दिया। अन्तत: शिव (दसों दिशाओंको अवरुद्ध देखकर) आँख बन्द करके मार्गमें ही रुक गये और जब उन्होंने आँखें खोलीं तो उन्हें पुन: दसों दिशाओंमें महाविद्याओंके रूपमें दस देवियाँ दृष्टिगत हुईं। ये सभी दस देवियाँ (दस महाविद्याएँ) भगवती सतीके ही दस स्वरूप या अवतार हैं। मूल प्रकृति सतीके अवतार ही दस महाविद्याएँ कही गयी हैं।

~~~ ० ~~~

भक्ति-मुक्ति-शक्ति-प्रदायिनी अवतार-कथा

(महामण्डलेश्वर स्वामी श्रीबजरंगबलीजी ब्रह्मचारी)

ऋषियों, महर्षियों, देवर्षियों और ब्रह्मर्षियोंने अपनी ऋतम्भरा-प्रज्ञाद्वारा उस जगन्नियन्ता, जगदाधार, सर्वाधिष्ठान, सर्वशक्तिमान्, स्वयंप्रकाशमान् भगवान्के अवतारों एवं उनकी अवतार-कथाओंके अति महत्त्वपूर्ण गूढ़ रहस्योंको—'**एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति**' के इस वैदिक सिद्धान्तको—'**अध्यारोपापवादाभ्यां निष्प्रपञ्चं प्रपञ्च्यते**' की प्रक्रियाद्वारा विस्तृतरूपसे विवेचन, विश्लेषण और गवेषण करके समझाया है।

वेदोंकी ऋचाओं, दर्शनशास्त्रकी भिन्न-भिन्न शाखाओं, उपनिषदोंके मन्त्रों, वेदान्तके सूत्रों, इतिहास-पुराणोंके आख्यानों और काव्यग्रन्थोंके सुमधुर व्याख्यानोंके द्वारा अवतार और अवतार-कथाओंकी गरिमा-महिमा, सत्ता-महत्ता, उपयोगिता और आवश्यकतापर बड़े रोचक और आकर्षक ढंगसे प्रकाश डाला गया है। यह कि—

'**द्विरूपं हि ब्रह्म अवगम्यते। प्रथमं निराकार-निर्विकार-अखण्ड-अनन्त-सच्चिदानन्दरूपं स्वरूपलक्षणं ब्रह्म तथा अपरं 'जन्माद्यस्य यत:'** अर्थात् जीवान् प्रति **करुणावशात् विविधरूपधारकं सगुण-साकाररूपं**

१. या मूलप्रकृतिः शुद्धा जगदम्बा सनातनी। सैव साक्षात्परं ब्रह्म सास्माकं देवतापि च॥ (महाभागवतपुराण ३।१)

२. काली तारा च लोकेशी कमला भुवनेश्वरी॥
छिन्नमस्ता षोडशी च सुन्दरी वगलामुखी। धूमावती च मातङ्गी नामान्यासामिमानि वै॥ (महाभागवतपुराण ८।६२-६३)
~~~

'तटस्थलक्षणं ब्रह्म।'

इस प्रकार पारमार्थिक और व्यावहारिक सत्ताके भेदसे परमात्माकी निराकारता-साकारता तथा अनन्तता और एकदेशीयताका सामञ्जस्य हो जाता है।

इसी सिद्धान्तके आधारपर वह '**कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम्**' सक्षम, समर्थ, अकारणकरुण, करुणावरुणालय, परात्पर, परब्रह्म, परमात्मा, सर्वात्मा, विश्वात्मा ब्रह्म, जो निराकार, निर्विकार, निरपेक्ष, निरतिशय, निर्विशेष हो करके भी मर्त्यशिक्षण और लोकरक्षणके साथ-साथ '**मुख्यं तस्य हि कारुण्यम्**' के भावको चरितार्थ करनेके लिये समय-समयपर अवतरित होकर अनेक रूपोंद्वारा विभिन्न प्रकारकी लोकलीलाएँ करता है, उसकी किसी भी अवतार-लीलाको देखने या अवतार-कथाको पढ़ने अथवा सुननेसे हमको एक नयी शिक्षा, नयी दीक्षा, नया उपदेश, नया आदेश, नया संदेश, नयी स्फुरणा, नयी प्रेरणा और नयी चेतना प्राप्त होती है।

भगवान्‌के किसी भी अवतारकी लीला या कथाको हम देखें, सुनें अथवा पढ़ें—अथवा उन अनन्तकोटि-ब्रह्माण्डनायक, परात्पर, पूर्णतम, पुरुषोत्तम, राजराजेन्द्र, राघवेन्द्र, भगवान् रामभद्र श्रीरामचन्द्रजीकी अवतार-लीलाओं और कथाओंको हम देखें या सुनें; अथवा चाहे हम कोटि-कोटि कन्दर्पदर्प-दलन, नवजलधरश्यामसुन्दर, अनन्त सौन्दर्य-माधुर्यामृतसारसर्वस्व, भुवनविमोहन, वृजेन्द्रनन्दनन्दन, भगवान् केशव श्रीकृष्णचन्द्रजीकी दिव्य अवतार-लीलाओं और कथाओंके गूढ़ रहस्योंपर विचार करें;

अथवा चाहे हम आप्तकाम, पूर्णकाम, परम निष्काम, आत्माराम, औढरदानी, आशुतोष, कृपाकोश, भूतभावन भगवान् शङ्करकी भक्तवत्सलतासे ओत-प्रोत अवतार-कथाओंको सुनें,

अथवा चाहे हम करुणामयी, कल्याणमयी, स्नेहसलिला, भाववत्सला, जगज्जननी, जगदम्बा, अम्बा, जगन्माता, महामाता भगवती दुर्गाकी दिव्य पावन अवतार-कथाओंका रसास्वादन, समास्वादन करें; अथवा इसी प्रकार भगवान्‌के चौबीस अवतार या विशेष प्रसिद्ध दश अवतारों—

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः।
रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्की च ते दश॥

-की लोकरक्षण और मर्त्यशिक्षणकी कथाओंका श्रवण-मनन करें।

—इन सभी अवतार-कथाओंसे हममें एक विशेष ओज, विशेष तेज, विशेष अनुरक्ति, विशेष भावभक्ति तथा शाश्वत शक्ति और शान्तिका प्रादुर्भाव होता है।

भगवान्‌का अवतार चार प्रकारसे होता है—आवेश, प्रवेश, स्फूर्ति और आविर्भाव।

जैसे बर्तनके पानीमें अग्निका आवेश होता है, वैसे ही **आवेशावतार** कुछ दिनोंके लिये होता है। लोहेके गोलेमें अग्निप्रवेशकी भाँति **प्रवेशावतार** होता है। बिजलीकी चमककी भाँति **स्फूर्ति-अवतार** क्षणभरके लिये ही होता है, किंतु पत्थरमें टाँकीकी चोटसे साक्षात् अग्निके प्राकट्यकी भाँति प्रभुका **आविर्भाव** होता है।

इसी प्रकार अंशावतार और पूर्णावतारके भी भेद-प्रभेद हैं। विशेषतः अवतार पूर्ण ही होते हैं। जहाँ जैसे कार्यकी आवश्यकता होती है, वहाँ वैसी ही शक्तियोंका प्राकट्य होता है।

भगवान् श्रीराम और श्रीकृष्णके अवतारोंमें सभी शक्तियोंका प्राकट्य हुआ है। इसीलिये उन्हें पूर्णावतार कहा जाता है। षोडश कलाएँ और द्वादश कलाएँ—ये दोनों एक ही सिक्केके दो अंश हैं। यथा—एक रुपयेमें सोलह आना (या एक तोला वजन) और बारह मासा (या एक तोला वजन) होते हैं। अतः ये दोनों अवतार पूर्ण रुपया अर्थात् पूर्णावतार ही हैं।

जैसे अपार जलराशिवाला सिन्धु बिन्दु बन करके ही लोगोंकी पिपासा शान्त करता है, जैसे सर्वव्यापी महाकाश घटाकाश अथवा मठाकाश बन करके ही लोगोंको सुख-सुविधाएँ प्रदान करता है, वैसे ही सर्वव्यापी, सर्वाधार, अनादि, अनन्त, शुद्ध-बुद्ध, व्यापक ब्रह्म अपनी अघटितघटना-पटीयसी मायाशक्तिके द्वारा अवतार धारणकर धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूपी पुरुषार्थचतुष्टयकी उपलब्धि बड़ी ही सरलता, सरसता और सुगमतासे अपनी अवतार-लीलाओं और कथाओंद्वारा करा देता है।

इन अवतार-कथाओंके श्रवण, मनन, निदिध्यासनके साथ ही इन कथाओंमें वर्णित साधनाओं, आराधनाओं और उपासनाओंके अपनानेसे मानव-जीवनके रहन-सहन, आचार-विचार, संयम-साधना, भाषा-भाव, सभ्यता और संस्कृतिमें सद्यः एक क्रान्तिकारी सुधार होने लगता है।

ये अवतार-कथाएँ ही ज्ञान-विज्ञानका धाम, भक्ति-मुक्ति और शक्तिका प्राण, कर्मठता-कार्यकुशलताकी आधारशिला तथा भारतीय सभ्यता और हिन्दू संस्कृतिका भव्य-भवन

मानी जाती हैं।

जो स्थान बौद्धोंमें और जैनोंमें अहिंसाका, ईसाइयोंमें दयाका और इस्लाममें नमाजका है, उससे भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान हिन्दुओंमें अवतार-कथाओंमें वर्णित रीति-नीति, धर्म-कर्म, ज्ञान-ध्यान, आचार-विचार तथा साधना और उपासनाका है।

हमारे भारतदेशमें हिन्दूधर्ममें अवतार-कथाओंका महत्त्व अनादिकालसे आजतक वैसा ही अविच्छिन्न बना हुआ है जैसा कि सुरनदी भगवती गङ्गाका स्रोत अविच्छिन्नरूपमें विराज रहा है।

इसीलिये वेदान्तसूत्रोंमें भगवान्‌की उपासनामें गति, प्रगति और उन्नति लानेके लिये तथा भक्ति-मुक्ति-शक्ति और शान्ति-अर्जनके लिये इन अवतार-कथाओंकी आवृत्ति करते रहनेका उपदेश दिया गया है। यथा—

'आवृत्तिरसकृदुपदेशात्।'

(वेदान्तदर्शन ४।१।१)

इसके आगे **'आ प्रायणात्०'** (४।१।१२) कहकर भगवान् वेदव्यासने इन अवतार-कथाओंको आजीवन पढ़ते-सुनते रहनेका परामर्श दिया है।

परिणामस्वरूप इन अवतार-कथाओंके वक्ता-श्रोताके लिये **'अनावृत्तिः शब्दात्'** (४।४।२२) कहकर परमात्माकी प्राप्ति तथा भक्ति-मुक्तिरूप इच्छित वस्तुकी उपलब्धिका दृढ़ताके साथ समर्थन किया गया है, जिससे सदा-सदाके लिये वह आवागमनसे रहित हो जाता है।

भगवान्‌के अवतारकी ये कथाएँ नास्तिकको आस्तिक एवं अनीश्वरवादीको ईश्वरवादी बना देती हैं, साथ ही भक्तको भगवान्‌की ओर, आत्माको परमात्माकी ओर, जीवको ब्रह्मकी ओर और नरको नारायणकी ओर अग्रसारित और उत्साहित करती हैं।

इन अवतार-कथाओंका इतना अधिक महत्त्व है कि एकान्तप्रदेश, वनप्रदेश, निर्जनप्रदेशमें धारणा, ध्यान, समाधिमें रत योगीन्द्र-मुनीन्द्र, वीतरागी, विरागी, त्यागी, सनकादिक, शुकादिक तथा नारदादिक भी इनके श्रवणसे रसाप्लावित, भावाप्लावित, करुणाप्लावित होकर जनकल्याण एवं लोक-कल्याणहेतु स्वयमेव सबको अवतार-कथा-सुधाका पान कराने लगते हैं।

जाति-पाँति, बल-पौरुष, आयु-अवस्था, स्त्री-पुरुषका भी कोई विशेष प्रतिबन्ध इन अवतार-कथाओंके श्रवणमें नहीं है।

इन अवतार-कथाओंको जानसे, अनजानसे, इच्छासे, अनिच्छासे, स्वेच्छासे, परेच्छासे, वैरसे अथवा प्रेमसे—किसी भी प्रकार पढ़ने-सुननेसे कल्याण ही होता है। तभी तो अपने पुत्र नारायणका नाम लेकर अजामिलकी और तोतेको रामनाम पढ़ानेसे वेश्याकी सद्गति हुई।

इसीलिये सत्पुरुषों, साधुपुरुषों, महापुरुषों, आचार्यों और शास्त्रोंने ***'सब कर मत खगनायक एहा'*** कहकर अवतार-कथाओंके श्रवण-मननको सर्वाधिक महत्त्व दिया है।

लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्णका लीलावतार

(प्राचार्य श्रीवासुदेवशरणजी उपाध्याय, निम्बार्कभूषण)

अनन्त तीर्थों, वन-उपवनों, पर्वतमालाओं, पुण्यसलिला सरिताओंसे सुशोभित देववृन्दवन्दित भारतवर्षीय वसुधा श्रीहरिकी अवतारभूमि एवं लीलास्थली है। इस भूमिपर जन्म लेनेवाले मनुष्योंकी प्रशंसा करते हुए देवगण कहते हैं—**'मुकुन्दसेवौपयिकं स्पृहा हि नः॥'** अर्थात् जिन्होंने भारतमें भगवान् श्रीमुकुन्दकी सेवाके योग्य उपयोगी जन्म पाया है, वैसा जन्म प्राप्त करनेकी हमारी भी स्पृहा है।

वेद, उपनिषद्, पुराण, इतिहास, स्मृति, तन्त्रादि शास्त्रोंमें परब्रह्म परमात्माकी असंख्य लीलाओं, अवतार-कथाओंका वर्णन है। प्रत्येक युगमें जब-जब आसुरी शक्तियोंका प्राबल्य होता है, दैवी शक्तियाँ ह्रासोन्मुख हो जाती हैं, तब-तब प्रभु स्वयं पूर्णरूपसे अथवा अंश-कलादि रूपसे भूतलमें अवतीर्ण होकर असुरोंका संहार करते हैं और धर्मकी स्थापना करते हैं। अतः गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—

'बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।'

त्रेतामें जहाँ भगवान् श्रीरामका अवतार मर्यादापुरुषोत्तमके रूपमें हुआ, वहीं द्वापरमें भगवान् श्रीकृष्णका अवतार लीलापुरुषोत्तमके रूपमें हुआ। अवतारकी परिभाषा करते हुए शास्त्रकार कहते हैं—

'अवतारो नाम स्वेच्छया धर्मसंस्थापनार्थमधर्मोपशमनार्थं स्वीयानां वाञ्छापूर्त्यर्थं च विविधविग्रहैराविर्भावविशेषः।'

(वेदान्तरत्नमञ्जूषा)

अर्थात् सर्वेश्वर भगवान् श्रीहरिका अपनी इच्छासे धर्मसंस्थापन, अधर्मोपशमन एवं स्वकीय भक्तजनोंकी इच्छापूर्तिहेतु विविध विग्रहों, स्वरूपोंसे आविर्भूत होना अवतार कहलाता है।

अवतारोंके तीन भेद बताये गये हैं—गुणावतार, पुरुषावतार तथा लीलावतार। यहाँ इनका संक्षेपमें वर्णन प्रस्तुत है—

१-गुणावतार

सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्गुणास्तै-
र्युक्तः परः पुरुष एक इहास्य धत्ते।
स्थित्यादये हरिविरिञ्चिहरेति संज्ञाः
श्रेयांसि तत्र खलु सत्त्वतनोर्नृणां स्युः॥

(श्रीमद्भा० १। २। २३)

भाव यह है कि सत्त्व, रज तथा तम—ये तीन गुण प्रकृतिके हैं, इन्हीं गुणोंका आश्रय लेकर अथवा इनसे युक्त होकर एक ही परब्रह्म परमात्मा इस जगत्प्रपञ्चको त्रिविधरूपमें—स्थिति, सृष्टि तथा संहाररूपमें—श्रीविष्णु, विरञ्चि तथा हर—इन तीन संज्ञाओंसे धारण करते हैं।

सत्त्व गुणके स्वामी भगवान् श्रीविष्णुका कार्य है—सत्त्व गुणके आश्रयसे सृष्टिमें आये हुए समस्त प्राणियोंकी रक्षा एवं उनका सम्पोषण करना, रजोगुणके स्वामी लोकपितामह श्रीब्रह्मदेवका कार्य है—रजोगुणके आश्रयसे चराचर जगत्की सृष्टि करना और तमोगुणके स्वामी भगवान् श्रीरुद्रदेवका कार्य है—तमोगुणके आश्रयसे युगान्त किंवा कल्पान्तमें सृष्टिका संहार करना। अतः ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश—ये त्रिदेव गुणावतार कहलाते हैं। उनमें मनुष्योंका सर्वविध मङ्गल सत्त्वतनु भगवान् श्रीनारायणके सर्वतोभावेन समाश्रयण और आराधनसे होता है।

२-पुरुषावतार

प्रथमं महतः सृष्टिर्द्वितीयं त्वण्डसंस्थितम्।
तृतीयं सर्वभूतस्थं तानि ज्ञात्वा विमुच्यते॥

अर्थात् महत्तत्त्वके स्रष्टा कारणार्णवशायी प्रकृतिनियन्ता पुरुष ही प्रथम रूपमें पुरुषावतार कहे जाते हैं। समष्टि जगत्के उत्पादक अन्तर्यामी पुरुष ही द्वितीय रूपमें पुरुषावतार कहे गये हैं एवं व्यष्टि जगत्के अन्तर्यामी सर्वनियन्ता क्षीरोदशायी पुरुष ही तृतीय रूपमें पुरुषावतार कहे गये हैं—इस प्रकार पुरुषावतारके भी तीन भेद हुए।

३-लीलावतार

आवेशावतार और स्वरूपावतारके भेदसे लीलावतार दो प्रकारके हैं। आवेशके भी स्वांशावेश और शक्त्यंशावेशसे दो भेद हैं। जो जीवके आवरणके बिना साक्षात् निज अंशसे प्राकृत विग्रहमें प्रवेश करे, उसे स्वांशावेश कहते हैं। जैसे—नर और नारायणका अवतार। जो शक्ति-अंशमात्रसे जीवमें प्रविष्ट होकर कार्य करे उसे शक्त्यंशावेश कहते हैं। इसमें तारतम्यके भेदसे एक '**प्रभव**' और दूसरा '**विभव**' कहलाता है। धन्वन्तरि, परशुराम प्रभृति प्रभवावतार हैं तथा कपिल, ऋषभ, चतुःसन, नारद तथा व्यास आदि विभवावतार हैं—इस प्रकार ये आवेशावतारके स्वरूपभेद हैं।

अब स्वरूपावतारका वर्णन किया जाता है। स्वरूपसे अर्थात् सच्चिदानन्दात्मकरूपसे आविर्भूत होना स्वरूपावतार कहलाता है। यह अवतार एक दीपकसे दूसरे दीपकमें प्रविष्ट ज्योतिकी भाँति अभिन्न स्वरूप गुण एवं शक्तिवाला होता है। यह भी अंश एवं पूर्ण इस भेदसे दो प्रकारका बताया गया है। पूर्ण ब्रह्म परमात्मा भी अपने अल्पगुण शक्तिके आविष्करणसे अंशरूप कहा जाता है। इनमें मत्स्य, कूर्म, वराह, वामन, हयग्रीव, हंस इत्यादि आते हैं। अपने पूर्ण गुण-शक्त्यादिको व्यक्त करनेसे श्रीनृसिंहदेव, श्रीदाशरथी राम और श्रीकृष्ण—ये पूर्ण स्वरूपावतार हैं।

इनमें मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम एवं लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्णकी अवतारविधाओंका शास्त्रोंमें परम उदात्त भावसे वर्णन किया गया है। अथर्ववेदीय 'कृष्णोपनिषद्' में निम्न वर्णन* आया है।

त्रेतायुगमें मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम वनवासके समय जगज्जननी भगवती श्रीसीता एवं लक्ष्मणसहित जब दण्डकारण्य पहुँचे, वहाँ दीर्घकालसे तपश्चर्यामें निरत महर्षियोंने

---

* 'श्रीमहाविष्णुं सच्चिदानन्दलक्षणं रामचन्द्रं दृष्ट्वा सर्वाङ्गसुन्दरं मुनयो वनवासिनो विस्मिता बभूवुः। तं होचुर्नोऽवद्यमवतारान् वै गण्यन्ते आलिङ्गामो भवन्तमिति। भवान्तरे कृष्णावतारे यूयं गोपिका भूत्वा मामालिङ्गथ॥ अन्ये येऽवतारास्ते हि गोपान स्त्रीश्च नो कुरु। अन्योन्यविग्रहं धार्यं तवाङ्गस्पर्शनादिह। शश्वत् स्पर्शयिताऽस्माकं गृह्णीमोऽवतारान् वयम्'॥ १॥

सर्वाङ्गसुन्दर सच्चिदानन्दरूप महाविष्णु नारायणके पूर्णावतार श्रीरामचन्द्रजीको अपनी अनपायिनी ऐश्वर्य-माधुर्ययुक्त आह्लादिनीशक्ति जानकीजीके साथ देखा तो वे अत्यन्त मुग्ध हो गये और प्रार्थना करने लगे—भगवन्! आपका यह अवतार अन्य अवतारोंसे श्रेष्ठ एवं दोषरहित है। अतः हम भगवती सीताकी तरह आपके साथ रहकर आपकी अङ्ग-सङ्गपूर्वक उपासना करना चाहते हैं। परम दयालु भगवान् श्रीराम उन समस्त मुनिजनोंको सान्त्वना देते हुए कहते हैं—हे मुनीश्वरो! द्वापरान्तमें आप सब अपने आपको गोप-गोपियोंका रूप बनाकर व्रजभूमिमें रहेंगे। मैं जब लीलापुरुषोत्तम रूपमें कृष्णावतार धारण कर नानाविध लीलाविहार करूँगा, तब आप सब समस्त प्राणियोंके प्रियतम मेरा आलिङ्गनपूर्वक अङ्ग-सङ्ग करेंगे। अन्य अवतारोंमें जो-जो कार्य अवशिष्ट रहे हैं, उन सबकी पूर्ति कृष्णावतारमें ही हो सकेगी। अवतारकी पूर्णता होनेपर भी मेरा यह रामरूप मर्यादामें आबद्ध है। कृष्णरूप तो लीलामय होनेसे सकल भक्तोंकी सर्वविध मनोरथसिद्धिके लिये स्वतन्त्र है। अतः अन्य मत्स्य, कूर्म, नृसिंह आदि अवतार अंश-कला-पूर्ण होनेपर भी भक्तोंकी सकल भावनाओंको पूर्ण नहीं करते, किंतु कृष्णावतार तो सर्वसमर्थ है; क्योंकि यह पूर्णतम अवतार है। मुनिजन कहने लगे—प्रभो! इस परमपावन दण्डकारण्य प्रदेशमें आपके श्रीविग्रहका दर्शन और स्पर्श पाकर हमारे जन्म-जन्मान्तर, युग-युगान्तर, कल्प-कल्पान्तरके कल्मष दूर हो गये हैं। अतः हमें परस्पर गोप-गोपियोंका शरीर धारण करना चाहिये। उस समय आप श्रीकृष्णरूपमें हम सब ऋषिरूपा गोपियोंका निरन्तर अङ्गस्पर्श करेंगे। एतदर्थ हम सभी वनवासी मुनिजन श्रीकृष्णस्वरूप आपकी सर्वतोभावेन सेवाके लिये अपने-अपने अंशरूपसे गोप-गोपी बनकर व्रजमें अवतीर्ण होंगे।

इन्हीं साधनसिद्ध गोपियोंका एक मण्डल जो ऋषिरूपा गोपियाँ कहलाती हैं, उन्हें प्रभुका सांनिध्य प्राप्त है। कात्यायनी-व्रत करनेवाली गोपियाँ इनसे भिन्न हैं—ऐसा संतोंका कथन है।

अनन्तस्वरूप गुण एवं शक्तिके अधिष्ठान लीलापुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णकी सविशेष, निर्विशेषता, व्यूहाङ्गिता और परब्रह्मरूपताका वर्णन करते हुए सुदर्शनचक्रावतार श्रीभगवन्निम्बार्काचार्य कहते हैं—

स्वभावतोऽपास्तसमस्तदोष-
मशेषकल्याणगुणैकराशिम्।
व्यूहाङ्गिनं ब्रह्म परं वरेण्यं
ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणं हरिम्॥

(दशश्लोकी ४)

जिनमें स्वभावसे ही समस्त दोषोंका अभाव है तथा जो समस्त कल्याणमय गुणोंके एकमात्र समुदाय हैं। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—ये चारों व्यूह जिनके अङ्गभूत हैं तथा जो सर्वश्रेष्ठ परब्रह्मस्वरूप हैं, उन पापहारी कमलनयन सच्चिदानन्दघन भगवान् श्रीकृष्णका हम चिन्तन करें।

शास्त्रोंमें प्रभुका निर्गुण आदि पदोंसे जो निर्वचन किया है, वह तो प्राकृत गुणोंका राहित्यमात्र है। कृष्णस्तवराजमें आचार्यप्रवर कहते हैं—

शान्तिकान्तिगुणमन्दिरं हरिं
स्थेमसृष्टिलयमोक्षकारणम्।
व्यापिनं परमसत्यमंशिनं
नौमि नन्दगृहचन्दिनं प्रभुम्॥

जो प्रभु शान्तिप्रभृति स्वरूपगुणों तथा कान्त्यादि विग्रह गुणोंके निवासस्थान हैं; उत्पत्ति, पालन, संहार तथा मोक्षके कारण हैं, चराचर जगत्में व्यापक, परमस्वतन्त्र तथा अंशी हैं (जीव अंश है, भगवान् अंशी हैं) और नन्दगोपके गृहप्राङ्गणमें विचरण करते हुए अपनोंको आह्लादित करनेवाले हैं, उन सर्वसमर्थ श्रीहरिकी मैं स्तुति करता हूँ—वन्दन करता हूँ।

आचार्यका कहना है कि हे हरे! ब्रह्म निर्गुण है, यह वेदका वचन भी आपमें विरुद्ध नहीं है, किंतु समञ्जस है; क्योंकि आप समस्त अविद्या और तत्सम्बन्धी हेयगुण-धर्मसे रहित हैं, अतः निर्गुण (निर्विशेष) हैं। वास्तवमें तो आप समस्त सद्‌गुणोंके सागर हैं, इस कारण सविशेष हैं। अतः पूर्वोक्त प्राकृत गुणरहित और सद्‌गुणसागर आपके स्वरूपका आविर्भाव औपनिषद सिद्धान्तके अनुगामी मेरे-जैसेके लिये सदा बना रहे—ऐसी मेरी प्रार्थना है। श्रीभगवान्‌की गुणावलीका यत्किञ्चित निर्देश इस प्रकार है—ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, तेज, वीर्य, सौशील्य, वात्सल्य, आर्जव, सौहार्द, सर्वशरण्यत्व, सौम्यत्व, करुणा, स्थिरत्व, धैर्य, दया, माधुर्य तथा मार्दव आदि—

'गुणाश्च ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यतेजोवीर्यसौशील्यवात्सल्या-र्जवसौहार्दसर्वशरण्यत्वसौम्यकरुणास्थिरत्वधैर्यदयामाधुर्य-मार्दवादयः।' (वेदान्तरत्नमञ्जूषा)

इन गुणोंकी संक्षिप्त व्याख्या इस प्रकार है—श्रीकृष्णके

उन स्वाभाविक गुणोंमें सर्वदेशकालवस्तुविषयक प्रत्यक्षानुभवको '**ज्ञान**' कहते हैं। अघटनघटनापटीयसी-स्वरूप-सामर्थ्यको '**शक्ति**' कहा गया है, विश्वधारणादि शक्ति '**बल**' है। सर्वनियन्तृत्व शक्तिको '**ऐश्वर्य**' कहते हैं। श्रमके अपरिमित कारण होनेपर भी श्रमशून्यत्व '**तेज**' है। दूसरोंसे अभिभूत न होते हुए उनको अभिभूत करना '**वीर्य**' है—ये छः प्रकारके गुण जगत्‌की सृष्टि, स्थिति और संहारके उपकारक और भगवच्छब्दके वाच्य हैं।

अपनी महत्ताकी अपेक्षा न रखते हुए सरलतापूर्वक अतिमन्द प्राणियोंको भी हृदयसे लगाना '**सौशील्य**' है। सेवकोंके दोषों तथा त्रुटियोंकी उपेक्षा करना '**वात्सल्य**' है। मन, वाणी, शरीरसे समत्व रखना '**आर्जव**' है। अपने सामर्थ्यसे भी अधिक रूपमें दूसरोंकी रक्षा करनेका स्वभाव '**करुणा**' है। युद्धादिमें अविचल रहना '**स्थिरत्व**' है। प्रतिज्ञापालनको '**धैर्य**' कहा गया है। दूसरोंके दुःख देखकर दुःखित होते हुए उसे दूर करनेकी चेष्टा करना '**दया**' है। अमृतपानके समान दर्शनमें अतृप्ति होना '**माधुर्य**' है। आश्रितजनोंके दुःख, संतापादिको सहन न करना मार्दव कहा गया है। इसी प्रकार सौकुमार्यादि विग्रहगुणोंको भी समझना चाहिये। उपर्युक्त सौशील्यादिगुण भगवदाश्रयण और आश्रितके रक्षणमें परमोपयोगी हैं। इन्हीं भगवद्‌गुणोंका संकेत भगवान् श्रीबादरायणने '**विवक्षितगुणोपपत्तेश्च**' इस सूत्रद्वारा किया है।

'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च॥'

इत्यादि श्रुतियोंद्वारा नित्य-विभूति और लीला-विभूतिमें दीपसे दीपकी तरह अजहद-गुणशक्तिका प्रतिपादन किया है।

लीलावपुर्धारी सर्वेश्वर श्रीहरिकी अनन्त लीलाओंमें ऐश्वर्य-माधुर्ययुक्त ऊखलबन्धन-लीला अत्यन्त शिक्षाप्रद है। '**कश्यपोलूखलः ख्यातो रज्जुर्माताऽदितिस्तथा।**' इस कृष्णोपनिषद्के वचनानुसार जिस प्रकार नित्य-विभूतिमें भूषण-वसन, आयुध आदि सभी दिव्य चिन्मय हैं; उसी प्रकार लीलाविभूतिमें भी ऊखल, रस्सी, बेंत, वंशी तथा शृङ्गार आदि सब वस्तुएँ देवरूप बतायी गयी हैं। इसी भावको दर्शानेके लिये ऊखल, रस्सी आदिका स्वरूप बताते हैं। जो मरीचिपुत्र प्रजापति कश्यप हैं, वे नन्दगृहमें ऊखल बन गये। उसी प्रकार जितनी भी रस्सियाँ हैं, वे सब देवमाता अदितिके स्वरूप हैं। जब श्यामसुन्दर बालकृष्ण स्तनपानकी इच्छासे दधिगृहमें गये, जहाँ माता यशोदा दधिमन्थन कर रही थीं तो बालकको देखते ही दधिमन्थनका कार्य छोड़कर उन्हें स्तनपान कराने लगीं। इतनेमें दुग्धगृहमें दूध उफननेकी सूचना मिली, तब कन्हैयाको अतृप्त अवस्थामें छोड़कर वे भीतर चली गयीं। इधर बालकृष्ण कुपित हो गये। उन्होंने दूध-दहीके पात्र फोड़ दिये, वहाँपर दूध-दही फैलनेसे समुद्र-सा हो गया। जैसे आदिदेव नारायण क्षीरसागरमें विहार करते हैं, उसी प्रकार कन्हैया भी विहार करने लगे। इस भूलके कारण वे भयभीत होकर वहाँसे भागे, किंतु बादमें यशोदाजीने पकड़कर प्रभुको ऊखलमें रस्सियोंसे बाँध दिया और प्रभुका नाम 'दामोदर' पड़ा। भगवान् अपनी इच्छासे पितृरूप ऊखलमें मातृरूप रस्सियोंसे माता यशोदाके वात्सल्यवश बन्धनमें आ गये—यह उनकी कृपा थी। ('**कृपयासीत् स्वबन्धने**') यह है माधुर्यस्वरूप। ऐश्वर्यभाव है कि बन्धनके समय रस्सीका दो अंगुल छोटा पड़ना। भगवान्‌की ऐश्वर्यशक्ति यह नहीं चाहती कि उसके स्वामी प्राकृत रज्जुसे बँध जायँ।

किंतु प्रभुने संकेत कर दिया कि मैं मधुरमयी बाललीलाके लिये व्रजमें आया हूँ। यहाँ वात्सल्यका प्रभाव अधिक है, इसमें तुम बाधक मत बनो। ऐश्वर्यशक्ति हट गयी, श्रीहरि बँध गये। इस लीलासे प्रभुने जगत्‌को शिक्षा प्रदान की है कि वासना या इच्छाकी पूर्ति न होनेपर व्यक्तिको क्रोध आता है, क्रोधसे अपराध करता है और उस अपराधका उसे जेल, हथकड़ी, बन्धन आदि दण्ड मिलता है। अतः वासना या कामनाको मत फैलाओ, संयमसे ही सुख और भगवत्-प्राप्ति सम्भव है।

इस प्रकार द्वापरान्तमें अनन्त भक्तोंकी सदिच्छाको पूर्ण करनेके लिये श्रीहरिने लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्णके रूपमें अवतार धारण किया, इसीका संकेत आचार्यप्रवर श्रीनिम्बार्काचार्यजी करते हैं—

'नान्या गतिः कृष्णपदारविन्दात्
संदृश्यते ब्रह्मशिवादिवन्दितात्।
भक्तेच्छयोपात्तसुचिन्त्यविग्रहा-
दचिन्त्यशक्तेरविचिन्त्यसाशयात्॥

ब्रह्मा तथा शिव आदि देवेश्वर भी जिनकी वन्दना करते हैं, जो भक्तोंकी इच्छाके अनुसार परम सुन्दर एवं चिन्तन करनेयोग्य लीलाशरीर धारण करते हैं, जिनकी शक्ति अचिन्त्य है तथा जिनके अभिप्रायको उनकी कृपाके बिना कोई नहीं जान सकता; उन श्रीकृष्णचरणारविन्दोंके सिवा जीवकी दूसरी कोई गति नहीं दिखायी देती।

अवतार-तत्त्व-विमर्श

(आचार्य श्रीआद्याचरणजी झा)

जिसकी सत्ता पूर्वत: सिद्ध है, उसीका अवतरण होता है—'**नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सत:**' (गीता २।१६)-से यह बात प्रमाणित है। अवतार जन्म नहीं है। अतएव श्रीमद्भागवतके मङ्गलाचरणमें '**जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्**' कहा गया है।

उक्त श्लोकको संस्कृत टीकाओं विशेषत: श्रीधरी व्याख्यामें भी अनेक अर्थ प्राप्त हैं, किंतु महामना ब्रह्मचारीने बँगलामें ८७ प्रकारके अर्थ किये हैं। पण्डित गिरिराजशास्त्रीका कथन है कि ८७ अर्थोंमें समस्त श्रीमद्भागवत-कथाओंका सारभाग निहित है। उपर्युक्त अर्थोंके आलोकमें भगवान् श्रीकृष्णके आविर्भावसे तिरोभावपर्यन्त सभी अलौकिक लीलाओंके रहस्योंको समझनेके लिये '**विद्यावतां भागवते परीक्षा**' यह सूक्ति सर्वथा तथ्यपूर्ण है।

यद्यपि भारतीय पुराणोंमें अनेकानेक अवतारोंकी कथाएँ हैं, किंतु मुख्यत: श्रीरामावतार तथा श्रीकृष्णावतार—ये दो ऐसे हैं, जिनके विवरण-विश्लेषणसे अनेक ग्रन्थ परिपूर्ण हैं, निरन्तर आज भी हो रहे हैं और आगे होते रहेंगे।

श्रीरामावतारकी कथाएँ जहाँ सर्वथा लौकिक मर्यादासे परिपूर्ण हैं, वहीं श्रीरामने अपनी भगवत्ताकी गोपनीयताका प्रयास किया है। श्रीमद्भगवद्गीतामें आत्मा-परमात्माके प्रसंगोंका गहनतम विश्लेषण हुआ है, जिसकी व्याख्या भगवान् आद्य शंकराचार्यसे लेकर अधुनातन मनीषियों—भक्तोंने की है और अन्तमें 'नेति-नेति' कहकर सभीने अपनेको मुक्त कर लिया है।

सम्पूर्ण श्रीमद्भागवतमें प्रतिपदोक्त रूपमें राधा नामकी चर्चा नहीं है जबकि समग्र भागवती-कथा राधापर आधारित है। कहीं-कहीं आराधनादि पदसे राधा शब्द निकालनेका प्रयास किया जाता है।

भगवान् श्रीकृष्णके अलौकिक कृत्योंकी चरम परिणति है—महारास। उसमें रासेश्वरी शब्द है न कि राधा। ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्णजन्मखण्डके १७वें अध्यायमें राधाके १६ नाम मिलते हैं; यथा—राधा, रासेश्वरी, रासवासिनी, रसिकेश्वरी, कृष्णप्राणाधिका, कृष्णप्रिया, कृष्णस्वरूपिणी, कृष्णवामाङ्गसम्भूता, परमानन्दरूपिणी, कृष्णा, वृन्दावनी, वृन्दा, वृन्दावनविनोदिनी, चन्द्रावली, चन्द्रकान्ता और शरच्चन्द्रप्रभानना।

एक प्रमाण यह भी मिलता है—'**सर्वचेतोहरः कृष्णः तस्य चित्तं हरत्यसौ, वैदग्ध्यभावसंयुक्ताऽतो राधा हरा स्मृता**'

'राधा' शब्दकी व्याख्या—व्युत्पत्ति ब्रह्मवैवर्तपुराणमें निम्नाङ्कितरूपमें उपलब्ध है—

राधाशब्दस्य व्युत्पत्तिः सामवेदे निरूपिता।
नारायणस्तामुवाच ब्रह्माणं नाभिपङ्कजम्॥
यथा—
रेफो हि कोटिजन्माघं कर्मभोगं शुभाशुभम्।
आकारो गर्भवासं च मृत्युं च रोगमुत्सृजेत्।
धकार आयुषो हानिमाकारो भवबन्धनम्॥
श्रवणस्मरणोक्तिभ्यः प्रणश्यति न संशयः।
रेफो हि निश्चलां भक्तिं दास्यं कृष्णपदाम्बुजे॥
सर्वेप्सितं सदानन्दं सर्वसिद्धौघमीश्वरम्।
धकारः सहवासं च तत्तुल्यकालमेव च॥
ददाति सार्ष्टिसारूप्यं तत्त्वज्ञानं हरेः समम्।
आकारस्तेजसां राशिं दानशक्तिं हरौ यथा॥

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड १३।१०५—१०९)

सामवेदमें 'राधा' शब्दकी व्युत्पत्ति बतायी गयी है। नारायणदेवने अपने नाभिकमलपर बैठे हुए ब्रह्माजीको वह व्युत्पत्ति बतायी—

राधाका 'रेफ' करोड़ों जन्मोंके पाप तथा शुभाशुभ कर्मभोगसे छुटकारा दिलाता है। 'आकार' गर्भवास, मृत्यु तथा रोगको दूर करता है। 'धकार' आयुकी हानिका और 'आकार' भवबन्धनका निवारण करता है। राधा नामके श्रवण, स्मरण और कीर्तनसे उक्त सारे दोषोंका नाश हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। राधा नामका 'रेफ' श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दोंमें निश्चला भक्ति तथा दास्य प्रदान करता है। 'आकार' सर्ववाञ्छित, सदानन्दस्वरूप, सम्पूर्ण सिद्ध-समुदायरूप एवं ईश्वरकी प्राप्ति कराता है। 'धकार' श्रीहरिके साथ उन्हींकी भाँति अनन्त कालतक सहवासका सुख, समान ऐश्वर्य, सारूप्य तथा तत्त्वज्ञान

प्रदान करता है। 'आकार' श्रीहरिकी भाँति तेजोराशि, दानशक्ति, योगशक्ति, योगमति तथा सर्वदा श्रीहरिकी स्मृतिका अवसर देता है।

उपर्युक्त प्रमाणोंसे सिद्ध है कि सामवेदसे लेकर ब्रह्मवैवर्तपुराणादिमें राधा नामकी महिमा-गरिमा श्रेयसी-प्रेयसी है।

१६वीं शताब्दीमें रूपगोस्वामीके 'उज्ज्वलनीलमणि' नामक भक्तिरसप्रधान ग्रन्थमें 'अथ राधाप्रकरणम्' (श्लोक ५-६)-में निम्न कथन है—

यथा राधा प्रिया विष्णोस्तस्याः कुण्डं प्रियं तथा।
सर्वगोपीषु सैवैका विष्णोरत्यन्तवल्लभा॥
ह्लादिनी या महाशक्तिः सर्वशक्तिवरीयसी।

उक्त कथन बृहद् गौतमीयतन्त्र, पद्मपुराण आदिके आधारपर है।

श्रीकृष्णकी अलौकिक लीलाओंमें महारास ही चरमोत्कर्षपर है, जो राधाके बिना सम्भव ही नहीं है।

पूर्णावतार परब्रह्मस्वरूप लीलापुरुषके महारासकी भावना करनेसे आनन्दित होना सन्तोंका अनुभवसिद्ध है।

~~ ० ~~

अवतारतत्त्व-मीमांसा

(आचार्य डॉ० श्रीजयमन्तजी मिश्र, एम्०ए०, पी-एच्०डी०, व्याकरण-साहित्याचार्य, पूर्व कुलपति)

भक्तानुग्रहकाम्ययैव धरतेऽद्वैतेऽपि यो द्वैततां
राधामाधवरूपतां मधुरतामाधाय धत्ते पुमान्।
आत्मारामविहारतो निजजनानाराधयन्तं विभुं
कृष्णं भक्तजनप्रियं प्रभुवरं ध्याये परं चिन्मयम्॥

(महामानवचम्पू १।१।४)

श्लोकका भाव है कि क्षराक्षरातीत, सच्चिदानन्दघन, परमपुरुषोत्तम, सौन्दर्य-माधुर्य-निधान, वसुदेव-देवकीनन्दन आत्माराम भगवान् वासुदेव श्रीकृष्ण परमार्थतः अद्वैतरूप होते हुए भी भक्तोंपर अनुग्रह करनेकी भावनासे राधामाधव—इस द्वैतरूपमें धरातलपर अवतीर्ण होते हैं और भक्तजनोंको परितुष्ट करते हैं।

अवतार, अवतरण आदि शब्दोंका तात्पर्य है ऊपरसे नीचे उतरना। अपने गोलोकधाम[1], वैकुण्ठधाम आदि नामोंसे व्यपदिष्ट परमधामसे धर्मकी रक्षा, साधु-संतोंके परित्राण और अधर्मादि दुराचारोंके विनाशके लिये भगवान्का भूतलपर अवतार होता है। स्वयं भगवान् वासुदेव श्रीकृष्णचन्द्रने इस तथ्यका प्रतिपादन गीतामें किया है।[2]

इस तथ्यको और पल्लवित करते हुए श्रीमद्भागवतमें कहा गया है कि पृथ्वीका बोझ हलका करने, साधु-सज्जनोंकी रक्षा करने और दुष्ट-दुर्जनोंका संहार करनेहेतु समय-समयपर धर्म-रक्षाके लिये और बढ़ते हुए अधर्मको रोकनेके लिये और भी अनेकों शरीर ग्रहण कर भगवान् धरातलपर अवतीर्ण होते हैं—

एतदर्थोऽवतारोऽयं भूभारहरणाय मे।
संरक्षणाय साधूनां कृतोऽन्येषां वधाय च॥
अन्योऽपि धर्मरक्षायै देहः संध्रियते मया।
विरामायाप्यधर्मस्य काले प्रभवतः क्वचित्॥

(श्रीमद्भा० १०।५०।९-१०)

पञ्च कर्मेन्द्रिय, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च तन्मात्राओंसे बना हुआ लिङ्गशरीर जब चेतनासे युक्त होता है तो जीव कहलाता है।[3] परमात्माका अंश यह जीव परमेश्वरका ही अवतार है—**'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।'**[4] सनातन परमात्माका अंश यह जीव भी सनातन है। ध्यातव्य है कि जीवात्मा और परमात्मामें अंशांशिभाव औपाधिक है। जैसे घटसे आवेष्टित होनेके कारण घटाकाश महाकाशका अंश-सा प्रतीत होता है, वैसे ही उपर्युक्त लिङ्गशरीरसे आवेष्टित होनेके कारण जीवात्मा परमात्माके अंशरूपमें भासित होता है। वस्तुतः दोनोंमें तात्त्विक अन्तर नहीं है। जैसे नभोमण्डलस्थित चन्द्र और जलमें प्रतिविम्वित होनेवाला चन्द्र वस्तुतः एक ही है, वैसे ही क्षराक्षरातीत पुरुषोत्तम परमात्मा और लिङ्गशरीरस्थ जीवात्मा दोनों एक हैं, अभिन्न हैं।

अपने गोलोकधाममें नित्य रमण करनेवाले आत्माराम

---

१. 'गोलोकनाम्नि निजधाम्नि तले च तस्य' (ब्रह्मसंहिता ५।१५)
२. 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।' ···· 'धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥' (गीता ४।७-८)
३. एवं पञ्चविधं लिङ्गं त्रिवृत् षोडशविस्तृतम्। एष चेतनया युक्तो जीव इत्यभिधीयते॥ (श्रीमद्भा० ४।२९।७४)
४. गीता (१५।७)

गोविन्द दो प्रयोजनोंसे इस धराधामपर यदा-कदा अवतीर्ण होते हैं। हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष आदि दैत्य; रावण, कुम्भकर्ण आदि राक्षस और शिशुपाल, दन्तवक्त्र आदि गर्वोन्मत्त राजागण अपनी शक्तिका दुरुपयोग करते हुए जब देव, गन्धर्व, ऋषि, मुनि, साधु-सज्जनोंको अत्यन्त पीड़ित करने लगते हैं तो नरसिंह, राम आदि रूपोंमें आवश्यकतानुसार अपनी कलाको प्रकट करते हुए परम पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण[१] समय-समयपर पृथ्वीलोकमें अवतीर्ण होते रहते हैं और उन दुर्दान्तोंका निग्रह करते हैं। साधु-सज्जनोंकी रक्षा और दुष्ट-दुर्जनोंका संहार—इस प्रयोजनके साथ-साथ भक्तप्रिय भगवान् अपने अवतारके द्वारा अपने आत्मीय भक्तजनोंको आह्लादित भी करते हैं। इसीसे अवतारोंके दोनों प्रयोजन—दुष्टोंका संहार और भक्तजनोंका हृदयाह्लाद सिद्ध होते हैं।

परमेश्वरकी यह अवतार-लीला है। निखिल ब्रह्माण्डोंके आधार भगवान् वासुदेव ही हैं।[२] वे सत्, असत् और सदसत्से परे भी हैं। ऐसी स्थितिमें उनका अवतरण ऊपरसे नीचे आना लीलामात्र है, जो भक्तोंपर अनुग्रहकी भावनासे ही किया करते हैं। लिङ्गशरीरावेष्टित जीवोंका अवतरण 'जन्म' और विशुद्ध आत्मस्वरूप आत्माराम भगवान्‌का अवतरण 'अवतार' माना जाता है।

जीवात्मा कर्म-बन्धनसे आबद्ध है और परमात्मा जन्म-कर्म-बन्धनसे विनिर्मुक्त है।[३]

स्वयं भगवान्‌ने अपने अवतारोंके रहस्य और प्रयोजनोंको गीता, भागवतादि पुराणोंमें सूचित किया है; जिन्हें उनके ही अनुग्रहसे समझा जा सकता है।

वस्तुतः परमेश्वरके अनन्त, अपरिमेय, अप्रमेय और दिव्य गुणों तथा क्रिया-कलापोंको गिनने, समष्टिरूपमें जाननेका प्रयास जो करता है, उस प्रवृत्तिमें उसकी बालबुद्धि (मूर्खता) ही कारण है; क्योंकि भगवान् अनन्त हैं। उनके गुण भी अनन्त हैं। जो यह सोचता है कि वह उनके गुणोंको गिन लेगा, वह बालक है। यह तो सम्भव है कि कोई किसी प्रकार पृथ्वीके धूलिकणोंको गिन ले, परंतु समस्त शक्तियोंके आश्रय भगवान्‌के अनन्त गुणोंका कोई कभी किसी प्रकार पार नहीं पा सकता।[४]

अतः सामान्य दृष्टिसे यह कहा जाता है कि भगवान् दुर्जनोंके संहार, साधु-सज्जनोंके संरक्षण और भक्तजनोंके हृदयाह्लादके लिये अपने गोलोकधामसे इस धराधामपर अवतार लिया करते हैं। उनके अवतारोंके विशेष कारण जो शास्त्र-पुराणोंमें इङ्गित हैं, उन्हें मनीषी मतिमान् सूक्ष्मेक्षिकासे ज्ञानचक्षुद्वारा और पुण्यशाली महात्मा प्रभुकी ही कृपासे प्राप्त दिव्यदृष्टिसे देख पाते हैं।

अवतारोंको नमन

(श्रीरामलखनसिंहजी 'मयंक')

परमरूप छविमय भक्तोंके हेतु नाथ धरते अवतार।
जीवोंके सब क्लेश मिटाने आते जगमें विविध प्रकार॥
अत्याचार दुर्जनोंका जब घोर जगत्‌में छा जाता।
अन्यायोंसे त्रस्त हुआ सज्जन समूह अकुला जाता॥
धरती माँके साथ सभी सुर मुनिजन करते आर्त पुकार।
सुनकर द्रवित विवश होते प्रभु हरनेको तत्क्षण भूभार॥
मत्स्य, कूर्म, शूकर, नृसिंह, वामन, श्रीपरशुराम श्रीराम।
हलधर, गौतम बुद्ध, कल्कि हैं, नैमित्तिक अवतार तमाम॥
संतश्रेष्ठ जो आत्मसिद्ध भगवत्स्वरूप हैं नित अवतार।
करते हम सबको सन्मनसे, नमन, सभी हैं करुणागार॥

---

१. रामादिमूर्तिषु कलानियमेन तिष्ठन् नानावतारमकरोद् भुवनेषु किन्तु।
कृष्णः स्वयं समभवत् परमः पुमान् यो गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥ (ब्रह्मसंहिता ५।११)

२. 'मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय।' (गीता ७।७)

३. 'जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।' (गीता ४।९)

४. यो वा अनन्तस्य गुणाननन्ताननुक्रमिष्यन् स तु बालबुद्धिः। रजांसि भूमेर्गणयेत् कथञ्चित् कालेन नैवाखिलशक्तिधाम्नः॥
(श्रीमद्भा० ११।४।२)

अवतार—प्रयोग और प्रयोजन

(डॉ० श्रीराजीवजी प्रचण्डिया, बी०एस्-सी०, एल्-एल्०बी०, एम्०ए० (संस्कृत), पी-एच्०डी०)

सृष्टिका अस्तित्व ईश्वरपर आधृत है। अस्तु सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति और लय अर्थात् सृष्टिके जो शाश्वत धर्म हैं, उनमें ईश्वरकी भूमिका सारभूत है। ईश्वर तो एक ही है, किंतु ब्रह्मा, विष्णु और महेश—ये ईश्वरके तीन शाश्वत रूप हैं, जिसमें ब्रह्मा सृष्टिके सर्जक, विष्णु सृष्टिके पालक तथा महेश सृष्टिके संहारकके रूपमें लोकमें समादृत हैं।

ईश्वरके इन तीनों रूपोंमें विष्णु अधिक लोकप्रिय हैं; क्योंकि वे सृष्टिके पालनकर्ता होनेके कारण समग्र संसारको सद्धर्मसे सुसज्जित एवं सुव्यवस्थित किये रहते हैं। संसारमें सद्वृत्तियोंका जब लोप होने लगता है और असत् अथवा राक्षसी प्रवृत्तियाँ प्रभावी होने लगती हैं तो भगवान् विष्णु अवतारके रूपमें इस धरतीपर उतरकर संसारको असत्से सत्की ओर ले जाते हैं। अवतारका अर्थ है—'**अवतरणमवतारः।**' अर्थात् ऊपरसे नीचे उतरना। भगवान्का समय-समयपर भिन्न-भिन्न रूपोंमें लौकिक शरीर धारणकर इस धरतीपर उतरना या जन्म धारण करना अवतार कहलाता है।

ईश्वर सर्वसमर्थ, सर्वशक्तिमान्, सार्वभौम एवं सार्वकालिक है। उसमें वह अपरिमित शक्ति व्याप्त है, जिससे वह अप्राकृत शरीर धारणकर लोकमें अवतरित होता है। अवतारके रूपमें ईश्वर या भगवान् समस्त संसारको अपने वशमें किये हुए हैं। संसारी प्राणी भगवान्की अहैतुकी कृपासे या उसकी शरणमें जानेसे चाकपर रखे मिट्टीके पिण्डकी भाँति निरन्तर गतिशील है, संसारका परिभ्रमण करता हुआ वह सुख-दुःखका अनुभव कर रहा है। जिस प्रकार कुम्भकार चाकपर रखे मिट्टीके पिण्डको घुमाता है, उसी प्रकार ईश्वर या भगवान् अवतारके रूपमें सारे जगत्को घुमा रहा है। जैसा कि भगवद्गीता (अ० १८ श्लोक ६१)-में कहा गया है कि '**भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।**' मनुष्य तो उस सर्वशक्तिमान्की मात्र कठपुतली है; क्योंकि मनुष्य अल्पज्ञ तथा अल्पशक्तिमान् है। वह भक्ति तथा उपासना आदिके माध्यमसे भगवान्का सान्निध्य तो प्राप्त कर सकता है, उसे भगवान्की पावन सन्निधि तो मिल सकती है किंतु स्वयं भगवान् कभी नहीं बन सकता। उसमें भगवान् बननेकी शक्ति-सामर्थ्य कदापि नहीं आ सकती। जबकि भगवान् अवतारके रूपमें मनुष्य बन सकते हैं। इस धरतीपर जितने भी महापुरुष हुए हैं, वे सब ईश्वरके प्रतिनिधिरूप हैं, अवतारी हैं, कोई साधारण मनुष्य नहीं। इस प्रकार ईश्वर या भगवान्का अवतार लेनेका मुख्य प्रयोजन है—मानव-धर्म-संस्कृतिकी रक्षा, दुष्टोंका दलन और भक्तोंका रञ्जन।

इस धरापर आसुरी शक्तियोंको मिटानेके लिये तथा दिव्य शक्तियोंके संचरणहेतु त्रेतायुगमें भगवान् श्रीरामने और द्वापरयुगमें भगवान् श्रीकृष्णने अवतारके रूपमें ही जन्म लेकर अपनी लीलाओंके माध्यमसे संसारी प्राणियोंका कल्याण किया। वे कोई साधारण मानव नहीं हैं, अपितु भगवान् विष्णुके अवतार हैं। इसलिये वे जन-जनके आराध्य हैं, उपास्य हैं। भगवान् विष्णु नारायण हैं। वे भागवतधर्मके मूल प्रवर्तक हैं।

वैकुण्ठधाममें निवास करनेवाले भगवान् विष्णु भूलोकपर देवकी-वसुदेवके यहाँ श्रीकृष्णके रूपमें तथा राजा दशरथ और कौसल्याके यहाँ श्रीरामके रूपमें शरीर धारण कर जीवनपर्यन्त लीलादिके निमित्त व्यापक लोकमङ्गलके लक्ष्यकी पूर्ति ही करते रहते हैं। भागवतधर्मको लोक-जीवनके अधिक निकट लानेके लिये नारायणने अवतारका आश्रय लिया, ताकि धर्मके यथार्थ स्वरूपको सरलरूपमें जन-जनतक पहुँचाया जा सके। ब्रह्मके निराकार रूपको समझनेमें सामान्य जनता प्रायः असमर्थ रहती है, अतः ब्रह्मके इस निराकार रूपको आकार—रूप देना आवश्यक प्रतीत हुआ।

धर्मशास्त्रोंमें विशेषकर पुराणोंमें अवतारकी विशेष चर्चा हुई है, किंतु इसका मूल वैदिक साहित्यमें प्राप्त होता है। ऋग्वेद (१।१५४।२)-में भगवान् विष्णुके वामनावताद्वारा तीन पग में सम्पूर्ण सृष्टिके नापनेकी कथा व्यञ्जित है, शतपथब्राह्मणमें मत्स्यावतार (१।८।१।१), कूर्मावतार (७।५।१।५) तथा वामनावतार (१।२।५।१०) और

ऐतरेय ब्राह्मण, छान्दोग्योपनिषद् (३।१७।६) एवं तैत्तिरीय आरण्यक (१०।१।६)-में देवकीपुत्र श्रीकृष्ण या वासुदेव श्रीकृष्णकी कथाओंका उल्लेख भी अवतारके प्रसंगको दर्शाता है। पुराणोंमें भगवान्‌के चौबीस अवतारोंका उल्लेख हुआ है, किंतु उनमें दस अवतार प्रसिद्ध हैं। यथा १-मत्स्यावतार, २-कूर्मावतार, ३-वराहावतार, ४-वामनावतार, ५-नृसिंहावतार, ६-परशुरामावतार, ७-रामावतार, ८-कृष्णावतार, ९-बुद्धावतार तथा १०-कल्कि अवतार। ये समस्त अवतार लीलावतारके नामसे प्रसिद्ध हैं। श्रीमद्भागवतमें सत्त्वावतारकी भी चर्चा हुई है। सत्त्वावतारके रूपमें काल, स्वभाव, कार्य, करण, मन, पञ्चभूत, अहङ्कार, रज-तम-सत्—त्रिगुण, इन्द्रियाँ, स्थावर और जङ्गम जीवोंकी गणना की गयी है।

इस प्रकार सम्पूर्ण चराचर सृष्टि एक प्रकारसे भगवान्‌की ही व्यक्त और अव्यक्त मङ्गलमयी लीलाका एक उदात्त रूप है। इस पृथ्वीपर अंशावतार या कलावतार आदिके रूपमें प्रकट होकर भगवान् अपनी अहैतुकी कृपा करते हुए मानवीय वृत्तियोंको समाजमें संस्थापित करके जगत्‌के समस्त प्राणियोंको यह प्रेरणा प्रदान करते हैं कि जो नि:स्पृह होकर भगवान्‌की शरणमें चला जाता है, वह निश्चय ही परम गतिको प्राप्त होता है।

भगवदवतारोंपर आस्था, निष्ठा तथा उनकी शरण ग्रहण करनेवाले भक्त यह अनुभूत करने लगते हैं कि भगवान् सृष्टिके कण-कणमें व्याप्त हैं। सृष्टिमें जो कुछ भी शुभ-अशुभ घटित हो रहा है, उसमें भगवान्‌की ही लीला है। भगवान् पृथ्वीपर अनेक नाम-रूपोंमें अवतरित होकर नाना प्रकारकी लीलाएँ करते रहते हैं, उनके अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग लीला-कृत्य प्राकृत नहीं हैं अपितु दिव्यता एवं अलौकिकतासे संवेष्टित हैं। भक्तकी इस प्रकारकी निश्चयात्मिका बुद्धि उसके कल्याणका मार्ग प्रशस्त कर देती है।

भगवान् स्वयं कहते हैं कि जो मुझ ब्रह्मको अपनेमें तथा सर्वभूत प्राणियोंमें स्थित देखता है, उसके लिये मैं कभी भी न अदृश्य होता हूँ और न वह मुझसे ही कभी अदृश्य होता है।

~~○~~

'स्वलीलया जगत्त्रातुमाविर्भूतमजं विभुम्'

(श्रीश्यामनारायणजी शास्त्री, रामायणी)

अनन्तगुणगणाधिष्ठान, कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ सर्वेश्वर करुणावरुणालय भगवान्‌का विश्रामालय तो साकेतधाम, वैकुण्ठधाम, गोलोकधाम है; किंतु प्रभुकी लीलास्थली रंगमञ्च (नाट्यमञ्च) मृत्युलोक ही है। जब उनको विश्रामालयमें रहते-रहते कभी लीला (नाटक) करनेका विचार होता है तो वे मृत्युलोकरूपी विश्वरंगमञ्चपर ही कच्छप, मत्स्य, वामन, नृसिंह, परशुराम, बुद्ध आदि रूप धारणकर आते हैं और लीलाके उद्देश्यको पूर्ण करते हैं, फिर जब कभी मानवोंको उपदेश करनेके लिये आदर्श स्थापित करने आते हैं तो अपने समस्त परिकरमण्डल ही क्या अन्यान्य देवोंके साथ सृष्टिके कर्ता, धर्ता तथा संहर्तातकको भी साथ लेकर पूरी तैयारी कर-कराके इस विश्वरंगमञ्चकी गरिमाको बढ़ाने एवं अपने अनेक उद्देश्योंकी पूर्ति करनेके लिये फिर नटवरवपु धारण कर नट-नागर बनकर समस्त पात्रोंके साथ विश्वभरको लीला दिखाकर आदर्श स्थापित करते हैं। उस समय विश्वरंगमञ्चकी शोभा अनुपम, मनोरम, आनन्ददायिनी, सर्वलोकमोहनी हो जाती है। इस लीलामें समस्त देव ही क्यों; बिधि, हरि और शम्भु भी शामिल रहते हैं—

जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे। बिधि हरि संभु नचावनि हारे॥

(रा०च०मा० २।१२७।१)

श्रीरामावतारमें देवादि वानर तथा श्रीकृष्णावतारमें गोप-ग्वाल-गोपी, गौ, वृक्ष, लता, वीरुध, गुल्म, तृण, अंकुर आदि भी बनकर उस नटनागर प्रभुके मञ्चपर मंचन कर पूरा-पूरा सहयोग देकर फिर प्रभुके साथ ही निज धाम चले जाते हैं—

'प्रजा सहित रघुबंसमनि किमि गवने निज धाम।'

(रा०च०मा० १।११०)

इस विश्वरंगमञ्चपर प्रभु स्वयं सूत्रधार बनते हैं, मंचन करनेवाले जीवोंको अभिनेता बनाते हैं और मायाको नटी—नाचने या नचानेवाली पात्र बनाते हैं। चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमण ही इस नाट्यशालाके अनेक द्वार हैं, चौदह भुवन ही रंगभूमि है, इसमें सूर्य, चन्द्र-जैसी परम प्रकाशक

ज्योतियाँ तथा मोहभ्रमकी यवनिका (परदा) है। प्रभु स्वयं सूत्रधार—निर्देशक बनकर जिसे जैसा आदेश देते हैं, वैसा ही उसे करना पड़ता है।

किंतु क्या यह नाटकमात्र ही नाट्य-उद्देश्य होता है? नहीं-नहीं, इस नाटकका मुख्य उद्देश्य निम्न है—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

(गीता ४।८)

अर्थात् अवतरणसे साधुपरित्राण, दुष्टविनाश, वैदिक धर्मस्थापन—इन तीनों कार्योंकी तो प्रमुखता है ही, इसके साथ ही मर्त्यशिक्षण तथा मानवादर्श-स्थापन भी है—

'मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं
रक्षोवधायैव न केवलं विभो।'

(श्रीमद्भा० ५।१९।५)

वैसे सर्वोपाधिविनिर्मुक्त परमात्मा, जिनके भ्रूविक्षेपमात्रमें जगत्की सृष्टि, पालन, लय संनिविष्ट है, अपने समस्त उपर्युक्त कार्य अपने संकल्पमात्रसे भी कर सकते हैं तथापि इतने नाटकका मूल उद्देश्य है—

भगत भूमि भूसुर सुरभि सुर हित लागि कृपाल।
करत चरित धरि मनुज तनु सुनत मिटहिं जग जाल॥

इसी कारण कहा गया—

'स्वलीलया जगत्त्रातुमाविर्भूतमजं विभुम्॥'

(रामरक्षास्तोत्र ३)

अपनी लीला (नाटक)-से प्रभु जगत्की रक्षाके लिये अज एवं समर्थ होते हुए भी धनुष-बाण लेकर अवतरित होते हैं। कभी धनुष-बाण, कभी शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म और कभी वंशी लेकर अवतरित होनेका मूल उद्देश्य इस प्रकार है—

'बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।'

(रा०च०मा० १।१९२)

क्योंकि उस संसारके परम व्यवस्थापककी सुव्यवस्था इन्हीं चारों (विप्र, धेनु, सुर तथा संत)-से पूर्ण रूपमें आश्रित होकर चलती है। इन्हीं चारोंके भरोसे वे निश्चिन्त रहते हैं, किंतु जब इन चारोंकी व्यवस्था बिगड़ने लगती है तो प्रभुको स्वयं इसे सुव्यवस्थित करनेके लिये अवतार लेना पड़ता है। यहाँ इसपर संक्षेपमें विचार प्रस्तुत है—

१-विप्र—ब्राह्मणकी उत्पत्ति प्रभुके मुखसे है—**'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्।'** जैसे केवल मुखको भोजन देनेसे सभी अङ्गोंकी संतुष्टि तथा सम्पुष्टि हो जाती है, वैसे ही—

स्वमेव ब्राह्मणो भुङ्क्ते स्वं वस्ते स्वं ददाति च।
तस्यैवानुग्रहेणान्नं भुञ्जते क्षत्रियादयः॥

(श्रीमद्भा० ४।२२।४६)

महाराज पृथुने सनत्कुमारजीसे कहा कि ब्राह्मण स्वयं भोजन करता तथा क्षत्रियादिक सभीको अपने अनुग्रहसे खिलाता एवं देता है। परशुरामजीने तो मिथ्याभिमानी क्षत्रियोंकी उद्दण्डताको नष्ट करके सारा राज्य ब्राह्मणोंको ही दे दिया था। इसी प्रकार श्रीरामने यज्ञ करके सर्वस्व दान विप्रोंको दिया। विप्रोंने सब लेकर वापस क्षत्रियोंको ही राज्य-रक्षत्व-भावसे दे दिया। भगवान् वामनने बलिसे विप्र बनकर सर्वस्व लेकर फिर देवोंको दे दिया, स्वयं बलिके द्वारपाल बनकर अबतकका विप्र-सर्वस्व-दानका आदर्श स्थापित किया।

वसिष्ठ, शतानन्द, विश्वामित्र, धौम्य, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, चाणक्य आदि विप्रोंके हाथों एवं आज्ञापालक बनकर शासन क्षत्रियोंके ही द्वारा चलता रहा।

२-धेनु—एक ही कुलके दो भेद हैं—गौ और ब्राह्मण। ब्राह्मणमें यज्ञके सभी वेदमन्त्र हैं। गौमें यज्ञका सम्पूर्ण हविर्द्रव्य है। यज्ञसे ही सम्पूर्ण संसारका पालन-पोषण होता है। गौसे गोमय, गोमूत्र, गोदुग्ध, गोदधि, गोघृत—पञ्चगव्य तथा पञ्चामृतकी सामग्री प्राप्त होती है।

३-सुर—देवोंके द्वारा ही हमारा शरीर सुरक्षित है, समस्त इन्द्रियद्वारोंपर देवगणोंका अधिष्ठान है—*'तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना।'* (रा०च०मा० ७।११८।११) साथ ही वे हमारे सर्वार्थसाधक हैं।

४-संत—संतोंका यज्ञ-यागादिक विप्र, धेनु, सुरके द्वारा ही सम्पन्न होता है एवं इन्हींकी उपासना इनके जीवनका सार है। संत देवोपासक होते हैं।

इस प्रकार परमात्माके संसारकी सुव्यवस्थाके आधार विप्र, धेनु, सुर तथा संत हैं। इन चारोंपर जब संकट आ पड़ता है, तब भगवान्का अवतार किसी लीलाके माध्यमसे होता है। **'अजायमानो बहुधा वि जायते'** (यजु० ३१।१९) का मूलाधार है—

'स्वलीलया जगत्त्रातुमाविर्भूतमजं विभुम्॥'

अवतार

[कहानी]

(श्री 'चक्र')

'संसारके प्राणी अत्यन्त दुःखी हैं दयाधाम!' देवर्षि नारद गोलोकेश्वरका सत्कार स्वीकार करके आसनपर आसीन हो गये थे और कुशल-प्रश्नका अवकाश दिये बिना ही उन्होंने स्वतः प्रार्थना प्रारम्भ कर दी—'आपकी अहैतुकी कृपाके अतिरिक्त उनका और कोई आश्रय नहीं है।'

'मैं कृपा-कृपण नहीं हुआ हूँ देवर्षि!' तनिक मुस्कराये मयूरमुकुटी। 'जीवोंके परम कल्याणके लिये श्रुतिकी शाश्वत वाणी मैंने पूर्वसे उन्हें प्रदान की। सृष्टिके प्रारम्भमें ही मैं स्रष्टाको वेद-ज्ञान दे देता हूँ, जिससे जीवोंको अज्ञानके अन्धकारमें भटकना न पड़े।'

'वे अब भी भटक रहे हैं।' कृपाकी अतिशयताके कारण नारदजीके नेत्र टपकने लगे—'जप-तप, योग-यज्ञ आदिमें प्रथम तो उनकी प्रवृत्ति नहीं होती और कदाचित् हो भी गयी तो आपकी लोकविमोहिनी मायाके प्रलोभन कहाँ कम हैं। भोग, यश, स्वर्ग और कुछ न हो तो अहंकार—इन पाशोंसे परित्राण कैसे पायें वे दुर्बल?'

'अन्ततः आप चाहते क्या हैं?' सीधा प्रश्न किया गया। श्रीनारदजीका क्या ठिकाना कि कब उठ खड़े हों। उनको कहीं स्थिर बैठना आता नहीं। उनकी खड़ाऊँ हिलने लगी है। दूसरे, ये लम्बी चुटियावाले वीणाधारी विचित्र स्वभावके हैं। इधरकी उधर लगानेमें, पहेली बुझानेमें इन्हें आनन्द आता है। क्या पता कब कह दें कि आगेकी बात अपने-आप समझो। अभी सानुकूल हैं। अतएव अभी सीधे ही पूछ लेना अधिक उपयुक्त था।

'मेरे चाहनेका कोई महत्त्व नहीं।' देवर्षिने उलाहना नहीं दिया। वे प्रार्थनाके स्वरमें ही बोल रहे थे—'आप सर्वज्ञ हैं; किंतु जीव इसे समझ नहीं पाते। उनके मध्य आप पधारो और स्वयं अपने व्यक्त दृगोंसे उन्हें देखो। वे आपके परम मङ्गलायतन स्वरूपका दर्शन करें। आपके व्यक्त सगुण-साकार श्रीविग्रहके रुचिर क्रीडा-विहारोंका आधार मिले उनके चञ्चल चित्तको। तब कहीं माया भगवती भी कुछ संकुचित होंगी, कुछ कृपा करना आवेगा उन्हें।'

पीताम्बरधारीने तनिक देखा निकुञ्जेश्वरीकी ओर। तात्पर्य स्पष्ट था—'इनकी छाया-शक्ति ही माया है। आप इनसे क्यों नहीं कहते?'

'ये नित्य प्रेमस्वरूपा—इन्हें तो स्नेह ही देना आता है!' देवर्षिने अञ्जलि बाँधकर मस्तक झुकाया—'आपकी क्रीडा-प्रियतामें बाधा न पड़ती; इन्होंने कहाँ कब उपेक्षा सीखी है किसीकी। इनके स्मरणसे मायाका अन्धकार तिरोहित होता है; किंतु जीवोंका अभाग्य—वे स्मरण ही कहाँ कर पाते हैं। उनके लिये स्मरणका स्पष्ट, व्यक्त, सुरम्य, आधार प्रदान करने आप स्वयं धरापर पधारें देव!'

'आपकी इच्छा पूर्ण हो!' देवर्षिने वीणा तब उठायी, जब सर्वेश्वरके श्रीमुखसे यह सुन लिया।

× × ×

'मैं बार-बार धरापर गया और मैंने जीवोंके कल्याणके साधन उन्हें प्रदान किये।' युगोंके पश्चात् देवर्षि फिर गोलोक पधारे थे और इस बार श्यामसुन्दर स्वतः बता रहे थे—'मानव कर्ममें नित्य स्वतन्त्र है और वह उन्हीं कर्मोंको प्रिय मानता है, जो उसके बन्धनको और दृढ़ करते हैं। वह अपने क्लेशको बढ़ानेमें लगा है। मेरी ओर देखनेका तो जैसे उसके पास समय ही नहीं।'

'आपने महामत्स्यरूप धारण किया और मानवके एक आदिपुरुषको स्वतः श्रीमुखसे धर्मका उपदेश किया!' देवर्षिकी वाणीमें इस बार व्यंग था—'मानवका अभाग्य कि वह उस धर्मकी ओर ध्यान नहीं देता और ध्यान नहीं देता प्रलयाब्धिविहारी महामत्स्यकी ओर।'

'देवर्षि! मैं मत्स्यावतार, वाराहावतार या वामन अथवा नृसिंहावतारकी चर्चा नहीं कर रहा हूँ।' श्रीकृष्णचन्द्र खुलकर हँसे—'ये अवतार मनुष्योंके मध्य नहीं हुए और मानव इनमें आकर्षण न पाये तो उसे दोष देनेका कारण नहीं है।'

'मनुष्यके कल्याणके लिये आप गृहत्यागी बने और नर-नारायणरूपसे आपने दीर्घकालीन तपस्या की। कपिलरूपमें आपने तत्त्वका प्रसंख्यान किया और तपका आदर्श स्वतः उपस्थित किया।' देवर्षिका स्वर परिवर्तित नहीं हुआ—'कूर्म, यज्ञ, हयशीर्ष, मोहिनी अवतारकी चर्चा आप करेंगे

भगवान् श्रीकृष्णको चुनौती दी थी, नकली अवतार पौण्ड्रकने

(गोलोकवासी भक्त श्रीरामशरणदासजी)

हमारे धर्मशास्त्रों तथा पुराणोंमें जहाँ भगवान्के अवतारोंका वर्णन मिलता है, वहीं वर्तमानकालकी तरह भगवान् श्रीकृष्णके कालमें भी एक नकली अवतारका वर्णन श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धमें मिलता है।

करूष देशके राजा पौण्ड्रकने एक बार भगवान् श्रीकृष्णके पास अपना दूत भेजकर कहलवाया—'असली भगवान् वासुदेव मैं हूँ।'

भगवान् श्रीकृष्ण द्वारकामें सभासदोंके साथ बैठे हुए थे। दूतने उपस्थित होकर अपने राजा पौण्ड्रकका संदेश सुनाया—'एकमात्र मैं ही वासुदेव हूँ, दूसरा कोई नहीं है। प्राणियोंपर कृपा करनेके लिये मैंने ही अवतार ग्रहण किया है। तुमने झूठ-मूठ अपना नाम वासुदेव रख लिया है, अब उसे छोड़ दो। यदुवंशी वीर! तुमने मूर्खतावश मेरे चिह्न धारण कर रखे हैं। उन्हें छोड़कर मेरी शरणमें आओ और यदि मेरी बात स्वीकार न हो तो मुझसे युद्ध करो।'

अपनेको असली कृष्ण होनेका दावा करनेवाले राजा पौण्ड्रकका संदेश सुनकर उग्रसेनसहित सभी सभासद् हँसने लगे।

भगवान् श्रीकृष्णने दूतसे कहा—'अपने राजासे जाकर कह दो कि यह युद्धमें निर्णय हो जायगा कि असली वासुदेव कौन है? उससे कहना कि रे मूढ़! मैं अपने चक्र आदि चिह्न यों नहीं छोड़ूँगा, इन्हें मैं तुझपर छोड़ूँगा और केवल तुझपर ही नहीं, तेरे उन सभी साथियोंपर भी, जिनके बहकानेसे तू इस प्रकार बहक रहा है।'

राजा पौण्ड्रक काशीमें अपने मित्र काशिराजके पास रह रहा था। दोनों ओरकी सेनाएँ मैदानमें आ डटीं, काशीका राजा अपनी सेनासहित पौण्ड्रककी सेनाके पीछे-पीछे था।

उस समय पौण्ड्रकने शंख, चक्र, गदा, तलवार, शार्ङ्गधनुष और श्रीवत्स आदि चिह्न धारण कर रखे थे। वक्षःस्थलपर बनावटी कौस्तुभमणि और वनमाला भी लटक रही थी। उसने रेशमी पीले वस्त्र पहन रखे थे और रथकी ध्वजापर गरुडचिह्न भी लगा रखा था। उसने सिरपर अमूल्य मुकुट धारण किया हुआ था और उसके कानोंमें मकराकृत कुण्डल जगमगा रहे थे, उस नकली कृष्णने अपना वेष पूरी तरह बनावटी बना रखा था। वह ऐसा लग रहा था मानो कोई अभिनेता रंगमंचपर अभिनय करनेके लिये आया हो।
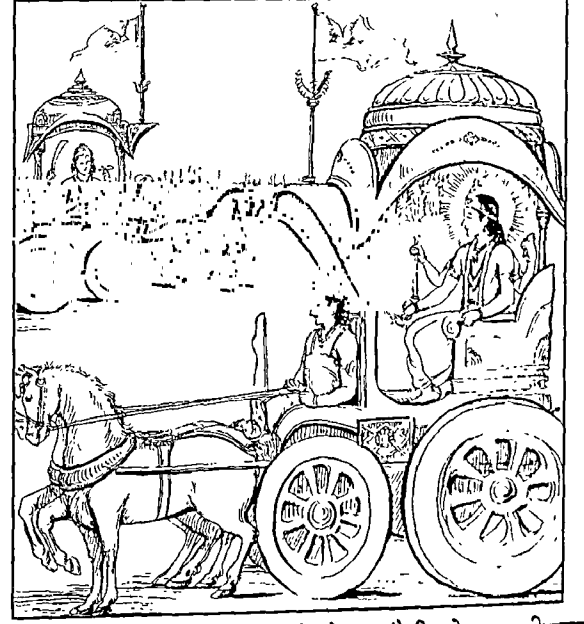
भगवान् श्रीकृष्ण अपनेको चुनौती देकर श्रीकृष्ण बतानेवाले उस नकली अवतारको देखकर खिल-खिलाकर हँस पड़े। देखते-ही-देखते पौण्ड्रकने भगवान् श्रीकृष्णपर त्रिशूल, गदा तथा अन्य अस्त्र-शस्त्रोंसे प्रहार किया। भगवान् श्रीकृष्णने देखते-ही-देखते क्षण भरमें पौण्ड्रक तथा काशिराजकी सेनाके हाथी, रथों तथा घोड़ोंको तहस-नहस कर डाला। भगवान्ने अपने सुदर्शन चक्रके प्रहारसे उस पाखण्डी अवतारका सिर धड़से अलग कर डाला।

इसी प्रकार हिरण्यकशिपुने भी स्वयंको ही परमेश्वर बताकर अपने पुत्र प्रह्लादसे किन्हीं अन्यको भगवान् न माननेका दुराग्रह किया था। उसने भगवान्की भक्ति करनेके आरोपमें अपने ही पुत्र भक्तराज प्रह्लादको अनेक प्रकारसे अमानवीय यातनाएँ देनेके प्रयास किये। अन्तमें भगवान् नरसिंहने खम्भेसे प्रकट होकर उस स्वयम्भू भगवान् हिरण्यकशिपुका पेट फाड़कर उसके अहंकारको

नष्ट कर डाला।

भारत अवतारोंकी पावन लीलाभूमि है। भगवान् श्रीकृष्ण, भगवान् श्रीराम आदि अनेक अवतारोंने गो-ब्राह्मणों, संतजनोंके रक्षार्थ तथा धर्मकी पुनः स्थापनाके लिये मानवरूपमें अवतरित होकर लीलाएँ कीं, किंतु यह अत्यन्त दुर्भाग्यकी बात है कि पौण्ड्रक तथा हिरण्यकशिपुकी तरह समय-समयपर अनेक ऐसे व्यक्ति पैदा होते रहते हैं, जो अपनेको साक्षात् अवतार होनेका दावा कर भोले-भाले श्रद्धालुजनोंका धार्मिक शोषण करते रहते हैं।

कुछ दशकपूर्व एक तथाकथित संतने अपनेको भगवान् श्रीकृष्णका अवतार घोषित कर दिया। वे स्वयं सिरपर मोरमुकुट पहनकर हाथमें बाँसुरी रखा करते थे। अपने चार पुत्रोंको बालभगवान् बताया करते थे। देखते-ही-देखते लाखों अंधविश्वासी लोग उनके भक्त-शिष्य बन गये और उन्हें भगवान् श्रीकृष्णका अवतार बताकर पूजने लगे। बादमें जब उनका एक पुत्र तथाकथित बालभगवान् एक विदेशी बालासे विवाह कर उसे लेकर विदेश चला गया, तब लोगोंका भ्रम टूटा।

किसी जमानेमें सिंधके सक्खर क्षेत्रमें एक कथित संतने अपनेको साक्षात् भगवान् शिव घोषित कर दिया। उनका कथन था कि पुराणोंमें भगवान्की गलत ढंगसे कल्पना की गयी है, असली शिव तो मैं हूँ।

पंजाबमें किसी समय सर आगाखाँके अनुयायियोंने आगाखानी मत चलाया था। हिन्दुओंको अपने मायाजालमें फँसानेके लिये उनके अनुयायियोंने घोषित किया था कि सर आगाखाँ कल्कि भगवान्के अवतार हैं, उनके ऐसे चित्र छपवाकर वितरित किये जाते थे। एक बार शास्त्रार्थमहारथी पं० माधवाचार्यशास्त्रीजी आदि सनातनधर्मी विद्वानोंने लाहौरमें आगाखानी मतके नेताओंको चुनौती दी कि वे अपनेको अवतार सिद्ध करें। तब जाकर उन्हें यह प्रचार बंद करनेको बाध्य होना पड़ा था।

भारत सदैवसे धर्मपरायण देश रहा है। असंख्य संत-महात्माओं, धर्माचार्यों, भक्तोंने जन्म लेकर भक्ति-भागीरथी प्रवाहित की। किसीने भी अपनेको सर्वशक्तिमान् अवतार नहीं बताया। तमाम संत-महात्मा आचार्यगण पुराणों तथा धर्मशास्त्रोंमें वर्णित अवतारोंकी पूजा-उपासना कर मानवजीवन सार्थक बनानेका उपदेश और प्रेरणा देते रहे। किसीने भी भगवान्की उपासनाकी जगह अपनी पूजा-उपासना नहीं बतायी। भगवान्के विग्रह (मूर्ति)-की जगह अपनी मूर्तिका पूजन करनेको नहीं कहा। अब अनेक कलियुगी कथित संत तथा गुरु भगवान्के अवतारोंकी जगह अपनी पूजा-अर्चना कराने लगे हैं। उनके अंधविश्वासी भक्त प्रचार करते देखे जाते हैं कि गुरुजीका नाम-स्मरण करते ही संकट टल गया। उनके चित्रका पूजन करनेसे बीमारी भाग गयी। अब तो अनेक तथाकथित गुरुओंके अंधविश्वासी चेलोंने गुरुको अवतार सिद्ध करनेके लिये कुछ तथाकथित पंडितोंसे उनकी महत्तापर, जीवनपर पदोंकी तुकबंदी कराकर हनुमानचालीसा जैसे दिव्य पदोंकी जगह गुरुचालीसा प्रकाशित कराकर उनका पाठ शुरू कर दिया है। उनपर लिखे काव्यग्रंथका रामचरितमानसकी तरह पाठ किया जाने लगा है। गुरुओंकी मूर्तिके समक्ष आरती की जाने लगी है। कई अंधविश्वासी चेलोंने तो अपने गुरुओंके मंदिर बनाने शुरू कर दिये हैं। उन्होंने मंदिरमें भगवान् श्रीकृष्ण, भगवान् श्रीराम, महादेव शंकर, हनुमान्जी आदिकी मूर्तियोंके स्थानपर गुरुओंकी मूर्तियोंको स्थापित करना शुरू कर दिया है।

ब्रह्मनिष्ठ संत उड़ियाबाबाजी महाराज, महान् विरक्त संत स्वामी कृष्णबोधाश्रमजी महाराज, धर्मसम्राट् स्वामी करपात्रीजी महाराज जैसे तपोनिष्ठ संत प्रायः प्रवचनमें कहा करते थे कि श्रद्धालुजनोंको उन तथाकथित कलियुगी संतोंसे सतर्क रहना चाहिये जो अपनेको सर्वशक्तिमान्, साक्षात् अवतार घोषित कर चेले-चेली बनाकर उनका धार्मिक शोषण करते हैं। ये सभी ब्रह्मनिष्ठ संत धर्मगुरुओं या संत-महात्माओंकी मूर्तियाँ स्थापित कर उनका पूजन किये जानेको शास्त्रविरुद्ध मानते थे। वे विशेषकर महिलाओंको तो ऐसे मायावी कलियुगी नकली अवतारोंसे दूर ही रहनेकी प्रेरणा दिया करते थे।

अतः हमें शास्त्रोंमें वर्णित अपने महान् अवतारोंके प्रति पूर्ण श्रद्धावान् रहते हुए उनकी उपासनाके माध्यमसे मानवजीवनको सफल बनाते हुए कलियुगी नकली अवतारोंसे पूर्ण सावधान रहना चाहिये; अन्यथा हम अपने मानवजीवनको कलंकित ही कर लेंगे।

जहाँतक पौण्ड्रककी बात है, वह भगवान्के रूपको

चाहे जिस भावसे हो, सदा चिन्तन किया करता था, बनावटी वेश धारण करनेमें भी वह उन्हींका बार-बार स्मरण करता था, अतः उसके तो सभी बन्धन कट गये, भगवान्‌के हाथों उसकी मृत्यु हुई और वह सारूप्य मुक्तिको प्राप्त हुआ, परंतु इन कलियुगी भगवानोंका ध्येय तो सिर्फ स्वार्थ और शोषण ही है। भगवान्‌के रूपका स्मरण-चिन्तन तो दूर, परोक्षमें ये लोग सारे कार्य उनके सिद्धान्तोंके विपरीत ही करते हैं; अतः ऐसे वंचकोंको तो दूरसे ही प्रणाम करना चाहिये। गोस्वामीजीने इनके विषयमें लिखा है—

बंचक भगत कहाइ राम के। किंकर कंचन कोह काम के॥

(रा०च०मा० १।१२।३)

[प्रेषक—श्रीशिवकुमारजी गोयल]

'राम जनम के हेतु अनेका'

(डॉ० स्वामी श्रीजयेन्द्रानन्दजी 'मानसमराल')

श्रीरामचरितमानसमें भगवती पार्वतीने भगवान् श्रीरामके अवतारके कारणके सम्बन्धमें भगवान् शंकरसे पूछते हुए कहा—जो चिन्मय ब्रह्म सर्वव्यापक, अविनाशी और घट-घटवासी है; उसे नरशरीर धारण करनेकी क्या आवश्यकता हुई—

राम ब्रह्म चिनमय अबिनासी। सर्ब रहित सब उर पुर बासी॥
नाथ धरेउ नरतनु केहि हेतू। मोहि समुझाइ कहहु बृषकेतू॥

(रा०च०मा० १।१२०।६-७)

प्रत्युत्तरमें भगवान् शंकरने कहा कि भगवान् रामके अवतार-ग्रहणका एकमात्र यही कारण है, ऐसा नहीं कहा जा सकता है—

हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थं कहि जाइ न सोई॥

(रा०च०मा० १।१२१।२)

फिर भी संतों और वेद-पुराणोंने भगवान्‌के अवतारके विषयमें जैसा अनुमान किया है, वैसा मैं तुम्हारे समक्ष कहूँगा। जब-जब धर्मकी मर्यादा ध्वस्त होती है, अधर्म और अभिमानकी वृद्धि होती है; गाय, ब्राह्मण, देवता और पृथ्वीपर अत्याचार बढ़ता है, तब-तब विविध शरीर धारणकर परमात्मा असुरोंका संहार करते हैं तथा धर्मको पुनः स्थापित करते हैं—

जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु।
जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु॥

(रा०च०मा० १।१२१।६—८, दो० १२१)

भगवान् शंकर पुनः कहते हैं—इन सामान्य कारणोंके अतिरिक्त भगवान् श्रीरामके अवतारके परम विचित्र अनेक कारण हैं, जिनमेंसे कुछका उल्लेख मैं करूँगा—

राम जनम के हेतु अनेका। परम बिचित्र एक तें एका॥
जनम एक दुइ कहउँ बखानी। सावधान सुनु सुमति भवानी॥

(रा०च०मा० १।१२२।२-३)

प्रथम कारण—वैकुण्ठमें भगवान् विष्णुके जय और विजय—दो द्वारपाल रहते हैं। एक बार उनके मनमें ऐसा विचार आया कि सभी विष्णुकी ही पूजा-आरती करते हैं, हमारी कोई करता ही नहीं। आज जो पहले हमारी पूजा-आरती करेगा, उसे ही भीतर जाने देंगे। उस दिन संयोगसे सनकादिक आ गये। जय-विजयने उन्हें भीतर जानेसे रोक दिया तो उन्होंने शाप दे दिया कि तुम दोनों निशिचर हो जाओ। फलतः दोनों हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष नामक दैत्य हुए। उनको मुक्त करनेके लिये भगवान्‌को अवतार लेना पड़ा—

द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ। जय अरु बिजय जान सब कोऊ॥
बिप्र श्राप तें दूनउ भाई। तामस असुर देह तिन्ह पाई॥
कनककसिपु अरु हाटक लोचन। जगत बिदित सुरपति मद मोचन॥
बिजई समर बीर बिख्याता। धरि बराह बपु एक निपाता॥
होइ नरहरि दूसर पुनि मारा। जन प्रहलाद सुजस बिस्तारा॥

(रा०च०मा० १।१२२।४—८)

तीन जन्मतक जय और विजय निशाचर बने तथा अवतार लेकर भगवान्‌ने उन्हें मुक्त किया।

दूसरा कारण—जलन्धरके लिये भगवान्‌को अवतार ग्रहण करना पड़ा। जलन्धरकी पत्नी वृन्दा परम सती थी।

उसके सतीत्वके प्रतापसे जलन्धरको कोई मार नहीं पाता था। भगवान् शंकर भी उसे नहीं मार पाये। तब भगवान् विष्णुने जलन्धरका शरीर धारण कर वृन्दाका सतीत्वहरण किया और जलन्धरको मारा। जलन्धर रावण बना, जिसको मारनेके लिये रामको अवतार लेना पड़ा—

छल करि टारेउ तासु ब्रत प्रभु सुर कारज कीन्ह।
जब तेहिं जानेउ मरम तब श्राप कोप करि दीन्ह॥
तासु श्राप हरि दीन्ह प्रमाना। कौतुकनिधि कृपाल भगवाना॥
एक जनम कर कारन एहा। जेहि लगि राम धरी नरदेहा॥

(रा०च०मा० १।१२३, १२४।१, ३)

तीसरा कारण—एक बार नारदमुनिके शापके कारण भगवान्को नरशरीर ग्रहण करना पड़ा। जब भगवान् शंकरने नारदद्वारा भगवान्को शाप देनेकी बात कही तो गिरिजा चकित हो गयीं। उन्होंने कहा कि नारदजी भगवान्के परम भक्त और ज्ञानी हैं। अत: उनके द्वारा शाप दिया जाना असम्भव प्रतीत होता है—

नारद श्राप दीन्ह एक बारा। कलप एक तेहि लगि अवतारा॥
गिरिजा चकित भईं सुनि बानी। नारद बिष्नुभगत पुनि ग्यानी॥
कारन कवन श्राप मुनि दीन्हा। का अपराध रमापति कीन्हा॥
यह प्रसंग मोहि कहहु पुरारी। मुनि मन मोह आचरज भारी॥
बोले बिहसि महेस तब ग्यानी मूढ़ न कोइ।
जेहि जस रघुपति करहिं जब सो तस तेहि छन होइ॥

(रा०च०मा० १।१२४।५—८, दो० १२४ क)

इस प्रसंगमें भगवान् शंकरने एक अटल सिद्धान्तका प्रतिपादन किया। वे बोले संसारमें न कोई ज्ञानी है, न मूढ़। यह तो भगवान्की लीला है, जब जिसे चाहें ज्ञानी बना दें या ज्ञानीको मूढ़ बना दें। पुन: विस्तारपूर्वक भगवान् शंकर 'नारदमोह' की कथा पार्वतीको सुनाते हैं।

चौथा कारण—मनु-शतरूपाको दर्शन देनेके लिये भगवान्ने नरशरीर ग्रहण किया। भगवान् शंकर अवतारके हेतुकी कथा सुनाते हुए आगे कहते हैं—

अपर हेतु सुनु सैलकुमारी। कहउँ बिचित्र कथा बिस्तारी॥
जेहि कारन अज अगुन अरूपा। ब्रह्म भयउ कोसलपुर भूपा॥

(रा०च०मा० १।१४१।१-२)

मानवी सृष्टिके आदिपिता मनुने हजारों वर्षतक राज्य किया, किंतु उनके मनमें अभी संसारसे वैराग्य उत्पन्न नहीं हुआ। अपने भोगमय जीवनपर उन्हें ग्लानि हुई। अत: एक दिन बड़े पुत्रको राज्य देकर वे वनमें तपस्या करने चल दिये। महारानी शतरूपा भी उनके साथ नैमिषारण्य पहुँचीं। मनुकी मानसिक स्थितिका वर्णन गोस्वामीजी इस प्रकार करते हैं—

होइ न बिषय बिराग भवन बसत भा चौथपन।
हृदयँ बहुत दुख लाग जनम गयउ हरिभगति बिनु॥
बरबस राज सुतहि तब दीन्हा। नारि समेत गवन बन कीन्हा॥
तीरथ बर नैमिष बिख्याता। अति पुनीत साधक सिधि दाता॥

(रा०च०मा० १।१४२, १४३।१-२)

मनु-शतरूपाने कठोर तपस्या की। उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर विधि, हरि, हर अनेक बार मनुको वरदान देने आये, किंतु मनुने आँखें नहीं खोलीं।

अंतमें जब भगवान् श्रीराम उनके समक्ष प्रकट हुए तो मनुने वरदान माँगा कि मुझे आप-जैसा ही एक पुत्र चाहिये—

दानि सिरोमनि कृपानिधि नाथ कहउँ सतिभाउ।
चाहउँ तुम्हहि समान सुत प्रभु सन कवन दुराउ॥
देखि प्रीति सुनि बचन अमोले। एवमस्तु करुनानिधि बोले॥
आपु सरिस खोजौं कहँ जाई। नृप तव तनय होब मैं आई॥

(रा०च०मा० १।१४९, १५०।१-२)

इस प्रकार राजा मनुके वरदानको पूर्ण करनेके लिये भगवान्को नरशरीर धारण करना पड़ा।

पाँचवाँ कारण—राजा सत्यकेतुके पुत्र चक्रवर्ती राजा भानुप्रतापका उद्धार करनेके लिये भगवान्को नरशरीर धारण करना पड़ा। भानुप्रताप अत्यन्त प्रतापी और धार्मिक राजा थे। निष्काम भावसे उन्होंने अनेक यज्ञ किये। उनके प्रतापसे पृथ्वी धन-धान्यसे परिपूर्ण हो गयी।

एक दिन शिकार खेलते हुए भानुप्रताप जंगलमें भटक गये। रात्रिमें उन्हें बाहर आनेका मार्ग नहीं मिला। इसी बीच उन्हें एक कपटी मुनि मिला, जिसके चक्रमें पड़कर भानुप्रतापका बहुत अहित हो गया। ब्राह्मणोंके शापसे उन्हें रावण बनना पड़ा है, जिनको मुक्त करनेके लिये भगवान्को रामका शरीर धारण करना पड़ा है।

रावणशरीर धारण कर भानुप्रतापने नाना प्रकारके अत्याचारोंसे गाय, ब्राह्मण, देवता और पृथ्वीको त्रस्त कर दिया। रावणके अत्याचारका वर्णन विस्तारसहित श्रीरामचरित-

मानसमें किया गया है। एक झाँकी प्रस्तुत है—

जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहिं बेद प्रतिकूला॥
जेहिं जेहिं देस धेनु द्विज पावहिं। नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं॥
सुभ आचरन कतहुँ नहिं होई। देव बिप्र गुरु मान न कोई॥
बरनि न जाइ अनीति घोर निसाचर जो करहिं।
हिंसा पर अति प्रीति तिन्ह के पापहि कवनि मिति॥

(रा०च०मा० १।१८३।५—७, सो० १८३)

रावणके अत्याचारसे संत्रस्त देवताओंने पृथ्वीसमेत ब्रह्माजीसे अपनी मुक्तिके लिये प्रार्थना की। शिवजीके आदेशानुसार ब्रह्मा आदि सभी देवोंने भगवान्‌की स्तुति की। स्तुतिके प्रभावसे भगवान्‌ने आकाशवाणी की—

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा॥
अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेहउँ दिनकर बंस उदारा॥
कस्यप अदिति महातप कीन्हा। तिन्ह कहुँ मैं पूरब बर दीन्हा॥
ते दसरथ कौसल्या रूपा। कोसलपुरीं प्रगट नरभूपा॥
तिन्ह कें गृह अवतरिहउँ जाई। रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई॥

(रा०च०मा० १।१८७।१—५)

इस प्रकार अपनी वाणीको निभानेके लिये भगवान्‌ने भाइयोंके साथ अयोध्यामें अवतार लिया। भगवान्‌के अवतारकी घोषणा करते हुए गोस्वामीजी लिखते हैं—

बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार॥

(रा०च०मा० १।१९२)

इस प्रकार भक्तोंके प्रेमके वशीभूत होकर समष्टिको व्यष्टि, निर्गुणको सगुण और निराकारको साकार बनना पड़ा तथा बालक बनकर माता कौसल्याकी गोदका आश्रय लेना पड़ा—

ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या कें गोद॥

(रा०च०मा० १।१९८)

इन कारणोंके अतिरिक्त भगवान्‌ने अपने भक्त विभीषणको बतलाया कि मैं केवल तुम्हारे-जैसे संतोंके लिये ही अवतार ग्रहण करता हूँ, मेरे अवतारका अन्य कोई प्रयोजन नहीं है—

तुम्ह सारिखे संत प्रिय मोरें। धरउँ देह नहिं आन निहोरें॥

(रा०च०मा० ५।४८।८)

श्रीरामावतार करुणावतार ही है

(पं० श्रीरामनारायणजी शुक्ल)

श्रीभगवान्‌के परम कृपापात्र गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी ाराज विनय-पत्रिका (१७०)-में कहते हैं—

सकल अंग पद-बिमुख नाथ मुख नामकी ओट लई है।
है तुलसिहिं परतीति एक प्रभु-मूरति कृपामई है॥

हे प्रभो! मेरे सभी अङ्ग आपके चरणोंसे विमुख हैं। ल इस मुखसे आपके नामकी ओट ले रखी है (और इसलिये कि) तुलसीको एक यही निश्चय है कि पकी मूर्ति कृपामयी है (अर्थात् आप कृपासागर होनेके ण, नामके प्रभावसे मुझे अवश्य अपना लेंगे)।

जैसे मिट्टी, लोहा, चाँदी, सोना, हीरा आदि जिस सी भी पदार्थकी मूर्ति बनी हो, उसमें तत्तद् वस्तुएँ ही न रहती हैं, उसी प्रकार श्रीरामजीमें कृपा एवं करुणा तत्त्व ही प्रधान हैं। उनके अवतरणका उद्देश्य भी जीवोंपर करुणा तथा कृपा करके उनका उद्धार करना है। इस प्रकार श्रीरामावतार करुणावतार एवं कृपावतार ही है तथापि मुख्य और अवान्तरभेदसे श्रीरामावतारके अनेक उद्देश्य हैं, जो परम विचित्र हैं। गोस्वामीजी कहते हैं—

राम जनम के हेतु अनेका। परम बिचित्र एक तें एका॥

गोस्वामीजीने रामावतारका कारण श्रीरामचरितमानसमें इस प्रकार प्रकट किया है—धर्मकी हानि, अधर्मरूपी अभिमानी असुरोंकी वृद्धि, अनीतिका आचरण तथा ब्राह्मण, गौ, देवता तथा पृथ्वीका दु:खी होना—

जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी॥

(रा०च०मा० १।१२१।६-७)

धर्म, अर्थ तथा काममें सामञ्जस्य रखनेवाली प्रणाली ही नीति कहलाती है, पर ये अधम असुर धर्मनीतिके विपरीत चलते हैं। तब कृपानिधि विविध अवतार धारण

कर सज्जनोंकी पीड़ाका हरण करते हैं—

तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु।

जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु॥

सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं। कृपासिंधु जन हित तनु धरहीं॥

अवतरित होकर कृपासिन्धु परम आनन्दका विस्तार करते हैं। श्रीभगवान्‌के प्रिय पार्षद जय-विजय सनकादि मुनियोंके शापसे जब हिरण्यकशिपु-हिरण्याक्ष हुए, तब नृसिंह तथा वाराहरूप धारण कर प्रभुने उनका वध किया; रावण, कुम्भकर्णको श्रीरामरूपमें मारा, शिशुपाल दन्तवक्त्रका उद्धार श्रीकृष्णरूपमें किया।

दूसरी बार जलन्धरकी स्त्रीने शाप दिया तब रामावतार हुआ।

तासु श्राप हरि दीन्ह प्रनामा। कौतुकनिधि कृपाल भगवाना॥

यहाँ भी भगवान्‌का विशेषण कृपालु ही रहा है।

तीसरी बार नारदजीने शाप दिया, पर जब श्रीभगवान्‌ने मायाका आवरण दूर कर दिया, तब मायाका प्रभाव मिट गया—नारदजी पछताने लगे।

मृषा होउ मम श्राप कृपाला। मम इच्छा कह दीनदयाला॥

यहाँ भी भगवत्कृपा ही झलकती है।

चौथी बार न भक्तको शाप है न भगवान्‌को। केवल श्रीभगवत्कृपाका ही साम्राज्य झलकता दीखता है। श्रीस्वायम्भुव मनु एवं माता शतरूपाजीने तीर्थोत्तम नैमिषारण्यमें जाकर आराधना, तपस्या, भजनद्वारा श्रीभगवान् सीतारामजीका शुभदर्शन किया। इस प्रसंगमें कृपा-ही-कृपा भरी है। महाराज मनुने अपनी संतान मानव-जातिके लिये अक्षय सम्पत्ति श्रीभगवान्‌को ही वररूपमें माँग लिया। इस स्थलपर कृपाकी सर्वोत्तम झलक उजागर है। मनु-शतरूपा एक साथ बोल रहे हैं—

देखहिं हम सो रूप भरि लोचन। कृपा करहु प्रनतारति मोचन॥

भगत बछल प्रभु कृपानिधाना। बिस्वबास प्रगटे भगवाना॥

श्रीसीतारामजीकी झाँकी अतीव बाँकी है, जो मानव-जातिको नित्यप्राप्त अक्षय सम्पत्तिके रूपमें है। भगवान्‌ने मनुजीसे वर माँगनेके लिये कहा—

बोले कृपानिधान पुनि अति प्रसन्न मोहि जानि।

मागहु बर जोइ भाव मन महादानि अनुमानि॥

भगवान्‌ने इतना कह दिया कि जो कुछ आप माँगेंगे, सब हम दे देंगे; यदि आप हमको माँगेंगे, तो हम अपने आपको भी देनेको तैयार हैं—

सकुच बिहाइ मागु नृप मोही। मोरें नहिं अदेय कछु तोही॥

इसपर मनु महाराज बोले—

दानि सिरोमनि कृपानिधि नाथ कहउँ सतिभाउ।

चाहउँ तुम्हहि समान सुत प्रभु सन कवन दुराउ॥

मनुजीकी परम प्रीति देखकर करुणानिधिने 'एवमस्तु' कहा और बताया कि मैं अपने समान दूसरा खोजने कहाँ जाऊँ (क्योंकि मेरे समान कोई दूसरा है ही नहीं), इसलिये हे राजन्! मैं स्वयं ही तुम्हारा पुत्र बनकर आऊँगा—

देखि प्रीति सुनि बचन अमोले। एवमस्तु करुनानिधि बोले॥

आपु सरिस खोजौं कहँ जाई। नृप तव तनय होब मैं आई॥

श्रीभगवान्‌ने शतरूपाजीसे कहा—माताजी! जो वर आपको रुचे, आप हमसे माँग लें। वे बोलीं—

जे निज भगत नाथ तव अहहीं। जो सुख पावहिं जो गति लहहीं॥

सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति सोइ निज चरन सनेहु।

सोइ बिबेक सोइ रहनि प्रभु हमहि कृपा करि देहु॥

सुनि मृदु गूढ़ रुचिर बर रचना। कृपासिंधु बोले मृदु बचना॥

कृपाका सागर उमड़ पड़ा, सुखद आनन्ददायिनी लहरें आने लगीं। श्रीभगवान्‌ने कहा—अभी आप जो वरदान माँग रही हैं, मैं दे रहा हूँ। मेरे अन्तर्धान होनेके बाद कहीं आप प्रकृतिस्थ हो सोचने लगें कि अरे, भूल हो गयी। मैं तो कृपा और प्रेमके समुद्रमें गोते लगा रही थी।

यह नहीं माँगा—वह नहीं माँगा। तो मैया! सावधान हो सुन ले। तुम्हारे अन्त:करणमें छिपी हुई जो भी लालसा होगी सब परिपूर्ण है।

जो कछु रुचि तुम्हरे मन माहीं। मैं सो दीन्ह सब संसय नाहीं॥
मातु बिबेक अलौकिक तोरें। कबहुँ न मिटिहि अनुग्रह मोरें॥

तब श्रीमनुजीने पुन: कहा—हे प्रभो! मेरी एक विनती और है—आपके चरणोंमें मेरी वैसी ही प्रीति हो जैसी पुत्रके लिये पिताकी होती है, चाहे मुझे कोई बड़ा भारी मूर्ख ही क्यों न कहे—

सुत बिषइक तव पद रति होऊ। मोहि बड़ मूढ़ कहै किन कोऊ॥
मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना। मम जीवन तिमि तुम्हहि अधीना॥
अस बरु मागि चरन गहि रहेऊ। एवमस्तु करुनानिधि कहेऊ॥

ऐसा वरदान माँगकर राजा भगवान्‌के चरण पकड़े रह गये। तब करुणानिधान भगवान्‌ने कहा—'ऐसा ही हो'।

जब रावणके अत्याचारसे विश्व संत्रस्त हो गया। सर्वत्र त्राहि-त्राहि मच गयी। उसने क़ानून बनाया था—राक्षसोंको सुखी करो, बाकीको फूँक दो, जला दो—

जेहि जस जोग बाँटि गृह दीन्हे। सुखी सकल रजनीचर कीन्हे॥
जेहिं जेहिं देस धेनु द्विज पावहिं। नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं॥

ब्रह्मादि देव सब मिलके सदाकी भाँति स्तुति करने लगे। यह स्तवन सिद्धकोटिका है, बड़े-बड़े संत-महात्माओंसे सुना है, बालकाण्डकी ब्रह्मस्तुति परम सिद्ध स्तवन एवं अनुष्ठानस्वरूप है, नित्य प्रात:-सायं आर्तभावसे इसका पाठ करनेसे शीघ्र ही श्रीभगवान् सुरक्षा करते हैं। इस स्तवनमें आता है—

'जो सहज कृपाला दीनदयाला करउ अनुग्रह सोई।'

जब श्रीरामावतार होता है, तब गोस्वामीजी कहते हैं—

'भए प्रगट कृपाला दीन दयाला कौसल्या हितकारी।'

श्रीरामावतारके परम हर्षोल्लासमें मग्न हो अयोध्यावासी। गीतावलीमें श्रीतुलसीदासजीने लिखा

आजु महामंगल कोसलपुर सुनि नृपके सुत चारि भए।
सदन-सदन सोहिलो सोहावनो, नभ अरु नगर-निसान ह

× × ×

उमगि चल्यौ आनंद लोक तिहुँ, देत सबनि मंदिर रित
तुलसिदास पुनि भरेइ देखियत, रामकृपा चितवनि चित

प्रसिद्ध ही है—

मोरि सुधारिहि सो सब भाँती। जासु कृपा नहिं कृपाँ अघा

श्रीअवधपुरीमें एक महात्मा लालदासजी परमहंस गये हैं, जिन्होंने जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीहर्याचार्यज भागवत पढ़ाया था। वे जब उपर्युक्त चौपाईकी व्याख्या क थे तो विह्वल होकर रोने लगते थे, कहते थे—भगवान् कृपा करके व्याकुल हो जाते हैं, कहते हैं—अभी कुछ कृपा की है और कृपा करूँ, और कृपा करूँ। श्रीभग थोड़ी-सी शरणागतिके भावसे पिघल जाते हैं, उनसे रहा न जाता। कृपा करनेके लिये वे बेचैन रहते हैं।

इस प्रकार श्रीरामावतार भगवान्‌की कृपा और करुणा ही अवतार है।

आद्य अवतार—'जगत्'से मोक्ष तथा बन्धन

(साधु श्रीनवलरामजी रामसनेही, साहित्यायुर्वेदाचार्य, एम०ए०)

संसारमें जिस रूपमें अवतारवादको सनातन धर्मावलम्बी हिन्दू लोग मानते हैं, उस रूपमें अन्य धर्मोंमें मान्यता नहीं है।

सनातन हिन्दूधर्ममें परमात्मा सदा, सर्वत्र सच्चिदानन्दघनरूपसे विद्यमान हैं। वे अविनाशी, अजन्मा, अविचल तथा सबके मालिक हैं।

भगवान्‌ने यह संकल्प किया कि मैं एक ही बहुत रूपोंमें हो जाऊँ—**'सोऽकामयत्। बहु स्यां प्रजायेयेति'** (तैत्तिरीय० २।६।४) वे एक ही परमात्मा जगत्-रूपसे प्रकट हो गये। अत: 'जगत्' परमात्माका आदि अवतार है, जैसा कि श्रीमद्भागवत (२।६।४१)-में कहा है—**'आद्योऽवतार: पुरुष: परस्य।'** एवं **'आद्योऽवतारो यत्रा भूतग्रामो विभाव्यते॥'** (श्रीमद्भा० ३।६।८)।

वे ही परमात्मा सब भूतोंके, भक्तोंके कल्याणहे सबको आनन्द देनेके लिये, अपने आद्य अवतार—जगत लीला करने हेतु, धर्मकी स्थापना करने हेतु भक्तोंकी आ प्रार्थना सुनकर अपनी योगमायाको वशमें करके अप सगुण-निराकार-कूटस्थ-सच्चिदानन्दस्वरूपसे देश, काल आवश्यकतानुसार सगुण-साकार रूपोंमें प्रकट हो जाते है जिनमें मत्स्य, कच्छप, वराह, नृसिंह, वामन, श्रीराम श्रीकृष्ण आदि चौबीस अवतार मुख्य माने जाते हैं।

वेणुधर भगवान् गोविन्द

भगवान् वराहद्वारा पृथ्वीका उद्धार
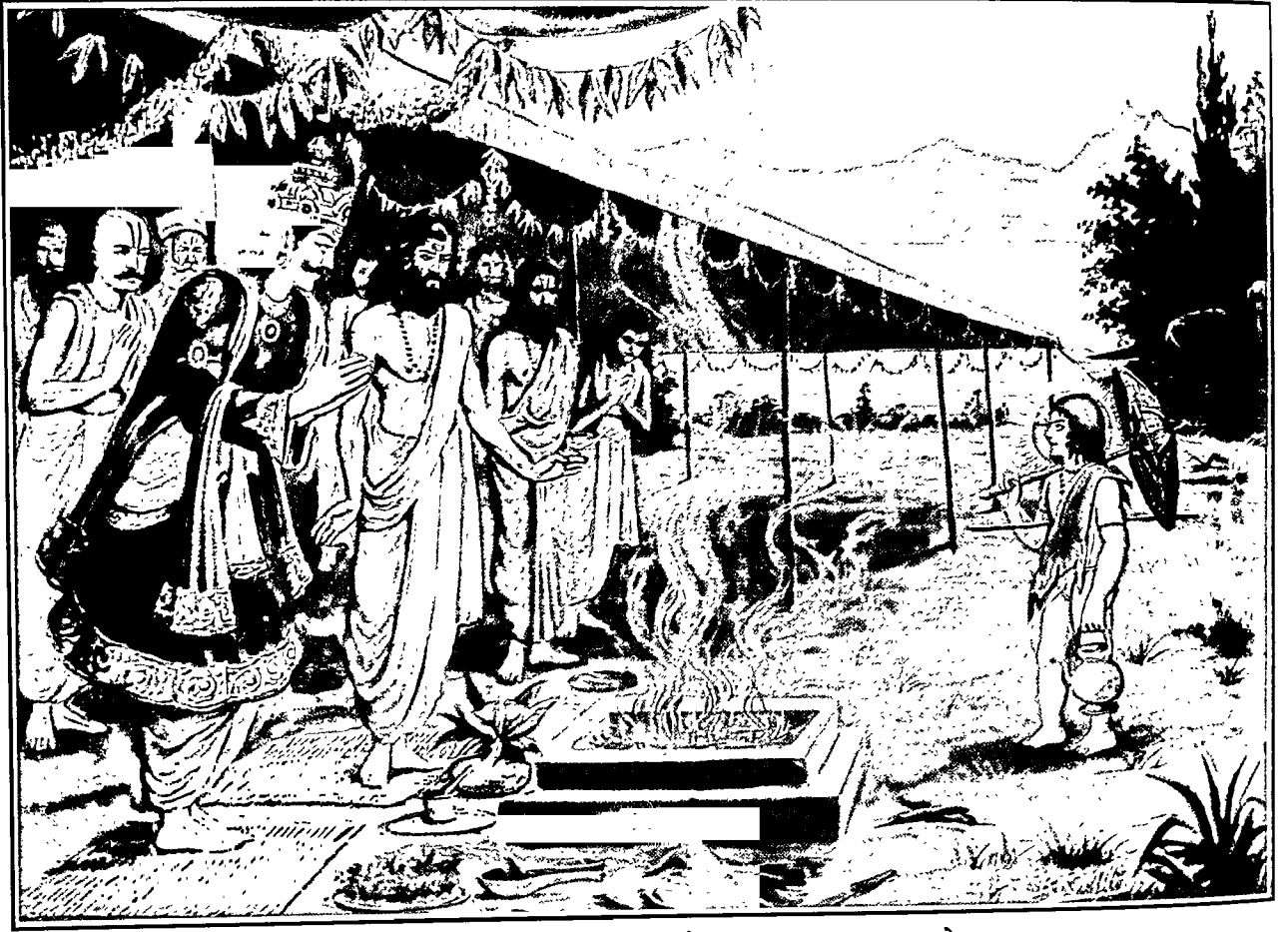
महाराज बलिके यज्ञ-महोत्सवमें वामनभगवान्‌का प्रवेश

प्रलयकालमें भगवान् मत्स्यद्वारा सप्तर्षियों एवं राजर्षि सत्यव्रतकी रक्षा

भगवान् परशुराम
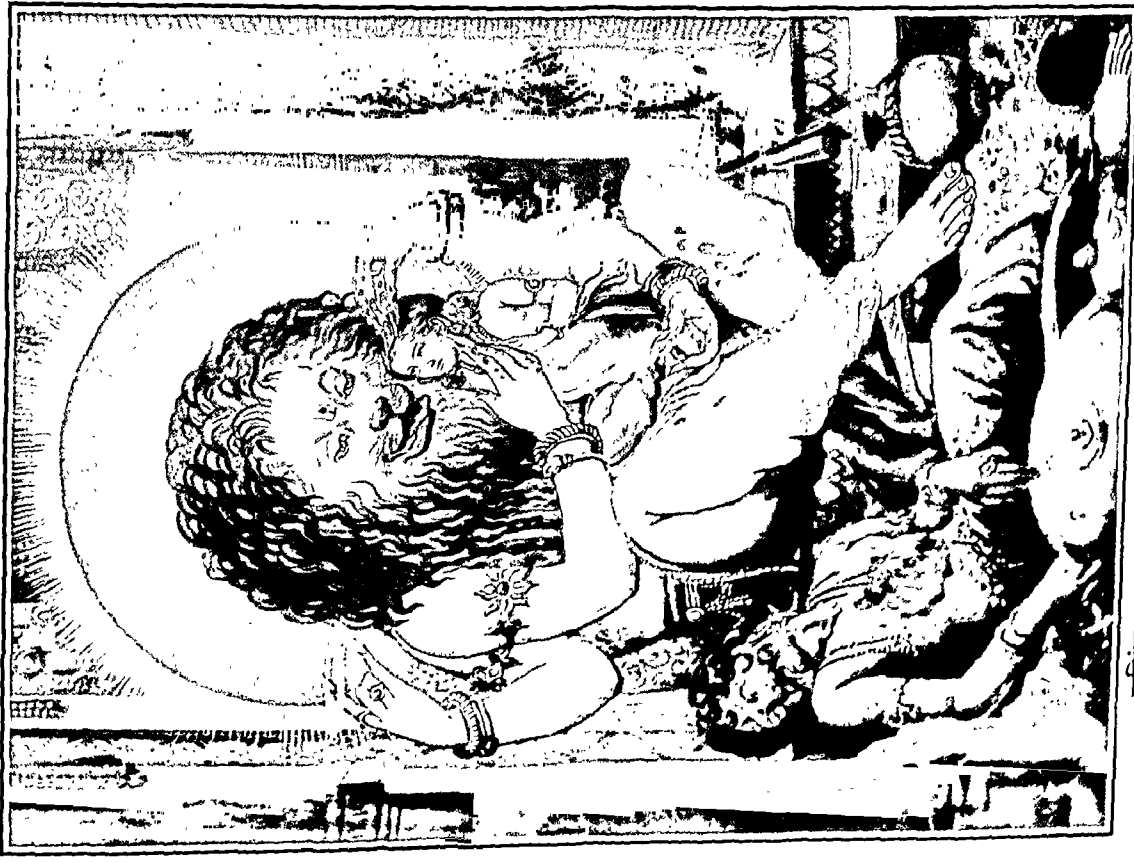
नृसिंह भगवान्‌द्वारा भक्त प्रह्लादको स्नेह-प्रदान

भगवान्‌का कल्कि-अवतार

मैं मेरेकी जेवड़ी गल बँध्यो संसार।
दास कबीरा क्यों बँधे जाके राम अधार॥
बँध्यो विषय सनेह सूँ ताते कहियै जीव।
अलख निरंजन आप हैं हरिया न्यौरा पीव॥

मनुष्य इस सृष्टिमें शरीर तथा संसार (कुटुम्बीजन, धन-सम्पत्ति आदि)-को अपना तथा अपने लिये मानकर इससे सदा सुखी रहना चाहता है, यह उसकी भूल है, परंतु कामनाका त्याग किये बिना स्वप्नमें भी सुख नहीं मिल सकता—*'काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं।'* (रा०च०मा० ७।९०।१) शरीरके लिये कामना करना ही मूर्खता है; क्योंकि शरीर और संसार नाशवान् हैं। इनकी सत्ता ही नहीं है—**'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः'** (गीता २।१६)। असत्‌का तो भाव (सत्ता) विद्यमान नहीं है और सत्‌का अभाव विद्यमान नहीं है। शरीर और संसारसे सुख चाहनेकी इच्छा करना मनुष्यकी भूल है। इस अपनी भूलका सुधार मनुष्यको स्वयं ही करना पड़ेगा तथा इसमें मनुष्य पूर्ण स्वतन्त्र है। शरीर और संसार तथा कुटुम्बीजन, धन, सम्पत्ति आदि अपने तथा अपने लिये नहीं हैं। अतः शरीर और संसारसे सुखकी इच्छाका त्याग कर देना चाहिये। इच्छा (कामना)-के त्यागसे मुक्ति (शान्ति)-की प्राप्ति होती है। इसीको ब्राह्मी स्थिति कहते हैं—**'विमुञ्चति यदा कामान्मानवो मनसि स्थितान्। तर्ह्येव पुण्डरीकाक्ष भगवत्त्वाय कल्पते'** (श्रीमद्भा० ७।१०।९)। जिस समय मनुष्य अपने मनमें रहनेवाली कामनाओंका परित्याग कर देता है, उसी समय वह भगवत्स्वरूपको प्राप्त कर लेता है—

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥

(गीता २।५५)

जिस कालमें साधक मनमें आयी सम्पूर्ण कामनाओंका भलीभाँति त्याग कर देता है और अपने-आपसे अपने-आपमें ही संतुष्ट रहता है, उस कालमें वह स्थिरबुद्धि कहा जाता है।

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति॥

(गीता २।७१)

जो मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओंका त्याग करके स्पृहारहित, ममतारहित और अहंतारहित होकर आचरण करता है, वह शान्तिको प्राप्त होता है। **'एषा ब्राह्मी स्थितिः'** (गीता २।७२)। ब्राह्मी स्थितिमें स्थित हो जानेपर निर्वाण (शान्त) ब्रह्मकी प्राप्ति हो जाती है।

मनुष्य इस शरीर तथा नाशवान् पदार्थों (संसार)-को अपना और अपने लिये न मानकर, कामनाका त्याग कर निष्काम भावसे सेवा करके, भगवान्‌को अपना मानकर सदाके लिये मुक्त हो सकता है। शरीर और संसारके पदार्थोंमें राग (आसक्ति) करके इनकी कामना होनेके कारण ही मनुष्यकी दृष्टिमें जगत् है। भक्त और भगवान्‌की दृष्टिमें केवल भगवान् ही हैं, जगत् है ही नहीं। गीतामें स्वयं भगवान् कहते हैं—

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥

(गीता ७।७)

हे धनञ्जय! मेरे सिवाय दूसरा कोई किञ्चिन्मात्र भी नहीं है अर्थात् सब कुछ मैं ही हूँ। जैसे मणियाँ सूतमें पिरोयी हुई होती हैं, ऐसे ही यह सम्पूर्ण जगत् मेरेमें ही ओतप्रोत है। **'सदसच्चाहमर्जुन'** (गीता ९।१९) सत् और असत् मैं ही हूँ। अर्जुन भी कह रहे हैं—**'सदसत्तत्परं यत्'** (गीता ११।३७) सत् भी आप हैं, असत् भी आप हैं और सत् असत्‌से पर भी जो कुछ है, वह भी आप ही हैं। श्रीमद्भागवतमें कहा है—**'अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत् परम्। पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्॥'** (२।९।३२) सृष्टिके पूर्व केवल मैं ही था। मेरे अतिरिक्त न स्थूल था न सूक्ष्म और न तो दोनोंका कारण अज्ञान। जहाँ यह सृष्टि नहीं है, वहाँ मैं ही-मैं हूँ और इस सृष्टिके रूपमें जो कुछ प्रतीत हो रहा है, वह भी मैं हूँ और जो कुछ बच रहेगा, वह भी मैं ही हूँ। **'मनसा वचसा दृष्ट्या गृह्यतेऽन्यैरपीन्द्रियैः। अहमेव न मत्तोऽन्यत्''''॥'** (श्रीमद्भा० ११।१३।२४) मन, वाणी, दृष्टि तथा अन्य इन्द्रियोंसे भी जो कुछ ग्रहण किया जाता है, वह सब मैं ही हूँ, मुझसे भिन्न और कुछ नहीं है।

श्रीरामचरितमानसमें आया है—*'जड़ चेतन जग*

जीव जत सकल राममय जानि' (रा०च०मा० १।७ (ग)) *'सीय राममय सब जग जानी।'* (रा०च०मा० १।८।२)

जैसे स्वर्णके बने सब गहने स्वर्ण हैं, मिट्टीके बने सब खिलौने मिट्टी हैं; जल, वाष्प, बर्फ आदि सब जल ही हैं—ये सब प्रकार-भेदसे भिन्न दीखते हैं, वैसे ही यह सृष्टि भगवान्‌से बनी है, अत: भगवत्स्वरूप है। जगत् (सृष्टि)-की सत्ता ही नहीं है, केवल भगवान् ही हैं। अत: अपनी भावनामेंसे जगत्‌को हटाकर भगवद्भाव करके भगवान्‌की अनुभूति करके दु:खोंसे सदा निवृत्त होकर, सदाके लिये मुक्त होकर, भगवान्‌के परम प्रेमको प्राप्त कर मानव-जीवन सफल बनाना चाहिये।

~~~ ० ~~~

'बिप्र धेनु सुर संत हित....'

(पं० श्रीकृष्णानन्दजी उपाध्याय, 'किशन महाराज')

अकारणकरुणावरुणालय, सर्वथाकर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ, सच्चिदानन्दघन पूर्णब्रह्म, परमपिता परमात्मा, पूर्णावतार, कृपासिन्धु, दयासिन्धु, दीनबन्धु, दीनानाथ, विश्वनाथ, अयोध्यानाथ, द्वारकानाथ, वैकुण्ठनाथादिपदवाच्य श्रीहरिका अवतारप्रयोजन सहैतुक है।

भगवदवतारका हेतु—'मर्त्यशिक्षण'—असार संसारमें आकण्ठनिमग्न लोगोंको स्वधर्मपथपर आरूढ़ करनेके सदुद्देश्यसे ही श्रीहरि कच्छप, मत्स्य, वराह, नृसिंह, राम-कृष्णादि विविध अवतार धारण करते हैं।

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी श्रीरामचरितमानस (१।१९२)-में हरिके अवतारका प्रयोजन लिखते हैं—

'बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।'

पुन: गोस्वामीजी भगवदवतारके हेतुका खुलासा करते हुए लिखते हैं—

जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध ...

सतां धाता स्वच्छो निगमगणगीतो व्रजपति:
शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषय:॥

अर्थात् जब संसारको क्षुब्ध कर देनेवाला धर्मका ह्रास होता है, उस समय जो लोक-मर्यादाकी रक्षा करनेवाले लोकेश्वर, संत-प्रतिपालक, वेदवर्णित शुद्ध एवं अजन्मा भगवान् उनकी रक्षाके लिये शरीर धारण करते हैं, वे ही शरणागतवत्सल निखिल भुवनेश्वर व्रजराज श्रीकृष्णचन्द्र मेरे नेत्रोंके विषय हों।

'राधामाधवरसविलास' महाकाव्यके दशम सर्गके पाँचवें दोहेमें जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य श्रीश्रीजीमहाराजने लिखा है—

उत्तम जनरक्षार्थ हित अधमों का परिहार।
इसी हेतु हरि अवतरण 'शरण' नराकृति धार॥

भगवदवतारके मुख्य उद्देश्योंका वर्णन करते हुए गोस्वामीजी लिखते हैं—

असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु।
जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु॥
~~~

श्रीमुखसे पुराणादिका श्रवण करते हैं। किंबहुना, परिजन-पुरजन—सभीको सद्धर्मानुष्ठानमें प्रवृत्त रखते हैं। इसका सुप्रभाव है कि आज भी लोग रामराज्यका स्मरण करते हैं, किंतु आज राम-कृष्णके देशमें; अत्रि, वसिष्ठ, गौतम, जनक, भरद्वाज, व्यास, सान्दीपनि एवं परशुराम आदि महर्षियोंके देशमें प्रातःस्मरण, मङ्गलस्मरणका प्रसारण, जागरण एवं उद्बोधन तो दूर रहा; पूरे देशमें धड़ल्लेसे सूर्योदयसे पहले अरुणोदयवेलामें ही करोड़ों गौ माताओंका निर्दयतापूर्वक कत्ल कर दिया जाता है। जिस देशकी सभ्यता-संस्कृतिमें—

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः॥

-की उदात्त, पवित्र एवं आदरणीय परम्परा रही है, उस धराधामपर गौमाताकी यह दुर्दशा मानवीय सभ्यताके नाशका कारण बन जायगी। ऐसा न हो सके, इसके लिये कृपासिन्धु भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये।

भगवान्‌का शासनकालचक्र अहर्निश चलता रहता है। वे सबकी चेष्टाएँ देखते हैं और तत्तत् कृत्योंका यथेष्ट फलाफल देते हैं। अतः सदा श्रीहरिकी शरण ग्रहण करनी चाहिये।

भगवदवतार ही संतजनरक्षणार्थ है। खलनिग्रहाय तो लीला है। जिनके भ्रूविलाससे अनन्तानन्त ब्रह्माण्डोंका निर्माण होता है, उन्हें तुच्छ रावणादिके वधार्थ अवतार ग्रहण करनेकी क्या आवश्यकता है? वस्तुतः 'मर्त्यशिक्षणके लिये' ही हरिका अवतार होता है।

वेदोंमें अवतार-कथाएँ

(श्रीगोविन्दप्रसादजी चतुर्वेदी, शास्त्री, धर्माधिकारी)

वैदिकोंके मतानुसार वेद अनन्त कोटि ब्रह्माण्डनायक भगवान्‌के निःश्वाससे उद्भूत हैं। गोस्वामी तुलसीदासजीने भी कहा है—

'जाकी सहज स्वास श्रुति चारी।'

(रा०च०मा० १।२०४।५)

राजर्षि मनुके '**भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति॥**'—इस वचनसे स्पष्ट है कि भूत, भविष्य एवं वर्तमानकालिक सब कुछ वेदोंद्वारा ही सिद्ध होता है।

मीमांसकोंकी दृष्टिसे यद्यपि वेदोंमें देहधारी प्राणियोंके ऐतिहासिक वर्णनोंका सर्वथा अभाव है तथापि उनके मतसे वसिष्ठ-विश्वामित्रादि वेददृष्ट शब्दसमूह तन्नामधारी किसी महर्षिविशेषके सूचक नहीं, अपितु वे प्रसंगानुसार यौगिक स्वार्थोंके परिचायक हैं, लेकिन '**परंतु श्रुतिसामान्यमात्रम्**'—इस न्यायके अनुसार श्रवणमात्रमें ही ऐतिहासिक व्यक्तियोंके नामों-जैसे जान पड़ते हैं।

इन नामोंके निर्वचनमें प्राणविद्याके प्रसंगमें ऐतरेय आरण्यकमें लिखा है—'**सर्वं पाप्मनोऽजायत इति अत्रिः, विश्वं मित्रः यस्य असौ विश्वामित्रः**' आदि-आदि।

मीमांसकोंके मतमें न केवल वैदिक तात्पर्यार्थसत्ता ही अनादिनिधन नित्य है; अपितु मन्त्रनिष्ठ, वाक्यनिष्ठ और पदनिष्ठ आक्षरिक आनुपूर्वी भी अनादिनिधन नित्य है। अतः वेदोंमें उत्पत्ति-विनाशशील एककालिक व्यक्तियोंसे सम्बद्ध इतिवृत्तकी कल्पनाको स्थान नहीं है '**सर्वाण्यपि नामान्याख्यातजानि**' अर्थात् वेदोंमें प्रयुक्त होनेवाले सभी नाम तत्तद् धातुओंद्वारा ही निष्पन्न हैं, रूढ़ नहीं हैं। अतः वे सभी यौगिक अर्थोंके द्योतक हैं, डित्थ-डवित्थकी भाँति निरर्थक नहीं हैं। इस मान्यताके अनुसार उन्होंने वेद-मन्त्रकी आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक—त्रिविध व्याख्या की है, परंतु इसके साथ ही आचार्य यास्कने ऐतिहासिक पक्षका भी समर्थन किया है—

'तत्को वृत्रो? मेघ इति नैरुक्ताः। त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिकाः॥'

(निरुक्त २१।१६२)

यहीं सायणाचार्य भी '**अत्रेतिहासमाचक्षते**' कहते हुए अनेक इतिहासोंको उद्धृत करते हैं।

इस प्रकार गम्भीर विचारकोंको पढ़नेसे यह विदित होता है कि वेदोंमें इतिहास तो है परंतु वह मानव-कोटिके ऊपर त्रिकालाबाधित नित्य इतिहास है और हमारी दृष्टिमें मीमांसकोंके इस कथन कि वेदोंमें इतिहास नहीं, इसका भी

यही तात्पर्य है कि उनमें मानव-कोटिके व्यक्तियोंका इतिहास नहीं है।

फिर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि यदि वेदोंमें नित्य इतिहास है तो सायण, उव्वट, महीधर आदि प्राचीन वेदभाष्यकारोंने अपने भाष्योंमें उसका उल्लेख क्यों नहीं किया?

परंतु सायणादिके भाष्योंका गहन अध्ययन करनेपर हमको उक्त प्रश्नका समुचित उत्तर प्राप्त हो जाता है—

सायणने ऋग्वेदके १।२२।१७ के '**इदं विष्णुर्वि चक्रमे०**', अथर्ववेदके १२।१।४८ के '**वराहेण पृथिवी संविदाना**', नृसिंहपूर्वतापिन्युपनिषद् ४।३ के '**नृसिंहाय विद्महे वज्रनखाय धीमहि**' तथा '**प्रोवाच रामो भार्गवेयः**' (ऐतरेय ७।५।३४)-की व्याख्यामें क्रमशः वामन, वराह, नृसिंह और परशुराम अवतारोंका उल्लेख किया गया है। अतः सुस्पष्ट है कि वेदोंमें अवतार-कथाएँ हैं। इसी संदर्भमें प्रस्तुत लेखमें कुछ उद्धरण उपस्थित हैं। महाभारत आदि अनेक ग्रन्थोंकी संस्कृतमें टीका करनेवाले पण्डित श्रीनीलकण्ठ आचार्यने अपने मन्त्ररामायणमें तथा धर्मसम्राट् स्वामी श्रीहरिहरानन्द सरस्वती (करपात्रीजी) महाराजके ग्रन्थोंमें अवतारवादकी मान्यता प्राप्त है।

विष्णुका रामरूपमें अवतारका संकेत वेदमें प्राप्त होता है—'**विष्णुरित्था परममस्य विद्वाञ्जातो वृहन्नभि पाति तृतीयम्।**' (ऋक्० १०।१।३)

अर्थात् परमपुरुष सर्वज्ञ भगवान् विष्णु ही इस प्रकार रामरूपमें अवतरित हुए, जो ब्रह्म होते हुए भी देहधारी बन गये।

यही नहीं तीन माताओं तथा तीन प्रकारके पिता (पालक, उपनेता तथा शिक्षक)-के वर्णनपरक मन्त्रमें रामकथाका बीज मिलता है '**तिस्रो मातृस्त्रीन् पितृन् बिभ्रदेक ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमव ग्लापयन्ति**' (ऋक्० १।

रामावतार सर्वोपरि विराजमान था, उससे किसी भी व्यक्तिको तनिक भी विक्षोभ नहीं था।

श्रीराधा-कृष्णके अवतारकी कथाका भी मूल निम्नलिखित मन्त्रमें प्राप्त होता है—

स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते।
विभूतिरस्तु सूनृता॥ (ऋक्० १।३०।५)

अर्थात् हे राधापते (परमेश्वर—घनश्याम)! जिसके मुखमें आपकी स्तुतिमयी वाणी है, उसकी स्तुतियोंसे प्राप्त होनेवाले तुम उसके घरमें ऐश्वर्य भर दो; उसकी वाणी मधुर और सत्य हो।

यजुर्वेद (५।१८)-में वामनावतारकी कथा प्राप्त होती है—

विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्र वोचं
यः पार्थिवानि विममे रजाꣳसि।
यो अस्कभायदुत्तरꣳ सधस्थं
विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायो विष्णवे त्वा॥

अर्थात् मैं विष्णुके पराक्रमका वर्णन करता हूँ, उन्होंने तीन पैरोंमें लोकोंको नाप लिया और आकाशको स्थिर किया।

सामवेदमें सीताकी अग्निपरीक्षाकी कथा प्राप्त होती है—

'**सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्रुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात्॥**'
(सामवेद, उत्तरार्चिक १५४८)

अर्थात् दिव्य तेजसे उपलक्षित सीताको लेकर जाज्वल्यमान अग्निदेव भगवान् रामके समक्ष उपस्थित हुए।

अथर्ववेद (१०।१०।१)-में मत्स्यावतारका बीज इस प्रकार है—

नमस्ते जायमानायै जाताया उत ते नमः।
बालेभ्यः शफेभ्यो रूपायाघ्न्ये ते नमः॥

भारतीय सिक्कोंपर अवतार

(डॉ० मेजर श्रीमहेशकुमारजी गुप्ता)

भारतीय सिक्कोंका प्रचलन करीब ६०० ईसापूर्वसे शुरू हुआ और तभीसे भारतीय सिक्कोंपर अवतारों और देवदेवोंका अंकन शुरू हो गया। सिन्धुघाटीकी खुदाईमें मिली मुद्राओंपर आदिदेव शिवका अंकन मिलता है। सर्वप्रथम सूर्यको पंचमार्क सिक्केपर स्थान मिला। विदेशी शासकों—यूनानी, कुषाणसे लेकर मुहम्मद गोरीतकने हिन्दू देवी-देवताओंको अपने भारतीय सिक्कोंपर स्थान दिया और भारतीय सिक्कोंपर मुख्यत: शिव, लक्ष्मी, लक्ष्मीनारायण, शिव-पार्वती, विष्णु, वराह, राम-लक्ष्मण-सीता, कार्तिकेय, व्यंकटेश्वर, बालकृष्ण एवं गणेशको अंकित किया। लक्ष्मीको कई शासकोंने अपने सिक्कोंपर अंकित किया। मुद्राको लक्ष्मीका ही रूप माना जाता है, शायद इसलिये भारतीय मुद्राओंपर लक्ष्मीको राजा और प्रजा दोनोंने स्वीकार किया। लक्ष्मीके दो रूप—१-बैठी लक्ष्मी, २-गजद्वारा अभिषेक कराती लक्ष्मी—दोनोंका अंकन मिलता है। किन अवतारोंको किन सिक्कों या किन राजाओंने अपनाया, यह निम्न तालिकामें दर्शाया गया है—

सूर्य—पंचमार्क, इन्दौर रियासत, **शिव**—कुषाण, शशांक, अहिल्याबाई इन्दौर रियासत, **शिव-पार्वती**—विजयनगर, हैदरअली, **लक्ष्मी**—अयोध्या, मथुरा, एजलीज, सातवाहन, उज्जयिनी, गुप्तकाल, परमार, चोलवंश, मुहम्मद गोरी।

लक्ष्मी-नारायण—विजयनगर, **बालकृष्ण**—विजयनगर, **वराह**—गुर्जर प्रतिहार, **कार्तिकेय**—यौधेय, गुप्तकाल, **बुद्ध**—कुषाण, **गणपति**—नायक, **राम-लक्ष्मण-सीता**—विजयनगर, मुगलशासक अकबर।

आज सिक्कोंपर पूज्य संतोंका अंकन भी देखनेको मिलता है, जिनमें प्रमुख हैं—संत तुकाराम, ज्ञानेश्वर, तिरुवल्लुवर, श्रीअरविन्द आदि।

१-पंचमार्क (६०० ई०पूर्व)—धातु—चाँदी, वजन ३.३ ग्राम, साइज १.८ से०मी०, गोल। अग्रभागमें पाँच चिह्न हैं—सूर्य, नन्दी, मछली, पहाड़ी, हिरण तथा पृष्ठभागमें कोई चिह्न नहीं है।

२-कुषाण—(वासुदेव १४०—८० ई०) धातु—सोना, वजन ८.० ग्राम, साइज २.३ से०मी०, गोल। अग्रभागमें नन्दीके सामने खड़े शिव हैं तथा पृष्ठभागमें खड़ा हुआ राजा तथा खरोष्ठीमें लेख है।

३-कुषाण—(वासुदेव १४०—८० ई०) धातु—सोना, वजन ८.० ग्राम, साइज २.१ से०मी०, गोल। अग्रभागमें नन्दीके सामने खड़े शिव हैं और पृष्ठभागमें खड़ा हुआ राजा तथा खरोष्ठीमें लेख है।

४-कुषाण—(कनिष्क ७८—१०२ ई०) धातु—सोना, वजन ८.० ग्राम, साइज २.१ से०मी०, गोल। अग्रभागमें खड़े हुए बुद्ध हैं तथा बाँयीं ओर बुद्ध लिखा है। पृष्ठभागमें खड़ा हुआ राजा और खरोष्ठीमें लेख है।

५-यौधेय—(३०० ई०) धातु—ताँबा, वजन १२.० ग्राम, साइज २.५ से०मी०, गोल। अग्रभागमें दायें हाथमें भाला लिये कार्तिकेय, बगलमें मोर और ब्राह्मीमें लेख है तथा पृष्ठभागपर खड़ी हुई देवी हैं।

६-उज्जयिनी—(२०० ई०पू०) धातु—ताँबा, वजन ५.४ ग्राम, साइज १.८×१.७ से०मी० गोल। अग्रभागमें कमलके फूलपर शिव, साथमें नन्दी, वृक्ष एवं नदी हैं। पृष्ठभागपर उज्जयिनीका चिह्न है।

७-गुप्तकाल—(चन्द्रगुप्त द्वितीय ३७६—४१४ ई०) धातु—सोना, वजन ७.० ग्राम, साइज १.८ से०मी०, गोल। अग्रभागपर कमलके फूलपर बैठी लक्ष्मी हैं तथा पृष्ठभागपर धनुर्धारी खड़ा राजा और ब्राह्मीमें चन्द्र लिखा है।

८-गौड राजा शशांक—(६००—६२५ ई०) धातु—चाँदी, वजन ७.० ग्राम, साइज १.८ से०मी०, गोल। अग्रभागपर नन्दीपर बैठे शिव तथा पृष्ठभागपर कमलपर बैठी लक्ष्मी हैं, जिनका गज अभिषेक कर रहे हैं।

९-गुर्जर प्रतिहार राजा भोज—(८६३—८८२ ई०) धातु—चाँदी, वजन ४.२ ग्राम, साइज १.७ से०मी०, गोल। अग्रभागपर वराहावतार उत्कीर्ण है और पृष्ठभागपर श्रीमद्वराह अंकित है।

१०-परमार (नरवरमन)—धातु—सोना, वजन ८.०

ग्राम, साइज २.० से०मी०, गोल। अग्रभागपर बैठी हुई लक्ष्मी हैं और पृष्ठभागपर राजाका नाम वर्मन लिखा है।

११-विजयनगर—(हरिहर १४०६ ई०)— धातु—सोना, वजन १.७ ग्राम, साइज १.० से०मी०, गोल। अग्रभागपर बैठे हुए लक्ष्मी-नारायण। पृष्ठभागपर श्रीप्रताप हरिहर हैं।

१२-विजयनगर—(हरिहर १४०६ ई०) धातु—सोना, वजन १.७ ग्राम, साइज १.१ से०मी०, गोल। अग्रभागपर बैठे हुए शिव-पार्वती हैं और पृष्ठभागपर श्रीप्रताप हरिहर हैं।

१३-विजयनगर—(१४५० ई०) धातु—सोना, वजन ३.४ ग्राम, साइज १.२ से०मी०, गोल। अग्रभागपर बैठे हुए सीता-राम और खड़े हुए लक्ष्मण हैं। पृष्ठभागपर देवनागरीमें लेख है।

१४-विजयनगर—(हरिहर) धातु—सोना, वजन १.६ ग्राम, साइज १.१ से०मी०, गोल। अग्रभागपर वैंकटराय (विष्णु) हैं और पृष्ठभागपर लेख है।

१५-विजयनगर—(कृष्णदेव राय १५००—१५२९ ई०) धातु—सोना, वजन १.७ ग्राम, साइज १.१ से०मी०, गोल। अग्रभागपर वैंकटराय (विष्णु) और पृष्ठभागपर लेख है।

१६-विजयनगर—(कृष्णदेव राय १५००—१५२९ ई०) धातु—सोना, वजन ३.३ ग्राम, साइज १.३ से०मी०, गोल। अग्रभागपर बैठे हुए बालकृष्ण है तथा पृष्ठभागपर श्रीप्रताप कृष्णराय हैं।

१७-अहिल्याबाई होलकर—(इन्दौर रियासत १७६५—१७९५ ई०) धातु—चाँदी, वजन ११.४ ग्राम, साइज २.१ से०मी०, गोल। अग्रभागपर शिवलिंग, बेलपत्र है तथा पृष्ठभागपर १२७१ हिजरी, शाह आलम बादशाह लिखा है।

१८-इन्दौर रियासत—(शिवाजीराव होलकर १८८६—१९०३ ई०) धातु—चाँदी, वजन ११.३ ग्राम, साइज २.० से०मी०, गोल। अग्रभागपर सूर्य हैं और हिन्दीमें श्रीमहाराज शिवाजीराव होलकर लिखा है। पृष्ठभागपर उर्दूमें शाह आलम, इन्दूर लिखा है।

[डॉ० श्रीमती श्यामला गुप्ताके निजी-संग्रहसे।]

भगवान् विष्णुके रामावतार एवं कृष्णावतारका वैशिष्ट्य

(श्रीशरदजी अग्रवाल, एम्०ए०)

अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः।
यथाविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः॥

(श्रीमद्भा० १।३।२६)

अर्थात् जैसे अगाध सरोवरसे सहस्रों नहरें निकलती हैं, वैसे ही सत्त्वगुणके भण्डार भगवान् श्रीहरिके असंख्य अवतार हुआ करते हैं।

भगवान् विष्णुके अवतारोंकी गणना करनेमें कौन समर्थ हो सकता है, फिर उनकी महिमाकी कौन कहे, उसे या तो स्वयं भगवान् जानते हैं अथवा वह, जिसे वे स्वरूप बनाकर जना देते हैं। फिर भी उनके असंख्य अवतारोंमेंसे चौबीस अवतार विशेष मान्य हैं तथा उनमें भी दस अवतारोंकी प्रसिद्धि सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। सर्वमान्य दशावतार इस प्रकार हैं—१-मत्स्य, २-कूर्म, ३-वराह, ४-नृसिंह, ५-वामन, ६-परशुराम, ७-राम, ८-कृष्ण, ९-बुद्ध एवं १०-कल्कि।

भगवान् विष्णुके दशावतारोंमें भी श्रीरामावतार तथा श्रीकृष्णावतारकी महिमा अवर्णनीय है। जहाँ अन्य कई अवतारोंकी उपासना-परम्परा कालके प्रवाहमें हरिकी इच्छानुसार या तो शिथिल पड़ गयी अथवा लुप्तप्राय-सी प्रतीत होती है, वहीं श्रीराम एवं श्रीकृष्ण-अवतारोंकी भक्ति और उपासनाकी परम्परा अविच्छिन्न रूपसे आज भी विद्यमान है; विद्यमान ही नहीं बल्कि सजीव, पुष्ट एवं गतिशील भी है। प्राचीन कालसे अर्वाचीन कालतक भगवान् विष्णुके उक्त दोनों अवतारोंकी महिमाका प्रतिपादन एवं मण्डन करनेवाले अनेक ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं। उनकी प्रतिमाएँ तथा मन्दिर आदि भूगर्भसे प्राप्त होकर ही हमें परम्पराकी प्राचीनताकी साक्षीमात्र नहीं देते, बल्कि आज भी प्रत्येक प्रान्तके प्रत्येक नगर, कस्बे तथा गाँव-गाँवमें युगों-युगों

सहस्रों मन्दिर एवं अर्चाविग्रह विद्यमान हैं, जिनके पूजन तथा भक्तिकी परम्परा आज भी सोत्साह फल-फूल रही है।

भगवान्ने अपने राम तथा कृष्ण-अवतारोंके रूपमें इस धराधामपर दिव्य रसानुभूतिका आस्वादन करानेवाली अद्भुत लीलाएँ करके भक्तिका जो अजस्र स्रोत बहाया, वह अनन्तकालतक भक्तोंको अभय-आश्वासनसहित दिव्य प्रेमयुक्त परमानन्दकी अनुभूति कराता रहेगा।

भगवान्के अन्यान्य मुख्य अवतार किसी एक उद्देश्यविशेषकी पूर्तिहेतु ही हुए, यथा—मत्स्यावतार, कूर्मावतार, वराहावतार, नृसिंहावतार, वामनावतार इत्यादि। उक्त अवतारोंके प्राकट्यके प्रधानहेतुके अतिरिक्त अन्य कृत्योंका उल्लेख प्राय: नहीं मिलता अथवा कुछ गौण प्रसंग ही मिलते हैं। अनेक अवतार तो अल्प अवधिके लिये ही हुए तथा प्रयोजन सिद्ध करके अदृश्य हो गये। उनमें भी अधिकांश अवतारोंमें भगवान्की मात्र ९ कलाओं तथा कहीं अधिक-से-अधिक ११ कलाओंकी ही अभिव्यक्ति हुई अर्थात् अन्य अवतारोंमें कार्यविशेषहेतु भगवान् आवश्यकतानुसार सीमित कलाओंसे युक्त होकर अवतरित हुए फिर कार्यसिद्ध करके अल्पकालमें ही उन्होंने अपने रूपका संवरण कर लिया, अत: उनका शृंखलाबद्ध विस्तृत लीलाचरित्र नहीं मिलता।

इस दृष्टिसे भगवान्के 'राम' तथा 'कृष्ण' अवतार उपर्युक्त सभी कसौटियोंपर बहुत बढ़े-चढ़े थे। उन्होंने न केवल विस्तृत लीलामय दिव्य-जीवन ही जिया, अपितु अनेकानेक प्रयोजनोंको भी जीवनपर्यन्त क्रमश: सिद्ध किया अर्थात् उन्होंने एक ही नहीं बल्कि अनेक लक्ष्योंकी पूर्तिहेतु अवतार लिया था। यथा—

सदैवके लिये हमारे आदर्शके शिखर बन गये तथा वे सभीको वैसा बननेको प्रेरित करते हैं।

(४) उन्होंने तत्कालीन सभी दुष्ट एवं आसुरी शक्तियोंका समूल उच्छेद कर शान्तिका साम्राज्य स्थापित किया तथा संसारको धर्म-स्थापनाहेतु अन्यायसे संघर्ष करनेकी प्रेरणा दी।

सम्पूर्ण रामकथा तथा कृष्णकथासे कौन परिचित नहीं है, इसीलिये ऊपर संकेतरूपमें वे सभी विशेषताएँ बतायी गयीं, जो भगवान् विष्णुके मात्र रामावतार तथा कृष्णावतारमें ही पूर्णरीत्या दृष्टिगोचर होती हैं, अत: 'राम' तथा 'कृष्ण'-अवतार भगवान्के सभी अवतारोंमें परम विशिष्ट हैं, साथ ही दोनों अवतारोंकी लीलाएँ तथा चरित्र हमें भक्तियोग तथा निष्कामकर्मयोगके पथपर साथ-साथ आगे बढ़नेकी प्रेरणा एवं शक्ति प्रदान करते हैं।

उपर्युक्त समस्त विवेचनका यह आशय कदापि नहीं समझना चाहिये कि अवतारोंमें भेद-बुद्धिका प्रतिपादन किया जा रहा है। वस्तुत: तो सभी अवतारोंके रूपमें स्वयं भगवान् विष्णु ही सदैव भिन्न-भिन्न कलेवरोंमें अवतीर्ण हुए, उनमें न कोई छोटा है न कोई बड़ा। सच्चे भक्तोंमें तो भेद-बुद्धिका लेशमात्र भी आवेश नहीं होता। महान् कृष्ण भक्त श्रीचैतन्य महाप्रभुको भक्तिभावकी अवस्थामें भगवान् नृसिंह तथा भगवान् वराहका आवेश समय-समयपर हुआ था, जिसे उनके अन्तरंग भक्तोंने दिव्य लक्षणोंसहित प्रत्यक्ष देखा था। यहाँ तो मात्र रामावतार तथा कृष्णावतारके विस्तृत लीलामय-जीवन तथा उनकी सर्वाधिक लोकप्रियताके कारणोंका ही विवेचन किया गया है, जो उनके वैशिष्ट्यको प्रदर्शित करते हैं।

अलग-अलग नाटकोंमें नायक बनकर कभी राम, कभी कृष्णके रूपमें प्रकट हुए, उन्होंने स्वयं ही लीला अथवा नाट्यकी पटकथा लिखी, स्वयं ही अभिनेता बने तथा सूत्रधार भी स्वयं वे ही थे।

भगवान्ने यह अवतरण, यह लीला-विस्तार अथवा कहें कि नाट्य क्यों किया? इसके कारणोंकी ऋषियों, भक्तों तथा विद्वानोंने अपने-अपने ढंगसे व्याख्या की है। जिन भगवान्के भृकुटि-विलाससे ही सृष्टिकी रचना और संहार हो जाते हैं, उन्होंने अवतार क्यों लिये? क्या यह मात्र उनका मनोरंजन है अथवा कुछ और यह तो वे ही ठीक-ठीक जानते हैं। अस्तु

भगवान्के अवतारोंकी तुलना मनोरञ्जक बुद्धि-विलास ही सही, पर उसमें दोष नहीं, हाँ भेद-बुद्धि नहीं होनी चाहिये। भगवान्की लीलाओं तथा गुणोंका स्मरण तो किसी भी रूपमें सदैव कल्याणकारी है, यह अकाट्य सत्य है।

भगवान् रामने अपने जीवनमें मर्यादाओंका कभी उल्लंघन नहीं किया। घोर दुःखमें भी विचलित हुए बिना मर्यादाओंके लिये वे सर्वस्व त्याग करनेको प्रस्तुत हो गये। उन्होंने मर्यादा-पालनका अद्वितीय आदर्श प्रस्तुत किया। चाहे पुत्रके नातेसे, चाहे भाईके नातेसे, चाहे पतिके नातेसे, चाहे स्वामीके नातेसे, चाहे राजाके नातेसे, चाहे हम किसी भी नातेसे विचारें, उन्होंने अपनी मर्यादाका सदैव पालन किया। इसीलिये वे जन-जनके हृदयमें सदैवके लिये मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके रूपमें बस गये। भगवान् रामके चरित्रमें हमें दो मर्यादाओंके साथ-साथ पालन करनेके धर्मसंकटकी स्थितिमें क्या करना चाहिये इसका इतिहासदुर्लभ उदाहरण भी मिलता है, जहाँ उन्होंने अद्वितीय त्याग किया। समाजके हितको ही प्रधानता दी तथा व्यक्तिगत क्षति और लाँछन दोनों सह लिये। मर्यादापुरुषोत्तम होनेके कारण उनकी सभी लीलाएँ अनुकरणीय हैं, जो जितना ही अधिक अनुकरणका प्रयास करेगा, वह उतना ही महान् बनता जायगा। दूसरी ओर भगवान् कृष्णने अनासक्त भावसे अपने जीवनमें सभी प्रकारके रसोंसे युक्त ऐसी दिव्य लीलाएँ कीं, जिनके स्मरणमात्रसे ही प्रेमका सहज संचार होने लगता है चाहे वात्सल्य, सख्य आदि किसी भी भावमें रुचि हो हृदय शीघ्र पुलकित हो उठता है। उन्होंने प्रेमका अद्वितीय उच्चादर्श उपस्थित किया। मधुर प्रेमसे ओतप्रोत विलक्षण लीलाओंके कारण वे जन-जनके हृदयमें सदैवके लिये लीलापुरुषोत्तमके रूपमें बस गये। भगवान् कृष्णकी शृंगारिक लीलाएँ पवित्र हैं, उनमें सांसारिक नहीं, बल्कि दिव्य प्रेमकी अभिव्यक्ति है। दिव्य प्रेममयी वह लीला भक्तिको बढ़ानेवाली होनेके कारण परम स्मरणीय एवं चिन्तनीय है।

भगवान् राम विष्णुकी बारह कलाओंके तथा भगवान् कृष्ण सोलह कलाओंके अवतार थे। इस कारण उन्हें तुलनात्मकरूपसे छोटा-बड़ा सिद्ध करना नितान्त अज्ञानताका सूचक है। वस्तुतः भगवान्के किसी भी अवतारमें चेतनाके उतने ही अंश (कलाएँ) प्रकट होते हैं, जितनेकी आवश्यकता होती है। स्थितियाँ जितनी अधिक विषम होती हैं, उतनी अधिक कलाओंसहित भगवान्का अवतार होता है ऐसा मात्र अभिव्यक्तिमें होता है, अवतारकी सामर्थ्य समान होती है। त्रेतामें धर्मरूप वृषभके तीन पैर पवित्रता, दया तथा सत्य थे जबकि द्वापरमें उसके दया तथा सत्य नामक दो ही पैर थे। त्रेतायुगकी अपेक्षा द्वापरयुगमें समाज किस-किस रूपमें पतित हो चुका था, यह वाल्मीकीय रामायण एवं महाभारतमें स्पष्ट देखा जा सकता है, इसीलिये भगवान् कृष्णको अधिक कलाएँ अभिव्यक्त करनी पड़ीं।

आगे भगवान् राम तथा भगवान् कृष्णसम्बन्धी कुछ विषयोंको सारणीके रूपमें दिया जा रहा है—

विषय	राम	कृष्ण
१. वंश	सूर्यवंश	चन्द्रवंश
२. कुल	इक्ष्वाकु	वृष्णि
३. पिता	दशरथ	वसुदेव
४. माता	कौसल्या	देवकी
५. कुलगुरु	महर्षि वसिष्ठ	महर्षि गर्ग
६. विद्यागुरु	महर्षि वसिष्ठ	सांदीपनि
७. प्रधान शक्ति	सीता	राधा, रुक्मिणी आदि
८. पुत्र	लव, कुश	प्रद्युम्न, साम्ब आदि
९. प्रधान उपदेश-पात्र	लक्ष्मण, हनुमान्	अर्जुन, उद्धव
१०. आदि चरित्र लेखक	वाल्मीकि	व्यास
११. प्रमुख उद्देश्य	रावण-वध	कंस-वध
१२. उपाधि	मर्यादापुरुषोत्तम	लीलापुरुषोत्तम
१३. कलाएँ	बारह	सोलह

विषय	राम	कृष्ण
१४. युग	त्रेता	द्वापर
१५. उपस्थितिकाल	युगान्त	युगान्त
१६. जन्मतिथि	चैत्र शुक्ल ९	भाद्र कृष्ण ८
१७. जन्मवार	सोमवार	बुधवार
१८. जन्म-नक्षत्र	पुनर्वसु ४	रोहिणी ३
१९. जन्म-लग्न	कर्क	वृष
२०. जन्म-राशि	कर्क	वृष
२१. जन्म-समय	मध्याह्न १२ बजे	रात्रि १२ बजे
२२. जन्मस्थान	राजभवन	कारागृह
२३. जन्मभूमि	अयोध्या (सरयूतट)	मथुरा (यमुनातट)
२४. रंग	नील श्यामल	नील श्यामल
२५. वर्ण	क्षत्रिय	क्षत्रिय
२६. शासन	अयोध्या	द्वारका
२७. लीला-संवरण	अयोध्यामें सरयूतटपर	प्रभासक्षेत्रमें पीपलवृक्षके नीचे

भगवान् राम तथा भगवान् कृष्ण—दोनों अवतारोंको परस्पर देखनेपर उनमें प्रायः समानताएँ ही प्राप्त होती हैं दोनों भगवान् विष्णुके ही स्वरूप जो ठहरे, सो आश्चर्य भी नहीं होना चाहिये। दोनों ही अवतारोंमें भगवान् श्रीहरिने परम शरणागतवत्सलता सिद्ध की है। भगवान् रामका वचन है—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

(वाल्मीकीय रामायण ६। १८। ३३)

अर्थात् जो एक बार भी शरणमें आकर 'मैं तुम्हारा हूँ'—इस प्रकार कहकर मुझसे रक्षाकी प्रार्थना करता है, उसे मैं समस्त प्राणियोंसे अभय कर देता हूँ, यह मेरा स्वाभाविक व्रत है।

इसी प्रकार भगवान् कृष्णका वचन है—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८। ६६)

अर्थात् सम्पूर्ण धर्मोंके आश्रय (अर्थात् क्या करना है, क्या नहीं करना है, इस विचार)-का त्याग करके एक मेरी शरणमें आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, शोक मत कर।

भगवान् दोनों रूपोंमें सदैव अपना वचन निभाते हैं, फिर भेदबुद्धिको स्थान ही कहाँ रहता है। सच्चे भक्तके हृदयमें प्रथम तो भेदभाव आता ही नहीं और यदि आ भी जाता है तो प्रभु कृपापूर्वक तत्काल उसका भ्रम-निवारण कर देते हैं, जैसे गोस्वामी तुलसीदासजीके समक्ष किया था। एक बार गोस्वामी तुलसीदासजीने मथुरामें भगवान् कृष्णकी शृंगारयुक्त एक परम मनोहर मूर्तिके दर्शनके किये और वे गद्गद हो गये, परंतु भगवान् रामके एकनिष्ठ भक्त होनेके कारण वे कहने लगे—

कहा कहौं छबि आजकी भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवै धनुष-बान लो हाथ॥

भक्तकी इच्छा सुनते ही भगवान्‌की भक्तवत्सलता देखिये, प्रभु कृष्णने तत्काल अपनी प्रतिमाको धनुष-बाण हाथोंमें पकड़े भगवान् श्रीरामकी प्रतिमामें परिवर्तित कर दिया। गोस्वामी तुलसीदासजी सरीखे भक्त दुर्लभ होते हैं जो एकनिष्ठ भी हों, साथ-ही-साथ ही अन्य भगवत्-स्वरूपोंके प्रति पूर्ण सम्मानभाव भी रखते हों, उनके इस विशिष्ट गुणके परिचयहेतु उनकी विनय-पत्रिकाका अवलोकन करना चाहिये। ऐसे भक्तोंकी इच्छा भगवान् सदैव पूरी करते हैं। सारांश यह है कि भगवान्‌के राम और कृष्ण—दोनों अवतार समान हैं, कोई भी छोटा-बड़ा नहीं है। हम अपने भावके अनुसार चाहे जिसकी भक्ति करें, वे भगवान् विष्णु ही हैं।

~~ ○ ~~

'कीर्तनीयः सदा हरिः'

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना। अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥

'अपनेको तृणसे भी अत्यन्त तुच्छ समझकर, वृक्षकी तरह सहनशील होकर, स्वयं अमानी रहकर और दूसरोंको मान देते हुए सदा श्रीहरिका कीर्तन करना चाहिये।' (महाप्रभु चैतन्य—शिक्षाष्टक)

~~ ○ ~~

अवतारविभूति-दर्शन और उनके आख्यान

*[श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्‌का वचन है—'*यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा। तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्॥' *अर्थात् जो-जो भी ऐश्वर्ययुक्त, शोभायुक्त और बलयुक्त प्राणी तथा पदार्थ है, उस-उसको तुम मेरे ही तेज (योग) अर्थात् सामर्थ्यके अंशसे उत्पन्न हुआ समझो।*

इसी बातको भगवान्‌ने श्रीउद्धवजीसे भी कहा है—हे उद्धव! ऐसा समझो कि जिसमें भी तेज, श्री, कीर्ति, ऐश्वर्य, लज्जा, त्याग, सौन्दर्य, सौभाग्य, पराक्रम, तितिक्षा और विज्ञान आदि श्रेष्ठ गुण हों, वह मेरा ही अंश है—

तेजः श्रीः कीर्तिरैश्वर्यं ह्रीस्त्यागः सौभगं भगः। वीर्यं तितिक्षा विज्ञानं यत्र यत्र स मेंऽशकः॥

(श्रीमद्भा० ११।१६।४०)

उपर्युक्त भगवद्वचनोंसे यह सिद्ध है कि भगवान् जब-जैसी आवश्यकता होती है—कभी स्वयं पूर्णरूपसे, कभी अंशरूपसे और कभी भावरूपसे तथा कभी वस्तु एवं पदार्थरूपसे स्वयं अवतरित होते हैं। इसके साथ ही अपने तेज, शक्ति, बुद्धि, बल आदिको किसी विशिष्ट पुरुषमें प्रतिष्ठित कर लोककल्याणार्थ जगत्‌में प्रकट हो जाते हैं, यह ठाकुरजीकी लीला ही है। कब, किसे, कहाँ निमित्त बनाकर जगत्‌का कार्य करना है, इसे वे ही जान सकते हैं। भगवत्प्राप्तिका माध्यम होनेसे भगवद्विभूतिसे प्रतिष्ठित संत-महापुरुष भी लोकहितका कार्य करते हैं और भगवान्‌के निर्दिष्ट मार्गका अनुसरण करते हैं। ऐसा समझना चाहिये कि विभूतिरूपसे ये भी भगवद्रूप ही हैं।

*यह विशेष बात है कि इन विभूतियोंमें जो महत्ता है, वह केवल भगवान्‌की है। अतः भगवत्तत्त्वके ज्ञानके लिये इन विभूतियोंमें केवल भगवान्‌का ही चिन्तन करना चाहिये। भगवान्‌ने गीता, श्रीमद्भागवत, विष्णुपुराण आदि अनेक ग्रन्थोंमें अपनी विभूतियोंका नाम-निर्देश किया है और अन्तमें वे कहते हैं—मेरी विभूतियोंका अन्त नहीं है—'*नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे॥' *(गीता १०।१९),* 'नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परन्तप।' *(गीता १०।४०)। सत्त्वकी पूर्णप्रतिष्ठा भगवान्‌में ही है, वही सत्त्व भगवदिच्छासे महापुरुषोंमें भी सोद्देश्य प्रतिष्ठित रहता है। संत, महात्मा, योगी, भक्त, आचार्य, सद्गुरु आदिमें परमात्माकी ही मर्यादा स्थित रहती है। ऐसे ही जगत्‌के भौतिक प्रतीत होनेवाले कुछ पदार्थोंमें भी विशिष्ट देवत्व स्थित रहता है। यहाँ विभूतिके रूपमें भगवान्‌की विशिष्ट अवतरण-लीलाओंमेंसे कुछका निदर्शन संक्षेपमें प्रस्तुत है—सम्पादक]*

अवतार-विभूति-लीला

(श्रीमहेशप्रसादजी पाठक, एम्०एस्-सी० (मा०शा०))

अवतारका अर्थ सामान्य जन्मसे नहीं है। अवतारीकी तो जन्म-कर्म-जैसी समस्त लौकिक क्रियाएँ दिव्य होती हैं। गीतामें श्रीभगवान्‌ने अवतारके सम्बन्धमें समस्त जिज्ञासाओंका समाधान बड़ी स्पष्टतासे किया है एवं कहा है—यद्यपि मैं अजन्मा—जन्मरहित, अव्ययात्मा—अक्षीण ज्ञानशक्ति-स्वभाववाला और ब्रह्मासे लेकर स्तम्बपर्यन्त सम्पूर्ण भूतोंका नियमन करनेवाला ईश्वर हूँ, तो भी अपनी त्रिगुणात्मिका वैष्णवी मायाको, जिसके वशमें सम्पूर्ण जगत् बसता है और जिससे मोहित हुआ मनुष्य वासुदेवरूप स्वयंको नहीं जान पाता, उस अपनी प्रकृतिको अपने वशमें रखकर केवल अपनी लीलासे ही शरीरवाला-सा—जन्म लिया हुआ-सा हो जाता हूँ, साधारण मनुष्योंकी भाँति वास्तवमें जन्म नहीं लेता। (शाङ्करभाष्य, गीता ४।६)

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

अवतारके प्रयोजनको पुनः स्पष्ट करते हुए भगवान् कृष्ण स्वयं कहते हैं कि जब-जब धर्मकी हानि एवं अधर्मका अभ्युत्थान होता है, तब-तब मैं अपनी मायामें अपना स्वरूप रचता हूँ। **'यदा यदा हि धर्मस्य'** (गीता ४।७)। अतः संत-त्राण, धर्मरक्षा, नीति एवं ज्ञानका आलोक फैलानेके निमित्त एवं दुष्टजनों तथा पापकर्मियोंके नाशके लिये ही भगवान् प्रत्येक युगमें प्रकट होते हैं।

सामान्यरूपसे अवतारका अर्थ उतरना, उदय, आरम्भ, रूपका प्रकट होना, जन्म लेना आदि है। **'अवतार'** शब्दका

व्युत्पत्ति '**अव**' उपसर्गपूर्वक '**तृ**' धातुसे '**घञ्**' प्रत्ययद्वारा होती है। आचार्य पाणिनिके अष्टाध्यायीके ३।३।२० में '**अवेतृस्त्रोर्धस्त्र**' सूत्रमें '**अवतृ**' उच्च स्थानसे नीचे उतरनेकी क्रिया या उतरनेके अर्थमें ही प्रयुक्त है। अवतार मात्र दुष्टदलन एवं संत-त्राणके लिये ही नहीं होते, बल्कि लोक-शिक्षणके निमित्त भी होते हैं—'**मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणम्**।'

ईश्वरीय सत्ता कण-कणमें व्याप्त है। इसका स्पन्दन शुद्ध हृदयद्वारा ही ग्राह्य है। समस्त जीव-जन्तुओं जैसे उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज एवं जरायुजमें ईश्वरका अंश विद्यमान है। इसलिये संसारके प्रत्येक प्राणीमें समत्व-दृष्टि रखनी चाहिये। यही पाठ विश्वबन्धुत्वकी आधारशिला भी है। उद्भिज्ज—वनस्पतियों आदिमें एक अंश, स्वेदजोंमें दो अंश, अण्डजोंमें तीन अंश एवं जरायुजोंमें चार अंशतक ईश्वरीय चित्-सत्ता विद्यमान रहती है। अपनी साधना एवं संयमके बलपर मनुष्य पाँचसे आठ अंशोंतक ईश्वरीय चित्-कला धारण कर सकता है। इन आठ अंशोंसे अधिक ईश्वरीय चित्-कलांश किन्हीं शरीरोंमें विद्यमान हो तो वे शरीर दिव्य उपादानोंसे सम्पन्न एवं आवेष्टित कहे जायँगे। ये ही विभूतिसम्पन्न अवतारी पुरुष कहे जाते हैं। आठसे पंद्रह कलाओंसे सम्पन्न जिन शरीरोंमें चिदंशकी स्थिति होती है; वे अंशावतार, पूर्णावतारकी श्रेणीमें आते हैं। सोलह कलाओंसे सम्पन्न परिपूर्णावतार कहे जाते हैं। परिपूर्णावतार सर्वज्ञ माने जाते हैं। इनके शरीर सर्वव्यापक, अंशावतार कहा गया है। घरोंमें होनेवाले अतिथि-यज्ञको सम्पादित करनेवाले 'होता' आदिमें ईश्वरीय अंशका होना परिकल्पित है। लक्ष्मीको भी अंशावतार कहा गया है।

ब्रह्मवैवर्तपुराणके ३५वें अध्यायके प्रकृतिखण्डमें कहा गया है कि राधाके बायें अंशसे लक्ष्मीका प्रादुर्भाव हुआ और श्रीकृष्णके वामांशसे चतुर्भुज विष्णु हुए। अध्यात्मरामायण (१।२।२७)-में भगवान्‌के अपने पृथक्-पृथक् अंशोंमें प्रकट होकर गर्भवास करनेका भी वर्णन मिलता है—

तस्याहं पुत्रतामेत्य कौसल्यायां शुभे दिने।
चतुर्धात्मानमेवाहं सृजामीतरयोः पृथक्॥

वहीं योगमायाका सीतारूपमें एवं समस्त देवगणोंका महाबलवान् वानरोंके अंशरूपमें जन्म लेकर लीला-विस्तारका प्रकरण द्रष्टव्य है।

विष्णुपुराण (४।११।२०)-में कार्तवीर्यार्जुनका वध करनेवाले परशुरामको अंशावतार माना गया है। महाभारत (१।६७।११६, १५०)-में अर्जुनको इन्द्र एवं कर्णको सूर्यका अंश कहा गया है। मनुस्मृति (७।४)-में कहा गया है—

इन्द्रानिलयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च।
चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वतीः॥

अर्थात् इन्द्र, पवन, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्र एवं कुबेर—इन आठोंके नित्य अंशसे राजाकी रचना हुई। अतः इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि राजा देवप्रतिनिधि माने

अन्तःकरणमें विराजमान हैं। अतः इन्हें अपने अंदर ही खोजनेकी अभिलाषा रखनी चाहिये। छान्दोग्योपनिषद् (६।७।१)-में भी पुरुषको सोलह कलाओंवाला कहा गया है— **'षोडशकलः सोम्य पुरुषः।'**

बृहदारण्यकोपनिषद् (१।५।१४)-में भी संवत्सररूपी प्रजापतिको सोलह कलाओंसे युक्त कहा गया है। प्रश्नोपनिषद् (६।६)-में बतलाया गया है कि जिस प्रकार रथके पहियेमें लगे रहनेवाले सभी अरे उस पहियेके केन्द्रमें प्रविष्ट रहते हैं, जिसे नाभि कहते हैं; उस नाभिके बिना ये टिक नहीं सकते, उसी प्रकार प्राण आदि सोलह कलाएँ जिनके आश्रित हैं, जिनसे उत्पन्न होती हैं और जिनमें विलीन हो जाती हैं, उन्हें ही परमेश्वर जानना-समझना चाहिये।

इस प्रकार षोडश कलाओंसे युक्त जिन पुरुषको व्यक्त किया गया है, वे और कोई नहीं बल्कि षोडश कलाओंकी प्रतिमूर्ति ब्रह्मरूप विष्णु हैं।

विभूति

विभूतिका सामान्य अर्थ अतिमानव एवं दिव्य शक्तियोंसे है, जिनमें अष्ट सिद्धियोंका भी समावेश है। वैसे शक्ति, प्रतिष्ठा, कीर्ति आदि—ये विभूतियोंमें ही गिनी जाती हैं। गीता (१०।७)-में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि जो मेरी विभूति (विस्तार) और योग (विस्तार करनेकी युक्ति)-के तत्त्वको जानता है, वह निःसंदेह स्थिर कर्मयोगको प्राप्त होता है। भगवत्-विभूतियोंकी माहात्म्यचर्चा करनेमें कोई भी सांसारिक मानव सक्षम नहीं। इस संसारमें जो भी पदार्थ विभूतिमान् हैं तथा श्री और लक्ष्मीसे युक्त हैं, उनमें ईश्वरके तेजोमय अंशकी स्थितिको ही मानना चाहिये। गीताके १०वें अध्यायमें भगवत्-विभूतियोंका बड़ा ही रोचक वर्णन है; जिनमें विष्णु, सूर्य, चन्द्रमा, इन्द्र, सामवेदादि-जैसे समस्त श्रेष्ठ विभूतियों एवं पदार्थोंमें दिव्य सत्ताकी उपस्थिति दिखायी गयी है।

आवेशावतार

आवेशावतार भी हुए हैं। आवेशका अर्थ प्रविष्ट होना अथवा किसी एक शक्तिसम्पन्नके अधिकारक्षेत्रमें रहना है। आवेशावतारमें दिव्य सत्ता अपनी शक्तियोंको किसी व्यक्ति या वस्तुविशेषमें आरोपित करती है। गर्गसंहिता (१।२१)-में श्रीनारदद्वारा आवेशावतारके बारेमें कहा गया है कि भगवान् विष्णु स्वयं जिनके अन्तःकरणमें आविष्ट हों एवं अभीष्ट कार्यका सम्पादन करके फिर अलग हो जाते हों—ऐसे अवतारको आवेशावतार समझना चाहिये।

भक्त भी कभी-कभी अपनी अप्रतिम भक्तिके कारण आवेशित हो जाते हैं, उस समय इन्हें न तो भूख सताती है और न प्यास। शारीरिक कष्ट होते हुए भी इसका आभास नहीं होता। इस समय इनके द्वारा असाधारण कार्य भी सम्पन्न होने लगते हैं। चैतन्य महाप्रभुके जीवन-चरितपर दृष्टि डालें तो ऐसे अनेक दृष्टान्त मिलते हैं।

अवतारोंमें अंशांश, अंश, कला, पूर्ण एवं परिपूर्णतम प्रकार भी बतलाये गये हैं। परशुराम आदिको भी किन्हीं-किन्हीं ग्रन्थोंने आवेशावतारकी श्रेणीमें रखा है। इनके अतिरिक्त दत्तात्रेय, कपिल, व्यास आदि भी इसी आवेशावतारके रूपमें वर्णित हैं।

पूर्णावतार

गर्गसंहिताका स्पष्ट कथन है कि जहाँ चतुर्व्यूह एक साथ प्रकट हो, वहाँ पूर्णावतारका प्रभाव परिलक्षित होता है; जैसे—राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न; वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध। इन्होंने अपनी दिव्य शक्तियों, बल, पराक्रम, तेज आदिके माध्यमसे दानवदलन कर संतोंको आश्रय देकर धर्मराज्यकी स्थापना की। वैष्णव साहित्यमें राम एवं कृष्णकी महत्ता विशेषरूपसे उल्लिखित है। पूर्णावतारके परिप्रेक्ष्यमें विष्णु ही मुख्य लीलानायक हैं तो भी राम एवं कृष्णके व्यूहमें भी अंशावतारके समान ही इन्होंने अनेक कार्य सम्पादित किये हैं। इस प्रकार अंशावतारका पूर्णावतारसे अनन्य सम्बन्ध है। वैष्णव साहित्यके शीर्ष ग्रन्थ अहिर्बुध्न्यसंहिता (२।५६)-में बताया गया है कि परब्रह्म ही प्राकृत गुणोंसे रहित होकर निर्गुण बन जाते हैं और जब ये षड्गुणों (ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, बल, वीर्य, तेज)-से सम्पन्न होते हैं तो सगुणरूपमें होते हैं। इन षड्गुणोंमें ज्ञान ही वासुदेवरूप हैं, शेष शक्ति आदि अन्य गुण तो ज्ञान (वासुदेव)-के सहचर हैं। संकर्षणमें ज्ञान और बल, प्रद्युम्नमें ऐश्वर्य और वीर्य एवं अनिरुद्धमें शक्ति और तेज-जैसे गुणोंका प्राधान्य है। संकर्षणका कार्य है—जगत्‌की सृष्टि करना, प्रद्युम्नका कार्य है—मार्गके अनुसार क्रियाकी शिक्षा देना एवं अनिरुद्धका कार्य है—क्रियाका फल देना अर्थात् मोक्षरहस्यका शिक्षण देना। इस प्रकार वासुदेवको मिलाकर उपर्युक्त व्यूह चतुर्व्यूह कहलाता

है। चतुर्व्यूह वासुदेव ही इनकी उत्पत्तिके मुख्य स्रोत हैं, इनसे ही संकर्षण अर्थात् जीवकी, संकर्षणसे प्रद्युम्न अर्थात् मनकी एवं मनसे अनिरुद्ध अर्थात् अहङ्कारकी उत्पत्ति होती है।

व्यूहोंके बारेमें हमारे सत्साहित्यमें यत्र-तत्र अनेक दृष्टान्तके साथ प्रकरण भी मिलते हैं। श्रीरामके व्यूहमें लक्ष्मणको संकर्षण, शत्रुघ्नको प्रद्युम्न एवं भरतको अनिरुद्धके रूपमें माना गया है एवं राम स्वयं वासुदेवके रूपमें स्थित हैं। गोपालोत्तरतापनीयोपनिषद्में भगवान्ने स्वयं कहा है कि उत्तम बुद्धिसे सम्पन्न भक्तजन चारों रूपों (चतुर्व्यूह)-में मेरी उपासना करते हैं।

अवतार-भेदोंमें व्यूहवाद निश्चित ही अवतारवादसे पृथक् नहीं, किंतु अवतारके रूपों एवं प्रयोजनोंमें भिन्नता अवश्य ही परिलक्षित होती है। व्यूहके केन्द्रमें वासुदेव हैं, जहाँ इन्हींसे निःसृत शक्ति ही अनिरुद्धादिकी विशिष्टता प्रकट करती है। पाञ्चरात्रसाहित्यमें व्यूहवादकी विशेष चर्चा है एवं इसमें कहा गया है कि ब्रह्मकी समस्त शक्तियाँ ब्राह्मरूपमें ही दृश्य होती हैं, अतः इन्हें अलग-अलग देखना निरर्थक है। नारदपाञ्चरात्रमें तो उपव्यूहका भी सिद्धान्त प्रतिपादित है। दृष्टान्तरूपमें वासुदेवसे केशव, नारायण, माधव; संकर्षणसे गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन; प्रद्युम्नसे त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर एवं अनिरुद्धसे ऋषीकेश, पद्मनाभ और दामोदर प्रकट होते हैं।

परिपूर्णावतार

श्रीकृष्णकी भगवान्के परिपूर्णतम अवतारके रूपमें मान्यता है। वासुदेव कृष्णको महाभारत (१।६७।१५१)-में नारायण अथवा विष्णुका अवतार कहा गया है—

यस्तु नारायणो नाम देवदेवः सनातनः।
तस्यांशो मानुषेष्वासीद् वासुदेवः प्रतापवान्॥

पुनः श्रीमद्भागवत (१।३।२८)-में '**कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्**' कहा गया है। अवतारोंमें चाहे वे दस अवतार हों अथवा चौबीस अवतार—यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि श्रीविष्णु अपने कला, अंश, अंशांश, आवेश, पूर्ण आदि रूपोंमें अवस्थित होकर अवतार लेते हैं। ये सभी अखिल ब्रह्माण्डके अधिपति भगवान्की दिव्य शक्तियाँ हैं, जो संसारके कल्याणार्थ लीलाहेतु अवतरित होती हैं।

~~~ ० ~~~

ईश्वरका कृपावतार

(डॉ० श्रीमती पुष्पारानीजी गर्ग)

परब्रह्म परमेश्वर परम कृपालु हैं। उनका सहज स्वभाव है जीवपर कृपा करना; क्योंकि जीव उन्हींका अंश है, अतः जीवपर उनका सहज स्नेह है। लेकिन यह जीव बार-बार मायाके बन्धनमें बँधकर दुःखोंके गर्तमें गिरता रहता है और परमात्मा बार-बार उसपर कृपा करके उसके दुःखोंका निवारण करते रहते हैं। जीव जब-जब सांसारिक माया-मोहमें फँसकर सङ्कटोंसे घिरकर अति दुःखी हो जाता है, तब-तब अपने अंशी परमात्माको याद करता है और उसके परित्राणके लिये परमात्मा स्वयं अनेक रूपोंमें अवतरित होते हैं। विशेषकर भक्तकी रक्षाके लिये तो वे कोई भी रूप धारण कर लेते हैं।

भक्त प्रह्लादकी रक्षाके लिये भगवान् सगुणरूपमें 'नृसिंह'-अवतार धारणकर प्रकट हो गये, इसी प्रकार हिरण्याक्षके वधके लिये उन्होंने 'वराह'-अवतार धारण कर लिया। सागर-मन्थनके लिये 'कच्छप'-रूपमें अवतरित हो गये तो देवताओंको अमृतपान करानेके लिये वे 'मोहिनी नारी' के रूपमें प्रकट हो गये। बलिके यज्ञमें वे 'वामन'-रूपमें प्रकट हो गये और उससे तीन पग पृथ्वीकी भिक्षा माँग ली।

वस्तुतः यह भगवान्के स्वभावकी सहज कृपालुता ही है, जो उन्हें किसी भी रूपमें प्रकट कर देती है। जीवपर उनकी कृपा अनन्त रूपमें बरसती है। इसीलिये गोस्वामी तुलसीदासजीने तो यहाँतक कह दिया कि उनकी कृपा भी कृपा करके संतुष्ट नहीं होती—'*जासु कृपा नहिं कृपाँ अघाती॥*'। जैसे माता अपनी संतानके प्रति सदैव वात्सल्य-भावसे भरी रहती है और प्रतिक्षण उसका चिन्तन करती हुई उसकी रक्षा करनेको तत्पर रहती है, वैसा ही स्वभाव भगवान्का है। भगवान् अपने अंशभूत जीवपर कृपा किये बिना रह ही नहीं सकते। आखिर यह सम्पूर्ण जीवजगत् उनका ही तो रचा हुआ
~~~

जगत्के रूपमें अभिव्यक्त हुए हैं। ईश्वरने सोचा कि मैं एक अकेला हूँ, तो उन्होंने इच्छा की कि मैं अनेकरूप हो जाऊँ—'**एकोऽहं बहु स्याम्।**' इस प्रकार इस संसारकी सृष्टि हुई।

ईश्वर आत्मारूपमें सभी प्राणियोंमें विद्यमान है। भगवान् श्रीकृष्णजी श्रीमद्भगवद्गीता (१८। ६१)-में स्वयं कहते हैं—'**ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।**' भगवान् श्रीराम भी कहते हैं—'***सब मम प्रिय सब मम उपजाए।***' इस प्रकार सारा जगत् उनका—निजका ही विस्तार है और सबपर कृपा करना उनका सहज स्वभाव है।

भगवान् श्रीरामकी स्तुति श्रीतुलसीदासजी यह कहकर करते हैं—'***श्रीरामचंद्र कृपालु भजु मन हरण भवभय दारुणं।***' अरे मन! तू कृपालु प्रभु श्रीरामको भज, जो दारुण भवभयका हरण करनेवाले हैं। श्रीतुलसीदासजी अपने इष्ट प्रभुका कृपासिन्धु, करुणानिधान, दीनबन्धु आदि नामोंसे स्मरण करते हैं।

भगवान्ने अपने कृपालु स्वभावके कारण अनेक बार सगुण अवतार धारण किये हैं। विशेषकर त्रेतायुग और द्वापरयुगमें तो माताके गर्भसे श्रीराम और श्रीकृष्णके रूपमें मनुज अवतार धारणकर भगवान्ने सामान्य मनुष्योंकी तरह सुख-दुःख सहते हुए जीवन भी बिताया और विभिन्न लीलाएँ कीं। भगवान् श्रीकृष्णकी बाललीलाओं—सखाओंके साथ खेलना, हँसना-हँसाना, रूठना-मनाना, झगड़ना, प्रेमवश उनकी जूठन स्वीकार करना आदिको देखकर ब्रह्मा-जैसे ज्ञानीको भी मोह हो गया कि यह कैसा ईश्वरावतार ? इसी प्रकार श्रीरामावतारमें सीताहरणके पश्चात् श्रीरामकी विरहलीला देखकर स्वयं शिवप्रिया सतीतक मोहित हो गयीं। लेकिन भगवान् तो भक्तोंके वशमें हैं। वे भक्तोंके लिये अवतरित होते हैं और वैसी ही लीला करते हैं।

कृपालु भगवान् बार-बार भक्तोंके लिये अवतार धारण करते हैं, फिर यह कैसे सम्भव है कि वे कलियुगमें अवतार धारण न करें? भगवान् श्रीकृष्णने तो द्वापरके अन्तमें देह-लीलाका संवरण कर लिया। लेकिन उनका कृपालु स्वभाव कैसे बदल सकता है, जबकि कलियुगमें तो जीव और अधिक दुःखी एवं संत्रस्त हैं। ऐसेमें वे इस युगमें कृपावताररूपमें प्रकट हुए। उनका यह कृपावतार, धरतीपर विचरनेवाले संतोंके रूपमें है। संतोंके रूपमें ईश्वरकी प्रेममयी करुणा ही जीवोंपर कृपा करनेके लिये प्रकट हुई है। मानवताका कल्याण करनेके लिये, जीवोंके दुःखकी निवृत्ति करनेके लिये कितने-कितने संत इस धराधामपर अवतीर्ण होते रहे हैं। भगवान् बुद्ध, महावीर, आचार्य शंकर, चैतन्यमहाप्रभु, श्रीमद्वल्लभाचार्य, स्वामी रामकृष्ण परमहंस-जैसे संत, जिन्हें भक्तलोग ईश्वरका अवतार ही मानते हैं, इन्होंने मानवताको प्रेमरूपी अनमोल पूँजीसे समृद्ध किया, उसके दुःख-दारिद्र्यको मिटाकर उसे परम आनन्द प्रदान किया। इन संतोंके कृपालु स्वभावके लिये संत श्रीतुलसीदासजीने बड़ी महत्त्वपूर्ण बात कही है कि वे तो नवनीतसे भी अधिक कोमल स्वभाववाले होते हैं। नवनीत तो स्वयं अपनेपर ताप लगनेसे पिघलता है, लेकिन कृपालु संत तो दूसरोंके दुःख देखकर ही द्रवित हो जाते हैं—

निज परिताप द्रवइ नवनीता। पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता॥

ऐसे संतोंकी कृपालुताके विषयमें कितने-कितने आख्यान प्रसिद्ध हैं। भगवान् बुद्धने कितने ही दीन-दुःखी मनुष्योंका कल्याण किया, यहाँतक कि उनके दर्शनमात्रसे अङ्गुलिमाल-जैसे दुर्दान्त दस्युका हृदय-परिवर्तन हो गया और वह उनकी अहैतुकी कृपा प्राप्तकर सज्जन बन गया। महाप्रभु चैतन्यदेवका सामीप्य मिलनेसे जगाई-मधाई-जैसे दुर्जनोंका भी उद्धार हो गया। निश्चय ही यह ईश्वरकी अहैतुकी कृपा ही है, जो संतोंके रूपमें मानवका कल्याण करती है। उसके दुष्कर्मोंका अन्त कर उसे सन्मार्गपर लाती है। आजके समयमें भी ऐसे कितने ही कृपामूर्ति संत मनुष्योंका दुःख दूर कर रहे हैं। इन संतोंके हृदयमें सर्वदा प्रेमका सागर लहराता रहता है और कभी भी, कहीं भी किसी प्राणीको कष्टमें देखकर उनके हृदयमें स्थित कृपारूप परमेश्वरका प्राकट्य हो जाता है। इसीलिये श्रीतुलसीदासजीने स्पष्ट कहा है—

'संत मिलन सम सुख जग नाहीं॥'

महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि ईश्वरके कृपावताररूप इन संतोंके माध्यमसे ईश्वरका एक और कृपावतार प्रकट हुआ है, वह है 'नामावतार'। इन संतोंने आजके इस कलिकालमें ईश्वरसे अधिक उनके नामकी महिमाका वर्णन किया है। सगुण अवतारमें ईश्वरकी तत्कालीन व्याप्ति अपने तत्कालीन सगुण स्वरूपतक सीमित रहती है, लेकिन नामकी व्याप्ति अनन्त है। इसके अतिरिक्त

नामीको नामका अनुगमन करना पड़ता है। जब हम किसी व्यक्तिका नाम पुकारते हैं और यदि वह उसे सुन लेता है तो तुरंत चलकर सामने आता है फिर ईश्वर तो सृष्टिके अणु-अणुमें व्याप्त है; इसलिये वह तो किञ्चित् भी दूर नहीं है, बस उसे भीतरकी आवाजसे पुकारनेकी देर है, उसके प्रकट होनेमें देर नहीं है। प्रभुका नाम पुकारना हर किसीके लिये शक्य है।

ईश्वरका ऐसा एक नामावतार है 'राम'-नाम, जिसके लिये परदु:खकातर देवर्षि नारदजीने स्वयं दशरथपुत्र श्रीरामसे यह वर माँगा था—

राम सकल नामन्ह ते अधिका। होउ नाथ अघ खग गन बधिका॥

और श्रीरामने मुनि नारदजीकी इस प्रार्थनापर 'एवमस्तु' कहकर मोहर लगा दी थी। संत श्रीतुलसीदासजीने तो यहाँतक कह दिया कि रामका नाम स्वयं ब्रह्म रामसे भी अधिक बड़ा, वरदायक एवं हितकारी है—

'ब्रह्म राम तें नामु बड़ बर दायक बर दानि।'

श्रीरामने तो एक गौतमनारीका ही उद्धार किया, लेकिन उनके नामने अगणित पापियोंका उद्धार कर दिया—

राम एक तापस तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥

ऐसे नामावताररूप भगवान् हर किसीके लिये सहज सुलभ हैं। जो इस नामरूप ईश्वरको हृदयमें धारण कर लेता है, उसके काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ आदि सहज ही नष्ट हो जाते हैं। इस 'राम' नामको भाव-कुभाव, कैसे भी स्मरण किया जाय, वह कल्याण ही करता है—

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥

श्रीरामका अवतार तो त्रेतामें हुआ, किंतु कलिकालके प्राणियोंको रामकी कृपा कैसे मिले? इसके लिये संत श्रीतुलसीदासजीने यह व्यवस्था दी कि सतत रामनामका स्मरण करो, रामनामका गान करो, रामका गुणगान सुनो; क्योंकि इस कलिकालमें योग, यज्ञ, जप, तप, व्रत, पूजा आदि करना अति कठिन है—

एहिं कलिकाल न साधन दूजा। जोग जग्य जप तप ब्रत पूजा॥
रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि। संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि॥

इसी बीसवीं शताब्दीके संत परम भागवत श्रीसीतारामदास ओंकारनाथने स्पष्ट घोषणा की कि नाम स्वयं भगवान् है। नामी नामसे विच्छिन्न नहीं है, वह नाम-रूपमें स्वयं प्रकट रहता है। उन्होंने सम्पूर्ण भारतमें घूम-घूमकर नामका प्रचार किया और बताया कि कलियुगमें हरिनामके अतिरिक्त और कोई आश्रय नहीं है—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

निश्चय ही आजके इस दु:ख, संत्रास, हताशा, कुण्ठाके समयमें ईश्वरका नाम बहुत बड़ा आश्रय है। इस नामरूपी कृपावतारका आश्रय लेनेवाला व्यक्ति बड़ी-से-बड़ी विपत्तिमें भी आश्वस्त रहता है कि भगवान् हर पल उसके साथ हैं और उसकी रक्षा कर रहे हैं। जिसने जीभरूपी देहरीपर राम-नामका दीप जला रखा है, उसके तो भीतर-बाहर सर्वत्र प्रकाश होना ही है। यह नाम राम भी हो सकता है या कृष्ण, गोविन्द, गोपाल, हरि, नारायण या ईश्वरके जिस नाममें रुचि हो, वह हो सकता है।

अनेक व्यक्तियोंके नाम राम, कृष्ण, नारायण, हरि, गोविन्द, शिव आदि ईश्वरके नामोंपर रखे गये हैं। इसके पीछे मुख्य ध्येय भगवान्का नाम-स्मरण करना ही है। यह व्यवस्था भी ईश्वरके कृपावतार संतोंकी दी हुई है। जब अजामिल नामका ब्राह्मण एक वेश्याके संगके कारण अपने कर्तव्यपथसे विमुख हो गया था, तब उसके घर पधारे कृपालु संतोंने उसका कल्याण करनेके उद्देश्यसे उससे यह वचन ले लिया था कि वह अपने यहाँ जन्म लेनेवाले बालकका नाम 'नारायण' रखेगा। कौन नहीं जानता कि बिना प्रेम-भक्ति एवं आस्थाके केवल पुत्रभावसे वह बार-बार 'नारायण' नामका उच्चारण करता रहा। प्राणान्तके समय भी उसने अपने पुत्रके लिये 'नारायण' नाम पुकारा, जिससे अन्तिम शब्द 'नारायण' नामके कारण उसे सद्गति प्राप्त हुई। नामके प्रभावके ऐसे अनेक दृष्टान्त हैं। इसीलिये आज भी अधिकांश घरोंमें माता-पिता अपनी संतानका नाम ईश्वरके विभिन्न नामोंपर रखते हैं; ताकि इसी बहाने वे हर समय ईश्वरका नाम उच्चारते रहें।

नामरूपी इस कृपावतारको भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारने ऐसा पकड़ रखा था कि वे घरसे बाहर कदम रखते समय 'नारायण' नाम बोलकर निकलते थे तथा औरोंको भी यह निर्देश देते थे कि वे 'नारायण' बोलकर घरसे निकलें तो उनकी यात्रा सफल होगी और अभीष्ट कार्य सिद्ध होगा।

सच तो यह है कि सगुण-साकाररूपमें ईश्वर एक ही स्थानपर प्रकट होता है, नामावताररूपमें वह अगणित रूपोंमें प्रकट होता है। नामस्मरण करते ही वह अक्षर ध्वनियोंमें प्रकट होकर भक्तकी अभीष्ट सिद्धि करता है।

अन्तमें एक बात और उल्लेखनीय है कि ईश्वरका यह कृपावतार कभी-कभी इस प्रकार सहसा प्रकट होता है कि कोई उसे समझ भी नहीं पाता। आवश्यक नहीं कि वह संत ही हो। कभी-कभी कोई अनजान व्यक्ति किसी अनजानेपर ऐसी कृपा कर बैठता है, जिसका भान उसे स्वयं भी नहीं होता। वह अनजानेमें यन्त्रकी भाँति ऐसा कर बैठता है। इसी प्रकार जब किसी विपद्ग्रस्त व्यक्तिका संकट सहसा दूर हो जाता है, तो बादमें उसे अहसास होता है कि इस प्रकारसे उसपर कृपा करनेवाले करुणावरुणालय उसके प्रभु ही थे। भले ही वे मनुष्य-रूपमें आये हों या किसी मनुष्येतर प्राणीके रूपमें। यह भगवान्‌का 'निमित्तावतार' है।

~~~○~~~

प्रभुका नामावतार

(डॉ० श्रीविश्वामित्रजी)

सत्ययुगमें भगवान् नृसिंहका अवतार हुआ था, त्रेतामें भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अवतरित हुए, द्वापरमें भगवान् श्रीकृष्णमुरारीका अवतार हुआ और कलियुगमें नाम-भगवान्‌का अवतार है। वास्तवमें नामावतार तो पुरातन, सनातन एवं शाश्वत है। यह तो सभी युगोंमें हुए अवतारोंके साथ विद्यमान रहता ही है। भगवान् नृसिंह, मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र, भगवान् श्रीकृष्ण अपनी-अपनी लीला पूर्ण करके अपने-अपने लोकोंमें लौट गये, परंतु नाम-भगवान् तो अभी भी विराजमान हैं। सत्ययुगमें ध्यानकी प्रधानता थी, त्रेता यज्ञप्रधान था और द्वापर पूजा-प्रधान· किंत अन्य है। कलिकाल मूर्तिमान् हिरण्यकशिपु है और राम-नामका जप करनेवाला जापक प्रह्लाद है। जिस प्रकार सत्ययुगमें हिरण्यकशिपुके अत्याचारोंसे संत्रस्त प्रह्लादके संकटका निवारण नृसिंहके रूपमें प्रकट होकर भगवान् करते हैं, उसी प्रकार आज भी कलियुगमें नाम-भगवान्‌द्वारा हमारी समस्याओं—हमारे संकटोंसे हमें छुटकारा मिलता है। प्रह्लादको अपने ही पिता राक्षसराज हिरण्यकशिपुद्वारा यातनाएँ दी जाती हैं, उन्हें अग्निमें जलाया जाता है, सर्पसे डँसाया जाता है, पर्वतसे गिराया जाता है तथा भूखसे सताया जाता है। विचार करके देखें तो साधकके साथ भी
~~~

झर रहे थे। धर्मने पृथ्वीसे पूछा—तुम दुःखी क्यों हो? पृथ्वीने बताया—धर्म! भगवान् श्रीकृष्णने इस समय इस लोकसे अपनी लीलाका संवरण कर लिया है और यह संसार पापमय कलियुगकी कुदृष्टिका शिकार हो गया है, यही देखकर मुझे बड़ा शोक हो रहा है। राजा परीक्षित्ने पुनः देखा कि एक राजवेषधारी शूद्र हाथमें डंडा लिये हुए है और गाय-बैलके उस जोड़ेको पीट रहा है। राजाने पूछा—अरे दुष्ट! तुम कौन हो? इन्हें क्यों पीट रहे हो? उसने उत्तर दिया—राजन्! मैं कलि हूँ, मैं अपना काम कर रहा हूँ। राजाने क्रुद्ध होकर कहा—मैं तुम्हें यहाँ नहीं रहने दूँगा। कलिने कहा—राजन्! पहले मेरे गुण-दोष तो सुन लो, तब निर्णय लेना। मेरे युगमें धन-सम्पत्तिहेतु भाई-भाई लड़ेंगे। स्त्री-पुरुष मर्यादाका उल्लंघन करनेवाले होंगे। कोई-कोई नारी मर्यादामें रहनेवाली होगी। हिंसाका प्राधान्य रहेगा। मानव अल्पायु एवं अल्प-बुद्धि होंगे। लोग मद्य-मांसका ही सेवन करेंगे। कलिकी घोषणा सुन राजा तिलमिला कर बोले—बस-बस, हद हो गयी, तुम्हारे प्रभावसे तो मानवता ही लुप्त हो जायगी, अतः मैं तुम्हें मार डालूँगा। कलिने आगे कहा—महाराज! मुझमें

एक बड़ा भारी गुण भी है, सुन लें—सत्ययुगमें दीर्घकालीन जप-तप, उपवास, व्रत, ध्यानादि करनेसे, त्रेतामें बड़े-बड़े यज्ञोंके करनेसे, द्वापरमें भगवत्सेवा-पूजासे जितना पुण्य मिलता है, उतना पुण्य मेरे कालमें प्रेमपूर्वक राम-नामके जपनेसे मिलेगा। इसी बातको श्रीशुकदेवजी परीक्षित्को बताते हैं कि राजन्! यों तो कलियुग दोषोंका खजाना है, परंतु इसमें एक बहुत बड़ा गुण है। वह गुण यही है कि कलियुगमें केवल भगवान्का नाम-संकीर्तन करनेमात्रसे सारी आसक्तियाँ छूट जाती हैं और परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है—

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत्॥

(श्रीमद्भा० १२।३।५१)

तात्पर्य यह है कि कलियुगमें भगवान् नामावतारके रूपमें जीवोंका कल्याण करते हैं। अतः जो साधक भगवन्नामका आश्रय लेते हैं, उनकी रक्षाके लिये अन्ततोगत्वा एक दिन भगवान् अपनी पूर्ण शक्तिके साथ प्रकट या अप्रकट रूपमें हिरण्यकशिपुरूपी कलियुगका संहार अवश्य करते हैं। इस प्रकार साधककी साधना सफल होती है।

कलियुगकी बुराइयों, विघ्न-बाधाओंके मध्य रहते हुए भी नामोपासनाका आश्रय लेना—यह भगवान्की कृपाका प्रत्यक्ष प्रमाण है। जीवन्त उदाहरण हैं—गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी एवं भक्तशिरोमणि श्रीसूरदासजी। इन्होंने नामकी आराधना की। भगवान्ने कृपा करके उनके चित्तका शुद्धीकरण करके उन्हें वन्दनीय बना दिया और उनकी रचनाओंको अमर। नामोपासना भक्तिप्रधान है। भक्तिका मार्ग उनका है, जिनके पास अपना बल नहीं है। इस पथका पथिक यदि किसी भी प्रकार अपने बलका स्वयं अनुभव करे अथवा उसे अपने पुरुषार्थका तनिक भी अभिमान हो तो वह भक्तिमार्गका सच्चा यात्री नहीं, उसके परम बल तो परमात्मा हैं। भक्तका निर्बलत्व ही उसका बल है, जो भगवान्को आकर्षित करता है। यह मार्ग उनका है, जो अपने अहंका हनन कर चुके हैं। वे जानते हैं—

नाम मान, मन एक में एक समय न समाय।
तेज तम तो एक स्थल, कहीं न देखा जाय॥

(भक्तिप्रकाश)

संत कनकदासको जो कोई भी पूछता, 'क्या मैं स्वर्ग जाऊँगा?' तो कहते—'नहीं, जब मैं नहीं जायगा, तो तू नहीं जायगा।' किसीको उत्तर देते—'जब मैं जायगा, तो तू जायगा।' पूछनेवाले इन वचनोंको अहंकारीके वचन समझते। उनसे फिर पूछा गया—क्या आप स्वर्ग जायँगे? 'हाँ! जब 'मैं' जायगा, तो मैं जाऊँगा।' अब सही समझ आयी कि संत किस 'मैं' की बात समझा रहे हैं। मानको उलटा करें

तो नाम बनता है। ये दोनों एक साथ नहीं रह सकते— अत: 'नाम' मानको, अहंको मारनेकी अचूक दवा है। 'नाम' उसे कहते हैं जो 'नम' कर दे अर्थात् झुका दे। नाम एक ओर जीवको झुकना सिखा देता है, दूसरी ओर भगवान्‌को झुका देता है। दोनोंके झुकनेपर जीवात्मा और परमात्माका मिलन हो जाता है। नाम श्रीनामावतारको भी झुका देता है। प्रभुसे प्रेम जन्म-जन्मान्तरोंका मोह मिटा देता है। नाम भगवान् श्रीरामको हर समय अङ्ग-सङ्ग माननेका अर्थात् दिव्य प्रेममें हर समय डुबकी लगाये रखनेका एवं श्रीराम-कृपाको सर्वदा याद रखनेका सामर्थ्य प्रदान करता है। ऐसा जापक झुकनेकी, विनम्र रहनेकी कला सीखकर परमात्माके परम-प्रेमका पात्र बन जाता है तथा प्रत्येक परिस्थितिको प्रभु-प्रसाद मानकर सम रहता है।

एक संतके पास ब्राह्मणवेशमें कलियुग पधारे, परिचय दिया तथा आदेश दिया—'सत्सङ्गमें आत्मा-परमात्माकी चर्चा एवं श्रीरामनामोपासनापर बल मत दिया करें। इससे लोगोंका मनोबल, बुद्धिबल बढ़ता है, विश्वासमें वृद्धि होती है। तब उनपर मेरी दाल नहीं गलती, वे मेरे प्रभावसे बाहर हो जाते हैं।' संतने विनयपूर्वक कहा—'भाई! भीड़ इकट्ठी करना मेरा उद्देश्य नहीं, लोगोंमें भक्तिभाव जगे, उन्हें सत्स्वरूपका बोध हो, यही सत्सङ्गका लक्ष्य है।' कलियुगने कहा—'इस समय मेरा शासन है, जिसका राज्य हो उसके पक्षमें रहना बुद्धिमत्ता है।' 'भाई! मैं तेरे राज्यमें नहीं, रामराज्यमें हूँ, मेरे राजा राम हैं, तू नहीं, युग तो आते-जाते रहते हैं।' 'आपको मेरी अवज्ञा महँगी पड़ेगी।' यह धमकी देकर कलि चला गया। अगले ही दिन एक व्यक्ति आया, कहा—'महाराज! आपने मदिरा मँगवायी थी, उसके पैसे अभीतक नहीं पहुँचे।' संत समझ गये, 'कलिका खेल है।' उनके जो सत्सङ्गी थे, निन्दक हो गये, आश्रम खाली हो गया। कलि प्रकट हुए, पूछा—'कैसा है आश्रम? कैसी है भक्ति? सुना है, भगवान् माननेवाले शैतान मानने लगे हैं। पुन: कहूँगा, मेरे राज्यमें नामोपासना सिखाकर मेरे विरुद्ध न चलो। यदि मान जाओ तो कलसे ही दुगने भक्त पधारने लगेंगे।' संतने पूछा—'कैसे?' कलिने कहा—'कल ही दिखा दूँगा।'

'एक कोढ़ी मार्गमें पड़ा चिल्ला रहा था—अरे, कोई मुझे संतके पास ले जाओ, यदि वह कृपा करके मुझपर पानी छिड़केगा तो मेरा कोढ़ दूर हो जायगा—ऐसा भगवान्‌ने मुझे स्वप्नमें बताया है। लोग कहें नहीं, वह तो शराबी है, संत नहीं। अरे, नहीं वह उच्च कोटिका महात्मा है। लोग उसे संतके पास ले गये। संतने जल छिड़का, कोढ़ ठीक हो गया, वह वृद्धसे सुन्दर युवक हो गया। सभी सत्संगी शर्मिन्दा होकर क्षमा माँगने लगे। सत्संगमें खूब भीड़ हो गयी।'

कलि फिर पधारे, कहा—देख लिया, मेरा प्रताप! अतएव मुझसे मिलकर रहो। संतने तत्काल कहा—नहीं, हम तो प्रभु श्रीरामसे ही मिलकर रहेंगे, सत्संग जारी रहेगा ताकि लोग विषय-दास, धन-मनके दास न बनें, राम-दास बनें। कलिने धमकाया—'आपको भारी पड़ेगा, देख लिया न मेरा प्रभाव।' हाँ देख लिया, निन्दा-स्तुति दोनों करवा ली, तूने भी देख लिया रामराज्यका प्रभाव? मैं दोनोंमें सम रहा। मैं प्रत्येक परिस्थितिसे अप्रभावित अर्थात् सम एवं शान्त रहता हूँ, यह प्रभुकी भव्य अनुकूलताका प्रताप है। नाम-भक्ति भगवान्‌को भक्तके अनुकूल बना देती है और समता है परमोच्च अवस्था, जो राम-कृपासे भक्तको उपलब्ध होती है।

उपनिषद् भगवन्नामको सब सारोंका सार घोषित करता है और नाम-भगवान्‌की उपासनाको परमोपासना बताता है। वाचिक, उपांशु तथा मानसिक—ये तीनों प्रकारकी उपासनाएँ सर्वसुखकारी एवं कल्याणकारी हैं। यद्यपि चारों युगोंमें नामका प्रभाव प्रत्यक्ष है, परंतु कलियुगमें तो इसका विशेष महत्त्व कहा गया है। अनादि कालसे इसे सर्वोच्च स्थान दिया जा रहा है। इस साधनाको कल्पतरु अर्थात् समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली एवं सकल भव-व्याधियोंको दूर करनेवाली बताया गया है। हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई एवं यहूदी सभी किसी-न-किसी रूपमें नामोपासनाका महत्त्व स्वीकार करते हैं। इसके मुख्य अङ्ग हैं—नाम-स्मरण, ध्यान एवं कीर्तन।

१-नाम-स्मरण—परमेश्वरके पतित-पावन नामको वाणी अथवा मनसे जपना सिमरन (सुमिरन) कहा गया है। नाम-उच्चारण करते-करते उसके गुणोंका स्मरण, प्रीतिपूर्वक अथवा भावसहित जप सिमरन कहलाता है। संत सिमरनकी महिमा गाते हुए अघाते नहीं—

सिमरनमें सब सुख बसें, सिमरनमें हरि आप।
वहाँ नामी निवास है जहाँ नामका जाप॥

(भक्तिप्रकाश)

परमात्माको सर्वत्र-सर्वदा अपने अङ्ग-सङ्ग अनुभव कर उससे मन-ही-मन वार्तालाप करते रहना मधुर स्मरण-योग कहा जाता है—

स्मरण योग कहा सुगम, कठिन अन्य हैं योग।
हरि दर्शन हरि धाम दे, सिमरन हरता रोग॥

(भक्तिप्रकाश)

राम-नाम जपनेका सबको समान अधिकार है, चाहे निपट निरक्षर है या साक्षर, निर्धन है या धनवान्, उच्च जातिका है या निम्नका, महिला है या पुरुष, पवित्र है या अपवित्र, पापी है या पुण्यात्मा, मांसाहारी है या निरामिष एवं दुःखी है या सुखी। इसे जेलमें, शौचालयमें, श्मशानभूमिमें, खेत, अस्पताल अर्थात् प्रत्येक स्थानमें जपा जा सकता है, हर समय जपा जा सकता है। नाम-भगवान् नरेश हैं, जापकके चौकीदार बनकर उसकी पवित्रता तथा उसके सद्गुणोंकी रक्षा करते हैं, उसे दुर्गुणोंसे बचा कर रखते हैं। दुर्गुणरूपी नागोंके लिये नामकी गूँज गरुड़की गूँजका कार्य करती है—

काया चन्दन तरु कहा लिपटे अवगुण नाग।
नाम गरुड़ की गूंज सुन जावें सब ही भाग॥

(भक्तिप्रकाश)

'राम राम धुन गूंज से भव भय जाते भाग।'

(भक्तिप्रकाश)

पशु-पक्षीको भी नाम-पुकारनेसे प्रभुका संरक्षण मिला है।

नाहन गुनु नाहन कछु विद्या, धर्म कौन गज कीना।
नानक विरद राम का देखो, अभय दान तिहि दीना॥

'राम' परब्रह्म परमात्माका सर्वाधिक प्रिय मधुरतम नाम भी है तथा द्वि-अक्षर मन्त्र भी है। इस शब्दके उच्चारणसे नाम एवं मन्त्रजप दोनोंका फल मिलता है। ऐसा सुना गया है कि एक बार धर्मराज युधिष्ठिरने भीष्म पितामहसे पूछा—'मन्त्र-जप करनेवालेको कौन लोक प्राप्त होता है?' भीष्मजी एक दृष्टान्तके माध्यमसे उत्तर देते हैं—हिमालयके निकट एक तपस्वी ब्राह्मणने अनेक वर्षोंतक राम-नामका जप किया। प्रभु प्रकट हुए और उन्होंने कहा—ब्रह्मर्षि! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ, वर माँगो। ब्राह्मणने कहा—हे प्रभो! अधिक मन्त्र-जपकी इच्छामें निरन्तर वृद्धि हो तथा मनकी एकाग्रतामें बराबर उन्नति हो। तथास्तु। अब तुम प्रेमपूर्वक नाम जपो।

ब्राह्मणने वर्षों जप किया; मन, इन्द्रियोंपर पूरा वशीकरण किया; काम, क्रोध, लोभ, मोहपर विजय प्राप्त की। वे दूसरोंके दोष कभी नहीं देखते थे। अब धर्मराज पधारे—कहा—महाराज! मैं आपके दर्शन करने आया हूँ। नाम-मन्त्र-जपके फलस्वरूप आप देवलोकको लाँघकर जहाँ इच्छा हो, ऊपरके लोकोंमें प्रवेश पा सकते हैं। ऐसी है राम-नाम एवं मन्त्र-आराधनाकी महिमा।

नाम-भगवान्ने किस निन्दनीयको वन्दनीय नहीं बना दिया, यह तो सामान्य जनको भी राम-कृपाका पुण्यपात्र बना देता है। एक बारकी बात है, किसी राजाका एक दास (सेवक) राम-दास बननेके लिये हिमालयकी गोदमें साधनारत हो गया। राम-नामकी दीक्षा देते समय गुरुजीने उसे समझाया था—वत्स! राम-मन्त्र चलते-फिरते, सैर करते, उठते-बैठते, खाते-पीते, खेलते-कूदते, नहाते-धोते, काम-काज करते, सोते-जागते, श्वास लेते-छोड़ते तथा यात्रा करते—हर समय जपा जा सकता है, हर जगह जपा जा सकता है। भोजन बनाते, लकड़ी काटते भी राम-राम जपते रहना। ललक लग गयी, उसने अविराम नाम जपा। एकान्त था, समयका सदुपयोग किया। गप-शप, निन्दा-चुगली, झूठ, छल-कपट—सब छूट गया। वह सेवक नाम-रंगमें रँग गया। नाम-भगवान्ने कृपा की, मनका पवित्रीकरण हुआ, आचरण-व्यवहार सुधरा, स्वभाव बदला। भूख-नींद बहुत कम हो गयी, राम-मिलनकी तड़प जगी। चित्त शान्त हुआ, परम-शान्ति एवं परमानन्दका अनुभव हुआ। चेहरेपर अद्भुत तेज प्रकट हुआ। नामकी कृपासे वह संत बन गया। संतने एक बार भण्डारेका आयोजन किया। धनवानोंने तथा राजाने आर्थिक सहायता की। बादमें उस संतने सबको नामकी महिमा समझायी, भजन-कीर्तन हुआ। विदा लेते समय सबने संतको प्रणाम किया। राजा भी पहुँचे, कहा—महात्मन्! कोई चमत्कार नहीं दिखाया। संतने मुसकराकर विनयपूर्वक उत्तर दिया—राजन्! चमत्कार तो हो गया। मैं वही आपका सेवक, जो कुछ वर्ष पूर्व आपको ही नहीं आपके अधिकारियोंको भी प्रणाम किया करता था, आज आपसहित सब मुझे दण्डवत् प्रणाम कर रहे हैं। इससे बड़ा चमत्कार और क्या हो सकता है? यह सुनकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। कितनी सुगमतासे

नाम-भगवान् रीझकर अपनी महिमाको चमत्कारी ढंगसे भक्तमें प्रकट कर देते हैं।

२-नाम-ध्यान—ध्यानपूर्वक नाम-जप चाहे वाचिक ही हो आत्मशक्तिको जगा देता है। यदि मानसिक हो अथवा श्वासके साथ जपा जाय तथा प्रीतिपूर्वक नामकी ध्वनिपर मन एकाग्र किया जाय तो शब्दब्रह्म (अजपा-जप) एवं नादब्रह्म (अनाहत नाद) आप-ही-आप प्रकट हो जाते हैं। नाम-ध्यान मनकी सारी मैल धोने, कुसंस्कारोंको जलाने तथा आत्मस्वरूपको जान लेनेका एक सहज एवं उत्कृष्ट साधन है। अनन्तके मिलापका यह परम उपाय है—

सब साधन का सार है, सब योगों का सार।
सर्व कर्म का सार है, नाम ध्यान सुखकार॥

(भक्तिप्रकाश)

जीवनके दिव्यीकरणका अर्थात् श्रीरामके सद्गुणोंको अपने भीतर खींचनेका अति शक्तिशाली साधन है नाम-ध्यान।

'राम नाम धुन ध्यान से सब शुभ जाते जाग।'

(अमृतवाणी)

३-नाम-संकीर्तन—काम-वासना (कामिनी), कञ्चन और कीर्ति मनुष्यको कुपुरुष बना देते हैं, इनकी चिकित्सा होती है चौथे ककारसे अर्थात् कीर्तनसे। सभी प्रकारके कीर्तनोंमें नाम-कीर्तन सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। नाम-संकीर्तनके विषयमें कहा गया है—यह पापरूपी पर्वतोंको चूर्ण-विचूर्ण करनेमें वज्रके समान है। सुख-दुःख, मान-अपमान आदि द्वन्द्वोंके उभारको दूर करनेवाली सिद्धौषधि है और अज्ञानरूपी रात्रिके प्रगाढ़ अन्धकारको नष्ट करनेके लिये सूर्यके उदयके समान है। अतिशय सुन्दर भक्तिभावपूर्ण स्तोत्रों, भजन-गीतोंद्वारा तन्मय होकर प्रभुचरणोंमें अपने-आपको समर्पित करना संकीर्तनका सदृश्य स्वरूप है। श्रीराम ऐसे स्थानपर जहाँ उनके भक्त एकत्र होकर प्रभुका गुणगान करते हैं, स्वयं विराजमान रहते हैं। जिस कीर्तनमें रोमाञ्च हो जाय, प्रेमाश्रु बहने लगे तथा आवेश आ जाय, ऐसा कीर्तन सारे तनको, मनको, स्नायुको और सारे मज्जाजालको प्रभावित कर देता है। आत्माको इससे सहज ही शान्ति प्राप्त हो जाती है। संतोंने सत्य ही कहा है कि नामका आराधन अति सुगम है और भगवत्प्रेमप्राप्तिका सर्वोच्च उपाय है। जिस प्रकार ताली बजानेपर पेड़पर बैठे पक्षी उड़ जाते हैं, उसी प्रकार संकीर्तनमें ताली बजानेसे पाप-पंछी उड़ जाते हैं। श्रीरामगुण-गानकी महिमाका वर्णन करते हुए श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—

कलिजुग केवल हरि गुन गाहा। गावत नर पावहिं भव थाहा॥
कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना। एक अधार राम गुन गाना॥

(रा०च०मा० ७।१०३।४-५)

वे आगे कहते हैं—श्रीरामजीकी अपेक्षा जिसे राम-नाम अधिक प्रिय है, उसका इस घोर कलियुगमें कल्याण निश्चित है। किसीके पूछनेपर गोस्वामीजी नामोपासनाकी विधि बताते हैं—

'राम राम रमु, राम राम रटु, राम राम जपु जीहा।'

(विनय-पत्रिका ६५)

मनकी तीन दशाएँ होती हैं। कभी शान्त होता है, कभी दुःखी और कभी सुखी होता है। श्रीतुलसीदासजी सुझाते हैं—'जब मन शान्त हो तो राम-राम ऐसे जपो कि ध्यानस्थ हो जाओ। यदि मन दुःखी हो तो राम-राम रटो—रट मेरी रसना, राम राम राम। बीमारी अथवा संकटमें मन नहीं लगता तो भी राम-राम जपते रहे। जब मन आनन्दित हो तो राम-रामसे खेलो।' श्रीतुलसीदासजी समझाते हैं जब हम वाद्ययन्त्रों तथा संगीतके साथ संकीर्तन करते हैं, ताली बजती है, हाथ उठते हैं तथा नृत्य होता है, यही नाम-भगवान्‌से खेलना है, रमना है। अतएव श्रीतुलसीदासजी भी नामावतारकी उपासनाके उक्त वर्णित तीन ही अङ्ग वर्णन करते एवं स्वीकारते हैं। स्वामी श्रीसत्यानन्दजी दृढ़तापूर्वक एवं विश्वासपूर्वक आश्वस्त करते हैं—

तारक मन्त्र राम है, जिसका सुफल अपार।
इस मन्त्रके जापसे, निश्चय बने निस्तार॥

(अमृतवाणी)

गुरुनानक भी ऐसी ही वाणी बोलते हैं—

कहु नानक सोइ नर सुखिया, राम नाम गुण गावै।
और सकल जग माया मोहिया, निर्भय पद नहिं पावै॥

एक बार किसी सज्जनने स्वामी श्रीअखण्डानन्दजीसे पूछा—'महाराज! कोई ऐसा साधन बतायें जो सरल, संक्षिप्त, सामग्री-विहीन सबको सुलभ हो और शीघ्र फलित होनेवाला हो।'

महाराजजी बोले—'भगवन्नामोपासना।'

दूसरेने पूछा—'विषय-वासना कैसे दूर हो?'

महाराजजीने कहा—

राम नाम जब सुमिरन लागा। कहे कबीर विषय सब भागा॥

इतिहास साक्षी है—

राम नाम ने वे भी तारे। जो थे अधर्मी अधम हत्यारे।
कपटी-कुटिल-कुकर्मी अनेक। तर गये राम-नाम ले एक॥
तर गये धृति-धारणा हीन। धर्म-कर्म में जन अति दीन।
राम-राम श्रीराम-जय जाप, हुए अतुल विमल अपाप॥

(अमृतवाणी)

अन्य अवतार तो किसी एक या कुछेकके लिये, गिने-चुने प्रयोजन सिद्ध करनेहेतु हुए, परंतु नामावतार तो सबके लिये, सर्वप्रयोजन सम्पूर्ण करनेके लिये सर्वत्र सर्वदा प्राप्त ही है। ऐसे श्रीनामभगवान्‌को बारम्बार प्रणाम है।

भारतीय वाङ्मयमें नित्यावतार

(श्री१०८ स्वामी श्रीनारायणदासजी पी० उदासीन)

ज्यों-ज्यों समय आगे बढ़ता है, त्यों-त्यों पल-प्रहर, दिन-रात, माह-वर्ष, युग-कल्प आदि बदलते रहते हैं।

सब बदलनेके बाद भी ईश्वर वही रहता है। जो कृतयुग, त्रेता और द्वापरमें था, वही आज कलियुगमें भी विद्यमान है। वह तीनों कालमें सत्य है तथा उसकी प्रकृति भी। उस प्रकृतिमें सूर्य हो या चन्द्र, वायु हो या अग्नि, जल हो या पृथ्वी, आकाश हो या पाताल, बादल हो या बरसात, सर्दी हो या गर्मी—सभीका सन्निवेश है। इन सभी तत्त्वोंको कोई भी नहीं बदल सकता।

युग बीते संसारमें पाँचों तत्त्व समान।
कभी न बदले प्रकृति और न श्रीभगवान्॥

यद्यपि शास्त्रोंमें श्रीपरमात्माके चौबीस अवतार वर्णित हैं, फिर भी उन्हें कई बार भक्तोंके लिये अनेक रूप धारण कर इस संसारमें आना पड़ता है। कहते हैं कि महाराष्ट्रके भक्त नामदेव, तुकाराम, ज्ञानेश्वर, एकनाथ एवं समर्थ गुरु रामदास आदिने श्रीपरमात्माके कई बार दर्शन किये थे। एक लोकोक्तिके अनुसार मात्र नामदेवजीको ही बहत्तर बार दर्शन प्राप्त हुआ था। यदि इस तथ्यको सही मानकर चलें तो इस धरापर ऐसे भक्तोंकी कमी नहीं है, जिनके लिये वे स्वयं किसी-न-किसी रूपमें आकर उनका कार्य सम्पन्न कर उन्हें दर्शन दिया करते हैं। इसलिये कहा गया है—

आत्मरूप परमात्मा रहे सभीमें व्याप्त।
फूल सुवास लाली बसे मेहंदीके हर पात॥

किसी भक्तने एक संतसे पूछा—महाराज! क्या परमात्माको इन आँखोंसे देख पाना सम्भव है? इसपर वे संत शान्त रहे। उसने फिर वही प्रश्न किया, संत फिर भी चुपचाप सुनते रहे। जब जिज्ञासुने उनसे तीसरी बार पूछा तो संत मुसकराकर कहने लगे—वत्स! क्या तुम देखना चाहते हो या सिर्फ सुननेकी इच्छा है? यह सुनते ही वह कुछ असमंजसमें पड़ गया, लेकिन फिर सोच-समझकर कहने लगा—महाराज! यदि दिखा सको तो सबसे अच्छा, अन्यथा बता दो तो भी ठीक है। श्रीसंतजीने पूछा—तुम्हारा नाम क्या है? उसने झटसे उत्तर दिया—'रामू'। संतने उसका हाथ पकड़कर पूछा—यह क्या है? तो उसने कहा—हाथ। पाँव पकड़कर पूछा—यह क्या है, उसने कहा—पाँव। इस प्रकार वे शरीरके सभी अङ्गोंको छूकर पूछते रहे और वह भक्त उन्हें बताता रहा। अन्ततः उस जिज्ञासुने पूछा—महाराज! आप यह सब क्यों पूछ रहे हैं? तब संतने कहा—प्यारे! मैं तो तुम्हारे शरीरमें रामूको ढूँढ़ रहा था, लेकिन उसका तो कहींपर भी अता-पता नहीं मिला। यह सुनकर उस जिज्ञासुने कहा—महाराज! आप यह कैसी बात कर रहे हैं? यह सुनकर संतने कहा—मित्र! अभी तो तुमने कहा कि मैं रामू हूँ, तो फिर वह कहाँ गया?

अटपट लीला रामकी समझ न आवै बात।
जैसे जलमें बुदबुदें लहरें सभी समात॥

श्रीसंतने कहा—रामू! जिस प्रकार तुम्हारा नाम इस शरीरमें कहीं भी नहीं दिखता है, वैसे ही श्रीपरमात्माको भी इन आँखोंसे नहीं देखा जा सकता, यद्यपि वह सबमें समाया हुआ है। भगवान् श्रीकृष्णने गीताके पंद्रहवें अध्यायके सातवें श्लोकमें कहा है—

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति॥

अर्थात् इस देहमें यह जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है और वही इन प्रकृतिमें स्थित मन और पाँचों इन्द्रियोंका आकर्षण करता है।

वत्स! यह श्लोक उन्होंने ऐसे ही थोड़े कहा होगा? श्रीपरमात्माका हर वाक्य सार्थक और सत्य हुआ करता है, लेकिन हमारी समझमें नहीं आता तो कोई क्या कर सकता है?

संतने आगे कहा—यदि तुम चाहो कि इन आँखोंसे देख सकूँ, तो उसके लिये तुम्हें बहुत ही परिश्रम कर अभ्यास करना होगा।

श्रीपरमात्मा तो नित्य प्रतिपल अवतार धारण किया करते हैं, लेकिन उन्हें देखनेके लिये हमें ज्ञाननेत्रकी आवश्यकता पड़ती है। जैसे विज्ञानके अनुसार जलकी हर एक बूँदमें कई छोटे-छोटे प्राणी रहते हैं, जिन्हें देखनेके लिये हमें वैज्ञानिक सूक्ष्मदर्शीकी जरूरत पड़ती है, वैसे ही सृष्टिकर्ताको देखनेके लिये हमें ज्ञाननेत्रोंकी आवश्यकता होती है। ज्ञानरूप नेत्रोंवाले ज्ञानीजन ही उसे तत्त्वसे जानते हैं—'**पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः।**' (श्रीमद्भगवद्गीता १५।१०)

संतकी बात सुनकर शिष्यको प्रबोध हो गया और वह भगवान्के शरणागत हो गया।

उक्त आख्यानसे यह स्पष्ट हो जाता है कि परमात्मा सर्वत्र व्याप्त हैं, उनके दर्शनके लिये उनकी कृपाका अवलम्बन लेनेकी आवश्यकता है।

आधुनिक युगमें प्रत्येक प्राणी श्रीपरमात्मासे विमुख होता जा रहा है और उनकी मायाके सम्मुख होकर उसके पीछे दौड़ा-दौड़ा फिर रहा है। यद्यपि हर एक मनुष्य यह समझता है कि अन्तमें कुछ भी काम नहीं आता, लेकिन न जाने फिर भी वह ऐसा क्यों करता है। इसलिये हमेशा यह स्मरण रखना चाहिये कि न तो साथमें कुछ आया है और न कुछ जायगा ही—

याद रख मन में सदा क्या ले आया साथ।
जेब न होती कफ़न को कछू न आवै हाथ॥

इस सृष्टिमें परमात्माने प्रत्येक मानवको अपना रूप देकर उसे मानो अपनी संतान बना दिया है; क्योंकि प्रकृतिमें चौरासी लाख योनियोंमें जो प्राणी जैसी आकृतिका हुआ करता है, उसके बच्चे भी वैसा ही रूप धारण किया करते हैं; यथा—कौएसे कौआ तो कोयलसे कोयल, हंससे हंस तो बकसे बक, बैलसे बैल तो बकरीसे बकरी इत्यादि। इस बातसे यह साफ हो जाता है कि हम सभी ईश्वरके रूपवाले उसीकी संतान हैं और उन्हें ही अपना पिता-माता आदि मानकर संसारमें रहें तो फिर दु:खी होनेका कोई हेतु नहीं है। परमात्मारूपी पिता तो सबको सुख ही पहुँचाता है—

ईश्वरकी संतान तू फिर क्यों दुखी होय।
सुखदाता परमात्मा सुखी करे सब कोय॥

यदि इस तथ्यको हम सत्य मान लें तो विचार करनेकी बात है कि इस मानवजगत्में प्रतिदिन तो क्या प्रतिपल कोई-न-कोई मनुष्य अवश्य ही जन्म लेकर इस धरापर आता है अर्थात् यों कहें प्रतिपल मानो स्वयं जीवात्मारूप परमात्मा ही अवतरित हुआ करते हैं। अत: सबकी सेवा-पूजाको नारायणकी सेवा-पूजा ही मानना चाहिये।

इस संसारमें जिस प्रकार परमात्माकी पूजा-अर्चना होती है या भोग-प्रसादका आयोजन हुआ करता है, वैसे ही भारतीय संस्कृतिमें महापुरुषों, आचार्यों अथवा संतोंकी भी पूजा-अर्चना हुआ करती है अर्थात् श्रीपरमात्माका विभूति-पद उनके भक्तोंको भी प्राप्त हुआ करता है। इसीलिये भगवान्ने स्वयं अपने मुखसे भक्तोंकी महिमा बताते हुए कहा है—

मेरी बांधी भक्त छुड़ावै भक्तकी बांधी छुटे न मोहिं।
अपने मनकी बात मैं कहता सुन अर्जुन समझाऊं तोहिं॥

प्रकृतिमें श्रीपरमात्माके अवतरणका यह नियम आदिकालसे अटल चलता आ रहा है और आगे भी चलता रहेगा। यही कारण है कि भारतीय वाङ्मयमें श्रीपरमात्माको नित्यावतार माना गया है।

नियम अटल और अमर हैं प्राकृतिक सब जान।
कभी बदलते हैं नहीं जानें सभी जहाँन॥

भगवान्का यज्ञावतार

(आचार्य डॉ० श्रीनरेन्द्रनाथजी ठाकुर, एम्०ए० (गोल्ड मेडलिस्ट), पी-एच्०डी० (संस्कृत))

नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सच्चैतन्यस्वरूप, रूप-रस-गन्ध-स्पर्शादिकोंसे परे, अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक परब्रह्म सच्चिदानन्दघन परमात्मा ब्रह्माण्डमण्डलस्थ प्राणियोंके मध्य पापाधिक्यवशात् उसकी निवृत्तिके लिये लीलावतार धारण कर अपनी त्रिगुणात्मिका शक्तिके स्फुरणमात्रसे निखिल ब्रह्माण्डका कल्याण करते रहते हैं। भगवान्का अवतरण उनकी लीला एवं सत्ताको अभिद्योतित करता है। इस बातकी सम्पुष्टि करते हुए ब्रह्मसूत्रमें कहा गया है—

'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्' (ब्रह्मसूत्र २।१।३३)

अर्थात् ब्रह्मका कर्ममें प्रवृत्त होना तो लोकमें आप्तकाम पुरुषोंकी भाँति केवल लीलामात्र है। जिस प्रकार आप्तकाम और वीतराग ज्ञानीजन बिना किसी प्रयोजन एवं स्वार्थसिद्धिके निष्काम कर्म करते रहते हैं, उनकी कोई प्रयोजनसिद्धि होती नहीं, वैसे ही ब्रह्म बिना किसी प्रयोजनके संसारकी रचना लीलावश करते हैं। लोगोंको मोक्ष प्रदान करना ही परमात्माका परम प्रयोजन होता है, जैसा कि श्रीमद्भागवत (१०।२९।१४)-में कहा गया है—

'नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप।'

भगवती श्रुति भी स्पष्ट करती हैं कि वह अजन्मा होकर भी जन्म ग्रहण करनेवाला है—**'अन्तरजायमानो बहुधा वि जायते।'** (यजुर्वेद ३१।१९) अर्थात् परमात्मा अजन्मा होकर भी अनेक रूपोंमें अवतरित होते हैं।

नाम, रूप, लीला एवं धामका संकीर्तन ही प्रायः ग्रन्थोंका सार-सिद्धान्त है। उसी तत्त्वको किसीने सगुण एवं साकारभावसे भजा तो किसीने निर्गुण एवं निराकार-भावसे। पूर्वमीमांसाने कर्मसिद्धान्तद्वारा उसे प्राप्त करना चाहा, न्यायने प्रमाण-प्रमेयादि षोडश पदार्थोंद्वारा उस सत्ताको परिपुष्ट किया, वैशेषिकने द्रव्य-गुण-कर्मादि सात पदार्थोंके द्वारा उस परमात्मतत्त्वको प्राप्त करानेका मार्ग प्रशस्त किया तो सांख्यने प्रकृति एवं पुरुषके विवेक-ज्ञानद्वारा ही उसे प्राप्त कराना चाहा, योगने यम-नियमासन-प्राणायामादि अष्टाङ्गयोग-मार्गके द्वारा तथा वेदान्त-दर्शनने उपादान तत्त्वोंके अवगमद्वारा उस सच्चिदानन्दत्वके साक्षात्कार करनेकी बात कही।

नाम, रूप, लीला एवं धाम—ये चारों मनुष्योंके कल्याणार्थ ही होते हैं। उस अचिन्त्य, अनन्त, अग्राह्य, अलक्षण, पञ्चतन्मात्राओंसे रहित ब्रह्मतत्त्वके सगुण एवं निर्गुण, साकार एवं निराकार तत्त्वको परस्पर पृथक् नहीं माना जा सकता; क्योंकि प्रत्येक वस्तु अपनी मूल अवस्थामें निराकार ही हुआ करती है एवं कालान्तरमें वह साकाररूपोंमें भी प्रतिभासित होती है। जैसे—घटमें स्थित जलमें प्रतिबिम्बित आकाश घटाकाश है और वह महाकाशसे पृथक् नहीं माना जा सकता; क्योंकि घटके ध्वंस होनेके बाद अंशरूप घटाकाश अपने अंशीरूप महाकाशमें विलीन हो जाता है, उसी प्रकार भगवान्का साकार-विग्रह निराकारका एक अंशमात्र है।

जिस प्रकार मनुष्य अपने जन्मके पूर्व कभी-न-कभी निराकार अवस्थामें रहता है एवं मध्यमें वह साकार हुआ करता है एवं समाप्तिकालमें पुनः निराकार हो जाता है, वैसे ही भगवान् भी साकार-अवस्थामें मनुष्योंको अपनी लीलाके माध्यमसे कलावतार, अंशावतार, पूर्णावताररूप लीलाका विस्तार करके अपनी लीलाका संवरण कर पुनः निराकाररूपमें लीन हो जाते हैं।

अचिन्त्य दिव्य लीला शक्तिके योगसे निराकार भगवान् साकाररूपसे ठीक उसी प्रकार अवतरित होते हैं, जिस प्रकार शैत्यके योगसे निर्मल जल बर्फरूपमें व्यक्त होता है अथवा संघर्षविशेषसे व्यक्त अग्नि या विद्युत् दाहक एवं प्रकाशक रूपमें व्यक्त होती है। निराकार ब्रह्मकी अपेक्षा भगवान् या भगवतीकी माधुर्यमयी मूर्तिमें वैसे ही चमत्कार भासित होता है, जैसे इक्षुदण्ड और चन्दनवृक्ष मधुर और सुगन्धित होते हैं। यदि कदाचित् इक्षुमें फल एवं चन्दन वृक्षमें सुगन्धित पुष्प प्रकट हो तो उसके माधुर्य और सौगन्ध्यकी जितनी बड़ाई की जाय, उतनी ही कम है। इसी तरह अनन्त ब्रह्माण्डान्तर्गत आनन्द-विन्दुका उद्गम-स्थान अचिन्त्य अनन्त परमानन्दघन ब्रह्म अद्भुत रसमय हैं। फिर उसके फलस्वरूप माधुर्यसार मङ्गलस्वरूपमें कितना चमत्कार हो सकता है, यह तथ्य तो सहृदय ही जान सकता है। इक्षुरसका सार शर्करा, सिता आदिका आकार जैसे कन्द होता है, वैसे ही औपनिषदिक परब्रह्म रससारसर्वस्व भगवान्का मधुर मनोहर सगुणस्वरूप है।

सगुण अवतारोंमें भी भगवान्ने कभी रुद्रके रूपमें

एकादश रुद्रोंको प्रकट किया तो कभी सूर्यके रूपमें द्वादश आदित्योंका अवतरण हुआ। कभी राम, कृष्ण, मत्स्य, कूर्म, वराह, बुद्ध, नृसिंह एवं कल्किरूपसे भगवान्‌का प्राकट्य हुआ। यज्ञ भी भगवान्‌के श्रीविग्रहसे ही उद्भूत हुआ है, अतः श्रीभगवान् यज्ञपुरुष भी कहलाते हैं।

'यज्ञ' शब्द '**यज**' धातुसे '**यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ्**' (अष्टाध्यायी ३।३।९०)—इस पाणिनीय सूत्रसे 'नङ्' प्रत्यय करनेपर बनता है '**नङन्तः**' इस पाणिनीय लिङ्गानुशासनसे 'यज्ञ' शब्द पुल्लिङ्ग भी होता है। ध्यातव्य हो कि '**नङ्**' प्रत्यय भाव अर्थमें होता है, किंतु '**कृत्यल्युटो बहुलम्**' (अष्टाध्यायी ३।३।११३) इस सूत्रपर '**बहुलग्रहणं कृन्मात्रस्यार्थव्यभिचारार्थम्**' इस सिद्धान्तसे कृदन्तके सभी प्रत्ययोंका अर्थ आवश्यकतानुसार परिवर्तित किया जा सकता है। यही भाष्यकारादिसम्मत मार्ग है।

'**धातवः अनेकार्थाः**'—इस वैयाकरणसिद्धान्तके अनुसार कतिपय आचार्योंने '**यज देवपूजासङ्गति-करणदानेषु**' इस पाणिनीय सूत्रके अनुसार '**यज**' धातुका देवपूजा, सङ्गतिकरण और दान—इन तीन अर्थोंमें प्रयोग किया है। यथा—

(१) '**यजनं इन्द्रादिदेवानां पूजनं सत्कारभावनं यज्ञः।**'

(२) '**इज्यन्ते सङ्गतीक्रियन्ते विश्वकल्याणाय परिभ्रमणं कृत्वा महान्तो विद्वाँसः वैदिकशिरोमणयः व्याख्यानरत्नाकराः निमन्त्र्यन्ते अस्मिन्निति यज्ञः।**'

(३) '**यजनं यथाशक्ति देशकालपात्रादिविचारपुरस्सर-द्रव्यादित्यागः।**'

यज्ञकी उपर्युक्त तीन व्याख्याएँ क्रमशः देवपूजा, सङ्गतिकरण एवं दानसे सम्बद्ध हैं।

आचार्य यास्ककृत 'निरुक्त' (३।४।१९)-में इसका निर्वचन इस प्रकार बतलाया गया है—

'**यज्ञः कस्मात्? प्रख्यातं यजतिकर्मेति नैरुक्ताः॥ याञ्च्यो भवतीति वा। यजुर्भिरुन्नो भवतीति वा॥ बहुकृष्णाजिन इत्यौपमन्यवः॥ यजूंष्येनं नयन्तीति वा॥**'

अर्थात् 'यज्ञ' क्यों कहलाता है? 'यज' धातुका अर्थ देवपूजा आदि लोक और वेदमें प्रसिद्ध ही है, ऐसा निरुक्तके विद्वान् कहते हैं अथवा जिस कर्ममें लोग यजमानसे अन्नादिककी याचना करते हैं या यजमान ही देवताओंसे वर्षा आदिकी प्रार्थना करता है, देवता ही यजमानसे हविकी याचना करते हैं, उस कर्मको 'यज्ञ' कहते हैं अथवा जिसमें कृष्णयजुर्वेदके मन्त्रोंकी प्रधानता हो, उसे यज्ञ कहते हैं।

जिस कर्मविशेषमें देवता, हवनीय द्रव्य, वेदमन्त्र, ऋत्विज् और दक्षिणा—इन पाँचोंका संयोग हो, उसे यज्ञ कहते हैं। पूर्वमीमांसामें तो यज्ञादिको ही धर्मकी श्रेणीमें रखा गया है—'**यागादिरेव धर्मः**' (अर्थसंग्रह)।

यज्ञ एवं महायज्ञके रूपमें यज्ञके दो भेदोंको बताया गया है एवं पुनः यह दो भागोंमें बाँटा गया है—श्रौत एवं स्मार्त। श्रुतिप्रतिपादित यज्ञोंको श्रौत यज्ञ और स्मृतिप्रतिपादित यज्ञोंको स्मार्त यज्ञ कहते हैं। श्रौत यज्ञमें केवल श्रुतिप्रतिपादित मन्त्रोंका प्रयोग होता है और स्मार्त यज्ञमें वैदिक, पौराणिक और तान्त्रिक मन्त्रोंका प्रयोग होता है।

ऐतरेयब्राह्मणादि ग्रन्थोंने यज्ञोंके पाँच प्रकार माने हैं—**स एष यज्ञः पञ्चविधः—अग्निहोत्रम्, दर्शपूर्णमासौ, चातुर्मास्यानि, पशुः, सोम इति।**

अर्थात् अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्य, पशु और सोम—ये पाँच प्रकारके यज्ञ कहे गये हैं। ये वैदिक यज्ञ हैं, किंतु 'गौतमधर्मसूत्रादि' ग्रन्थोंमें यज्ञके निम्न भेद बताये गये हैं—

'**औपासनहोमः, वैश्वदेवम्, पार्वणम्, अष्टका, मासिकश्राद्धम्, श्रवणा, शूलगव इति सप्त पाकयज्ञसंस्थाः। अग्निहोत्रम्, दर्शपूर्णमासौ, आग्रयणम्, चातुर्मास्यानि, निरूढपशुबन्धः, सौत्रामणी, पिण्डपितृयज्ञादयो दर्विहोमा इति सप्त हविर्यज्ञसंस्थाः। अग्निष्टोमः, अत्यग्निष्टोमः, उक्थ्यः, षोडशी, वाजपेयः, अतिरात्रः, आप्तोर्याम इति सप्त सोमसंस्थाः।**'

(गौतमधर्मसूत्र ८।१८)

गौतमधर्मसूत्रकारने पाकयज्ञ, हविर्यज्ञ और सोमयज्ञ-भेदसे तीन प्रकारके यज्ञोंका भेद दिखाकर प्रत्येकके सात-सात भेद दिखा करके इक्कीस प्रकारके यज्ञोंका उल्लेख किया है। इसमें सात स्मार्त पाक यज्ञ-संस्थाओंका उल्लेख गृह्यसूत्रों और धर्मसूत्रोंमें मिलता है। अग्निहोत्रसे लेकर सोम-संस्थान्त चौदह यज्ञोंका उल्लेख कात्यायनादि श्रौतसूत्रमें मिलता है। ये सभी यज्ञ सात्त्विक, राजसिक एवं तामसिक भेदसे तीन प्रकारके होते हैं—

अफलाकाङ्क्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः॥

(श्रीमद्भगवद्गीता १७।११)

अर्थात् जो यज्ञ निष्कामभावसे किया जाता है, वह सात्त्विक यज्ञ कहलाता है।

जो यज्ञ सकाम अर्थात् किसी फलविशेषकी इच्छासे किया जाता है, उसे राजसिक यज्ञ कहते हैं—

अभिसन्धाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत्।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम्॥

(श्रीमद्भगवद्गीता १७।१२)

जो यज्ञ शास्त्रविरुद्ध किया जाता है, उसे तामसिक यज्ञकी श्रेणीमें रखते हैं—

विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम्।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते॥

(श्रीमद्भगवद्गीता १७।१३)

यज्ञोंका प्रादुर्भाव एवं प्रमाण वेदसे लेकर वेदान्ततक सर्वत्र पाया जाता है। भारतीय सनातन संस्कृतिके आद्य ग्रन्थ ऋग्वेदके प्रथम मण्डलमें यज्ञकी चर्चा प्राप्त होती है। **'अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्॥'** (ऋक्० १।१।१)

श्रीमद्भगवद्गीतामें समस्त प्राणियोंको अन्नसे ही उत्पन्न बताया गया है और अन्नकी उत्पत्ति वर्षासे होती है तथा वह यज्ञकर्मसे होता है—

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ३।१४)

ब्रह्मपुराण (१।४९)-में महर्षि वेदव्यासने तो यहाँतक कह दिया है कि यज्ञकी सिद्धिके लिये ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदका निर्माण हुआ है—**'ऋचो यजूंसि सामानि निर्ममे यज्ञसिद्धये।'**

कालिकापुराण (३१।७-८)-में कहा गया है—

यज्ञेषु देवास्तुष्यन्ति यज्ञे सर्वं प्रतिष्ठितम्।
यज्ञेन ध्रियते पृथ्वी यज्ञस्तारयति प्रजाः॥
अन्नेन भूता जीवन्ति पर्जन्यादन्नसम्भवः।
पर्जन्यो जायते यज्ञात्सर्वं यज्ञमयं ततः॥

ऋग्वेद एवं यजुर्वेदमें यज्ञको भुवनोंकी नाभिरूपमें चित्रित किया गया है—**'अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः।'** (ऋग्वेद १।१६४।३५, शु०यजु० २३।६२) शतपथ-ब्राह्मणादि ग्रन्थोंमें यज्ञको ब्रह्मस्वरूप बतलाया गया है—**'ब्रह्म हि यज्ञः'** (शतपथब्राह्मण)।

'यज्ञो वै विष्णुः' इस मन्त्रका उद्घोष तो तैत्तिरीयब्राह्मण, ऐतरेयब्राह्मण, शतपथब्राह्मण, शाङ्खायनब्राह्मण, तैत्तिरीय-संहिता आदि ग्रन्थोंमें दिया हुआ है।

भगवान् वराहके श्रीविग्रहसे अनेक यज्ञोंका प्रादुर्भाव हुआ है। इसका विशद वर्णन कालिकापुराण (३१।१३—१७)-में पाया जाता है। वहाँ महर्षि मार्कण्डेयजी कहते हैं—

भ्रूनासासन्धितो जातो ज्योतिष्टोमो महाध्वरः।
हनुश्रवणसन्ध्योस्तु वह्निष्टोमो व्यजायत॥
चक्षुर्भ्रुवोः सन्धिना तु व्रात्यष्टोमो व्यजायत।
जातः पौनर्भवष्टोमस्तस्य पोत्रौष्ठसन्धितः॥
वृद्धष्टोमवृहत्स्टोमौ जिह्वामूलादजायताम्।
अतिरात्रं सवैराजमधोजिह्वान्तरादभूत्॥
अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवोबलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥
स्नानं तर्पणपर्यन्तं नित्ययज्ञाश्च सर्वशः।
कण्ठसन्धेः समुत्पन्नाः जिह्वातो विधयस्तथा॥

अर्थात् भगवान् वराहके दोनों भ्रू और नासिकादेशके सन्धिभागसे ज्योतिष्टोम यज्ञ, कपोलदेशके उच्च स्थानसे लेकर कर्णमूलके मध्य स्थित सन्धिभागसे वह्निष्टोम (अग्निष्टोम) यज्ञ, चक्षु और दोनों भ्रूके सन्धिभागसे व्रात्यष्टोम यज्ञ, मुखके अग्रभागसे और ओष्ठके सन्धिभागसे पौनर्भवष्टोम यज्ञ, जिह्वामूलीय सन्धिभागसे वृद्धष्टोम और वृहत्स्टोम यज्ञ, जिह्वा-देशके अधोदेशसे अतिरात्र तथा वैराज यज्ञ प्रकट हुआ। ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ, अतिथियज्ञ, स्नान-तर्पणादि नित्ययज्ञ तथा उनकी विधियोंकी उत्पत्ति कण्ठसन्धि तथा जिह्वासे हुई।

इस प्रकार भगवान् वराहके शरीरसे अन्य यज्ञोंकी उत्पत्ति हुई। इस प्रकरणके अन्तमें बताया गया है कि भगवान्‌के विग्रहसे एक हजार आठ यज्ञोंकी उत्पत्ति हुई—

एवमष्टाधिकं जातं सहस्रं द्विजसत्तमाः।

(कालिकापुराण ३१।२७)

कालिकापुराणके प्रमाणोंद्वारा **'यज्ञो वै विष्णुः'** यह श्रुतिवाक्य प्रमाणित है, श्रीमद्भागवत-महापुराणके तीसरे स्कन्धके तेरहवें अध्यायमें भी यह विषय निरूपित है।

~~~~ ○ ~~~~
~~~~

भगवान्‌का विषावतार

(डॉ० श्रीअशोकजी पण्ड्या)

भगवान् जन्म क्यों लेते हैं? इसके उत्तरमें स्वयं जनार्दन सहज ही उत्तर देते हैं—'**अनुग्रहाय भूतानाम्**' कितना औदार्य है प्रभुके इस कथनमें—प्राणियोंपर अनुग्रह करनेके लिये। यही ईश्वरत्व है।

वस्तुत: यही अवतारमीमांसा है। जीव ईश्वरका अपना अंश है और यही अंश जब अपने मूलमें लौटना चाहता है तो ईश्वर इसके स्वागतमें, इससे मिलनेको उद्यत रहते हैं। यह तत्परता ही प्रेम है, जो भगवान् और भक्तमें समानरूपसे व्याप्त है। प्रेमके इसी स्वभाववश भगवान् भक्तके आर्तिहरणका बहाना ढूँढ़ते रहते हैं और जैसे ही हृदयकी पुकार सुनायी दी, तुरंत वे प्रकट हो जाते हैं। काल, पात्र-कुपात्र, स्त्री, पुरुष, बालक, जड़, चेतन—इसका वे कुछ भी विचार नहीं करते। भगवान्‌का यह स्वभाव ही प्रेमसूत्र है और यह सूत्र ही अवतारवादका मूल हेतु है।

भगवान् लीलाधर हैं। प्रेमके साथ-साथ वैचित्र्य भी उनका स्वभाव है। साथ ही वे सर्वशक्तिमान् हैं। अत: जड़-चेतन, किसी भी रूपमें आनेसे उन्हें कौन रोक सकता है? बस, संकल्पमात्रकी आवश्यकता है। वे किसी भी रूपमें कहीं भी अवतरित हो सकते हैं। मनुष्य, पशु-पक्षी, वृक्ष, नदी, पर्वत और यहाँतक कि जड़रूपमें भी उन्हें अवतरित होना पड़ता है। अपनी प्रिय सखी कृष्णा (द्रौपदी)-के लिये उन्होंने वस्त्रके रूपमें जन्म लिया, तो कभी अपनी भावपरिणीता प्यारी मीराके लिये जहरके रूपमें—विषके रूपमें। विषके रूपमें अवतरण ही विषावतार है। आइये, इस अवतरण-लीलाका रसास्वादन करें—

मरु-मन्दाकिनी मीरा भगवान् श्रीकृष्णकी दीवानगीमें आकण्ठ डूबी हुई थीं। उनके आचरण और व्यवहारसे भक्ति जैसे रिस-रिस जाती थी, टपक पड़ती थी। उनका भावजगत् इतना समृद्ध था कि उनके एक-एक पदमें कृष्ण साकार हो उठते थे। जब वे तल्लीन होकर गाती थीं तो लगता था, हर एक शब्द गिरिधर है और हर भाव मीरा। शब्द, भाव और ध्वनि (करताल) सब मिलकर भक्त और भगवान्‌को एक कर देते थे। परमानन्दका यह ऐक्य ही प्रेमोत्सव है, जिसमें भक्त और भगवान् अनादि कालसे एक होनेकी पुष्टि करते हैं।

मीरा इसी पुष्टिका प्रसन्न पुष्प है, जिसकी सुरभिके लिये भक्तवत्सल जनार्दन श्रीकृष्णको विष—ज़हरके रूपमें अवतरित होना पड़ा।

आर्यावर्त भारतकी शौर्यधरा राजस्थान! सूर्यनगरी जोधपुरको बसानेवाले सुप्रसिद्ध राठौड़-वीर राव जोधाके पुत्र राव दूहाजी हुए, जो मेड़ताके स्वामी थे। भक्तके रूपमें उनकी ख्याति भी खूब थी। उन्हींकी पौत्री मेड़तानरेश राव रतनसिंहकी पुत्री राजकुमारी मीरा थी। बाल्यावस्थासे ही दादा दूहाजी एवं भाई जयमल (ताऊजी विरमदेवके पुत्र)-के संगने बालिका मीराको कृष्णभक्तिमें रचा-पचा दिया।

मीराकी आस्था कृष्णमें इतनी बढ़ गयी कि आराधना करते-करते अपने आराध्यके प्रति सख्यभाव और तदनन्तर कान्तभाव कब आ गया, पता ही नहीं चला—वह बाला कृष्णकी भाव-परिणीता बन गयी, कृष्णको अपना पति मान बैठी और इसी भावसे वह बावरी आगे बढ़ती ही गयी तथा इस प्रसिद्ध पदमें उसने अपनी भावनाको उजागर कर दिया—

'**मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई॥**
जाके सिर मोर मुगट मेरो पति सोई।'

मीरा श्रीकृष्णके इस रंगमें ऐसी रँग गयी कि बाल्यावस्था और कैशोर्यका कुछ भी ध्यान नहीं रहा—न खेलनेकी चाह, न बन्धनकी चाह। बस, भक्तिपन्थ, पद-पखावज और मिलनकी आस—'***गोबिंद कबहुँ मिलै पिया मेरा॥***'

मीराका विवाह हो गया। राजकुमारी मीरा महाराणा सांगाके पुत्र युवराज भोजराजकी रानी बन चितौड़-राजमहलकी चौखट चढ़ीं। सुसंयोगसे पति भोजराज भी पत्नीके भक्तिमार्गमें बाधक नहीं बने, किंतु दुर्भाग्यवश भोजका देहान्त जल्दी ही हो गया। रानी मीरा विधवा हो गयीं, लेकिन भक्त मीरा और दृढ़—

देख दुःखका वेष धरे मैं नहीं डरूँगा तुमसे, नाथ!
जहाँ दुःख वहाँ देख तुम्हें मैं पकडूँगा जोरोंके साथ॥

क्या भावना है भक्तकी! क्या दृढ़ता है!! भक्त दुःखको भी अपने आराध्यका ही एक रूप मानता है और

इस तरह मीरा अपने निर्धारित पथपर आगे-ही-आगे बढ़ती गयीं। भक्तके रूपमें उनकी शीघ्र ही प्रसिद्धि हो गयी और अनेक साधु-संत उनके पास संत-समागमहेतु आने लगे।

दुर्भाग्यके इसी दौरमें पिता रतनसिंह और श्वशुर महाराणा सांगाका प्राणोत्सर्ग हुआ। मीराका पृष्ठबल शून्य हो गया। राजवंशकी एक रानीके साथ साधु-संतोंका मिलना और नृत्य-कीर्तन राजपरिवारको अच्छा नहीं लगा। मीराको इससे विरत करनेके अनेक प्रयत्न किये गये, किंतु मीरा तो जैसे दु:खमें भी अपने गिरिधरकी छवि निहारती थी और दु:खोंका स्वागत करती थी। यह भक्तिकी पराकाष्ठा है।

भक्तका यह स्वभाव है कि वह ईश्वरसे दु:खकी नित्य कामना करता है—

सुख के माथे शिल पड़ी जो नाम हरिका जाय।
बलिहारी वो दु:खकी जो पल पल नाम जपाय॥

माता कुन्तीने भी तो भगवान्‌से यही माँगा था—

विपदः सन्तु नः शश्वत् तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्॥

(श्रीमद्भा० १।८।२५)

अर्थात् हे जगद्गुरो! हमारे जीवनमें हर पगपर विपत्तियाँ आती रहें; क्योंकि विपत्तिमें ही निश्चितरूपसे आपके दर्शन होते रहते हैं और आपके दर्शनके बाद जन्म-मृत्युके चक्करमें आना नहीं पड़ता। तभी तो मीराजी कहती हैं—

भज मन चरणकँवल अबिनासी।
अरज करूँ अबला कर जोड़े, स्याम तुम्हारी दासी।
मीराके प्रभु गिरधर नागर काटो जमकी फाँसी॥

और सचमुच मीराके प्रभु गिरिधर हर बार उनके दु:ख दूर करते गये।

राणाजीने एक पिटारीमें साँप रखवाकर ले जानेवालेको आदेश दिया कि इसे मीराके हाथमें ही देना। ऐसा ही हुआ। लेकिन नहा-धोकर मीराने टोकरी खोली तो निहाल हो गयी—कण्डियेमें शालग्राम बिराज रहे थे। वाह प्रभु! धन्य हैं आप और आपकी माया, भक्तके लिये क्या-क्या नहीं करते आप! विषरूप उस विषधरको ही आपने अपनेमें मिला लिया और अपने शालग्रामरूपको भक्तके दर्शनके लिये पिटारीमें बंद कर दिया। वाह रे मुक्तिदाता! तू खुद बन्धनमें बँध गया। जय हो प्रभु! तेरी जय हो। ज़हरका क्या सांनिध्य किया है। ये विशेषावतार ही भगवान्‌के कलावतार, अंशावतार और आवेशावतारको पुष्ट करते हैं; क्योंकि इन्हींमें भक्तका कल्याण निहित है—

'नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप।'

(श्रीमद्भा० १०।२९।१४)

अर्थात् जीवोंका कल्याण करनेके लिये ही भगवान् अवतार लेते हैं।

और आज तो हद हो गयी, जब राणाजीने अपनी भाभी और महारानी मीराके लिये ज़हरका प्याला ही भेज दिया।

मीरा अपने पूजाकक्षमें नित्यानुसार गिरिधरकी आराधनामें लीन हैं। इधर, राणाने हलाहल ज़हर मँगवाया और उसे एक प्यालेमें भरकर पुजारीजीके हाथ षड्‌यन्त्रपूर्वक मीराजीके लिये भिजवाया—यह कहकर कि 'यह भगवान्‌का चरणामृत है।'

पुजारीजी प्रवेशाज्ञा चाहते हैं। भक्त निश्छल होते हैं अत: मीराने भी अनुमति दे दी। पुजारीजी आदरसहित वह कटोरा अर्पित करके कहते हैं—चरणामृत है, राणाजीने भिजवाया है। मीरा प्रसन्न हो गयीं। वाह प्रभु! आज कृतार्थ हो गयी। चरणामृत और वह भी राणाजीने। विस्मयमिश्रित संतोष व्यक्त किया। बड़े आदरके साथ रानी स्वीकार करती हैं और शीश नवाकर कृतकृत्य होती हैं। गिरिधरका चरणामृत जानकर उनके रोम-रोममें पुलक जग जाता है। बड़ी बावली हो जाती हैं, भक्त जो ठहरीं।

उनकी ननद मालती और एक दासी यह षड्‌यन्त्र जानती हैं, वे दौड़ी हुई पहुँचीं अपनी भक्त भावजके पास यथार्थ-बोध कराने। वे इसे नहीं पीनेका अनुनय करती हैं। लेकिन मीरा अचल भावसे कहती हैं—मेरे गिरिधरका चरणामृत है, अवश्य ग्रहण करूँगी। उसके नामसे आया है न! यह परम प्रसाद है। वाह रे भक्ति! आस्था और विश्वासका अभेद्य दुर्ग। भाभी! अनर्थ हो जायगा। यह चरणामृत नहीं विष—ज़हर है। यह सुननेपर मीरा कहती हैं—देखूँ तो··· और प्यालेमें झाँकती हैं तो प्यालेमें अपने गिरधरकी छवि निहार निहाल हो जाती हैं। आनन्दका पारावार नहीं रहा। मीरा मगन हो जाती हैं और हरिगुन गुनगुनाने लगती हैं—*'मीरा हो गयी मगन।'*

क्या मस्ती है यह हस्ती मिटाने में।
मीरा देखती है गिरधर जहर के प्याले में॥

मीराने प्याला मस्तकसे लगाया, कान्हाका रूप निहारा, आँखोंको सुख मिला और गटक गयी वह बावरी

उस हलाहलको कृष्णके नामपर। सब स्तब्ध! अहा! क्या स्वाद था! यह तो मीरा ही जाने। आज भक्तके कारण भगवान् विषका रूप लेनेमें भी नहीं हिचकिचाये और विष विष न रहकर अमृत हो गया। होता भी क्यों नहीं, कृष्ण जो उसमें घुल गया। आज दीनबन्धु दीनानाथने विषावतार जो धारण किया था!

वाह कन्हैया, तेरा पार कहाँ? तू क्या नहीं करता! धन्य हो गयी मीरा और धन्य हो गये हम भगवान्‌के इस विषावतारके रूपसे, जहाँ जड़ और चेतनमें भी कोई फर्क नहीं। तभी तो शास्त्रोंने आगाह किया है—'**सुहृदं सर्वभूतानाम्**।'

भगवान् और विषका यह पहला सम्बन्ध नहीं है। कृष्णको तो जन्म लेते ही इसका स्वाद लग गया था। कंसके कहनेपर पूतना अपने स्तनपर कालकूट (हलाहल) ज़हर लेपकर कृष्णको स्तनपान कराने आयी थी। बड़ी चतुराईसे वह छलरूपिणी बालकृष्णतक पहुँची और उन्हें अपना दूध पिलाने लगी। लेकिन कृष्ण तो कृष्ण ठहरे, चाहे शिशु ही क्यों न हों। ज़हरके साथ पूतनाका जीवनरस तक पी गये और यह उनका ईश्वरत्व ही था कि पूतनाको भी सद्गति प्रदान की—

अहो बकी यं स्तनकालकूटं
जिघांसयापाययदप्यसाध्वी।
लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं
कं वा दयालुं शरणं व्रजेम॥

(श्रीमद्भा० ३।२।२३)

अर्थात् पापिनी पूतनाने अपने स्तनोंमें हलाहल विष लगाकर श्रीकृष्णको मार डालनेकी नियतसे उन्हें दूध पिलाया था, उसको भी भगवान्‌ने वह परम गति दी जो धायको मिलनी चाहिये। उन भगवान् श्रीकृष्णके अतिरिक्त और कौन दयालु है, जिसकी शरण ग्रहण करें।

कालिय-मर्दन, अघासुर-उद्धार आदि प्रसंग भी भगवान्‌के विषवरणके ही विविध कथानक हैं; तभी तो गोपियाँ गोपी-गीतमें श्रीकृष्णके उपकारोंका स्मरण करती हुई कहती हैं—

'विषजलाप्ययाद् व्यालराक्षसाद्
वर्षमारुताद् वैद्युतानलात्।'

(श्रीमद्भा० १०।३१।३)

अर्थात् यमुनाजीमें विषमय जलसे होनेवाली मृत्यु; अजगरके रूपमें खा जानेवाले अघासुर; इन्द्रकी वर्षा, आँधी, बिजली, दावानल आदिसे आपने हमारा रक्षण किया है।

माता कुन्तीजी भगवान्‌के उपकारका स्मरण करती हुई स्तुति करती हैं—आपने मेरे भीमको दुर्योधनद्वारा ज़हरके लड्डू खिलानेपर बचाया था।

इस तरह भगवान् श्रीकृष्णके और विष—ज़हरके विविध वृत्तान्त हमारे शास्त्रोंमें सुवर्णित हैं, परंतु विषमें श्रीकृष्णकी छवि अङ्कित होनेकी एकमात्र घटना मीराके विषपानकी ही है—

ज़हर भी काला श्याम भी काला,
श्याम रंग में रँग गई बाला।
मीरा ने जो उठाया प्याला,
छाये गिरधर गरल अवतारा॥

तदनन्तर मीराने मेवाड़ छोड़ वृन्दावन पदार्पण किया। वहाँसे वे द्वारका गयीं। वहाँ भगवान् द्वारकाधीशमें सदेह समा गयीं और उन्होंने इन पंक्तियोंको सार्थक कर दिया—

करावलम्बं मम देहि विष्णो
गोविन्द दामोदर माधवेति॥

हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव! हे विष्णो! आप मुझे अपने करकमलोंका आश्रय प्रदान कीजिये।

भगवान्‌का कालस्वरूप अवतार

(श्रीशिवनारायणजी रावत, बी०ए०, एल्-एल्०बी०)

भगवान् समस्त प्राणियोंके नियामक हैं। उनकी लीला एवं उनके सङ्कल्पोंका रहस्य जीव किसी साधनसे नहीं जान सकता। भगवत्कृपासे ही जीव उनके सम्बन्धमें यत्किञ्चित् जान पाता है। भगवान् अप्रमेय हैं। कालोंके भी महाकाल हैं। उनकी प्रत्येक लीला अलौकिक होती है। भगवान् मन, वाणीके विषय नहीं हैं, फिर भी यथाशक्ति कवियों, भक्तों एवं प्रेमियोंने उनका गुणानुवाद किया है। वेदोंने 'नेति-नेति' कहकर भगवान्‌के गुणों एवं लीलाओंका वर्णन किया है।

भगवान् ब्रह्मारूपसे संसारकी सृष्टि करते हैं, विष्णुरूपसे पालन करते हैं एवं रुद्ररूपसे संहार करते हैं। यहाँपर उनके इसी संहारकारी रूपका—कालस्वरूपका किञ्चित् दिग्दर्शन कराया जाता है। भगवान्‌में सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य आदि अनेकानेक गुण हैं—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसश्श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥

(विष्णुपुराण ६।५।७४)

सभी गुणोंके निवासस्थान भगवान् ही हैं। भगवान्‌ने अपनी लीलाहेतु ही सम्पूर्ण जगत्‌की सृष्टि की है। उनके लिये सृष्टि, पालन एवं संहार—तीनों ही प्रकारकी लीलाएँ समान हैं। जिस प्रकार बालक मिट्टीका खिलौना बनाते हैं, उससे खेलते हैं और अन्तमें उसे नष्ट कर देते हैं, उसी प्रकार भगवान्‌की ये तीनों लीलाएँ हैं। मङ्गलमय होनेसे उनकी हर लीला मङ्गलमयी है। उनकी संहारकारी लीलामें भी गुप्तरूपसे मङ्गल भरा हुआ है।

श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने अपने प्रिय सखा अर्जुनको अपने विराट् काल-स्वरूपका दर्शन कराया है—

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो
लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे
येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः॥

(११।३२)

श्रीभगवान् बोले—मैं लोकोंका नाश करनेवाला बढ़ा हुआ महाकाल हूँ। इस समय इन लोकोंको नष्ट करनेके लिये प्रवृत्त हुआ हूँ। इसलिये जो प्रतिपक्षियोंकी सेनामें स्थित योद्धा लोग हैं। ये सब तेरे बिना भी नहीं रहेंगे अर्थात् तेरे युद्ध न करनेपर भी इन सबका नाश हो जायगा।

गीताके दसवें अध्यायमें भगवान्‌ने अपनी विभूतियोंका वर्णन करते हुए बतलाया है कि गणना करनेवालोंमें मैं काल हूँ, अक्षरोंमें अकार, समासोंमें द्वन्द्व तथा अक्षयकाल अर्थात् कालका भी महाकाल मैं ही हूँ।

कालस्वरूप होकर ही भगवान् पृथ्वीका भार उतारा करते हैं। भगवान् सत्यसङ्कल्प हैं। जीवके सङ्कल्पकी सफलता भगवदिच्छापर ही है।

महाभारतके युद्धके पश्चात् पृथ्वीका भार हलका हो गया था और सभी लोग यही सोचते भी थे; परंतु भगवान्‌ने सोचा कि यद्यपि लोगोंकी दृष्टिमें भू-भार उतर गया है लेकिन मेरे विचारसे अभी पूर्णतया पृथ्वीका भार हल्का नहीं हुआ है; क्योंकि अभी ये यदुवंशी बचे हुए हैं। ये मेरे आश्रित हैं। अतः इनको कोई पराजित भी नहीं कर सकता। अब मुझे ही किसी प्रकारसे इन्हें नष्ट करना है। ऐसा विचार कर भगवान्‌ने ब्राह्मणोंके शापके बहाने यदुवंशियोंमें ही फूट डालकर उन्हें कालको समर्पित कर दिया। भगवान्‌ने श्रीमद्भागवतमें कहा है—

अहं गतिर्गतिमतां कालः कलयतामहम्।
गुणानां चाप्यहं साम्यं गुणिन्यौत्पत्तिको गुणः॥

(११।१६।१०)

गतिशील पदार्थोंमें मैं गति हूँ, अपने अधीन करनेवालोंमें मैं काल हूँ, गुणोंमें उनकी मूलस्वरूपा साम्यावस्था हूँ और जितने भी गुणवान् पदार्थ हैं, उनमें उनका स्वाभाविक गुण हूँ।

भगवान् कालके भी आधार—महाकाल हैं। भगवान्‌के समान तो कोई है ही नहीं, फिर उनसे बढ़कर कौन हो सकता है? भगवान् स्वयं ही प्रकृति, पुरुष और दोनोंके संयोग-वियोगके हेतु काल हैं। श्रीरामचरितमानसमें माल्यवन्त राक्षसराज रावणको सचेत करते हुए उसे भगवान्‌के कालस्वरूपका बोध कराता है—

कालरूप खल बन दहन गुनागार घनबोध।
सिव बिरंचि जेहि सेवहिं तासों कवन बिरोध॥
(रा०च०मा० ६।४८ ख)

इसी प्रकार भगवान्‌के अन्य स्वरूपोंके साथ-साथ उनके कालस्वरूपका वर्णन सभी शास्त्रों, पुराणों, महाभारत एवं रामचरितमानसके अनेकानेक स्थलोंपर आता है। यदि मनुष्य भगवान्‌के कालस्वरूपका स्मरण करता रहे तो वह बहुत-सी बुराइयोंसे बच सकता है तथा उसका निश्चित ही कल्याण हो सकता है।

कंसने भगवान्‌के इसी स्वरूपका स्मरण करते हुए भगवत्प्राप्ति की। वह उठते-बैठते, खाते-पीते, सोते एवं काम करते, विचार करते समय—चौबीसों घंटे उन्हीं भगवान्‌का चिन्तन करता था। उसने भगवान्‌का स्मरण प्रेमसे नहीं, वैरसे ही किया, तब भी उसका कल्याण हो गया।

नारायणने कहा है—

दो बातन को भूल मत, जो चाहै कल्यान।
नारायन एक मौत को, दूजे श्रीभगवान॥

कालकी गति गहन है। जीव कालको नहीं जानता है। काल अजन्मा और अमर है। काल ही सबकी अवधि है। कालकी अवधिमें ही सब मृत्युको प्राप्त होते हैं। काल ही सबकी मृत्युको सिद्ध करता है। सदैव ही कालरूपी सर्पसे डरते रहना चाहिये; क्योंकि कालरूपी सर्प कभी भी डँस सकता है। उसके दंश लगनेसे हमारी मृत्यु भी हो सकती है। मृत्यु होनेके पश्चात् कोई उपचार सम्भव नहीं हो सकेगा। इसलिये हमें चैतन्य-अवस्थामें ही भगवान्‌का स्मरण करना चाहिये ताकि कालरूपी सर्पसे छुटकारा प्राप्त हो सके।

~~~ ○ ~~~

परमात्माका नादावतार—प्रणव

(श्रीचैतन्यकुमारजी, बी०एस्-सी० (ऑनर्स), एम्०बी०ए० तथा श्रीप्रसूनकुमारजी, एम्०एस्-सी०, एम्०सी०ए०)

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥
(ऋक्० १।१६४।४६)

एक ही सत् (ब्रह्म)-को ज्ञानीजन इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्य सुपर्ण गरुत्मान्, यम और मातरिश्वाके नामसे पुकारते हैं।

नाम दो प्रकारका है—वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक। जो नाम अक्षरोंके मेलसे बनते हैं उनको वर्णात्मक कहते हैं, जैसे राम, कृष्ण, शिव, दुर्गा, गणेश आदि। ध्वन्यात्मक नामका अनुभव योगियोंको होता है। जब योगीका प्राण सुषुम्णा नाड़ीमें प्रवेश कर मूलाधारसे ऊपर जाता है तो उसे कई प्रकारकी अनुभूतियाँ होती हैं। इसके अतिरिक्त नादकी भी अनुभूति होती है। इस प्राणका गमन मूलाधारसे सहस्रारतक होता है। मार्गमें कई ठहराव हैं, जिन्हें चक्र कहते हैं। प्रत्येक चक्रमें नादका एक विशेष रूप होता है, किंतु सभीको अनाहत कहा जाता है।

सहस्रारमें पहुँचकर नादके अति सूक्ष्मरूपका अनुभव होता है, जिसका नाम प्रणव है। इस स्थलपर ही सम्प्रज्ञात समाधिकी अस्मितानुगत समाधि होती है और इसके उपरान्त ही योगी ईश्वरका साक्षात्कार कर सकता है। इससे ऊपर जहाँ अस्मिताका लय होता है और असम्प्रज्ञात समाधिका उदय होता है, वहाँ जीवात्मा और परमात्माका भेद समाप्त हो जाता है। जिस भूमिकामें ईश्वरका साक्षात्कार होता है, उससे सम्बन्ध होनेके कारण ही प्रणवको 'ईश्वरका वाचक' माना जाता है। योगदर्शन (१।२७)-में महर्षि पतञ्जलिने इसे ही '**तस्य वाचकः प्रणवः**' कहा है।

प्रणवका अर्थ ॐकार है, जो अ, उ, म्—इन अक्षरोंसे बना है। ये तीन अक्षर ब्रह्मा, विष्णु और महेशके अर्थमें व्यवहृत होते हैं—

अकारं ब्रह्मणो रूपमुकारं विष्णुरूपवत्।
मकारं रुद्ररूपं स्यादर्धमात्रं परात्मकम्॥
(बृ०ना० पुराण)

प्रणव वर्णात्मक नहीं होकर ध्वन्यात्मक है, अतः वर्णनातीत है। ब्रह्माद्वारा देवीकी स्तुतिमें यह वर्णन आया है कि—

सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता।
अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः॥
(मार्कण्डेयपुराण, देवीमाहात्म्य १।७४)

हे देवि! आप ही जीवनदायिनी सुधा हैं। नित्य अक्षर 'प्रणव'में अकार, उकार, मकार—इन तीन मात्राओंके
~~~

रूपमें आप ही स्थित हैं तथा इन तीन मात्राओंके अतिरिक्त जो बिन्दुरूपा नित्य अर्धमात्रा है, जिसका उच्चारण नहीं किया जा सकता, वह भी आप ही हैं।

महायोगी दत्तात्रेयजी बताते हैं कि विश्वरूपी परमात्माका दर्शन करके उनकी प्राप्तिके लिये परम पुण्यमय 'ॐ' इस एकाक्षर-मन्त्रका जप करे—

'तत्प्राप्तये महत् पुण्यमोमित्येकाक्षरं जपेत्।'

(मार्क०पु० ४२।३)

आगे प्रणवके स्वरूप तथा माहात्म्यके विषयमें वे कहते हैं—

अकारश्च तथोकारो मकारश्चाक्षरत्रयम्।
एता एव त्रयो मात्राः सात्त्वराजसतामसाः॥
निर्गुणा योगिगम्यान्या चार्द्धमात्रोद्‌र्ध्वसंस्थिता।

× × ×

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म वेध्यमनुत्तमम्।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्॥
ओमित्येतत् त्रयो वेदास्त्रयो लोकास्त्रयोऽग्नयः।
विष्णुर्ब्रह्मा हरश्चैव ऋक्सामानि यजूंषि च॥
मात्राः सार्द्धाश्च तिस्त्रश्च विज्ञेयाः परमार्थतः।

× × ×

व्यक्ता तु प्रथमा मात्रा द्वितीयाव्यक्तसंज्ञिता।
मात्रा तृतीया चिच्छक्तिरर्द्धमात्रा परं पदम्॥
अनेनैव क्रमेणैता विज्ञेया योगभूमयः।
ओमित्युच्चारणात् सर्वं गृहीतं सदसद्भवेत्॥
ह्रस्वा तु प्रथमा मात्रा द्वितीया दैर्घ्यसंयुता।
तृतीया च प्लुतार्द्धाख्या वचसः सा न गोचरा॥
इत्येतदक्षरं ब्रह्म परमोङ्कारसंज्ञितम्।
यस्तु वेद नरः सम्यक् तथा ध्यायति वा पुनः॥
संसारचक्रमुत्सृज्य त्यक्तत्रिविधबन्धनः।
प्राप्नोति ब्रह्मणि लयं परमे परमात्मनि॥

(मार्कण्डेयपुराण ४२।४—१५)

अकार, उकार और मकार—ये जो तीन अक्षर हैं। ये ही तीन मात्राएँ हैं, ये क्रमशः सात्त्विक, राजस और तामस हैं। इनके अतिरिक्त एक अर्धमात्रा भी है, जो अनुस्वार या बिन्दुके रूपमें इन सबके ऊपर स्थित है, वह अर्धमात्रा निर्गुण है, योगी पुरुषोंको ही उसका ज्ञान हो पाता है। प्रणव ॐकार धनुष है, आत्मा तीर है और ब्रह्म वेधनेयोग्य लक्ष्य है। उस लक्ष्यको सावधानीसे बेधना चाहिये और बाणकी ही भाँति लक्ष्यमें प्रवेश करके तन्मय हो जाना चाहिये। ॐकार ही तीनों वेद (ऋक्, साम और यजु), तीनों लोक (भूः, भुवः, स्वः), तीनों अग्नि (गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि), त्रिदेव (ब्रह्मा-विष्णु-महेश) है। इस प्रणवमें साढ़े तीन मात्राएँ जाननी चाहिये। पहली मात्रा व्यक्त, दूसरी अव्यक्त, तीसरी चिच्छक्ति तथा चौथी अर्धमात्रा परमपद कहलाती है। इसी क्रमसे इन मात्राओंको योगकी भूमिका समझना चाहिये। ॐकारके उच्चारणसे सम्पूर्ण सत् और असत्का ग्रहण हो जाता है। पहली मात्रा ह्रस्व, दूसरी दीर्घ और तीसरी प्लुत है, किंतु अर्धमात्रा वाणीका विषय नहीं है। इस प्रकार यह ॐकार परब्रह्मस्वरूप है, जो मनुष्य इसे भलीभाँति जानता है और इसका ध्यान करता है, वह संसार-चक्रका त्याग करके त्रिविध बन्धनोंसे मुक्त होकर परमात्मामें लीन हो जाता है।

प्रणवके जपसे सभी अभीष्ट सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, इस बातको श्रुतिने स्पष्ट शब्दोंमें इस प्रकार कहा है—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति
तपाꣳसि सर्वाणि च यद् वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदꣳ संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्॥

(कठोपनिषद् १।२।१५)

सभी वेद जिस परम पदका बारम्बार प्रतिपादन करते हैं, सभी तप जिस पदका लक्ष्य कराते हैं, जिसकी इच्छासे ब्रह्मचर्यका पालन होता है—उस पदको संक्षेपमें कहा जा रहा है—वह ॐकार ही है।

श्रुति आगे कहती है—

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम्।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्॥
एतदालम्बनꣳ श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते॥

(कठो० १।२।१६-१७)

यह अविनाशी ॐकार (प्रणव) ही तो ब्रह्म एवं परब्रह्म है। इस तत्त्वको जानकर साधक दोनोंमेंसे किसीको भी प्राप्त कर सकता है। ॐकार (प्रणव) ही परब्रह्म-प्राप्तिका श्रेष्ठ आलम्बन है। परमात्माके श्रेष्ठ नामकी शरण लेना ही उनकी प्राप्तिका अमोघ साधन है। इस रहस्यको

जानकर जो साधक श्रद्धा एवं विश्वासके साथ परमात्मापर निर्भर हो जाता है, वह उनकी प्राप्ति कर लेता है।

इस तथ्यको भगवान् श्रीकृष्ण गीतामें कहते हैं—

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति
विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये॥
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥

(८।११, १३)

भाव यह है कि वेदके ज्ञाता जिस अक्षररूप ब्रह्म ॐकारका उच्चारण करते हैं, वीतराग यति जिसमें प्रवेश करते हैं, जिसकी प्राप्तिहेतु ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं, उस पदको संक्षेपमें कहता हूँ। यह एकाक्षर ब्रह्म ॐकार है। इस ॐकारका उच्चारण करते हुए जो अपने शरीरका त्याग करता है, वह मेरा परम पद प्राप्त करता है।

छान्दोग्योपनिषद् (१।१।१)-के शाङ्करभाष्यके अनुसार—

'**ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत। ओमित्येतदक्षरं परमात्मनोऽभिधानं नेदिष्ठम्।**'

उद्गीथशब्दवाच्य 'ॐकार' की उपासना करें। 'ॐ' यह अक्षर परमात्माका सबसे प्रिय नाम है।

पुनः छान्दोग्योपनिषद्के अनुसार जो उद्गीथ है, वही प्रणव है, वही उद्गीथ है—

'**अथ खलु य उद्गीथः स प्रणवो यः प्रणवः स उद्गीथः।**' (छा०उ० १।५।५)

इसी श्रुतिमें यह वर्णन आया है कि प्रजापतिके पुत्र देवता और दानव किसी कारणवश परस्पर युद्ध करने लगे। उसमें देवताओंने प्रणवका अनुष्ठान कर विजय प्राप्त कर ली।

महर्षि पतञ्जलिने इस प्रणव (ॐकार)-के जपका विधान इस प्रकार किया है—

'**तज्जपस्तदर्थभावनम्॥**' (यो०द० १।२८)

इस ॐकारका जप उसके अर्थस्वरूप परमात्माका चिन्तन करते हुए करना चाहिये।

प्रश्नोपनिषद् (५।२)-के अनुसार '**परं चापरं च ब्रह्म यदोङ्कारः।**' परब्रह्म और अपरब्रह्म भी ॐकार ही है। पुनः यह श्रुति आगे कहती है—

'**तमोङ्कारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान्**
यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परं चेति॥'

(५।७)

बुद्धिमान् मनुष्य बाह्य जगत्में आसक्त न होकर ॐकारकी उपासनाद्वारा समस्त जगत्के आत्मरूप उन परब्रह्मको प्राप्त कर लेते हैं, जो परम शान्त—सब प्रकारके विकारोंसे रहित, जहाँ न बुढ़ापा है, न मृत्यु है, न भय है, जो अजर-अमर निर्भय परमात्मा है।

तैत्तिरीयोपनिषद् भी इसी भावको अभिव्यक्त करता है। ॐकारके कीर्तनसे परमात्माकी प्राप्ति होती है। '**एतत्साम गायन्नास्ते**' से मन्त्रके गानका ही विधान है।

माण्डूक्योपनिषद्में तो केवल ॐकारकी ही महत्ताका प्रतिपादन हुआ है। ॐकार यह अक्षर अविनाशी परमात्मा है। यह जगत् उसीका विस्तार है। तीनों काल (भूत, वर्तमान और भविष्यत्) ॐकार ही है, जो त्रिकालातीत है, वह परब्रह्म ॐकार ही है।

महर्षि पतञ्जलि योगदर्शनमें कहते हैं—

'**यथाभिमतध्यानाद्वा॥**' (यो०द० १।३९)

अपनी रुचिके अनुसार अपने इष्टका ध्यान करनेसे मन स्थिर हो जाता है।

जैसे भगवान् '**कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थः**' हैं, वैसे ही भगवन्नाम-जप भी ऐसा करनेमें समर्थ है। नाम और नामीमें कोई भेद नहीं है।

प्रणवको 'वेदसार' भी कहा जाता है। सर्वप्रथम ॐ का उच्चारण करके ही वेदारम्भ, पाठारम्भ, मन्त्रारम्भ करनेका विधान है '**ॐकारः पूर्वमुच्चार्यस्ततो वेदमधीयते।**' वेदपाठ बन्द करनेके पूर्व भी ॐ का उच्चारण करनेका नियम है। इस प्रकार प्रणव (ॐकार) साक्षात् परमात्माका नामावतार है, नादावतार है। इसके जपसे भगवान्की प्राप्ति हो जाती है। यज्ञोपवीती द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) ही इस जपके अधिकारी हैं। अनुपवीती तथा स्त्री और शूद्रको 'राम', 'शिव' आदि नामोंका जप करना चाहिये।*

* केवल प्रणव (ॐ)-का जप साधु, संन्यासी तथा विरक्तको करना चाहिये। गृहस्थके लिये प्रणव (ॐ)-से युक्त मन्त्रका जप करना श्रेयस्कर है।

भगवान्‌के व्यूहावतार—वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध

(श्रीरामबाबूजी शर्मा)

परब्रह्म परमात्मा प्रकृतिसे परे हैं और प्रकृतिमय भी हैं। इस प्रकार उनकी दो विभूतियाँ हैं—एक त्रिपाद्विभूति और दूसरी एकपाद्विभूति। त्रिपाद्विभूतिको नित्यविभूति और एकपाद्विभूतिको लीलाविभूति भी कहा गया है। एकपाद्विभूतिमें श्रीभगवान् जगत्‌के उदय, विभव और लयकी लीला करते हैं। उनका प्रकृतिके साथ विहार चिरन्तन, अनादि, अनन्त है। प्रकृतिके असंख्य ब्रह्माण्डभाण्डोंको अहर्निश बनाने-बिगाड़नेके अनवरत कार्यको समग्ररूपमें जाननेकी शक्ति किसी व्यक्तिमें नहीं। मनुष्य यह भी नहीं जान सकता कि प्रकृतिके साथ भगवान्‌का यह विहार कब प्रारम्भ हुआ और कबतक चलेगा? वह तो यह कहकर संतोष कर लेता है कि यह विहार अनादि कालसे चल रहा है और सदा चलता रहेगा।

जब प्रकृतिमें परमात्माके ईक्षणसे—संकल्पसे विकासोन्मुख परिणाम होता है, तो उसे सृष्टि कहते हैं और जब विनाशोन्मुख परिणाम होता है, तो उसे प्रलय कहते हैं। सृष्टि और प्रलयके मध्यकी दशाका नाम स्थिति है। इस तरह जगत्‌की तीन अवस्थाएँ हैं—सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय। सृष्टि करते समय परमात्मा प्रद्युम्न, पालन करते समय अनिरुद्ध और संहार करते समय संकर्षण कहलाते हैं।

संकर्षण—परतत्त्व भगवान्‌के अनन्त कल्याणगुणगण हैं, उनमें छः प्रमुख हैं। इन्हीं छः गुणोंसे जब वे ज्ञान और बलका प्रकाशन करते हैं, तब 'संकर्षण' कहलाते हैं। संकर्षणमें वीर्य, ऐश्वर्य, शक्ति और तेजका अभाव नहीं। इनका वर्ण पद्मरागके समान है। ये नीलाम्बरधारी हैं। चार करकमलोंमें क्रमशः हल, मूसल, गदा और अभयमुद्रा धारण करते हैं। ताल इनकी ध्वजाका लक्षण है। ये जीवके अधिष्ठाता बनते हुए ज्ञान नामक गुणसे शास्त्रका प्रवर्तन करते हैं और बल नामक गुणसे जगत्‌का संहार करते हैं।

प्रद्युम्न—भगवान् वीर्य और ऐश्वर्यका प्रकाशन करते समय 'प्रद्युम्न' कहलाते हैं। इनमें ज्ञान, बल, शक्ति और तेजका केवल निगूहन होता है, अभाव नहीं। इनका वर्ण रविकिरणके समान है, ये रक्ताम्बरधारी हैं। चार करकमलोंमें क्रमशः धनुष, बाण, शङ्ख और अभयमुद्रा धारण करते हैं। मकर इनकी ध्वजाका चिह्न है। मनस्तत्त्वके अधिष्ठाता होते हुए भी ये वीर्य नामक गुणसे धर्मका प्रवर्तन करते हैं और ऐश्वर्य नामक गुणसे जगत्‌की सृष्टि करते हैं।

अनिरुद्ध—जब परमात्मा शक्ति और तेजका प्रकाशन करते हैं, तब 'अनिरुद्ध' कहलाते हैं। इनमें ज्ञान, बल, वीर्य और ऐश्वर्यका निगूहन होता है, अभाव नहीं। इनका वर्ण नील है एवं ये शुक्लाम्बरधारी हैं। इनके चार करकमलोंमें खड्ग, खेट, शङ्ख और अभयमुद्रा सुशोभित रहती है। मृग इनकी ध्वजाका चिह्न है। अहङ्कारके अधिष्ठाता ये तेज नामक गुणसे आत्मतत्त्वका प्रवर्तन करते हैं और शक्ति नामक गुणसे जगत्‌का भरण-पोषण करते हैं।

वासुदेव—जब परतत्त्व भगवान् त्रिव्यूहमें सम्मिलित होते हैं, तब व्यूह-वासुदेव कहे जाते हैं। ये चन्द्रमाके समान गौर और पीताम्बरधारी हैं। ये अपने चार करकमलोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और अभयमुद्रा धारण करते हैं। गरुड़ इनकी ध्वजाका चिह्न है।

इन चार व्यूहोंके अन्य रूपान्तर भी हैं। केशव, नारायण और माधव—ये तीन वासुदेवके विलास हैं। केशव स्वर्णिम हैं और चार करकमलोंमें चार चक्र धारण करते हैं। नारायण श्यामवर्ण हैं और चार करकमलोंमें चार शङ्ख धारण करते हैं। माधव इन्द्रनीलके समान हैं और चार करकमलोंमें चार गदा धारण करते हैं।

गोविन्द, विष्णु और मधुसूदन—ये संकर्षणके विलास हैं। गोविन्द चन्द्रगौर हैं और चार करकमलोंमें चार शार्ङ्ग धनुष धारण करते हैं। विष्णु पद्म-किंजलवर्ण हैं और चार करकमलोंमें चार हल धारण करते हैं। मधुसूदन अब्जके समान वर्णवाले हैं और चार करकमलोंमें चार मूसल धारण करते हैं।

त्रिविक्रम, वामन और श्रीधर—ये तीन प्रद्युम्नके विलास हैं। त्रिविक्रम अग्निके समान वर्णवाले हैं और चार करकमलोंमें चार शङ्ख धारण करते हैं। वामन बालसूर्यके समान आभावाले हैं तथा चार करकमलोंमें चार वज्र धारण करते हैं। श्रीधर पुण्डरीकके समान वर्णवाले हैं और चार

करकमलोंमें चार पट्टिश धारण करते हैं।

हृषीकेश, पद्मनाभ और दामोदर—ये अनिरुद्धके विलास हैं। हृषीकेश विद्युत्के समान प्रभावाले हैं तथा चार करकमलोंमें चार मुद्गर धारण करते हैं। पद्मनाभ सूर्यके समान आभावाले हैं और चार करकमलोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और धनुष धारण करते हैं। दामोदर इन्द्रगोपवर्णके हैं और चार करकमलोंमें चार पाश धारण करते हैं।

एकपाद्विभूतिमें लीलाके निमित्तोंको धारण किये हुए परमात्मा अनेकव्यूह कहलाते हैं। भगवान् विष्णु सबमें व्याप्त हैं। वे समस्त रूपोंमें स्वरूपतः अभिन्न हैं। उनके अङ्ग, आभूषण, आयुध, पार्षद, वाहन और धाम—सभी सम्पूर्णरूपसे उन्हींके स्वरूप हैं। चक्रपाणि भगवान् विष्णुकी शक्ति और पराक्रम अनन्त है। वे अगम्य हैं। उनकी कोई भी थाह नहीं पा सकता। समस्त जगत्के निर्माता होनेपर भी वे उससे परे हैं। उनके स्वरूप और लीला-रहस्यको उनकी कृपासे ही समझा जा सकता है।

~~ ० ~~

द्रौपदीके लज्जारक्षणके लिये भगवान्का वस्त्रावतार

(गीतामनीषी स्वामी श्रीज्ञानानन्दजी महाराज)

अवतारवाद हिन्दू संस्कृतिका अकाट्य सत्य है। अवतारवाद हमारी आस्था, श्रद्धा और भावना तो है ही, साथ ही एक उच्च आदर्श परम्परा भी है। **'सम्भवामि युगे युगे'**—यह श्रीभगवान्का बहुत स्पष्ट उद्घोष है। साधुजनोंका संरक्षण, दुष्टोंका संहार कर धर्म-परम्पराओं, आदर्शों, मर्यादाओंकी पुनः स्थापनाहेतु वे प्रत्येक युगमें अवतार धारण करते ही हैं। सम्पूर्ण चराचर सृष्टि उन्हींकी लीला है। **'अहं सर्वस्य प्रभवः'** (गीता १०।८), ***'अखिल बिस्व यह मोर उपाया।'*** (मानस ७।८७।७)—आदि वचनोंसे स्पष्ट है कि सब प्राणी परमात्मासे हैं, परमात्मामें हैं। परमात्मा सर्वसमर्थ हैं, सर्वशक्तिमान् हैं, कुछ भी करनेमें समर्थ हैं, सक्षम हैं। यह कहना कि परमात्मा निराकार ही हैं, साकार नहीं हो सकते या अवतार नहीं ले सकते, हास्यास्पद-सा लगता है। सर्वसमर्थ परमात्मा ऐसा नहीं कर सकते—क्यों? परमात्मा निराकार-स्वरूपमें कण-कणमें विद्यमान हैं, यह सत्य है।

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान्।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय॥

(गीता ९।६)

जैसे आकाशमें उत्पन्न सर्वत्र विचरनेवाला महान् वायु सदा आकाशमें ही स्थित है, वैसे ही सम्पूर्ण प्राणी मेरे सङ्कल्पद्वारा उत्पन्न होनेसे मुझमें ही स्थित हैं, लेकिन इस सत्यसे भी इनकार नहीं किया जा सकता कि वे निराकार परमात्मा आवश्यकता पड़नेपर साकाररूप भी धारण करते हैं। पानीका स्वभाव तरलता है, यह मान्य है लेकिन वही पानी वातावरणकी विशेष शीतलता पाकर बर्फके रूपमें जम जाता है। इसे माननेमें आपत्ति क्या? परमात्मा निराकार तो है ही, सर्वत्र है, कण-कणमें व्याप्त है, सब उसमें हैं, वह सबमें है, लेकिन विशेष स्थितिमें वह साकारस्वरूपमें आ जाता है अथवा प्रकट होता है।

सत्य एक है, तत्त्व एक ही है, विभिन्न रूपोंमें वही एक तत्त्व प्रकट होता है—**'अनेकरूपरूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे।'** **'एकं सद् विप्रां बहुधा वदन्ति।'** समस्त सृष्टि परमेश्वरकी लीला है **'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्।'** अवतार भी उनकी एक लीला ही है। पूर्णावतार, अंशावतार, नित्यावतार, नैमित्तिकावतारप्रभृति अवतारके भी अनेक स्वरूप हैं। वे परमात्मा कभी भी, कहीं भी और किसी भी रूपमें प्रकट हो सकते हैं। भाव सच्चा हो और विश्वास पक्का हो तो उनके आनेमें देरी नहीं। कमी हमारे भाव और विश्वासमें हो सकती है, उनकी कृपामें नहीं। वे तो भक्तकी भावरक्षाके लिये सदैव तत्पर हैं।

द्रौपदीकी बात लें। भरी सभामें दुःशासनका दुःसाहस। वह दुष्ट अबला-रजस्वला द्रौपदीके केशोंको पकड़कर उसे खींच लाया। सभामें बैठे अनेक विद्वज्जन, योद्धा, रथी, महारथी, कुलके वड़े-बूढ़े (कुलरक्षक) पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण, कृपाचार्य, विदुर, धृतराष्ट्र आदि सब उस सभामें थे और थे द्रौपदीके पाँचों पति पाँचों पाण्डव भी। बहुत ही मर्मभेदी दृश्य! एक अबलाकी लुटती लाज। वातावरणमें गूँजा एक प्रश्न? कुरुकुलके सभी बड़े यहाँ बैठे हैं, बतायें कि जूएमें पहले धर्मराज युधिष्ठिर अपने-

आपको हारे या मुझे। यदि वे पहले स्वयंको ही दाँवपर लगाकर हार चुके थे तो क्या उन्हें उसके पश्चात् मुझे दाँवपर लगानेका अधिकार था? इस आधारपर क्या मैं जूएमें जीती गयी? द्रौपदी बार-बार यह प्रश्न किये जा रही थी। धर्मके अनुसार मैं जीती गयी या नहीं? '**जितां वाप्यजितां वा मां मन्यध्वे सर्वभूमिपाः।**'

कुछ भी हो, कुलकी लाजको ऐसी अवस्थामें घसीटकर सभामें लाना, वह भी केश पकड़कर, अपशब्दोंका प्रयोग, अभद्र संकेत करना, भरी सभामें चीरहरणका कुत्सित प्रयास—क्या यह सब धर्म, मर्यादा, आदर्श, बल्कि गरिमामय परम्परा—'**यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः**'-की पोषक भारतीय संस्कृतिके आगे प्रश्नचिह्न नहीं था?

इससे पूर्वकी स्थिति देखें। युधिष्ठिर धर्मज्ञ हैं, धर्माचरणके प्रति सजग और पूर्ण निष्ठावान् हैं, यद्यपि कहीं-कहीं धर्मके प्रति उनकी दृढ़ निष्ठा धर्मभीरुताकी स्थितिमें भी आ जाती है। उसीका अनुचित लाभ उठाया जाता है। दुर्योधन धृतराष्ट्रसे कहता है—आप युधिष्ठिरको द्यूतक्रीड़ाके लिये आमन्त्रित करें। आपकी आज्ञा वह कभी भी टालेगा नहीं। मनमें पहलेसे कपट था। धृतराष्ट्र दृष्टिहीन (बाह्य और विवेक दोनों स्थितियोंमें) हैं ही। दुर्योधनके कपटको जानते हुए और समझते हुए भी उन्होंने युधिष्ठिरको आमन्त्रित कर लिया। शकुनिने कपट-चालें चलीं। छलसे काम लिया। क्या यह सब कहीं किसी भी प्रकारसे धर्म था?

सब कुछ जानते-समझते, देखते हुए भी पूरी कौरवसभा मौन। कोई नहीं बोला। बोले तो केवल धृतराष्ट्रपुत्र विकर्ण और विदुर, लेकिन कौन सुनता उनकी बात। आचार्य द्रोण, कृपाचार्य नीचे देखते रह गये। धृतराष्ट्र तो देखते ही कहाँ और क्या? पितामह भीष्म धर्मकी सूक्ष्मता और बारीकियोंकी दुहाई देने लगे। द्रौपदीके प्रश्नका उत्तर भी उस समय यद्यपि महत्त्वपूर्ण था; क्योंकि युधिष्ठिर दाँवमें पहले भाइयोंको और फिर स्वयंको हार चुके थे, तत्पश्चात् द्रौपदीको दाँवपर लगाया गया। लेकिन बात केवल प्रश्नके उत्तरतककी नहीं थी। सामने जो हो रहा था—सब देख रहे थे। कुलवधू और उनके साथ भारतीय अस्मिताको नष्ट करनेका कुकृत्य वस्तुतः अधर्मके साथ-साथ घोर अपराध भी था। उस समयका धर्म यही था—इस अधर्मको रोकना, अबलाकी लाज बचाना।

द्रौपदीने इसी हेतुसे सबकी ओर देखा, कोई साथ देनेकी स्थितिमें नहीं। पाँचों पति भी नीचे मुँह किये रहे। अपना प्रयास किया—वह भी विफल होता दिखा। '***निर्बल के बल राम***' का भाव स्मृति-पटलपर आशाकी किरण बनकर आया। विश्वास जागा। जहाँ संसारसे आशा टूटती है, कोई आस-विश्वासकी कसौटीपर खरा नहीं उतरता (जैसा संसारका स्वभाव है), वहीं मन एकनिष्ठ परमात्माकी ओर आगे बढ़ता है। इसी अवस्थामें 'विषादसे योग' की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। सब ओरसे निराश द्रौपदीने पुकारा—

गोविन्द द्वारकावासिन् कृष्ण गोपीजनप्रिय॥
कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव।
हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन।
कौरवार्णवमग्नां मामुद्धरस्व जनार्दन॥
कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वभावन।
प्रपन्नां पाहि गोविन्द कुरुमध्येऽवसीदतीम्॥

(महा०, सभा० ६८। ४१—४३)

हे गोविन्द! हे द्वारकावासी श्रीकृष्ण! हे गोपाङ्गनाओंके प्राणवल्लभ केशव! कौरव मेरा अपमान कर रहे हैं, क्या आप नहीं जानते? हे नाथ! हे रमानाथ! हे व्रजनाथ! हे संकटनाशन जनार्दन! मैं कौरवरूपी समुद्रमें डूबी जा रही हूँ, मेरा उद्धार कीजिये।

सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण! महायोगिन्! विश्वात्मन्! विश्वभावन! गोविन्द! कौरवोंके मध्य कष्ट पाती मुझ शरणागत अबलाकी रक्षा कीजिये। पुकार अन्तर्मनकी गहराईसे हो और वह भी भाव सच्चा तथा विश्वास पक्का हो तो ऐसी स्थितिमें पुकार न सुनी जाय, ऐसा हो नहीं सकता। **'परित्राणाय साधूनाम्'** (सज्जनोंकी रक्षा) तो श्रीभगवान्‌के अवतारका स्पष्ट उद्घोष ही है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

(गीता ४।७)

हे भारत! जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब-तब मैं साकाररूपमें प्रकट होता हूँ।

धर्मके विषयमें भले ही सब मौन थे, लेकिन ऐसी विकट स्थितिमें धर्मरक्षक परमात्मा कैसे मौन रह सकते थे? एक अबलापर अत्याचार, आर्त पुकार, अनीति-अधर्मका साम्राज्य, एक ओर दस हजार हाथियोंका बल रखनेवाला दुःशासन, उसका दुस्साहसपूर्ण अहंकार और दूसरी ओर अबला द्रौपदीका विश्वास। विश्वास श्रीभगवान्‌के वस्त्रावताररूपमें विजयी हुआ। प्रह्लादके लिये नृसिंहावतार लेनेवाले, कुएँमें गिरने जा रहे सूरदासके लिये अकस्मात् गोपालरूपमें प्रकट होकर हाथ थामनेवाले, नरसीके लिये सांवलशाह बनकर भात भरनेवाले, मीराके लिये विषमेंसे भी अमृत बनकर प्रकट होनेवाले आज एक नये रूपमें पूरी कुरुसभाको अचम्भित कर रहे थे। द्रौपदीकी लाजकी रक्षाके लिये भगवान् वस्त्रावतार लेकर प्रकट हुए। ढेर लग गया वस्त्रोंका। पूरी सभा ढक गयी। द्रौपदीके लाजकी रक्षा हुई। दुःशासनका अहंकार पछाड़ खाकर गिरा। सब देखते रह गये, भौचक्के अचम्भित, कुछ-कुछ लज्जित। **'धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे'** के उद्घोषकने स्पष्ट दिखा दिया कि उनकी घोषणा केवल घोषणा नहीं, भक्तकी लाजकी रक्षा अथवा भावरक्षाके लिये, धर्म-मर्यादाओंकी रक्षाके लिये वे कहीं भी, कभी और किसी भी रूपमें प्रकट हो सकते हैं।

~~~०~~~

'अश्वत्थः सर्ववृक्षाणाम्'

(डॉ० श्रीमती पुष्पाजी मिश्रा, एम्०ए० (द्वय), पी-एच्०डी०)

'अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः।'

(गीता १०।२६)

'वनस्पतीनामश्वत्थ ओषधीनामहं यवः॥'

(श्रीमद्भा० ११।१६।२१)

भगवान् श्रीकृष्ण गीतामें कहते हैं कि वे समस्त वृक्षोंमें पीपलके वृक्ष हैं और देवर्षियोंमें नारद हैं। पुनः श्रीमद्भागवतमें वे कहते हैं—वनस्पतियोंमें मैं पीपल और धान्योंमें यव (जौ) हूँ।

ऋग्वेदमें जिज्ञासा की गयी है—

किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस
यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु
तद् यदध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन्॥

(१०।८१।४)

वह कौन-सा वन था और कौन-सा वृक्ष था, जिसको गढ़-छीलकर यह द्युलोक और पृथ्वी बनायी गयी है? हे मनीषियो! अपने मनमें उस तत्त्वका विचार करो, जिसने भुवनोंको धारण कर रखा है और जो सबका अधिष्ठाता है।

इस प्रश्नका उत्तर तैत्तिरीयब्राह्मणमें इस प्रकार मिलता है—

ब्रह्म वनं ब्रह्म स वृक्ष आसीत्
यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः।
मनीषिणो मनसा विब्रवीमि वो
ब्रह्माध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन्॥

(२।८।९)

ब्रह्म ही वह वन है, ब्रह्म ही वह वृक्ष है, जिसको गढ़-छीलकर द्युलोक और पृथ्वीको बनाया गया है। हे मनीषियो! मैं अपने मनमें विचार कर कहता हूँ कि ब्रह्म ही लोकोंको धारण करते हुए इसका अधिष्ठाता है।

ब्रह्म ही संसारका उपादान और निमित्तकारण है। अतः ब्रह्मको कभी वन तो कभी वृक्षके नामसे सम्बोधित किया जाता है।

अध्यात्मरामायणमें ऐसा वर्णन मिलता है—
~~~

असदेव हि तत्सर्वं यथा स्वप्नमनोरथौ।
देह एव हि संसारवृक्षमूलं दृढं स्मृतम्॥

(अरण्यकाण्ड ४।२६)

मनुष्य जो कुछ सदा देखता और स्मरण करता है, वह सब स्वप्न और मनोरथोंके समान असत्य है। शरीर ही संसारवृक्षका दृढ़ मूल है।

संसारवृक्षकी जड़ ऊपरकी ओर है और शाखाएँ नीचेकी ओर हैं। पृथ्वीमें छिपी हुई इसकी जड़ अव्यक्तमूल प्रकृति है, जो अप्रत्यक्ष होनेसे सिर्फ आगम और अनुमानगम्य है।

श्रुति कहती है—

ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते।
तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन॥

(कठो० २।३।१)

ब्रह्म ही शाश्वत है, जो ऊपरकी ओर स्थित है। वृक्षकी प्रधान शाखा ब्रह्मा तथा अवान्तर शाखाएँ देवता, पितर, मनुष्य, पशु-पक्षी आदि क्रमसे नीचे हैं। व्यक्त एवं अव्यक्त रूपसे यह वृक्ष अपने कारणरूप ब्रह्ममें स्थित है तथा नित्य एवं सनातन है। इसका मूल कारण ही विशुद्ध तत्त्व ब्रह्म है। वही अमृत है तथा सभी लोक उसीमें स्थित तथा उसीके आश्रित हैं; कोई भी इसका अतिक्रमण नहीं कर सकता है।

अविद्याके कारण मनुष्य सदा सुख-दुःखसे युक्त होकर इस संसारमें फँसा हुआ है। ज्ञानी पुरुष इस संसारवृक्षको उच्छेद कर मुक्त हो जाते हैं। अज्ञानी मनुष्य इस वृक्षका उच्छेद नहीं कर पाते हैं। ज्ञानरूपी खड्गसे ही संसारवृक्षको छिन्न-भिन्न किया जा सकता है।

नरसिंहपुराणमें इस वृक्षका वर्णन इस प्रकार किया गया है—

अव्यक्तमूलप्रभवस्तस्मादग्रे तथोत्थितः।
बुद्धिस्कन्धमयश्चैव इन्द्रियाङ्कुरकोटरः॥
महाभूतविशाखश्च विशेषैः पत्रशाखवान्।
धर्माधर्मसुपुष्पश्च सुखदुःखफलोदयः॥

(श्रीनरसिंहपुराण १५।५-६)

यह संसारवृक्ष अव्यक्त ब्रह्मरूपी मूलसे प्रकट हुआ है। उन्हींसे प्रकट होकर हमारे सामने इस रूपमें खड़ा है। बुद्धि (महत्तत्त्व) उसका तना है, इन्द्रियाँ ही उसके अङ्कुर और कोटर हैं। पञ्चमहाभूत उसकी बड़ी-बड़ी डालियाँ हैं। धर्म-अधर्म उसके फूल हैं। उस वृक्षका फल सुख-दुःख है।

भगवान् श्रीकृष्ण गीतामें इस संसारवृक्षके सम्बन्धमें इस प्रकार उपदेश देते हैं—

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्॥
अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा
गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः।
अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि
कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके॥

(१५।१-२)

एक शाश्वत अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष है, जिसकी जड़ें ऊपरकी ओर हैं और शाखाएँ नीचेकी ओर हैं, पत्तियाँ वैदिक स्तोत्र हैं, जो इस वृक्षको जानता है, वह वेदोंका ज्ञाता है। इस वृक्षकी शाखाएँ ऊपर तथा नीचेकी ओर फैली हुई हैं तथा प्रकृतिके तीन गुणोंद्वारा पोषित हैं। इसकी शाखाएँ इन्द्रियोंके विषय हैं। इस वृक्षकी जड़ें नीचेकी ओर भी जाती हैं, जो सकाम कर्मोंसे बँधी हुई हैं।

जैसे जलाशयके किनारेके वृक्षका प्रतिबिम्ब जलाशयमें दिखता है, वैसे ही यह संसारवृक्ष पारलौकिक जगत्‌रूपी वृक्षका प्रतिबिम्बमात्र है। जो मनुष्य इस संसारवृक्षसे निकलना चाहता है, उसे ज्ञानके माध्यमसे इस वृक्षको जानना चाहिये। तदुपरान्त इस वृक्षसे सम्बन्ध-विच्छेद करना चाहिये। इस वृक्षकी शाखाएँ चतुर्दिक् फैली हुई हैं। निचला भाग जीवोंकी विभिन्न योनियाँ हैं। ऊपरी भाग जीवोंकी उच्च योनियाँ हैं, यथा—देव, गन्धर्व आदि। जिस प्रकार वृक्षका पोषण जलसे होता है, उसी प्रकार इस वृक्षका पोषण प्रकृतिके तीनों गुणों (सत्त्व, रज और तम)-से होता है। वृक्षकी टहनियाँ इन्द्रियविषय हैं और विभिन्न गुणोंके विकाससे हम विभिन्न प्रकारके इन्द्रियविषयोंका भोग करते हैं। इसकी सहायक जड़ें आसक्तियाँ तथा विरक्तियाँ हैं, जो विभिन्न प्रकारके कष्ट तथा इन्द्रियभोगके विभिन्न रूप हैं। वास्तविक जड़ (मूल) तो ब्रह्मलोकमें है, किंतु अन्य जड़ें मर्त्यलोकमें स्थित हैं। जब मनुष्य पुण्यकर्मोंका फल भोग चुका होता है तो वह पुनः इस धरापर आता है और फिर कर्म करता है। भगवान् श्रीकृष्ण

पुनः आगे कहते हैं—

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते
नान्तो न चादिर्न च सम्प्रतिष्ठा।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूल-
मसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा॥
ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं
यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये
यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी॥
(गीता १५। ३-४)

इस अश्वत्थ वृक्षका स्वरूप अनुभवसे परे है। इसका आदि भी समझसे परे है तथा आधार और अन्त कहाँ है, यह भी नहीं समझा जा सकता है। परंतु मनुष्यको चाहिये कि इसके दृढ मूलको विरक्तिके कुठार (कुदाल)-से क[ाट] गिराये। इसके उपरान्त ऐसे स्थानकी खोज करनी चाहि[ये] जहाँ जाकर लौटना नहीं पड़े तथा भगवत्प्राप्ति हो जाय। इ[स] प्रसंगमें 'असङ्ग' शब्द महत्त्वपूर्ण है। विषयभोगकी आसक्ति प्रबल होती है। इसलिये विवेकद्वारा वैराग्यको प्राप्त करना चाहिये। भगवान् ही उस वृक्षके आदिमूल हैं, जहाँसे सब कुछ निकल[ा] है। अतः भगवान्का अनुग्रह प्राप्त करनेके लिये केवल उनक[ी] शरण ग्रहण करनी चाहिये। भगवान्का कथन है—

'अहं सर्वस्य प्रभवः०' (गीता १०। ८)।

मैं प्रत्येक वस्तुका उद्गम हूँ। इस भौतिक अश्वत्थ वृक्षके बन्धनसे छूटनेके लिये भगवान्की शरण ग्रहण करनी चाहिये।

भगवान्का वाङ्मय-अवतार—श्रीमद्भागवत

(वैद्य श्रीसत्यनारायणजी शर्मा, भिषगाचार्य)

अवतारसे तात्पर्य है—**'अवति भक्तांस्तारयति पतितांश्चेति अवतारः।'** अर्थात् भक्तोंकी रक्षा करना और पापियोंका उद्धार करना अवतारका प्रयोजन है। भगवान्के असंख्य अवतार हैं—**'अवतारा ह्यसंख्येयाः'** (श्रीमद्भा० १। ३। २६)।

ब्रह्माजीने भगवान्की स्तुतिमें कहा है—

सुरेष्वृषिष्वीश तथैव नृष्वपि
तिर्यक्षु यादस्स्वपि तेऽजनस्य।
जन्मासतां दुर्मदनिग्रहाय
प्रभो विधातः सदनुग्रहाय च॥
(श्रीमद्भा० १०। १४। २०)

प्रभो! आप सारे जगत्के स्वामी और विधाता हैं। अजन्मा होनेपर भी आप देवता, ऋषि, मनुष्य, पशु-पक्षी और जलचर आदि योनियोंमें अवतार ग्रहण करते हैं— इसलिये कि इन रूपोंके द्वारा दुष्ट पुरुषोंका घमंड तोड़ दें और सत्पुरुषोंपर अनुग्रह करें।

श्रीमद्भागवत (१। ५। २०)-में **'इदं हि विश्वं भगवान्'** अर्थात् यह समस्त विश्व भगवान्का ही स्वरूप है—ऐसा बताया गया है। परमात्माका प्रथम अवतार विराट् पुरुष है। काल, स्वभाव, कार्य, कारण, मन, पञ्चमहाभूत, अहङ्कार, तीनों गुण, इन्द्रियाँ, ब्रह्माण्ड-शरीर, उसका अभिमानी, स्थावर और जङ्गम जीव—सब-के-सब उन अनन्त भगवान्के ही रूप हैं।

यह विराट् पुरुष ही प्रथम जीव होनेके कारण समस्त जीवोंका आत्मा, जीवरूप होनेसे परमात्माका अंश और प्रथम अभिव्यक्त होनेके कारण भगवान्का आदि अवतार है। यह समस्त भूतसमुदाय इसीमें प्रकाशित होता है। भूतसमुदायके साथ ही भगवान् अपनी महिमासे व्याप्त वाङ्मयमें भी प्रतिष्ठित होते हैं। श्रीमद्भागवत भगवान्का वाङ्मय अवतार ही है।

प्रभासक्षेत्रमें उद्धवजीने श्रीभगवान्से निवेदन किया कि भगवन्! आप अपने भक्तोंका कार्य पूर्ण करके निज धाम पधार रहे हैं तथा कलियुगका समय भी आ रहा है। ऐसी स्थितिमें भक्तजन आपके वियोगमें पृथ्वीपर कैसे रह सकेंगे? तब श्रीभगवान्ने अपनी सारी सत्ता श्रीमद्भागवतमें रख दी और वे अन्तर्धान होकर भागवतसमुद्रमें प्रवेश कर गये। इसलिये यह भगवान्की साक्षात् वाङ्मयी—शब्दमयी मूर्ति है। इसके सेवन, श्रवण, पठन अथवा दर्शनसे सारे पाप नष्ट हो जाते हैं—

स्वकीयं यद्भवेत्तेजस्तच्च भागवतेऽदधात्।
तिरोधाय प्रविष्टोऽयं श्रीमद्भागवतार्णवम्॥
तेनेयं वाङ्मयी मूर्तिः प्रत्यक्षा वर्तते हरेः।
सेवनाच्छ्रवणात्पाठाद्दर्शनात्पापनाशिनी॥
(श्रीमद्भा०माहा० ३। ६१-६२)

कौशिकसंहिताके श्रीमद्भागवत-माहात्म्य (६।५६—६०)-में भी श्रीमद्भागवतको भगवान्‌की शब्दमयी मूर्ति बताया गया है तथा भगवान्‌के अङ्ग-प्रत्यङ्गोंके रूपमें सुन्दर चित्रण किया गया है। यथा—

कृष्णस्य वाङ्मयी मूर्तिः श्रीमद्भागवतं मुने।
उपदिश्योद्धवं कृष्णः प्रविष्टोऽस्मिन्न संशयः॥
पादादिजानुपर्यन्तं प्रथमस्कन्ध ईरितः।
तदूर्ध्वं कटिपर्यन्तं द्वितीयस्कन्धमुच्यते॥
तृतीयो नाभिरित्युक्तश्चतुर्थ उदरं मतम्।
पञ्चमो हृदयं प्रोक्तं षष्ठः कण्ठं सबाहुकम्॥
सर्वलक्षणसंयुक्तं सप्तमो मुखमुच्यते।
अष्टमश्चक्षुषी विष्णोः कपोलौ भृकुटिः परः॥
दशमो ब्रह्मरन्ध्रञ्च मन एकादशः स्मृतः।
आत्मा तु द्वादशस्कन्धः श्रीकृष्णस्य प्रकीर्तितः॥

अर्थात् श्रीमद्भागवत भगवान् श्रीकृष्णकी वाङ्मयी मूर्ति है। भगवान् इसका उद्धवजीको उपदेश करके स्वयं भी इसीमें प्रवेश कर गये। श्रीभगवान्‌का पादारविन्दसे जानुपर्यन्त भाग प्रथम स्कन्ध है। जानुसे ऊपर कटिपर्यन्त द्वितीय स्कन्ध है। तृतीय स्कन्ध नाभि है। चतुर्थ स्कन्ध उदर है। पञ्चम स्कन्ध हृदय है। षष्ठ स्कन्ध बाहुओंसहित कण्ठभाग है। सप्तम स्कन्धको भगवान्‌का सर्वलक्षण-संयुक्त मुख बताया गया है। अष्टम स्कन्ध आँखें, नवम स्कन्ध कपोल और भृकुटि हैं। दशम स्कन्ध ब्रह्मरन्ध्र है, एकादश स्कन्ध भगवान्‌का मन है और द्वादश स्कन्धको भगवान्‌का आत्मा बताया गया है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवतके रूपमें भगवान्‌के स्वरूपका वर्णन किया गया है। यह भगवान्‌का सगुण-साकार दिव्य विग्रह ही है। कतिपय विद्वानोंकी मान्यता है कि श्रीमद्भागवतके प्रत्येक श्लोक श्रीकृष्ण हैं और उनका अर्थ श्रीराधाजी हैं। अतः श्रीमद्भागवत भगवान् श्रीराधाकृष्णका अवतार है।

~~ ० ~~

श्रीकृष्णकी आह्लादिनी शक्ति राधाजीका प्राकट्य

(श्रीगोपालदास वल्लभदासजी नीमा, बी०एस्-सी०, एल्-एल्०बी०)

'अनया राधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः'—इस वचनके द्वारा श्रीशुकदेवजीने श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धमें परोक्ष रूपसे श्रीराधिकाके दिव्य स्वरूपका दर्शन कराया है। जहाँ कृष्णकी सत्ता है, वहाँ श्रीराधिकाकी भी है। श्रीवृषभानुजा राधिका विधाताकी सृष्टिकी रचना नहीं, अपितु ब्रह्मसृष्टिबहिर्भूता हैं। सतत भगवद्ध्यानपरायण जगत्‌में यदि कोई है तो वे श्रीस्वामिनीजी ही हैं, जो संयोगकी अवस्थामें अविरल भगवद्‌रसका आस्वादन करती हैं और विप्रयोगकी अवस्थामें निरन्तर चिन्तनमें तल्लीन रहकर शृङ्गाररसके द्वितीय दलका अनुभव अधिगत करती हैं—*'श्यामा श्याम श्याम रटत पूछत सखियन सों श्यामा कहाँ गई री।'*

श्रीव्यासदास वर्णन करते हैं—

परम धन राधा नाम आधार।
जाहि पिया मुरली में टेरत सुमरत बारंवार॥
वेद मंत्र और जंत्र तंत्र में ये ही कियो निरधार।
श्रीशुक प्रगट कियो नहीं तातें जान सार को सार॥
कोटिन रूप धरे नंदनंदन तोऊ न पायो पार।
'व्यासदास' अब प्रगट बखानत डार भार में भार॥

'धन' कृष्ण हैं, जैसा कि श्रीवल्लभाचार्यके शिष्य एवं अष्टछापके कवि परमानन्ददासने गाया है—***'यह धन धर्म ही ते पायो''' सो धन बार-बार उर अन्तर परमानंद विचारे॥'*** धन (कृष्ण)-के जीवन (प्राण)-का आधार परम धन राधा हैं। जिस प्रकार मकानका रक्षक आधार (नींव) होता है, ऐसे ही कृष्णका आधार—प्राणोंका स्तम्भ राधा-नाम है, जिसे वे मुरलीमें स्मरण करते हैं। राधा श्रीशुकदेवजीकी इष्ट हैं, यदि वे राधाका नाम प्रकटरूपसे लेते तो उन्हें समाधि लग जाती, फिर राजा परीक्षित्‌को भागवतरसका दान कैसे होता? अतः शुकदेवमुनिने भागवतमें प्रकट रूपमें राधा नाम नहीं लिया। रासलीलामें श्रीकृष्णने अनंत रूप धारण किये, लेकिन राधाकी सत्ताका पार कृष्ण नहीं पाते हैं। कृष्ण स्वयं राधाका चिन्तन करते हैं। जैसा कि अष्टछापके कवि गोविन्दस्वामीने गाया है—

स्मर बेग आवे स्वरूप तब सुधि न कछू तन की बिहारी।
रसना रटन तुव नाम राधे राधे 'गोविन्द' प्रभु पिय ध्यान सो भरत अँकवारी॥

इस प्रकार राधाके चिन्तनद्वारा ही कृष्णका चिन्तन किया जा सकता है; क्योंकि वे स्वयं श्रीराधिकाके हृदयसरोजमें विराजमान और तद्भावरूप हैं।

राधा जू के प्राण श्रीगोवर्धन धारी।
तरु तमाल ढिग कनक लता-सी हरि जू के प्राण राधिका प्यारी॥
मरकत मणी नंदलाल लाडिलो कंचन तन वृषभान दुलारी।
'सूरदास' प्रभु प्रीति निरन्तर जोरी युगल बने बनवारी॥

श्रीश्रीनाथजीका स्वरूप बाह्य रूपसे कृष्ण है एवं उनके हृदयसरोजमें श्रीराधिका ही हैं। यह स्वरूप कृष्ण-राधाकी प्रीतिका घनीभूत स्वरूप है। राधा पूर्ण शक्ति हैं—कृष्ण पूर्ण शक्तिमान् हैं। राधा मृगमदगंध हैं, कृष्ण मृगमद हैं; राधा दाहिका शक्ति हैं, कृष्ण साक्षात् अग्नि हैं; राधा प्रकाश हैं, कृष्ण तेज हैं; राधा व्याप्ति हैं, कृष्ण आकाश हैं राधा ज्योत्स्ना हैं, कृष्ण पूर्णचन्द्र हैं; राधा किरण हैं, कृष्ण सूर्य हैं; राधा तरंग हैं, कृष्ण जलनिधि हैं। इस प्रकार वे दोनों नित्य एकस्वरूप हैं, पर लीलारसके आस्वादनके लिये नित्य ही उनके दो रूप हैं। कृष्ण-राधा एक प्राण, किंतु दो वपु हैं।

श्रीनारायणप्रोक्त राधाके सोलह नाम निम्न हैं—

राधा रासेश्वरी रासवासिनी रसिकेश्वरी।
कृष्णप्राणाधिका कृष्णप्रिया कृष्णस्वरूपिणी॥
कृष्णवामाङ्गसम्भूता परमानन्दरूपिणी।
कृष्णा वृन्दावनी वृन्दा वृन्दावनविनोदिनी॥
चन्द्रावली चन्द्रकान्ता शरच्चन्द्रप्रभानना।

~~~ ० ~~~

भगवान् विष्णुका गदाधर-अवतार

(डॉ० श्रीराकेशकुमारजी सिन्हा 'रवि')

अन्तःसलिला फल्गुनदीके रमणीय तटपर श्रीविष्णु-पादालय एवं माता मङ्गलागौरीजीके दिव्य स्थानसे सुशोभित पितरोद्धारक तीर्थश्रेष्ठ गयाको भारतीय तीर्थोंमें उत्तमोत्तम स्थान प्राप्त है। गयामें भगवान् विष्णुके कितने ही रूपोंके मन्दिर प्राचीन कालसे प्रतिष्ठित हैं, उनमें प्रमुख है—श्रीगदाधरदेवका स्थान। भगवान् विष्णुके गदाधररूपके अवतरण-स्थल गयाको श्राद्ध एवं पिण्डदानका प्रशस्त-स्थल कहा गया है। यहाँ एक विशाल मन्दिर भी विराजमान है, जो गदाधर-मन्दिर कहलाता है।

जगन्नियन्ता देव श्रीविष्णुके दशावतारों एवं चौबीस अवतारोंके अतिरिक्त एक अन्य अवतारकी चर्चा प्रायः धर्मसाहित्यमें आती है, वह है—जगत्‌के पालनहार विष्णुजीका गदाधररूप। भक्तोंकी आस्था है कि सभी अवतारोंके बाद भी इहलोकमें अपने शेष कार्योंको पूर्ण करनेके उद्देश्यसे कलियुग प्रारम्भ होनेके ठीक पूर्वकालमें भगवान्‌ने अपने जिस नामसे जगत्‌का उद्धार किया, वह 'गदाधर' कहलाता है और उनकी अवतारस्थलीको 'गया' कहा गया है।

इस सम्बन्धमें एक महिमामयी रोचक कथा पुराणोंमें प्राप्त होती है, जिसमें बताया गया है कि प्राचीनकालमें गय नामका एक असुर था, जो केवल तपस्यामें ही प्रीति रखता था। वह दीर्घकालतक निष्कामभावसे तप करता रहा। भगवान् नारायणने उसे वरदान दिया कि उसकी देह समस्त तीर्थसे भी अधिक पवित्र हो जाय। इस वरदानके पश्चात् भी असुर तपस्या करता ही रहा। उस तपसे त्रिलोकी संतप्त होने लगी। देवता संत्रस्त हो उठे। अन्तमें भगवान् विष्णुके आदेशसे ब्रह्माजीने गयके पास जाकर यज्ञ करनेके लिये उसकी देह माँगी। गय सो गया और उसके शरीरपर यज्ञ किया गया, किंतु यज्ञ पूरा होनेपर असुर फिर उठने लगा। उस समय देवताओंने धर्मव्रती शिला गयासुरके ऊपर रख दी। इतनेपर भी असुर उठने लगा तो स्वयं भगवान् विष्णु गदाधरके रूपमें उसके ऊपर स्थित हो गये। अन्य देवता भी वहाँ प्रतिष्ठित हो गये। श्रीगदाधरकी कृपासे यह अवतरणस्थली 'गया' नामक पुण्यक्षेत्र हो गयी।

वायुपुराणसे स्पष्ट होता है कि गयातीर्थ गयागय, गयादित्य, गायत्री, गदाधर, गया एवं गयासुर—इन छः रूपोंमें मुक्तिदायक है—

गयागयो गयादित्यो गायत्री च गदाधरः॥
गया गयासुरश्चैव षड्गया मुक्तिदायकाः।
(१११।५२-५३)
~~~

मोक्षभूमि गयाके छः मुक्तिदायी स्थलोंमें गदाधर भी एक है। जहाँतक गदाधर नामके आशयकी बात है तो वायुपुराण (१०५।६०)-से स्पष्ट होता है कि 'हरिको आदिगदाधर इसीलिये कहा जाता है कि उन्होंने सर्वप्रथम गदाको धारण किया, जिसके आश्रयसे विष्णुभक्त गयासुरके चलायमान शरीरको स्थिर किया गया।' ऐसा भी कहा गया है कि गदा नामक असुरकी अस्थियोंसे बने अस्त्रको सर्वप्रथम धारण करनेके कारण विष्णुजीका नाम 'गदाधर' है। गयातीर्थकी पुण्यतोया फल्गुको भी जलधाराके रूपमें आदिगदाधर कहा गया है।

विद्वज्जनोंकी मान्यता है कि गयाकी भूमि ज्ञानभूमि है और यह आदिविद्याका क्षेत्र है तथा पितृकर्मके लिये सर्वोत्तम स्थल है। भगवान्‌ने यहाँ गदाधरके रूपमें अवतार धारण किया।

गयामें श्रीविष्णुपद-मन्दिरके निचले ढलानमें फल्गुजीके पार्श्वमें गदाधरदेव-मन्दिर है, जिसे आदिगदाधर अथवा गयागजाधर भी कहा जाता है। यहाँ गर्भगृहमें विष्णुभगवान्‌के गदाधररूपका एक प्रभावोत्पादक विग्रह है। मन्दिर-क्षेत्रसे प्राप्त शिलालेख स्पष्ट करते हैं कि पालनरेश गोविन्दपाल (११६१-११७५ ई०)-ने यहाँ गदाधर विष्णुमन्दिरका निर्माण कराया। आज भी यह मन्दिर-क्षेत्र गयाका एक प्रख्यात तीर्थ है। गयामें फल्गुजीके अनेक घाटोंमें एकका नाम 'गदाधर-घाट' होना इस बातका सूचक है कि यहाँ प्राचीनकालसे गदाधरजी पूजनीय रहे हैं।

भगवान् गदाधरकी इस अवतरणस्थलीके विषयमें कहा गया है कि गयामें ऐसा कोई स्थान नहीं है, जो तीर्थ न हो। यहाँ सभी तीर्थोंका सांनिध्य है; अतः गयातीर्थ सर्वश्रेष्ठ है। ब्रह्मज्ञान, कुरुक्षेत्रके वास तथा गोशालामें मरनेसे क्या लेना है, यदि पुत्र गया चला जाय और वहाँ पिण्डदान कर दे—

गयायां न हि तत् स्थानं यत्र तीर्थं न विद्यते।
सांनिध्यं सर्वतीर्थानां गयातीर्थं ततो वरम्॥
ब्रह्मज्ञानेन किं कार्यं गोगृहे मरणेन किम्।
वासेन किं कुरुक्षेत्रे यदि पुत्रो गयां व्रजेत्॥

(वायुपुराण १०४।४३, १५)

माता-पिता एवं अपने पूर्वज पितरोंकी सद्गतिके लिये पुत्रद्वारा गयामें पिण्डदान करनेका विशेष महत्त्व है तथा सत्-पुत्रके लिये यह अनिवार्य भी है। इसीलिये कहा गया है—

जीवतो वाक्यकरणात् क्षयाहे भूरिभोजनात्।
गयायां पिण्डदानाच्च त्रिभिर्पुत्रस्य पुत्रता॥

(श्रीमद्देवीभागवत ६।४।१५)

भगवान् गदाधर ही गयाके अधिष्ठातृ देवता हैं।

~~~ ○ ~~~

भगवान्‌का गरुडावतार

[सुपर्णोऽहं पतत्रिणाम्]

(श्रीमनीन्द्रनाथजी मिश्र 'श्रीकृष्णदास')

भगवान् श्रीहरिके वाहन और उनके रथकी ध्वजामें स्थित विनतानन्दन गरुड भगवान्‌की विभूति हैं। वे नित्यमुक्त और अखण्ड ज्ञानसम्पन्न हैं। उनका विग्रह सर्ववेदमय है, बृहत् और रथन्तर उनके पंख हैं, उड़ते समय जिनसे सामवेदकी ध्वनि निकलती रहती है। वे भगवान्‌के नित्य परिकर और भगवान्‌के लीलास्वरूप हैं। देवगण उनके परमात्मरूपकी स्तुति करते हुए कहते हैं—

खगेश्वरं शरणमुपागता वयं
महौजसं ज्वलनसमानवर्चसम्।
तडित्प्रभं वितिमिरमभ्रगोचरं
महाबलं गरुडमुपेत्य खेचरम्॥

(महाभारत, आदिपर्व २३।२२)

अर्थात् आप ही सभी पक्षियों एवं जीवोंके ईश्वर हैं। आपका तेज महान् है तथा आप अग्निके समान तेजस्वी हैं। आप बिजलीके सदृश चमकते हैं। आपके द्वारा अविद्याका नाश होता है। आप बादलोंकी भाँति आकाशमें स्वच्छन्द विचरण करनेवाले महापराक्रमी गरुड हैं। हम सभी आपके शरणागत हैं।

श्रीमद्भागवतमें भगवान्‌का कथन है—**'सुपर्णोऽहं पतत्रिणाम्'** (श्रीमद्भा० ११।१६।१५) पक्षियोंमें मैं गरुड हूँ। श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् कहते हैं—**'वैनतेयश्च पक्षिणाम्'** (गीता १०।३०) अर्थात् पक्षियोंमें मैं विनताका पुत्र गरुड हूँ।

गरुडजीका आविर्भाव—सत्ययुगकी बात है, दक्ष प्रजापतिकी दो कन्याएँ थीं—कद्रू और विनता। इन दोनोंका
~~~

विवाह महर्षि कश्यपसे हुआ। महर्षि कश्यपने दोनों धर्मपत्नियोंको प्रसन्नतापूर्वक वर देते हुए कहा—तुममें जिसकी जो इच्छा हो, वर माँग लो। कद्रूने तेजस्वी एक हजार नागोंको पुत्ररूपमें पानेका वर माँगा जबकि विनताने बल, तेज, पराक्रममें कद्रूके पुत्रोंसे श्रेष्ठ केवल दो ही पुत्र माँगे। 'तुम दोनों यत्नपूर्वक अपने-अपने गर्भकी रक्षा करना'—कहकर महर्षि कश्यप वनमें चले गये। कद्रूने एक हजार तथा विनताने मात्र दो अण्डे दिये। कद्रूके पुत्र अण्डोंसे निकल गये, परंतु विनताके दोनों अण्डोंसे कोई बच्चा बाहर नहीं निकला। विनताने उत्सुकतावश एक अण्डेको तोड़ दिया और देखा कि उसके पुत्रके शरीरका ऊपरी भाग तो विकसित हुआ है, परंतु निचला भाग अविकसित है। उस बालक अरुणने क्रोधमें आकर शाप दिया कि चूँकि उसने उसके शरीरके विकासमें बाधा पहुँचायी है, अतः वह कद्रूकी दासी बनेगी। परंतु यह भी कहा कि दूसरे अण्डेसे जो बच्चा निकलेगा, वह उसे शापमुक्त करेगा। शर्त यह है कि वह धैर्यपूर्वक अण्डेसे बालकके निकलनेकी प्रतीक्षा करे। यह कहकर अरुण आकाशमें उड़ गये। अरुण ही सूर्यदेवके रथके सारथी बन गये।

तदनन्तर समय पूरा होनेपर सर्पसंहारक गरुडजीका जन्म हुआ।

गरुडजीकी तेजोमयी कान्ति—गरुडजी जन्मसे ही महान् साहस और पराक्रमसे सम्पन्न थे। उनके तेजसे सम्पूर्ण दिशाएँ प्रकाशित हो रही थीं। उनमें अपनी इच्छासे नाना रूप धारण करनेकी क्षमता भी थी। उनका प्राकट्य आकाशचारी पक्षीके रूपमें ही हुआ। वे जलती हुई अग्निके समान उद्भासित होकर प्रलयकालकी अग्निके समान प्रज्वलित एवं प्रकाशित हो रहे थे। उनका शरीर थोड़ी ही देरमें विशाल हो गया तथा भयंकर आवाजके साथ वे आकाशमें उड़ गये। सभी देवतागण भगवान्‌के रूपमें उनकी स्तुति करने लगे—

त्वं प्रभुस्तपनः सूर्यः परमेष्ठी प्रजापतिः।
त्वमिन्द्रस्त्वं हयमुखस्त्वं शर्वस्त्वं जगत्पतिः॥
त्वं मुखं पद्मजो विप्रस्त्वमग्निः पवनस्तथा।
त्वं हि धाता विधाता च त्वं विष्णुः सुरसत्तमः॥

(महा०आदिपर्व २३।१६—१७)

आप ही प्रभु, तपन, सूर्य, परमेष्ठी और प्रजापति हैं। आप ही इन्द्र, हयग्रीव, शिव तथा जगत्पति हैं। आप ही भगवान्‌के मुखस्वरूप ब्राह्मण, पद्मयोनि ब्रह्मा तथा विज्ञानवान् विप्र हैं। आप ही अग्नि, वायु, धाता, विधाता तथा देवश्रेष्ठ श्रीविष्णु हैं।

खगश्रेष्ठ! आप अग्निके समान तेजस्वी इस रूपको शान्त कीजिये। क्रोधमें भरे हुए यमराजके समान आपकी कान्ति देखकर हमारा मन चञ्चल हो रहा है। आप अपना तेज समेटकर हमारे लिये सुखदायक हो जाइये। देवताओंकी स्तुति सुनकर गरुडजीने अपने तेजको समेट लिया।

माताकी दासत्वमुक्तिहेतु अमृत लाना—गरुडकी माता विनता सर्पोंकी माता कद्रूकी दासी थीं। इससे गरुडको बहुत दुःख था, उन्होंने सर्पोंसे अपनी माताको दास्य भावसे छुड़ानेके लिये शर्त जाननी चाही। इसपर सर्पोंने कहा कि यदि तुम हमें अमृत लाकर दे दो तो तुम्हारी माँ दास्य भावसे मुक्त हो जायगी। अतः गरुडने अमृतकलश लानेका निश्चय किया। अमृतकलश इन्द्रद्वारा रक्षित था, जिसकी देवगण रक्षा कर रहे थे। देवगुरु बृहस्पतिजीने सभी देवताओंको यह कहकर सतर्क किया कि पक्षिराज गरुड महान् शक्तिशाली हैं, वे अमृतका हरण करने आ रहे हैं। देवगुरु बृहस्पतिजीकी बात सुनकर सभी देवता युद्ध करनेके लिये तैयार हो गये किंतु पक्षिराज गरुडको देखकर वे काँप उठे। विश्वकर्मा अमृतकी रक्षा कर रहे थे, परंतु गरुडजीसे युद्धमें वे पराजित हो गये। पक्षिराज गरुडने अपने पंखोंसे धूल उड़ाकर समस्त लोकोंमें अन्धकार कर दिया। देवगणोंको अपनी चोंचसे बेधकर घायल कर दिया। इसके उपरान्त गरुडजीने अपना लघु रूप बनाकर अमृतका हरण कर लिया। पक्षिराज गरुडको अमृतका अपहरण कर ले जाते देख इन्द्रने रोषमें भरकर वज्रसे उनपर प्रहार किया। विहंगप्रवर गरुडने वज्रसे आहत होकर भी हँसते हुए कहा—देवराज! जिनकी हड्डीसे यह वज्र बना है, उन महर्षिका मैं सम्मान करता हूँ। शतक्रतो! उन महर्षिके साथ-ही-साथ आपका भी सम्मान करता हूँ, इसलिये अपना एक पंख, जिसका आप अन्त नहीं पा सकेंगे,को मैं त्याग देता हूँ। आपके वज्रसे मैं आहत नहीं हुआ हूँ। उस गिरे हुए पंखको देखकर लोगोंने कहा—

सुरूपं पत्रमालक्ष्य सुपर्णोऽयं भवत्विति।
तद् दृष्ट्वा महदाश्चर्यं सहस्राक्षः पुरन्दरः।
खगो महदिदं भूतमिति मत्वाभ्यभाषत॥

(महा०आदिपर्व ३३।२४)

जिसका यह सुन्दर पंख है, वह पक्षी सुपर्ण नामसे

विख्यात हो। वज्रकी असफलता देख सहस्रनेत्रवाले इन्द्रने मन-ही-मन विचार किया—अहो, यह पक्षिरूपमें कोई महान् प्राणी है। यह सोचकर इन्द्रने कहा—

बलं विज्ञातुमिच्छामि यत्ते परमनुत्तमम्।
सख्यं चानन्तमिच्छामि त्वया सह खगोत्तम॥

(महा०आदिपर्व ३३। २५)

विहंगप्रवर! मैं आपके बलको जानना चाहता हूँ और आपके साथ ऐसी मैत्री स्थापित करना चाहता हूँ, जिसका कभी अन्त न हो।

गरुडजीने कहा—

कामं नैतत् प्रशंसन्ति सन्तः स्वबलसंस्तवम्।
गुणसंकीर्तनं चापि स्वयमेव शतक्रतो॥

(महा०आदिपर्व ३४। २)

शतक्रतो! साधु पुरुष स्वेच्छासे अपने बलकी प्रशंसा तथा अपने ही मुखसे अपने गुणोंका बखान अच्छा नहीं मानते, किंतु सखे! तुमने मित्र मानकर पूछा है, इसलिये मैं बता रहा हूँ—

सपर्वतवनामुर्वीं ससागरजलामिमाम्।
वहे पक्षेण वै शक्र त्वामप्यत्रावलम्बिनम्॥
सर्वान् सम्पिण्डितान् वापि लोकान् सस्थाणुजङ्गमान्।
वहेयमपरिश्रान्तो विद्धीदं मे महद् बलम्॥

(महा०आदिपर्व ३४। ४, ५)

अर्थात् हे इन्द्र! पर्वत, वन और समुद्रके जलसहित सारी पृथ्वीको तथा इसके ऊपर रहनेवाले आपको भी अपने एक पंखपर उठाकर मैं बिना परिश्रमके उड़ सकता हूँ अथवा सम्पूर्ण चराचर लोकोंको एकत्र करके यदि मेरे ऊपर रख दिया जाय तो मैं सबको बिना परिश्रमके ढो सकता हूँ। इससे तुम मेरे महान् बलको समझ लो।

अमृत लेकर लौटते समय भगवान्‌से वरप्राप्ति— भगवान् विष्णुने गरुडजीके पराक्रमसे संतुष्ट होकर उन्हें वर माँगनेके लिये कहा। गरुडजीने वर माँगा—हे प्रभो!

मैं आपके ध्वजमें स्थित हो जाऊँ। हे भगवन्! मैं बिना अमृतपानके ही अजर-अमर हो जाऊँ। भगवान्‌ने एवमस्तु कहकर वर प्रदान किया। उसके उपरान्त गरुडजीने भगवान् विष्णुजीको वर माँगनेको कहा—

भगवान् विष्णुने वर माँगा—

तं वव्रे वाहनं विष्णुर्गरुत्मन्तं महाबलम्॥

(महा०आदिपर्व ३३। १६)

महाबली गरुत्मन्! आप मेरे वाहन हो जायँ।

इस प्रकार भगवान् विष्णुने गरुडको अपना वाहन बनाया और अपने ध्वजके ऊपर स्थान भी दिया।

अमृत प्राप्तकर गरुडजीने नागोंके सामने अमृत रखकर अपनी माता विनताको दासत्वमुक्त करा लिया।

~~~o~~~

अर्चावतार

विश्व-चराचरमें जो छाये, अखिल विश्वके जो आधार।
सदा सर्वगत, चलता जिनमें अखिल विश्वका सब व्यापार॥
कण-कणमें जो व्याप्त नित्य, है अणु-महान् जिनका विस्तार।
जिनसे कभी न खाली कुछ भी—सर्वरूप जो सर्वाकार॥
व्यक्ताव्यक्त सभी कुछ वे ही, वे ही निराकार-साकार।
लेते काष्ठ-धातु-पाषाण प्रतीकोंमें अर्चा-अवतार॥
उन प्रभुको भज सकते सब ही निज-निज भाव-सुरुचि अनुसार।

~~~o~~~

भगवती मूलप्रकृतिका तुलसीरूपमें अवतरण

(पं० श्रीविष्णुदत्त रामचन्द्रजी दुबे)

नवनीरद-श्याम, कोटिकन्दर्पलावण्य-लीलाधाम, वनमालाविभूषित, पीताम्बरधारी भगवान् श्रीकृष्ण परब्रह्म परमात्मा हैं। प्रलयके समय सर्वबीजस्वरूपा प्रकृति इनमें ही लीन रहती है और सृष्टिके समय प्रकट होकर क्रियाशीला हो जाती है। सृष्टिके अवसरपर परब्रह्म परमात्मा स्वयं दो रूपोंमें प्रकट हुए—प्रकृति और पुरुष। परब्रह्म परमात्माके सभी गुण उनकी प्रकृतिमें निहित होते हैं। इन प्रकृतिदेवीके अंश, कला, कलांश और कलांशांश-भेदसे अनेक रूप हैं। भगवती तुलसीको प्रकृतिदेवीका प्रधान अंश माना जाता है। ये विष्णुप्रिया हैं और विष्णुको विभूषित किये रहना इनका स्वाभाविक गुण है। भारतवर्षमें वृक्षरूपसे पधारनेवाली ये देवी कल्पवृक्षस्वरूपा हैं। भगवान् श्रीकृष्णके नित्यधाम गोलोकसे मृत्युलोकमें इनका आगमन मनुष्योंके कल्याणके लिये हुआ है। ब्रह्मवैवर्तपुराण और श्रीमद्देवीभागवतके अनुसार इनके अवतरणकी दिव्य लीला-कथा इस प्रकार है—

भगवती तुलसी भगवान् श्रीकृष्णके नित्यधाम गोलोकमें तुलसी नामकी ही गोपी थीं। वे भगवान् श्रीकृष्णकी प्रिया, अनुचरी, अर्धाङ्गिनी और प्रेयसी सखी थीं। एक दिन वे भगवान् श्रीकृष्णके साथ रासमण्डलमें हास-विलासमें रत थीं कि रासकी अधिष्ठात्री देवी भगवती राधा वहाँ पहुँच गयीं और उन्होंने क्रोधपूर्वक इन्हें मानवयोनिमें उत्पन्न होनेका शाप दे दिया। गोलोकमें ही भगवान् श्रीकृष्णके प्रधान पार्षदोंमें एक सुदामा नामक गोप भी था। एक दिन उससे श्रीराधाजीकी सखियोंका कुछ तिरस्कार हो गया, अतः श्रीराधाजीने उसे दानवयोनिमें उत्पन्न होनेका शाप दे दिया।

कालान्तरमें भगवती तुलसीने भारतवर्षमें राजा धर्मध्वजकी पुत्रीके रूपमें जन्म लिया। अतुलनीय रूपराशिकी स्वामिनी होनेके कारण यहाँ भी उनका नाम 'तुलसी' ही पड़ा। उधर श्रीकृष्णका ही अंशरूप पार्षद सुदामा परम वैष्णव दानव दम्भके पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुआ और उसका नाम शङ्खचूड हुआ। उसे भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे पूर्वजन्मकी स्मृति थी। साथ ही वह दानवेन्द्र श्रीकृष्ण-मन्त्र और उन्हींके सर्वमङ्गलमय कवचसे सम्पन्न होनेके कारण त्रैलोक्यविजयी था।

भगवती तुलसीने भगवान् नारायणको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये बदरीवनमें अत्यन्त कठोर तपस्या की।

तुलसीकी घोर तपस्याको देखकर लोकपितामह ब्रह्माजीने उसे वर देते हुए कहा—तुलसी! भगवान् श्रीकृष्णके अङ्गसे प्रकट सुदामा नामक गोप जो उनका साक्षात् अंश ही है, राधाके शापसे शङ्खचूड नामसे दनुकुलमें उत्पन्न हुआ है। इस जन्ममें वह श्रीकृष्ण-अंश तुम्हारा पति होगा। इसके बाद वे शान्तस्वरूप नारायण तुम्हें पतिरूपसे प्राप्त होंगे। यही बातें ब्रह्माजीने शङ्खचूडसे भी कहीं और उन दोनोंका गान्धर्व-विवाह करा दिया।

परम सुन्दरी तुलसीके साथ आनन्दमय जीवन बिताते हुए प्रतापी राजाधिराज शङ्खचूडने दीर्घकालतक राज्य किया। देवता, दानव, असुर, गन्धर्व, किन्नर और राक्षस—सभी उसके वशवर्ती थे। अधिकार छिन जानेके कारण देवताओंकी स्थिति भिक्षुकों-जैसी हो गयी थी। वे ब्रह्माजीके पास जाकर अत्यन्त विलाप करने लगे। उनकी दयनीय दशा देखकर ब्रह्माजी उन सबको लेकर भगवान् शङ्करके पास गये। शिवजी उनकी बातें सुनकर ब्रह्माजी-सहित वैकुण्ठमें श्रीहरिके पास गये। वहाँ पहुँचकर ब्रह्माजीने बड़ी विनम्रतासे सम्पूर्ण परिस्थिति स्पष्ट की,

जिसे सुनकर भगवान् श्रीहरिने कहा—'हे ब्रह्मन्! शङ्खचूड पूर्वजन्ममें सुदामा नामक गोप था, वह मेरा प्रधान पार्षद था, श्रीराधाजीके शापसे उसे दानवयोनिकी प्राप्ति हुई है। वह अपने कण्ठमें मेरा सर्वमङ्गल नामक कवच धारण किये हुए है, उसके प्रभावसे वह त्रैलोक्यविजयी है। उसकी पत्नी तुलसी भी पूर्वजन्ममें गोलोकमें गोपी थी और राधाजीके शापसे मृत्युलोकमें अवतरित हुई है। वह परम पतिव्रता है, अत: उसके पातिव्रतके प्रभावसे भी शङ्खचूडको कोई मार नहीं सकता। परंतु तुलसी मेरी नित्यप्रिया है, अत: सर्वात्मरूप मैं उसके लौकिक सतीत्वको भंग करूँगा और ब्राह्मणवेशसे शङ्खचूडसे कवच माँग लूँगा, तब भगवान् शङ्कर मेरे दिये शूलके प्रहारसे उसका वध कर सकेंगे। तदनन्तर वह शङ्खचूड भी अपनी दानवयोनिको छोड़कर मेरे गोलोकधाममें पुन: चला जायगा। तुलसी भी शरीर त्यागकर पुन: गोलोकमें मेरी नित्य-प्रियाके रूपमें प्रतिष्ठित होगी।'

श्रीहरिका यह कथन सुनकर भगवान् शङ्कर शूल लेकर ब्रह्माजी और देवताओंसहित श्रीहरिको प्रणाम कर वापस चले आये। तब देवताओंने शङ्खचूडको युद्धके लिये ललकारा। श्रीहरिने अपने कथनानुसार वृद्ध ब्राह्मणका वेश धारण कर शङ्खचूडसे अपना सर्वमङ्गलकारी 'कृष्णकवच' माँग लिया और शङ्खचूडका स्वरूप धारण कर तुलसीसे हास-विलास किया, जिससे उसका सतीत्व भंग हो गया। उसी समय शङ्करजीने श्रीहरिके दिये त्रिशूलका प्रहार कर शङ्खचूडका वध कर दिया।

इधर जब तुलसीको श्रीहरिद्वारा अपने सतीत्व-भंग और शङ्खचूडके निधनकी जानकारी हुई तो उसने श्रीहरिको शाप देते हुए कहा—हे नाथ! शङ्खचूड आपका भक्त था, आपने अपने भक्तको मरवा डाला। आप अत्यन्त पाषाणहृदय हैं, अत: आप पाषाण हो जायँ। भगवान् श्रीहरिने उसके शापको स्वीकार करते हुए कहा—हे देवि! शङ्खचूड मेरे नित्यधाम गोलोकमें गया है; अब तुम भी यह शरीर त्यागकर गोलोकको जाओ। तुम्हारा यह शरीर नदीरूपमें परिणत होकर 'गण्डकी' के नामसे प्रसिद्ध होगा। मैं तुम्हारे शापको सत्य करनेके लिये भारतवर्षमें पाषाण (शालग्राम) बनकर तुम्हारे (गण्डकी नदीके) तटपर ही वास करूँगा। गण्डकी अत्यन्त पुण्यमयी नदी होगी और मेरे शालग्रामस्वरूपके जलका पान करनेवाला समस्त पापोंसे निर्मुक्त होकर विष्णुलोकको चला जायगा। हे देवि! तुम्हारे केशकलाप तुलसी नामक पवित्र वृक्ष होंगे। त्रैलोक्यमें देवपूजामें काम आनेवाले जितने भी पत्र-पुष्प हैं, उनमें तुलसी प्रधान मानी जायगी।

इस प्रकार लीलामय प्रभु भक्तोंके हितके लिये पाषाण (शालग्राम) और उनकी नित्यप्रिया तुलसी तुलसीवृक्षके रूपमें भारतवर्षमें अवतरित हुईं।

तुलसीके पत्तेसे टपकता हुआ जल जो अपने सिरपर धारण करता है, उसे गङ्गास्नान और दस गोदानका फल प्राप्त होता है। जिसने तुलसीदलके द्वारा सम्पूर्ण श्रद्धाके साथ प्रतिदिन भगवान् विष्णुका पूजन किया है, उसने दान, होम, यज्ञ और व्रत आदि सब पूर्ण कर लिये। तुलसीदलसे भगवान्‌की पूजा कर लेनेपर कान्ति, सुख, भोग-सामग्री, यश, लक्ष्मी, श्रेष्ठ कुल, सुशीला पत्नी, पुत्र, कन्या, धन, आरोग्य, ज्ञान, विज्ञान, वेद, वेदाङ्ग, शास्त्र, पुराण, तन्त्र और संहिता—सब करतलगत हो जाता है। तुलसीके मूलकी मृत्तिका जिसके अङ्गमें लगी हो, सैकड़ों पापोंसे युक्त होनेपर भी उसे यमराज देखनेमें समर्थ नहीं होते।

जैसे पुण्यसलिला गङ्गा मुक्ति प्रदान करनेवाली हैं, उसी प्रकार ये तुलसी भी कल्याण करनेवाली हैं। यदि मञ्जरीयुक्त तुलसीपत्रोंके द्वारा भगवान् श्रीविष्णुकी पूजा की जाय तो उसके पुण्यफलका वर्णन करना असम्भव है। जहाँ तुलसीका वन है, वहीं भगवान् श्रीकृष्णकी समीपता है तथा वहीं ब्रह्मा और लक्ष्मीजी सम्पूर्ण देवताओंके साथ विराजमान हैं। इसलिये अपने निकटवर्ती स्थानमें तुलसीदेवीको रोपकर उनकी पूजा करनी चाहिये। तुलसीके निकट जो स्तोत्र-मन्त्र आदिका जप किया जाता है, वह सब अनन्तगुना फल देनेवाला होता है। जो तुलसीकी मञ्जरीसे विष्णु तथा शिवका पूजन करते हैं, वे नि:सन्देह मुक्ति पाते हैं, जो लोग तुलसी काष्ठका चन्दन धारण करते हैं, उनकी देहको पाप स्पर्श नहीं करते।

प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, भूत और दैत्य आदि सब तुलसीवृक्षसे दूर भागते हैं। ब्रह्महत्यादि पाप और खोटे विचारसे उत्पन्न होनेवाले रोग—ये सब तुलसी-

वृक्षके समीप नष्ट हो जाते हैं। जिसने भगवान्‌की पूजाके लिये पृथ्वीपर तुलसीका बगीचा लगा रखा है, उसने सौ यज्ञोंका अनुष्ठान पूर्ण कर लिया। जो भी भगवान्‌की प्रतिमाओं तथा शालग्राम शिलाओंपर चढ़े हुए तुलसीदलको प्रसादके रूपमें ग्रहण करता है, वह विष्णुके सायुज्यको प्राप्त होता है। जो श्रीहरिकी पूजा करके उन्हें निवेदन किये हुए तुलसीदलको अपने मस्तकपर धारण करता है, वह पापसे शुद्ध होकर स्वर्गलोकको प्राप्त होता है। कलियुगमें तुलसीका पूजन, कीर्तन, ध्यान, रोपण और धारण करनेसे वे पापको जला देती हैं तथा स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करती हैं। श्राद्ध और यज्ञ आदि कार्योंमें तुलसीका एक पत्ता भी महान् पुण्य प्रदान करनेवाला है। जिसने तुलसीकी शाखा तथा कोमल पत्तियोंसे भगवान् श्रीविष्णुकी पूजा की है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता। कोमल तुलसीदलोंके द्वारा प्रतिदिन श्रीहरिकी पूजा करके मनुष्य अपनी सैकड़ों और हजारों पीढ़ियोंको पवित्र कर सकता है। जो तुलसीके पूजन आदिका दूसरोंको उपदेश देता है और स्वयं भी आचरण करता है, वह भगवान् श्रीलक्ष्मी-पतिके परमधामको प्राप्त होता है। जिसने तुलसीकी सेवा की है, उसने गुरु, ब्राह्मण, तीर्थ और देवता—सबकी भलीभाँति सेवा कर ली है। तुलसीका नामोच्चारण करनेपर भगवान् श्रीविष्णु प्रसन्न होते हैं। जिसके दर्शनमात्रसे करोड़ों गोदानका फल प्राप्त होता है, उस तुलसीका पूजन और वन्दन लोगोंको अवश्य करना चाहिये। भगवान् विष्णुके नैवेद्यमें तुलसीपत्र अवश्य होना चाहिये। भगवान् विष्णु, एकादशीव्रत, गङ्गा, तुलसी, ब्राह्मण और गौएँ—ये मुक्तिप्रद हैं। ब्रह्मवैवर्तपुराण (प्रकृ० २२। ३३-३४)-में बताया गया है कि तुलसी-पूजनोपरान्त निम्नलिखित नामाष्टकका पाठ करनेसे अश्वमेधयज्ञके फलकी प्राप्ति होती है—

वृन्दा वृन्दावनी विश्वपूजिता विश्वपावनी।
पुष्पसारा नन्दिनी च तुलसी कृष्णजीवनी।
एतन्नामाष्टकं चैव स्तोत्रं नामार्थसंयुतम्।
यः पठेत्तां च सम्पूज्य सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥

तुलसी! तुम अमृतसे उत्पन्न हो और केशवको सदा ही प्रिय हो। कल्याणि! मैं भगवान्‌की पूजाके लिये तुम्हारे पत्तोंको चुनता हूँ। तुम मेरे लिये वरदायिनी बनो। तुम्हारे अङ्गोंसे उत्पन्न होनेवाले पत्रों और मञ्जरियोंद्वारा मैं सदा ही जिस प्रकार श्रीहरिका पूजन कर सकूँ, वैसा उपाय करो। पवित्राङ्गी तुलसी! तुम कलिमलका नाश करनेवाली हो—इस भावके मन्त्रोंसे जो तुलसीदलको चुनकर उनसे भगवान् वासुदेवका पूजन करता है, उसकी पूजाका करोड़ गुना फल होता है।

मुक्तिदायिनी श्रीगङ्गाजीका भूलोकपर अवतरण

(आचार्य डॉ० श्रीवागीशजी शास्त्री, वाग्योगाचार्य)

श्रीगङ्गाके प्रादुर्भावमें मूल कारण तपस्या है। भारतीय संस्कृतिमें तपके महत्त्वको सर्वोच्च माना गया है। तपद्वारा अनिर्वचनीय ऊर्जाका आविर्भाव होता है। राजा भगीरथने हजारों वर्षोंतक तपस्या कर ब्रह्माजीको प्रसन्न किया कि वे कमण्डलुके उस पवित्र जलकी कुछ बिन्दुओंका विसर्जन करें, जिन्हें उन्होंने वामनावतारके समय त्रिविक्रम वामनके ब्रह्माण्ड नापनेके लिये उठे चरणके अङ्गुष्ठनखसे विदीर्ण दो भागोंमें विभक्त हुए ब्रह्माण्डसे फूट पड़ी जलधाराके रूपमें कमण्डलुमें सञ्चित कर लिया था।

ब्रह्माजी राजा भगीरथकी दीर्घकालव्यापिनी तपस्यासे प्रसन्न हुए, किंतु उन्होंने भगीरथसे कहा कि कमण्डलुसे विसर्जित यह जलधारा पृथ्वीलोकतक जाते-जाते प्रबल जल-प्रवाहका रूप धारण कर लेगी। यदि इस प्रबल जल-प्रवाहको किसीने न रोका तो यह जलधारा पृथिवीका भेदन कर पातालमें प्रवेश कर जायगी। इसे पृथ्वीपर ले जानेका आपका प्रयत्न विफल होगा। इसलिये पहले एक ऐसे शक्तिशाली पुरुषको प्रस्तुत करें, जो इसके प्रबल वेगको रोक सकता हो। फिर उन्होंने बताया कि कैलासवासी शिवमें ही ऐसा सामर्थ्य है, अतः इसके लिये उन्हें आप प्रसन्न करें।

महादेव शिवको प्रसन्न करनेके लिये राजा भगीरथने तपस्या प्रारम्भ कर दी। सैकड़ों वर्षोंकी तपस्यासे शिव द्रवित हो गये। उन्होंने राजा भगीरथसे वर माँगनेके लिये कहा। राजा भगीरथने ब्रह्माजीद्वारा कमण्डलुसे विसर्जित विष्णुपदी (जलबिन्दुओं)-के प्रवाहको रोकनेकी प्रार्थना

की। महादेवजीकी स्वीकृति मिलनेपर राजा भगीरथ पुनः ब्रह्माजीकी शरणमें पहुँचे और उनसे प्रार्थना की कि वे कमण्डलुसे विष्णुपदी (जलबिन्दुओं)-को छोड़ें। उनके द्वारा कमण्डलुसे जलबिन्दुओंके छोड़नेपर ध्रुवचक्र और शिशुमारचक्रसे नीचे आते-आते बिन्दुओंने भीषण जलप्रवाहका रूप धारण कर लिया। इधर शिव उस प्रबल जलप्रवाहको रोकनेके लिये अपनी जटाएँ बिखेरकर खड़े हो गये। प्रबल प्रवाहमें परिणत विष्णुके उस चरणोदकने सोचा कि वह शिवको लपेटकर पाताललोकमें प्रविष्ट हो जाय, किंतु महादेव शिवकी जटाओंने विशाल विपिनरूपी कटाहका रूप धारण कर लिया कि जलका वह प्रबल प्रवाह एक वर्षतक शिवकी जटाओंके भीषण काननमें ही चक्कर काटता रहा।

महादेव शंकरको प्रसन्न करनेके लिये राजा भगीरथने पुनः तप करना प्रारम्भ किया। शिवने प्रसन्न होकर जटाओंकी एक लट खोल दी। उस अलक (जटा)-से निकलनेके कारण उस जलसमूहका नामकरण 'अलकनन्दा' हुआ। वह जलधारा हिमालयसे मंथर गतिपूर्वक पृथ्वीकी ओर प्रवाहित होने लगी, तब उसका नामकरण हुआ 'मन्दाकिनी'। मन्दाकिनीके मार्गमें जह्नुका यज्ञसम्भार पड़ा। वे उसे बहाकर ले जाने लगीं तो जह्नुने मन्दाकिनीका पान कर लिया। राजा भगीरथने उन्हें भी तपसे प्रसन्न किया। सुहोत्रसुत जह्नुने मन्दाकिनीको अपने दाहिने कानसे बाहर निकाल दिया।[1] हिमालयमें जह्नु-कन्दरासे होकर मन्दाकिनी प्रवाहित होती हैं। तब मन्दाकिनीका नामकरण 'जाह्नवी' हुआ। हिमालयसे पृथिवीपर आते ही जाह्नवीका नामकरण 'गङ्गा' हुआ—'**गाम्—पृथिवीम्, गा—गता—गङ्गा।**' तपःप्रसूत गङ्गाका यह इतिवृत्त किसे श्रद्धाभिभूत नहीं करता।

कपिलमुनिकी क्रोधाग्निसे सगरके साठ हजार पुत्र दग्ध हो गये थे। अपने उन पूर्वजोंको मुक्ति प्रदान करनेके लिये राजा भगीरथ अपने रथके पीछे-पीछे गङ्गाजीको लेकर गङ्गासागर पहुँचे। भस्मावशेष उनके पूर्वज गङ्गाके पवित्र जलका संस्पर्श पाकर मुक्त हो गये। भगीरथके रथका अनुवर्तन करनेवाली गङ्गाकी प्रसिद्धि 'भागीरथी'के नामसे हुई। गङ्गाके पृथिवीपर अवतरणकी तिथि उस समय मानी गयी है, जब सूर्यकी तिग्म किरणोंसे जीव-जन्तु त्रस्त हो रहे थे। ज्येष्ठमासमें सूर्य-किरणोंकी प्रखरता सर्वविदित है। इस मासके शुक्लपक्षकी हस्तनक्षत्रयुक्त दशमी गङ्गावतरणकी तिथि ठहरती है। इस तिथिपर गङ्गाजीमें स्नान, दान और सङ्कल्प आदि करनेसे दशविध पापोंका नाश होता है।[2] इस कारण इस पावन पर्वकी प्रसिद्धि 'गङ्गादशहरा'—दशविध पापोंको हरण करनेवाली गङ्गाके रूपमें है। यदि इस दिन गङ्गामें स्नान करनेवाला व्यक्ति दस प्रकारके दोषोंको त्याग करनेका सङ्कल्प ले ले तो न केवल वह स्वयं मुक्त होगा अपितु अन्य जनोंको भी दोषोंसे मुक्ति प्रदान करनेमें समर्थ हो सकेगा। वे दस प्रकारके दोष इस प्रकार हैं—

शारीरिक—कायिक दोष—(१) बिना दी हुई, अननुमित वस्तुओंको हड़प लेना, (२) अविहित हिंसा करना तथा (३) परस्त्रियोंसे अवैध सम्बन्ध बनाना।

वाचिक दोष—(१) कठोर वाणी बोलना, (२) असत्य भाषण करना, (३) चुगलखोरी करना तथा (४) अनर्गल बकझक करना।

मानसिक दोष—(१) पराये धनपर लालचका आना, (२) मन-ही-मन किसीके विरुद्ध अनिष्ट चिन्तन करना तथा (३) नास्तिक बुद्धि रखना—

अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः।
परदारोपसेवा च शारीरं त्रिविधं स्मृतम्॥
पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चापि सर्वशः।
असम्बद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम्॥
परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनम्।
वितथाभिनिवेशश्च त्रिविधं कर्म मानसम्॥

(मनु० १२।७, ६, ५)

पापविनाशिनी श्रीगङ्गाकी शरणमें आया प्रत्येक व्यक्ति सङ्कल्प लेकर कहे—हे गङ्गे! पूर्वजन्म या इस जन्ममें हुए मेरे इन दस प्रकारके पापोंका शमन हो; ऐसा सङ्कल्प लेनेपर स्वयंका और लोकका उद्धार हो सकता है।

~~~ ० ~~~

---

१. कई पुराणोंमें जह्नुऋषिकी जंघासे गंगाजीके प्राकट्यका वर्णन मिलता है—'ततो गङ्गातिवेगेन मुनिजङ्घाद्वहिर्गता।' (महाभागवतपुराण ७०।३३)

२. ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशमी हस्तसंयुता। हरते दश पापानि तस्माद् दशहरा स्मृता॥ (ब्रह्मपुराण)
~~~

नर्मदा-अवतार

(श्रीमती मधुलताजी गौतम, एम०ए० (हिन्दी))

इस ब्रह्मसृष्टिमें पृथ्वीपर नर्मदाका अवतरण तीन बार हुआ है। प्रथम बार पाद्मकल्पके प्रथम सतयुगमें, द्वितीय बार दक्षसावर्णि मन्वन्तरके प्रथम सतयुगमें और तृतीय बार वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तरके प्रथम सतयुगमें। तीनों बारकी नर्मदा-अवतरणकी कथाएँ इस प्रकार हैं—

प्रथम कथा—इस सृष्टिसे पूर्वकी सृष्टिमें समुद्रके अधिदेवतापर ब्रह्माजी किसी कारण रुष्ट हो गये और उन्होंने समुद्रको मानवजन्म-धारणका शाप दिया, फलतः पाद्मकल्पमें समुद्रके अधिदेवता राजा पुरुकुत्सके रूपमें पृथ्वीपर उत्पन्न हुए।

एक बार पुरुकुत्सने ऋषियों तथा देवताओंसे पूछा—'भूलोक तथा दिव्य लोकमें सर्वश्रेष्ठ तीर्थ कौन-सा है?'

देवताओंने बताया—'रेवा ही सर्वश्रेष्ठ तीर्थ हैं। वे परम पावनी तथा शिवको प्रिय हैं। उनकी अन्य किसीसे तुलना नहीं है।'

राजा बोले—तब उन तीर्थोत्तमा रेवाको भूतलपर अवतीर्ण करनेका प्रयत्न करना चाहिये। ऋषियों तथा देवताओंने अपनी असमर्थता प्रकट की। उन्होंने कहा—वे नित्य शिव-सांनिध्यमें ही रहती हैं। शंकरजी भी उन्हें अपनी पुत्री मानते हैं, वे उन्हें त्याग नहीं सकते।

लेकिन राजा पुरुकुत्स निराश होनेवाले नहीं थे। उनका संकल्प अटल था। विन्ध्यके शिखरपर जाकर उन्होंने तपस्या प्रारम्भ की। पुरुकुत्सकी कठोर तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान् शिव प्रकट हुए और उन्होंने राजासे वरदान माँगनेको कहा। पुरुकुत्स बोले—'परम तीर्थभूता नर्मदाका भूतलपर आप अवतरण करायें। उन रेवाके पृथ्वीपर अवतरणके सिवाय मुझे आपसे और कुछ नहीं चाहिये।'

भगवान् शिवने पहले राजाको यह कार्य असम्भव बतलाया, किंतु जब शंकरजीने देखा कि ये कोई दूसरा वर नहीं चाहते तो उनकी निस्पृहता एवं लोकमङ्गलकी कामनासे भगवान् भोलेनाथ बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने नर्मदाको पृथ्वीपर उतरनेका आदेश दिया।

नर्मदाजी बोलीं—'पृथ्वीपर मुझे कोई धारण करनेवाला हो और आप भी मेरे समीप रहेंगे, तो मैं भूतलपर उतर सकती हूँ।' शिवजीने स्वीकार किया कि 'वे सर्वत्र नर्मदाकी सन्निधिमें रहेंगे'। आज भी नर्मदाका हर पत्थर शिवजीकी प्रतिमाका द्योतक है तथा नर्मदाका पावन तट शिवक्षेत्र कहलाता है। जब भगवान् शिवने पर्वतोंको आज्ञा दी कि आप नर्मदाको धारण करें, तब विन्ध्याचलके पुत्र पर्यङ्कपर्वतने नर्मदाको धारण करना स्वीकार किया। पर्यङ्कपर्वतके मेकल नामकी चोटीसे बाँसके पेड़के अंदरसे माँ नर्मदा प्रकट हुईं। इसी कारण इनका एक नाम 'मेकलसुता' हो गया। देवताओंने आकर प्रार्थना की कि यदि आप हमारा स्पर्श करेंगी तो हमलोग भी पवित्र हो जायँगे। नर्मदाने उत्तर दिया—मैं अभीतक कुमारी हूँ, अतः किसी पुरुषका स्पर्श नहीं करूँगी, पर यदि कोई हठपूर्वक मेरा स्पर्श करेगा तो वह भस्म हो जायगा। अतः आपलोग पहले मेरे लिये उपयुक्त पुरुषका विधान करें। देवताओंने बताया कि राजा पुरुकुत्स आपके सर्वथा योग्य हैं, वे समुद्रके अवतार हैं तथा नदियोंके नित्यपति समुद्र ही हैं। वे तो साक्षात् नारायणके अङ्गसे उत्पन्न, उन्हींके अंश हैं, अतः आप उन्हींका वरण करें। नर्मदाने राजा पुरुकुत्सको पतिरूपमें वरण कर लिया, फिर राजाकी आज्ञासे नर्मदाने अपने जलसे देवताओंको पवित्र किया।

द्वितीय कथा—दक्षसावर्णि मन्वन्तरमें महाराज हिरण्यतेजाने नर्मदाके अवतरणके लिये १४ हजार वर्षतक तपस्या की। तपस्यासे संतुष्ट होकर भगवान् शिवने दर्शन दिया, तब हिरण्यतेजाने भगवान् शंकरसे नर्मदा-अवतरणके लिये प्रार्थना की। नर्मदाजीने इस मन्वन्तरमें अवतार लेते समय अत्यन्त विशाल रूप धारण कर लिया। ऐसा लगा कि वे द्युलोक तथा पृथ्वीका भी प्रलय कर देंगी। ऐसी स्थितिमें पर्यङ्कपर्वतके शिखरपर भगवान् शंकरके दिव्य लिङ्गका प्राकट्य हुआ। उस लिङ्गसे हुंकारपूर्वक एक ध्वनि निकली कि रेवा! तुम्हें अपनी मर्यादामें रहना चाहिये। उस ध्वनिको सुनकर नर्मदाजी शान्त हो गयीं और अत्यन्त छोटे रूपमें उस आविर्भूत लिङ्गको स्नान कराती हुई पृथ्वीपर प्रकट हो गयीं। इस कल्पमें जब वे अवतीर्ण हुईं तो उनके विवाहकी बात नहीं उठी; क्योंकि उनका विवाह तो प्रथम कल्पमें ही हो चुका था।

तृतीय कथा—इस वैवस्वत मन्वन्तरमें राजा पुरूरवाने नर्मदाको भूतलपर लानेके लिये तपस्या की। यह ध्यान देने योग्य है कि पुरूरवाने प्रथम बार अरणि-मन्थन करके अग्निदेवको प्रकट किया था और उन्हें अपना पुत्र माना था। वैदिक यज्ञ इस मन्वन्तरमें पुरूरवासे ही प्रारम्भ हुए। उससे पहले लोग ध्यान तथा तप करते थे।

पुरूरवाने तपस्या करके शंकरजीको प्रसन्न किया और नर्मदाके पृथ्वीपर उतरनेका वरदान माँगा। इस कल्पमें विन्ध्यके पुत्र पर्यङ्कपर्वतका नाम अमरकण्टक पड़ गया था; क्योंकि देवताओंको जो असुर कष्ट पहुँचाते थे, इसी पर्वतके वनोंमें रहने लगे थे। जब भगवान् शंकरके बाणसे जलकर त्रिपुर इस पर्वतपर गिरा तो उसकी ज्वालासे जलकर असुर भस्म हो गये।

नर्मदाके अवतरणकी यह कथा द्वितीय कल्पके ही समान है। इस बार भी नर्मदाने भूतलपर उतरते समय प्रलयङ्कारी रूप धारण किया था, किंतु भगवान् भोलेनाथने उन्हें अपनी मर्यादामें रहनेका आदेश दे दिया था, जिससे वे अत्यन्त संकुचित होकर पृथ्वीपर प्रकट हुईं।

व्रजमें गिरिराज गोवर्धनका अवतरण

(डॉ० श्रीताराचन्द्रजी शर्मा, एम्०ए०, पी-एच्०डी०, साहित्यरत्न, धर्मरत्न)

आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी जन्मभूमि, केलि-क्रीड़ा एवं लीलास्थली होनेका गौरव प्राप्त होनेसे व्रजभूमि भारतवर्षमें अति पावन है। इस व्रजभूमिमें गोपालकृष्णकी गौचारण-स्थली एवं गोचरभूमि गोवर्धनका अपना विशिष्ट महत्त्व है, जहाँ सात कोस (इक्कीस कि०मी०)-की परिक्रमावाला गिरिराज गोवर्धन स्वयं श्यामसुन्दरके स्वरूपमें विराजमान है। मथुरासे पश्चिम दिशामें लगभग अट्ठारह कि०मी०की दूरीपर अवस्थित यह गिरिराज गोवर्धनपर्वतके नामसे प्रसिद्ध है। श्रीगिरिराज महाराज कलियुगके प्रथम देव हैं और व्रजवासियोंके परम आराध्य हैं। यह मान्यता है कि गिरिराजजीकी शरणमें मनसे माँगी मनौती अवश्य पूर्ण होती है और शरणागतकी इच्छापूर्तिमें गिरिराजजी क्षणिक भी देर नहीं करते। अस्तु यह आज भी असंख्य जनताकी श्रद्धाके पात्र हैं। देशके विभिन्न भागोंसे करोड़ों नर-नारी गिरिराजजीकी परिक्रमाकर इनकी पावन रजको सिरपर धारण करके अपने जीवनको धन्य मानते हैं। यहाँ दिन-रात 'गिरिराज महाराजकी जय' के उद्घोषोंसे परिक्रमामार्ग गुँजित रहता है।

पूर्वकालमें यह पर्वत बहुत ऊँचा था; किंतु अब भूमिमें शनैः-शनैः अदृश्य होता जा रहा है। शास्त्रोंमें इनका तीन योजन ऊँचा होनेका प्रमाण प्राप्त होता है। इनकी ऊँचाई एवं विस्तारमें भौगोलिक क्षरण तथा अपक्षरणकी प्रक्रियाके कारण निरन्तर कमी होना स्वाभाविक है। श्रीकृष्ण-कालमें श्यामल गिरिकन्दराओंसे आच्छादित, मनमोहक हरित लताओं, सघन कुँज-निकुँजों, वन-उपवनों, श्वेत ताल-तलैयों तथा स्वच्छ झरनोंसे परिवेष्टित आनन्दकन्द योगिराज श्रीकृष्णकी रासक्रीड़ा-स्थली गिरिराजको भगवान् श्रीकृष्णने सात वर्षकी आयुमें इन्द्रके प्रकोपसे व्रजवासियोंकी रक्षाहेतु अपनी उँगलीपर उठाया और सप्ताहपर्यन्त धारण करके इन्द्रदेवका मान-मर्दन किया।

धार्मिक दृष्टिसे गिरिराजजीका प्राचीनकालसे ही व्रजमें सर्वाधिक गौरवपूर्ण स्थान और महत्त्व रहा है। व्रजमें मान्यता है कि इनकी पूजन-परिक्रमाके मन्त्र—'**गोवर्धन-गिरे तुभ्यं गोपानां सर्वरक्षकम्। नमस्ते देवरूपाय देवानां सुखदायिने**॥'-का दो सहस्र बार जप करके चार बार प्रदक्षिणा करनेपर सिद्धि अवश्य प्राप्त होती है। श्रीगिरिराजजीकी तलहटी एवं कन्दराओंमें भगवान् श्रीकृष्ण तथा श्रीराधाजीके विहार-स्थल रहे हैं। अतएव इस भूमिका विशेष महत्त्व है।

गिरिराज गोवर्धनके अवतरणके सम्बन्धमें गर्गसंहितामें उल्लेख है कि भारतके पश्चिमी भागमें स्थित शाल्मलि द्वीपमें पर्वतराज श्रीद्रोणाचलके घरमें उनकी पत्नीके गर्भसे श्रीगोवर्धननाथजीका जन्म हुआ। देवताओंने पुष्पवर्षा करके श्रीगोवर्धनजीकी वन्दना की। एक समय पुलस्त्य ऋषि
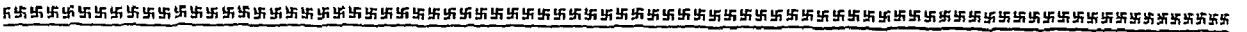
। करते हुए वहाँ गये। वहाँ नाना प्रकारके हरे-भरे लताओंसे परिपूरित सुन्दर श्यामल गोवर्धनको देखकर अपने स्थलपर स्थापित करनेकी प्रबल इच्छा जाग्रत् ायी; क्योंकि काशीके निकट कोई ऐसा पर्वत नहीं जहाँ शान्तिसे बैठकर वे भजन कर सकें। अतः ने द्रोणाचलजीसे गोवर्धनजीको देनेका अनुरोध किया। राज बाध्य होनेसे इन्कार नहीं कर सके। गोवर्धनजीने होकर ऋषिसे यह तय कर लिया कि मैं आपके ें रहकर ही चलूँगा और आप मुझे कहीं भी नीचे रख सकेंगे। यदि किसी प्रकार नीचे रख देंगे तो रह जाऊँगा और तिलभर भी आगे नहीं चलूँगा। त्यऋषिने इस शर्तको स्वीकारकर अपने हाथमें ानजीको रख काशीको प्रस्थान किया। मथुरा पहुँचनेतक गेरिराजजी हल्के रहे, किन्तु फिर इतने भारी हो कि ऋषि हाथमें रखनेमें असमर्थ हो गये और उन्हें ार रख दिया। सन्ध्या-वन्दन, स्नान तथा भोजनके न्त ऋषि चेष्टापूर्वक गिरिराजजीको उठाने लगे तो ाजजीने जानेसे इन्कार कर दिया। तब ऋषिने क्रुद्ध : यह शाप दे दिया कि तुम नित्य प्रति एक क समान घटते जाओगे। गिरिराजजीने ऋषिके शापको किया; क्योंकि उन्हें ज्ञात था कि श्यामसुन्दर ष्ण भगवान् व्रजमें अवतरित होकर विविध लीलाएँ , जिससे मैं कृतार्थ हो जाऊँगा।

वाराहपुराणमें वर्णन आता है कि भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी से श्रीहनुमान्जी उत्तराचलसे गोवर्धनजीको कन्धेपर र ला रहे थे तो देववाणी हुई कि समुद्रमें सेतु बन है। देववाणी सुन हनुमान्जीने इन्हें यहीं पृथ्वीपर रख । तब हरिभक्त गिरिराजजीने हनुमान्जीसे कहा— ने मुझे भगवान्‌के चरणचिह्नोंसे वंचित किया है, अतः ापको शाप दे दूँगा।' इसपर हनुमान्जी बोले—'हे र! क्षमा करें। जब इन्द्रकी पूजाका खण्डन करके ान् श्रीकृष्ण आपकी पूजा करवायेंगे तो इन्द्र कुपित व्रजमें उत्पात करने लगेगा। उस समय आप ासियोंके रक्षक होंगे। द्वापरके अन्त समयमें श्रीकृष्णजीका ार होगा वे ही आपकी इच्छाकी पूर्ति करेंगे।' ऐसा र हनुमान्जी आकाशमार्गसे श्रीरामजीके पास गये उन्हें सारा वृत्तान्त सुनाया। इसपर श्रीरामचन्द्रजीने कहा—'सेतुबन्धहेतु लाये गये ये सब पर्वत मेरे चरणस्पर्शसे विमुक्त हो गये, परंतु गोवर्धनको अपने हस्तकरतल तथा सर्वाङ्गस्पर्शसे पवित्र करूँगा। मैं वसुदेवके कुलमें जन्म लेकर व्रजमें विविध लीला करूँगा तथा गोवर्धनके ऊपर गौचारण, गोपियोंके संग अद्भुत विलासादिसे उसे हरिदासश्रेष्ठ बना दूँगा। व्रजमें गोवर्धन मेरी लीलाओंके परम सहायकरूपसे प्रसिद्ध होगा।'

गोवर्धनकी उत्पत्तिके बारेमें गर्गसंहितामें इस प्रकारसे भी कहा गया है कि कंससंतापके कारण जब देवताओंने प्रार्थना की तो श्रीकृष्णने व्रजके उद्धारहेतु अवतार धारण करनेकी इच्छा जब श्रीराधिकाजीको सुनायी तो वे बोलीं कि मैं आपका वियोग एक पल भी नहीं सह सकती। इसपर श्रीकृष्णने कहा कि आपको संग लेकर ही व्रजमें अवतार धारण करूँगा। इसपर श्रीराधिकाजीने कहा—प्राणनाथ! जहाँ वृन्दावन नहीं है, जहाँ यह यमुनानदी नहीं है तथा जहाँ गोवर्धनपर्वत नहीं है, वहाँ मेरे मनको सुख नहीं मिल सकता—

यत्र वृन्दावनं नास्ति न यत्र यमुना नदी।
यत्र गोवर्धनो नास्ति तत्र मे न मनःसुखम्॥

यह सुनकर श्रीकृष्णने अपने धाम गोलोकसे चौरासी कोस विस्तृत भूमि और गिरिराज गोवर्धन और यमुनानदीको भूतलपर भेज दिया।

भगवान् श्रीकृष्णके बाल्यकालतक समस्त व्रजवासी गोपी-ग्वाल, गौ-बछड़े लेकर कार्तिक अमावस्याकी लक्ष्मीपूजाके पश्चात् प्रतिपदाको सायंकाल विभिन्न पक्वान्नोंके साथ विधि-विधानसे मेघोंके राजा इन्द्रदेवका पूजन किया करते थे। यशोदामैया भी एक बार इस पूजाके लिये पक्वान्न बना रही थीं तो कृष्णकन्हैया खेलनेके उपरान्त आकर कलेऊ माँगने लगे। इसपर माँने कहा कि आज तो इन्द्रदेवताकी पूजा करके ही खानेको मिलेगा। यह सुनकर कन्हैया बोले—'मैया व्रज-गौओंका रखवाला तो गोवर्धन-बाबा है और यही देवता साँचो है, इन्द्र तो इनको चेरो है—

बाबा गोवर्धन साँचो देव हमारो।
गैया-बछड़ा, गोपी-ग्वाल सब व्रज को रखवारो॥

अस्तु गोप-ग्वालोंने अपने गौ-बछड़ोंको सजाकर और विविध पक्वान्नोंको लेकर गोवर्धनकी पूजा की। कृष्ण-कन्हैयाने गिरधारीरूप धारण कर सभी पक्वान्न खा लिये।

'स्वयं एक रूपते पुजे, एक सों ठाड़ौ गोवर्धन पुजवाये।'

इस बातसे इन्द्र बड़ा कुपित हुआ और अपने बादलोंसे इतना जल बरसानेको कहा, जिससे व्रज बह जाय। थोड़ी देरमें ही घनघोर वर्षा होने लगी। इसपर श्रीकृष्णने खेल-खेलमें ही गिरिराजपर्वतको अपनी उँगलीपर उठा लिया, जिससे समस्त गोप-गोपी, ग्वाल-बाल अपने गौ-बछड़ोंसहित इसके नीचे आ गये। सात दिन-रात निरन्तर मूसलाधार घनघोर बारिश होती रही, किंतु व्रजका कुछ भी नहीं बिगड़ा। इससे इन्द्र भगवान्‌को पहचान गया और ऐरावत हाथी तथा सुरभि गाय लेकर श्रीकृष्णके चरणोंमें आ पड़ा। सात दिनकी निरन्तर-भयानक वर्षाके प्रहारसे व्यथित व्रजवासियोंकी रक्षा नन्दके सुकुमार कृष्णने बायें हाथकी कनिष्ठा उँगलीपर गोवर्धनपर्वतको उठा करके ही की—

सात दिन-रात वर्षा बरसाई इन्द्र
छप्पन पहर गिरि रख्यौ नख कोर पै।

इन्द्रके मान-भंग और विपत्तिविमोचनके पश्चात् श्रीकृष्णके समझानेपर सभी व्रजवासी उमंगपूर्वक गिरिराज-पूजाकी घर-घर तैयारी करने लगे। व्रजके लोककवि बलवीरकी निम्नांकित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं, जहाँ जन-जनकी लाज रखनेवाले इस गिरिराजके सन्दर्भमें कहा गया है—

लाल बलवीर हसि कहौ नंदजू सौ जाय,
जनम भगोरा याकी सेवा कौन काज की।
राखे जन लाज, पूजै सदा शुभ काज
ऐसो है न जग दूजौ, पूजा कीजै गिरिराज की॥

कार्तिक शुक्ल प्रतिपदाके दिन जतीपुरामें अनेकानेक उत्सवोंके संग गोवर्धनपूजा अनूठे ढंगसे गाजे-बाजेसे होती है। यहाँ प्रात:कालसे ही गिरिराजजीके मुखारविन्दपर कुन्तलों दूध-दही चढ़ाया जाता है। इस समय भजन-कीर्तन-गान एवं बाजे बजनेसे अनुपम समाँ बँध जाता है। इस दिन छप्पन भोग अन्नकूटके दर्शन होते हैं। भक्तजन गिरिराजजीको दुग्धाभिषेक कराकर प्रसाद ग्रहण करके स्वयंको धन्य मानते हैं। गोवर्धनके दानघाटी मन्दिरमें भी नित्य गिरिराजजीपर दूध-दही चढ़ता है और बहुधा अन्नकूटके भव्य दर्शन होते रहते हैं। इन्द्र द्वारा श्रीकृष्णसे क्षमा माँगनेपर सुरभि गायद्वारा श्रीकृष्णके किये गये दुग्धाभिषेकके प्रतीकके रूपमें दूध चढ़ाया जाता है। जन-मानसमें यह विश्वास है कि गिरिराजके ध्यानसे मनवांछित फल प्राप्त होता है और सभी संकट कट जाते हैं। यह व्रजमें प्रचलित रसिया लोकगीतकी प्रस्तुत टेकसे परिलक्षित है—

अरी तेरे सब संकट कटि जायें,
पूजा गोवरधन की करिलै।

आज भी व्रजमण्डलमें कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा दीपावलीके अगले दिन गोवर्धनपूजाकी परम्परा है। इस दिन गोबरके गोवर्धनमय परकोटा, गाय, बछड़े, ग्वालिया आदि बनाकर मोर-पंखों, घुँघरुओं तथा रंगोंसे उन्हें सजाकर रात्रिमें परिवारके सभी जन एकत्रित हो पक्वान्नों, मिठाइयों, खिलौनों तथा दूध आदिसे पूजा करते हैं और सभी इसकी सात परिक्रमा करते हैं। व्रजमें इस दिन घर-घर अन्नकूट बनता है तथा अतिथियोंको बड़े प्रेमसे इस प्रसादको खिलाते हैं। गोवर्धनपूजाका यह महापर्व श्रद्धा-भक्तिके वातावरणमें नाना प्रकारसे गोवर्धन महाराजकी जय-जयकारके संग सम्पन्न होता है। इस समय गोवर्धन-महिमाके गीत गाये जाते हैं, यथा—

गोवरधन रे तू बड़ौ औरू तोते बड़ौ न रे कोय।
ऊँचौरे खैरो ररकनौ, औरू ररकत आवे रे गाय॥
श्रीगोवर्धन महाराज तेरे माथे मुकुट विराजि रह्यौ,
तौपे पान चढ़े तौपे फूल चढ़े औरू चढ़ै दूधकी धार, हाँ धार, तेरे माथे

इस गिरिराज पहाड़ीपर संवत् १५५० में एक भगवत्-स्वरूपका प्राकट्य हुआ, जिसे व्रजवासी देवदमनके नामसे पूजते हैं। संवत् १५५६ में श्रीमहाप्रभु वल्लभाचार्यके व्रजमें पुनः पदार्पण करनेपर व्रजवासियोंने उन्हें इस स्वरूपके दर्शन कराये। श्रीवल्लभाचार्यने इसका नाम

श्रीनाथ (श्रीगोवर्धननाथ) रखा। वल्लभकुल सम्प्रदायके जनक श्रीवल्लभाचार्यकी सात गद्दियोंमेंसे एक यह है।

व्रजकाव्यमें गिरिगोवर्धन-महिमाका अनुपम वर्णन करते हुए लोककवियोंने गिरिराजजीपर श्रद्धासुमन अर्पित किये। नाना प्रकारके शिखरोंसे सुशोभित यह गोवर्धनगिरि सभी कार्योंको सिद्ध कर लोगोंकी रक्षा करते हैं। गिरिराजकी विभिन्न रंगमयी शिखरोंकी आभाके लोकरंजक एवं लोकरक्षक दोनों ही रूप कविवर होतीरामके इस छन्दमें द्रष्टव्य हैं—

कोई शिखर नीली, कोई शिखर पीली,
कोई शिखर श्वेत श्याम, कोई शिखर लाल है।
कोई शिखर रंगम और कोई शिखर जंगम,
और कोई शिखर बेरिन की हननेको कराल है॥
कोई शिखर हरी खरी, कोई शिखर बैजनीऊ
और कोई शिखर परिचवै देत तत्काल है।
पढ़त होती राम सबकै सिद्धिकर देत करम,
धन्य गिरिराज राखे ब्रजवासिन ग्वाल है॥

समस्त तीर्थोंका मुख्य धाम और सभी देवोंका महान् टीका है यह गिरिराज, जहाँकी कन्दराओंमें श्यामाश्याम विराजते हैं और सखियोंसहित श्रीकृष्ण-बलराम खेलते हैं। प्रस्तुत छंदकी पंक्तियोंमें ऐसी ही छटा वर्णित है—

सृष्टि के अभीष्ट फल देवे कूँ तैसों तहाँ
इष्ट गिरजि सब देवन को टीकौ है।
राजै गिरि कन्दरा विराजै जहाँ श्यामाश्याम,
गोवरधन धाम परम धाम हूँ सौ नीकौ है।

गिरिगोवर्धनके अन्तर्गत श्रीकृष्णकी अनूठी लीलाओंके अनेक स्थल हैं, उदाहरणार्थ—विछुआकुण्ड, जान-अजानवृक्ष, मेंहदीकुण्ड, गोरोचनकुण्ड, ऋणमोचनकुण्ड इत्यादि। सब देवोंके देव श्रीगिरिराजकी पावन कन्दराओंका उपभोग वृजराजनन्दनन्दन करते हैं, जैसा कि इस छंदकी पंक्तिसे दृष्टिगत होता है—

सुर सिरताज सेवे, नंद महाराज सेवे,
सेवे व्रजराज गिरिवर की कंदला॥

इस गिरिवरपर श्रीकृष्ण-लीलाओंका एक प्रमुख स्थल दानघाटी है, जहाँ गोपाल कृष्णने ग्वालोंके संग गोपियोंसे मक्खन, दूध-दहीका दान लिया। *'जहाँ लैमत दान प्रसिद्ध वहाँ गिरिराज आजहूँ दान की घाटी।'* वर्तमानमें यहाँ गिरिवर दानघाटीका मनमोहक मन्दिर है। मानसी गंगाके भीतर श्रीमुकुटगिरिराजजीके मुखारविन्दका मन्दिर है, जिस तीन ओर मानसी गंगाका जल है, जो सायंकाल ऐसा प्रती होता है मानो श्रीगिरिराज स्वयं स्वरूप धारणकर किसी सुन्द नौकामें बैठकर जल-विहार कर रहे हों। हरगोकुलसे आ श्रीगिरिराजकी एक ऐसी शिला है, जो तीर्थयात्रियोंवे आकर्षणका मुख्य केन्द्र है। इस शिलाको दूरसे देखनेपर ऐस लगता है कि श्रीकृष्ण भगवान् अपनी एक टाँगको टेढ़ी करवे अपनी बाँकी अदामें वंशी बजा रहे हों।

व्रजकी मुकुटध्वजा श्रीगिरिगोवर्धन कोई सामान्य पर्वत नहीं, अपितु गिरिराज है, भगवान् श्रीकृष्णका साक्षात् स्वरूप है तथा कलिकालमें प्रत्यक्ष देवता हैं। यही गिरिराज महाराज श्रीकृष्णके रूपको धारण कर लेते हैं और भुजा पसारकर डटके भोजन करते हैं। इस श्याम छविके स्वरूपको ललिता सखी राधिकाजीसे बतलाती हैं। गिरिराजजीका यही रूप भक्तिकालके सम्राट् महाकवि सूरदासके पदकी इन पंक्तियोंमें वर्णित है—

गिरिवर श्याम की अनुहारि।
करत भोजन अति अधिकाई सहज भुजा पसारि॥
नन्द के कर गहै ठाड़ौ यह गिरि को रूप।
सखि ललिता राधिका सौं कहत यहै स्वरूप॥
यहै यहै माता यहै है पीत की छोर।
शिखर शोभा श्याम की छवि श्याम छवि गिरिमौर॥

'ललित ब्रज देश गिरिराज राजे।' ऐसे पावनधाम गोवर्धनगिरिके दर्शनार्थ और परिक्रमाके लिये प्रत्येक माह पूर्णिमासे पूर्व ही नर-नारियोंके झुण्ड-के-झुण्ड उमड़ते चले आते हैं तथा दूध-भोग चढ़ाते हुए कह उठते हैं *'तन मन धन सब कुछ अर्पन, चले रे चलें सब गोवर्धन।'* मुड़िया पूनौ (गुरु पूर्णिमा)-के पर्वपर प्रतिवर्ष लाखों भक्तजन भारी भीड़में भी देशके कोने-कोनेसे नंगे पैर परिक्रमा करने आते हैं, जिससे जन-सैलाव उमड़ पड़नेसे यहाँ लक्खी-मेला एवं कुम्भ-मेलेका-सा रूप दृष्टिगोचर होता है। लोंदके महीने (अधिकमास)-में प्रतिदिन अहर्निश चौबीसों घंटे परिक्रमा लगती है। देखिये ये भाव इन पंक्तियोंमें—

गोवर्धन धाम परम धाम हूँ मो स्वच्छ धर्यो,
दर्शन के हेतु आते लाखों नर-नारी हैं।
परिक्रमा लगावें दूध गिरि पर चढ़ावें भोग,
सामग्री लगावें भीर होत भारी है॥

अपने जीवनको सफल बनाने और पाप-विनाशके लिये कुछेक डंडोती (पेटके बल लेटकर)-परिक्रमा लगाते हैं तो अनेक भक्तजन दूधकी धार-धूपके साथ परिक्रमा नंगे पैर पूर्ण करते हैं। यहाँ गिरिराजजीके इस रसियाकी टेक उल्लिखित करना प्रासंगिक होगा—

तेरौ जन्म सफल है जाइ, लगाइलै रज ब्रजधामकी।
काट दें पाप तेरे ब्रजराज, लगाइलै परिक्रमा गिरिराज की॥

'पूजि गोवरधन गिरधारी करी परिकम्मा की त्यारी' के अनुसार ग्रामवासी हँसते-कूदते, नाचते-गाते, भजन-कीर्तन करते हुए गिरिराजकी परिक्रमा करते हैं, मनमें *'गिरराज धरन प्रभु तेरी शरन'* का ध्यान रखकर इन ग्रामवासियों विशेषकर महिलाओंके परिक्रमामार्गमें गाये गीत बड़े ही मनमोहक तथा श्रद्धाभावसे परिपूर्ण होते हैं। ग्रामीण महिलाओंमें परिक्रमा लगानेकी प्रबल उत्कण्ठा होती है, जैसा कि इस व्रज लोकगीतसे सुस्पष्ट है—

मैं तो गोवरधन कूँ जाऊँ मेरी बीर, नाँय मानें मैरो मनुआ।
सात सेर की करूँ कढ़ैया, अरी पूरी पुआ बनाऊँ मेरी बीर,
नाँय माने मेरौ मनुआ॥ मैं तो गोवरधन कूँ........

निस्संदेह व्रज-जनजीवनमें गिरिराज गोवर्धनके अवतरणका अत्यधिक महत्त्व है और इनका अनूठा स्थान है। गिरिराज व्रजवासियोंके जीवन-मरणसे सम्बन्धित हैं। इन्हींके माध्यमसे व्रजवासियोंके जीवनकी रक्षा हुई एवं इन्हींसे व्रजसाहित्य, संस्कृति एवं कला विकसित हो सकी और इन्हींके कारण व्रजकी महिमा अक्षुण्ण रूपसे जन-जनके हृदयमें स्थापित हो गयी—

लग रही आस करूँ ब्रजवास, तरहटी गोवरधनकी में।
भजन करूँ और ध्यान धरूँ छैया कदमन की में॥

पुरुषोत्तम भगवान् श्रीजगन्नाथजीकी अवतार-कथा

(श्रीगंगाधरजी गुरु)

उत्कल प्रदेश पुरुषोत्तमावतार प्रभु जगन्नाथजीकी पुण्यलीलाभूमि है। नित्य लीलालय उत्कल प्रदेश अपनी विश्ववन्द्य पुरुषोत्तम-संस्कृतिके निमित्त विश्वमें विख्यात है। पार्वतीवल्लभ श्रीशङ्कर, गगनविलासी श्रीसूर्यनारायण एवं वैकुण्ठनिवासी श्रीविष्णु आदि अवतार जगत्‌की सुरक्षाके लिये ही भुवनेश्वर, कोणार्क (अर्कक्षेत्र) एवं श्रीनीलाचल (श्रीपुरीधाम) इत्यादि स्थानोंमें आविर्भूत हुए हैं। उत्कलके परमाराध्य श्रीजगन्नाथ-अवतारकी महिमाकथा अनन्त और अनिर्वचनीय है। प्रभु श्रीजगन्नाथ सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ तथा सर्वान्तर्यामी भगवदवतारश्रेष्ठ हैं। श्रीजगन्नाथजी अपनी सृष्टिकी सुरक्षाके लिये, अधर्मनाशके लिये भिन्न-भिन्न अवतारोंमें बहुत कुछ कर चुके, किंतु अपाणिपाद जगन्नाथ-अवतारमें वे बड़ी-बड़ी आँखोंसे देख रहे हैं कि हम मानव उनकी प्रदत्त शिक्षाका कैसा उपयोग कर रहे हैं? अत: कर्मेन्द्रियविहीन दारुभूत जगन्नाथ-अवतार अब कुछ करना नहीं चाहते हैं। वे केवल नीरवद्रष्टा हैं, अपनी बड़ी-बड़ी आँखोंसे हमें देख रहे हैं—अपने कार्योंके लिये (स्वधर्मपालनमें) हम सक्षम हैं अथवा अक्षम (अनुपयुक्त) हैं।

श्रीजगन्नाथजीने काष्ठका विग्रहावतार क्यों धारण किया? इस विषयमें ऐसी कथा सुनी जाती है कि एक बार भक्तोंके अधीन होकर और भक्तोंकी श्रेष्ठता दिखाते हुए भगवान्‌ने प्रतिज्ञा की थी कि मैं चित्ररथ गन्धर्वको न मार डालूँ तो मेरा कलियुगमें काष्ठका विग्रह हो। उस ऋषिके अपराध करनेवाले गन्धर्वको अर्जुन और सुभद्राने अभयदान दिया। भगवान्‌ने भक्तोंके सामने हार मानी और वे श्रीक्षेत्र जगन्नाथमें काष्ठविग्रहके रूपमें प्रतिष्ठित हुए। इस सम्बन्धमें और भी कई कथाएँ हैं।

भगवान् जगन्नाथ अजन्मा और सर्वव्यापक होनेपर भी दारुविग्रहावतारके रूपमें अपनी अद्भुत लीला दर्शाते आ रहे हैं। भगवान् ब्रह्मदारुकी दिव्यावतारकथा यहाँ संक्षेपमें प्रस्तुत है—

(क) ब्रह्मपुराणकी कथा

सत्ययुगकी बात है। इन्द्रद्युम्न नामक इन्द्रसदृश पराक्रमी, अर्थशास्त्रनिपुण, ब्राह्मणभक्त, सत्यवादी, सर्वसद्गुणसम्पन्न एक राजा थे। मालवा देशकी अवन्ती नगरी उनकी राजधानी थी। वे प्रजाओंका पुत्रवत् पालन करते थे। एक दिन उनके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं किस प्रकार भोगमोक्षदाता योगेश्वर श्रीहरिकी आराधना करूँ?

आराधनाके लिये मैं किस क्षेत्र, किस तीर्थ अथवा किस आश्रमपर जाऊँ? बहुत कालतक विचारकर राजा इन्द्रद्युम्नने सर्वोत्तम तीर्थ पुरुषोत्तम क्षेत्रमें जानेका निश्चय किया।

राजा सैन्य-सामन्त-पुरोहितादिके सहित ध्वजा-पताकाओंसे सुसज्जित रथोंपर आरूढ हो दक्षिण समुद्रकी ओर चल पड़े। उस अनन्ततरङ्गाकुलरमणीय समुद्रका दर्शनकर वे विस्मयाभिभूत हो गये और वहीं समुद्रतटपर एक मनोज्ञ दिव्य पवित्र स्थानमें राजाने विश्राम किया। त्रिभुवनप्रख्यात श्रीक्षेत्रमें महाराज इन्द्रद्युम्नने विविध सुरम्य स्थानोंके दर्शन किये। अवतारश्रेष्ठ जगन्नाथके उस मानसतीर्थक्षेत्रमें पहले इन्द्रनीलमणिसे निर्मित प्रतिमा विराजित थी, जिसे स्वयं भगवान्‌ने छिपा दिया था।

भगवान्‌ने इन्द्रनीलमणिसे बनी उस प्रतिमाको इसलिये तिरोहित कर दिया था कि उस प्रतिमाका दर्शन कर पृथ्वीके सब मनुष्य भगवद्धाममें चले जाते थे। सब लोगोंको वैकुण्ठधाममें जाते देख धर्मराज यमराजने भगवान्‌के पास आकर उनकी स्तुति की और कहा—प्रभो! इस विख्यात पुरुषोत्तमतीर्थमें इन्द्रनीलमणिसे बनी आपकी जो श्रेष्ठ प्रतिमा है, वह सब कामनाओंको देनेवाली है, उसका दर्शन कर सभी मनुष्य कामनारहित हो आपके श्वेतधाममें चले जाते हैं। अत: मेरी धर्ममर्यादा जो आपने नियत की है, वह नष्ट हो गयी है। भगवन्! कृपा करके आप अपनी प्रतिमाको तिरोहित कर लें। तब भगवान्‌ने चारों ओरसे बालुकासे उस प्रतिमाको आवृत कर लिया।

राजा इन्द्रद्युम्नने दृढ़ संकल्प किया कि मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा, जिससे सत्यपराक्रमी विष्णु मुझे साक्षात् दर्शन देंगे। अनन्यभावसे श्रीजगदीश्वरके पदारविन्दोंमें सर्वस्वसमर्पणपूर्वक यज्ञ, दान, तपस्या, उपासना और उपवासादि करनेके लिये एवं अवतारकथाप्रसारार्थ भगवन्मन्दिरनिर्माण करनेके लिये दृढ़संकल्प होकर राजा अपने कर्तव्यमें लग गये। मन्दिर-निर्माणकार्य समारम्भ हुआ। अश्वमेधयज्ञ तथा दान-पुण्यादि कर्म कर लिये गये। पुरुषोत्तमप्रासादनिर्माणकार्य विधिपूर्वक सम्पन्न हुआ। अब राजाको अहर्निश भगवत्प्रतिमाके लिये चिन्ता सताने लगी। वे सोचने लगे—सृष्टिस्थितिप्रलयकारी लोकपावन पुरुषोत्तमावतारका मैं कैसे दर्शन कर सकूँगा? कैसे विष्णुप्रतिमाका निर्माण किया जा सकेगा? पाञ्चरात्रकी विधिसे उन्होंने पुरुषोत्तमावतार-पूजन-कथाकीर्तन करके अनेक भावमयी प्रार्थनाएँ कीं।

स्तुतिप्रार्थनाके उपरान्त राजाने सर्वकामप्रदाता सनातनपुरुष अवतारश्रेष्ठ जगन्नाथ वासुदेवको प्रणाम किया एवं वहाँ धरतीपर कुश और वस्त्र बिछाकर चिन्तामग्न हो सो गये। अवतारकथाचिन्तन ही राजाका जीवनव्रत था। देवाधिदेव भगवान्‌ने राजाको स्वप्नजगत्‌में अपने शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मस्वरूपका दर्शन कराया एवं कहा—'राजन्! तुम धन्य

हो, तुम्हारे दिव्य यज्ञ, भक्ति और श्रद्धा-विश्वाससे मैं संतुष्ट हूँ। तुम चिन्तित न होओ, यहाँ जो सनातनी प्रतिमा छिपी है उसकी प्राप्तिका उपाय बताता हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो—आजकी रात बीतनेपर सूर्योदयके समय समुद्रतटपर जाना। वहाँ समुद्रप्रान्तमें एक विशाल वृक्ष सुशोभित है, जिसका कुछ अंश तो जलमें और कुछ अंश स्थलपर है। समुद्रकी लहरोंसे आहत होनेपर भी वह वृक्ष कम्पित नहीं होता। तुम हाथमें तीक्ष्ण अस्त्र लेकर अकेले ही वहाँ जाना और उस वृक्षको काट डालना। वहाँ तुम्हें कुछ अद्भुत वस्तु दिखायी देगी। विचार-विमर्शकर उसीसे दिव्य प्रतिमाका निर्माण करना। अब मोहप्रद चिन्ता त्याग दो।'

तत्पश्चात् श्रीहरि अदृश्य हो गये। राजा विस्मित हुए। प्रात: उठकर वे समुद्रतटपर पहुँचे एवं स्वप्नानुसार तेजस्वी वृक्षराजको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने उस वृक्षको काट गिराया और दो टुकड़े करनेका विचार किया। फिर उन्होंने जब काष्ठका भलीभाँति निरीक्षण किया तो उन्हें एक अद्भुत
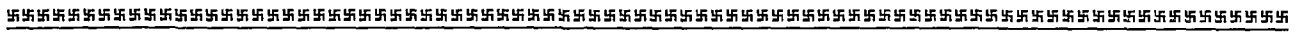
बात दिखायी दी। उन्हें सहसा दो ब्राह्मणवेशधारी दिव्य पुरुष दिखायी दिये। ब्राह्मणोंने राजाके पास आकर पूछा—आपने किसलिये वनस्पतिको काट गिराया है? राजाने कहा—'आद्यन्तहीन अवतारकी आराधनाके लिये मैं विष्णुकी प्रतिमाका निर्माण करना चाहता हूँ। तदर्थ स्वप्नमें भगवान्ने मुझे प्रेरित किया है।' यह सुनते ही विप्ररूपधारी भगवान् जगन्नाथने सहर्ष कहा—राजन्! आपका विचार अत्युत्तम है तथा मेरे ये साथी श्रेष्ठ शिल्पी विश्वकर्मा हैं, जो मेरे निर्देशानुसार प्रतिमानिर्माण करेंगे। तब विश्वकर्माने भगवदीय आज्ञाके अनुसार प्रतिमाओंका निर्माण कर दिया। जिनमें पहली मूर्ति बलरामकी, दूसरी श्रीजगन्नाथकी एवं तीसरी भगवान् वासुदेवकी बहन सुभद्राजीकी थी। यह देखकर आश्चर्यचकित हो इन्द्रद्युम्नने पूछा—गुप्तरूपसे आप कौन हैं? तब भगवान्ने कहा—मैं देवता, यक्ष, दैत्य, इन्द्र, रुद्र, ब्रह्मादिमें कोई भी नहीं हूँ। मुझे पुरुषोत्तम-अवतार समझो। अनन्त बलशाली, सर्वपीडाहारी मैं सभीका आराध्य हूँ। वेदोंमें तथा धर्मशास्त्रोंमें जिसका उल्लेख हुआ है, वही मैं हूँ। संसारमें जो कुछ वाणीद्वारा वर्णनीय है, वह मेरा ही स्वरूप है। इस चराचर विश्वमें मेरे सिवा कुछ भी नहीं है।

भगवान्की वाणी सुनकर राजाके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। वे स्तुतिपूर्वक प्रणाम करते हुए बोले—जो निर्गुण-निर्मल शान्त एवं परमपद है, उसे मैं आपके प्रसादसे पाना चाहता हूँ। तब भगवान् राजाको 'तथास्तु' कहकर वर देते हुए विश्वकर्मासहित अन्तर्धान हो गये।

भगवत्साक्षात्कारसे कृतकृत्य हो बुद्धिमान् नरेशने श्रीबलराम, जगद्गुरु जगन्नाथ एवं वरदात्री देवी सुभद्राको मणिकाञ्चनजटित विमानाकार कल्याणयानमें बिठाकर बड़ी धूमधामसे मन्त्रियोंसहित पुण्यस्थानमें प्रवेश कराया और यथासमय शुभ-मुहूर्तमें प्रतिष्ठा करायी। सर्वोत्तम प्रासादपर राजाने वेदोक्त विधिसे प्रतिष्ठित कर सब विग्रहोंको स्थापित किया एवं नियमित अवतारकथा-श्रवणपूर्वक सर्वस्व-त्यागी होकर अन्ततः परमपदको प्राप्त किया।

(ख) स्कन्दपुराणकी कथा

स्कन्दपुराणके अनुसार सत्यवादी तथा धर्मात्मा राजा इन्द्रद्युम्नने एक बार अपने पुरोहितसे कहा—आप उस उत्तम क्षेत्रका संधान करें, जहाँ हमें साक्षात् जगन्नाथ-अवतारके दर्शन मिलें। तब एक तीर्थयात्रीके मुखसे श्रीक्षेत्रका माहात्म्य सुनकर पुरोहितने अपने भाई विद्यापतिको पुरुषोत्तम भगवान्का दर्शन करने और उनके निवासस्थलका निर्णय करके लौट आनेके लिये भेजा। भगवान्की मङ्गलमय लीलाका चिन्तन करते हुए विद्यापति एक आम्रकाननमें जा पहुँचे। गगनचुम्बी नीलाचलशिखर देखकर साक्षात् विग्रहवान् भगवान् नारायणका वासस्थान खोजते हुए वे नीलाचलकी उपत्यकामें पहुँच गये। जब वहाँसे अग्रसर होनेका मार्ग नहीं मिला, तब भूमिपर कुश बिछाकर वे मौनभावसे भगवत्-शरणाश्रित हुए। वहाँ उन्हें मार्गदर्शनहेतु कुछ भक्तोंकी लोकोत्तर वाणी सुनायी दी। प्रसन्न हो उसीका अनुसरण करते वे आगे बढ़े। शबरदीपकाश्रमपर पहुँचकर वहाँ उन्हें शबर विश्वावसु मिले। विश्वावसुने पूछा—ब्रह्मन्! आप कहाँ पधारे हैं? यह वनका मार्ग दुर्गम है। आप अत्यन्त क्लान्त-श्रान्त हो गये होंगे; यहाँ विश्राम कीजिये। ऐसा कहते हुए विश्वावसु नामक शबरने पाद्य, आसनार्घ्य देते हुए फिर पूछा—फलाहार करेंगे या तैयार की हुई भोजनसामग्री? आज मेरा जीवन सफल हुआ, चूँकि दूसरे विष्णुकी भाँति आप मेरे घर पधारे हैं। विद्यापतिने कहा—मैं जिस उद्देश्यसे आया हूँ, उसे सफल करनेकी कृपा करें। भोजनकी चिन्ता न करें। अवन्तीश्वर इन्द्रद्युम्नके आज्ञानुसार मैं अवतारदर्शनार्थ यहाँ आया हूँ। नीलमाधव-अवतारका दर्शन कर उक्त समाचार राजाको जबतक नहीं दिया जायगा, तबतक वे निराहार ही रहेंगे। अतः मुझे शीघ्र ही प्रभुसे मिलानेकी कृपा करें।

इसके उपरान्त दोनों गहन काननमें पहुँचे। आगे चलते-चलते वे रौहिणकुण्डके पास पहुँचे। शबरने कुण्डकी महिमा बतायी तथा कल्पवटका दर्शन कराया। शबरने बताया कि रौहिणकुण्ड तथा कल्पवटके बीचमें कुञ्जमें भगवान् जगन्नाथ विराजमान हैं, इनके दर्शन कीजिये। विद्यापतिने कुण्डमें स्नान किया और नियमपूर्वक भगवान्की स्तुति की और फिर वे भगवद्दर्शनसे कृतार्थ हो गये। विश्वावसु शबर उन्हें आश्रममें पुनः वापस लाया और उनका सविधि सत्कार किया। शबरने जो अलौकिक वस्तुएँ समर्पित कीं, उन्हें देखकर विद्यापतिने विस्मित होकर कहा—तुम्हारे घरमें ऐसी दिव्य वस्तुओंका संग्रह आश्चर्यका विषय है। शबरने कहा—द्विजश्रेष्ठ! इन्द्रादि देवता नित्य ही अवतार पुरुष श्रीजगन्नाथकी उपासना करनेके लिये अनेक दिव्य उपचार लेकर यहाँ आते हैं और भक्तिपूर्वक पूजा-स्तुति करके तथा दिव्य वस्तुएँ समर्पित कर लौट जाते हैं। ये सब वस्तुएँ भगवान्की प्रसादरूपा हैं। जो मैंने आपको समर्पित की हैं। भगवान्के इस प्रसादके भक्षणसे हमलोगोंके

रोग और बुढ़ापेका नाश हो गया है। भगवान्‌के प्रसादमें आश्चर्य नहीं करना चाहिये। यह सुनकर विद्यापतिका शरीर पुलकित हो गया। आनन्दाश्रु बह निकले उन्होंने कहा—आप धन्य हैं।

तत्पश्चात् विद्यापति ब्राह्मणने कहा—मुझपर यदि आपकी कृपा हो जाय तो मुझे हमेशा-हमेशाके लिये अपना ही बना लें। आपके साथ मैत्री-स्थापन करनेका मेरा दृढ़ निश्चय है। सखे! आपका महान् सौभाग्य है। मेरे लौट जानेपर राजा इन्द्रद्युम्न यहाँ आयेंगे एवं वे एक विशाल मन्दिरका निर्माण करके सहस्र-उपचारोंसे नित्य ही जगन्नाथजीकी उपासना करेंगे। यह सुनकर शबरने कहा—ये सब बातें तो ठीक ही हैं, किंतु राजा यहाँ नीलमाधवका दर्शन नहीं कर सकेंगे, चूँकि भगवान् स्वर्णमयी बालुकामें अदृश्य हो जायँगे। आप परम सौभाग्यशाली होनेसे जगन्नाथ-अवतारस्वरूपका साक्षात् दर्शन पा सके हैं। हाँ, जब राजा यहाँ आकर भगवान्‌को न देख सकनेके कारण प्राणत्यागतकको तैयार हो जायँगे, तब भगवान् गदाधर स्वप्नमें उन्हें अवश्य ही दर्शन देंगे। उस समय राजा उन्हींके आदेशानुसार भगवान्‌की काष्ठमयी चतुर्मूर्तियोंको ब्रह्माजीके द्वारा स्थापित कराकर पूजा करेंगे।

शबरश्रेष्ठ विश्वावसुसे इतना सब अवगत होनेके उपरान्त विद्यापति श्रीक्षेत्रकी प्रदक्षिणा करके अवन्तीपुरी चले आये और उन्होंने उन सभी बातोंको राजासे निवेदित कर दिया तथा प्रसादरूपमें दिव्य माला राजाको भेंट की।

सब बातें जानकर राजा समयानुसार श्रीक्षेत्र पहुँचे तथा उन्होंने वहाँ सहस्र अश्वमेधयज्ञानुष्ठान किया और अनेक तीर्थोंके दर्शन किये। देवर्षि नारद भी उनके साथ आये हुए थे। वे आनन्दपूर्वक बोले—राजन्! पूर्णाहुतिके बाद यज्ञ सफल होगा। तुम्हारे भाग्योदयका समय समीप आ गया है। तुमने स्वप्नमें श्वेतद्वीपमें बलभद्र तथा सुभद्रासहित जिन पुरुषोत्तम भगवान्‌का दर्शन किया है, उनके शरीरका रोम गिरते ही वह वृक्षभावको प्राप्त हो जायगा। इस धरतीपर स्थावररूपमें वह भगवान्‌का अंशावतार होगा। भक्तवत्सल विभु अभी उसी रूपमें अवतार धारण करेंगे। यज्ञान्त-स्नान शेष करके वृक्षरूपमें प्रकटित यज्ञेश्वरको तुम इस महावेदीपर स्थापित करो।

इसके उपरान्त नारदजी और राजा इन्द्रद्युम्न दोनों ही प्रसन्नतापूर्वक वहाँ गये। वृक्षका दर्शनकर राजाने अपने परिश्रमको सफल माना और नीलमणिमाधवके विरहजन्य शोकका परिहार करके बार-बार उस वृक्षको प्रणाम किया। राजाने आनन्दाश्रुपरिपूर्ण लोचनोंसे ब्राह्मणोंके द्वारा उस वृक्षको मँगवाया। ब्राह्मणलोग चन्दन और मालाओंसे विभूषित अवतारश्रेष्ठ जगन्नाथके दिव्य वृक्षको महावेदीपर ले आये। देवर्षि नारदजीके कथनानुसार उक्त वृक्षकी उपासना करके राजाने प्रश्न किया—देवर्षि नारद! भगवान् विष्णुकी प्रतिमाएँ कैसे बनेंगी और उनका निर्माण कौन करेगा? देवर्षि नारदजीने कहा—भगवान्‌की लीलाकथा अलौकिक है, उसे कौन जान सकता है? उसी समय आकाशवाणी सुनायी दी—'अत्यन्त गुप्त रखी हुई महावेदीपर भगवान् स्वयं अवतार ग्रहण करेंगे। पंद्रह दिनोंतक उक्त स्थानको आवृत रखा जाय। हाथमें हथियार लेकर जो वृद्धशिल्पी समुपस्थित है, उसको भीतर प्रवेश कराकर यत्नसे दरवाजा बन्द करना चाहिये। मूर्तिरचनातक बाहर वाद्य बजते रहें, अंदर जानेकी कोई भी चेष्टा न करे, शिल्पकारको छोड़कर अन्य कोई देखेगा तो वह दोनों नेत्रोंसे अन्धा हो जायगा।'

आकाशवाणीके अनुसार राजाने समस्त व्यवस्थाएँ की। पंद्रहवाँ दिन आते ही भगवान् चार विग्रहों—बलदेवजी, सुभद्रा और सुदर्शन चक्रके साथ स्वयं अवतीर्ण हुए। राजाने

भक्तिपूर्वक उनका स्तवन किया और आकाशवाणीमें बताये गये विधानके अनुसार पूजा-उपासना की। तबसे उत्कलमें विधिपूर्वक दारुविग्रहावतारकी उपासना होती आ रही है। चतुर्धामोंमें श्रीपुरीधाम श्रेष्ठ है। सत्ययुगका धाम बद्रीनाथ, त्रेताका रामेश्वर एवं द्वापरका द्वारका है और इस कलियुगका पवित्रधाम है—श्रीजगन्नाथपुरी। इस स्थानपर सर्वप्रथम नीलाचल-संज्ञक पर्वत ही था तथा सर्वदेवाराधनीय भगवान्

नीलमाधवजीका श्रीविग्रह उक्त पर्वतपर ही था, कालक्रमसे वह पर्वत पातालमें चला गया। देवतासङ्घ भगवद्विग्रहको स्वर्गलोकमें ले गये। इस क्षेत्रको उन्हींकी पावन स्मृतिमें आज भी सश्रद्ध 'नीलाचल' कहा जाता है। श्रीजगन्नाथमन्दिर-शिखरपर संलग्नचक्र 'नीलच्छत्र' के दर्शन जहाँतक होते रहते हैं, वह सम्पूर्ण क्षेत्र ही श्रीजगन्नाथपुरी है। सिद्धान्तदर्पणमें उनकी स्तुति इस प्रकार की गयी है—

योऽसौ सर्वत्र पूर्णोऽप्यसितगिरिदरी केशरी योऽप्यरूपः
पद्मप्रद्युम्नरूपोऽप्यणुरतनुतनूसम्भृताऽशेषलोकः ।
निस्त्रैगुण्योऽप्यगण्यामलगुणनिलयो वाङ्मनोऽतीतधामा
मादृक्चर्माक्षिलक्ष्यः स्फुरतु मनसि नः चित्रसिन्धुर्मुकुन्दः ॥

इसका भाव यह है कि जो सर्वत्र परिपूर्ण होते हुए भी नीलगिरिदरी केशरी रूपमें स्थित हैं एवं अरूप होते हुए भी जो पद्मप्रद्युम्नस्वरूप हैं, अणु होनेपर भी विशाल विश्वके रूपमें निःशेष लोकोंको धारणकर उनका पोषण करते हैं, गुणातीत होनेपर भी अगणनीय सद्‌गुणोंके आकर हैं, वे आश्चर्यसिन्धुमुकुन्द मादृक्-चर्मचक्षुका भी लक्ष्य होकर हमारे मनमें स्फुरित हों।

अत्यन्त प्राचीन कालसे अबतक दार्शनिक, कवि और भक्त लेखकवृन्द जगन्नाथ-अवतारकी अवर्ण्य लीलाकथाएँ अपने दृष्टिकोणसे वर्णन कर चुके हैं, किंतु उस अवतारकी लीलाकथाओंका अन्त न प्राप्त कर सके। जगन्नाथ-अवतार अवाङ्मानसगोचर, अनन्य, असाधारण तथा रहस्यशाली हैं और प्रभुकी माया तो दुरत्यया ही है।

श्रीक्षेत्रमें जगन्मैत्रीकी परमश्रेष्ठ भावना निहित है। श्रीजगदीशरथयात्रा ही जिसका प्रमाण है। जगन्नाथकी यह अवतार-कथा विश्वब्रह्माण्डका सच्चा मङ्गलविस्तार करे, जिसके चिन्तन, मनन एवं निदिध्यासनसे भगवान्‌की ध्रुवास्मृति तथा भगवत्संनिधिकी प्राप्ति होती है। श्रीमद्भागवत (१०।३१।९)-में महाभाग्यवती गोपियाँ कह रही हैं—

'तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम्।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततम्''''॥'

अर्थात् आपकी अवतार-कथासुधा संसारके तापसे तप्त प्राणियोंके लिये सञ्जीवन-बूटी है तथा कवि-ज्ञानी-महात्मा उनका गान करते हैं। आपकी अवतार-कथा सारे पाप-तापको मिटा देती है। इतना ही नहीं, वह केवल श्रवणमात्रसे शुभ मङ्गल प्रदान करती है और सुरम्य, मधुर तथा विस्तृत है। [**प्रेषक—श्रीरवीन्द्रनाथजी गुरु**]

शंकरावतार भगवत्पाद आद्य शंकराचार्य और उनका अवतार-दर्शन

(श्री डी० आंजनेयजी)

ईसाके पूर्व सातवीं शताब्दीमें, दक्षिणके केरल प्रान्तमें पूर्णानदीके तटपर कलादि नामक गाँवमें एक विद्वान् एवं धर्मनिष्ठ ब्राह्मण श्रीशिवगुरु एवं उनकी पतिव्रता पत्नी सुभद्रा देवी रहते थे। यह दम्पती वृद्धावस्थाके निकट आनेके कारण चिन्तित रहता था, क्योंकि यह निःसंतान था। ऐसेमें श्रीशिवगुरुने पुत्रप्राप्तिहेतु बड़ी श्रद्धा एवं भक्तिसे भगवान् शंकरकी आराधना प्रारम्भ की। उनकी श्रद्धापूर्ण आराधनासे संतुष्ट होकर देवाधिदेव भगवान् आशुतोष प्रकट हुए एवं अपने अंशसे पुत्र प्राप्त होनेका वर दिया, जिसकी आयु मात्र सोलह वर्षकी होनी थी। इस वरके परिणामस्वरूप माता सुभद्राके गर्भसे वैशाख शुक्ल पंचमीके दिन भगवान् शंकर बालरूपमें प्रकट हुए। इनका नाम भी शंकर ही रखा गया।

बालक शंकरके तीन वर्ष पूर्ण होनेपर उनके पिताने उनका चूडाकर्म-संस्कार किया, किंतु तभी श्रीशिवगुरु

काल-कवलित हो गये। श्रीशंकर जब पाँच वर्षके हुए तब यज्ञोपवीत कराकर इन्हें विद्याध्ययनहेतु गुरुके घर भेजा गया। वहाँ दो वर्षके अंदर ही ये षडंगसहित वेदका अध्ययन पूर्णकर घर वापस आ गये। इनकी अलौकिक प्रतिभा देखकर सभी अचम्भित रह गये।

विद्याध्ययनके अनन्तर श्रीशंकरने माताके समक्ष संन्यास लेनेकी इच्छा प्रकट की, किंतु माताने आज्ञा नहीं दी। श्रीशंकर मातृभक्त थे, वे उनकी इच्छाके बिना संन्यास नहीं लेना चाहते थे। एक दिन श्रीशंकर माताके साथ नदीतटपर गये, वहाँ स्नान करते समय एक ग्राहने उनका पैर पकड़ लिया तब पुत्रके प्राण संकटमें देखकर माता सहायताके लिये चिल्लाने लगीं। तभी शंकरने मातासे कहा—यदि आप संन्यास लेनेकी आज्ञा दें तो यह ग्राह मुझे छोड़ देगा। माताने तुरंत 'हाँ' कर दी। हाँ कहते ही ग्राहने शंकरका पैर छोड़ दिया। इस प्रकार लगभग आठ वर्षकी अवस्थामें उन्होंने गृह त्याग दिया। जाते समय माताने उनसे यह वचन लिया कि उनके अन्तिम समयमें वे अवश्य उपस्थित होंगे। ऐसा कहा जाता है कि ग्राहके रूपमें स्वयं भगवान् शंकर ही आये थे।

घर छोड़नेके बाद श्रीशंकर नर्मदातटपर स्थित स्वामी गोविन्दभगवत्पादके आश्रममें आये एवं उनसे दीक्षा ग्रहण की। यहाँ गुरुने इनका नाम भगवत्पूज्यपादाचार्य रखा। अल्प कालमें ही शंकरने गुरुके निर्देशनमें योग सिद्ध कर लिया। इनकी योग्यतासे प्रसन्न होकर गुरुने इन्हें काशी जाने एवं वेदान्त-सूत्रपर भाष्य लिखनेकी आज्ञा दी। काशी आनेपर श्रीशंकरकी ख्याति सर्वत्र फैलने लगी। लोग इनका शिष्यत्व ग्रहण करने लगे। इनके सर्वप्रथम शिष्य सनन्दन हुए, जो पद्मपादाचार्यके नामसे प्रसिद्ध हुए। काशीमें श्रीशंकर शिष्योंको पढ़ानेके साथ भाष्य भी लिख रहे थे। कहते हैं एक दिन भगवान् विश्वनाथने चाण्डालके रूपमें दर्शन देकर इन्हें ब्रह्मसूत्रपर भाष्य लिखने एवं सनातनधर्मके प्रचारका आदेश दिया। एक दिन गङ्गातटपर एक ब्राह्मणके साथ वेदान्त-सूत्रपर शास्त्रार्थ हो गया। यह शास्त्रार्थ आठ दिनतक चला। तभी उन्हें ज्ञात हुआ कि ये ब्राह्मण स्वयं वेदव्यास हैं तो श्रीशंकरने उनसे क्षमा माँगी। श्रीवेदव्यासजीने प्रसन्न होकर इनकी आयु बत्तीस वर्षकी कर दी। इसके बाद उन्होंने भारतके विभिन्न क्षेत्रोंकी यात्रा की एवं वर्णाश्रमके विरोधी मतवादियोंको शास्त्रार्थमें परास्त किया तथा ब्रह्मसूत्रपर भाष्य एवं अन्य कई ग्रन्थोंका लेखन किया। तदनन्तर उन्होंने प्रयाग आकर कुमारिलभट्टसे भेंट की तथा शास्त्रार्थ करनेका प्रस्ताव रखा। उस समय कुमारिलभट्ट अपने बौद्ध गुरुसे द्रोह करनेके कारण आत्मदाह कर रहे थे। उन्होंने श्रीशंकरको माहिष्मतीपुरी जाकर मण्डनमिश्रके साथ शास्त्रार्थ करनेका आदेश दिया। मण्डनमिश्र एवं श्रीशंकरके शास्त्रार्थकी मध्यस्थ मण्डनमिश्रकी पत्नी भारती थीं। श्रीशंकरने उन्हें शास्त्रार्थमें पराजित किया तभी श्रीमती भारतीमिश्रने उनसे कामशास्त्रसे सम्बंधित प्रश्न किया, उसके उत्तरके लिये श्रीशंकरने कुछ समयका अवकाश लेकर योगबलसे एक मृत व्यक्तिके शरीरमें प्रवेश किया एवं कामशास्त्रका अध्ययन किया। तदनन्तर भारतीमिश्रको उनके प्रश्नका उत्तर दिया। अन्तमें मण्डनमिश्रने उनका शिष्यत्व ग्रहण किया। उनका नाम सुरेश्वराचार्य रखा गया। श्रीशंकरने कई मठों एवं मंदिरोंकी स्थापना की, जिनके माध्यमसे उनके शिष्य औपनिषद-सिद्धान्तकी शिक्षा देने लगे।

भगवत्पाद आद्य शङ्कराचार्य जहाँ निर्गुण, निराकार ब्रह्म और ज्ञानस्वरूपके निरूपणमें स्वयं अद्वितीय ज्ञानके रूपमें प्रतिभासित होते दीखते हैं, वहीं सगुण-साकार देवतत्त्वकी प्रतिष्ठामें उनकी भक्तिविषयक आस्था ही सर्वोपरि दीखती है। आपका सर्ववेदान्तसिद्धान्तसंग्रह सभी ग्रन्थोंसे बड़ा है, वह समस्त सूक्ष्मतत्त्वोंके विवेचनसहित देवता, आत्मा और परमात्मा आदिके निरूपणमें पर्यवसित है। इसी प्रकार विवेकचूडामणि, प्रमाणपञ्चक, शतश्लोकी, उपदेशसाहस्री, आत्मबोध, तत्त्वबोध, ब्रह्मसूत्रभाष्य (शारीरकभाष्य), उपनिषदोंके भाष्य आदि ग्रन्थ अद्वैतकी प्रतिष्ठाके प्रमापक ग्रन्थ हैं।

आचार्यचरण ब्रह्मसूत्रके देवताधिकरणमें भगवान् वेदव्यासके सूत्रोंकी व्याख्या करते हुए कहते हैं कि प्रत्यक्ष, अनुमान और श्रुति-स्मृति आदि शब्दप्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि परब्रह्मकी सगुण-साकार सत्ता भी है। देवावतारोंमें एक ही साथ अनेक रूप-प्रतिपत्तिकी सामर्थ्य होती है—'**विरोधः कर्मणीति चेन्नानेकप्रतिपत्तेर्दर्शनात्**' (ब्रह्मसूत्र, देवता० सू० २७)। आचार्य बताते हैं कि देवताओंमें एक ही समयमें अनेक रूप धारणकर सर्वत्र व्याप्त रहने और प्रकट होकर भक्तका इष्ट साधन करनेकी सामर्थ्य रहती है। यह सिद्धि तो प्रायः योगियोंमें भी देखी जाती है फिर आजानज (जन्मजात) देवताओंकी क्या बात है? '**किमु वक्तव्यमाजानसिद्धानां देवानाम्।**' देवताओंके अस्तित्व और अवतरणसिद्धान्तको

सिद्ध करनेके लिये आचार्यने श्रीमद्भगवद्गीताके '**नाभावो विद्यते सतः**' (२।१६) इस श्लोकके भाष्यसे इस दृश्य संसारकी अपेक्षा अदृष्ट परमात्मतत्त्व और देवतत्त्वको अधिक बलवान् और नित्य सिद्ध किया है। आचार्यने एक महत्त्वपूर्ण बात बताते हुए कहा है कि इतिहास-पुराण सर्वथा प्रामाणिक और सत्य हैं तथा उनमें बतायी गयी भगवदवतार-सम्बन्धी सभी बातें समूल और यथार्थ हैं। यह बात उन्होंने इस संदर्भमें कही है— '**तस्मात्समूलमितिहासपुराणम्**' (ब्रह्मसूत्र देवता० सू० ३३ का शाङ्करभाष्य)।

आचार्यचरणका यह मानना है कि ऐसा कहना भी ठीक नहीं कि आजके हमलोगोंको भगवद्दर्शन नहीं होते तो प्राचीन कालमें भी लोगोंको दर्शन नहीं होता होगा। आचार्य बताते हैं कि व्यास, वाल्मीकि, वसिष्ठ आदि महर्षियोंकी प्रतिभा और तपःशक्ति तथा मान्धाता, नल, युधिष्ठिर, अर्जुन आदि नृपश्रेष्ठोंकी शक्तियोंसे आजके अल्पायु-अल्पशक्तिमान् व्यक्तियोंके सामर्थ्यकी तुलना कथमपि नहीं की जा सकती। अतः जो हमलोगोंके सामने देवता, गन्धर्व आदि प्रत्यक्ष नहीं हैं, चिरन्तनोंकी सामर्थ्यकी अधिकताके कारण निश्चय ही उनके सामने वे सभी वस्तुएँ प्रत्यक्ष हो सकती थीं— '**भवति ह्यस्माकमप्रत्यक्षमपि चिरन्तनानां प्रत्यक्षम्। तथा च व्यासादयो देवादिभिः प्रत्यक्षं व्यवहरन्तीति स्मर्यते।**' (ब्रह्मसूत्र, देवता० सू० ३३ का शाङ्करभाष्य)

इस प्रकार अनेक युक्तियों, तर्कों तथा प्रमाणोंके आधारपर आचार्यने देवतत्त्व तथा अवतरणसिद्धान्तको सिद्ध किया है और सगुण-साकार अवतार-विग्रहोंके प्रति श्रद्धा, भक्ति, स्तुति, पूजा-उपासनासे उन्हें प्रसन्न कर भक्तके सर्वविध कल्याणका मार्ग प्रशस्त कर दिया है। आचार्यने स्वयं इतने विस्तारसे सगुणोपासनाके स्तोत्र-साहित्यका निर्माण किया है, जिसे देखकर यह लगता है कि आचार्यने अद्वैतकी प्रतिष्ठा की है या द्वैतकी ? उन्होंने अपने स्तुति-साहित्यके द्वारा भक्तिकी जो अजस्र धारा प्रवाहित की, उसीमें उनका अद्वैततत्त्व भी समा गया।

इस प्रकार भगवत्पादने अदृष्ट देवतत्त्व तथा अवतरण-सिद्धान्तकी स्थापना कर उसकी प्राप्तिपूर्वक कैवल्यतककी प्राप्ति करानेमें अद्भुत योग प्रदान किया है। उनके इस कृपाप्रसादके लिये मानवसमाज सर्वदा उनका ऋणी रहेगा।

आचार्यका कहना है कि अन्तःकरण शुद्ध होनेपर ही वास्तविकताका बोध हो सकता है। अशुद्ध बुद्धि और मनके निश्चय एवं संकल्प भ्रमात्मक ही होते हैं। अतः सच्चा ज्ञान प्राप्त करना ही परम कल्याण है और उसके लिये अपने धर्मानुसार कर्म, योग, भक्ति अथवा और भी किसी मार्गसे अन्तःकरणको शुद्ध बनाते हुए वहाँतक पहुँचना चाहिये।

भगवान् शङ्करने भक्तिको ज्ञानप्राप्तिका प्रधान साधन माना है तथापि वे स्वयं बड़े भक्त थे और ज्ञानसिद्धान्तके अन्तरालमें छिपे 'महान् भक्त' थे। प्रबोधसुधाकरके नीचे उद्धृत श्लोकोंसे तो यह सिद्ध होता है कि आचार्यपाद भगवान् श्रीकृष्णके अनन्य भक्त थे और उनकी वनभोजन-लीलाकी झाँकी किया करते थे और उनसे प्रार्थना करते थे। नीचे उस झाँकी तथा प्रार्थनाको देखिये—

यमुनातटनिकटस्थितवृन्दावनकानने महारम्ये।
कल्पद्रुमतलभूमौ चरणं चरणोपरि स्थाप्य॥
तिष्ठन्तं घननीलं स्वतेजसा भासयन्तमिह विश्वम्।
पीताम्बरपरिधानं चन्दनकर्पूरलिप्तसर्वाङ्गम्॥
आकर्णपूर्णनेत्रं कुण्डलयुगमण्डितश्रवणम्।
मन्दस्मितमुखकमलं सुकौस्तुभोदारमणिहारम्॥
वलयाङ्गुलीयकाद्यानुज्ज्वलयन्तं स्वलङ्कारान्।
गलविलुलितवनमालं स्वतेजसापास्तकलिकालम्॥
गुञ्जारवालिकलितं गुञ्जापुञ्जान्विते शिरसि।
भुञ्जानं सह गोपैः कुञ्जान्तरवर्तिनं हरिं स्मरत॥

'श्रीयमुनाजीके तटपर स्थित वृन्दावनके किसी महामनोहर बगीचेमें जो कल्पवृक्षके नीचेकी भूमिमें चरणपर चरण रखे बैठे हैं, जो मेघके समान श्यामवर्ण हैं और अपने तेजसे इस निखिल ब्रह्माण्डको प्रकाशित कर रहे हैं, जो सुन्दर पीताम्बर धारण किये हुए हैं तथा समस्त शरीरमें कर्पूरमिश्रित चन्दनका लेप लगाये हुए हैं, जिनके कर्णपर्यन्त विशाल नेत्र हैं, जिनके कान कुण्डलके जोड़ेसे सुशोभित हैं, जिनका मुखकमल मन्द-मन्द मुसकानसे युक्त है, जिनके वक्षःस्थलपर कौस्तुभमणियुक्त सुन्दर हार है, जो अपनी कान्तिसे कङ्कण और अँगूठी आदि सुन्दर आभूषणोंकी भी शोभा बढ़ा रहे हैं, जिनके गलेमें वनमाला लटक रही है, अपने तेजसे जिन्होंने कलिकालको परास्त कर दिया है तथा जिनका गुञ्जावलिविभूषित मस्तक गूँजते हुए भ्रमरसमूहसे सुशोभित है, किसी कुञ्जके भीतर बैठकर ग्वालबालोंके साथ भोजन करते हुए उन श्रीहरिका स्मरण करो।'

मन्दारपुष्पवासितमन्दानिलसेवितं परानन्दम्।
मन्दाकिनीयुतपदं नमत महानन्ददं महापुरुषम्॥

'जो कल्पवृक्षके पुष्पोंकी गन्धसे युक्त मन्द-मन्द वायुसे सेवित हैं, परमानन्दस्वरूप हैं तथा जिनके चरणकमलोंमें श्रीगङ्गाजी विराजमान हैं, उन महानन्ददायक महापुरुषको नमस्कार करो।'

सुरभीकृतदिग्वलयं सुरभितैरावृतं सदा परितः।
सुरभीतिक्षपणमहासुरभीमं यादवं नमत॥

'जिन्होंने समस्त दिशाओंको सुगन्धित कर रखा है, जो चारों ओरसे सैकड़ों कामधेनु गौओंसे घिरे हुए हैं तथा देवताओंके भयको दूर करनेवाले और बड़े-बड़े राक्षसोंके लिये भयङ्कर हैं, उन यदुनन्दनको नमस्कार करो।'

कन्दर्पकोटिसुभगं वाञ्छितफलदं दयार्णवं कृष्णम्।
त्यक्त्वा कमन्यविषयं नेत्रयुगं द्रष्टुमुत्सहते॥

'जो करोड़ों कामदेवोंसे भी सुन्दर हैं, वाञ्छित फलको देनेवाले हैं, दयाके समुद्र हैं, उन श्रीकृष्णचन्द्रको छोड़कर ये नेत्रयुगल और किस विषयको देखनेके लिये उत्सुक होते हैं?'

सुतरामनन्यशरणाः क्षीराद्याहारमन्तरा यद्वत्।
केवलया स्नेहदृशा कल्पतनयाः प्रजीवन्ति॥

'जिनका कोई अन्य आश्रय नहीं है, ऐसे कछुईके बच्चे जिस प्रकार दूध आदि आहारके बिना ही केवल माताकी स्नेहदृष्टिसे पलते हैं, उसी प्रकार अनन्य भक्त भी भगवान्‌की दयादृष्टिके सहारे ही जीवन-निर्वाह करते हैं।'

इतना ही नहीं, आचार्यचरणने भगवान् श्रीराम, देवी दुर्गा, सूर्य, गणेश, गङ्गा आदि सभी विग्रहोंकी इतनी सुन्दर ललित स्तुतियाँ हमें दी हैं, जिनके श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पाठसे चित्तमें अत्यन्त प्रसन्नता होती है और भगवान्‌का साक्षात् विग्रह नेत्रोंके समक्ष उपस्थित हो जाता है। उन्होंने शक्तिकी उपासनापर सौन्दर्यलहरी, ललितापञ्चक, देव्यपराधक्षमापनस्तोत्र, नृसिंह-उपासनापर लक्ष्मीनृसिंहस्तोत्रकी रचना की। इसके प्रत्येक श्लोकमें पठित '**लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलम्बम्**' पद बहुत ही भावभक्तिपूर्ण है। शिवकी आराधना-सम्बन्धी उनके स्तोत्र शिवापराधक्षमापनस्तोत्र, वेदसारशिवस्तव, शिवाष्टक, शिवपञ्चाक्षरस्तोत्र आदि बहुत प्रसिद्ध हैं। भगवान् श्रीरामकी स्तुतियोंमें 'श्रीरामभुजंगप्रयात' बड़ा ही प्रसिद्ध है। इसके २९ श्लोकोंमें ही उन्होंने भगवान् श्रीरामके प्रति जो भक्ति दिखायी है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। इस स्तोत्रके प्रायः अनेक श्लोकोंके अन्तमें एक पंक्ति इस प्रकार आती है—'**अरामाभिधेयैरलं दैवतैर्न।**' इसका तात्पर्य है कि परम दैवत भगवान् श्रीरामको छोड़कर मेरा किसी अन्य दूसरे देवतासे कोई प्रयोजन नहीं है। आद्य शङ्कराचार्यजी विरचित एक दशावतारस्तोत्र भी प्राप्त होता है, जिसमें उन्होंने भगवान् विष्णुके मत्स्य, कूर्म आदि दस अवतारोंकी वन्दना की है।

सनातनधर्मकी प्रतिष्ठा और रक्षा हो सके—इसी आशयसे आचार्यचरणने भारतवर्षके चारों कोनोंमें चार मठ स्थापित किये और जगह-जगह देवमन्दिरों तथा अर्चा-विग्रहोंकी इसीलिये प्रतिष्ठा करायी कि लोग भक्त बनें, भगवान्‌के सगुण-साकार रूपकी आराधना करें और उनके मतानुसार भक्तिके बिना भगवत्साक्षात्कार असम्भव है। विवेकचूडामणिमें वे कहते हैं—'**मोक्षकारणसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी।**' अर्थात् मोक्षप्राप्तिके साधनोंमें भक्ति ही सबसे श्रेष्ठ है। वे प्रबोधसुधाकरमें कहते हैं—

शुद्ध्यति हि नान्तरात्मा कृष्णपदाम्भोजभक्तिमृते।
वसनमिव क्षारोदैर्भक्त्या प्रक्षाल्यते चेतः॥

'अर्थात् श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी भक्ति किये बिना अन्तःकरण शुद्ध नहीं होता। जैसे गन्दा कपड़ा क्षारके जलसे स्वच्छ किया जाता है, उसी प्रकार चित्तके मलको धोनेके लिये भक्ति ही साधन है।'

श्रीशङ्कराचार्यकी दृष्टिमें विश्वमें केवल एक ही सत्य वस्तु है और वह है ब्रह्म। समस्त अवतार उन्हींकी अभिव्यक्तियाँ हैं। उन्होंने प्रायः सभी देवस्वरूपोंका ध्यान और उनकी प्रार्थना की है। यहाँतक कि गङ्गा, यमुना, नर्मदा आदि नदियोंमें देवत्वकी प्रतिष्ठा कर भक्तिभावसे उनका स्तवन किया है। यहाँ यह विशेष बात है कि उन्होंने जिस भी देवताका स्तवन किया है, उसे परम पुरुष परमात्माकी ही अभिव्यक्ति माना है। भगवान्‌से अपना दैन्य निवेदन करते हुए षट्पदीमें वे कहते हैं—

अविनयमपनय विष्णो दमय मनः शमय विषयमृगतृष्णाम्।
भूतदयां विस्तारय तारय संसारसागरतः॥

हे विष्णुभगवान्! मेरी उद्दण्डता दूर कीजिये। मेरे मनका दमन कीजिये और विषयोंकी मृगतृष्णाको शान्त कर दीजिये, प्राणियोंके प्रति मेरा दयाभाव बढ़ाइये और इस संसार-समुद्रसे मुझे पार कीजिये।

श्रीरामानुजाचार्य और अवतार-तत्त्व

श्रीरामानुजाचार्य बड़े ही विद्वान्, सदाचारी, धैर्यवान्, सरल एवं उदार थे। ये आचार्य आळवन्दार (यामुनाचार्य)-की परम्परामें थे। इनके पिताका नाम केशवभट्ट था। ये दक्षिणके तिरुकुदूर नामक क्षेत्रमें रहते थे। जब इनकी अवस्था बहुत छोटी थी, तभी इनके पिताका देहान्त हो गया और इन्होंने काञ्चीमें जाकर यादवप्रकाश नामक गुरुसे वेदाध्ययन किया। इनकी बुद्धि इतनी कुशाग्र थी कि ये अपने गुरुकी व्याख्यामें भी दोष निकाल दिया करते थे। इसीलिये गुरुजी इनसे बड़ी ईर्ष्या करने लगे, यहाँतक कि वे इनके प्राण लेनेतकको उतारू हो गये। उन्होंने रामानुजके सहाध्यायी एवं उनके चचेरे भाई गोविन्दभट्टसे मिलकर यह षड्यन्त्र रचा कि गोविन्दभट्ट रामानुजको काशीयात्राके बहाने किसी घने जंगलमें ले जाकर वहीं मार डाले। गोविन्दभट्टने ऐसा ही करना चाहा, परंतु भगवान्‌की कृपासे एक व्याध और उसकी स्त्रीने इनके प्राणोंकी रक्षा की।

विद्या, चरित्रबल और भक्तिमें रामानुज अद्वितीय थे। इन्हें कुछ योगसिद्धियाँ भी प्राप्त थीं, जिनके बलसे इन्होंने काञ्चीनगरीकी राजकुमारीको प्रेतबाधासे मुक्त कर दिया। जब महात्मा आळवन्दार मृत्युकी घड़ियाँ गिन रहे थे, उस समय उन्होंने अपने शिष्यके द्वारा रामानुजाचार्यको अपने पास बुलवा भेजा। परंतु रामानुजके श्रीरङ्गम् पहुँचनेके पहले ही आळवन्दार (यामुनाचार्य) भगवान् नारायणके धाममें पहुँच चुके थे। रामानुजने देखा कि श्रीयामुनाचार्यके हाथकी तीन अँगुलियाँ मुड़ी हुई हैं। इसका कारण कोई नहीं समझ सका। रामानुज तुरंत ताड़ गये कि यह संकेत मेरे लिये है। उन्होंने यह जान लिया कि श्रीयामुनाचार्य मेरे द्वारा ब्रह्मसूत्र, विष्णुसहस्रनाम और आळवन्दारोंके 'दिव्यप्रबन्धम्' की टीका करवाना चाहते हैं। उन्होंने आळवन्दारके मृत शरीरको प्रणाम किया और कहा—'भगवन्! मुझे आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, मैं इन तीनों ग्रन्थोंकी टीका अवश्य लिखूँगा अथवा लिखवाऊँगा।' रामानुजके यह कहते ही आळवन्दारकी तीनों अँगुलियाँ सीधी हो गयीं। इसके बाद श्रीरामानुजने आळवन्दारके प्रधान शिष्य पेरियनाम्बिसे विधिपूर्वक वैष्णव दीक्षा ली और वे भक्तिमार्गमें प्रवृत्त हो गये।

रामानुज गृहस्थ थे, परंतु जब उन्होंने देखा कि गृहस्थीमें रहकर अपने उद्देश्यको पूरा करना कठिन है, तब उन्होंने गृहस्थीका परित्याग कर दिया और श्रीरङ्गम् जाकर यतिराज नामक संन्यासीसे संन्यासकी दीक्षा ले ली। इधर इनके गुरु यादवप्रकाशको अपनी करनीपर बड़ा पश्चात्ताप हुआ और वे भी संन्यास लेकर श्रीरामानुजकी सेवा करनेके लिये श्रीरङ्गम् चले आये। उन्होंने संन्यास-आश्रमका अपना नाम गोविन्दयोगी रखा।

आचार्य रामानुज दयामें भगवान् बुद्धके समान, प्रेम और सहिष्णुतामें ईसामसीहके प्रतियोगी, शरणागतिमें आळवारोंके अनुयायी और प्रचारकार्यमें सेन्ट जॉनके समान उत्साही थे। इन्होंने तिरुकोट्टियूरके महात्मा नाम्बिसे अष्टाक्षर मन्त्र (ॐ नमो नारायणाय)-की दीक्षा ली थी। नाम्बिने मन्त्र देते समय इनसे कहा था 'तुम इस मन्त्रको गुप्त रखना।' परंतु रामानुजने सभी वर्णके लोगोंको एकत्रकर मन्दिरके शिखरपर खड़े होकर सब लोगोंको वह मन्त्र सुना दिया। गुरुने जब रामानुजकी इस धृष्टताका हाल सुना, तब वे इनपर बड़े रुष्ट हुए और कहने लगे—'तुम्हें इस अपराधके बदले नरक भोगना पड़ेगा।' श्रीरामानुजने इसपर बड़े विनयपूर्वक कहा कि 'भगवन्! यदि इस महामन्त्रका उच्चारण करके हजारों आदमी नरककी यन्त्रणासे बच सकते हैं, तो मुझे नरक भोगनेमें आनन्द ही मिलेगा।' रामानुजके इस उत्तरने गुरुका क्रोध जाता रहा। उन्होंने बड़े प्रेमसे इन्हें गले लगाया और

आशीर्वाद दिया। इस प्रकार रामानुजने अपनी समदर्शिता और उदारताका परिचय दिया।

रामानुजने आळवन्दारकी आज्ञाके अनुसार आळवारोंके 'दिव्यप्रबन्धम्' का कई बार अनुशीलन किया और उसे कण्ठ कर डाला। उनके कई शिष्य हो गये और उन्होंने इन्हें आळवन्दारकी गद्दीपर बिठाया; परंतु इनके कई शत्रु भी हो गये, जिन्होंने कई बार इन्हें मरवा डालनेकी चेष्टा की। एक दिन इनके किसी शत्रुने इन्हें भिक्षामें विष मिला हुआ भोजन दे दिया; परंतु एक स्त्रीने इन्हें सावधान कर दिया और इस प्रकार रामानुजके प्राण बच गये। रामानुजने आळवारोंके भक्तिमार्गका प्रचार करनेके लिये सारे भारतकी यात्राकी और गीता तथा ब्रह्मसूत्रपर भाष्य लिखे। वेदान्तसूत्रोंपर इनका भाष्य 'श्रीभाष्य' के नामसे प्रसिद्ध है और इनका सम्प्रदाय भी 'श्रीसम्प्रदाय' कहलाता है; क्योंकि इस सम्प्रदायकी आद्य प्रवर्तिका श्रीमहालक्ष्मीजी मानी जाती हैं। यह ग्रन्थ पहले-पहल काश्मीरके विद्वानोंको सुनाया गया था। इनके प्रधान शिष्यका नाम कूरत्ताळवार (कूरेश) था। कूरत्ताळवारके पराशर और पिल्लन् नामके दो पुत्र थे। रामानुजने पराशरके द्वारा विष्णुसहस्रनामकी और पिल्लन्से 'दिव्यप्रबन्धम्' की टीका लिखवायी। इस प्रकार उन्होंने आळवन्दारकी तीनों इच्छाओंको पूर्ण किया।

उन दिनों श्रीरङ्गम्पर चोळदेशके राजा कुळोत्तुङ्गका अधिकार था। ये बड़े कट्टर शैव थे। इन्होंने श्रीरङ्गजीके मन्दिरपर एक ध्वजा टँगवा दी थी, जिसपर लिखा था— '**शिवात्परं नास्ति**' (शिवसे बढ़कर कोई नहीं है)। जो कोई इसका विरोध करता, उसके प्राणोंपर आ बनती थी। कुळोत्तुङ्गने रामानुजके शिष्य कूरत्ताळवारको बहुत पीड़ा दी।

इस समय आचार्य रामानुज मैसूरराज्यके शालग्राम नामक स्थानमें रहने लगे थे। वहाँके राजा भिट्टिदेव वैष्णव धर्मके सबसे बड़े पक्षपाती थे। आचार्य रामानुजने वहाँ बारह वर्षतक रहकर वैष्णव धर्मकी बड़ी सेवा की। सन् १०९९ में उन्हें नम्मले नामक स्थानमें एक प्राचीन मन्दिर मिला और राजाने उसका जीर्णोद्धार करवाकर पुनः नये ढंगसे निर्माण करवाया। वह मन्दिर आज भी तिरुनारायणपुरके नामसे प्रसिद्ध है। वहाँपर भगवान् श्रीरामका जो प्राचीन विग्रह है, वह पहले दिल्लीके बादशाहके अधिकारमें था। बादशाहकी लड़की उसे प्राणोंसे भी बढ़कर मानती थी। रामानुज अपनी योगशक्तिके द्वारा बादशाहकी स्वीकृति प्राप्तकर उस विग्रहको वहाँसे ले आये और उन्होंने पुनः तिरुनारायणपुरमें उसकी स्थापना की।

राजा कुळोत्तुङ्गका देहान्त हो जानेपर आचार्य रामानुज श्रीरङ्गम् चले आये। वहाँ उन्होंने एक मन्दिर बनवाया, जिसमें नम्माळवार और दूसरे आळवार संतोंकी प्रतिमाएँ स्थापित की गयीं और उनके नामसे कई उत्सव भी जारी किये। उन्होंने तिरुपतिके मन्दिरमें भगवान् गोविन्दराज-पेरुमलकी पुनः स्थापना करवायी और मन्दिरका पुनः निर्माण करवाया। उन्होंने देशभरमें भ्रमण करके हजारों नर-नारियोंको भक्तिमार्गमें लगाया। आचार्य रामानुजके चौहत्तर शिष्य थे, जो सब-के-सब संत हुए। इन्होंने कूरत्ताळवारके पुत्र महात्मा पिल्ललोकाचार्यको अपना उत्तराधिकारी बनाकर एक सौ बीस वर्षकी अवस्थामें इस असार संसारको त्याग दिया।

रामानुजके सिद्धान्तके अनुसार भगवान् ही पुरुषोत्तम हैं। वे ही प्रत्येक शरीरमें साक्षीरूपमें विद्यमान हैं। वे जगत्के नियन्ता, शेषी (अवयवी) एवं स्वामी हैं और जीव उनका नियम्य, शेष तथा सेवक है। अपने व्यष्टि अहङ्कारको सर्वथा मिटाकर भगवान्की सर्वतोभावेन शरण ग्रहण करना ही जीवका परम पुरुषार्थ है। भगवान् नारायण ही सत् हैं, उनकी शक्ति महालक्ष्मी चित् हैं और यह जगत् उनके आनन्दका विलास है, रज्जुमें सर्पकी भाँति असत् नहीं है। भगवान् लक्ष्मीनारायण जगत्के माता-पिता और जीव उनकी संतान हैं। माता-पिताका प्रेम और उनकी कृपा प्राप्त करना ही संतानका धर्म है। वाणीसे भगवान् नारायणके नामका ही उच्चारण करना चाहिये और मन, वाणी, शरीरसे उनकी सेवा करनी चाहिये।

श्रीरामानुजाचार्यजीके सिद्धान्तके अनुसार ब्रह्म सगुण और सविशेष है। ब्रह्मकी शक्ति माया है। ब्रह्म अशेष कल्याणकारी गुणोंके आलय हैं। जीव और जगत् उनका शरीर है। भगवान् ही आत्मा हैं। उनके गुणोंकी संख्या नहीं है। वे गुणोंमें अद्वितीय हैं। ईश्वर सृष्टिकर्ता, कर्मफलदाता, नियन्ता तथा सर्वान्तर्यामी हैं। नारायण विष्णु ही सबके अधीश्वर हैं। वे पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी और अर्चावतार भेदसे पाँच प्रकारके हैं। वे शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मधारी चतुर्भुज हैं। श्री, भू और लीलासहित हैं, किरीटादि भूषणोंसे अलंकृत हैं। अवतार दस प्रकारके हैं—मत्स्य,

कूर्म, नृसिंह, वराह, वामन, परशुराम, श्रीराम, बलभद्र, श्रीकृष्ण और कलि। इनमें मुख्य, गौण, पूर्ण और अंशभेदसे और भी अनेक भेद हैं। अवतारहेतु इच्छा है, कर्मप्रयोजन हेतु नहीं है। दुष्कृतोंके विनाश तथा साधुओंके परित्राणके लिये अवतार होता है।

श्रीरामानुजाचार्यने 'प्रपत्ति' पर बहुत जोर दिया है। न्यासविद्या ही वह प्रपत्ति है। आनुकूल्यका सङ्कल्प और प्रातिकूल्यका वर्जन ही प्रपत्ति है। भगवान्‌में आत्मसमर्पण करना प्रपत्ति है। सब प्रकारसे भगवान्‌के शरण हो जाना प्रपत्तिका लक्षण है। नारायण विभु हैं, भूमा हैं, उनके चरणोंमें आत्मसमर्पण करनेसे जीवको शान्ति मिलती है। उनके प्रसन्न होनेपर मुक्ति मिल सकती है। उन्हें सर्वस्व निवेदन करना होगा। सब विषयोंको त्यागकर उनकी शरण लेनी होगी।

पितरं मातरं दारान् पुत्रान् बन्धून् सखीन् गुरून्।
रत्नानि धनधान्यानि क्षेत्राणि च गृहाणि च॥
सर्वधर्मांश्च सन्त्यज्य सर्वकामांश्च साक्षरान्।
लोकविक्रान्तचरणौ शरणं तेऽव्रजं विभो॥

'हे प्रभो! मैं पिता, माता, स्त्री, पुत्र, बन्धु, मित्र, गुरु, सब रत्न, धन-धान्य, खेत, घर, सारे धर्म और अक्षरसहित सम्पूर्ण कामनाओंका त्यागकर समस्त ब्रह्माण्डको आक्रान्त करनेवाले आपके दोनों चरणोंकी शरणमें आया हूँ।'

सूर्यावतार श्रीनिम्बार्काचार्यजी

सूर्यावतार आचार्य निम्बार्कके कालके विषयमें बड़ा मतभेद है। इनके भक्त इन्हें द्वापरमें हुआ बताते हैं। इनके कोई-कोई मतानुयायी ईसाकी पाँचवीं शताब्दीको इनका जन्मकाल बताते हैं। वर्तमान अन्वेषकोंने बड़े प्रमाणसे इन्हें ग्यारहवीं शताब्दीका सिद्ध किया है।

कहा जाता है कि दक्षिण देशमें गोदावरीतटपर स्थित वैदूर्यपत्तनके निकट अरुणाश्रममें श्रीअरुणमुनिकी पत्नी जयन्तीदेवीके गर्भसे आचार्यचरण अवतीर्ण हुए थे। कोई-कोई इनके पिताका नाम जगन्नाथ मानते हैं और सूर्यके स्थानपर इन्हें भगवान्‌के प्रिय आयुध सुदर्शनचक्रका अवतार बताते हैं। इनके उपनयन-संस्कारके समय स्वयं देवर्षि नारदने उपस्थित होकर इन्हें श्रीगोपाल-मन्त्रकी दीक्षा दी एवं 'श्री-भू-लीला' सहित श्रीकृष्णोपासनाका उपदेश दिया। इनके गुरु नारद और नारदके गुरु सनकादि, इस प्रकार इनका सम्प्रदाय सनकादिसम्प्रदायके नामसे ही प्रसिद्ध है।

इनका मत द्वैताद्वैतवादके नामसे प्रसिद्ध है। यह कोई नया मत नहीं है बल्कि बहुत प्राचीन कालसे चला आ रहा है। श्रीनिम्बार्कने अपने भाष्यमें नारद और सनत्कुमारका नामोल्लेख किया है। चाहे जो हो, आचार्यचरणने जिस मतकी दीक्षा प्राप्त की थी; अपनी प्रतिभा, आचरण और अनुभवके द्वारा उसे उज्ज्वल बनाया।

कहते हैं कि इनका नाम पहले नियमानन्द था। देवचार्यने इसी नामसे इन्हें नमस्कार किया है। एक दिन जब ये मथुराके पास यमुनातटवर्ती ध्रुवक्षेत्रमें जहाँ इनके सम्प्रदायकी गद्दी है, निवास करते थे तब एक दण्डी अथवा किसी-किसीके मतसे एक जैन-साधु इनके आश्रमपर आये। दोनोंमें आध्यात्मिक विचार चलने लगा। उसमें ये दोनों इतने तल्लीन हो गये कि शाम हो गयी और इन्हें पता ही न चला। सूर्यास्त होनेपर जब आचार्यने अपने अतिथिको भोजन कराना चाहा तब उन्होंने सूर्यास्तकी बात कहकर आतिथ्य ग्रहण करनेमें असमर्थता

प्रकट की; क्योंकि दण्डी या जैन लोगोंके लिये सन्ध्या या रात्रिमें भोजन करना निषिद्ध है। उस समय अतिथिसत्कारसे अत्यन्त प्रेम रखनेवाले आचार्यचरणको बड़ी चिन्ता हुई कि अथितिको बिना भोजन कराये कैसे जाने दें। जब उनके हृदयमें बड़ी वेदना हुई तब भक्तभयहारी भगवान्ने एक बड़ी सुन्दर लीला रची। सबने देखा, उन अतिथि साधुने भी देखा और स्वयं आचार्य निम्बार्कने देखा कि उनके आश्रमके पास ही एक नीमके वृक्षके ऊपर सूर्य प्रकाशित हो रहे हैं। सभीको बड़ा आश्चर्य हुआ। भगवान्की इस अपार करुणाका दर्शन करके आचार्यका हृदय गद्गद हो गया। शरीर पुलकित हो गया। उनके सामने तो उनके आराध्यदेव स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ही सूर्यरूपसे उपस्थित थे। उन्होंने निहाल होकर अतिथिको भोजन कराया और इसके पश्चात् वे सूर्यभगवान् अस्त हो गये। लोगोंने भगवान्की इस कृपाको आचार्यकी योगसिद्धिके रूपमें ग्रहण किया और तभीसे इनका नाम निम्बादित्य या निम्बार्क पड़ गया। इन्होंने न जाने कितने ग्रन्थोंकी रचना की होगी। परंतु अब तो एकमात्र वेदान्तसूत्रोंके भाष्य, वेदान्त-पारिजातसौरभके अतिरिक्त इनका और कोई प्रधान ग्रन्थ नहीं मिलता।

इनके विरक्त शिष्य केशवभट्टके अनुयायी विरक्त होते हैं और गृहस्थ शिष्य हरिव्यासके अनुयायी गृहस्थ होते हैं। इनके सम्प्रदायमें श्रीराधा-कृष्णकी पूजा होती है और लोग गोपीचन्दनका तिलक लगाते हैं।

इनके सम्प्रदायमें श्रीमद्भागवतको प्रधान ग्रन्थ माना जाता है। इनके मतमें ब्रह्मसे जीव और जगत् पृथक् भी हैं और एक भी हैं। इसी सिद्धान्तके आधारपर इनका मत स्थापित हुआ है। गौड़ीय मतसे मिलता-जुलता होनेपर भी इनका सिद्धान्त कई बातोंमें उनसे अत्यन्त भिन्न है।

वायुदेवके अवतार श्रीमध्वाचार्यजी

श्रीभगवान् नारायणकी आज्ञासे स्वयं वायुदेवने ही [भ]क्तिसिद्धान्तकी रक्षाके लिये मद्रास-प्रान्तके मंगलूर जिलेके [अ]न्तर्गत उडूपाक्षेत्रसे दो-तीन मील दूर वेललि ग्राममें भार्गवगोत्रीय [ना]रायणभट्टके अंशसे तथा माता वेदवतीके गर्भसे विक्रम [सं]वत् १२९५ की माघ शुक्ला सप्तमीके दिन आचार्य मध्वके रूपमें अवतार ग्रहण किया था। कई लोगोंने आश्विन शुक्ला दशमीको इनका जन्म-दिन माना है। परंतु वह इनके वेदान्तसाम्राज्यके अभिषेकका दिन है, जन्मका नहीं। इनके जन्मके पूर्व पुत्रप्राप्तिके लिये माता-पिताको बड़ी तपस्या करनी पड़ी थी। बचपनसे ही इनमें अलौकिक शक्ति दीखती थी। इनका मन पढ़ने-लिखनेमें नहीं लगता था; अतः यज्ञोपवीत होनेपर भी ये दौड़ने, कूदने-फाँदने, तैरने और कुश्ती लड़नेमें ही लगे रहते थे। इस कारण बहुत-से लोग इनके पितृदत्त नाम वासुदेवके स्थानपर इन्हें 'भीम' नामसे पुकारते थे। ये वायुदेवके अवतार थे, इसलिये यह नाम भी सार्थक ही था। परंतु इनका अवतार-उद्देश्य खेलना-कूदना तो था नहीं; अतः जब वेद-शास्त्रोंकी ओर इनकी रुचि हुई, तब थोड़े ही दिनोंमें इन्होंने सम्पूर्ण विद्या अनायास ही प्राप्त कर ली। जब इन्होंने संन्यास लेनेकी इच्छा प्रकट की, तब मोहवश माता-पिताने बड़ी अड़चनें डालीं; परंतु इन्होंने उनकी इच्छाके अनुसार उन्हें कई चमत्कार दिखाकर, जो अवतक एक सरोवर और वृक्षके रूपमें इनकी जन्म-भूमिमें विद्यमान हैं और एक छोटे भाईके जन्मकी बात कहकर ग्यारह वर्षकी अवस्थामें अद्वैतमतके संन्यासी अच्युतपक्षाचार्यजीसे संन्यास ग्रहण किया। यहाँपर

इनका संन्यासी नाम 'पूर्णप्रज्ञ' हुआ। संन्यासके पश्चात् इन्होंने वेदान्तका अध्ययन आरम्भ किया। इनकी बुद्धि इतनी तीव्र थी कि अध्ययन करते समय ये कई बार गुरुजीको ही समझाने लगते और उनकी व्याख्याका प्रतिवाद कर देते। सारे दक्षिण देशमें इनकी विद्वत्ताकी धूम मच गयी।

एक दिन इन्होंने अपने गुरुसे गङ्गास्नान और दिग्विजय करनेके लिये आज्ञा माँगी। ऐसे सुयोग्य शिष्यके विरहकी सम्भावनासे गुरुदेव व्याकुल हो गये। उनकी व्याकुलता देखकर अनन्तेश्वरजीने कहा कि भक्तोंके उद्धारार्थ गङ्गाजी स्वयं सामनेवाले सरोवरमें परसों आयेंगी, अत: वे यात्रा न कर सकेंगे। सचमुच तीसरे दिन उस तालाबमें हरे पानीके स्थानपर सफेद पानी हो गया और उसमें तरङ्गें दीखने लगीं। अतएव आचार्यकी यात्रा नहीं हो सकी। अब भी हर बारहवें वर्ष एक बार वहाँ गङ्गाजीका प्रादुर्भाव होता है। वहाँ एक मन्दिर भी है।

कुछ दिनोंके बाद आचार्यने यात्रा की और स्थान-स्थानपर विद्वानोंके साथ शास्त्रार्थ किया। इनके शास्त्रार्थका उद्देश्य होता—भगवद्भक्तिका प्रचार, वेदोंकी प्रामाणिकताका स्थापन, मायावादका खण्डन और मर्यादाका संरक्षण। एक जगह तो इन्होंने वेद, महाभारत और विष्णुसहस्रनामके क्रमश: तीन, दस और सौ अर्थ हैं—ऐसी प्रतिज्ञा करके और व्याख्या करके पण्डितमण्डलीको आश्चर्यचकित कर दिया। गीताभाष्यका निर्माण करनेके पश्चात् इन्होंने बदरीनारायणकी यात्रा की और वहाँ महर्षि वेदव्यासको अपना भाष्य दिखाया। कहते हैं कि दु:खी जनताका उद्धार करनेके लिये उपदेश और ग्रन्थनिर्माण आदिकी इन्हें आज्ञा प्राप्त हुई। बहुत-से नृपतिगण इनके शिष्य हुए। अनेक विद्वानोंने पराजित होकर इनका मत स्वीकार किया। इन्होंने अनेक प्रकारकी योगसिद्धियाँ प्राप्त की थीं और इनके जीवनमें समय-समयपर वे सिद्धियाँ प्रकट भी हुईं। इन्होंने अनेक मूर्तियोंकी स्थापना की और इनके द्वारा प्रतिष्ठित विग्रह आज भी विद्यमान हैं। श्रीबदरीनारायणमें व्यासजीने इन्हें शालग्रामकी तीन मूर्तियाँ भी दी थीं, जिन्हें इन्होंने सुब्रह्मण्य, उडुपि और मध्यतलमें स्थापित किया। एक बार किसी व्यापारीका जहाज द्वारकासे मलाबार जा रहा था। तुलुवके पास वह डूब गया। उसमें गोपीचन्दनसे ढकी हुई भगवान् श्रीकृष्णकी एक सुन्दर मूर्ति थी। माध्वाचार्यको भगवान्की आज्ञा प्राप्त हुई और उन्होंने मूर्तिको जलसे निकालकर उडुपिमें उसकी स्थापना की। तभीसे वह रजतपीठपुर अथवा उडुपि मध्वमतानुयायियोंका तीर्थ हो गया। एक बार एक व्यापारीके डूबते हुए जहाजको इन्होंने बचा दिया। इससे प्रभावित होकर वह अपनी आधी सम्पत्ति इन्हें देने लगा। परंतु इनके रोम-रोममें भगवान्का अनुराग और संसारके प्रति विरक्ति भरी हुई थी। ये भला उसे क्यों लेने लगे। इनके जीवनमें इस प्रकारके असामान्य त्यागके बहुत-से उदाहरण हैं। कई बार लोगोंने इनका अनिष्ट करना चाहा और इनके लिखे हुए ग्रन्थ भी चुरा लिये; परंतु आचार्य इससे तनिक भी विचलित या क्षुब्ध नहीं हुए, बल्कि उनके पकड़े जानेपर उन्हें क्षमा कर दिया और उनसे बड़े प्रेमका व्यवहार किया। ये निरन्तर भगवच्चिन्तनमें संलग्न रहते थे। बाहरी काम-काज भी केवल भगवत्-सम्बन्धसे ही करते थे। इन्होंने उडुपिमें और भी आठ मन्दिर स्थापित किये, जिनमें श्रीसीताराम, द्विभुज कालियदमन, चतुर्भुज कालियदमन, विट्ठल आदि आठ मूर्तियाँ हैं। आज भी लोग उनका दर्शन करके अपने जीवनका लाभ लेते हैं। ये अपने अन्तिम समयमें सरिदन्तर नामक स्थानमें रहते थे। यहींपर उन्होंने परम धामकी यात्रा की। देहत्यागके अवसरपर पूर्वाश्रमके सोहनभट्टको—अब जिनका नाम पद्मनाभतीर्थ हो गया था—श्रीरामजीकी मूर्ति और व्यासजीकी दी हुई शालग्रामशिला देकर अपने मतके प्रचारकी आज्ञा दे गये। इनके शिष्योंके द्वारा अनेक मठ स्थापित किये गये तथा इनके द्वारा रचित अनेक ग्रन्थोंका प्रचार होता रहा।

श्रीमन्मध्वाचार्यके उपदेश

१-श्रीभगवान्का नित्य-निरन्तर स्मरण करते रहना चाहिये, जिससे अन्तकालमें उनकी विस्मृति न हो; क्योंकि सैकड़ों बिच्छुओंके एक साथ डंक मारनेसे शरीरमें जैसी पीड़ा होती है, वैसी ही पीड़ा मरणकालमें मनुष्यको होती है; वात, पित्त, कफसे कण्ठ अवरुद्ध हो जाता है और नाना प्रकारके सांसारिक पाशोंसे जकड़े रहनेके कारण मनुष्यको बड़ी घबराहट हो जाती है। ऐसे समयमें भगवान्की स्मृतिको बनाये रखना बड़ा कठिन हो जाता है। (द्वा० स्तो० १।१२)

२-सुख-दुःखोंकी स्थिति कर्मानुसार होनेसे उनका अनुभव सभीके लिये अनिवार्य है। इसीलिये सुखका अनुभव करते समय भी भगवान्को न भूले तथा दुःखकालमें भी उनकी निन्दा न करे। वेद-शास्त्रसम्मत कर्ममार्गपर अटल रहो। कोई

भी कर्म करते समय बड़े दीनभावसे भगवान्‌का स्मरण करो। भगवान् ही सबसे बड़े, सबके गुरु तथा जगत्‌के माता-पिता हैं। इसीलिये अपने सारे कर्म उन्हींके अर्पण करने चाहिये। (द्वा०स्तो० ३।१)

३-व्यर्थके सांसारिक झंझटोंके चिन्तनमें अपना अमूल्य समय नष्ट न करो। भगवान्‌में ही अपने अन्तःकरणको लीन करो। विचार, श्रवण, ध्यान तथा स्तवनसे बढ़कर संसारमें अन्य कोई पदार्थ नहीं है। (द्वा० स्तो० ३।२)

४-भगवान्‌के चरणकमलोंका स्मरण करनेकी चेष्टामात्रसे ही तुम्हारे पापोंका पर्वत-सा ढेर नष्ट हो जायगा। फिर स्मरणसे तो मोक्ष होगा ही, यह स्पष्ट है। ऐसे स्मरणका परित्याग क्यों करते हो। (द्वा० स्तो० ३।३)

५-सज्जनो! हमारी निर्मल वाणी सुनो। दोनों हाथ उठाकर शपथपूर्वक हम कहते हैं कि भगवान्‌की बराबरी करनेवाला भी इस चराचर जगत्‌में कोई नहीं है, फिर उनसे श्रेष्ठ तो कोई हो ही कैसे सकता है। वे ही सबसे श्रेष्ठ हैं। (द्वा० स्तो० ३।४)

६-यदि भगवान् सबसे श्रेष्ठ न होते तो समस्त संसार उनके अधीन किस प्रकार रहता; और यदि समस्त संसार उनके अधीन न होता तो संसारके सभी प्राणियोंको सदा-सर्वदा सुखकी ही अनुभूति होनी चाहिये थी। (द्वा० स्तो० ३।५)

प्रभु श्रीनाथजीके वदनावतार—महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यजी

(श्रीप्रभुदासजी वैरागी, एम्०ए०, बी०एड्०, साहित्यालङ्कार)

श्रीमद्वल्लभाचार्यजीका प्रादुर्भाव इस देवभूमि भारतवर्षपर उस समय हुआ था, जब यहाँ भारतीय संस्कृतिपर म्लेच्छोंके अनवरत चतुर्दिक् आक्रमण हो रहे थे और मायावादके प्रचारके कारण समाजमें बड़ी निराशा छायी हुई थी। दूसरी ओर संघर्ष, अविश्वास, प्रभुके प्रति अनास्था और अशान्ति फैली हुई थी। मनुष्य भौतिक सुख-सुविधाओंपर गौरव कर रहा था लेकिन उसके जीवनमें आनन्द तो कोसों दूर रहा, कहीं भी न तो सुख था और न शान्ति थी। ऐसे संक्रान्तिकालमें साक्षात् भगवदवतार श्रीमन्महाप्रभुजी श्रीमद्वल्लभाचार्यजी अवतरित होकर इस धराधामपर पधारे और उन्होंने अपने बताये भगवत्सेवा-स्मरण तथा ज्ञानोपदेशसे दिग्भ्रमित भारतवासियोंके जीवनको रसमय और आनन्दमय बना दिया। उन्होंने अपने 'चतुःश्लोकी' में कहा है कि सच्चिदानन्द प्रभु श्रीकृष्णचन्द्रको सर्वात्मना-सर्वभावेन समर्पण करके उनकी ही शरणमें रहनेसे मानवमात्रका कल्याण हो सकता है। अपना (जीवमात्रका) यही धर्म है। कभी कहीं भी इसके सिवा दूसरा धर्म नहीं है—

सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिपः।
स्वस्यायमेव धर्मो हि नान्यः क्वापि कदाचन॥

आचार्यचरण श्रीमद्वल्लभाचार्यजीने किंकर्तव्यविमूढ़ मानवको श्रीकृष्णसेवाका परम मङ्गलमय मार्ग दिखलाया, उस भगवत्सेवा-रससुरभित अत्यन्त आह्लादकारी सुरम्य मार्गपर चलकर आज भी असंख्य वैष्णव अपने जीवनको सार्थक तथा रससिक्त बनाते चले जा रहे हैं।

अवतारका अभिप्राय होता है अवतरण। आचार्यचरण श्रीमद्वल्लभाचार्यजी साक्षात् भगवदवतार थे। भगवान् श्रीकृष्णकी सरस भक्तिका प्रचार-प्रसार करनेके लिये ही वे भूतलपर पधारे थे। प्रत्येक अवतारमें अलौकिकता विद्यमान रहती है। उसमें प्रादुर्भाव भी आश्चर्यजनक होता है और गमन भी आश्चर्यजनक। पिता श्रीलक्ष्मणभट्ट उपद्रव होनेपर काशी छोड़कर अपने यात्रादलके साथ मध्यप्रदेशके चम्पारण्य नामक स्थानपर पहुँचे। वहाँ इनकी माता श्रीइल्लमागारुजीको

प्रसववेदना हुई तो वे वहीं अरण्यमें रुक गये। वहाँ वि०सं० १५३५ वैशाख कृष्ण एकादशी रविवारके दिन सात माहका बालक प्रकट हुआ। बालकको चेष्टाविहीन समझकर पिताजीने उसे शमीवृक्षके कोटरमें ले जाकर रख दिया। माताने नवजात बालकको मृत मानकर संतोष कर लिया। कुछ दिन बाद उपद्रव शान्त होनेपर पुनः काशी लौटते समय माता श्रीइल्लमागारुजी अपने पतिको साथ लेकर शमीवृक्षके पास पहुँचीं तो देखा कि एक सुन्दर बालक सकुशल अग्निके घेरेमें खेल रहा है। बालककी सुन्दरता मनको मोह रही थी। माता उसे लेने आगे बढ़ीं तो अग्निदेवने उन्हें रास्ता दे दिया—तत्क्षण माँने उस सुन्दर शिशुको गोदमें उठा लिया। वही बालक बड़ा होनेपर श्रीमद्वल्लभाचार्यजी श्रीमहाप्रभु महाराजके नामसे सुप्रसिद्ध हुआ। उसी प्रकार मध्यवय पार करनेपर वि०सं० १५८७ आषाढ़ शुक्ल तृतीयाके दिन मध्याह्नमें श्रीमहाप्रभुजीने गङ्गाजीमें प्रवेश किया और जहाँ प्रवेश किया वहाँसे एक अग्निका प्रतिबिम्ब उठा, वह देखते-ही-देखते आकाशकी ओर जाकर भुवनभास्करके तेजमें विलीन हो गया। गङ्गातटपर असंख्य नर-नारी इस अद्भुत दृश्यको देखकर भौचक्के रह गये। इस प्रकार श्रीमहाप्रभुजीकी अवतार-लीला सम्पन्न हुई।

श्रीवल्लभाचार्यजीकी मेधाशक्ति अनुपम और असाधारण थी। उनकी स्मरणशक्ति भी बड़ी अद्भुत थी। उन्होंने अल्प समयमें ही सांख्य, योग, वैशेषिक, पूर्वमीमांसा, उत्तरमीमांसाका अध्ययन कर लिया। साथ ही शंकर, रामानुज, विष्णुस्वामी, मध्वप्रभृति आचार्योंके वेदान्त-भाष्योंका भी अध्ययन किया। बालककी अद्भुत तेजस्विता देखकर सब हतप्रभ रह जाते। स्वयं अग्निदेवने प्रकट होकर श्रीलक्ष्मणभट्टसे कहा कि मैं ही तुम्हारे पुत्ररूपमें प्रकट हुआ हूँ, इसीलिये श्रीमद्वल्लभाचार्यजी पुष्टिसम्प्रदायमें वैश्वानरावतार माने गये हैं।

अपने प्रवासके प्रसङ्गमें आप पुरी पधारे, उस समय वहाँ विद्वत्सभा हो रही थी। राजा स्वयं उस सभामें उपस्थित थे। सभामें चार प्रश्नोंपर वैचारिक मन्थन चल रहा था—

१-मुख्य शास्त्र कौन-सा है?

२-मुख्य देव कौन है?

३-मुख्य मन्त्र क्या है?

४-मुख्य कर्म क्या है?

किंतु सर्वमान्य समाधान नहीं हो पा रहा था। वहाँ श्रीमद्वल्लभाचार्यजीके मुखकमलसे भगवद्वाणी ही प्रस्फुटित हुई, लेकिन कतिपय हठी पण्डितोंने उसे नहीं माना। तब श्रीमद्वल्लभाचार्यजीकी प्रार्थनापर साक्षात् प्रभु श्रीजगन्नाथजीने अपने हस्ताक्षरसहित प्रमाणीकरण दे दिया कि—

१-भगवान् देवकीपुत्र श्रीकृष्णद्वारा गायी गयी श्रीमद्भगवद्गीता ही एकमात्र शास्त्र है।

२-देवकीनन्दन श्रीकृष्ण ही एकमात्र देव हैं।

३-भगवान् श्रीकृष्णका नाम ही मन्त्र है।

४-भगवान् श्रीकृष्णकी सेवा ही एकमात्र कर्म है।

अब तो सभीने नतमस्तक होकर इस सिद्धान्तको स्वीकार कर लिया। अपने असाधारण ज्ञानके कारण श्रीमद्वल्लभाचार्यजी बालसरस्वती कहे जाने लगे।

आचार्यचरण श्रीमद्वल्लभाचार्यजीने पुष्टिमार्ग और पूर्णपुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णकी भक्तिका प्रचार करनेके लिये आसेतुहिमालय भारतवर्षकी तीन परिक्रमाएँ कीं। प्रत्येक परिक्रमामें भगवान् श्रीकृष्णके अलग-अलग स्वरूप उनके साथ थे। तप्त मरुभूमि, उत्तुंग पर्वतप्रदेश और सघन काननमें कंटकाकीर्ण मार्गपर चलते हुए श्रीमद्वल्लभाचार्यजीको बड़ी कठिनाइयाँ होतीं। इस प्रकार भ्रमण करते हुए श्रीमद्भागवतको जन-जनके घटमें उतारकर प्रभु श्रीकृष्णचन्द्रकी कालजयी महिमाकी पुनः-पुनः स्मृति और प्रतिष्ठापना करनेके लिये ही आप यत्र-तत्र-सर्वत्र नन्दनन्दन भगवान् श्रीकृष्णका कलिकलुषनाशक कीर्तिगान तथा उनके सर्वसिद्धिदायक पादपद्मोंका जयघोष करने लगे। विद्वत्समाजमें आपने यह विश्वास जगा दिया कि श्रीकृष्ण सनातन ब्रह्म ही हैं—'**कृष्णो ब्रह्मैव शाश्वतम्।**' आगे आप ओरछाकी राजधानी गढ़कुंडार पधारे। वहाँ आपने घटसरस्वतीके साथ हुए शास्त्रार्थमें उन्हें निरुत्तर कर दिया, फिर प्रयाग होते हुए आप काशी पधारे, वहाँ मणिकर्णिका घाटपर विद्वत्समाजमें गम्भीर शास्त्रचर्चा हुई। यहींपर काशीके नगरसेठ श्रीपुरुषोत्तमदास क्षत्रिय आपसे प्रभावित हो गये और सश्रद्धया आपको अपने घर पधराया। श्रीमद्वल्लभाचार्यजीने उनकी भक्तिपर रीझकर उन्हें श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके अन्तर्गत श्रीकृष्णजन्म-महोत्सवकी कथा सुनायी। श्रीमहाप्रभुजी तो जहाँ भी पधारते थे, श्रीमद्भागवतका मुखपारायण ही करते थे।

काशीमें उस समय शैव और वेदान्ती विद्वानोंका बाहुल्य था। वे वैष्णवसिद्धान्तोंके प्रतिकूल थे। यदि कोई ब्रह्मवादकी बात करता तो वे संघर्ष खड़ा कर देते थे। इसपर आपने 'पत्रावलम्बन' नामक ग्रन्थकी रचना की। इसमें वेदके पूर्वमीमांसा तथा उत्तरमीमांसाके मध्य समन्वयात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। इसीमें आपने मायावादका निवारण किया और ब्रह्मवाद सिद्ध कर दिखाया। उसके बाद श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्र श्रीजगन्नाथपुरीमें भगवत्प्रसादकी महिमा बतलाते हुए विजयनगरमें प्रवेश कर गये। वहाँ राजा कृष्णदेवने विराट् धर्मसभाका आयोजन कर रखा था। अनुनय-विनय होनेपर श्रीमद्वल्लभाचार्यजी उस धर्मसभामें पहुँचे। वहाँ श्रीमद्भागवतको श्रीवेदव्यासजीकी समाधिभाषा प्रमाणित करनेके लिये आपने अनेक दृष्टान्त दिये। शास्त्रार्थमें विभिन्न पण्डितोंके तर्कसम्मत प्रश्नोंका आपने सतर्क प्रत्युत्तर देकर सभीको सन्तुष्ट कर दिया और वहाँ ब्रह्मवादकी विजयपताका फहरा दी। सभी पण्डितोंने मिलकर आपका कनकाभिषेक किया तथा आपको 'वाचस्पति' स्वीकार कर लिया। यहींपर राजा कृष्णदेवने और अन्य आचार्यों तथा विद्वानोंने सर्वसम्मतिसे आपको 'अखण्डभूमण्डलाचार्यवर्य जगद्गुरु श्रीमदाचार्य श्रीमहाप्रभु' की उपाधिसे विभूषित कर महामहिमा-मण्डित कर दिया। भारतभ्रमण करते हुए आपने चौरासी बैठकें स्थापित कीं और चौरासी वैष्णव बनाये।

बालसरस्वती, वाचस्पति, दिग्विजयी, अखण्डभूमण्डलाचार्यवर्य श्रीमहाप्रभु, अदेयदानदक्ष तथा धर्मके मूर्तिमान् स्वरूप-जैसी महाविरुदावलियोंसे विभूषित होते हुए भी आपका परम संत-सा रहन-सहन था। भारतवर्षमें आप लोकप्रियताके शिखरपर पहुँच चुके थे। सर्वत्र जय-जयकार हो रही थी। जिस पथसे श्रीमहाप्रभुजी पधारते थे, उस पथपर अंकित श्रीमहाप्रभुजीके चरणचिह्नकी रेणुको श्रद्धालु अपने सिरपर चढ़ाते थे। राजासे लेकर रंकतक आपकी सरस वाणी, मोहक व्यक्तित्व, असाधारण पाण्डित्य, चूडान्तज्ञान, स्पष्ट विचारधारा और अनूठी भगवत्सेवाप्रणालीसे प्रभावित थे तथा अनेक विद्वान् सम्भ्रान्तजन आपके शिष्य बनते चले जा रहे थे। भगवदाज्ञा होते ही श्रीमद्वल्लभाचार्यजी श्रीगोवर्धनपर देवदमन श्रीनाथजीके दर्शन करने चल पड़े। बीचमें आप व्रजमें गोकुलके श्रीगोविन्दघाटपर पधारे। वहाँ वि०सं० १५६३ श्रावणमासके शुक्लपक्षकी एकादशी गुरुवारको साक्षात् प्रभु श्रीनाथजीसे आपने ब्रह्मसम्बन्धकी दीक्षा ग्रहण की। यह भी कम विस्मयकी बात नहीं है कि जब चम्पारण्यमें माँ श्रीइल्लमागारुजीकी कोखसे श्रीवल्लभाचार्यजीका प्रादुर्भाव हुआ; ठीक उसी दिन, उसी समय श्रीगोवर्धनगिरिपर प्रभु श्रीनाथजीके मुखारविन्दका प्राकट्य हुआ। इसीलिये श्रीहरिराय महाप्रभुने श्रीवल्लभाचार्यजीको प्रभु श्रीनाथजीका 'वदनावतार' कहा है। भक्त श्रीसगुणदासने भी ***'प्रगटे जान पूरन पुरुषोत्तम'*** कहकर आपके अवतारकी पुष्टि की है। आपने श्रीगोवर्धनमें ही रहकर श्रीगिरिराजजीपर मन्दिर बनवाया, उसमें आनन्दकन्द सच्चिदानन्द प्रभु श्रीनाथजीकी स्थापना की। अनेक भक्तोंको आत्मनिवेदन कराते हुए प्रभुके समक्ष ब्रह्मसम्बन्धकी दीक्षाएँ दीं। वहाँ विराजते हुए आपने पुष्टिसम्प्रदायकी परमानन्ददायक वल्लरीको पल्लवित, पुष्पित और सुगन्धित किया; जिसके अन्तर्गत प्रवहमान श्रीकृष्ण-चरणानुरक्ति एवं भगवत्सेवानुरागके सुखद सुवाससे समग्र भारतवर्ष सुरभित हो उठा। प्रभु श्रीनाथजीकी सेवा-व्यवस्था व्यवस्थित की तथा प्रभुकी कीर्तन-सेवाके लिये उस समयके चार प्रमुख गायकों—भक्तकवि कुम्भनदास, सूरदास, परमानन्ददास और कृष्णदासको सेवामें नियुक्त किया। प्रभुकी कीर्तनसेवाका शुभारम्भ आपसे प्रारम्भ हुआ। बादमें आपके यशस्वी सुपुत्र श्रीगुसाँईजी महाराजने चार और गायक—भक्त कवि नन्ददास, चतुर्भुजदास, गोविन्दस्वामी और छीतस्वामीको रखकर 'अष्टछाप' की स्थापना करके भारतवर्षमें भक्ति-साहित्य-संगीतकी कलिमलहारिणी कलिन्दजा प्रवाहित कर दी। उन्होंने प्रभुकी दुग्धसेवाके लिये गौमाता रखी तथा अपने अनेक भगवदीय कार्योंसे जन-जनको चमत्कृत करते हुए व्रजमें रहकर प्रभु श्रीकृष्णचन्द्रके अनेक लीलास्थलोंकी खोज की तथा उनका पुनरुद्धार कराया। अब तो श्रीमहाप्रभुजीकी कृपासे कलियुगमें भी द्वापरयुगकी श्रीकृष्णचन्द्रकी मधुरातिमधुर बाललीलाओंके प्रत्यक्ष दर्शन व्रजभक्तोंको होने लगे। सम्पूर्ण व्रजमण्डलमें ब्रह्मानन्दका साम्राज्य हो गया।

इसके पश्चात् आप पंढरपुर पधारे। पंढरपुरमें श्रीहरिविट्ठलने एक सुलक्षणा कन्यासे विवाह कर गृहस्थीमें प्रवेश करनेकी आज्ञा दी। आप काशी आ गये और प्रभुकी आज्ञा शिरोधार्य कर श्रीमहालक्ष्मी नामक सुशील कन्यासे विवाह किया तथा अपनी गृहस्थी बसायी। तदनन्तर श्रीसुबोधिनीजीके लेखनका कार्य हाथमें ले लिया। श्रीसुबोधिनीजीको सुनने तो भगवदवतार

श्रीकृष्णद्वैपायन श्रीवेदव्यासजी स्वयं श्रीमहाप्रभुजीके सामने प्रकट हो गये और सम्पूर्ण श्रीसुबोधिनीजीका श्रवण किया। उसके बाद तो आपकी सरस्वती प्रवहमान होती ही गयी। गायत्रीभाष्य, तत्त्वार्थदीपनिबन्ध, शास्त्रार्थप्रकरण, श्रीपुरुषोत्तम-सहस्रनाम एवं अणुभाष्यकी रचना हुई। 'अन्तःकरणप्रबोध' में श्रीमहाप्रभुजी लिखते हैं—

अन्तःकरण मद्वाक्यं सावधानतया शृणु।
कृष्णात् परं नास्ति दैवं वस्तुतो दोषवर्जितम्॥

हे अन्तःकरण! मेरे वचनको सावधान होकर सुनो, वस्तुतः श्रीकृष्णके अतिरिक्त दूसरा दोषरहित कोई देवता नहीं है।

इसी प्रकार 'नवरत्न' में भी आप कहते हैं—

तस्मात् सर्वात्मना नित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम।
वदद्भिरेव सततं स्थेयमित्येव मे मतिः॥

इसलिये सर्वात्मभावसे नित्य-निरन्तर '**श्रीकृष्णः शरणं मम**' बोलते हुए जीवन व्यतीत करे—यह मेरी सम्मति है।

स्वयं श्रीमहाप्रभुजीने अपने जीवनमें प्रभु श्रीकृष्णचन्द्रके नामका कभी भी विस्मरण नहीं किया। पूर्वजोंसे चली आ रही परम्परामें तीन सोमयागोंकी पूर्ति की।

अत्यधिक व्यस्तता होते हुए भी आप वारम्बार श्रीगिरिराजगोवर्धन पधारते और प्रभु श्रीनाथजीकी सेवा-व्यवस्था सँभालते। इस प्रकार श्रीमहाप्रभुजी समग्र भारत राष्ट्रको श्रीकृष्णभक्तिरसमें सराबोर करके जन-जनको श्रीकृष्णमय बनाकर काशी पधार गये। वहाँ हनुमानघाटपर रहते हुए आपने मौनव्रत ले लिया और संन्यास-ग्रहण करके अपनी अन्तिम लीलाका संवरण किया।

अनेक कवियोंने श्रीमहाप्रभुजी श्रीमद्वल्लभाचार्यजीके अवतारवादकी अपनी-अपनी कविताओंमें वन्दना की है—

प्रगटे कृष्णानन द्विज रूप।
माधव मास कृष्ण एकादशी आये अग्नि सरूप।
दैवी जीव उद्धारण कारण आनन्दमय रस रूप।
वल्लभ प्रभु गिरिधर प्रभु दोऊ तेई एई एक स्वरूप॥

कवि रसिक लिखते हैं—

प्रगट है मारग रीति दिखाई।
परमानन्दस्वरूप कृपानिधि श्रीवल्लभ सुखदाई।

कवि हरिजीवन भी इस प्रकार लिखते हैं—

आज जगती पर जय जयकार।
अधम उधारन करुणासागर प्रगटे अग्नि-अवतार॥

एक कविने ऐसा भी लिखा है—

सब मिल गावो गीत वधाई।
श्रीलक्ष्मण गृह प्रगट भये श्रीवल्लभ सुखदाई।
उधरे भाग सकल भक्तनके पुष्टि भक्ति प्रगटाई।
यशोमति सुत निज सुख देवेको मुख मूरति प्रगटाई॥

इसी प्रकार एक अन्य कविने ऐसा भी लिखा है—

श्रीवल्लभपुरुषोत्तम रूप।
सुन्दर वदन विशाल कमल रंग मुख मृदु बोलत वचन अनूप।
कोटि मदन वारी अंग अंग पर भुज मृणाल अति सरस सरूप।
दैवी जीव उद्धारन प्रकटे दास शरण लक्ष्मण कुलभूप॥

आगे देखिये—

माधव मास एकादशी शुभ दिन श्रीलछमन कुल आये हो।
नन्दनन्दन जासों कहियत सो द्विजवर रूप कहाये हो।

श्रीहरिराय महाप्रभुकी काव्यस्तुति भी देखिये—

प्रगटे पुष्टिमहारस देन।
श्रीवल्लभ हरिभाव अग्नि मुख रूप समर्पित लेन।
नित्य सम्बन्ध कराय दयानिध विरह अलौकिक चेन।
यह प्राकट्य रहत हृदयमें तीन लोक भेदनको ऐन।
रहिये ध्यान सदा इनके पद पातक कोऊ न लगेन।
रसिक कहे निरधार निगम गति साधन ओर न हेन॥

पुष्टिसम्प्रदायमें श्रीमद्वल्लभाचार्यजी श्रीमहाप्रभुजीको साक्षात् श्रीकृष्णस्वरूप प्रभु श्रीनाथजीका मुखावतार माना गया है। इसी कारण उनकी पवित्र पादुकाएँ, जिन्हें धारण कर उन्होंने सम्पूर्ण भारतकी परिक्रमाएँ की थीं और श्रीकृष्णभक्तिका प्रचार-प्रसार किया था, अद्यावधिपर्यन्त श्रीवल्लभसम्प्रदायके मन्दिरोंमें विराजमान हैं और उन्हें भगवत्स्वरूप मानकर उनकी नित्य सेवा की जाती है।

~~o~~

हे जिह्वे रससारज्ञे सर्वदा मधुरप्रिये।
नारायणाख्यपीयूषं पिब जिह्वे निरन्तरम्॥

'सर्वदा मधुर रसको चाहनेवाली हे मधुरप्रिये जिह्वे! तू निरन्तर 'नारायण' नामक अमृतका पान कर।'

~~o~~

प्रेमावतार—श्रीचैतन्यमहाप्रभुजी

(स्वामी श्रीअजस्रानन्दजी महाराज)

शास्त्रोंमें धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—इन चार पुरुषार्थोंका सम्यक् रूपसे वर्णन हुआ है, परंतु भगवद्विमुख मानव-जीवनमें भगवान्के प्रति प्रेमका उदय एवं संवर्द्धन हो कैसे—ऐसे दिव्य सर्वसाधन-सार 'प्रेम' नामके 'पञ्चम-पुरुषार्थ' का चैतन्य महाप्रभुजीने स्वयं जीवनमें आचरण कर प्रकाश किया है, तभी भक्तजन गान करते हैं—

यस्यैव पादाम्बुजभक्तिलभ्यः
प्रेमाभिधानः परमः पुमर्थः।
तस्मै जगन्मङ्गलमङ्गलाय
चैतन्यचन्द्राय नमो नमस्ते॥

भाव यह है कि जिनके चरणकमलोंकी भक्तिसे 'प्रेम' नामक परम पुरुषार्थ प्राप्त होता है, उन जगत्के लिये मङ्गलोंके भी मङ्गल चैतन्यचन्द्रको बार-बार नमस्कार है।

सर्वप्रथम संक्षेपमें 'प्रेम' किसे कहते हैं? प्रेमावतार किसे कहते हैं, इसे जान लेनेकी आवश्यकता है। देवर्षि नारद प्रेमके, प्रीतिके तथा भक्तिके आचार्य हैं। आपने लोकपर अनुग्रह करते हुए भक्तिसम्बन्धी चौरासी सूत्रोंका प्रणयन किया है, जिन्हें 'नारद-भक्तिसूत्र' के नामसे जाना जाता है। प्रेमतत्त्वको परिभाषित करते हुए श्रीनारदजी प्रेमका स्वरूप इस प्रकार बताते हैं—

'अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्॥' (ना०भ०सू० ५१)

अर्थात् प्रेम, प्रेमके अनुभव, प्रेमके भाव तथा आन्तरिक लीलाएँ अनिर्वचनीय हैं। उन्हें कोई केवल अनुभव ही कर सकता है; क्योंकि प्रेमके विषयको अनुभव करनेमें स्थूल इन्द्रियाँ अक्षम हैं। प्रेमानन्द तो हृदयका विषय है। हृदयके इन्द्रियाँ नहीं होतीं कि वह उस प्रेमानन्दको बाहर व्यक्त कर सके। अनायास हृदयमें उठनेवाले प्रेमके भावोंको वाणीसे व्यक्त नहीं किया जा सकता है। अतः वे कहते हैं—

'मूकास्वादनवत्॥' (ना०भ०सू० ५२)

जिस प्रकार कोई गूँगा व्यक्ति तरह-तरहके व्यञ्जनोंका आस्वादन करता है, परंतु स्वादका वर्णन नहीं कर पाता, उसी प्रकार प्रेमी भी प्रेममें ऐसा डूबा, रँगा, खोया रहता है कि उसका समग्र ज्ञान, सारी चेतना लुप्तप्राय रहती है। जो कुछ चेतना शेष रहती है, उससे वह उस प्रेमानुभवको व्यक्त करनेमें असमर्थ रहता है। इसीलिये कहा है—

'प्रकाशते क्वापि पात्रे॥' (ना०भ०सू० ५३)

किसी योग्य पात्रमें कभी-कभी कुछ छटा प्रकाशित होती है। उस आन्तरिक स्थितिका पूर्णतया शब्दोंमें निरूपण तो नहीं हो सकता, किंतु बाह्य लक्षणोंसे अनुमान लगाया जा सकता है। नारदजीने क्वचित् शब्दका प्रयोग कर व्यक्त किया है कि ऐसे भक्त विरल होते हैं।

प्रेमतत्त्वके रहस्यको बताते हुए श्रीनारदजी कहते हैं—

'गुणरहितं कामनारहितं प्रतिक्षणवर्धमानमविच्छिन्नं सूक्ष्मतरमनुभवरूपम्॥' (ना०भ०सू ५४)

भाव यह है कि प्रेम जगत्के सत्त्व, रज, तम—तीनों गुणोंसे अतीत होता है। प्रेममें मायाके तीनों गुणोंका सर्वथा अभाव रहता है। वह प्रेमतत्त्व प्रेमीके लिये सर्वथा एकतान रहता है। प्रेमी सदा प्रेमास्पदको ही देखा करता है। उसे अन्तः और बाह्य जगत्में अपने प्रेमीसे भिन्न कुछ दिखायी नहीं देता। कामनाओंका सम्बन्ध जगदासक्तिसे है। राग-द्वेष होनेसे मनुष्य किसी वस्तु, व्यक्ति, व्यवस्थाको प्राप्त करना चाहता है या अपनेसे हटाना चाहता है, परंतु प्रेमतत्त्वके उपासकके मनमें गुणोंका प्रभाव ही नहीं रहता। इसलिये

इत्थं नृतिर्यगृषिदेवझषावतारै-
र्लोकान् विभावयसि हंसि जगत्प्रतीपान्।
धर्मं महापुरुष पासि युगानुवृत्तं
छन्नः कलौ यदभवस्त्रियुगोऽथ स त्वम्॥

(श्रीमद्भा० ७।९।३८)

अर्थात् हे पुरुषोत्तम! इस प्रकार आप मनुष्य, पशु-पक्षी, ऋषि, देवता और मत्स्य आदि अवतार लेकर लोकोंका पालन तथा विश्वके द्रोहियोंका संहार करते हैं। इन अवतारोंके द्वारा आप प्रत्येक युगमें उसके धर्मोंकी रक्षा करते हैं। कलियुगमें आप छिपकर गुप्तरूपसे ही रहते हैं, इसलिये आपका एक नाम 'त्रियुग' भी है।

द्वापरमें लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्णका अवतार हुआ था—

आसन् वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनूः।
शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः॥

(श्रीमद्भा० १०।८।१३)

अर्थात् यह जो साँवला-साँवला है, यह प्रत्येक युगमें शरीर ग्रहण करता है। पिछले युगोंमें इसने क्रमशः श्वेत, रक्त और पीत—ये तीन विभिन्न रंग स्वीकार किये थे। अबकी यह कृष्णवर्ण हुआ है, इसलिये इसका नाम 'कृष्ण' होगा।

आगे चतुर्युग-धर्मनिरूपणमें युगावतारके स्वरूप-लक्षण एवं आयुधके निरूपणमें व्यासजी कहते हैं—

हे राजन्! द्वापरयुगमें इस प्रकार लोग जगदीश्वर भगवान्‌की स्तुति करते हैं, अब कलियुगमें अनेक तन्त्रोंके विधि-विधानसे भगवान्‌की जैसी पूजा की जाती है, उसका वर्णन सुनो—कलियुगमें भगवान्‌का श्रीविग्रह होता है कृष्णवर्ण—काले रंगका। जैसे नीलम मणिमेंसे उज्ज्वल कान्तिधारा निकलती रहती है, वैसे ही उनके अङ्गकी छटा भी उज्ज्वल होती है। वे हृदय आदि अङ्ग, कौस्तुभ आदि उपाङ्ग, सुदर्शन आदि अस्त्र और सुनन्दप्रभृति पार्षदोंसे संयुक्त रहते हैं। कलियुगमें श्रेष्ठ बुद्धिसम्पन्न पुरुष ऐसे यज्ञोंके द्वारा उनकी आराधना करते हैं, जिनमें नाम, गुण, लीला आदिके कीर्तनकी प्रधानता रहती है—

इति द्वापर उर्वीश स्तुवन्ति जगदीश्वरम्।
नानातन्त्रविधानेन कलावपि यथा शृणु॥
कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम्।
यज्ञैः सङ्कीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः॥

(श्रीमद्भा० ११।५।३१-३२)

तात्पर्य यह है कि 'कृष्ण' इस वर्णद्वयीका सतत उच्चारण करते हुए अपनी कान्तिसे अकृष्ण अर्थात् गौर, रूप, सनातन आदि पार्षदोंसे युक्त—ऐसे युगावतारका सुमेधासम्पन्न व्यक्ति संकीर्तनरूप यज्ञके द्वारा यजन, अर्चन, वन्दन तथा आराधन करते हैं। प्रेमावतार चैतन्य महाप्रभुने राधाकान्तिकलेवर धारणकर श्रीराधाभावसे भावित रहकर तथा अपने पार्षदोंसे आवृत रहकर अपनी समस्त लीलाएँ की हैं—**'राधादेहरुचाद्युतं सखिवृतः कृष्णोऽपि गौरोऽभूत्।'**

श्रीराधाकी जिन विरह-भावदशाओंका वर्णन गीतगोविन्दकार श्रीजयदेवजीने किया है, वे महाप्रभु चैतन्यके जीवनमें प्रतिक्षण घटित होती रहीं। जिस भाग्यवान्‌के अन्तस्‌में भगवान्‌का प्रेम हिलोरें लेता है, उसके कदम-कदमपर, रोम-रोममें, बातचीतमें, प्रत्येक इन्द्रियोंमें, हाव-भावमें, प्रेम छलक कर बाहर बिखरता रहता है। प्रेमकी मात्रा हृदयमें बढ़ जाती है, तब सँभाले नहीं सँभलती। नित्य-निरन्तर महाप्रभुजी कृष्णविरहमें इस प्रकार करुण क्रन्दन, रुदन करते रहते थे—

कांहां मोर प्राणधन वृजेन्द्रनन्दन
महाभागवत देखे स्थावर जंगम तांहां तांहां हयतार श्रीकृष्णस्फुरण।

विरहके रोमाञ्च, कम्प, अश्रु, वैवर्ण्य, उन्माद, रुदन, प्रपीडन आदि सात्त्विकभावोंके उद्रेकमें रहते हुए जगज्जीवोंको भगवत्प्रेम कैसे करना चाहिये—ऐसी शिक्षा उन्होंने दी। मानवोंकी तो बात ही क्या! श्रीवृन्दावनधामके प्रकाशनार्थ झाड़ीखण्डके रास्तेमें जाते हुए महाप्रभुको वनके भयंकर सिंह, बाघ, रीछ आदि हिंसक जीव भी उन्हींकी महाविरह-भावदशामें *'कांहां जाऊं कांहां पाऊं मोर प्राणधन, कांहां वृजेन्द्रनन्दन'*—इस प्रकार अश्रुप्रपात करते हुए, भुजाएँ उठाकर नृत्य करते हुए देखकर दो पिछले पैरोंपर खड़े होकर जैसे मदारी नचाता है, वैसे नृत्य करने लगे। ऐसे प्रेमाविष्ट महाप्रभु ही विश्वमें प्रेमपुरुषोत्तम कहलाये।

महाप्रभु चैतन्यदेवने तत्कालीन क्रूरकर्मा भगवद्विमुख

जगायी-मधाई, चांदकाजी आदि अनेक यवनोंको भी प्रेमधन लुटाया, उन्हें गले लगाया, वे वैष्णव बन गये, श्रीहरिदास आदि यवन उनके पार्षद थे, उनका हृदय परिवर्तित हो गया। तत्कालीन विद्वत्परिषद्‌में वे अग्रणी थे। नव्यन्यायके मूर्धन्य अधिकारी विद्वान् थे। उन्होंने वर्ग, सम्प्रदाय, कुल, विद्या, धनाभिमान, सम्मानादिके आग्रहसे मुक्त रहकर सबको कीर्तनका उपदेश दिया—

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥

(श्रीशिक्षाष्टक)

तिनकेसे भी अपने-आपको नीचा समझकर, वृक्षसे भी अधिक सहिष्णु बनकर, अपमान करनेवालेको भी मान प्रदान करते हुए नित्य-निरन्तर हरिनाम-संकीर्तन करते रहनेकी महाप्रभुजीने शिक्षा दी और सर्वत्र प्रेमाभक्तिका प्रचार किया। तभी श्रीनाभादासजीने भक्तमालमें लिखा—

'गौड़ देस पाखंड मेटि कियो भजन परायन।'

× × × ×

'श्रीनित्यानन्दकृष्णचैतन्यकी भक्ति दसों दिसि बिस्तरी।'

चैतन्यदेवजीने जीवमात्रपर दया करना, भगवन्नामसे सतत रुचि रखना और जगत्-हितकारी सदाचारसम्पन्न विनीत व्यक्तित्ववालों (वैष्णवों)-का संग करना—यही धर्मका सार अपने परम अनुयायी पार्षद सनातनगोस्वामीके समक्ष विश्वको अवदानके रूपमें निरूपित किया—

जीवे दया नामे रुचि वैष्णव सेवन, इहा हइते धर्म सुनो सनातन।

~~ o ~~

श्रीरामानन्दाचार्यजी एवं द्वादश महाभागवतोंका अवतार

(श्रीहरिशंकरदासजी वेदान्ती)
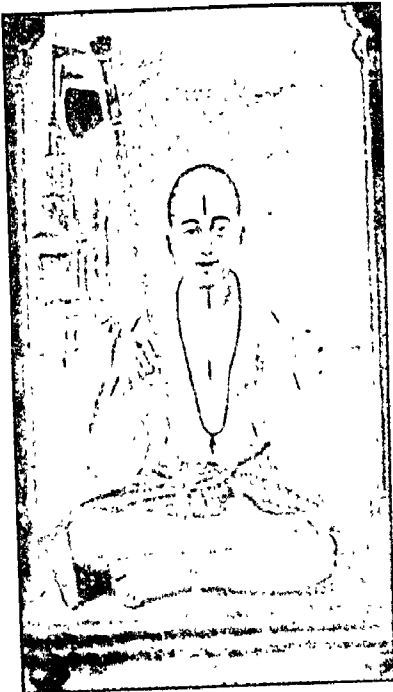
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

अदितिनन्दन, कभी देवहूतिनन्दन, कभी कौसल्यानन्दन तो कभी यशोदानन्दनके रूपमें अवतरित होकर अपने बगीचेको उजाड़नेवालेको दण्डित करते हैं तथा जो जन इसको सदाचार आदि सद्‌गुणोंसे सींचकर पल्लवित एवं पुष्पित करते हैं, उनको अपने दिव्य मङ्गलमय नाम, रूप, लीला एवं धामका अनुभव कराकर शाश्वत शान्ति प्रदान करते हैं।

जो प्रभु चौवीस अवतारोंके रूपमें अवतरित होकर अपनी लीलाओंद्वारा जगत्‌का कल्याण करते हैं, वे ही प्रभु जब शस्त्रकी अपेक्षा शास्त्रकी आवश्यकता देखते हैं तो आचार्यके रूपमें अवतरित होते हैं। शास्त्रके माध्यमसे संसारको उपदेशकर जगत्‌के उच्छृङ्खल प्राणियोंको सन्मार्गपर प्रतिष्ठित कर संसार-सागरसे उद्धारके सरलतम मार्ग—शक्ति-प्रपत्तिका दिग्दर्शन करते हैं।

(श्री)सीतानाथसमारम्भां (श्री)रामानन्दार्यमध्यमाम्।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे (श्री)गुरुपरम्पराम्॥

किसी समय जगद्गुरुकी गुरुतर उपाधिसे विभूषित भारत देशका मध्यकालिक इतिहास तात्कालिक जनताकी भ्रान्त मान्यताओंके कारण दुर्दिनताको प्राप्त हुआ। उस समय ऊँच-नीचकी भावनाएँ इतनी गहरी हो गयी थीं कि अधिकांश लोगोंके बीचसे सद्गुण-सदाचार पलायित हो चुके थे, जिसके परिणामस्वरूप विदेशी आक्रान्ताओंने हिन्दूजनता एवं राजाओंकी पारस्परिक फूट तथा संघाभावका लाभ लेते हुए, इस सनातन धर्म तथा संस्कृतिका समूलोच्छेदन करनेका दुष्प्रयास किया। इन लोगोंके द्वारा सनातन धर्मके ध्वजास्वरूप विविध मन्दिरोंको विध्वंसित किया गया।

ऐसी विषम परिस्थितिमें भक्तोंकी करुण पुकारसे द्रवित हो घनघोर अन्धकारमय वातावरणमें त्रिवेणीसङ्गमके पावन तटपर स्थित नगर प्रयागराजकी शरणमें निवास करनेवाले मनु-शतरूपाके समान भक्तिभावनासे पूरित अन्त:करणवाले ब्राह्मणदम्पती श्रीपुण्यसदन एवं श्रीसुशीला-देवीजीके पुण्यपुञ्जस्वरूप उनके पुण्यसदनमें श्रीरामजी माघकृष्ण सप्तमी विक्रम संवत् १३५६ ई०में सूर्यके समान श्रीरामानन्दके रूपमें अवतरित हुए।*

अध्ययनादिके कार्यको पूरा कर आपने पञ्चगङ्गाघाटस्थित श्रीमठके आचार्य श्रीवसिष्ठावतार श्रीराघवानन्दाचार्यजीसे विरक्त-दीक्षा ग्रहण कर श्रीबोधायनाचार्यप्रभृति पूर्वाचार्योंके द्वारा प्रतिष्ठित श्रीरामभक्ति एवं षडक्षर श्रीराममन्त्रकी परम्पराका विशेषरूपसे संवर्धन किया। जैसा कि श्रीभक्तमालकार श्रीनाभागोस्वामीजी लिखते हैं। यथा—

अनँतानंद कबीर सुखा (सुरसुरा) पद्मावति नरहरि।
पीपा भावानँद रैदास धना सेन सुरसुर की घरहरि॥
औरौ सिष्य प्रसिष्य एक ते एक उजागर।
बिस्वमँगल आधार सर्वानँद दसधा आगर॥
बहुत काल बपु धारि कै प्रनत जनन कौं पार दियो।
(श्री) रामानंद रघुनाथ ज्यों दुतिय सेतु जग तरन कियो॥

श्रीरामानन्दाचार्यजीने अपने वैष्णवमताब्जभास्करमें बताया है कि जगत्प्रभुके पादपद्मोंमें समर्थ, असमर्थ सभी प्रपत्तिके अधिकारी हैं, इसमें न तो उत्तम कुलकी, न पराक्रमकी, न कालविशेषकी और न शुद्धताकी ही अपेक्षा है—

सर्वे प्रपत्तेरधिकारिणः सदा
शक्ता अशक्ता अपि नित्यरङ्गिणः।
अपेक्ष्यते तत्र कुलं बलं च नो
न चापि कालो न हि शुद्धता च॥

इस प्रकार आपने भगवत्पादपद्मोंमें शरणापन्न होनेके लिये समस्त जीवोंको अर्हता प्रदान की।

भगवान् श्रीरामने जैसे अपने अवतारकालमें निषादराज गुह, केवट, शबरी, गीध एवं वानरोंको गलेसे लगाया, उसी प्रकार उन्हींके अवतार श्रीरामानन्दजीने घूम-घूम कर उपर्युक्त आदर्शोंको कथामें नहीं बल्कि यथार्थमें पल्लवित, पुष्पित एवं फलयुक्त किया। इसके लिये द्वादश महाभागवतोंने भी भगवदीय इच्छाका अनुसरण करनेके लिये विभिन्न नाम-रूपोंमें जन्म लेकर श्रीरामानन्दजीका शिष्यत्व ग्रहण किया और श्रीरामानन्दाचार्यके मत—'प्रपत्ति' का प्रचार-प्रसार किया। भागवतधर्मवेत्ता द्वादश महाभागवतोंका वर्णन श्रीमद्भागवतमहापुराण (६।३।२०-२१)-में श्रीयमराजजीने अपने दूतोंसे इस प्रकार किया है। यथा—

स्वयम्भूर्नारदः शम्भुः कुमारः कपिलो मनुः।
प्रह्लादो जनको भीष्मो बलिर्वैयासकिर्वयम्॥
द्वादशैते विजानीमो धर्मं भागवतं भटाः।
गुह्यं विशुद्धं दुर्बोधं यं ज्ञात्वामृतमश्नुते॥

अर्थात् भगवान्के द्वारा निर्मित भागवतधर्म परम शुद्ध और अत्यन्त गोपनीय है। उसे जानना बहुत ही कठिन है। जो उसे जान लेता है, वह भगवत्स्वरूपको प्राप्त हो जाता है, दूतो! भागवतधर्मका रहस्य हम बारह व्यक्ति ही जानते हैं—ब्रह्माजी, देवर्षि नारद, भगवान् शङ्कर, सनत्कुमार, कपिलदेव, स्वायम्भुव मनु, प्रह्लाद, जनक, भीष्मपितामह, बलि, शुकदेवजी और मैं (धर्मराज)।

भागवतधर्मवेत्ता इन्हीं ब्रह्मादि द्वादश भागवतोंने भी

* अगस्त्यसंहिताके भविष्यखण्ड नामक १३२वें अध्यायके अनुसार जन्म-संवत्‌में १०० वर्षका अन्तराल आता है, किंतु सम्प्रदायके इतिहासमें एवं साम्प्रदायिक मान्यता तथा अन्य ग्रन्थोंके अनुसार वि०सं० १३५६ ही आचार्यश्रीका जन्मकाल माना गया है।

करुणावतार श्रीरामदेवजी

(श्रीप्रदीपकुमारजी शर्मा)

प्राचीन कालमें राजस्थानके बाड़मेर जिलेकी उण्डू एवं काश्मीर रियासतमें राजा अजमल राज्य करते थे। उनके भाईका नाम धनरूप था। एक बारकी बात है कि धनरूपजी वैराग्य धारण कर घरसे निकल पड़े। तीर्थाटन करते हुए अन्ततः वे मेवाड़में मंडी मियाला गाँवमें पहुँचे और वहीं जीवित-समाधि लेकर अन्तर्धान हो गये। इस घटनासे ठाकुर अजमल बहुत दुःखी हुए। अब वे अपना अधिकांश समय द्वारकाधीश भगवान् श्रीकृष्णकी भक्तिमें व्यतीत करने लगे। ठाकुर अजमल निःसंतान थे। इस कारण वे दुःखी रहा करते थे, साथ ही उन्हें यह भी कष्ट सताता था कि एक आतंकवादी राक्षस भैरव पोकरण-क्षेत्रमें महान् उत्पात मचाया करता है। इस राक्षसने आस-पासके गाँव उजाड़ दिये थे। अतः एक तो पुत्रप्राप्तिहेतु तथा दूसरे राक्षस भैरवके नाश करनेकी मन्नत माँगने वे बराबर द्वारकाधीशके दरबारमें जाते रहे।

एक बार उनके क्षेत्रमें अच्छी वर्षा हुई। किसान खेत जोतने घरोंसे निकल पड़े, पर अजमलजीको सम्मुख आते देखकर लौट पड़े। अजमलजीका सम्मुख आना उन्होंने अपशकुन समझा; क्योंकि वे निःसंतान थे। अजमलजीको जब इस बातका पता लगा तो उन्हें बड़ा ही दुःख हुआ। तुरंत ही उन्होंने रानी मैनादेके साथ द्वारकाधीशकी यात्रा करनेका निश्चय किया। इसके पूर्व उन्होंने काशी (वाराणसी) पहुँचकर भगवान् आशुतोष शिवका भक्तिभावसे पूजन किया। भगवान् शिवने प्रकट होकर उन्हें द्वारकाधीश श्रीकृष्णके पास जाकर अपनी मनोकामना पूर्ण करनेकी प्रार्थना करनेका आदेश दिया। भगवान् शिवके आदेशानुसार रानी मैनादे तथा भक्तजनोंसहित अजमलजी द्वारका पहुँचे। द्वारकाधीशके मन्दिरमें उन्होंने भगवान्‌से साक्षात् दर्शनकी आर्तस्वरमें पुकार की। पर जब उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन नहीं हुए तो उन्होंने रानीके हाथके पूजाके थालसे चूरमेका लड्डू लेकर द्वारकाधीशके विग्रहपर क्रोधपूर्वक मारा और कहा—'मैंने ऐसे कौन-से पाप किये, जिसकी सजा आप मुझे दे रहे हैं? मेरी पुकार यदि नहीं सुनी गयी, तो मैं प्राणोंकी आहुति दे दूँगा।'

यह देखकर मन्दिरके पुजारीने कहा—'महाराज! यहाँ तो भगवान्‌का विग्रह है। आपको उनके साक्षात् दर्शनहेतु स्वर्णपुरी द्वारकाके सागरमें जाकर उनसे मिलनेका प्रयत्न करना चाहिये, वहाँ वे शेषनागकी शय्यापर लक्ष्मीसहित विराजते हैं।'

फिर क्या था, राजा अजमलजी सागरकिनारे जाकर द्वारकाधीशके ध्यानमें मग्न हो बैठ गये। कुछ क्षणों बाद उन्हें आवाज सुनायी दी—'आ जाओ! आ जाओ!' अजमलजी सागरमें कूद पड़े। जलमें उन्हें स्वर्णपुरी द्वारका दीख पड़ी। वहीं उन्हें श्रीकृष्णके साक्षात् दर्शन हुए। भक्तको देख श्रीद्वारकाधीशने उन्हें गले लगाया। अजमलजीने उनके माथेपर बँधी पट्टीके विषयमें पूछा तो उन्होंने कहा—'मृत्युलोकमें एक भक्तने लड्डू मारकर मेरा माथा फोड़ दिया, अतः यह पट्टी बाँधनी पड़ी।' अजमलजी उनके चरणोंमें गिरकर क्षमा-याचना करने लगे। भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा—तुम्हारे यहाँतक आनेका क्या कारण है? राजा कहने लगे—हे अन्तर्यामी! आप तो सब जानते हैं। एक तो मेरे संतान नहीं है तथा दूसरा यह कि मेरे क्षेत्रमें एक असुरने आतंक मचा रखा है, जिसे मारना मेरे वशमें नहीं है। इन्हीं दो कारणोंसे मैं आपकी सेवामें आया हूँ—एक कारण स्वार्थका दूसरा कारण परमार्थका।

प्रभु बोले—राजन्! तुम्हारी दोनों कामनाएँ पूरी होंगी। तदनन्तर प्रभुने अपनी वैजयन्तीमालासे एक पुष्पमोती तोड़कर अजमलजीको देते हुए कहा—'लो, घर जाकर इसकी पूजा करना। इसे अपने होनेवाले पुत्रके साथ रखना, साथ ही पीताम्बर और आमल डावली (मालाका श्याम पुष्प) भी दिया और बताया कि इन्हें पूजासामग्रीके साथ रखना। पुष्पको पालनेमें झुलाना और पहले पुत्रका नाम वीरमदेव रखना तथा दूसरेका नाम रामदेव। जब घरमें पूर्णिमासदृश चाँदनी हो तो समझना मैं आ गया हूँ। अर्थात् मैं स्वयं तुम्हारे पुत्ररूपमें जन्म लूँगा। उस समय तुम्हारे सम्पूर्ण गढ़में एवं गाँवमें तेज प्रकाश व्याप्त होगा। तुम्हारे घरके आँगनका पानी दूधके रूपमें परिणत हो जायगा, सभी स्थानोंपर शङ्खध्वनि, घण्टाध्वनि होने लगेगी। घरमें कुङ्कुमके नन्हें पैरोंके चिह्न बन जायँगे।'

ऐसा वरदान देकर अजमलजीको द्वारकाधीशने विदा किया और चलते समय पूजामें रखनेके लिये एक शङ्ख भी दिया। तदुपरान्त अजमलजीको सभी लोगोंने समुद्रजलसे ऊपर आते देखा। रानी मैनादेको अजमलजीने सारा वृत्तान्त बताया।

भगवान्‌की महिमाको जानना बड़ा कठिन है। सब लोगोंने अजमलजीके माथेपर तिलक देखा तो उनके वचनपर सभीको विश्वास हो गया। अपने राज्यमें पहुँचनेपर सभी जनोंने राजा-रानीका स्वागत किया। भक्तजनोंको गढ़में ले जाकर राजाने यज्ञादि कराये, पूर्णाहुतियाँ दीं। ब्राह्मणोंको भोजन कराकर दक्षिणा देकर संतुष्ट किया तथा दीन-दु:खियोंको भी धन-सम्पत्ति देकर प्रसन्न किया।

भगवान्‌के वचनानुसार रानी मैनादेने माघ माहमें शुक्ल पञ्चमी संवत् १४०६ में एक पुत्रको जन्म दिया, जिसका नाम वीरमदेव हुआ। अजमलजी एवं रानी अपने पुत्रकी बाल-लीलाओंको देख प्रसन्न रहने लगे। तदुपरान्त भगवान् श्रीकृष्णने भादो सुदी पञ्चमी संवत् १४०९ में मैनादेकी कोखसे जन्म लिया। उनके वचनानुसार उण्डू-काश्मीर गाँवके सभी मन्दिरोंकी घंटियाँ बज उठीं, शङ्खध्वनि होने लगी। तेज प्रकाशसे सारा गाँव चमकने लगा। महलमें रखा सारा जल दूधमें परिवर्तित हो गया। महलके मुख्य द्वारसे रानीके पलंगतक कुङ्कुमके पदचिह्न बन गये। राजा एवं प्रजाने इस अवसरपर द्वारकाधीशकी जय-जयकार की। दीन-दु:खियों और ब्राह्मणोंको राजा अजमलजीने यथोचित दान दिया।

इस प्रकार अजमलजीके घर साक्षात् श्रीकृष्णने अवतार लिया। उनका नाम 'रामदेव' रखा गया—

भादुड़े की पंचमी को चन्द्रा करे प्रकाश।
रामदेव आ गये राखी कुल की लाज॥

यही 'रामदेव' अपनी अलौकिक लीलाओंद्वारा सारे राजस्थान एवं गुजरात प्रदेशमें श्रीकृष्णके कलियुगी अवतार कहलाते हैं। उनकी अनेकानेक चमत्कारपूर्ण अलौकिक लीलाओंसे उन्हें द्वारकाधीश श्रीकृष्णका ही अवतार माना जाता है। लोककल्याण करते हुए उन्होंने भाद्रशुक्ल नवमी संवत् १४४२ के दिन समाधि ले ली।

सारा ढूंढार-प्रदेश रामदेवजीको भगवान्‌के रूपमें पूज्य मानता है। उन्होंने आसुरी शक्तियोंका नाश कर, लोगोंमें हिन्दूधर्मके प्रति सच्ची आस्था जगानेका अनोखा कार्य किया; जब कि उस समय भारत देश यवनोंके अधिकारमें था। श्रीरामदेवजी सच्चे अर्थोंमें संत थे। उन्होंने समाजमें व्याप्त कुरीतियोंको मिटाकर सच्चे ज्ञानका प्रकाश किया। वे जाति-पाँति, ऊँच-नीचमें विश्वास नहीं रखते थे। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही उनके भक्त थे। उन्होंने भगवद्भक्ति और सत्संगपर विशेष जोर दिया। भगवान् शिवके जैसे ग्यारह रुद्रावतार हैं, भगवान् विष्णुके दस अवतार अथवा चौबीस अवतार हैं, उसी प्रकार श्रीरामदेवजीकी भगवान् विष्णुके अवतारके रूपमें प्रसिद्धि है। लोग अपनी मन्नतें माँगने पोकरणके पास रामदेवरामें आते हैं। उनकी अद्भुत एवं अलौकिक लीलाओंके गीत राजस्थानमें भोपाओंद्वारा रतजगाके रूपमें अभी भी गाये जाते हैं—

रामदेव अवतारी इनकी लीला न्यारी।
गल माला कर माला इनका वेष निराला॥
घोड़े पर असवारी, इनकी लीला न्यारी।
अजमलका है लाला, भक्तोंका रखवाला॥
इनसा देव न दूजा, घर-घर इनकी पूजा।
ध्याते सब नर नारी, इनकी लीला न्यारी॥
बाबा बाबा नाम रटे, उसके सारे कष्ट कटे।
ये सुखके दातारी, इनकी लीला न्यारी॥

~~~ ० ~~~

'जय जय मीन बराह'

जय जय मीन बराह कमठ नरहरि बलि-बावन।
परसुराम रघुबीर कृष्ण कीरति जग पावन॥
बुद्ध कलक्की ब्यास पृथू हरि हंस मन्वंतर।
जग्य रिषभ हयग्रीव धुरुव बरदैन धन्वंतर॥
बद्रीपति दत्त कपिलदेव सनकादिक करुना करौ।
चौबीस रूप लीला रुचिर (श्री) अग्रदास उर पद धरौ॥

(भक्तमाल-श्रीनाभादासजी)

~~~ ० ~~~

'निर्गुन ब्रह्म सगुन बपु धारी'

(श्रीबालकृष्णजी कुमावत, एम्०कॉम०, साहित्यरत्न)

जगज्जननी भवानी सतीका अगला जन्म पार्वतीके रूपमें हुआ और कठोर तपस्या करके उन्होंने भगवान् शङ्करको पतिरूपमें प्राप्त किया। एक बार भगवान् शङ्करको अत्यन्त प्रसन्नावस्थामें देखकर उन्होंने श्रीरघुनाथजीकी कथा सुननेकी जिज्ञासा प्रकट की। उनका पूर्वजन्मका संस्कार-जनित संदेह विद्यमान था अर्थात् परब्रह्म परमात्माके सगुण रूपमें अवतरित होनेका संशय बना रहा। उनका संशय था कि जो देह धारण करता है, वह निर्गुण ब्रह्म नहीं हो सकता। ब्रह्म तो सर्वव्यापक, निर्मल, अजन्मा, निरवयव, चेष्टा-इच्छा और भेदरहित है। जिसे वेद भी नहीं जानते, भला वह देह धारणकर मनुष्य होगा? यदि राम राजपुत्र हैं तो ब्रह्म कैसे? यदि ब्रह्म हैं तो स्त्री-वियोग-विरहमें उनकी बुद्धि बावली कैसे? उनके चरित्र देखकर और महिमा सुनकर मेरी (पार्वतीकी) बुद्धि चकरा रही है अर्थात् बुद्धि यह निश्चय नहीं कर पाती कि दाशरथिराम ही ब्रह्म हैं—

जौं नृप तनय त ब्रह्म किमि नारि बिरहँ मति भोरि।
देखि चरित महिमा सुनत भ्रमति बुद्धि अति मोरि॥

(रा०च०मा० १।१०८)

पार्वतीजीकी सोच है कि जो देह धारण करता है, वह निर्गुण ब्रह्म नहीं है। भगवान् शङ्कर उनकी शङ्काका समाधान करते हुए कहते हैं कि जो निर्गुण है वही सगुण है, दोनों एक ही हैं। पार्वतीजी फिर पूछती हैं कि यदि श्रीरामजी ब्रह्म, ज्ञानमय, चैतन्यस्वरूप, अविनाशी, निर्लिप्त और सबके हृदयमें रहनेवाले हैं तो उन्होंने नर-शरीर किस कारणसे धारण किया? इसका उत्तर देते हुए भगवान् शङ्कर कहते हैं—हे गिरिजे! सुनो, श्रीहरिके चरित सुन्दर हैं, अगणित हैं, अत्यन्त विशद हैं और वेदशास्त्रोंने गाये हैं। श्रीहरिका अवतार जिस कारणसे होता है—वह यह है, ऐसा ही है, यह कहा नहीं जा सकता अर्थात् कहते नहीं बनता; क्योंकि अवतारके हेतु अनेक हैं—

हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थं कहि जाइ न सोई॥
राम जनम के हेतु अनेका। परम बिचित्र एक तें एका॥

(रा०च०मा० १।१२१।२; १।१२२।२)

यही और ऐसा ही भगवदवतारका कारण है—यह इसलिये नहीं कहा जा सकता कि सामान्यतः जो कुछ कारण अवतारका दिखायी पड़ता है, उससे कुछ विलक्षण ही कारण तब ज्ञात होने लगता है, जब अवतार लेकर भगवान् लीला करने लगते हैं। उस समय कहना तथा मानना पड़ता है कि अवतारका जो हेतु अवतारसे पहले कहा गया, वह गौण था और जो लीला देखनेसे ज्ञात हुआ, वह अनुमानतः मुख्य है। यह प्रश्न सहज ही पूछा जा सकता है कि तब मुख्य कारण ही बतलाकर अवतार क्यों नहीं होता, गौण ही क्यों विख्यात किया जाता है? इसका उत्तर श्रीमद्भागवतमहापुराण (११।२१।३५)-में प्राप्त हो सकता है, जहाँ कहा गया है—

'परोक्षवादा ऋषयः परोक्षं मम च प्रियम्।'

अर्थात् अपनी परोक्षप्रियताके कारण भगवान् अपने अवतारके मुख्य प्रयोजनोंको छिपाते हैं। दूसरे यह कि अवतारके जिन कारणोंमें तात्कालिक जगत्-हित या किसी एक प्रधान भक्तका हित समाया रहता है, उन्हें गौण कह सकते हैं तथा वही विख्यात भी किये जाते हैं। जिन कारणोंसे अनन्त कालके लिये सर्वसाधारण—जगत्का हित होना रहता है, उन्हें मुख्य कह सकते हैं और उन मुख्य कारणोंकी गोपनीयता कार्य-समाप्तितक इसलिये रहती है कि जितनी सुविधा और उत्तमता गोपनीयतामें रहती है, उतनी सर्वसाधारणमें प्रकट कर देनेसे नहीं होती। श्रीमद्भागवतमहापुराण (१।३।२६)-में कहा गया है कि हरिके अवतारोंका अन्त तो लग ही नहीं सकता—

'अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः।'

श्रीअञ्जनीनन्दनशरणजीने मानसपीयूष (खण्ड दो)-

में परब्रह्म परमात्माके कुछ अवतारोंके मुख्य एवं गौण कारण निम्न प्रकार बतलाये हैं—

(१) **मत्स्यावतार**—इसका मुख्य कारण मनुद्वारा सम्पूर्ण वनस्पति-बीजोंका संग्रह कराकर उनकी रक्षा करके जगन्मात्रका हित करना था। गौण कारण मनुको प्रलयका कौतुक दिखानामात्र अर्थात् एक भक्तका कार्य सिद्ध करना था।

(२) **कूर्मावतार**—इसके तीन मुख्य कारण रहे हैं—

(क) शङ्करजीको कालकूट पिलाकर श्रीरामनाम एवं रामभक्तिकी महिमा प्रकट करना।

(ख) दुर्वासा मुनिके शापसे समुद्रमें गुप्त हुई लक्ष्मीको प्रकट करना।

(ग) यज्ञ करनेमें ऋषि सामग्रियोंके अभावका दुःख न उठावें, इस हेतु कामधेनु तथा कल्पवृक्षको उत्पन्न करना। गौण कारण था मन्दराचल धारण कर समुद्र-मन्थनद्वारा अमृत निकालना।

(३) **वराहावतार**—इसके दो मुख्य कारण रहे हैं—

(क) यज्ञके स्रुवा-चमसादि कौन पात्र किस आकार और किस प्रमाणके होने चाहिये, यह सुनिश्चित करनेके लिये अपने दिव्य चिन्मय विग्रहसे समस्त यज्ञाङ्गोंको प्रकट करना।

(ख) भूदेवीकी अपने अङ्ग-सङ्गकी इच्छा पूरी करके नरकासुर नामक पुत्र उत्पन्न करना, जिसके द्वारा सोलह हजार एक सौ कुमारियोंका संग्रह कराना तथा कृष्णावतारमें उन्हें अपनी महिषी बनाना। गौण कारण था पातालसे पृथ्वीका उद्धार तथा हिरण्याक्षका वध।

(४) **नृसिंहावतार**—इसका मुख्य कारण था जगत्-हितार्थ अभिचारादि तन्त्रोंको प्रकट करना तथा भगवान् शङ्करकी इच्छाकी पूर्ति करना। गौण कारण था भक्त प्रह्लादकी रक्षा तथा हिरण्यकशिपुका वध।

(५) **वामनावतार**—इसका मुख्य कारण था ब्रह्माद्वारा तिरस्कृत एवं ब्रह्मकटाहमें रुकी हुई हैमवती गङ्गाका उद्धार कर उन्हें अपने पदरजके द्वारा पापनाशकत्वादि अनेक गुण प्रदान करते हुए ब्रह्माके कमण्डलुमें स्थापित करना, जिन्हें राजा भगीरथने अपने तपके प्रभावसे प्रवाहित किया और असंख्य प्राणियोंके कल्याणका लक्ष्य पूरा हुआ। गौण कारण था बलिका निग्रह, जिसमें केवल इन्द्रादिका ही हित था (क्योंकि मनुष्य आदि राजा बलिके धार्मिक राज्यसे पीड़ित नहीं थे)।

(६) **श्रीरामावतार**—मुख्य कारण था अपने दिव्य गुणोंका प्रदर्शन तथा ज्ञान और धर्ममार्गोंको सुगम करना। गौण कारण था रावण-कुम्भकर्ण आदिका अत्याचार समाप्त करना।

(७) **श्रीकृष्णावतार**—मुख्य कारण था उलझनमें पड़ी हुई धर्मकी अनेक ग्रन्थियोंको सुलझाना और अपने प्रेम तथा भक्तपरवशत्वादि गुणोंका प्रदर्शन करना। गौण कारण था शिशुपाल, दन्तवक्त्र आदि क्षत्रिय अधमों, राक्षसों आदिका विनाश करना।

इस प्रकार हरिके जन्म और कर्म सुन्दर, सुखदायक, विचित्र और अगणित हैं। कल्प-कल्पमें प्रभु अवतार लेते हैं और अनेक प्रकारके सुन्दर चरित्र करते हैं।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा है कि मेरे जन्म और कर्म दिव्य हैं—

'जन्म कर्म च मे दिव्यम्।' (गीता ४।९)

इसका आशय है कि मनुष्यका शरीर कर्तृत्व और वासनापूर्ण किये हुए कर्मका फल है, किंतु भगवान्‌का शरीर कर्तृत्वरहित, वासनारहित तथा कर्मफलाशयसे विनिर्मुक्त भावात्मक अवतरण है।

मनु तथा शतरूपाको वरदान देते समय भगवान्‌ने कहा था कि मैं इच्छामय नररूप बनाये हुए तुम्हारे घरमें प्रकट होऊँगा। हे तात! अंशोंसहित देहधारण कर मैं भक्तोंको सुख देनेवाले चरित्र करूँगा। जिस आदिशक्तिने विश्वको उत्पन्न किया, वह मेरी माया भी अवतार लेगी—

इच्छामय नरबेष सँवारें। होइहउँ प्रगट निकेत तुम्हारें॥
अंसन्ह सहित देह धरि ताता। करिहउँ चरित भगत सुखदाता॥
आदिसक्ति जेहिं जग उपजाया। सोउ अवतरिहि मोरि यह माया॥

(रा०च०मा० १।१५२।१-२, ४)

'इच्छामय नरबेष सँवारें' का तात्पर्य भगवान्‌ने यह बतलाया कि दूसरोंके समान मुझे गर्भवास आदि नहीं है। मेरे उस शरीरका रूप यद्यपि दूसरोंके समान ही मालूम होगा और शैशव, पौगण्ड तथा कौमार्य अवस्थाएँ भी दीखेंगी तो भी वह रूप, अवस्था आदि मेरी इच्छाका ही

होगा अर्थात् वह देहादि चिदानन्दमय ही रहेगा। मैं जन्म न लूँगा, तुम्हारे घरमें प्रकट होऊँगा। श्रीमद्भागवतमहापुराण (१०।१४।२)-में ब्रह्माजीने गोपालकृष्णको ऐसा ही कहा है—

अस्यापि देव वपुषो मदनुग्रहस्य
स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि।
नेशे महि त्ववसितुं मनसाऽऽन्तरेण
साक्षात्तवैव किमुतात्मसुखानुभूतेः॥

स्वयंप्रकाश परमात्मन्! आपका यह श्रीविग्रह भक्तजनोंकी लालसा-अभिलाषा पूर्ण करनेवाला है। यह आपकी चिन्मयी इच्छाका मूर्तिमान् स्वरूप मुझपर आपका साक्षात् कृपाप्रसाद है। मुझे अनुगृहीत करनेके लिये ही आपने इसे प्रकट किया है। कौन कहता है कि यह पञ्चभूतोंकी रचना है? प्रभो! यह तो अप्राकृत शुद्ध सत्त्वमय है। मैं या और कोई समाधि लगाकर भी आपके इस सच्चिदानन्द-विग्रहकी महिमा नहीं जान सकता। फिर आत्मानन्दानुभव-स्वरूप साक्षात् आपकी महिमाको कोई एकाग्रमनसे भी कैसे जान सकता है?

श्रीरामचरितमानसके अयोध्याकाण्डमें महर्षि वाल्मीकिने इसी बातको रेखाङ्कित किया है कि 'यह जो आपका शरीर है, यह भी सच्चिदानन्दघन ही है। इसमें भी किसी प्रकारके विकार नहीं हैं, परंतु इसे अधिकारी पुरुष ही जानता है। आपने संत और सुरका काज बनानेके लिये मनुष्यका-सा शरीर धारण किया है। जैसे कोई प्राकृत राजा कहता है और करता है, वैसा ही आप कर रहे हैं। हे रामचन्द्र! आपके चरित्रको देखकर-सुनकर जो मूर्ख लोग हैं, उनको तो मोह होता है और जो बुध हैं, उनको सुख होता है'—

चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी॥
नर तनु धरेहु संत सुर काजा। कहहु करहु जस प्राकृत राजा॥
राम देखि सुनि चरित तुम्हारे। जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे॥

(रा०च०मा० २।१२७।५—७)

गीतामें भगवान्ने अपने अवतार लेनेके काल तथा हेतुकी बात अर्जुनको बतायी है कि हे अर्जुन! जब-जब धर्मका लोप होने लगता है तथा अधर्मकी वृद्धि होने लगती है, तब-तब मैं शरीर धारण कर अवतीर्ण होता हूँ। साधुओंके परित्राण (अधर्मसे रक्षा करके उन्हें मुक्तिलाभमें सहायता देनेके लिये), पापियोंके विनाशके लिये और धर्मस्थापनके उद्देश्यसे मैं हर युगमें अवतीर्ण होता हूँ।

श्रीरामजीके अवतारकी चर्चा करते समय यही बात भगवान् शङ्करने पार्वतीजीको भी बतायी है।

कालके प्रभावसे जब संसार पापके भारसे आक्रान्त होता है, तब सर्वशक्तिमान् भगवान् मानो अपने कर्तव्यपालनके उद्देश्यसे धर्मकी ग्लानि दूर करनेके लिये अवतीर्ण होते हैं। धर्मके प्रसारमें जो विघ्न आते हैं, उन्हें विविध प्रकारसे दूर करके धर्मके प्रवाहको बाधाहीन कर देते हैं। ऐसा नहीं कि धर्मसंस्थापनकार्य प्रत्येक युगमें पापियोंके वधके माध्यमसे ही होता आया है और ऐसा भी नहीं कि हर समय धर्मसंस्थापनार्थ बड़ी मात्रामें ध्वंसकी आवश्यकता होती हो। किस उपायसे धर्मका विस्तार करना होता है, यह भगवान् अच्छी तरह जानते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्येक अवतारमें धर्मसंस्थापनकी पद्धति विभिन्न प्रकारकी होती है। देश, काल तथा प्रयोजनके अनुसार कार्यकी प्रणाली बदल जाती है। वेद, वेदान्त, गीता, भागवत, पुराण आदि शास्त्र-ग्रन्थ और साधु, संत, साधक, सिद्ध, महात्मा आदिके रहते हुए भी कालके प्रभावसे संसारमें धर्मकी ग्लानि होती है। इसे दूरकर संसारमें महद्धर्मकी प्रतिष्ठाके लिये विपथगामी मनुष्योंको धर्ममार्गमें लाकर तथा धर्मात्माओंके धर्मानुशीलनका मार्ग सुगम करके अपने द्वारा सृष्ट प्राणियोंकी रक्षाके लिये परम कारुणिक भगवान् कृपादृष्ट होकर प्रत्येक युगमें मनुष्यदेह धारण कर संसारमें आते हैं। वे शुभ कर्म, विवेक-वैराग्य, त्याग-तपस्या, ज्ञान-भक्ति, प्रेम और ईश्वरपरायणताके युगोपयोगी आदर्श-जीवनका प्रदर्शन कर धर्म-संस्थापन करते हैं। वे जिसे प्रमाणित करते हैं, लोग उसीका अनुसरण करते हैं—

'स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥'

(गीता ३।२१)

केवल धर्मग्रन्थसे काम नहीं चलता; आदर्श-जीवनका भी प्रयोजन है। इस कारण भगवान् संसारमें आकर अपने जीवनमें आचरण करके शास्त्रकी मर्यादा देते हैं तथा युगधर्मका आदर्श दिखाते हैं, संसारभरमें धर्मभावका प्रचार करते हैं। उनके जीवनके आदर्शोंसे शिक्षा पाकर लोग धर्म-

मार्गका अनुसरण करते हैं।

श्रीरामचरितमानसके (७। ७२, ७। ७३। १)-में काकभुशुण्डिजी पक्षिराज गरुडजीको समझाते हुए कहते हैं—

भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप।
किए चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप॥
जथा अनेक बेष धरि नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ आपुन होइ न सोइ॥
असि रघुपति लीला उरगारी। दनुज बिमोहनि जन सुखकारी॥

भगवान् प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने भक्तोंके लिये नृप-शरीर धारण किया और साधारण मनुष्योंके सदृश अनेक पावन चरित किये। जैसे कोई नट अनेक वेष धारण कर नाचता है और वही-वही (जैसे भिक्षुक, राजा, स्त्री, पशु इत्यादि जिसका रूप उसने धारण किया है, जो स्वाँग या वेष रचा है उसके अनुकूल) भाव दिखाता है, परंतु स्वयं वही नहीं हो जाता। इसी प्रकार भगवान्ने प्राकृत राजाका रूप धारण कर प्राकृत नरके अनुरूप चरित भी किये, पर इन चरितोंके करनेसे एवं प्राकृत नरवेष धारण करनेसे वे प्राकृत नर नहीं हो जाते। हे गरुड! ऐसा ही श्रीरघुनाथजीका नरनाट्य है, जो राक्षसोंको विशेष रूपसे मोहित करनेवाला और भक्तोंको सुख देनेवाला है। खर-दूषणकी लड़ाईमें जब सब दैत्य देखते हैं—राम-ही-राम, राम-ही-राम; तब वे मोहित हो जाते हैं। अयोध्यावासी एक क्षणमें अनेकों रामसे मिल लेते हैं—उनको बड़ा सुख होता है। वस्तुतः भगवान्में कोई मोह नहीं है। जो मलिन बुद्धि, विषयासक्त और कामी हैं, वे ही प्रभुपर इस प्रकारके मोहका आरोपण करते हैं।

इस प्रकार हरिके जन्म और कर्म सुन्दर, सुखदायक, विचित्र और अगणित हैं। प्रत्येक कल्पमें प्रभु अवतार लेते हैं और अनेक प्रकारके सुन्दर चरित्र करते हैं—

एहि बिधि जनम करम हरि केरे। सुंदर सुखद बिचित्र घनेरे॥
(रा०च०मा० १। १४०। १)

'सत्य' भी भगवान्का अवतार

(श्रीकामेश्वरजी)

अवतारा भगवतो भूता भाव्याश्च सन्ति ये।
कर्त्तुं न शक्यते तेषां संख्या सांख्यविशारदैः॥
(स्कन्दपुराण, वै०ख०)

भगवान्के जो अवतार हो चुके हैं या भविष्यमें होंगे, बड़े-बड़े विद्वानोंद्वारा भी उनकी गणना नहीं की जा सकती है।

भगवान्का रूप सत्य है; वह तीनों कालोंमें, सब देशोंमें, सब दशाओंमें अबाधित रहता है। कार्य-कारण-सिद्धान्तके अन्तर्गत कारणको सत्य कहते हैं। भगवान् **'सर्वकारणकारण'** हैं—इसलिये भगवान् परम सत्य कहलाते हैं। जगत्में नियति या वस्तुका गुण-धर्म ही सत्य है। जगत्का प्रत्येक पदार्थ एक नियमके अन्तर्गत अनुशासित है, जैसे—अग्निका धर्म ऊपरकी ओर जाना है, जलका धर्म नीचेकी ओर प्रवाहित होना है, वायु भी नियमानुसार चलती है, सूर्य भी नियमके अनुसार उदय और अस्त होता है, समुद्र भी अपनी सीमा नहीं लाँघता है—इस प्रकार नियतिरूपसे परम-सत्ताका जगत्में यह सत्यरूप अवतार ही है। प्रत्येक पदार्थका अपना अस्तित्व है, उस आधारपर ही वह कार्य-सम्पादन करता है।

श्रुति एवं पुराणोंमें सत्यको ब्रह्म कहा गया है—

'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।' (तैत्ति०उ० २। १। २)

परब्रह्म परमात्मा सत्यस्वरूप हैं। उनकी नित्य सत्ता है, वे ज्ञानस्वरूप हैं तथा देश-कालकी सीमासे रहित हैं।

'एतस्य ब्रह्मणो नाम सत्यमिति॥'
(छा०उप० ८। ३। ४)

उस परब्रह्मका नाम सत्य है।

'सत्यमेव परं ब्रह्म सत्यमेव परं तपः।'
(शिवपुराण, उमासंहिता १२। २३)

सत्य ही परब्रह्म है। सत्य ही परम तप है।

'मूलीभूतं सदोक्तं च सत्यज्ञानमनन्तकम्।'
(शिवपुराण, रुद्रसंहिता १। ४०)

यह सत्य, ज्ञान एवं अनन्त ब्रह्म ही है।

परम सत्यरूप परमात्माका हम ध्यान करते हैं—

'सत्यं परं धीमहि॥' (श्रीमद्भा० १। १। १)

शास्त्रोंमें सत्, चित् और आनन्द परमात्माके रूप निश्चित किये गये हैं। प्रतिष्ठा, ज्योति और यज्ञके रूपमें उनका अवतार होता है। सत्ता और धृति—ये दोनों प्रतिष्ठाके रूप हैं। चित्‌का रूप ज्योति है, जिसके तीन भेद हैं—नाम, रूप और कर्म। आनन्दका रूप यज्ञ है।

यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः।
तस्मादेतद् ब्रह्म नाम रूपमन्नं च जायते॥

(मुण्डकोपनिषद् १।१।९)

जो सर्वज्ञ तथा सबको जाननेवाला है, जिसका ज्ञान ही एकमात्र तप है। यह विराट् रूप जगत् उसके सङ्कल्प-मात्रसे ही उत्पन्न हो जाता है। समस्त प्राणियों तथा लोकोंके नाम-रूप और अन्न भी उत्पन्न हो जाते हैं।

श्रीमद्भागवत (१०।२।२६)-में भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति देवताओंने इस प्रकार की है—

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं
सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये।
सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं
सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः॥

हे भगवन्! आप सत्यसङ्कल्प हैं, सत्य ही आपकी प्राप्तिका श्रेष्ठ साधन है। सृष्टिके पूर्व, संसारकी स्थितिके समय तथा प्रलयमें इन असत्य अवस्थाओंमें भी आप सत्य हैं। पञ्च-महाभूतके आप आदि कारण हैं तथा उसके भीतर भी स्थित हैं। आप तो सत्यस्वरूप हैं। हम सभी आपकी शरणमें आये हैं।

इस प्रकार नियति, प्रतिष्ठा, नाम-रूप आदिसे भगवान्‌का प्रथम अवतार स्वयम्भू ही परिलक्षित होता है। अतः सत्यका प्रथम आविर्भाव स्वयम्भू ही है।

आद्योऽवतारः पुरुषः परस्य
कालः स्वभावः सदसन्मनश्च।
द्रव्यं विकारो गुण इन्द्रियाणि
विराट् स्वराट् स्थास्नु चरिष्णु भूम्नः॥

(श्रीमद्भा० २।६।४१)

स्वरूप एवं शक्तिमें सर्वश्रेष्ठ भगवान्‌का प्रथम अवतार विराट् पुरुष (स्वयम्भू) है। काल, स्वभाव, कार्य-कारणात्मिका प्रकृति, मन (महत्तत्त्व), द्रव्य (महाभूत), विकार (अहङ्कार), गुण (सत्त्व, रज और तम), इन्द्रियाँ (पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ), विराट् (समष्टि शरीर ब्रह्माण्डरूप), स्वराट् (समष्टि जीव हिरण्यगर्भ), स्थावर-जङ्गम आदि सभी भगवान्‌की विभूतियाँ हैं।

अतः सत्यका प्रथम आविर्भाव स्वयम्भू ही है। मनुष्योंमें जो विभिन्न शक्तियाँ हैं, वे भगवान्‌के अवतारोंसे प्राप्त हैं। सभी प्राणी भगवान्‌के विभूति-अवतार ही हैं। उद्भिज्ज, अण्डज, स्वेदज और जरायुज—ये चार प्रकारके प्राणी सभी चैतन्य हैं, पर चेतनाकी कलाओंकी भिन्नताके कारण ही नाम-रूपमें भिन्न हैं। उद्भिज्जमें चेतनाकी एक कला, स्वेदजमें दो कला, अण्डजमें तीन कला और जरायुजमें चेतनाकी चार कलाएँ हैं। मनुष्य भी जरायुज हैं, परंतु विवेकके कारण उनमें चेतनाकी पाँच कलाएँ हैं। महापुरुषोंमें चेतनाकी छः कलाएँ तथा जीवन्मुक्त महात्माओंमें चेतनाकी सात कलाएँ विकसित रहती हैं। इससे अधिक कलाके विस्तारको अवतार कहते हैं।

मूलरूपमें सत्-तत्त्व परमात्मतत्त्व ही है, इसी सत्स्वरूप—सत्यस्वरूप परमात्माकी स्तुति करते हुए श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि॥

(१।१।१)

जिससे इस जगत्‌की सृष्टि, स्थिति और प्रलय होते हैं—क्योंकि वह सभी सद्रूप पदार्थोंमें अनुगत है और असत् पदार्थोंसे पृथक् है; जड नहीं, चेतन है; परतन्त्र नहीं, स्वयं-प्रकाश है; जो ब्रह्मा अथवा हिरण्यगर्भ नहीं, प्रत्युत उन्हें अपने सङ्कल्पसे ही जिसने उस वेदज्ञानका दान किया है; जिसके सम्बन्धमें बड़े-बड़े विद्वान् भी मोहित हो जाते हैं; जैसे तेजोमय सूर्यरश्मियोंमें जलका, जलमें स्थलका और स्थलमें जलका भ्रम होता है, वैसे ही जिसमें यह त्रिगुणमयी जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तिरूपा सृष्टि मिथ्या होनेपर भी अधिष्ठान-सत्तासे सत्यवत् प्रतीत हो रही है, उस अपनी स्वयंप्रकाश ज्योतिसे सर्वदा और सर्वथा माया और मायाकार्यसे पूर्णतः मुक्त रहनेवाले परम सत्यरूप परमात्माका हम ध्यान करते हैं।

भक्तोंकी उपासनाके लिये भगवान्‌का अर्चावतार-धारण

(श्रीरामपदारथसिंहजी)

वैष्णवागममें भगवान्‌के पाँच रूप वर्णित हैं—पररूप, व्यूहरूप, विभवरूप, अन्तर्यामीरूप और अर्चावताररूप। पररूपके दर्शन श्रीवैकुण्ठमें नित्य एवं मुक्त जीवोंको होते हैं। व्यूहरूप देवताओंके अनुभवमें आनेवाले हैं। श्रीराम-कृष्णादि विभवरूपके दर्शन श्रीअयोध्या-मथुरादिमें त्रेता-द्वापरमें विद्यमान बड़भागी व्यक्तियोंको हुए। भगवान्‌के ये तीनों रूप देश-कालकी दूरीके कारण उपासकोंके लिये सुलभ नहीं हैं। अन्तर्यामीरूपसे भगवान् सबके हृदयमें, सब समय रहते हैं। देश-कालकी कोई दूरी नहीं रहनेपर भी कितने लोग इस रूपके दर्शनका आनन्द प्राप्त करते हैं? गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीका कथन है—

अस प्रभु हृदयँ अछत अबिकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी॥

(रा०च०मा० १। २३। ७)

अन्तर्यामीरूपके दर्शन तो सिद्ध, योगी समाधिमें कर सकते हैं; पर भक्त प्रभुका दर्शन कैसे करें, इसीलिये भगवान्‌ने अर्चावतार धारण किया, जो अतिशय सुलभ रूप है। श्रीकृष्णपादसूरिकृत आचार्यहृदयमें सूत्र है—'**सौलभ्य-सीमाभूमिरर्चावतारः**' अर्थात् भगवान्‌का अर्चावतार सुलभताकी सीमा है।

गृह-ग्राम-नगर, श्रीअयोध्या, मथुरादि प्रशस्त देशोंमें तथा वेंकटाद्रि और गोवर्धन आदि पर्वतोंपर प्रतिष्ठित भगवान्‌की मूर्तिविशेषको अर्चावतार कहते हैं—'**अर्चावतारो नाम… गृहग्रामनगरप्रशस्तदेशशैलादिषु वर्तमानो मूर्ति-विशेषः**' (यतीन्द्रमतदीपिका ९)। भगवती श्रुतिकी उक्ति है कि उपासकोंके अभीष्ट-कार्यकी सिद्धिके लिये भगवान् अपना रूप बना लेते हैं। यथा—

'उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना॥'

(रामपूर्वतापिन्युपनिषद् १। ७)

सर्वसमर्थ भगवान् असम्भवको भी सम्भव करनेवाले हैं। मूर्तियोंमें भगवान्‌का होना असम्भव नहीं है। ईश्वर यदि सर्वत्र हैं तो मूर्तियोंमें क्यों नहीं? श्रीतुकारामजीका यह प्रश्न है—

'अवघें ब्रह्मरूप रिता नाहीं ठाव। प्रतिमा तो देव कसा नव्हे॥'

अर्थात् सब कुछ ब्रह्मरूप है, कोई स्थान उससे रिक्त नहीं, तब प्रतिमा भगवान् नहीं—यह कैसे हो सकता है? श्रीएकनाथजी महाराजके शब्दोंमें भगवान्‌के ही वचन हैं—

'मी तेचि माझी प्रतिमा। तेथें नाहीं आन धर्मा॥'

अर्थात् मैं जो हूँ, वही मेरी प्रतिमा है, प्रतिमामें कोई अन्य धर्म नहीं है।

परम प्रभु श्रीभगवान् परम कृपालु हैं। वे अर्चावतारमें देश-कालकी दूरीको दूर करके उपासककी इच्छाके अनुकूल द्रव्यमय देह धारण कर लेते हैं और दर्शनार्चनहेतु सुलभ हो जाते हैं। जो जगन्नियन्ता हैं; वे स्वयं अर्चकके अधीन रहते हैं। जो सर्वाश्रय हैं; वे स्नान, भोजन, शयन आदिके लिये अर्चकपर आश्रित हो जाते हैं और प्रमादवश अर्चकद्वारा अपराध हो जानेपर सहन कर लेते हैं। ये सब उपासकपर उनकी असीम अनुकम्पाके सूचक हैं।

भगवान्‌की कुछ मूर्तियाँ स्वयं प्रकट हुई होती हैं, वे 'स्वयंव्यक्त' कहलाती हैं, कुछ देवताओंद्वारा प्रतिष्ठितकी गयी होती हैं, वे 'दैव' कहलाती हैं, कुछ सिद्धोंद्वारा स्थापित की हुई होती हैं, वे 'सैद्ध' कहलाती हैं। अधिकांश मूर्तियाँ भक्त मनुष्योंद्वारा प्रतिष्ठित की गयी होती हैं, वे 'मानुष' कहलाती हैं। इस प्रकार अर्चावतारके चार भेद हैं। सबमें ज्ञान-शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, तेज आदि समस्त कल्याणगुण परिपूर्ण रहते हैं। इस बातका विश्वास और अनुभव प्रेमी भक्तोंको होता है। उन्हींके तप-योगसे तो अर्चामें अवतार होता है। हयशीर्षसंहितामें कहा गया है—

अर्चकस्य तपोयोगादर्चनस्यातिशायनात्।
आभिरूप्याच्च बिम्बानां देवः सांनिध्यमृच्छति॥

अर्थात् पूजकके तप-योगसे, पूजनकी अतिशयतासे, प्रतिमाकी अभिरूपतासे प्रतिमामें आराध्य देव उपस्थित हो जाते हैं।

श्रद्धावान् उपासकोंको तनिक भी संदेह नहीं होता कि धातु-पाषाणादि प्राकृतिक उपादानोंसे निर्मित मूर्तियाँ प्राकृतिक ही होंगी। उनकी अटल मान्यता होती है कि प्रतिष्ठाके पश्चात् प्रसादोन्मुख भगवान्‌के सत्यसंकल्पसे प्रतिमामें उनका

अप्राकृत शरीर आविर्भूत हो गया है। भगवान् श्रीराम-श्रीकृष्णके शरीर भी प्राकृत ही प्रतीत होते थे, किंतु वे वस्तुतः चिदानन्दमय थे, इसे अधिकारी ही जानते थे। यथा—

चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी॥

(रा०च०मा० २।१२७।५)

अर्चावताररूपकी अर्चना करते-करते उपासक क्रमशः भगवान्‌के पररूपके अनुभवका अधिकारी होता है। अतः उपासनाक्रममें अर्चावतारकी अर्चनाकी अनिवार्यता बतलायी गयी है। श्रीमद्भागवत-महापुराण (३।२९।२५)-में श्रीकपिल-भगवान्‌का उपदेश है—

अर्चादावर्चयेत्तावदीश्वरं मां स्वकर्मकृत्।
यावन्न वेद स्वहृदि सर्वभूतेष्ववस्थितम्॥

अर्थात् मनुष्य अपने धर्मका अनुष्ठान करता हुआ तबतक मुझ ईश्वरकी प्रतिमा आदिमें पूजा करता रहे, जबतक उसे अपने हृदयमें एवं सम्पूर्ण प्राणियोंमें स्थित परमात्माका अनुभव न हो जाय।

शास्त्रोंमें अर्चास्वरूपकी पूजाकी बड़ी महिमा कही गयी है। यमदूतोंको यमराजका निर्देश है कि वे मूर्तिकी पूजा करनेवालोंको नरक नहीं लायें—'**प्रतिमापूजादिकृतो नानेया नरकं नराः।**' (अग्निपुराण ३८।३६) भगवान्‌के अर्चास्वरूपकी उपासना सभी युगोंमें होती रही है, किंतु श्रीएकनाथजी महाराजकी सम्मतिमें कलियुगमें प्रतिमासे बढ़कर और कोई साधन नहीं, यथा—

कलियुगीं प्रतिमे परतें। आन साधन नाहीं निरुतें॥

भक्तगाथाओंसे इस कथनकी पुष्टि होती है। इस कलियुगमें उपासकोंकी अभिलाषाके अनुकूल भगवन्मूर्तियोंद्वारा आश्चर्यजनक कार्य किये जानेकी अनेक कथाएँ भक्तमालमें मिलती हैं। भक्तमालके रचयिता श्रीनाभादासजीने एक छप्पयमें लिखा है कि श्रीरूपचतुर्भुजस्वामीने अपने केश उजले बनाकर अपने पुजारी श्रीदेवापंडाजीकी प्रतिज्ञा पूरी की—'***देवा हित सित केस प्रतिज्ञा राखी जनकी।***' इस पंक्तिकी टीकामें भक्तमालके टीकाकार श्रीप्रियादासजीने तीन कवित्तोंमें पूरी कथा लिखी है, जो पठनीय है। उसका सारांश दिया जा रहा है—

उदयपुरके पास स्थित श्रीरूपचतुर्भुजस्वामीके मन्दिरमें चले गये कि मैं प्रातःकाल आकर देखूँगा। राजाकी बातसे पुजारीजी डर गये। वे सोचमें पड़ गये कि प्रातःकाल राजा आयेंगे और जब ठाकुरजीके उजले केश नहीं देखेंगे, तब न जाने क्या करेंगे? भय और चिन्तामें उनकी रात बीतने लगी। वे ठाकुरजीसे आर्तवाणीसे कहने लगे—'प्रभो हृषीकेश! मुझमें तनिक भी भक्ति नहीं है। फिर भी मेरे लिये आप अपने केश उजले कर लें।' उनकी प्रेमपूर्ण प्रार्थनासे भगवान् पसीज गये। मन्दिरके गर्भगृहमें मधुर स्वर सुनायी पड़ा—'केश उजले कर लिये हैं, देखो, सिरपर उजले केश छाये हैं।'

ठाकुरजीकी अमृतवाणी सुनकर देवाजीको जीवन मिल गया। उन्होंने झाँककर देखा तो भगवान्‌के केश दुग्ध-धवल दिखलायी पड़े। वे प्रेमविभोर हो गये। उनके नेत्रोंमें प्रेमाश्रु भर आये। उन्हें ठाकुरजीको केश उजले बना लेनेके लिये कहनेका पश्चात्ताप होने लगा। वे रो-रोकर कहने लगे—प्रभो! मैंने लेशमात्र भी आपकी सेवा नहीं की। मैं तो कहनेको आपका भक्त हूँ। इसी सम्बन्धको मानकर मुझ अभक्तपर भी आपने अपार कृपा की और मेरे सुखका साज सजानेके लिये श्वेत केशवाला यह वेश बनाकर अपनी सर्वसुलभता दिखा दी।

प्रातः होते ही राजा पहुँच गये। उन्होंने भगवान्‌के श्वेत केश देखे, लेकिन विश्वास नहीं हुआ। वे समझे कि पुजारीजीने कहींसे उजले केश लेकर भगवान्‌के सिरमें चिपका दिये हैं। उन्होंने ज

लिया। केश खींचते ही भगवन्मूर्तिने अपनी नाक सिकोड़कर संकेतसे दर्द होना दर्शाया और सिरसे खूनके छींटे छूटकर राजाके अङ्गपर पड़े। यह दृश्य देखकर राजा बेहोश होकर गिर पड़े। एक प्रहरके बाद उन्हें होश हुआ। उन्होंने श्रीदेवापंडाजीके पाँवपर गिरकर क्षमा माँगी। देवाजीने उन्हें उठाया और कहा—महाराज, मैं तो आपकी चाकरी करके अपना पेट पालता रहा। ठाकुरजीने उसे अपनी सेवा मान ली और मुझ झूठे व्यक्तिको आपके सामने सच्चा बनानेके लिये मेरे कहनेपर अपने केश उजले बना लिये। झूठ बोलकर अपराध तो मैंने किया और ठाकुरजीको कष्ट दिया। आप निर्दोष हैं। ठाकुरजी क्षमा करें। अन्तर्गृहसे श्रीरूपचतुर्भुजस्वामीकी आज्ञा हुई कि इस राजकुलमें जो भी राजसिंहासनपर बैठे, वह यहाँ दर्शनके लिये न आये। तबसे इस आज्ञाका पालन किया जाने लगा। पुजारी श्रीदेवापंडाजी भगवान् श्रीरूपचतुर्भुजस्वामीके पक्के प्रेमी थे। राजा भी नियमसे दर्शनको आते थे इसलिये उन्हें भी अर्चास्वरूपकी दिव्यताका प्रत्यक्षीकरण हुआ और राजाके परिजन एवं प्रजाकी भी अर्चावतारमें आस्था दृढ़ हुई।

~~ 0 ~~

भगवान्‌का अन्तर्यामी रूपमें अवतार

(डॉ० श्रीकपिलदेवजी पाण्डेय)

मनुष्य एवं ईश्वरका सम्बन्ध पूर्वकालसे ही एक ऐसी मानवीय भूमिपर प्रतिष्ठित है, जहाँ एकके उत्क्रमण और दूसरेके अवतरणके द्वारा परस्पर आकर्षण होता रहा है। अवतारवादका क्षेत्र काफी व्यापक होनेसे अन्तर्यामी रूपसे भगवान्‌का अवतार अन्तरोन्मुख भावोंकी एक अभिव्यक्ति है। ईश्वर मनुष्यकी स्वानुभूतियोंसे ऊपर इच्छामय, प्रेममय और आनन्दमय है तथा योगी और परमात्मा, मनुष्य और देवता, ज्ञानी और ब्रह्म, भक्त और भगवान्, संत और अन्तर्यामीके रूपमें यह व्यक्त होता रहता है। एक ही भावभूमिसे उद्भूत होनेके कारण भक्त और भगवान् दोनोंके सम्बन्धोंमें एक विशेष प्रकारकी एकता लक्षित होती है।

साधनावस्थामें भाव-ग्रन्थियोंसे आपूरित संवेदनशील मानव अपने भावोंका यथेष्ट आरोप अपने उपास्यपर करता है। जिसके फलस्वरूप साधनामें आत्मानुभूति या आत्मविह्वलता आदि किसी-न-किसी प्रकारसे वैविध्यकी सृष्टि होती है। उपासक और उपास्य दोनों तादात्म्यकी स्थिति प्राप्त कर अन्तरोन्मुखमें वैविध्यकी अभिव्यक्तिका निर्माण करते हैं, जिसे अन्तर्यामी रूपमें अवतार कहा जाता है।

योगी प्रारम्भसे लेकर सिद्धावस्थातक नाना अवस्थाओंमें परमात्माके अनेक रूप एवं रंगों या अलौकिक स्थितियोंमें उसी वैविध्यका अनुभव करता है। उसी प्रकारसे ज्ञानी ब्रह्मकी अद्वैत-स्थितितक पहुँचनेसे पूर्व विवर्त या मायाके द्वारा वैविध्यका अनुभव करता है।

संत अपनी अन्तर्मुखी वृत्तियों एवं आत्मानुभूतिके आधारपर अपने अन्तर्यामीके साथ भावनात्मक सम्बन्ध रखता है। इसमें बुद्धिकी अपेक्षा हृदयतत्त्वकी अधिक प्रधानता रहती है।

संत किसी विशेष मत या सिद्धान्तका प्रतिपक्षी नहीं होता, उसमें आत्माभिव्यञ्जनकी अजस्रधारा सर्वत्र प्रवाहित होती है। उसका अन्तर्यामी अलख, अविनाशी, निर्गुण-निराकार निरूपित होते हुए भी मनुष्यके समान संवेदनशील, आदर्श और सहृदय व्यक्तित्ववाला होता है।

संतोंकी उपासनाका आधार नामोपासना है, परंतु ये किसी विशेष नामके पक्षपाती नहीं होते। उपास्य नाम—राम, रहीम, केशव, करीम आदि कोई भी होते हैं। अपने उपास्य ईश्वरका उपर्युक्त नाम अन्तर्यामी रूपमें होता है। उपासनामें भी उपास्य मुख्यरूपसे ब्रह्म ही होता है, जिसे उपनिषदोंने आत्मब्रह्म, सर्वभूतान्तरात्मा, आत्मरूप, षोडश-कलायुक्त पुरुष तथा अन्तर्यामी कहा है।

'अन्तर्यामी' शब्दसे आत्मब्रह्मकी निरपेक्षता या उदासीनताका भाव न होकर मानवोचित संवेदना, भावुकता और जिज्ञासासे होता है। वह आत्मतत्त्व संतके लिये पुत्र और धनसे भी अधिक प्रिय है; क्योंकि आत्मा हृदयग्राह्य है।

आचार्य शंकरके अनुसार वह सर्वरूप हृदयग्राह्य ही

उपास्य है। अन्य मन्त्रोंमें उसे मनोमय पुरुष कहा गया है। वह प्रकाशमय है। हृदयके अंदर स्थित वह धान या जौके परिमाण-स्वरूपवाला सभीका स्वामी और सभीका शासनकर्ता तथा सभीका अधिपति है।

बृहदारण्यकोपनिषद्‌में अन्तर्यामी रूपकी चर्चा करते हुए कहा गया है कि अन्तर्यामीका अवतार संवेदना, जिज्ञासा और भावनाके आधारपर होता है। वह अन्तर्यामी जल, अग्नि, अन्तरिक्ष, वायु, प्राणी, जीव, चन्द्रमा, सूर्य, दिशाएँ, आकाश आदिके अंदर समस्त स्थानोंमें, सबके अंदर है। सभी उसके शरीर हैं, वही सबका नियमन करता है।

पाञ्चरात्र आगमोंमें ब्रह्मके चार रूपोंमें एक अन्तर्यामी रूप भी माना गया है। अन्तर्यामी अवतार ईश्वरकी वह शक्ति या रूप है जो निर्मम ज्वालाके रूपमें मनुष्यके हृदयकमलमें स्थित रहती है। यह जीवोंके हृदयमें प्रविष्ट होकर उनकी सब प्रकारकी प्रवृत्तियोंको नियन्त्रित करती है। अन्तर्यामी रूप दो प्रकारके होते हैं—एक रूपमें वे मङ्गलमय विग्रहके साथ जीवके सखारूपमें उसके हृदयकमलमें वास करते हैं और उसकी रक्षा करते हैं। उसके ध्येयरूपमें उसके साथ-साथ अवस्थित रहते हैं और दूसरे रूपमें वे जीवकी सभी अवस्थाओंमें उसकी रक्षा करते हैं। संतोंने हृदयमें स्थित इसी अन्तर्यामीको अपना सहज सौम्य व्यक्तित्व प्रदान किया है और अन्तर्यामी अवतारको आद्य कोटिमें माना है। कबीरदास तो अपने हृदयमें नित्य प्रति उसके प्राकट्यका आनन्द लेते थे—

हरि संगति सीतल भया, मिटी मोह की ताप।
निस बासुरि सुख नित्य लह्या, जब अंतरि प्रगट्या आप॥

इसमें जिस निर्गुण रामका उल्लेख है, वह हृदयस्थित ब्रह्मरूप है।

रामपूर्वतापिन्युपनिषद् (६)-में कहा गया है कि योगीलोग जिस नित्यानन्दस्वरूप चिन्मय ब्रह्ममें रमण करते हैं, वह परब्रह्म परमात्मा 'राम' ही है।

सगुणोपासक अपने इष्टदेवकी उपासना अष्टयाम पूजा और अर्चनाके द्वारा करते हैं, परंतु संत केवल नामोपासना एवं यौगिक पद्धतियोंका उपयोग करते हैं। इनके अनुसार ब्रह्म सक्रिय एवं अन्तर्यामी है और भक्तोंका पालक तथा उनका अभीष्ट फलदाता है। संतोंने ईश्वरके साथ सखा, भाई, गुरु, स्वामी, दास, माता, पिता, प्रियतम आदि अनेक व्यक्तिगत एवं सामाजिक सम्बन्ध स्थापित किये हैं। संतोंकी साधना आन्तरिक होती है, बहिर्मुखी नहीं। वे अपने अन्तर्यामीके प्रति व्यक्तिगत सम्बन्ध रखते हैं। दादू ऐसे राजाकी सेवा करनेकी कामना करते थे जिनका तीनों लोक घर है, चाँद और सूर्य दीपक हैं, पवन आँगन बुहारता है, शंकर और ब्रह्मा भी जिसकी सेवा करते हैं, मुनि जिसका ध्यान करते हैं, नारद-शारदा आदि जिसका गुणगान करते हैं, जो चौदह भुवनोंमें अवस्थित हैं, जो सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टिको धारण किये हैं।

यहाँ उनके अन्तर्यामी भगवान् राजाके रूपमें हैं। इससे स्पष्ट होता है कि संतोंमें अन्तर्यामी आत्मा ब्रह्मका रूप है।

कबीरदासने भी अन्तर्यामी श्रीरामको पूर्ण ब्रह्म कहा है। गुरु अर्जुनदेव ऐसे धनी गोविन्दका गुणगान करते हैं, जिन्होंने विष्णुके रूपमें करोड़ों अवतार धारण किये हैं। करोड़ों ब्रह्माण्डमें जिनका विस्तार है। करोड़ों देवता जिनमें स्थित हैं। करोड़ों वैकुण्ठ जिनकी सृष्टिमें विद्यमान हैं।

सगुणोपासककी तरह संतोंमें भी माधुर्य एवं सखीभाव आदि दिखायी पड़ता है। कबीरदासजीका मानना है कि हरि उनका प्रीतम है और वे उस प्रियकी बहुरिया हैं। उसके बिना उनका अस्तित्व ही नहीं है। उनसे मिलनेके लिये ही वे शृंगार करते हैं और उनसे मिलनेके लिये ही वे सदा बेचैन रहते हैं। दादूने भी सारी सृष्टिको नारी एवं अपने अन्तर्यामी हरिको एकमात्र पुरुष कहा है। उनकी वाणी है—

हम सब नारी एक भरतार। सब कोई तन करै सिंगार॥

संतोंमें अन्तर्यामीके प्रति स्वकीयाजनित दास्यभावकी अभिव्यक्ति भी पायी जाती है, अपने अलख और अविनाशी पुरुषमें सगुण रूपकी अभिव्यक्ति देखनेको मिलती है। यह सम्बन्ध किसी सिद्धान्त, दर्शन या सम्प्रदायसे प्रभावित नहीं होता, अपितु उनमें व्यक्तिगतरूपसे स्वानुभूतिपरक आत्मनिवेदन, दैन्य आदि स्वाभाविक उद्गार प्रतिष्ठित रहते हैं। संतोंको अपने अन्तर्यामीमें विराट् रूपका भी दर्शन होता है।

गीतामें कहा गया है कि जो मुझे सर्वत्र सबमें देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता।

उपर्युक्त विवरणसे स्पष्ट होता है कि वह अन्तर्यामी ईश्वर समस्त भूतोंमें तथा आकाशसे लेकर पातालतक कण-कणका वासी है, सबका अन्तरात्मा होनेके कारण वही ज्ञेय है। भाव-भक्तिरूपमें वह अन्तर्यामीरूपसे प्रकट होता है। वह नेति-नेतिके रूपमें निरूपित है। इस आत्ममूर्तिमें स्थूल रूपका अभाव होते हुए भी यह सगुण-साकारके गुणसे युक्त है। यह ईश्वरका एक विशिष्ट स्वरूप है। यह ध्येय, ज्ञेय और पूज्य है।

[प्रेषक—श्रीअखिलेश्वरजी पाण्डेय]

भगवान्‌का परिपूर्णतम अवतार

(डॉ० श्रीमती पुष्पामिश्रा, एम्०ए० (द्वय), पी-एच्०डी०)

परम ज्ञानी श्रीशुकदेवजीने अवतार-तत्त्वकी मीमांसा करते हुए राजा परीक्षित्‌से कहा—

नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप।
अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः॥

(श्रीमद्भा० १०। २९। १४)

हे राजन्! भगवान् प्रकृतिके विकास और विनाश, प्रमाण और प्रमेय आदि गुणोंसे रहित हैं। वे अप्राकृत अनन्त गुणोंके आश्रय हैं और उन्होंने अपनी लीलाको जीवके कल्याणके लिये ही प्रकट किया है।

वेदान्तदर्शनका उद्घोष है—

'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्॥' (ब्र०सू० २। १। ३३)

इसका भाव यह है कि भगवान्‌का जगत्-रचना आदि कर्मोंसे या मनुष्यादि अवतार धारण करके भाँति-भाँतिके लोकपावन चरित्र करनेमें कोई प्रयोजन नहीं है तथा इसमें कर्तापनका अभिमान भी नहीं है। अतः भगवान्‌के कर्म लीलामात्र ही हैं।

जब भगवान् अपने अंशसे पृथ्वीपर अवतीर्ण होते हैं तो अवतार कहे जाते हैं। भगवान् श्रीकृष्णका परिपूर्णतम प्राकट्य हुआ है, वे स्वयं भगवान् हैं।

भगवान्‌के परिपूर्णतम अवतारके विषयमें बताते हुए श्रीगर्गाचार्यजी कहते हैं कि जिसके अपने तेजमें अन्य सभी तेज विलीन हो जाते हैं, भगवान्‌के उस अवतारको श्रेष्ठ विद्वान् पुरुष 'परिपूर्णतम' अवतार बताते हैं—

यस्मिन् सर्वाणि तेजांसि विलीयन्ते स्वतेजसि।
तं वदन्ति परे साक्षात् परिपूर्णतमं स्वयम्॥

(श्रीगर्गसंहिता, गोलोकखण्ड १। २४)

महर्षि वेदव्यास एवं अन्य ऋषियोंने अंशांश, अंश, आवेश, कला, पूर्ण और परिपूर्णतम—ये छः प्रकारके अवतार बताये हैं। मरीचि आदि अंशांशावतार, ब्रह्मा आदि अंशावतार, कपिल आदि कलावतार, परशुराम आदि आवेशावतार कहे गये हैं।

पूर्णो नृसिंहो रामश्च श्वेतद्वीपाधिपो हरिः।
वैकुण्ठोऽपि तथा यज्ञो नरनारायणः स्मृतः॥
परिपूर्णतमः साक्षाच्छ्रीकृष्णो भगवान् स्वयम्।
असंख्यब्रह्माण्डपतिर्गोलोके धाम्नि राजते॥

(श्रीगर्गसंहिता, गोलोकखण्ड १। १८-१९)

अर्थात् श्रीनृसिंह, श्रीराम, श्वेतद्वीपाधिपति हरि, वैकुण्ठ, यज्ञ और नर-नारायण—ये पूर्णावतार हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ही 'परिपूर्णतम' अवतार हैं। असंख्य ब्रह्माण्डोंके अधिपति वे प्रभु गोलोकधाममें विराजते हैं।

रामादिमूर्तिषु कलानियमेन तिष्ठन्
नानावतारमकरोद् भुवनेषु किंतु।
कृष्णः स्वयं समभवत्परमः पुमान् यो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

(श्रीब्रह्मसंहिता ५। ११)

जिन्होंने श्रीराम, नृसिंह, वामन आदि विग्रहोंमें नियत कलाके रूपमें विभिन्न अवतार लिये, परंतु जो भगवान श्रीकृष्णके रूपमें स्वयं प्रकट हुए, उन आदिपुरुष गोविन्दका मैं भजन करता हूँ।

भगवान् श्रीहरि युग-युगमें धर्मरक्षणार्थ वामनादिके रूपमें शरीर धारण किया करते हैं। भगवान श्रीहरिने त्रिविक्रमरूपमें वामनावतार लिया तथा द्वापरमें श्रीकृष्णरूपमें

अवतरित हुए।

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तर-
जायमानो बहुधा वि जायते।
तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरा-
स्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा॥

(यजु० ३१।१९)

अर्थात् प्रजापालक परमेश्वर सभीके अंदर विचरते हैं। वे अजन्मा होकर भी अनेक रूपोंमें प्रकट हो जाते हैं। इनके मूल स्वरूपको ज्ञानीजन देखते हैं, जिससे सभी भुवन व्याप्त हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण गीता (४।६)-में कहते हैं—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

भगवान् अपने जन्मकी विलक्षणता बतलाते हुए कहते हैं कि वे अजन्मा और अविनाशी हैं, फिर भी सभी जीवोंके स्वामी हैं। वे युग-युगमें अपने आदि दिव्य रूपमें प्रकट होते हैं। भगवान् कहते हैं कि वे अपने ही शरीरमें प्रकट होते हैं। वे सामान्य जीवकी भाँति शरीर-परिवर्तन नहीं करते। प्राकृत जगत्में जीवका कोई स्थायी शरीर नहीं होता है। जीव हमेशा ही एक शरीरसे दूसरे शरीरमें देहान्तरण करता रहता है।

महाभारतमें एक कथा है कि जब अर्जुन और भगदत्तका युद्ध हो रहा था तो भगदत्तके द्वारा चलाये गये वैष्णवास्त्रसे अर्जुनकी रक्षा भगवान् श्रीकृष्णने की थी। भगदत्तद्वारा छोड़ा गया वह अस्त्र सबका विनाश करनेवाला था। भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको अपने पीछे ओटमें करके स्वयं ही अपनी छातीपर उस अस्त्रकी चोट सह ली। भगवान् श्रीकृष्णकी छातीपर वह अस्त्र वैजयन्ती मालाके रूपमें परिणत हो गया। अर्जुनके मनमें बड़ा ही क्लेश हुआ और यह पूछनेपर कि आपने मुझे पीछे ओटमें क्यों किया? भगवान्ने यह रहस्य अर्जुनसे व्यक्त किया—

चतुर्मूर्तिरहं शश्वल्लोकत्राणार्थमुद्यतः।
आत्मानं प्रविभज्येह लोकानां हितमादधे॥
एका मूर्तिस्तपश्चर्यां कुरुते मे भुवि स्थिता।
अपरा पश्यति जगत् कुर्वाणं साध्वसाधुनी॥
अपरा कुरुते कर्म मानुषं लोकमाश्रिता।
शेते चतुर्थी त्वपरा निद्रां वर्षसहस्रिकम्॥
यासौ वर्षसहस्रान्ते मूर्तिरुत्तिष्ठते मम।
वरार्हेभ्यो वराञ् श्रेष्ठांस्तस्मिन् काले ददाति सा॥

(महा०, द्रोणपर्व २९।२६—२९)

सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षा करने हेतु मैं चार रूप धारण करता हूँ। अपनेको यहाँ अनेक रूपोंमें विभक्त कर देता हूँ। मेरी एक मूर्ति इस पृथ्वीपर स्थित हो तपश्चर्या करती है। दूसरी मूर्ति परमात्माके रूपमें शुभ-अशुभ कर्म करनेवालोंको साक्षी रूपसे देखती है। तीसरी मूर्तिसे (मैं स्वयं) मनुष्यलोकका आश्रय लेकर नाना प्रकारके कर्म करता हूँ तथा चौथी मूर्ति सहस्र युगोंतक एकार्णवके जलमें शयन करती है। सहस्र युगके उपरान्त मेरा यह चौथा रूप जब योगनिद्रासे जागता है, उस समय वर पानेके योग्य श्रेष्ठ भक्तोंको उत्तम वर प्रदान करता है।

श्रीकृष्णदास कविराजकृत चैतन्यचरितामृतके निम्नलिखित श्लोकोंसे अवतार-सिद्धान्तकी पुष्टि होती है—

सृष्टिहेतु एइ मूर्ति प्रपञ्चे अवतरे।
सेई ईश्वरमूर्ति अवतार नाम धरे॥
मायातीत परव्योमे स बार अवस्थान।
विश्वे अवतरि धरे अवतार नाम॥

(२०।२२७-२२८)

अवतार भगवद्धामसे भौतिक प्राकट्यहेतु होता है। ईश्वरका यह विशिष्ट रूप, जो इस प्रकार अवतरित होता है, अवतार कहलाता है। भगवान् भगवद्धाममें स्थित रहते हैं जब वे भौतिक जगत्में उतरते हैं, अवतार कहे जाते हैं।

अवतार कई प्रकारके होते हैं। जैसे गुणावतार, लीलावतार, पुरुषावतार, शक्त्यावेशावतार, मन्वन्तर-अवतार तथा युगावतार आदि—इन सबका ब्रह्माण्डमें अवतरण होता है। परंतु भगवान् श्रीकृष्ण आदि भगवान् हैं तथा सभी अवतारोंके उद्गम हैं।

श्रीनरसिंहपुराण (५३।३४—३६)-में ऐसा वर्णन मिलता है—

शिष्टानां पालनार्थाय दुष्टनिग्रहणाय च।
प्रेषयामास ते शक्ती सितकृष्णे स्वके नृप॥
तयोः सिता च रोहिण्यां वसुदेवाद्बभूव ह।

तद्वत्कृष्णा च देवक्यां वसुदेवाद्बभूव ह॥
रौहिणेयोऽथ पुण्यात्मा रामनामाश्रितो महान्।
देवकीनन्दनः कृष्णस्तयोः कर्म शृणुष्व मे॥

अर्थात् भगवान् श्रीकृष्णने सज्जनोंकी रक्षा और दुष्टोंका संहार करनेके लिये अपनी उन दो शक्तियों—गौर एवं कृष्णको भेजा। उनमेंसे गौरशक्ति वसुदेवद्वारा रोहिणीके गर्भसे प्रकट हुई तथा कृष्णशक्ति वसुदेव द्वारा देवकीके गर्भसे प्रकट हुई। रोहिणीनन्दनने 'राम' नाम धारण किया और देवकीनन्दनका नाम 'श्रीकृष्ण' रखा गया।

श्रीमद्भागवत (१०।२।८-९)-के अनुसार भगवान् श्रीकृष्ण योगमायासे कहते हैं—

देवक्या जठरे गर्भं शेषाख्यं धाम मामकम्।
तत् संनिकृष्य रोहिण्या उदरे संनिवेशय॥
अथाहमंशभागेन देवक्याः पुत्रतां शुभे।
प्राप्स्यामि त्वं यशोदायां नन्दपत्न्यां भविष्यसि॥

इस समय मेरा अंश, जिसे शेष कहते हैं, देवकीके उदरमें गर्भरूपमें स्थित है, उसे वहाँसे हटाकर रोहिणीके उदरमें रख दो। कल्याणी! अब मैं अपने समस्त ज्ञान, बल आदि अंशोंके साथ देवकीका पुत्र बनूँगा और तुम नन्दबाबाकी पत्नी यशोदाके गर्भसे जन्म लेना।

भगवान् श्रीकृष्ण १६ कलाओं (छः ऐश्वर्य, आठ सिद्धि, कृपा—दया तथा लीला)-के साथ प्रकट हुए। सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य—इन छःका नाम भग है।

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसश्श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥

(श्रीविष्णुपुराण ६।५।४७)

अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व और कामावसायित्व—ये आठ सिद्धियाँ कही जाती हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण जहाँ कृपा-निधान हैं, वहीं वे लीलापुरुषोत्तम हैं।

श्रीकृष्णको '**कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्**' कहा गया है—

ऋषयो मनवो देवा मनुपुत्रा महौजसः।
कलाः सर्वे हरेरेव सप्रजापतयस्तथा॥
एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।
इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृडयन्ति युगे युगे॥

(श्रीमद्भा० १।३।२७-२८)

अर्थात् ऋषिगण, मनु, देवता, प्रजापति, मनुपुत्र तथ जितने भी महान् शक्तिशाली हैं, वे सभी भगवान्के अं हैं। ये सभी भगवान्के अंशावतार या कलावतार हैं, परं भगवान् श्रीकृष्ण तो स्वयं भगवान् ही हैं। जब लो अत्याचारसे व्याकुल हो जाते हैं, तब युग-युगमें प्रक होकर भगवान् उन सबकी रक्षा करते हैं।

श्रीब्रह्मसंहिता (५।१)-का उद्घोष है—

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम्॥

गोविन्दके नामसे विख्यात श्रीकृष्ण ही परमेश्वर हैं उनका विग्रह सच्चिदानन्द है तथा वे सभी कारणोंके कारण हैं।

महर्षि गर्गाचार्यने श्रीगर्गसंहितामें भगवान् श्रीकृष्णको परिपूर्णतम अवतार बताया है, जो सम्पूर्ण विश्वकी रक्षा करते हैं।

अंशांशकांशककलाभिरुताभिरामं
वेशप्रपूर्णनिचयाभिरतीवयुक्तः।
विश्वं विभर्षि रसरासमलङ्करोषि
वृन्दावनं च परिपूर्णतमः स्वयं त्वम्॥

(वृन्दावनखण्ड २५।२४)

हे गोविन्द! आप अंशांश, अंश, कला, आवेश तथा पूर्ण—समस्त अवतारसमूहोंसे संयुक्त हैं। आप परिपूर्णतम परमेश्वर सम्पूर्ण विश्वकी रक्षा करते हैं तथा वृन्दावनमें सरस रासमण्डलको भी अलङ्कृत करते हैं।

अवतरणका उपक्रम—दानव, दैत्य, आसुर स्वभावके मनुष्य और दुष्ट राजाओंके भारी भारसे अत्यन्त पीड़ित होकर पृथ्वी गौका रूप धारण करके अनाथकी भाँति रोती-बिलखती हुई अपनी आन्तरिक व्यथा निवेदन करनेके लिये ब्रह्माजीकी शरणमें गयी। ब्रह्माजीने व्यथा सुनकर पृथ्वीको धीरज बँधाया तथा तत्काल सभी देवताओं तथा शिवजीको साथ लेकर वे भगवान् विष्णुके वैकुण्ठधाममें गये। वहाँ जाकर ब्रह्माजीने भगवान् विष्णुको प्रणाम करके सारा अभिप्राय निवेदन किया। तब भगवान् लक्ष्मीपति श्रीविष्णुने कहा—

कृष्णं स्वयं विगणिताण्डपतिं परेशं
साक्षादखण्डमतिदेवमतीवलीलम् ।

कार्यं कदापि न भविष्यति यं विना हि
गच्छाशु तस्य विशदं पदमव्ययं त्वम्॥

(श्रीगर्गसंहिता, गोलोकखण्ड २।७)

हे ब्रह्माजी! साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण ही अगणित ब्रह्माण्डोंके स्वामी, परमेश्वर, अखण्डस्वरूप तथा देवातीत हैं। उनकी लीलाएँ अनन्त एवं अनिर्वचनीय हैं। उनकी कृपाके बिना यह कार्य कदापि सिद्ध नहीं होगा। अत: आप उन्हींके अविनाशी एवं परम उज्ज्वल धाममें शीघ्र जायँ।

ब्रह्माजी सभी देवताओंके साथ भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें उपस्थित हुए। वहाँ उन्होंने देखा कि भगवान् श्रीहरि उठे और भगवान् श्रीकृष्णके श्रीविग्रहमें लीन हो गये। भगवान् नृसिंह भी पधारे और वे भी भगवान् श्रीकृष्णके तेजमें समा गये। इसके उपरान्त श्वेतद्वीपके स्वामी पधारे, वे भी भगवान् श्रीकृष्णके विग्रहमें प्रविष्ट हो गये। भगवान् श्रीराम भी पधारे तथा वे भी श्रीकृष्णविग्रहमें लीन हो गये। यज्ञनारायण हरि भगवान् नर-नारायण भी पधारे तथा वे भी श्रीकृष्णके विग्रहमें लीन हो गये। यह देखकर ब्रह्माजीके साथ सभी देवगण आश्चर्यचकित हो गये—

'दृष्ट्वा च परमाश्चर्यं ते सर्वे विस्मयं ययुः॥'

(श्रीब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्णजन्मखण्ड ६१।४९)

तब सभी देवताओंने उनकी इस प्रकार स्तुति की—

कृष्णाय पूर्णपुरुषाय परात्पराय
यज्ञेश्वराय परकारणकारणाय।
राधावराय परिपूर्णतमाय साक्षाद्
गोलोकधामधिषणाय नमः परस्मै॥
योगेश्वराः किल वदन्ति महः परं त्वं
तत्रैव सात्वतजनाः कृतविग्रहं च।
अस्माभिरद्य विदितं यददोऽद्वयं ते
तस्मै नमोऽस्तु महतां पतये परस्मै॥

(श्रीगर्गसंहिता, गोलोकखण्ड ३।१५-१६)

जो भगवान् श्रीकृष्ण पूर्ण पुरुष, परसे भी पर, यज्ञोंके स्वामी, कारणोंके भी परम कारण, परिपूर्णतम परमात्मा और साक्षात् गोलोकधामके अधिवासी हैं, उन परम पुरुष राधावरको हम सादर नमस्कार करते हैं। योगेश्वर लोग कहते हैं कि आप परम तेज:पुञ्ज हैं, शुद्ध अन्त:करणवाले भक्तजन आपको लीलावतार मानते हैं, परंतु हमलोगोंने आज आपके जिस स्वरूपको जाना है, वह अद्वैत एवं अद्वितीय है। अत: आप महत्तम तत्त्वों एवं महात्माओंके भी अधिपति हैं, आप परब्रह्म परमेश्वरको हमारा नमस्कार है।

देवगणोंद्वारा की गयी स्तुतिपर भगवान्‌ने अवतार धारणका वचन देकर उन्हें आश्वस्त किया।

परिपूर्णतम अवतारका प्रयोजन—जब भी अधर्मकी प्रधानता तथा धर्मका लोप होने लगता है, भगवान् स्वेच्छासे प्रकट होते हैं। भगवान् भक्तोंका उद्धार तथा दुष्टोंका संहार करनेके लिये अवतार ग्रहण करते हैं। जीवन्मुक्त महात्मा जीवन्मुक्तावस्था प्राप्त हो जानेपर भी जगत्-कल्याणार्थ कार्य करते रहते हैं। उन्हींकी प्रार्थनापर भगवान्‌का अवतार होता है।

ऐसे भगवद्विभूतिसम्पन्न महापुरुषोंके परोपकार-गुणका वर्णन श्रीशङ्कराचार्यने विवेकचूडामणि (३९-४०)-में इस प्रकार किया है—

शान्ता महान्तो निवसन्ति सन्तो
वसन्तवल्लोकहितं चरन्तः।
तीर्णाः स्वयं भीमभवार्णवं जना-
नहेतुनान्यानपि तारयन्तः॥
अयं स्वभावः स्वत एव यत्पर-
श्रमापनोदप्रवणं महात्मनाम्।
सुधांशुरेष स्वयमर्ककर्कश-
प्रभाभितप्तामवति क्षितिं किल॥

शान्त स्वभावके जीवन्मुक्त महात्मा वसन्त-ऋतुके समान संसारका हित करते हैं। वे स्वयं भी संसार-सागरसे तरते हैं तथा दूसरोंको भी इस संसार-सागरसे तारते हैं। जैसे चन्द्रमा सूर्यकी प्रभासे संतप्त पृथ्वीको शीतलता प्रदान करता है, वैसे ही दूसरेके दु:खको नाश करना इन महात्माओंका स्वभाव है।

भगवान् श्रीकृष्ण भक्तोंकी चिन्ताओंको दूर करनेके विशिष्ट प्रयोजनसे अवतार ग्रहण करते हैं। भगवान् श्रीकृष्णके परिपूर्णतम अवतारका प्रयोजन प्रेमी भक्तोंको प्रसन्न करना है।

॥ श्रीहरिः ॥

नम्र निवेदन एवं क्षमा-प्रार्थना

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान्‌का स्पष्ट वचन है कि मैं अजन्मा और अविनाशीस्वरूप होते हुए भी तथा समस्त प्राणियोंका ईश्वर होते हुए भी अपनी प्रकृतिको अधीन करके अपनी योगमायासे प्रकट होता हूँ। मेरा जन्म लेना—प्रकट होना—अवतरित होना तथा लीला करना प्राकृत नहीं; अपितु दिव्य, चिन्मय और अलौकिक है— **'जन्म कर्म च मे दिव्यम्।'**

भगवत्कृपासे इस वर्ष कल्याणका विशेषाङ्क **'अवतार-कथाङ्क'** पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत किया जा रहा है। कल्याणकी परम्परामें प्रतिवर्ष प्रकाशित विशेषाङ्कोंमें यद्यपि भगवदवतारों और उनकी लीलाओंकी चर्चा किसी-न-किसी रूपमें अवश्य होती रही है, परंतु विभिन्न अवसरोंके परमात्मप्रभुके विभिन्न अवतारोंका एकत्र संकलन अबतक प्राप्त नहीं था, अतः इस वर्ष यह विचार आया के भगवान्‌के अवतारोंकी कथा और उनका परिचयात्मक ंकलन विशेषाङ्कके रूपमें प्रकाशित किया जाय।

वास्तवमें करुणावरुणालय परमात्मप्रभु जीवोंके परम ल्याण-साधनके लिये ही अपनी अहैतुकी कृपा करते ए विविध नाम-रूपोंमें अवतार धारण करते हैं; अन्यथा तो सर्वथा आप्तकाम हैं, पूर्णकाम हैं; उनको अपने ये कौन-सी अभिलाषा है—**'आप्तकामस्य का स्पृहा।'** परमात्मा निरञ्जन, निर्विकार, निराकार होते हुए भी क्तजनोंके प्रेमके वशीभूत हो उनकी पुकार सुनते हैं, ार्तजनोंकी करुणासे उद्वेलित होते हैं और इसी कारण र्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी, सर्वव्यापक और सर्वसमर्थ होकर सगुण-साकार रूपसे एक देशमें अवतरित होते हैं— इ हिन्दू-संस्कृति और भारतभूमिकी अपनी विशेषता । यहाँके भक्तों, उपासकों, संत-महात्माओं, साधुजनों ा जीवमात्रको सगुण-साकार प्रभुकी सन्निधि प्राप्त होती है और उनके लीला-चरित्रके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त होता है, जो अन्य देशवासियोंको इस रूपमें प्राप्त नहीं होता। इसीलिये स्वर्गके देवता भी भारतवासियोंके सौभाग्यकी सराहना करते हैं तथा यह गीत गाते हैं—

गायन्ति देवाः किल गीतकानि
धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥

(श्रीविष्णुपुराण २।३।२४)

अर्थात् देवगण भी निरन्तर यही गान करते हैं कि 'जिन्होंने स्वर्ग और अपवर्गके मार्गभूत भारतवर्षमें जन्म लिया है, वे पुरुष हम देवताओंकी अपेक्षा भी अधिक धन्य (बड़भागी) हैं।'

भगवान्‌के प्राकट्यके समय ये देवता भी भगवत्परिकरोंके रूपमें इस मर्त्यलोकमें प्रयासपूर्वक शरीर धारण करते हैं। इसीलिये मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम तथा लीलापुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णके प्रादुर्भावके समय कई देवताओंने भी अपनी कुछ कलाओंके साथ अवतार धारण किया।

वस्तुतः यह जगत् परमात्माका लीला-विलास है, लीलारमणका आत्माभिरमण है, इसीलिये भगवान् अपनी लीलाको चिन्मय बनानेके लिये अपनी संरचनामें अन्तर्यामीरूपसे स्वयं प्रविष्ट भी हो जाते हैं **'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्'** और अजायमान होते हुए भी बहुत रूपोंमें लीला करते हैं **'अजायमानो बहुधा वि जायते।'** कुछ विज्ञजनोंका यह मत है कि भगवान् यद्यपि आप्तकाम, पूर्णकाम, परम निष्काम, आत्माराम हैं; अतएव उनके भीतर किसी प्रकारकी कामना तो सम्भव ही नहीं, फिर भी वे अपने आनन्द-विलासके लिये लीला करते हैं, जिसके फलस्वरूप भक्तोंकी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। भगवल्लीलासे अभिव्यक्त उल्लसित आनन्द प्रेमी भक्तोंको

परम प्रफुल्लित करता है। परमात्मप्रभु अपने आनन्दस्वरूपका विस्तार करनेके लिये अनेक स्वरूपोंमें प्रकट होते हैं—'**एकोऽहं बहु स्याम्।**' भगवान् अपनी अवतरण-लीलामें अपने परिकरोंके साथ अपनी आह्लादिनीशक्तिके साथ अपने नित्य धामसे उतरकर जगत्को आनन्दित करते हैं। कल्पभेदसे भगवान्ने अनेक अवतार धारण किये हैं, अतएव उनके चरित भी अनन्त हैं—'***हरि अनंत हरि कथा अनंता।***' वस्तुतः भगवान्के सभी लीलाचरित यथार्थ हैं, पूर्ण हैं, पूर्णतर हैं और परिपूर्णतम हैं—'**पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।**'

प्रस्तुत अङ्कमें आनन्दकन्द ब्रह्माण्डनायक परमात्मप्रभुके विभिन्न स्वरूपोंका, उनके लौकिक एवं अलौकिक गुणोंका, पञ्चदेवोंके विभिन्न अवतारोंकी परम मनोहर लीला-कथाओं—अवतार-रहस्यों तथा उन अवतार-रहस्यों और उन अवतारोंके ऐकान्तिक भक्तों, सेवकों, उपासकों एवं मित्रभावान्वित तथा शत्रुभावान्वित लीला-सहचरोंके विभिन्न चरित्रोंका यथास्थान चित्रण करते हुए प्रभु-अवतरण-लीलाका दर्शन, साथ ही जन्म-रहस्योंका उद्घाटन और अवतार-कथाके प्रत्येक पक्षपर पठनीय, विचार-प्रेरक एवं अनुष्ठेय सामग्रीका समायोजन करनेका प्रयास किया गया है, जिससे सर्वसाधारणको परमात्मप्रभुकी अवतार-कथाओंका सम्यक् दर्शन-चिन्तन एवं मनन हो सके तथा संसारके लोगोंमें एकाग्रता, अनन्यता, तन्मयता और सद् वृत्तियोंका उदय भी हो।

'**अवतार-कथाङ्क**'के लिये लेखक महानुभावोंने उत्साहपूर्वक जो सहयोग प्रदान किया है, उसे हम कभी भूल नहीं सकते। इस वर्ष हमने लेखक महानुभावोंसे सामान्य लेख न भेजकर विशेष लेख भेजनेका अनुरोध किया था, हमें इस बातकी प्रसन्नता है कि इस बार कुछ विशिष्ट सामग्री भी प्राप्त हुई। यथासाध्य विशेषाङ्कमें उनके प्रकाशनका भी प्रयास किया गया, परंतु सम्पूर्ण लेखोंका यथास्थितिमें प्रकाशन करना कथमपि सम्भव नहीं था, इसलिये कुछ लेखोंको संक्षिप्त भी करना पड़ा तथा कुछ लेख प्रकाशित नहीं भी किये जा सके, जिसके लिये हमें अत्यन्त खेद है। यद्यपि बचे हुए लेखोंमेंसे कुछ लेखोंको साधारण अङ्कोंमें यथासाध्य प्रकाशित करनेका प्रयास करेंगे, फिर भी जिनके लेख प्रकाशित नहीं हो सके, उन लेखक-महानुभावोंसे हम करबद्ध क्षमा-प्रार्थना करते हैं, कृपया हमारी विवशता समझकर अन्यथा न समझें तथा कल्याणपर अपनी कृपादृष्टि बनाये रखें। उन लेखक महानुभावोंके हम अत्यधिक कृतज्ञ हैं, जिन्होंने कृपापूर्वक अपना अमूल्य समय लगाकर भगवान्की अवतार-कथाओंसे सम्बन्धित सामग्री यहाँ प्रेषित की है। '**अवतार-कथाङ्क**'की सामग्रीकी अधिकताके कारण फरवरी मासका एक परिशिष्टाङ्क भी बादमें भेजनेका विचार है।

हम अपने उन सभी पूज्य आचार्यों, परम सम्मान्य पवित्रहृदय संत-महात्माओं, साधक भक्तों, आदरणीय विद्वान् लेखक महानुभावोंके चरणोंमें सादर भक्तिपूर्वक प्रणाम करते हैं, जिन्होंने '**विशेषाङ्क**' की पूर्णतामें किञ्चित् भी योगदान किया है। भगवान्की अवतार-कथाओं एवं भक्ति-भावनाके प्रचार-प्रसारमें वे ही निमित्त हैं; क्योंकि उन्हींके भक्ति-भावपूर्ण एवं उच्च विचारपूर्ण लेखोंसे '**कल्याण**'को सदा शक्ति-स्रोत प्राप्त होता रहता है।

हम अपने विभागके तथा प्रेसके उन सभी सम्मान्य साथी-सहयोगियोंको भी प्रणाम करते हैं, जिनके स्नेहपूर्ण सहयोगसे यह पवित्र कार्य सम्पन्न हो सका है। त्रुटियों एवं व्यवहार-दोषके लिये सबसे क्षमाप्रार्थी हैं।

'**अवतार-कथाङ्क**'के सम्पादन में जिन संतों तथा विद्वान् लेखकोंसे सक्रिय सहयोग प्राप्त हुआ है, उन्हें हम अपने मानस-पटलसे विस्मृत नहीं कर सकते। सर्वप्रथम मैं वाराणसीके समादरणीय पं० श्रीलालबिहारीजी शास्त्री तथा प्रयागके पं० श्रीरामकृष्णजी शास्त्रीके प्रति हृदयसे आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने अपने लेख एवं प्रेरणाप्रद परामर्श प्रदान कर निष्काम भावसे अपनी सेवाएँ परमात्मप्रभुके श्रीचरणोंमें समर्पित की हैं। 'गोधन'-

के सम्पादक तथा विशिष्ट पत्रकार श्रीशिवकुमारजी गोयलके प्रति भी हम आभार व्यक्त करते हैं, जो निरन्तर अपने पूज्य पिता भक्त श्रीरामशरणदासजी, पिलखुआके संग्रहालयसे अनेक दुर्लभ सामिग्रयाँ हमें उपलब्ध कराते हैं।

मैं अपने कनिष्ठ भ्राता प्रेमप्रकाश लक्कड़के प्रति भी आभारी हूँ, जिन्होंने इस अङ्कके सम्पादनमें अपना अमूल्य समय देकर पूर्ण सहयोग प्रदान किया। इसके सम्पादन, प्रूफ-संशोधन, चित्र-निर्माण तथा मुद्रण आदिमें जिन-जिन लोगोंसे हमें सहृदयता मिली, वे सभी हमारे अपने हैं; उन्हें धन्यवाद देकर हम उनके महत्त्वको घटाना नहीं चाहते।

वास्तवमें '**कल्याण**' का कार्य भगवान्‌का कार्य है, अपना कार्य भगवान् स्वयं करते हैं; हम तो केवल निमित्तमात्र हैं। इस बार '**अवतार-कथाङ्क**' के सम्पादन-कार्यके अन्तर्गत आनन्दकन्द परमात्मप्रभुकी मधुर मनोहर अवतार-कथाओंका चिन्तन, मनन एवं स्मरणका सौभाग्य निरन्तर प्राप्त होता रहा है, जिसके फलस्वरूप भगवत्कृपासे विशेष आनन्दकी अनुभूति प्राप्त हुई। हमें आशा है कि इस विशेषाङ्कके पठन-पाठनसे हमारे सहृदय पाठकोंको भी इस पवित्र अवतार-कथाके रसपानका अवसर प्राप्त होगा तथा वे भक्ति-भावसमन्वित आनन्दका अनुभव करेंगे।

अन्तमें हम अपनी त्रुटियोंके लिये आप सबसे क्षमा-प्रार्थना करते हुए श्रीमद्भागवतकी कुछ पंक्तियाँ निवेदन करते हैं, जिन्हें महाभाग्यवती गोपियाँ कहती हैं—

तव कथामृतं तप्तजीवनं
कविभिरीडितं कल्मषापहम्।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं
भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः॥

अर्थात् प्रभो! तुम्हारी लीलाकथा भी अमृतस्वरूप है। विरहसे सताये हुए लोगोंके लिये तो वह जीवन-सर्वस्व ही है। बड़े-बड़े ज्ञानी महात्माओं—भक्त कवियोंने उसका गान किया है, वह सारे पाप-ताप तो मिटाती ही है, साथ ही श्रवणमात्रसे परम मङ्गल—परम कल्याणका दान भी करती है। वह परम सुन्दर, परम मधुर और बहुत विस्तृत भी है। जो तुम्हारी उस लीला-कथाका गान करते हैं, वास्तवमें भूलोकमें वे ही सबसे बड़े दाता हैं।

—राधेश्याम खेमका
सम्पादक

॥ श्रीहरि: ॥

गीताप्रेस, गोरखपुर-प्रकाशन

कोड — मूल्य

श्रीमद्भगवद्गीता

गीता-तत्त्व-विवेचनी—(टीकाकार-श्रीजयदयालजी गोयन्दका) २५१५ प्रश्न और उत्तर-रूपमें विवेचनात्मक हिन्दी-टीका, सचित्र, सजिल्द

- 1 बृहदाकार — १२०
- 2 ,, ग्रन्थाकार विशिष्ट संस्करण — ७० [बँगला, तमिल, ओड़िआ, कन्नड़, अंग्रेजी, तेलुगु, गुजराती, मराठीमें भी]
- 3 ,, साधारण संस्करण — ४५

गीता-साधक-संजीवनी—(टीकाकार—स्वामी श्रीरामसुखदासजी) गीताके मर्मको समझनेहेतु व्याख्यात्मक शैली एवं सरल, सुबोध भाषामें हिन्दी-टीका, सचित्र, सजिल्द

- 5 बृहदाकार, परिशिष्टसहित — १८०
- 6 ,, ग्रन्थाकार, परिशिष्टसहित — १०० [मराठी, तमिल (दो खण्डोंमें), गुजराती, अंग्रेजी (दो खण्डोंमें), कन्नड़ (दो खण्डोंमें), बँगला, ओड़िआमें भी]
- 8 गीता-दर्पण—(स्वामी रामसुखदासजीद्वारा) गीताके तत्त्वोंपर प्रकाश, गीता-व्याकरण और छन्द-सम्बन्धी गूढ़ विवेचन सचित्र, सजिल्द [मराठी, बँगला, गुजराती, ओड़िआमें भी] — ४०
- 1562 गीता-प्रबोधनी—पुस्तकाकार — ३०
- 1590 ,, ,, पॉकिट, वि०सं० — २०
- 784 ज्ञानेश्वरी गूढ़ार्थ-दीपिका (मराठी) — १३०
- 748 ,, मूल, गुटका (मराठी) — २५
- 859 ,, मूल, मझला (मराठी) — ४०
- 10 गीता-शांकर-भाष्य — ६०
- 581 गीता-रामानुज-भाष्य — ४०
- 11 गीता-चिन्तन—(श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके गीता-विषयक लेखों, विचारों, पत्रों आदिका संग्रह) — ३५
- 17 गीता—मूल, पदच्छेद, अन्वय, भाषा-टीका, टिप्पणी प्रधान लेखसहित, सचित्र, सजिल्द [गुजराती, बँगला, मराठी, कन्नड़, तेलुगु, तमिलमें भी] — २५
- 16 गीता—प्रत्येक अध्यायके माहात्म्यसहित, सजिल्द, मोटे अक्षरोंमें (मराठीमें भी) — २५
- 1555 गीता-माहात्म्य (वि०सं०) — ३५
- 18 ,, भाषा-टीका, टिप्पणी-प्रधान विषय, मोटा टाइप [ओडिआ, गुजराती, मराठीमें भी] — १३
- 502 गीता- ,, ,, (सजि०) — २० [तेलुगु, ओडिआ, गुजराती, कन्नड़, तमिलमें भी]
- 19 गीता—केवल भाषा (तेलुगु, उर्दू, तमिलमें भी) — ७
- 750 गीता—भाषा पाकेट साइज — ४
- 20 ,, —भाषा-टीका, पॉकेट साइज — ५ [अंग्रेजी, मराठी, बँगला, असमिया, ओड़िआ, गुजराती, कन्नड़, तेलुगुमें भी]
- 1566 गीता—भाषा-टीका, पॉकेट साइज, सजिल्द — १० [गुजराती, बँगला, अंग्रेजी भी]
- 21 श्रीपञ्चरत्नगीता—गीता, विष्णुसहस्रनाम, भीष्मस्तवराज, अनुस्मृति, गजेन्द्रमोक्ष (मोटे अक्षरोंमें) [ओड़िआमें भी] — १५
- 1628 ,, (नित्यस्तुति एवं गजल-गीतासहित) पॉकेट साइज — ५
- 22 गीता—मूल, मोटे अक्षरों-वाली [तेलुगु, गुजरातीमें भी] — ७
- 23 गीता—मूल, विष्णुसहस्रनामसहित — ३ [कन्नड़, तेलुगु, तमिल, मलयालम, ओड़िआमें भी]
- 1556 गीता-श्लोकार्थसहित—लघु आकार — ५
- 1602 ,, सजिल्द (वि०सं०)—लघु आकार — ८
- 700 गीता—मूल, लघु आकार (ओड़िआ, बंगला, तेलुगुमें भी) — २
- 1392 गीता ताबीजी—(सजिल्द) (गुजराती, बंगला, तेलुगुमें भी) — ४
- 566 गीता—ताबीजी एक पन्नेमें सम्पूर्ण गीता (१०० प्रति एक साथ) — .२५
- ▲ 289 गीता-निबन्धावली
- ▲ 297 गीतोक्त संन्यास या सांख्ययोगका स्वरूप — १
- ▲ 388 गीता-माधुर्य-सरल प्रश्नोत्तर-शैलीमें (हिन्दी) — ८ [तमिल, मराठी, गुजराती, उर्दू, तेलुगु, बँगला, असमिया, कन्नड़, ओड़िआ, अंग्रेजी, संस्कृतमें भी]
- 1242 पाण्डव गीता एवं हंसगीता — ३
- 1431 गीता-दैनन्दिनी (२००७) पुस्तकाकार, विशिष्ट संस्करण (बँगला, तेलुगु, ओड़िआमें भी) — ४५
- 503 गीता-दैनन्दिनी (२००७) रोमन, पुस्तकाकार प्लास्टिक जिल्द — ३०
- 506 गीता-दैनन्दिनी (२००७)—पॉकेट साइज, (वि०सं०) — २०
- ▲ 464 गीता-ज्ञान-प्रवेशिका-स्वामी रामसुखदास — १५
- 508 गीता-सुधा-तरंगिनी

रामायण

- 1389 श्रीरामचरितमानस-बृहदाकार (विशिष्ट संस्करण) — ३५०
- 80 ,, बृहदाकार — २५०
- 1095 ,, ग्रन्थाकार (वि०सं०) (गुजरातीमें भी) — १९०
- 81 ,, ग्रन्थाकार सचित्र, सटीक, मोटा टाइप, — १३० [ओड़िआ, बँगला, तेलुगु, मराठी, गुजराती, कन्नड़, अंग्रेजी, नेपालीमें भी]
- 1402 ,, सटीक, ग्रन्थाकार (सामान्य) — १००
- 82 ,, मझला साइज, सटीक सजिल्द — ६५ [गुजराती, अंग्रेजी भी]
- 1563 ,, मझला—सटीक विशिष्ट संस्करण — ७५
- 1318 ,, रोमन एवं अंग्रेजी अनुवादसहित — २००
- 456 ,, अंग्रेजी अनुवादसहित — १२०
- 786 ,, मझला ,, ,, — ७०
- 1436 ,, मूलपाठ बृहदाकार
- 83 श्रीरामचरितमानस-मूलपाठ, ग्रन्थाकार — ६५ [गुजराती, ओड़िआ भी]
- 84 ,, मूल, मझला साइज [गुजराती भी] — ४०
- 1615 ,, मूल (मझला) अजिल्द — ३०
- 85 ,, मूल, गुटका [गुजराती भी] — २५
- 1544 श्रीरामचरितमानस-मूल गुटका (विशिष्ट संस्करण) — ३०
- 790 ,, केवल भाषा — ८०

[श्रीरामचरितमानस-अलग-अलग काण्ड (सटीक)]

- 94 श्रीरामचरितमानस-बालकाण्ड — १८
- 95 ,, अयोध्याकाण्ड — १८
- 98 ,, सुन्दरकाण्ड [कन्नड़, तेलुगु, बँगला भी] — ५
- 1349 श्रीरामचरितमानस-सुन्दरकाण्ड सटीक मोटा टाइप (लाल अक्षरोंमें (श्रीहनुमानचालीसासहित) [गुजरातीमें भी] — १५
- 101 ,, लंकाकाण्ड — ९
- 102 ,, उत्तरकाण्ड — १०
- 141 ,, अरण्य, किष्किन्धा एवं सुन्दरकाण्ड — ९
- 830 ,, सुन्दरकाण्ड-मूल, ग्रन्थाकार, मोटा (रंगीन) — १२
- 1583 ,, सुन्दरकाण्ड, (मूल) मोटा (आड़ी) रंगीन — ६
- 99 ,, सुन्दरकाण्ड-मूल, गुटका [गुजराती भी] — ३
- 100 ,, सुन्दरकाण्ड-मूल, मोटा टाइप — ५ [गुजराती, ओड़िआ भी]
- 1378 ,, सुन्दरकाण्ड-मूल-मोटा टाइप (लाल रंगमें) — ६
- 858 ,, सुन्दरकाण्ड-मूल, लघु आकार [गुजराती भी] — २
- 1376 मानस-गूढ़ार्थ-चन्द्रिका (श्रीरामचरितमानसपर सुप्रसिद्ध तिलक, टीकाकार-प० प० प्रज्ञानानन्द सरस्वती (सातों खण्ड) — ७६० (अलग-अलग खण्ड भी उपलब्ध)
- 86 मानसपीयूष-(श्रीरामचरितमानसपर सुप्रसिद्ध तिलक, टीकाकार—श्रीअञ्जनीनन्दनशरण (सातों खण्ड) — १२२५ (अलग-अलग खण्ड भी उपलब्ध)
- 1291 श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-कथा-सुधा-सागर
- 75, 76 } श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण—सटीक, दो खण्डोंमें सेट [तेलुगु भी] — २२०
- 1337, 1338 } रामायण-भाषा (मोटा टाइप) दो खण्डोंमें सेट
- 77 ,, केवल भाषा — १४०
- 583 ,,- (मूलमात्रम्) — १००
- 78 रामायण-सुन्दरकाण्ड, मूलमात्रम् [तमिल भी] — १५
- 1549 श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण सुन्दरकाण्ड-सटीक [तमिल भी] — ५०
- 452, 453 } श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (अंग्रेजी अनुवादसहित दो खण्डोंमें सेट) — ३००

☞ भारतमें डाक खर्च, पैकिंग तथा फारवर्डिंगकी देय राशि:—२ रुपया-प्रत्येक १० रु० या उसके अंशके मूल्यकी पुस्तकोंपर। —रजिस्ट्री / वी० पी० पी० के लिये २० रु० प्रति पैकेट अतिरिक्त।[पैकेटका अधिकतम वजन ५ किलो (अनुमानित पुस्तक मूल्य रु० २५०)]

☞ रंगीन चित्रोंपर २० रु० प्रति पैकेट स्पेशल पैकिंग चार्ज अतिरिक्त।

☞ रु० ५००/-से अधिककी पुस्तकोंपर ५% पैकिंग, हैण्डलिंग तथा वास्तविक डाकव्यय देय होगा।

☞ पुस्तकोंके मूल्य एवं डाकदरमें परिवर्तन होनेपर परिवर्तित मूल्य / डाकदर देय होगा।

☞ पुस्तक-विक्रेताओंके नियमोंकी पुस्तिका अलग है। विदेशोंमें निर्यातके अलग नियम हैं।

☞ रु० १५०० से अधिककी पुस्तकें एक साथ लेनेपर १५% छूट (▲चिह्नवाली पुस्तकोंपर ३०%) छूट देय। (पैकिंग, रेल भाड़ा आदि अतिरिक्त)।

नोट—अन्य भारतीय भाषाओंकी पुस्तकोंका मूल्य एवं कोड पृष्ठ-४९७ से ५०० पर देखें तथा अप्रैल २००६ से प्रकाशित नवीन प्रकाशनोंको पृष्ठ-५०० पर देखें। सम्पर्क करें—व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर।

कोड	मूल्य
■1002 सं० वाल्मीकीय रामायणाङ्क	
■ 74 अध्यात्मरामायण—सटीक [तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मराठी भी]	६०
■ 223 मूल रामायण [गुजराती, मराठी भी]	२
▲1654 लवकुश-चरित्र	२०
▲ 401 मानसमें नाम-वन्दना	८
■ 103 मानस-रहस्य	३५
■ 104 मानस-शंका-समाधान	११

अन्य तुलसीकृत साहित्य

कोड	मूल्य
■ 105 विनयपत्रिका— सरल भावार्थसहित	२५
■ 106 गीतावली— ,, ,,	२५
■ 107 दोहावली— ,, ,,	१२
■ 108 कवितावली— ,, ,,	१२
■ 109 रामाज्ञाप्रश्न— ,, ,,	७
■ 110 श्रीकृष्णगीतावली— ,, ,,	५
■ 111 जानकीमंगल— ,, ,,	४
■ 112 हनुमानबाहुक— ,, ,,	३
■ 113 पार्वतीमंगल— ,, ,,	३
■ 114 वैराग्य-संदीपनी एवं बरवै रामायण	३

सूर-साहित्य

कोड	मूल्य
■ 555 श्रीकृष्णमाधुरी	२०
■ 61 सूर-विनय-पत्रिका	२०
■ 62 श्रीकृष्ण-बाल-माधुरी	२०
■ 735 सूर-रामचरितावली	१८
■ 547 विरह-पदावली	१५
■ 864 अनुराग-पदावली—	२०

पुराण, उपनिषद् आदि

कोड	मूल्य
■ 28 श्रीमद्भागवत-सुधासागर [गुजराती भी]	१३०
■1490 ,, (विशिष्ट संस्करण) (अंग्रेजी भी)	१८०
■ 25 श्रीशुकसुधासागर— बृहदाकार, बड़े टाइपमें	२८०
■1535, 1536 श्रीमद्भागवत-महापुराण—सटीक, दो खण्डोंमें सेट, (विशिष्ट संस्करण)	३००
■ 26, 27 श्रीमद्भागवत-महापुराण—सटीक, दो खण्डोंमें सेट (गुजराती, मराठी प्रथम खण्ड भी)	२२०
■564,565 श्रीमद्भागवत-महापुराण— अंग्रेजी सेट	२५०
■ 29 ,, मूल मोटा टाइप (तेलुगु भी)	९०
■ 124 ,, मूल मझला	५५
■1092 भागवतस्तुति-संग्रह	
■ 571 श्रीकृष्णलीलाचिन्तन	
■ 30 श्रीप्रेम-सुधासागर	६०
■ 31 भागवत एकादश स्कन्ध— सचित्र, सजिल्द [तमिल भी]	२४
■ 728 महाभारत—हिन्दी टीकासहित, सजिल्द, सचित्र [छ: खण्डोंमें] सेट (अलग-अलग खण्ड भी उपलब्ध)	१३५०
■ 38 महाभारत-खिलभाग हरिवंशपुराण—सटीक	१८०
■1589 ,, केवल हिन्दी	१५०
■ 637 जैमिनीय अश्वमेध पर्व	५०
■ 39, 511 संक्षिप्त महाभारत—केवल भाषा, सचित्र, सजिल्द सेट (दो खण्डोंमें) [बँगला भी]	२२०
■ 44 सं० पद्मपुराण—सचित्र, सजिल्द	१४०
■1468 सं० शिवपुराण (विशिष्ट संस्करण)	१४०
■ 789 सं० शिवपुराण—मोटा टाइप [गुजराती भी]	११०
■1133 सं० देवीभागवत [गुजराती भी]	१३०
■ 48 श्रीविष्णुपुराण—सटीक, सचित्र	८०
■1364 श्रीविष्णुपुराण—(केवल हिन्दी)	५५
■1183 सं० नारदपुराण	१००
■ 279 सं० स्कन्दपुराणाङ्क— सचित्र, सजिल्द	१५०
■ 539 सं० मार्कण्डेयपुराण	५५
■1111 सं० ब्रह्मपुराण	७०
■1113 नरसिंहपुराणम् —सटीक	६०
■1189 सं० गरुडपुराण	९०
■1362 अग्निपुराण (मूल संस्कृतका हिन्दी-अनुवाद)	१२०
■1361 सं० श्रीवराहपुराण	६०
■ 584 सं० भविष्यपुराण	९०
■1131 कूर्मपुराण—सटीक	८०
■ 631 सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण	१२०
■1432 वामन पुराण—सटीक	७५
■ 557 मत्स्यमहापुराण—,,	१५०
■ 517 गर्गसंहिता	८०
■ 47 पातञ्जलयोग-प्रदीप	१००
■ 135 पातञ्जलयोगदर्शन—[बँगला भी]	१०
■ 582 छान्दोग्योपनिषद्— सानुवाद शांकरभाष्य	७०
■ 577 बृहदारण्यकोपनिषद्— ,,	१००
■1421 ईशादि नौ उपनिषद्- ,, एक ही जिल्दमें	१००
■ 66 ईशादि नौ उपनिषद्— अन्वय-हिन्दी व्याख्या [बँगला भी]	४५
■ 67 ईशावास्योपनिषद्-सानुवाद, शांकरभाष्य [तेलुगु, कन्नड़ भी]	४
■ 68 केनोपनिषद्—सानुवाद, शांकरभाष्य	१०
■ 578 कठोपनिषद्— ,, ,,	१२
■ 69 माण्डूक्योपनिषद्— ,, ,,	२०
■ 513 मुण्डकोपनिषद्— ,, ,,	८
■ 70 प्रश्नोपनिषद्— ,, ,,	१०
■ 71 तैत्तिरीयोपनिषद्— ,, ,,	१६
■ 72 ऐतरेयोपनिषद्— ,, ,,	७
■ 73 श्वेताश्वतरोपनिषद्—,, ,,	२०
■ 65 वेदान्त-दर्शन— हिन्दी व्याख्या-सहित, सजिल्द	३५
■ 639 श्रीनारायणीयम्—सानुवाद [तेलुगु, तमिल भी]	३५

भक्त-चरित्र

कोड	मूल्य
■ 40 भक्त चरिताङ्क-सचित्र, सजिल्द	१२०
■ 51 श्रीतुकाराम-चरित— जीवनी और उपदेश	३५
■ 121 एकनाथ-चरित्र	१५
■ 53 भागवतरत्न प्रह्लाद	१५
■ 123 चैतन्य-चरितावली— सम्पूर्ण एक साथ	१००
■ 751 देवर्षि नारद	१२
■ 167 भक्त भारती	
■ 168 भक्त नरसिंह मेहता [मराठी, गुजराती भी]	१२
■1564 महापुरुष श्रीमन्त शंकरदेव	८
■ 169 भक्त बालक-गोविन्द, मोहन आदिकी गाथा [तेलुगु, कन्नड, मराठी भी]	५
■ 170 भक्त नारी—मीरा, शबरी आदिकी गाथा	५
■ 171 भक्त पञ्चरत्न—रघुनाथ, दामोदर आदिकी (तेलुगु भी)	८
■ 172 आदर्श भक्त—शिवि, रन्तिदेव आदिकी गाथा [तेलुगु, कन्नड़, गुजराती भी]	८
■ 173 भक्त सप्तरत्न-दामा, रघु आदिकी भक्तगाथा [गुजराती, कन्नड़ भी]	६
■ 174 भक्त चन्द्रिका-सखू, विट्ठल आदि छ: भक्तगाथा [गुजराती, कन्नड़, तेलुगु, मराठी, ओड़िआ भी]	६
■ 175 भक्त-कुसुम-जगन्नाथ आदि छ: भक्तगाथा	६
■ 176 प्रेमी भक्त-बिल्वमंगल, जयदेव आदि [गुजराती भी]	५
■ 177 प्राचीन भक्त—मार्कण्डेय, उत्तङ्क आदि	१०
■ 178 भक्त सरोज—गङ्गाधरदास, श्रीधर आदि (गुजराती भी)	७
■ 179 भक्त सुमन—नामदेव, राँका-बाँका आदिकी भक्तगाथा [गुजराती भी]	६
■ 180 भक्त सौरभ—व्यासदास, प्रयागदास आदि	७
■ 181 भक्त सुधाकर—रामचन्द्र, लाखा आदिकी भक्तगाथा [गुजराती भी]	८
■ 182 भक्त महिलारत्न-रानी रत्नावती, हरदेवी आदि [गुजराती भी]	८
■ 183 भक्त दिवाकर—सुव्रत, वैश्वानर आदिकी भक्तगाथा	६
■ 184 भक्त रत्नाकर—माधवदास, विमलतीर्थ आदि चौदह भक्तगाथा	८
■ 185 भक्तराज हनुमान्-हनुमान्‌जीका जीवनचरित्र [मराठी, ओड़िआ, तमिल, तेलुगु, कन्नड, गुजराती भी]	५
■ 186 सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र [ओड़िआ भी]	४
■ 187 प्रेमी भक्त उद्धव [तमिल, तेलुगु, गुजराती, ओडिआ भी]	४
■ 188 महात्मा विदुर [गुजराती, तमिल, ओडिआ भी]	४
■ 136 विदुरनीति	१०
■ 138 भीष्मपितामह [तेलुगु भी]	९
■ 189 भक्तराज ध्रुव [तेलुगु भी]	४

परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके शीघ्र कल्याणकारी प्रकाशन

कोड	मूल्य
■683 तत्त्वचिन्तामणि—(सभी खण्ड एक साथ) [गुजराती भी]	८०
■814 साधन-कल्पतरु (१३ महत्त्वपूर्ण पुस्तकोंका संग्रह)	७०
▲1597 चिन्ता-शोक कैसे मिटें?	८
▲1631 भगवान् कैसे मिलें?	६
▲1653 मनुष्य-जीवनका उद्देश्य	६
▲1681 भगवत्प्राप्ति कठिन नहीं	६
▲1666 कल्याण कैसे हो?	८
▲ 527 प्रेमयोगका तत्त्व—[अंग्रेजी भी]	१५
▲ 242 महत्त्वपूर्ण शिक्षा—[तेलुगु भी]	१५
▲ 528 ज्ञानयोगका तत्त्व [अंग्रेजी भी]	१०
▲ 266 कर्मयोगका तत्त्व— (भाग-१) (गुजराती भी)	९
▲ 267 कर्मयोगका तत्त्व—(भाग-२)	९
▲ 303 प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय [तमिल, गुजराती भी]	८
▲ 298 भगवान्‌के स्वभावका रहस्य [तमिल, गुजराती, मराठी भी]	९
▲ 243 परम साधन—भाग-१	९
▲ 244 ,, ,, —भाग-२	८
▲ 245 आत्मोद्धारके साधन (भाग-१)	१०
▲ 335 अनन्यभक्तिसे भगवत्प्राप्ति— (आत्मोद्धारके साधन भाग-२) [गुजराती भी]	९
▲ 579 अमूल्य समयका सदुपयोग [तेलुगु, गुजराती, मराठी, कन्नड़, ओड़िआ भी]	७
▲ 246 मनुष्यका परम कर्तव्य (भाग-१)	९
▲ 247 मनुष्यका परम कर्तव्य (भाग-२)	९
▲ 611 इसी जन्ममें परमात्मप्राप्ति [गुजराती भी]	८
▲ 588 अपात्रको भी भगवत्प्राप्ति ,,	९
▲1296 कर्णवासका सत्संग [तमिल भी]	७
▲1015 भगवत्प्राप्तिमें भावकी प्रधानता [गुजराती भी]	८
▲ 248 कल्याणप्राप्तिके उपाय- (त०चि०म०भा०१)[बँगला भी]	१३
▲ 249 शीघ्र कल्याणके सोपान-भाग-२, खण्ड-१ [गुजराती भी]	१०
▲ 250 ईश्वर और संसार-भाग-२, (खण्ड-२)	१२
▲ 519 अमूल्य शिक्षा-भाग-३, (खण्ड-१)	९
▲ 253 धर्मसे लाभ अधर्मसे हानि— भाग-३, (खण्ड-२)	९
▲ 251 अमूल्य वचन तत्त्वचिन्तामणि- भाग-४, (खण्ड-१)	१०
▲ 252 भगवद्दर्शनकी उत्कण्ठा- भाग-४ (खण्ड-२)	१०
▲ 254 व्यवहारमें परमार्थकी कला- त०चि०भाग-५, (खण्ड-१) [गुजराती भी]	१०
▲ 255 श्रद्धा-विश्वास और प्रेम- गुजराती, भाग-५, (खण्ड-२) [गुजराती भी]	१०
▲ 258 तत्त्वचिन्तामणि-भाग-६,(खण्ड-१)	९
▲ 257 परमानन्दकी खेती- भाग-६, (खण्ड-२)	९
▲ 260 समता अमृत और विषमता विष-भाग-७, (खण्ड-१)	१०
▲ 259 भक्ति-भक्त-भगवान्- भाग-७, (खण्ड-२)	१०
▲ 256 आत्मोद्धारके सरल उपाय	८
▲ 261 भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान [मराठी, कन्नड़, तेलुगु, तमिल, गुजराती, ओड़िआ, अंग्रेजी भी]	३
▲ 262 रामायणके कुछ आदर्श पात्र [तेलुगु, अंग्रेजी, कन्नड़, गुजराती, ओड़िआ, तमिल, मराठी भी]	७
▲ 263 महाभारतके कुछ आदर्श पात्र [तेलुगु, अंग्रेजी, कन्नड़, गुजराती, तमिल, मराठी भी]	५
▲ 264 मनुष्य-जीवनकी सफलता— भाग-१	९
▲ 265 मनुष्य-जीवनकी सफलता— भाग-२	७
▲ 268 परमशान्तिका मार्ग— भाग-१ (गुजराती भी)	९
▲ 269 ,, भाग-२	९
▲ 543 परमार्थ-सूत्र-संग्रह [ओड़िआ भी]	८
▲1530 आनन्द कैसे मिले?	६
▲ 769 साधन नवनीत [गुजराती, ओड़िआ, कन्नड़ भी]	८
▲ 599 हमारा आश्चर्य	८
▲ 681 रहस्यमय प्रवचन	८
▲1021 आध्यात्मिक प्रवचन [गुजराती भी]	८
▲1324 अमृत वचन [बँगला भी]	८
▲1409 भगवत्प्रेम-प्राप्तिके उपाय	८
▲1433 साधना पथ	६
▲1483 भगवत्पथ-दर्शन	८
▲1493 नेत्रोंमें भगवान्‌को बसा लें	६
▲1435 आत्मकल्याणके विविध उपाय	६
▲1529 सम्पूर्ण दुःखोंका अभाव कैसे हो?	६
▲1561 दुःखोंका नाश कैसे हो?	८

कोड	मूल्य

▲1587 जीवन-सुधारकी बातें ८
▲1022 निष्काम श्रद्धा और प्रेम [ओड़िआ भी] ८
▲292 नवधा भक्ति [तेलुगु, मराठी, कन्नड़ भी] ५
▲274 महत्त्वपूर्ण चेतावनी ५
▲273 नल-दमयन्ती [मराठी, तमिल, कन्नड़, गुजराती, ओड़िआ, तेलुगु भी] ३
▲277 उद्धार कैसे हो?—५१ पत्रोंका संग्रह [गुजराती, ओड़िआ, मराठी भी] ५
▲278 सच्ची सलाह—८० पत्रोंका संग्रह ८
▲280 साधनोपयोगी पत्र ८
▲281 शिक्षाप्रद पत्र— ९
▲282 पारमार्थिक पत्र— ९
▲284 अध्यात्मविषयक पत्र ७
▲283 शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ [अंग्रेजी, कन्नड, गुजराती, मराठी, तेलुगु, ओड़िआ भी] ५
Δ680 उपदेशप्रद कहानियाँ [अंग्रेजी, गुजराती, कन्नड़, तेलुगु भी] ८
▲891 प्रेममें विलक्षण एकता [मराठी, गुजराती भी] ८
▲958 मेरा अनुभव [गुजराती, मराठी भी] ८
▲1120 सिद्धान्त एवं रहस्यकी बातें ८
▲1283 सत्संगकी मार्मिक बातें [गुजराती भी] ७
▲1150 साधनकी आवश्यकता [मराठी भी] ७
▲320 वास्तविक त्याग ५
▲285 आदर्श भ्रातृप्रेम [ओड़िआ भी] ५
▲286 बालशिक्षा [तेलुगु, कन्नड, ओड़िआ, गुजराती भी] ३
▲287 बालकोंके कर्तव्य [ओड़िआ भी] ४
▲272 स्त्रियोंके लिये कर्तव्य-शिक्षा [कन्नड़, गुजराती भी] ८
▲290 आदर्श नारी सुशीला [बँगला, तेलुगु, तमिल, ओड़िआ, गुजराती, मराठी भी] ३
▲291 आदर्श देवियाँ [ओड़िआ भी] ४
▲300 नारीधर्म ३
▲293 सच्चा सुख और..[गुजराती भी] २
▲294 संत-महिमा [गुजराती, ओड़िआ भी] १.५०
▲295 सत्संगकी कुछ सार बातें [बँगला, तमिल, तेलुगु, गुजराती, ओड़िआ, मराठी, अंग्रेजी भी] २
▲301 भारतीय संस्कृति तथा शास्त्रोंमें नारीधर्म १
▲310 सावित्री और सत्यवान् [गुजराती, तमिल, तेलुगु, ओड़िआ, कन्नड, मराठी भी] २
▲299 श्रीप्रेमभक्ति-प्रकाश—ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप [तेलुगु व अंग्रेजी भी] ३
▲304 गीता पढ़नेके लाभ और त्यागसे भगवत्प्राप्ति— गजल-गीतासहित [गुजराती, असमिया, तमिल, मराठी भी] २
▲309 भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय- (कल्याणप्राप्तिकी कई युक्तियाँ) [ओड़िआ भी] ३
▲311 परलोक और पुनर्जन्म एवं वैराग्य [ओड़िआ भी] २
▲306 धर्म क्या है? भगवान् क्या हैं? [गुजराती, ओड़िआ व अंग्रेजी भी] २
▲307 भगवान्‌की दया (भगवत्कृपा एवं कुछ अमृत-कण) [ओड़िआ, कन्नड, गुजराती भी] २
▲315 चेतावनी और सामयिक चेतावनी [गुजराती भी] १.५०

Δ316 ईश्वर-साक्षात्कारके लिये नाम-जप सर्वोपरि साधन है और सत्यकी शरणसे मुक्ति २
Δ314 व्यापार-सुधारकी आवश्यकता और हमारा कर्तव्य [गुजराती, मराठी भी] २
Δ623 धर्मके नामपर पाप (गुजराती भी) २
Δ318 ईश्वर दयालु और न्यायकारी है और अवतारका सिद्धान्त [गुजराती, तेलुगु भी] २
Δ271 भगवत्प्रेमकी प्राप्ति कैसे हो? २
Δ270 भगवान्‌का हेतुरहित सौहार्द एवं महात्मा किसे कहते हैं? (तेलुगु भी) २
Δ302 ध्यान और मानसिक पूजा [गुजराती भी] २
Δ326 प्रेमका सच्चा स्वरूप और शोकनाशके उपाय [ओड़िआ, गुजराती, अंग्रेजी भी] १

परम श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार (भाईजी)-के अनमोल प्रकाशन

□820 भगवच्चर्चा (ग्रन्थाकार) सभी खण्ड एक साथ ७०
□050 पदरत्नाकर ५०
□049 श्रीराधा-माधव-चिन्तन ५०
Δ058 अमृत-कण १६
Δ332 ईश्वरकी सत्ता और महत्ता २०
Δ333 सुख-शान्तिका मार्ग १५
Δ343 मधुर ११
Δ056 मानव-जीवनका लक्ष्य १२
Δ331 सुखी बननेके उपाय १०
Δ334 व्यवहार और परमार्थ १२
Δ514 दुःखमें भगवत्कृपा १०
Δ386 सत्संग-सुधा १०
Δ342 संतवाणी—ढाई हजार अनमोल बोल [तमिल भी, तीन भागमें] १५
Δ347 तुलसीदल १०
Δ339 सत्संगके बिखरे मोती १०
Δ349 भगवत्प्राप्ति एवं हिन्दू-संस्कृति १५
Δ350 साधकोंका सहारा— १६
Δ351 भगवच्चर्चा—(भाग-५) १६
Δ352 पूर्ण समर्पण १७
Δ353 लोक-परलोक-सुधार (भाग-१) ८
Δ354 आनन्दका स्वरूप १०
Δ355 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर— १२
Δ356 शान्ति कैसे मिले? १३
Δ357 दुःख क्यों होते हैं? १२
Δ348 नैवेद्य १०
Δ337 दाम्पत्य-जीवनका आदर्श [गुजराती, तेलुगु भी] ७
Δ336 नारीशिक्षा [गुजराती, कन्नड़ भी] ८
Δ340 श्रीरामचिन्तन ९
Δ338 श्रीभगवन्नाम-चिन्तन १०
Δ345 भवरोगकी रामबाण दवा [ओड़िआ भी] ७
Δ346 सुखी बनो ७
Δ341 प्रेमदर्शन [तेलुगु, मराठी भी] ९
Δ358 कल्याण-कुंज—(क० कुं० भाग-१) ६
Δ359 भगवान्‌की पूजाके पुष्प- (क० कुं० भाग-२) ६
Δ360 भगवान् सदा तुम्हारे साथ हैं (क० कुं० भाग-३) ८
Δ361 मानव-कल्याणके साधन (क० कुं० भाग-४) १२
Δ362 दिव्य सुखकी सरिता—(क० कुं० भाग-५) [गुजराती भी] ६
Δ363 सफलताके शिखरकी सीढ़ियाँ- (क० कुं० भाग-६) ६

▲364 परमार्थकी मन्दाकिनी—(क० कुं० भाग-७) ५
▲366 मानव-धर्म— ५
▲526 महाभाव-कल्लोलिनी ६
▲367 दैनिक कल्याण-सूत्र— ४
▲368 प्रार्थना—प्रार्थना-पीयूष [ओड़िआ भी] ५
▲369 गोपीप्रेम [अंग्रेजी भी] ३
▲370 श्रीभगवन्नाम [ओड़िआ भी] ३
▲373 कल्याणकारी आचरण १
▲374 साधन-पथ—सचित्र [गुजराती, तमिल भी] ४
▲375 वर्तमान शिक्षा ३
▲376 स्त्री-धर्म-प्रश्नोत्तरी ३
▲377 मनको वश करनेके कुछ उपाय [गुजराती भी] १
▲378 आनन्दकी लहरें [बँगला, ओड़िआ, गुजराती, अंग्रेजी भी] २
▲379 गोवध भारतका कलंक एवं गायका माहात्म्य
▲380 ब्रह्मचर्य [ओड़िआ भी] २
▲381 दीन-दुखियोंके प्रति कर्तव्य १
▲382 सिनेमा मनोरंजन या विनाशका साधन २
▲344 उपनिषदोंके चौदह रत्न ६
▲371 राधा-माधव-रससुधा- (षोडशगीत) सटीक ३
▲384 विवाहमें दहेज— १
▲809 दिव्य संदेश एवं मनुष्य सर्वप्रिय और जीवन कैसे बनें? १

परम श्रद्धेय स्वामी रामसुखदासजीके कल्याणकारी साहित्य

□465 साधन-सुधा-सिन्धु [ओड़िआ, गुजराती भी] (४३ पुस्तकें एक ही जिल्दमें) ८०
▲1598 सत्संगके फूल ९
▲1633 एक संतकी वसीयत [बँगला भी] २
▲400 कल्याण-पथ ८
▲401 मानसमें नाम-वन्दना ८
▲605 जित देखूँ तित तू [गुजराती, मराठी भी] ७
▲406 भगवत्प्राप्ति सहज है [अंग्रेजी भी] ७
▲535 सुन्दर समाजका निर्माण ८
▲1447 मानवमात्रके कल्याणके लिये (मराठी, ओड़िआ, बँगला, गुजराती, अंग्रेजी, नेपाली भी) १०
▲1485 ज्ञानके दीप जले १२
▲1175 प्रश्नोत्तर मणिमाला [बँगला, ओड़िआ, गुजराती भी] ८
▲1247 मेरे तो गिरधर गोपाल ६
▲403 जीवनका कर्तव्य [गुजराती भी] ८
▲436 कल्याणकारी प्रवचन [गुजराती, अंग्रेजी, बँगला, ओड़िआ भी] ६
▲405 नित्ययोगकी प्राप्ति [ओड़िआ भी] ६
▲1093 आदर्श कहानियाँ [ओड़िआ, बँगला भी] ७
▲407 भगवत्प्राप्तिकी सुगमता [कन्नड़, मराठी भी] ६
▲408 भगवान्‌से अपनापन [गुजराती, ओड़िआ भी] ५
▲861 सत्संग-मुक्ताहार [गुजराती, ओड़िआ भी] [illegible]
▲860 [illegible]
▲400 [illegible]
▲1308 [illegible]
▲1408 [illegible]

▲411 साधन और साध्य [मराठी, बँगला, गुजराती भी] ५
▲412 तात्त्विक प्रवचन [मराठी, ओड़िआ, बँगला, गुजराती भी] ५
▲414 तत्त्वज्ञान कैसे हो? एवं मुक्तिमें सबका समान अधिकार [बँगला, गुजराती भी] ६
▲410 जीवनोपयोगी प्रवचन [अंग्रेजी भी] ६
▲822 अमृत-बिन्दु [बँगला, तमिल, ओड़िआ, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी, कन्नड भी] ६
▲821 किसान और गाय [तेलुगु भी] २
▲416 जीवनका सत्य [गुजराती, अंग्रेजी भी] ५
▲417 भगवन्नाम [मराठी, अंग्रेजी भी] ४
▲418 साधकोंके प्रति [बँगला, मराठी भी] ४
▲419 सत्संगकी विलक्षणता [गुजराती भी] ४
▲545 जीवनोपयोगी कल्याण-मार्ग [गुजराती भी] ४
▲420 मातृशक्तिका घोर अपमान [तमिल, बँगला, मराठी, गुजराती, ओड़िआ भी] ३
▲421 जिन खोजा तिन पाइयाँ [बँगला भी] ५
▲422 कर्मरहस्य [बँगला, तमिल, कन्नड, ओड़िआ भी] ४
▲424 वासुदेवः सर्वम् [मराठी, अंग्रेजी भी] ४
▲425 अच्छे बनो [अंग्रेजी भी] ४
▲426 सत्संगका प्रसाद [गुजराती भी] ४
▲1019 सत्यकी खोज [गुजराती, अंग्रेजी भी] ५
▲1479 साधनके दो प्रधान सूत्र [ओड़िआ, बंगला भी] ४
▲1035 सत्यकी स्वीकृतिसे कल्याण १
▲1360 तू-ही-तू २
▲1434 एक नयी बात २
▲1440 परम पितासे प्रार्थना १
▲1441 संसारका असर कैसे छूटे? २
▲1176 शिखा (चोटी) धारणकी आवश्यकता और..[बँगला भी] २
▲431 स्वाधीन कैसे बनें? [अंग्रेजी भी] २
▲702 यह विकास है या.... १.५०
▲589 भगवान् और उनकी भक्ति [गुजराती, ओड़िआ भी] ५
▲617 देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम [तमिल, बँगला, तेलुगु, ओड़िआ, कन्नड, गुजराती, मराठी भी] २
▲427 गृहस्थमें कैसे रहें? [बँगला, मराठी, कन्नड़, ओड़िआ, अंग्रेजी, तमिल, तेलुगु, गुजराती, असमिया, पंजाबी भी] ६
▲432 एकै साधे सब सधै [गुजराती, तमिल, तेलुगु भी] ४
▲433 सहज साधना [गुजराती, बँगला, ओड़िआ, मराठी, अंग्रेजी भी] ४
▲434 शरणागति [तमिल, ओड़िआ, तेलुगु, कन्नड़ भी] ४
▲435 आवश्यक शिक्षा (सन्तानका कर्तव्य एवं आहारशुद्धि) [गुजराती, ओड़िआ, अंग्रेजी, मराठी भी] ५
■1012 पञ्चामृत—(१०० प्रतियोंका पैकेट) [गुजराती भी] १
■1037 हे मेरे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं (१०० प्रतियोंका पैकेट) १
■1611 मैं भगवान्‌का अंश हूँ (..) १
■1612 [illegible] (..) १

कोड		मूल्य
▲1072	क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं? [गुजराती, ओड़िआ भी]	४
▲515	सर्वोच्चपदकी प्राप्तिका साधन [गुजराती, अंग्रेजी, तमिल, तेलुगु भी]	१
▲770	अमरताकी ओर [गुजराती भी]	५
▲438	दुर्गतिसे बचो [गुजराती, बँगला (गुरुतत्त्व-सहित), मराठी भी]	२
▲439	महापापसे बचो [बँगला, तेलुगु, कन्नड़, गुजराती, तमिल भी]	२
▲440	सच्चा गुरु कौन? [ओड़िआ भी]	२
▲444	नित्य-स्तुति और प्रार्थना [कन्नड़, तेलुगु भी]	२
▲729	सार-संग्रह एवं सत्संगके अमृत-कण [गुजराती भी]	२
▲445	हम ईश्वरको क्यों मानें? [बँगला भी]	२
▲745	भगवत्तत्त्व [गुजराती भी]	२
▲632	सब जग ईश्वररूप है [ओड़िआ, गुजराती भी]	५
▲447	मूर्तिपूजा-नाम-जपकी महिमा [ओड़िआ, बँगला, तमिल, तेलुगु, मराठी, गुजराती भी]	२

नित्यपाठ साधन-भजन एवं कर्मकाण्ड-हेतु

कोड		मूल्य
■592	नित्यकर्म-पूजाप्रकाश [गुजराती भी]	३५
■1593	अन्त्यकर्म-श्राद्धप्रकाश	७५
■1416	गरुडपुराण-सारोद्धार (सानुवाद)	२०
■1627	रुद्राष्टाध्यायी-सानुवाद	१८
■1417	शिवस्तोत्ररत्नाकर	२०
■1623	ललितासहस्रनामस्तोत्रम् [तेलुगु भी]	६
■610	व्रतपरिचय	२८
■1162	एकादशी-व्रतका माहात्म्य—मोटा टाइप [गुजराती भी]	१२
■1136	वैशाख-कार्तिक-माघमास-माहात्म्य	२०
■1588	माघमासका माहात्म्य	५
■1367	श्रीसत्यनारायण-व्रतकथा	८
■052	स्तोत्ररत्नावली—सानुवाद [तेलुगु, बंगला भी]	२०
■1629	,, ,, सजिल्द	२८
■1567	दुर्गासप्तशती—मूल मोटा (बेड़िया)	२२
■117	,, मूल, मोटा टाइप [तेलुगु, कन्नड़ भी]	१५
■876	,, मूल गुटका	७
■1346	,, सानुवाद मोटा टाइप	२०
■118	,, सानुवाद [गुजराती, बँगला, ओड़िआ भी]	१८
1489	दुर्गासप्तशती—सानुवाद, सजिल्द [गुजराती भी]	२४
1281	,, ,, (विशिष्ट सं०)	३०
866	,, केवल हिन्दी	१२
1161	,, केवल हिन्दी मोटा टाइप, सजिल्द	३०
■819	श्रीविष्णुसहस्रनाम- शांकरभाष्य	१५
■206	श्रीविष्णुसहस्रनाम-सटीक	४
■226	,, ,, मूल, [मलयालम, तेलुगु, कन्नड़, तमिल, गुजराती भी]	२
■509	सूक्ति-सुधाकर	१५
■207	रामस्तवराज—(सटीक)	३
■211	आदित्यहृदयस्तोत्रम्—हिन्दी-अंग्रेजी-अनुवादसहित [ओड़िआ भी]	२
■1594	सहस्रनामस्तोत्रसंग्रह	६०
■224	श्रीगोविन्ददामोदरस्तोत्र [तेलुगु, ओड़िआ भी]	४
■231	रामरक्षास्तोत्रम्—[तेलुगु, ओड़िआ, अंग्रेजी भी]	२
■715	महामन्त्रराजस्तोत्रम् नामावलिसहितम्	४
■1599	श्रीशिवसहस्रनामस्तोत्रम्	५
■1600	श्रीगणेशसहस्रनामस्तोत्रम्	५
■1601	श्रीहनुमत्सहस्रनामस्तोत्रम्	५
■1663	श्रीगायत्रीसहस्रनामस्तोत्रम्	५
■1664	श्रीगोपालसहस्रनामस्तोत्रम्	५
■1665	श्रीसूर्यसहस्रनामस्तोत्रम्	५
■704	श्रीशिवसहस्रनामस्तोत्रम्	३
■705	श्रीहनुमत्सहस्रनामस्तोत्रम्	३
■706	श्रीगायत्रीसहस्रनामस्तोत्रम्	३
■707	श्रीरामसहस्रनामस्तोत्रम्	३
■708	श्रीसीतासहस्रनामस्तोत्रम्	३
■709	श्रीसूर्यसहस्रनामस्तोत्रम्	३
■710	श्रीगङ्गासहस्रनामस्तोत्रम्	३
■711	श्रीलक्ष्मीसहस्रनामस्तोत्रम्	३
■712	श्रीगणेशसहस्रनामस्तोत्रम्	३
■713	श्रीराधिकासहस्रनामस्तोत्रम्	३
■810	श्रीगोपालसहस्रनामस्तोत्रम्	३
■495	दत्तात्रेय-वज्रकवच—सानुवाद [तेलुगु, मराठी भी]	३
■229	श्रीनारायणकवच एवं अमोघ शिवकवच [ओड़िआ, तेलुगु भी]	३
■563	शिवमहिम्नस्तोत्र [तेलुगु भी]	३
■054	भजन-संग्रह	२५
■140	श्रीरामकृष्णलीला-भजनावली	१६
■142	चेतावनी-पद-संग्रह-(दोनों भाग)	१६
■144	भजनामृत-६७भजनोंका संग्रह	७
■1355	सचित्र-स्तुति-संग्रह	५
■1214	मानस-स्तुति-संग्रह	१०
■1344	सचित्र-आरती-संग्रह	१०
■1591	आरती-संग्रह—मोटा टाइप	१०
■153	आरती-संग्रह	५
■807	सचित्र आरतियाँ [गुजराती भी]	१०
■208	सीतारामभजन	३
▲385	नारद-भक्ति-सूत्र एवं शाण्डिल्य भक्ति-सूत्र, सानुवाद [बँगला, तमिल भी]	२
■221	हरेरामभजन—दो माला (गुटका)	३
■222	हरेरामभजन—१४ माला	१०
■576	विनय-पत्रिकाके पैंतीस पद	
■225	गजेन्द्रमोक्ष-सानुवाद, हिन्दी पद्य, भाषानुवाद [तेलुगु, कन्नड़ ओड़िआ भी]	२
■1505	भीष्मस्तवराज	३
■699	गङ्गालहरी	२
■232	श्रीरामगीता	३
■383	भगवान् कृष्णकी कृपा तथा दिव्य प्रेमकी....	१.५०
■1094	हनुमानचालीसा-हिन्दी भावार्थसहित	४
■1181	हनुमानचालीसा मूल (रंगीन)	२
■227	,, —(पॉकिट साइज) [गुजराती, असमिया, तमिल, बँगला, तेलुगु, कन्नड, ओड़िआ भी]	१.५०
■695	हनुमानचालीसा—(लघु आकार) [गुजराती, अंग्रेजी, ओड़िआ भी]	१
■1524	हनुमानचालीसा—विशिष्ट सं० (लघु आकार)	१
■1525	हनुमानचालीसा—अति लघु आकार [गुजराती भी]	१
■228	शिवचालीसा—(असमिया भी)	२
■1185	शिवचालीसा—लघु आकार	१
■851	दुर्गाचालीसा, विन्ध्येश्वरीचालीसा	२
■1033	,, —लघु आकार	१
■203	अपरोक्षानुभूति	३
■139	नित्यकर्म-प्रयोग	१०
■524	ब्रह्मचर्य और संध्या-गायत्री	३
■1471	संध्या, संध्या-गायत्रीका महत्त्व और ब्रह्मचर्य	४
■210	सन्ध्योपासनविधि एवं तर्पण-बलिवैश्वदेवविधि—मन्त्रानुवादसहित [तेलुगु भी]	३
■236	साधकदैनन्दिनी	२
■614	सन्ध्या	२

बालोपयोगी पाठ्य पुस्तकें

कोड		मूल्य
■573	बालक-अङ्क—(कल्याण-वर्ष २७)	११०
■1316	बालपोथी (शिशु), रंगीन	
■461	,, ,, भाग-१	३
■212	,, ,, भाग-२	३
■684	,, ,, भाग-३	३
■764	,, ,, भाग-४	७
■765	,, ,, भाग-५	७
■125	,, ,, रंगीन, (भाग-१)	४
■216	बालकको दिनचर्या	३
■214	बालकके गुण	४
■217	बालकोंके सीख	३
■219	बालकके आचरण	३
■218	बाल-अमृत-वचन	३
■696	बाल-प्रश्नोत्तरी [गुजराती भी]	३
■215	आओ बच्चो तुम्हें बतायें	३
■213	बालकोंकी बोल-चाल	३
■145	बालकोंकी बातें	७
■146	बड़ोंके जीवनसे शिक्षा [ओड़िआ भी]	७
■150	पिताकी सीख [गुजराती भी]	८
■396	आदर्श ऋषिमुनि	५
■397	आदर्श देशभक्त	५
■398	आदर्श सम्राट [गुजराती भी]	५
■402	आदर्श सुधारक	५
■399	आदर्श संत	५
■516	आदर्श चरितावली	
■116	लघुसिद्धान्तकौमुदी, सजिल्द	२५
■148	वीर बालक (गुजराती भी)	६
■1437	वीर बालक (रंगीन)	७
■149	गुरु और माता-पिताके भक्त बालक (गुजराती, अंग्रेजी भी)	६
■1451	गुरु और माता-पिताके भक्त बालक (रंगीन)	७
■152	सच्चे-ईमानदार बालक	५
■1450	सच्चे-ईमानदार बालक (रंगीन)	६
■155	दयालु और परोपकारी बालक-बालिकाएँ (गुजराती, अंग्रेजी भी)	५
■1449	दयालु और परोपकारी बालक-बालिकाएँ (रंगीन)	६
■156	वीर बालिकाएँ (गुजराती भी)	५
■1448	वीर बालिकाएँ (रंगीन)	६
■727	स्वास्थ्य, सम्मान और सुख	३

सर्वोपयोगी प्रकाशन

कोड		मूल्य
■698	मार्क्सवाद और रामराज्य-स्वामी करपात्रीजी	७५
■1673	सत्य एवं प्रेरक घटनाएँ	१८
■1595	साधकमें साधुता	२०
■202	मनोबोध	५
■1657	भलेका फल भला	३
■747	सप्त महाव्रत	३
■1300	महाकुम्भ पर्व	५
■542	ईश्वर	३
■196	मननमाला	
■57	मानसिक दक्षता	२०
■59	जीवनमें नया प्रकाश	१५
■60	आशाकी नयी किरणें	१६
■119	अमृतके घूँट	१५
■132	स्वर्णपथ	१४
■55	महकते जीवनफूल	२०
■1381	क्या करें? क्या न करें? [गुजराती भी]	१८
■1461	हम कैसे रहें?	८
■64	प्रेमयोग	१८
■774	कल्याणकारी दोहा-संग्रह, गीताप्रेस-परिचयसहित	५
■387	प्रेम-सत्संग-सुधामाला	१२
■668	प्रश्नोत्तरी	२
■501	उद्धव-सन्देश	१३
■191	भगवान् कृष्ण [तमिल, तेलुगु, मराठी, गुजराती भी]	३.५०
■193	भगवान् राम [गुजराती भी]	५
■195	भगवान्पर विश्वास	५
■120	आनन्दमय जीवन	१३
■130	तत्त्वविचार	९
■133	विवेक-चूड़ामणि [तेलुगु, बंगला भी]	१२
■862	मुझे बचाओ, मेरा क्या कसूर?	१५
▲701	गर्भपात उचित या...... [ओड़िआ, बँगला, तमिल, तेलुगु, मराठी, अंग्रेजी, गुजराती, कन्नड़ भी]	३
■131	सुखी जीवन	१०
■122	एक लोटा पानी	१२
■888	परलोक और पुनर्जन्मकी सत्य घटनाएँ [बँगला भी]	१२
■1217	भवनभास्कर	१०
■134	सती द्रौपदी	९
■1624	पौराणिक कथाएँ	१०
■1669	पौराणिक कहानियाँ	१०
■137	उपयोगी कहानियाँ [तेलुगु, तमिल, कन्नड़, गुजराती, बंगला भी]	८
■159	आदर्श उपकार—(पढ़ो, समझो और करो)	१०
■160	कलेजेके अक्षर ,,	१०
■161	हृदयकी आदर्श विशालता ,,	१०
■162	उपकारका बदला ,,	१०
■163	आदर्श मानव-हृदय ,,	१०
■164	भगवान्के सामने सच्चा सो सच्चा ,,	१०
■165	मानवताका पुजारी ,,	१०
■166	परोपकार और सच्चाईका फल ,,	१०
■510	असीम नीचता और असीम साधुता	१०
■157	सती सुकला	४
■147	चोखी कहानियाँ [तेलुगु, तमिल, गुजराती, मराठी भी]	५
■129	एक महात्माका प्रसाद [गुजराती भी]	१८
■827	तेईस चुलबुली कहानियाँ	१०
■151	सत्संगमाला एवं ज्ञानमणिमाला	१०
■1363	शरणागति रहस्य	२०

चित्रकथा

कोड		मूल्य
■1114	श्रीकृष्णलीला (राजस्थानी-शैली, १८वीं शताब्दी)	१००
■1647	देवीभागवतकी प्रमुख कथाएँ	१०
■1646	महाभारतके प्रमुख पात्र	१०
■190	बाल-चित्रमय श्रीकृष्णलीला	१२
■868	भगवान् सूर्य [illegible]	१०

कोड		मूल्य
1156	एकादश रुद्र (शिव)	५०
1032	बालचित्र-रामायण-पुस्तकाकार	४
869	कन्हैया [बँगला, तमिल, गुजराती, ओड़िआ, तेलुगु भी]	१०
870	गोपाल [बँगला, तेलुगु, तमिल भी]	१०
871	मोहन [बँगला, तेलुगु, तमिल, गुजराती, ओड़िआ, अंग्रेजी भी]	१०
872	श्रीकृष्ण [बँगला, तमिल, तेलुगु भी]	१०
1018	नवग्रह—चित्र एवं परिचय [बँगला भी]	१०
1016	रामलला [तेलुगु, अंग्रेजी भी]	१५
1116	राजा राम [तेलुगु भी]	१५
1017	श्रीराम	१५
1394	भगवान् श्रीराम (पुस्तकाकार)	१०
1418	श्रीकृष्णलीला-दर्शन "	१०
1278	दशमहाविद्या [बँगला भी]	१०
829	अष्टविनायक [ओड़िआ, मराठी, गुजराती भी]	१०
1343	हर-हर महादेव	१५
204	ॐ नमः शिवाय [बँगला, ओड़िआ, कन्नड भी]	१५
787	जय हनुमान [तेलुगु, ओड़िआ भी]	१५
779	दशावतार [बँगला भी]	१०
1215	प्रमुख देवता	१०
1216	प्रमुख देवियाँ	१०
1442	प्रमुख ऋषि-मुनि	१५
1443	रामायणके प्रमुख पात्र [तेलुगु भी]	१५
1488	श्रीमद्भागवतके प्रमुख पात्र [तेलुगु भी]	१५
1537	श्रीमद्भागवतकी प्रमुख कथाएँ	१५
1538	महाभारतकी प्रमुख कथाएँ	१५
1420	पौराणिक देवियाँ	१०
205	नवदुर्गा [तेलुगु, गुजराती, असमिया, कन्नड, अंग्रेजी, ओड़िआ, बँगला भी]	१०
1307	नवदुर्गा—पॉकेट साइज	४
537	बाल-चित्रमय बुद्धलीला	
194	बाल-चित्रमय चैतन्यलीला [ओड़िआ, बँगला भी]	७
693	श्रीकृष्णरेखा-चित्रावली	
656	गीता-माहात्म्यकी कहानियाँ [तमिल, तेलुगु भी]	८
651	गोसेवाके चमत्कार [तमिल भी]	१०

रंगीन चित्र-प्रकाशन

कोड		मूल्य
237	जय श्रीराम—भगवान् रामकी सम्पूर्ण लीलाओंका चित्रण	१५
546	जय श्रीकृष्ण—भगवान् कृष्णकी सम्पूर्ण लीलाओंका चित्रण	१५
1582	चित्र भगवान् श्रीकृष्ण	८
1001	जगज्जननी श्रीराधा	८
1020	श्रीराधा-कृष्ण—युगल छवि	८
491	हनुमान्‌जी—(भक्तराज हनुमान्)	८
492	भगवान् विष्णु	८
1568	भगवान् श्रीराम-बालरूपमें	८
560	लड्डू गोपाल (भगवान् श्रीकृष्णका बालस्वरूप)	८
1674	" (प्लास्टिक कोटेड)	१५
1351	सुमधुर गोपाल	८
548	मुरलीमनोहर—(भगवान् मुरलीमनोहर)	८
776	सीताराम—युगल छवि	८
782	श्रीरामदरबारकी झाँकी	८
1290	नटराज शिव	८
630	सर्वदेवमयी गौ	८
531	श्रीबाँकेबिहारी	८
812	नवदुर्गा (माँ दुर्गाके नौ स्वरूपोंका चित्रण)	८
437	कल्याण-चित्रावली—I	८
1320	कल्याण-चित्रावली—II	८

'कल्याण' के पुनर्मुद्रित विशेषाङ्क

कोड		मूल्य
1184	श्रीकृष्णाङ्क	१००
749	ईश्वराङ्क	९०
635	शिवाङ्क	१००
41	शक्ति-अङ्क	१२०
616	योगाङ्क	९०
627	संत-अङ्क	१२५
604	साधनाङ्क	१२०
1104	भागवताङ्क	
1002	सं० वाल्मीकीय रामायणाङ्क	
44	संक्षिप्त पद्मपुराण	१४०
539	संक्षिप्त मार्कण्डेयपुराण	५५
1111	संक्षिप्त ब्रह्मपुराण	७०
43	नारी-अङ्क	१००
659	उपनिषद्-अङ्क	११०
518	हिन्दू-संस्कृति-अङ्क	
279	सं० स्कन्दपुराणाङ्क	१५०
40	भक्त-चरिताङ्क	१२०
573	बालक-अङ्क	११०
1183	सं० नारदपुराण	१००
667	संतवाणी-अङ्क	११०
587	सत्कथा-अङ्क	१००
636	तीर्थाङ्क	१००
1133	सं० देवीभागवत-मोटा टाइप	१३०
574	संक्षिप्त योगवासिष्ठ	९०
789	सं० शिवपुराण-(बड़ा टाइप)	११०
631	सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण	१२०
1135	भगवन्नाम-महिमा और प्रार्थना-अङ्क	९०
572	परलोक-पुनर्जन्माङ्क	१००
517	गर्ग-संहिता	८०
1113	नरसिंहपुराणम्-सानुवाद	६०
1362	अग्निपुराण (मूल संस्कृतका हिन्दी-अनुवाद)	१२०
1432	वामनपुराण	७५
557	मत्स्यमहापुराण (सानुवाद)	१५०
657	श्रीगणेश-अङ्क	७५
42	हनुमान-अङ्क	७५
1361	सं० श्रीवाराहपुराण	६०
791	सूर्याङ्क	६०
584	सं० भविष्यपुराण	९०
586	शिवोपासनाङ्क	
628	रामभक्ति-अङ्क	
653	गोसेवा-अङ्क	७५
1131	कूर्मपुराण	८०
448	भगवल्लीला-अङ्क	६५
1044	वेद-कथाङ्क	८०
1189	सं० गरुडपुराण	९०
1379	नीतिसार-अङ्क (मासिक अङ्कोंके साथ)	१२०
1472	नीतिसार-अङ्क	८०
1467	भगवत्प्रेम-अङ्क-सजि० (११ मासिक अङ्क उपहारस्वरूप)	१००
1542	भगवत्प्रेम-अङ्क-अजिल्द (११ मासिक अङ्क उपहारस्वरूप)	८०
1548	व्रतपर्वोत्सव अङ्क-सजिल्द	१००
1610	देवीपुराण (महाभागवत) शक्तिपीठाङ्क	८०
1592	आरोग्य अङ्क (परिवर्धित सं०)	१२०
1667	संस्कार-अङ्क	८५
2100	कल्याण-मासिक-अङ्क (रियायती गतवर्षतकके)	४

Annual Issues of Kalyan-Kalpataru

Code		Price
1395	Woman No.	40
1396	Rāma No.	40
1397	Manusmṛti No.	40
1398	Hindu Saṁskṛti No.	40
602	Divine Love Number	60
602A	Humanity Number	60

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित अन्य भारतीय भाषाओंके प्रकाशन

संस्कृत

कोड		मूल्य
679	गीतामाधुर्य	६

बँगला

कोड		मूल्य
1577	श्रीमद्भागवत पुराण सटीक, भाग-I	१२५
1603	ईशादि नौ उपनिषद्	८०
954	श्रीरामचरितमानस-ग्रन्थाकार	१३०
1574	संक्षिप्त महाभारत-भाग-I	१२०
1660	" " भाग-II	१२०
763	गीता-साधक-संजीवनी—परिशिष्टसहित	११०
1118	गीता-तत्त्व-विवेचनी-	७०
556	गीता-दर्पण—	४०
1489	गीता-दैनन्दिनी (२००७)	४५
013	गीता-पदच्छेद—	२५
1444	गीता-ताबीजी—सजिल्द	४
1455	गीता-लघु आकार	२
1322	दुर्गासप्तशती—सटीक	१८
1604	पातञ्जलयोगदर्शन	११
1460	विवेक चूडामणि	१०
1075	ॐ नमः शिवाय (चित्रकथा)	१५
1043	नवदुर्गा (")	१०
1439	दश महाविद्या (चित्रकथा)	१०
1292	दशावतार (")	१०
1096	कन्हैया (")	१०
1097	गोपाल (")	१०
1098	मोहन (")	१०
1123	श्रीकृष्ण (")	१०
1495	बालचित्रमय चैतन्यलीला	७
1393	गीता भाषा-टीका (पॉकेट साइज) सजि.	१०
1454	स्तोत्ररत्नावली	१८
1659	श्रीश्रीकृष्णेर अष्टोत्तरशतनाम	१
496	गीता भाषा टीका (पॉकेट साइज)	६
1581	गीतार सारात्सार	६
1496	परलोक और पुनर्जन्मकी सत्य घटनाएँ	१०
275	कल्याण-प्राप्तिके उपाय	१३
1305	प्रश्नोत्तर मणिमाला	८
395	गीतामाधुर्य	५
1102	अमृत-विन्दु	६
1356	सुन्दरकाण्ड—सटीक	५
816	कल्याणकारी प्रवचन	४
276	परमार्थ-पत्रावली (भाग-१)	५
1306	कर्तव्य साधनासे भगवत्प्राप्ति	४
1119	ईश्वर और धर्म क्यों?	९
1456	भगवत्प्राप्तिका पथ व पाथेय	८
1580	अध्यात्मसाधनाय कर्महीनतानय	६
1452	आदर्श कहानियाँ	६
1453	प्रेरक कहानियाँ	५
1513	मूल्यवान् कहानियाँ	८
1469	सब साधनोंका सार	४
1478	मानवमात्रके कल्याणके लिये	१०
1359	जिन खोजा तिन पाइयाँ	५
1115	तत्त्वज्ञान कैसे हो?	५
1303	साधकोंके प्रति	४
1358	कर्म रहस्य	४
1122	क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं?	३
625	देशकी वर्तमान दशा....	३
428	गृहस्थमें कैसे रहें ?	४
903	सहज साधना	३
1368	साधना	३
1415	अमृतवाणी	७
312	आदर्श नारी सुशीला	३
1541	साधनके दो प्रधान सूत्र	४
955	तात्त्विक प्रवचन	४
1103	मूल रामायण एवं रामरक्षास्तोत्र	३
1652	नवग्रह (चित्रकथा)	१०
449	[illegible]	३
956	साधन और साध्य	३
1579	साधनार मनोभूमि	६
330	नारद एवं शांडिल्य-भक्ति-सूत्र	२
762	गर्भपात उचित या अनुचित···	३
848	आनन्दकी लहरें	२
626	हनुमानचालीसा	२
1319	कल्याणके तीन सुगम मार्ग	२
1651	हे महाजीवन! हे महामरण!	२
1293	शिखा (चोटी) धारणकी आवश्यकता	२
450	हम ईश्वरको क्यों मानें?	२
849	मातृशक्तिका घोर अपमान	१
451	महापापसे बचो	२
469	मूर्तिपूजा	१
296	सत्संगकी सार बातें	१
443	संतानका कर्तव्य	१
1140	भगवान्‌के दर्शन प्रत्यक्ष....	[illegible]

मराठी

कोड		मूल्य
1314	श्रीरामचरितमानस सटीक, मोटा टाईप	१३०
1503	अध्यात्मरामायण	३०
784	ज्ञानेश्वरी गूढार्थ-दीपिका	१३०

कोड	मूल्य
■853 एकनाथी भागवत—मूल	१००
■1678 श्रीमद्भागवतमहापुराण,(खण्ड-१)	१२०
■7 गीता-साधक-संजीवनी टीका	१००
■1304 गीता-तत्त्व-विवेचनी	७०
■1474 श्री सकल संतवाणी (भाग-१)	६०
■1475 " " (भाग-२)	१५०
■1071 श्रीनामदेवांची गाथा	६०
■859 ज्ञानेश्वरी—मूल मझला	४०
■15 गीता-माहात्म्यसहित	३५
■504 गीता-दर्पण	३५
■748 ज्ञानेश्वरी—मूल गुटका	२५
■14 गीता-पदच्छेद	३०
■1388 गीता-श्लोकार्थसहित (मोटा टाइप)	१०
■1257 गीता-श्लोकार्थसहित	७
■1168 भक्त नरसिंह मेहता	१०
▲429 गृहस्थमें कैसे रहें ?	८
▲1387 प्रेममें विलक्षण एकता	८
■857 अष्ट विनायक (चित्रकथा)	१०
▲391 गीतामाधुर्य	७
▲1099 अमूल्य समयका सदुपयोग	७
▲1335 रामायणके कुछ आदर्श पात्र	७
▲1155 उद्धार कैसे हो ?	४
▲1074 आध्यात्मिक पत्रावली	६
▲1275 नवधा भक्ति	५
▲1386 महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	५
▲1340 अमृत बिन्दु	६
▲1382 शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	६
▲1210 जित देखूँ तित-तू	७
▲1330 मेरा अनुभव	८
■1277 भक्त बालक	५
■1073 भक्त चन्द्रिका	५
■1383 भक्तराज हनुमान्	५
▲886 साधकोंके प्रति	५
▲885 तात्त्विक प्रवचन	४
■1607 रुक्मिणी स्वयंवर	१२
■1640 सार्थ मनाचे श्लोक	४
■1333 भगवान् श्रीकृष्ण	५
■1332 दत्तात्रेय-वज्रकवच	३
■1670 मूल रामायण, पॉकिट साइज	३
■1679 मनाचे श्लोक, पॉकिट साइज	३
■1680 सार्थ श्रीगणपत्यथर्वशीर्ष	२
■855 हरीपाठ	३
■1169 चोखी कहानियाँ	४
▲1385 नल-दमयंती	३
▲1384 सती सावित्री-कथा	२
▲880 साधन और साध्य	४
▲1006 वासुदेवः सर्वम्	४
▲1276 आदर्श नारी सुशीला	३
▲1334 भगवान्के रहनेके पाँच स्थान	३
▲899 देशकी वर्तमान दशा···	३
▲1339 कल्याणके तीन सुगम मार्ग और सत्यकी शरणसे मुक्ति	४
▲1428 आवश्यक शिक्षा	४
▲1341 सहज साधना	४
▲802 गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका	२
▲882 मातृशक्तिका घोर अपमान	३
▲883 मूर्तिपूजा	२
▲884 सन्तानका कर्तव्य	२
▲1279 सत्संगकी कुछ सार बातें	२
▲1613 भगवान्के स्वभावका रहस्य	९
▲1642 प्रेमदर्शन	९
▲1641 साधनकी आवश्यकता	८
▲901 नाम-जपकी महिमा	२

कोड	मूल्य
▲900 दुर्गतिसे बचो	२
▲1171 गीता पढ़नेके लाभ	२
▲902 आहार-शुद्धि	
▲1170 हमारा कर्तव्य	२
▲881 भगवत्प्राप्तिकी सुगमता	६
▲898 भगवन्नाम	४
▲1578 मानवमात्रके कल्याणके लिये	१२

गुजराती

कोड	मूल्य
■1533 श्रीरामचरितमानस— बड़ी, सटीक (वि०सं०)	१९०
■799 " ग्रन्थाकार	१३०
■1430 " मूल, मोटा	६०
■1552 भागवत-सटीक (खण्ड-१)	१२०
■1553 भागवत-सटीक (खण्ड-२)	१२०
■1608 श्रीमद्भागवत-सुधासागर	१८०
■1326 सं० देवीभागवत	१३०
■1286 संक्षिप्त शिवपुराण	११०
■1650 तत्त्वचिन्तामणि, ग्रन्थाकार	७५
■1630 साधन-सुधा-सिन्धु	९०
■467 गीता-साधक-संजीवनी	१००
■1313 गीता-तत्त्व-विवेचनी	७०
■785 श्रीरामचरितमानस— मझला, सटीक	६०
■468 गीता-दर्पण	४५
■878 श्रीरामचरितमानस—मूल मझला	४०
■879 " —मूल गुटका	२५
■1637 सुन्दरकाण्ड-सटीक, मोटा टाइप	१५
■1365 नित्यकर्म-पूजाप्रकाश	३५
■1620 क्या करें ? क्या न करें ?	१८
■1565 गीता-मोटे अक्षरवाली सजिल्द	२२
■1668 एकादशीव्रतका माहात्म्य	१२
■12 गीता-पदच्छेद	२५
■1315 गीता—सटीक, मोटा टाइप	१५
■1366 दुर्गासप्तशती—सटीक	१८
■1634 " " सजिल्द	२४
■1227 सचित्र आरतियाँ	१०
■936 गीता छोटी—सटीक	७
■1034 गीता छोटी—सजिल्द	१०
■1636 श्रीमद्भगवद्गीता— मूल, मोटा टाइप	७
■1225 मोहन— (चित्रकथा)	१०
■1224 कन्हैया—(")	१०
■1228 नवदुर्गा—(")	१०
■1656 गीता-ताबीजी, मूल, सजिल्द	४
■948 सुन्दरकाण्ड—मूल मोटा	५
■1085 भगवान् राम—	५
■950 सुन्दरकाण्ड—मूल गुटका	३
■1199 सुन्दरकाण्ड— मूल लघु आकार	२
■1226 अष्ट विनायक (चित्रकथा)	१०
■613 भक्त नरसिंह मेहता	१२
▲1518 भगवान्के स्वभावका रहस्य	९
▲1486 मानवमात्रके कल्याणके लिये	१०
▲1164 शीघ्र कल्याणके सोपान	१०
▲1146 श्रद्धा, विश्वास और प्रेम	१०
▲1144 व्यवहारमें परमार्थकी कला	८
▲1062 नारीशिक्षा	८
▲1129 अपात्रको भी भगवत्प्राप्ति	८
■1400 पिताकी सीख	१०
■1425 वीर बालिकाएँ	५
■1423 गुरु, माता-पिताके भक्त बालक	६
■1422 वीर बालक	६

कोड	मूल्य
■1424 दयालु और परोपकारी बालक-बालिकाएँ	५
■1258 आदर्श सम्राट्	५
▲1128 दाम्पत्य-जीवनका आदर्श	७
▲1061 साधन नवनीत	९
▲1520 कर्मयोगका तत्व-भाग-१	९
▲1264 मेरा अनुभव	८
▲1046 स्त्रियोंके लिये कर्तव्य-शिक्षा	७
■1143 भक्त सुमन	७
■1142 भक्त सरोज	७
▲1211 जीवनका कर्तव्य	८
▲404 कल्याणकारी प्रवचन	७
▲877 अनन्य भक्तिसे भगवत्प्राप्ति	७
▲818 उपदेशप्रद कहानियाँ	८
▲1265 आध्यात्मिक प्रवचन	७
▲1516 परमशान्तिका मार्ग (भाग-१)	८
▲1504 प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय	१०
■1212 एक महात्माका प्रसाद	२०
▲1539 सत्संगकी मार्मिक बातें	७
▲1655 प्रश्नोत्तर-मणिमाला	८
▲1503 भगवत्प्रेमकी प्राप्तिमें भावकी प्रधानता	८
▲1325 सब जग ईश्वररूप है	५
▲1052 इसी जन्ममें भगवत्प्राप्ति	६
■934 उपयोगी कहानियाँ	७
■1076 आदर्श भक्त	६
■1084 भक्त महिलारत्न	६
■875 भक्त सुधाकर	६
▲1067 दिव्य सुखकी सरिता	६
▲933 रामायणके कुछ आदर्श पात्र	८
▲1295 जित देखूँ तित तू	७
▲943 गृहस्थमें कैसे रहें ?	६
▲1260 तत्वज्ञान कैसे हो ?	६
▲1263 साधन और साध्य	५
▲1294 भगवान् और उनकी भक्ति	५
▲932 अमूल्य समयका सदुपयोग	७
▲392 गीतामाधुर्य-	७
■1082 भक्त सप्तरत्न	५
■1087 प्रेमी भक्त	५
▲1077 शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	५
▲940 अमृत-बिन्दु	६
▲931 उद्धार कैसे हो ?	५
▲894 महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	५
▲413 तात्त्विक प्रवचन	५
■892 भक्त चन्द्रिका	४
■895 भगवान् श्रीकृष्ण	५
▲1126 साधन -पथ	४
▲946 सत्संगका प्रसाद	४
▲942 जीवनका सत्य	५
▲1145 अमरताकी ओर	४
▲1066 भगवान्से अपनापन	४
■806 रामभक्त हनुमान्	५
▲1086 कल्याणकारी प्रवचन-(भाग-२)	५
▲1287 सत्यकी खोज	५
▲1088 एकै साधे सब सधै	४
■1399 चोखी कहानियाँ	५
▲889 भगवान्के रहनेके पाँच स्थान	३
▲1141 क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं ?	४
▲939 मातृ-शक्तिका घोर अपमान	३
■890 प्रेमी भक्त उद्धव	३
▲1047 आदर्श नारी सुशीला	८
▲1059 नल-दमयन्ती	४
▲1045 बालशिक्षा	४

कोड	मूल्य
▲1063 सत्संगकी विलक्षणता	३
▲1064 जीवनोपयोगी कल्याण-मार्ग	४
▲1165 सहज साधना	४
▲1151 सत्संगमुक्ताहार	४
■1401 बालप्रश्नोत्तरी	३
■935 संक्षिप्त रामायण	२
▲893 सती सावित्री	२
▲941 देशकी वर्तमान दशा···	२
▲1177 आवश्यक शिक्षा	३
▲804 गर्भपात उचित या अनुचित"	२
▲1049 आनन्दकी लहरें	२
■947 महात्मा विदुर	३
■937 विष्णुसहस्रनाम	२
▲1058 मनको वश करनेके उपाय एवं कल्याणकारी आचरण	२
▲1050 सच्चा सुख	२
▲1060 त्यागसे भगवत्प्राप्ति और गीता पढ़नेके लाभ	२
■828 हनुमानचालीसा	२
▲844 सत्संगकी कुछ सार बातें	२
▲1055 हमारा कर्त्तव्य एवं व्यापार सुधारकी आवश्यकता	१.५०
▲1048 संत-महिमा	२
▲1310 धर्मके नामपर पाप	२
▲1179 दुर्गतिसे बचो	१.५०
▲1178 सार-संग्रह, सत्संगके अमृत कण	२
▲1152 मुक्तिमें सबका अधिकार	१.५०
▲1207 मूर्तिपूजा-नामजपकी महिमा	१.५०
▲1167 भगवत्तत्त्व	१.५०
▲1206 धर्म क्या है ? भगवान् क्या है ?	२
▲1500 सन्ध्या-गायत्रीका महत्त्व	२
▲1051 भगवान्की दया	१.५०
■1198 हनुमानचालीसा—लघु आकार	१
■1648 " —गुजराती, रोमन	३
■1649 हनुमानचालीसा, अति लघु आकार	१
■1229 पंचामृत	
▲1054 प्रेमका सच्चा स्वरूप और सत्यकी शरणसे मुक्ति	१.५०
▲938 सर्वोच्चपदप्राप्तिके साधन	१
▲1056 चेतावनी एवं सामयिक...	१
▲1053 अवतारका सिद्धान्त और ईश्वर दयालु एवं न्यायकारी	१.५०
▲1127 ध्यान और मानसिक पूजा	१.५०
▲1148 महापापसे बचो	२
▲1153 अलौकिक प्रेम	१.५०

तमिल

कोड	मूल्य
■1426 साधक-संजीवनी (भाग-१)	७५
■1427 साधक-संजीवनी (भाग-२)	७५
■800 गीता-तत्त्व-विवेचनी	८०
■1534 वा० रा० सुन्दरकाण्ड	७०
■1256 अध्यात्मरामायण	६०
■823 गीता-पदच्छेद	८०
■743 गीता मूलम	१५
■795 गीता भाषा	६
■1606 श्रीमन्नारायणीयम्, [illegible]	६०
■1605 भागवत एकादश-स्कन्ध-सटीक	५५
■1618 वाल्मीकीयरामायण सुन्दरकाण्ड वचनम्	[illegible]
■1619 वाल्मीकीयरामायण सुन्दरकाण्ड मूलम्	[illegible]

कोड	मूल्य
▲389 गीतामाधुर्य	९
■ 365 गोसेवाके चमत्कार	१०
■1134 गीता-माहात्म्यकी कहानियाँ	१०
▲1007 अपात्रको भी भगवत्प्राप्ति	८
▲553 गृहस्थमें कैसे रहें ?	९
▲850 संतवाणी—(भाग १)	७
▲952 ,, (,, २)	७
▲953 ,, (,, ३)	७
▲1353 रामायणके कुछ आदर्श पात्र	९
▲1354 महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	८
■ 646 चोखी कहानियाँ	७
■ 608 भक्तराज हनुमान्	७
■1246 भक्तचरित्रम्	७
▲643 भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान	५
▲550 नाम-जपकी महिमा	१.५०
▲1289 साधन-पथ	५
▲1480 भगवान्‌के स्वभावका रहस्य	७
▲1481 प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय	७
▲1482 भक्तियोगका तत्त्व	७
■ 793 गीता मूल-विष्णुसहस्रनाम	६
▲1117 देशकी वर्तमान दशा...	५
▲1110 अमृत बिन्दु	६
▲655 एकै साधे सब सधै	५
▲1243 वास्तविक सुख	६
■ 741 महात्मा विदुर	५
▲536 गीता पढ़नेके लाभ, सत्यकी शरणसे मुक्ति	३
▲591 महापापसे बचो, संतानका कर्तव्य	३
▲609 सावित्री और सत्यवान्	३
▲644 आदर्श नारी सुशीला	३
▲568 शरणागति	३
▲805 मातृशक्तिका घोर अपमान	२
▲607 सबका कल्याण कैसे हो ?	२
■ 794 विष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्	३
■ 127 उपयोगी कहानियाँ	८
■ 600 हनुमानचालीसा	३
▲466 सत्संगकी सार बातें	२
▲499 नारद-भक्ति-सूत्र	१.५०
■ 601 भगवान् श्रीकृष्ण	७
■ 642 प्रेमी भक्त उद्धव	८
■ 647 कन्हैया (चित्रकथा)	१५
■ 648 श्रीकृष्ण—(,, ,,)	१५
■ 649 गोपाल— (,, ,,)	१५
■ 650 मोहन— (,, ,,)	१५
■1042 पञ्चामृत	
▲742 गर्भपात उचित या....	२.५०
▲423 कर्मरहस्य	४
▲569 मूर्तिपूजा	१.५०
▲551 आहारशुद्धि	२
▲645 नल-दमयन्ती	६
▲606 सर्वोच्चपदकी प्राप्तिके साधन	२
▲792 आवश्यक चेतावनी	३

— कन्नड़ —

कोड	मूल्य
■1112 गीता-तत्त्व-विवेचनी	७०
■1369, 1370 गीता-साधक-संजीवनी (दो खण्डोंमें सेट)	१४०
■1558 अध्यात्मरामायण	७०
■1560 रामचरितमानस-सटीक	११०
■1559 श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-सुन्दरकाण्ड	५५
■ 726 गीता-पदच्छेद	३०
■ 718 गीता-तात्पर्यके साथ	१५
■1372 गीता-माहात्म्य	९
■1375 ॐ नमः शिवाय	१५
■1357 नवदुर्गा	१०
▲1100 उपदेशप्रद कहानियाँ	९
▲945 साधन नवनीत	१०
■ 724 उपयोगी कहानियाँ	८
▲1499 नवधा भक्ति	५

कोड	मूल्य
▲1498 भगवत्कृपा	४
▲833 रामायणके कुछ आदर्श पात्र	९
▲834 स्त्रियोंके लिये कर्तव्य-शिक्षा	९
■1107 भगवान् श्रीकृष्ण	६
■1288 गीता श्लोकार्थ	६
▲716 शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	६
■ 832 सुन्दरकाण्ड (सटीक)	८
■ 840 आदर्श भक्त	७
■ 841 भक्त सप्तरत्न	८
■ 843 दुर्गासप्तशती—मूल	१०
▲390 गीतामाधुर्य	७
▲1625 नारीशिक्षा	८
▲1626 अमृत-बिन्दु	६
▲720 महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	७
▲1374 अमूल्य समयका सदुपयोग	६
▲128 गृहस्थमें कैसे रहें ?	५
■ 661 गीता-मूल (विष्णुसहस्रनामसहित)	५
■ 721 भक्त बालक	६
■ 951 भक्त चन्द्रिका	५
■ 835 श्रीरामभक्त हनुमान्	६
■ 837 विष्णुसहस्रनाम—सटीक	५
■ 842 ललितासहस्रनामस्तोत्र	४
■1373 गजेन्द्रमोक्ष	२
■1106 ईशावास्योपनिषद्	३
▲717 सावित्री-सत्यवान् और आदर्श नारी सुशीला	४
▲723 नाम-जपकी महिमा और आहारशुद्धि	३
▲725 भगवान्‌की दया एवं···	३
▲722 सत्यकी शरणसे मुक्ति, गीता पढ़नेके लाभ	३
▲325 कर्मरहस्य	४
▲597 महापापसे बचो	१.५०
▲719 बालशिक्षा	४
▲839 भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान	३
▲1371 शरणागति	४
▲836 नल-दमयन्ती	३
■ 737 विष्णुसहस्रनाम एवं सहस्रनामावली	३
▲838 गर्भपात उचित या अनुचित···	२
■ 736 नित्यस्तुतिः, आदित्यहृदयस्तोत्रम्	२
■1105 श्रीवाल्मीकि रामायणम्-संक्षिप्त	२
■ 738 हनुमत्-स्तोत्रावली	२
▲593 भगवत्प्राप्तिकी सुगमता	
▲598 वास्तविक सुख	४
▲831 देशकी वर्तमान दशा तथा···	३

— असमिया —

कोड	मूल्य
■ 714 गीता-भाषा-टीका—पॉकेट साइज	७
■1222 श्रीमद्भागवत-माहात्म्य	७
■ 825 नवदुर्गा—	५
▲624 गीतामाधुर्य—	६
▲1487 गृहस्थमें कैसे रहें ?	७
■1323 श्रीहनुमानचालीसा	२
■1515 शिवचालीसा	२
▲703 गीता पढ़नेके लाभ	१

— ओड़िआ —

कोड	मूल्य
■1551 संत जगन्नाथदासकृत भागवत	१४०
■1121 गीता-साधक-संजीवनी	११०
■1100 गीता-तत्त्व-विवेचनी	७५
■1463 रामचरितमानस-सटीक, मोटा टाइप	१३०
■1218 ,, मूल, मोटा टाइप	६०
■1473 साधन-सुधा-सिन्धु	९०
■1298 गीता-दर्पण	४०
■ 815 गीता श्लोकार्थसहित (सजिल्द)	२०
■1219 गीता-पञ्चरत्न	१५

कोड	मूल्य
■1009 जय हनुमान् (चित्रकथा)	१५
■1250 ॐ नमः शिवाय (,,)	१५
■1010 अष्ट विनायक (,,)	१०
■1248 मोहन (,,)	१०
■1249 कन्हैया (,,)	१०
■ 863 नवदुर्गा (,,)	१०
■1494 बालचित्रमय चैतन्यलीला	७
■1157 गीता-सटीक, मोटे अक्षर	१२
■1465 गीता-अन्वयअर्थसहित पॉकेट साइज	१५
▲1511 मानवमात्रके कल्याणके लिये	१०
■1476 दुर्गासप्तशती-सटीक	१८
▲1251 भवरोगकी रामबाण दवा	९
▲1270 नित्ययोगकी प्राप्ति	६
▲1268 वास्तविक सुख	५
▲1209 प्रश्नोत्तर-मणिमाला	८
▲1464 अमृत बिन्दु	६
▲1274 परमार्थ सूत्र-संग्रह	८
▲1254 साधन नवनीत	९
■1008 गीता—पॉकेट साइज	७
▲754 गीतामाधुर्य	६
▲1208 आदर्श कहानियाँ	६
▲1139 कल्याणकारी प्रवचन	६
■1342 बड़ोंके जीवनसे शिक्षा	७
▲1205 रामायणके कुछ आदर्श पात्र	७
▲1506 अमूल्य समयका सदुपयोग	७
▲1272 निष्काम श्रद्धा और प्रेम	८
■1204 सुन्दरकाण्ड—मूल मोटा	५
▲1299 भगवान् और उनकी भक्ति	५
■ 854 भक्तराज हनुमान्	५
▲1004 तात्त्विक प्रवचन	५
▲1138 भगवान्‌से अपनापन	५
▲1187 आदर्श भ्रातृप्रेम	४
▲430 गृहस्थमें कैसे रहें ?	५
▲1321 सब जग ईश्वररूप है	५
▲1269 आवश्यक शिक्षा	५
▲865 प्रार्थना	३
▲796 देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम	३
▲1130 क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं ?	४
■1154 गोविन्ददामोदरस्तोत्र	३
■1200 सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र	३
▲1174 आदर्श नारी सुशीला	३
▲1507 उद्धार कैसे हो	५
■ 541 गीता-मूल, विष्णुसहस्रनामसहित	३
■1644 गीता-दैनन्दिनी-पुस्तकाकार, विशिष्ट संस्करण (२००७)	४५
▲1614 शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	५
▲1635 प्रेरक कहानियाँ	६
▲1003 सत्संगमुक्ताहार	४
▲1512 साधनके दो प्रधान सूत्र	४
▲817 कर्मरहस्य	४
▲1078 भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय	४
▲1079 बालशिक्षा	४
▲1163 बालकोंके कर्तव्य	४
▲1252 भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान	३
▲757 शरणागति	४
▲1186 श्रीभगवन्नाम	३
▲1267 सहज साधना	४
▲1005 मातृशक्तिका घोर अपमान	३
▲1203 नल-दमयन्ती	३
▲1253 परलोक और पुनर्जन्म एवं वैराग्य	३
▲1220 सावित्री और सत्यवान्	२
▲826 गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका	२
■ 856 हनुमानचालीसा	२
■1661 ,, ,, (लघु आकार)	१
▲798 गुरुतत्त्व	१.५०
▲797 सन्तानका कर्तव्य-	१.५०
■1036 गीता—मूल, लघु आकार	२
■1509 रामरक्षास्तोत्र	२
■1070 आदित्यहृदयस्तोत्र	२

कोड	मूल्य
■1068 गजेन्द्रमोक्ष	१.५०
■1069 नारायणकवच	१.५०
▲1089 धर्म क्या है ? भगवान् क्या है ?	१.५०
▲1039 भगवान्‌की दया एवं भगवत्कृपा	१.५०
▲1090 प्रेमका सच्चा स्वरूप	१.५०
▲1091 हमारा कर्तव्य	१.५०
▲1040 सत्संगकी कुछ सार बातें	१.५०
▲1011 आनन्दकी लहरें	१.५०
▲852 मूर्तिपूजा-नामजपकी महिमा	१.५०
▲1038 संत-महिमा	१.५०
▲1041 ब्रह्मचर्य एवं मनको वश करनेके कुछ उपाय	२
▲1221 आदर्श देवियाँ	३
■1201 महात्मा विदुर	३
■1202 प्रेमी भक्त उद्धव	
■1173 भक्त चन्द्रिका	५

— उर्दू —

कोड	मूल्य
■1446 गीता उर्दू	८
▲393 गीतामाधुर्य	
▲590 मनकी खटपट कैसे मिटे	०.८०

— तेलुगु —

कोड	मूल्य
■1573 श्रीमद्भागवत-मूल मोटा टाइप	१२०
■1632 महाभारत विराटपर्व	५५
■1352 रामचरितमानस-सटीक, ग्रन्थाकार	१२०
■1419 रामचरितमानस-केवल भाषा	७०
■1557 वाल्मीकिरामायण-(भाग १)	११०
■1622 ,, ,, (भाग-२)	१३०
■1429 श्रीमद्वाल्मीकिरामायण सुन्दरकांड (तात्पर्यसहित)	७५
■1477 ,, ,, (सामान्य)	५५
■1172 गीता-तत्त्व-विवेचनी	८०
■ 845 अध्यात्मरामायण	७५
■ 772 गीता-पदच्छेद-अन्वयसहित	२५
■ 914 स्तोत्ररत्नावली	२०
■1569 हनुमत्स्तोत्रावली	३
■1639 बालरामायण-लघु आकार	१
■1466 वाल्मीकिरामायण-सुन्दरकाण्ड, मूल, पुस्तकाकार	३०
■ 924 ,, सुन्दरकाण्ड-मूल गुटका	१८
■1532 ,, वचनमु	३०
■1026 पंच सूक्तमुलु-रुद्रमु	५
■ 771 गीता तात्पर्यसहित	१५
■ 910 विवेकचूडामणि	१५
▲904 नारद भक्तिसूत्र मुलु (प्रेमदर्शन-)	१२
■ 959 कन्हैया (चित्रकथा)	१०
■ 960 गोपाल (,,)	१०
■ 961 मोहन (,,)	१०
■ 962 श्रीकृष्ण (,,)	१०
■ 963 रामलला (,,)	१५
■ 964 राजा राम (,,)	१५
■ 967 रामायणके प्रमुख पात्र (,,)	१५
■ 968 श्रीमद्भागवतके प्रमुख पात्र (चित्रकथा)	१५
■ 887 जय हनुमान् (,,)	१५
■1301 नवदुर्गा (,,)	१०
■ 909 दुर्गासप्तशती—मूलम्	१२
■1029 भजन-संकीर्तनावली	१२
■1309 गीता-माहात्म्यकी कहानियाँ	१०
■1390 गीता तात्पर्य-पॉकेट साइज, मोटा टाइप	१०
■ 691 श्रीभीष्मपितामह	१०
▲1028 गीतामाधुर्य	१०
▲915 उपदेशप्रद कहानियाँ	९
▲1572 शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	५
▲905 आदर्श दाम्पत्य-जीवनमु	८
■1526 गीता-मूल मोटे अक्षर, पॉकेट साइज	८
■1570 गीता-तात्पर्य	८
■1031 गीता—मोटे पॉकेट साइज	४
■1571 गीता-लघु आकार	३

कोड	मूल्य
■ 929 महाभक्तुलु	७
■ 919 मंचि कथलु (उपयोगी कहानियाँ)	७
■1502 श्रीनामरामायणम् एवं हनुमान-चालीसा (लघु आकार)	१
▲ 766 महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	६
▲ 768 रामायणके कुछ आदर्श पात्र	८
▲ 733 गृहस्थमें कैसे रहें ?	६
■ 908 नारायणीयम्—मूलम्	१५
■ 682 भक्त पञ्चरत्न	६
■ 687 आदर्श भक्त	६
■ 767 भक्तराज हनुमान्	६
■ 917 भक्त चन्द्रिका	७
■ 918 भक्त सप्तरत्न	८
■ 641 भगवान् श्रीकृष्ण	६
■ 663 गीता भाषा	६
■ 662 गीता-मूल (विष्णुसहस्रनामसहित)	४
■ 753 सुन्दरकाण्ड—सटीक	५
■ 685 भक्त बालक	५
■ 692 चोखी कहानियाँ	५
▲ 920 परमार्थ-पत्रावली	५

कोड	मूल्य
■ 930 दत्तात्रेयवज्रकवच	३
■ 846 ईशावास्योपनिषद्	३
■ 686 प्रेमी भक्त उद्धव	४
■1023 श्रीशिवमहिम्नःस्तोत्रम्-सटीक	३
■ 973 शिवस्तोत्रावली	३
■ 972 शतकत्रयम्	५
■1025 स्तोत्रकदम्बम्	३
■ 674 गोविन्ददामोदरस्तोत्र	३
■ 675 सं० रामायणम्, रामरक्षास्तोत्रम्	३
▲ 906 भगन्तुडे अत्मेयुगु	३
■ 801 ललितासहस्रनाम	४
■ 974 " " (लघु आकार)	३
■1024 श्रीनारायणकवचमु तात्पर्यसहितमु	३
■1030 सन्ध्योपासनविधि	१२
■ 688 भक्तराज ध्रुव	३
■ 670 विष्णुसहस्रनाम-मूल	२
■ 911 " -मूल (लघु आकार)	१
■1527 विष्णुसहस्रनामस्तोत्रम् नामावलीसहित	४
■1531 गीता-विष्णुसहस्रनाम, मोटा टाइप	८
■ 732 नित्यस्तुतिः, आदित्यहृदयस्तोत्रम्	२

कोड	मूल्य
■ 912 रामरक्षास्तोत्र, सटीक	२
■ 677 गजेन्द्रमोक्षम्	२
▲ 913 भगवत्प्राप्ति सर्वोत्कृष्ट साधनमु-नाम स्मरणमें	१.५०
▲ 923 भगवन्तु दयालु न्यायमूर्ति	२
▲ 760 महत्त्वपूर्ण शिक्षा	५
▲ 761 एकै साधे सब सधै	५
▲ 922 सर्वोत्तम साधन	५
▲ 759 शरणागति एवं मुकुन्दमाला	४
▲ 752 गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका	२
▲ 734 आहारशुद्धि, मूर्तिपूजा	२
▲ 664 सावित्री-सत्यवान्	३
▲ 665 आदर्श नारी सुशीला	३
▲ 921 नवधा भक्ति	४
▲ 666 अमूल्य समयका सदुपयोग	७
▲ 672 सत्यकी शरणसे मुक्ति	२
▲ 671 नामजपकी महिमा	१
▲ 678 सत्संगकी कुछ सार बातें	१
▲ 731 महापापसे बचो	२
▲ 925 सर्वोच्चपदकी प्राप्तिके साधन	१.५०

कोड	मूल्य
▲1547 किसान और गाय	२
▲ 758 देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम	३
▲ 916 नल-दमयन्ती	५
▲ 689 भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान	४
▲ 690 बालशिक्षा	४
▲ 907 प्रेमभक्ति-प्रकाशिका	१.५०
▲ 673 भगवान्‌का हेतुरहित सौहार्द	१.५०
▲ 926 सन्तानका कर्तव्य	२
— मलयालम —	
■ 739 गीता-विष्णुसहस्रनाम, मूल	४
■ 740 विष्णुसहस्रनाम—मूल	१.५०
— पंजाबी —	
▲1616 गृहस्थमें कैसे रहें ?	७
— नेपाली —	
■1609 श्रीरामचरितमानस—सटीक, मोटा टाइप	१४०
▲1621 मानवमात्रके कल्याणके लिये	१२

Our English Publications

Code	Price
■ 1318 Śrī Rāmacaritamānasa (With Hindi Text, Transliteration & English Translation)	200
■1617 Śrī Rāmacaritamānasa A Romanized Edition with English Translation	80
■ 456 Śrī Rāmacaritamānasa (With Hindi Text and English Translation)	120
■ 786 „ „ Medium	70
■ 452, 453 Śrīmad Vālmīki Rāmāyaṇa (With Sanskrit Text and English Translation) Set of 2 volumes	300
■ 564, 565 Śrīmad Bhāgavata (With Sanskrit Text and English Translation) Set	250
■ 1159, 1160 Śrīmad Bhāgavata Mahapurana only English Translation set of 2 volumes	150
■ 1080, 1081 Śrīmad Bhagavadgītā Sādhaka-Sañjīvanī (By Swami Ramsukhdas) (English Commentary) Set of 2 Volumes	100
■ 457 Śrīmad Bhagavadgītā Tattva-Vivecanī (By Jayadayal Goyandka) Detailed Commentary	70
■ 455 Bhagavadgītā (With Sanskrit Text and English Translation) Pocket size	5
■ 534 Bhagavadgītā (Bound)	10
■ 1223 Bhagavadgītā (Roman Gītā) (With Sanskrit Text, Transliteration and English Translation)	10
■1658 Śrīmad Bhagavadgītā (Sanskrit text with Hindi and English Translation)	12
▲ 783 Abortion Right or Wrong You Decide	2
■ 824 Songs from Bhartṛhari	2
■ 1643 Ramaraksastotram (With Sanskrit Text, English Translation)	2
■ 494 The Immanence of God (By Madan Mohan Malaviya)	
■ 1528 Hanumāna Cālīsā (Roman) (Pocket Size)	3
■ 1638 „ Small size	2
■ 1491 Mohana (Picture Story)	10
■ 1492 Rāma Lalā (Picture Story)	15
■ 1445 Virtuous Children	13
■ 1545 Brave and Honest Children	13
— By Jayadayal Goyandka —	
▲ 477 Gems of Truth [Vol. I]	8
▲ 478 „ „ [Vol. II]	6
▲ 479 Sure Steps to God-Realization	12
▲ 481 Way to Divine Bliss	5
▲ 1285 Moral Stories	10
▲ 482 What is Dharma? What is God?	1
▲ 480 Instructive Eleven Stories	4
▲ 1284 Some Ideal Characters of Rāmāyaṇa	8
▲ 1245 Some Exemplary Characters of the Mahābhārata	7
▲ 694 Dialogue with the Lord During Meditation	2
▲ 1125 Five Divine Abodes	3
▲ 520 Secret of Jñānayoga	12
▲ 521 „ „ Premayoga	9
▲ 522 „ „ Karmayoga	12
▲ 523 „ „ Bhaktiyoga	13
▲ 658 „ „ Gītā	6
▲ 1013 Gems of Satsaṅga	2
▲ 1501 Real Love	4
— By Hanuman Prasad Poddar —	
▲ 484 Look Beyond the Veil	8
▲ 622 How to Attain Eternal Happiness ?	8
▲ 483 Turn to God	8
▲ 485 Path to Divinity	7
▲ 847 Gopis'Love for Śrī Kṛṣṇa	4
▲ 620 The Divine Name and Its Practice	3
▲ 486 Wavelets of Bliss & the Divine Message	
— By Swami Ramsukhdas —	
▲ 1470 For Salvation of Mankind	12
▲ 619 Ease in God-Realization	4
▲ 471 Benedictory Discourses	6
▲ 473 Art of Living	4
▲ 487 Gītā Mādhurya	7
▲ 1101 The Drops of Nectar (Amṛta Bindu)	5
▲ 472 How to Lead A Household Life	5
▲ 570 Let Us Know the Truth	4
▲ 638 Sahaja Sādhanā	5
▲ 634 God is Everything	4
▲ 621 Invaluable Advice	3
▲ 474 Be Good	9
▲ 497 Truthfulness of Life	2
▲ 669 The Divine Name	2
▲ 476 How to be Self-Reliant	
▲ 552 Way to Attain the Supreme Bliss	1
▲ 562 Ancient Idealism for Modernday Living	1
— Special Editions —	
■ 1411 Gītā Roman (Sanskrit text, Transliteration & English Translation) Book Size	20
■ 1584 „ (Pocket Size)	10
■ 1407 The Drops of Nectar (By Swami Ramsukhdas)	10
■ 1406 Gītā Mādhurya (")	15
■ 1438 Discovery of Truth and Immortality (By Swami Ramsukhdas)	15
■ 1413 All Is God (")	10
■ 1414 The Story of Mīrā Bāī (Bankey Behari)	15

अप्रैल २००६ से प्रकाशित नवीन प्रकाशन

कोड	मूल्य
▲ 1675 सागरके मोती	१०
■ 1688 तीस रोचक कथाएँ	१०
▲ 1695 चित्र—शिक्षाकी अधिष्ठात्री भगवती सरस्वती	८
■ 1692 बालककी दिनचर्या रंगीन, ग्रन्थाकार	१५
■ 1701 विनय-पत्रिका, सजिल्द	३५
■ 1706 विष्णुसहस्रनामस्तोत्रम् (नामावलिसहितम्)	५
■ 1710 श्रीरामचरितमानस-चतुर्थ सोपान, किष्किन्धाकाण्ड	२
— English —	
▲1523 Is Salvation Not Possible without a Guru	5
■1550 Sunder Kand (Roman)	12
— मराठी —	
■ 1671 महाराष्ट्रातील निवडक संतांची चरित्रे	८
■ 1682 सार्थ सं० देवीपाठ	५
■ 1683 सार्थ ज्ञानदेवी गीता	१०
■ 1645 हरीपाठ (सार्थ सविवरण)	८
■ 1687 सुन्दरकाण्ड-सटीक	५
— ओड़िआ —	
■ 1672 गीता-प्रबोधनी	३०
■ 1702 गीता तार्यीजी	८
— तेलुगु —	
■ 1684 श्रीगणेशस्तोत्रावली	३
■ 1685 श्रीदेवीस्तोत्रावली	३
■ 966 भगवान् सूर्य	१५
■ 965 दशावतार पत्रिका	१०
■ 1698 श्रीमन्नारायणीयम्-श्लोकार्थसहितम्	२०
■ 1699 श्रीमद्भागवतम्‌ [illegible]	१५
■ 1686 अष्टविनायक पत्रिका	१०
■ 1714 गीता [illegible]	८०

॥ श्रीहरिः ॥

'कल्याण' का उद्देश्य और इसके नियम

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और सदाचारसमन्वित लेखोंद्वारा जन-जनको कल्याण-पथ (आत्मोद्धारके सुमार्ग)-पर अग्रसरित करनेकी प्रेरणा देना इसका एकमात्र उद्देश्य है।

नियम—भगवद्भक्ति, ज्ञान, वैराग्यादि प्रेरणाप्रद एवं कल्याण-मार्गमें सहायक अध्यात्मविषयक, व्यक्तिगत आक्षेपरहित लेखोंके अतिरिक्त अन्य विषयोंके लेख 'कल्याण' में प्रकाशित नहीं किये जाते। लेखोंको घटाने-बढ़ाने और छापने-न-छापनेका अधिकार सम्पादकको है। अमुद्रित लेख बिना माँगे लौटाये नहीं जाते। लेखोंमें प्रकाशित मतके लिये सम्पादक उत्तरदायी नहीं है।

१-'कल्याण' का वर्तमान वार्षिक सदस्यता-शुल्क डाक-व्ययसहित नेपाल-भूटान तथा भारतवर्षमें रु० १३० (सजिल्द विशेषाङ्कका रु० १५०) है। विदेशके लिये सजिल्द विशेषाङ्कका हवाई डाक (Air mail)-से US$25 (रु० ११५०) तथा समुद्री डाक (Sea mail)-से US$13 (रु० ६००) है। समुद्री डाकसे पहुँचनेमें बहुत समय लग सकता है, अतः हवाई डाकसे ही अङ्क मँगवाना चाहिये। सदस्यता-शुल्कके साथ बैंक कलेक्शन चार्ज US$6 अतिरिक्त भेजना चाहिये।

२-**'कल्याण' का नया वर्ष जनवरीसे आरम्भ होकर दिसम्बरतक रहता है, अतः ग्राहक जनवरीसे ही बनाये जाते हैं।** वर्षके मध्यमें बननेवाले ग्राहकोंको जनवरीसे ही अङ्क दिये जाते हैं। एक वर्षसे कमके लिये ग्राहक नहीं बनाये जाते हैं।

३-**ग्राहकोंको वार्षिक शुल्क १५ दिसम्बरतक 'कल्याण'-कार्यालय, गोरखपुर अथवा गीताप्रेसकी पुस्तक-दूकानोंपर अवश्य भेज देना चाहिये, जिससे उन्हें विशेषाङ्क रजिस्ट्रीसे भेजा जा सके।** जिन ग्राहक-सज्जनोंसे शुल्क-राशि अग्रिम प्राप्त नहीं होती, उन्हें विशेषाङ्क वी०पी०पी० द्वारा भेजनेका नियम है। वी०पी०पी० द्वारा 'कल्याण'-विशेषाङ्क भेजनेमें यद्यपि वी०पी०पी० डाक-शुल्कके रूपमें रु० १० ग्राहकको अधिक देना पड़ता है; परंतु अङ्क सुविधापूर्वक सुरक्षित मिल जाता है। **अतः सभी ग्राहकोंको वी०पी०पी० ठीक समयसे छुड़ा लेनी चाहिये।** पाँच वर्षके लिये भी ग्राहक बनाये जाते हैं, इससे आप प्रतिवर्ष शुल्क भेजने/ वी०पी० पी० छुड़ानेके अतिरिक्त खर्चसे बच सकते हैं।

४-जनवरीका विशेषाङ्क रजिस्ट्री/ वी०पी०पी०से प्रेषित किया जाता है। फरवरीसे दिसम्बरतकके अङ्क प्रतिमास भली प्रकार जाँच करके मासके प्रथम सप्ताहतक साधारण डाकसे भेजे जाते हैं। यदि किसी मासका अङ्क माहके अन्तिम तारीखतक न मिले तो डाक-विभागसे जाँच करनेके उपरान्त हमें सूचित करना चाहिये। खोये हुए मासिक अङ्कोंके उपलब्ध होनेकी स्थितिमें पुनः भेजनेका प्रयास किया जाता है।

५-पता बदलनेकी सूचना समयसे भेज देनी चाहिये, जिससे अङ्क-प्राप्तिमें असुविधा एवं विलम्ब न हो। पत्रोंमें **ग्राहक-संख्या, पिनकोडसहित पुराना और नया—पूरा पता पढ़नेयोग्य सुस्पष्ट तथा सुन्दर अक्षरोंमें लिखना चाहिये।**

६-पत्र-व्यवहारमें 'ग्राहक-संख्या' न लिखे जानेपर कार्यवाही होना कठिन है। अतः 'ग्राहक-संख्या' प्रत्येक पत्रमें अवश्य लिखी जानी चाहिये।

७-जनवरीका विशेषाङ्क ही वर्षका प्रथम अङ्क होता है। वर्षपर्यन्त मासिक अङ्क ग्राहकोंको उसी शुल्क-राशिमें भेजे जाते हैं।

८-'कल्याण' में व्यवसायियोंके विज्ञापन किसी भी स्थितिमें प्रकाशित नहीं किये जाते।

'कल्याण' के पञ्चवर्षीय ग्राहक

पाँच वर्षके लिये सदस्यता-शुल्क (भारतमें) अजिल्द विशेषाङ्कके लिये रु० ६५०, सजिल्द विशेषाङ्कके लिये रु० ७५० है। फर्म, प्रतिष्ठान आदि भी ग्राहक बन सकते हैं। किसी अनिवार्य कारणवश यदि 'कल्याण' का प्रकाशन बंद हो जाय तो जितने अङ्क मिले हों उतनेमें ही संतोष करना चाहिये।

व्यवस्थापक—'कल्याण', पत्रालय—गीताप्रेस—२७३००५ (गोरखपुर)

रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७
प्र० ति० १-१-२००७

पंजीकृत-संख्या—NP/GR-13/07
LICENCE NO.-WPP/GR-03/2007 | LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT

भगवदवतारोंसे रक्षाकी प्रार्थना

ॐ हरिर्विदध्यान्मम सर्वरक्षां न्यस्ताङ्घ्रिपद्मः पतगेन्द्रपृष्ठे।
दरारिचर्मासिगदेषुचापपाशान् दधानोऽष्टगुणोऽष्टबाहुः॥
जलेषु मां रक्षतु मत्स्यमूर्तिर्यादोगणेभ्यो वरुणस्य पाशात्।
स्थलेषु मायावटुवामनोऽव्यात् त्रिविक्रमः खेऽवतु विश्वरूपः॥
दुर्गेष्वटव्याजिमुखादिषु प्रभुः पायान्नृसिंहोऽसुरयूथपारिः।
विमुञ्चतो यस्य महाट्टहासं दिशो विनेदुर्न्यपतंश्च गर्भाः॥
रक्षत्वसौ माध्वनि यज्ञकल्पः स्वदंष्ट्रयोन्नीतधरो वराहः।
रामोऽद्रिकूटेष्वथ विप्रवासे सलक्ष्मणोऽव्याद् भरताग्रजोऽस्मान्॥
मामुग्रधर्मादखिलात् प्रमादान्नारायणः पातु नरश्च हासात्।
दत्तस्त्वयोगादथ योगनाथः पायाद् गुणेशः कपिलः कर्मबन्धात्॥
सनत्कुमारोऽवतु कामदेवाद्धयशीर्षा मां पथि देवहेलनात्।
देवर्षिवर्यः पुरुषार्चनान्तरात् कूर्मो हरिर्मां निरयादशेषात्॥
धन्वन्तरिर्भगवान् पात्वपथ्याद् द्वन्द्वाद् भयादृषभो निर्जितात्मा।
यज्ञश्च लोकादवताज्जनान्ताद् बलो गणात् क्रोधवशादहीन्द्रः॥
द्वैपायनो भगवानप्रबोधाद् बुद्धस्तु पाखण्डगणात् प्रमादात्।
कल्किः कलेः कालमलात् प्रपातु धर्मावनायोरुकृतावतारः॥

'भगवान् श्रीहरि गरुड़जीकी पीठपर अपने चरणकमल रखे हुए हैं। अणिमादि आठों सिद्धियाँ उनकी सेवा कर रही हैं। आठ हाथोंमें शङ्ख, चक्र, ढाल, तलवार, गदा, बाण, धनुष और पाश (फंदा) धारण किये हुए हैं। वे ही ॐकारस्वरूप प्रभु सब प्रकारसे, सब ओरसे मेरी रक्षा करें। मत्स्यमूर्तिभगवान् जलके भीतर जलजन्तुओंसे और वरुणके पाशसे मेरी रक्षा करें। मायासे ब्रह्मचारीका रूप धारण करनेवाले वामनभगवान् स्थलपर और विश्वरूप श्रीत्रिविक्रमभगवान् आकाशमें मेरी रक्षा करें। जिनके घोर अट्टहाससे सब दिशाएँ गूँज उठी थीं और गर्भवती दैत्यपत्नियोंके गर्भ गिर गये थे, वे दैत्य-यूथपतियोंके शत्रु भगवान् नृसिंह किले, जंगल, रणभूमि आदि विकट स्थानोंमें मेरी रक्षा करें। अपनी दाढ़ोंपर पृथ्वीको धारण करनेवाले यज्ञमूर्ति वराहभगवान् मार्गमें, परशुरामजी पर्वतोंके शिखरोंपर और लक्ष्मणजीके सहित भरतके बड़े भाई भगवान् रामचन्द्र प्रवासके समय मेरी रक्षा करें। भगवान् नारायण मारण-मोहन आदि भयंकर अभिचारों और सब प्रकारके प्रमादोंसे मेरी रक्षा करें। ऋषिश्रेष्ठ नर गर्वसे, योगेश्वर भगवान् दत्तात्रेय योगके विघ्नोंसे और त्रिगुणाधिपति भगवान् कपिल कर्मबन्धनोंसे मेरी रक्षा करें। परमर्षि सनत्कुमार कामदेवसे, हयग्रीवभगवान् मार्गमें चलते समय देवमूर्तियोंको नमस्कार आदि न करनेके अपराधसे, देवर्षि नारद सेवापराधोंसे और भगवान् कच्छप सब प्रकारके नरकोंसे मेरी रक्षा करें। भगवान् धन्वन्तरि कुपथ्यसे, जितेन्द्रिय भगवान् ऋषभदेव सुख-दुःख आदि भयदायक द्वन्द्वोंसे, यज्ञभगवान् लोकापवादसे, बलरामजी मनुष्यकृत कष्टोंसे और श्रीशेषजी क्रोधवश नामक सर्पोंके गणसे मेरी रक्षा करें। भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजी अज्ञानसे तथा बुद्धदेव पाखण्डियोंसे और प्रमादसे मेरी रक्षा करें। धर्मरक्षाके लिये महान् अवतार धारण करनेवाले भगवान् कल्कि पापबहुल कलिकालके दोषोंसे मेरी रक्षा करें।' (श्रीमद्भागवत)